ग्राहक संख्या नोट करें

इस वर्ष सभी ग्राहकों की ग्राहक संख्या बदल गई है, अतएव ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर पते के साथ लिखी ग्राहक संख्या को यहां नोट करलें तथा धन्वन्तरि के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करते समय एवं वार्षिक मूल्य भेजते समय यह ग्राहक संख्या अवश्य लिख दिया करें। इसे अत्यावश्यक समझें। ग्राहक संख्या न लिखने पर आपके पत्र का उत्तर देने तथा आज्ञा पालन में कठिनता एवं विलम्ब होता है।

ग्राहक संख्या यहां लिख लीजिये

ग्राहक-संख्या २९६३८......

रेपर पर लिखे पते को एक बार पढ़ लीजियेगा, यदि उसमें कोई भूल हो तो उसे सुधारने के लिए शीघ्र ही पत्र दीजियेगा।

निवेदक—व्यवस्थापक।

नोट—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उससे पहिला अङ्क मिला है या नहीं, यदि न मिला हो तो उसी समय पत्र लिखकर मगालें। वर्ष के अन्त में एक साथ कई अङ्क न मिलने की शिकायत करना अनुचित है, तब पूर्ति करना हमारे लिए सम्भव नहीं होगा।

प्रकाशक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़

वनौषधि-विशेषांक (द्वितीय भाग)
फरवरी-मार्च
१९६३
वार्षिक मूल्य ५.५०

मुद्रक
वैद्य देवीशरण गर्ग
धन्वन्तरि प्रेस
विजयगढ़

जीवक
महामेदा
ऋद्धि
प्रदीप
काकोली
ऋषभक
वृद्धि
भगवान श्री धन्वन्तरि
अष्टवर्ग

वनौषधि विशेषाङ्क

(द्वितीय भाग)

'क' वर्ग की सम्पूर्ण वनस्पतियों का सचित्र विस्तृत वर्णन
एवं विभिन्न रोगों पर हजारों सफल-सरल प्रयोगों
का उपयोगी संग्रह

●

विशेष सम्पादक

आयुर्वेदसूरिः श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक

वैद्य देवीशरण गर्ग आयुर्वेदोपाध्याय
ज्वालाप्रसाद अग्रवाल बी. एस्-सी.
दाऊदयाल गर्ग ए., एम. बी. एस.

फरवरी
१९६३

वार्षिक मूल्य ~~[illegible]~~
इस अङ्क का १८-५०

आवश्यक

१—इस वर्ष सभी ग्राहकों के ग्राहक नम्बर बदल गये है इस कारण सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषाक के ऊपर के रेपर को सभाल कर रखे या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर नोट करले ।

२—भविष्य मे पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र मे अवश्य लिख दिया करे ।

३—कोई भी अक मिलने पर देख लिया करे कि उससे पहिले अक मिला है या नही । न मिला हो तो पोस्ट आफिस मे तलाश करे और उनके उत्तर के साथ हमको लिखे ।

४—धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करे ।

विशेष सम्पादक

वनौषधि-विशेषाङ्क के चित्र प्रबन्धक

वैद्याचार्य डा० उदयालाल जी महात्मा *H M D. S*

रस एवं वनौषधि अन्वेषक

श्री महावीर चिकित्सालय देवगढ (राजस्थान)

प्रकाशकीय निवेदन

वनौषधि-विशेषाक प्रथम भाग प्रकाशित करते समय हमने निवेदन किया था कि यदि इस प्रथम भाग को पाठकों तथा विद्वानों द्वारा पसन्द किया गया तो इसके आगामी भाग प्रति दो वर्ष मे एक भाग के क्रम से प्रकाशित किये जायगे । प्रथम भाग को पाठकों ने अत्यधिक पसन्द किया तथा उसकी भूरि-भूरि प्रसशा की । अनेक सज्जनों ने आग्रह किया कि जब तक यह साहित्य पूर्ण न हो जाय इसी के आगामी भाग प्रति वर्ष प्रकाशित करते हुये शीघ्रातिशीघ्र इस साहित्य को प्रकाशित करना चाहिये। पाठकों से निवेदन है कि यह सम्पूर्ण साहित्य लिखा हुआ तैयार नही है । श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने वनौषधि-रत्नाकर' पुस्तक के लिये जितना लिखा था वह तो प्रथम भाग मे ही प्रकाशित कर दिया गया था तथा उससे आगे के साहित्य लेखन में श्री त्रिवेदी जी उसी समय से लगे हुये हैं। श्री त्रिवेदी जी वयोवृद्ध हैं। इसके लेखन से पूर्व आपको बहुत छान-बीन करनी पड़ती है । अस्तु एक विशेषांक मे प्रकाशित करने योग्य मैटर वे दो वर्ष के समय मे ही लिख सके हैं। कार्य की महानता एव उनकी आयु को देखते हुये जो कुछ वे परिश्रम कर रहे हैं वही महान है, इससे अधिक की अपेक्षा करना उनके साथ अन्याय ही होगा। अस्तु, वनौषधि-विशेषाक का यह द्वितीय भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमको प्रसन्नता है । आशा है प्रथम भाग के समान ही पाठक इसको भी पसन्द करेंगे ।

गत जौलाई मे प्रेसविभाग मे अग्निकांड होजाने के बाद कम्पोजिङ्ग विभाग का नव-निर्माण हुआ तथा इस बार जो नवीन टाइप आया वह पहिले से बारीक है। जो मैटर पहिले टाइप मे १। पृष्ठ मे आता था वह इस टाइप में १ पृष्ट में ही आजाता है । अस्तु प्रथम भाग से इस बार पृष्ठ संख्या कुछ कम होते हुए भी मैटर पहिले से अधिक है। चित्रों की सख्या भी प्रथम भाग से बहुत अधिक है ।

वनौषधि-विशेषाक का प्रथम भाग समाप्त होगया है । जो सज्जन इस वर्ष नवीन ग्राहक बन रहे हैं या बनेंगे, स्वाभाविक है कि वे इसके प्रथम भाग को भी प्राप्त करना चाहे। प्रथम भाग का द्वितीय सस्करण हम शीघ्र ही प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे है । लेकिन इसमे कुछ समय लगना सम्भव है । प्रथम भाग की द्वितीयावृत्ति का मूल्य १० ०० होगा लेकिन जो सज्जन १ ०० एडवास भेजकर इसके ग्राहक पहिले से ही बन जायगे उनसे इसका मूल्य केवल ५ ०० लिया जायगा। अस्तु जिनके पास प्रथम भाग नही है उनको शीघ्र ही १ ०० मनियार्डर से भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित कर लेना चाहिए मनियार्डर मिलने पर तुरन्त रसीद भेज दी जायगी ।

इस विशेषाक मे २३१ बनस्पतियो का वर्णन है तथा चित्र सख्या १७५ है। आप इसके साहित्य को पढे तथा मनन करेंगे तो आपको निश्चय ही प्रतीत होगा कि इस विशेषांक के निर्माण मे बहुत अधिक परिश्रम एव व्यय किया गया है। धन्वन्तरि गत ३६ वर्षों से आयुर्वेद के प्रचार में सलग्न है तथा यदि हम कहे कि धन्वन्तरि ने हजारो लाखो व्यक्तियो को आयुर्वेद भक्त बनाया तथा हजारों को आयुर्वेद-चिकित्सक बनाया तो उसे आप अत्युक्ति न समझें। इस आयुर्वेद प्रचारक मासिक को आपकी सहायता की आवश्यकता है। आप धन्वन्तरि की निम्न प्रकार सहायता कर सकते हैं—

१—स्थानीय चिकित्सकों को इस विशेषाक को दिखावें तथा उनको धन्वन्तरि के ग्राहक बनने के लिये उत्साहित करें। विशेषाक तथा अक देख कर ऐसा कौन वैद्य होगा जो धन्वन्तरि का ग्राहक न बने। जितने अधिक ग्राहक बढेंगे उतना ही विशाल एव सुन्दर साहित्य हम आपको धन्वन्तरि द्वारा दे सकेंगे।

२—धन्वन्तरि को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए अपने सुझाव दीजियेगा। इसमे कौन से नवीन स्तम्भ रहने चाहिये तथा किस प्रकार के लेख धन्वन्तरि मे प्रकाशित करना आपकी सम्मति मे उचित होगा।

३—अपने परिचित विद्वानो को अपने अनुभवपूर्ण लेख, सफल चिकित्साविधि तथा प्रभावशाली सरल प्रयोग भेजने के लिये प्रेरित करें।

४—यदि आपने किसी कष्ट-साध्य रोगी (जिसे अन्य पैथियो से निराश होना पडा हो) की सफलता-पूर्वक चिकित्सा की हो तो उसका चिकित्सा विवरण प्रकाशनार्थ अवश्य भेजें।

५—विद्वान एव मर्मज्ञ लेखक जो सपारिश्रमिक लेख देना चाहे वे अपने लेख भेजते समय लेख के ऊपर "सपारिश्रमिक प्रकाशनार्थ" शब्द लिख कर भेजें। उत्तम लेखो पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।

आशा है हमारे सभी ग्राहक धन्वन्तरि को अपना ही पत्र समझते हुये इसका प्रचार करने मे एव इसको अधिकाधिक आकर्षक व उपयोगी बनाने मे हमारी सहायता करेंगे।

बनौषधि विशेषाक का तृतीय भाग पूर्व घोषणानुसार वर्ष १९६५ मे प्रकाशित करने का विचार है। वर्ष १९६४ के विशेषाक के लिए कई विद्वानो से पत्र-व्यवहार किया जारहा है, सम्भवत आगामी अक मे इसकी घोषणा करदी जायगी।

इस वर्ष लघु विशेषाक 'पायरिया अङ्क' प्रकाशित किया जायगा तथा ४ विषय पुरुस्कार देने के लिये भी निश्चित किये गये हैं जिनका विवरण इसी अङ्क मे पृष्ठ ५०२ पर पढें। इस प्रकार पाठको को इस वर्ष भी अति महत्वपूर्ण साहित्य देने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। आप भी अपना सहयोग अवश्य दीजियेगा।

भवदीय—

देवीशरण गर्ग।

वनौषधि विशेषांक (द्वितीय भाग)

की

विषयानुक्रमणिका

चिकित्सा सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकें

डा० सुरेश प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित—उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

एलोपैथिक पुस्तकें—

इंजेक्शन (अष्टम संस्करण)—आज के इस वैज्ञानिक युग में सूचीवेध विज्ञान चिकित्सा-क्षेत्र में अपना प्रथम स्थान रखता है। इस पुस्तक के चार खण्डों में—सूचीवेध की आवश्यकता, सूचीवेध सम्बन्धी वैज्ञानिक तत्वों का संग्रह इत्यादि से लेकर पूतीकरण (Sterlization) तथा समस्त सुई की औषधियों का वर्णन है। ग्रन्थिस्राव (Hormons Therapy) तथा प्रस्तुत सभी चमत्कारिक एलोपैथिक औषधियों आदि, सद्यः लाभकारी इंजेक्शनों के बारे में विस्तारपूर्वक लिख दिया गया है। सुन्दर छपाई, कागज एव ५० चित्रों से परिपूर्ण। इसमें नवीन आविष्कृत सभी एलोपैथिक इंजेक्शनों का वर्णन है। मूल्य १०) सजिल्द।

एलोपैथिक चिकित्सा (पंचम संस्करण)—हिन्दी-जगत् में चिकित्सा सम्बन्धी प्रथम अनूठी पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न ८ अध्यायों में लिखी गई है। 'शरीर विज्ञान' को सक्षिप्त रूप में, प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से बड़े ही स्पष्ट शब्दों में दिया गया है। नवीनतम चमत्कारिक औषधियों से युक्त प्रस्तुत पुस्तक हर प्रकार के विषयों से परिपूर्ण एवं सागोपाग है। उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत हो चुकी है। मूल्य सजिल्द १२) केवल।

एलोपैथिक पाकेट गाइड (पंचम संस्करण)—इस पुस्तक में आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रचलित चमत्कारिक औषधियों के नुस्खे, प्रमुख रोगों के संक्षिप्त परिचय एवं निदान के अनुसार वर्णन दिया गया है। परीक्षित नुस्खे के साथ-साथ इंजेक्शन और पेटेण्ट औषधियाँ भी दी गयी हैं। मूल्य ३) मात्र।

मिक्श्चर (अष्टम संस्करण)—चिकित्सा-जगत् में जिस किसी एलोपैथिक डाक्टर ने ख्याति प्राप्त की है, तो वह अपने रामबाण की तरह अचूक चलने वाले मिक्श्चर के नुस्खें के बल पर ही। ऐसे ही एलोपैथी अचूक नुस्खों को बड़ी मिहनत और बड़े खर्च से एकत्रित कर इस पुस्तक में प्रकाशित किया गया है। १८५ रोगों पर चलने वाले ३५० अचूक नुस्खे इसमें हैं और थोड़े से थोड़े पैसों में हर एक व्यक्ति इससे लाभ उठा सकता है। मू० २॥) मात्र।

डा० शिवदयाल गुप्त ए० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—एलोपैथी आज की सर्वाधिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति है। इसकी जानकारी बिना इसके मेटेरिया मेडिका (द्रव्य-गुण विज्ञान) के अध्ययन किये नहीं हो सकती। अतः हिन्दी-भाषा में प्रस्तुत ग्रन्थ को लेखक ने लिखकर चिकित्सा-जगत् की अपूर्व सेवा की है। पुस्तक ५ खण्डों में लिखी गयी है। पाँच खण्डों में समूचा एलोपैथी विज्ञान भरा है। पृष्ठ सख्या लगभग १४००। केन्द्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत—चिकने कागज पर छपी हुई कपड़े की बाइंडिंग। मूल्य १२) मात्र।

सचित्र नेत्र-रोग विज्ञान (एलोपैथिक)—(उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत) २३ अध्यायों में नेत्र-रचना, उसकी कार्यक्षमता आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, जैसे निकट दृष्टिज्ञान, दूर दृष्टिज्ञान, वर्ण दृष्टिज्ञान आदि। इनकी परीक्षा किस प्रकार की जाती है, चित्र सहित सरल ढङ्ग से बतलाया गया है। विभिन्न सस्थानों के रोगों का नेत्र पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, उनके कारण कौन-सी बीमारी हो सकती है आदि का वर्णन है। चश्मा के लिए नेत्र परीक्षा का वर्णन भी दिया गया है। मूल्य ८) मात्र।

एलोपैथिक सफल औषधियाँ (चतुर्थ संस्करण) - आज का युग वैज्ञानिक युग है। एलोपैथिक चिकित्सा की जान कही जानेवाली सभी नयी सफल औषधियाँ (Chemotherapy)—जैसे—पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन, टेरामाइसिन, औरियोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटिन, वेसीट्रेनिन, गार्लीसिन, टायरोथ्रायसिन, मेग्नेमाइसिन, पी० ए० एस० आदि का विस्तृत वर्णन दिया गया है। मूल्य ३॥) मात्र।

धात्री-विज्ञान (Midwifery)—डाक्टर गुप्त ने धात्री विषय को अधिकृत रूप में सामने रखकर गृहस्थ समाज के जिस अभाव की पूर्ति की है, भारतीय समाज इसका ऋणी रहेगा। स्वयं पढ़िए और अपनी बहू-बेटियों को पढ़ाकर भावी पीढ़ी को सम्पूर्ण स्वस्थ्य रखिए। मूल्य २॥) मात्र।

सामान्य शल्य विज्ञान—इसमें शल्य चिकित्सा का वृहत् विवेचन है। सर्जरी सम्बन्धी सभी औजारों को भी सचित्र समझाया गया है। सैकड़ों चित्र, बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द।

मू० १२) मात्र।

मल-मूत्र रक्तादि परीक्षा (एलोपैथिक) (तृतीय संस्करण)—भूमिका लेखक—डा० शिवनाथ खन्ना एम० बी० बी० एस०। प्रस्तुत पुस्तक में बड़े ही सरल शब्दों में उपर्युक्त परीक्षाओं सम्बन्धी सभी बातों का स्पष्ट वर्णन दिया गया है। इसमें न केवल मल, मूत्र, रक्तादि की परीक्षाओं का ही वर्णन है बल्कि स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि की भी परीक्षा विधि सरल ढंग से दी गयी है। २८ चित्रों के साथ।

मूल्य ३) केवल

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—ले०—हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ बी० ए०, ए० एम० एस० प्रोफेसर—स्टेट आयुर्वेदिक कालेज लखनऊ उ० प्र०—शरीर रचना (Anatomy) विषय संसार प्रचलित सभी चिकित्सा प्रणालियों में अत्यन्त आवश्यक मौलिक विषय सदैव से माना जाता है। इसीलिए आयुर्वेद, तिब्ब (हकीमी), होमियोपैथी और एलोपैथी आदि चिकित्सा प्रणालियों के अनुयायी चिकित्सा अभ्यास में इस मूलभूत विषय का अध्ययन अवश्य करते हैं। यह सुपरिचित तथ्य है कि सर्जन (शल्यकर्ता) को तो इसकी पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। इस विषय का पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान शवच्छेद (Dissection) के बिना किये अधूरा रहता है। यही कारण है कि शवच्छेद के पूर्ण शिक्षण में २ वर्ष का लम्बा समय चिकित्साध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को लगाना पड़ता है। इससे विषय के कलेवर का अनुमान हो सकता है। चिकना ग्लेज कागज एवं सुन्दर छपाई, कपड़े की मजबूत जिल्द।

मूल्य १५ लागत मात्र।

डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय द्वारा लिखित पुस्तकें—

एलोपैथिक पेटेण्ट मेडिसिन (चतुर्थ संस्करण)—प्रस्तुत पुस्तक दो खण्डों में लिखी गई है। सभी प्रचलित कम्पनियों द्वारा निकाली गयी सभी पेटेण्ट औषधियों का वर्णन है। यदि पाठक रोगों का निदान कर लें तो उसकी चिकित्सा पुस्तक में दी गयी पेटेण्ट औषधियों द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है। अतः यह पुस्तक विशेषकर साधारण चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है।

मूल्य ४।) मात्र।

ज्वर-चिकित्सा (तृतीय संस्करण)—इस पुस्तक में ज्वरों के भेद-उपभेद उनकी अवस्थायें आदि बातों की शास्त्रीय ढङ्ग से व्याख्या की गयी है। चिकित्सा वर्णन में हर पैथियों का सहारा लिया गया है। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत।

मूल्य २) मात्र।

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा (तृतीय संस्करण)—कहने की आवश्यकता नहीं, आज ७५% एलोपैथिक चिकित्सक पेटेण्ट औषधियों के बल पर ही कठिन से कठिन चिकित्सा चला रहे हैं। विद्वान लेखक ने ऐसी ही परम उपयोगी समस्त पेटेण्ट औषधियों का संग्रह इस पुस्तक में दिया है। ऐसी अमूल्य पुस्तक का मूल्य २) मात्र।

मलेरिया और कालाजार चिकित्सा (एलोपैथिक) (द्वितीय संस्करण)—ले०—डा० रा० च० भट्टाचार्य ए० एम० एस०—इस पुस्तक में मलेरिया और कालाजार का विशद् वर्णन किया गया है। रोग का इतिहास, परिचय, रोग का सक्रमण, शारीरिक विकृति, खून का तुलनात्मक अध्ययन और खून जाँच करने की विधि तथा रोग की सामान्य चिकित्सा, लाक्षणिक चिकित्सा और विशिष्ट चिकित्सा का सविस्तार वर्णन दिया गया है। मूल्य १।।।) मात्र।

कम्पाउण्डरी-शिक्षा तथा चिकित्सा प्रवेश—पुस्तक में निम्न विषयों पर गवेषण पूर्ण प्रकाश डाला गया है—औषधि बनाने की प्रक्रिया, रोगी परिचर्या, पथ्यापथ्य विचार, सुई लगाने की विधि, सज्ञालोपक औषधियों का प्रयोग जीवाणुनाशक विधि, विषचिकित्सा, आकस्मिक दुर्घटनाओं की चिकित्सा, मलेरिया, कालाजार, सन्निपात आदि रोगों की निदान सहित चिकित्सा, मल-मूत्र, कफ और रक्त का जीवाणु विज्ञान के साथ परीक्षा, सल्फावर्ग, पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन आदि-आदि नवीन औषधियों की प्रयोगविधि। अन्त में बी० पी० औषधियों की सूची देकर पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ा दी गई है। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत—

पुस्तक की उपयोगिता के सम्बन्ध में डा० डी० एन० शर्मा M. D. (डाइरेक्टर आफ मेडिकल एण्ड हेल्थ सर्विसेज, उत्तर प्रदेश) का कहना है कि 'यह पुस्तक भैषज्य विशारदों के लिए अत्यन्त उपयोगी है'। प्रत्येक विद्यार्थी एवं चिकित्सा प्रेमी को इसकी एक प्रति अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। उत्तम कागज, आकर्षक छपाई। मूल्य ६) मात्र।

आदर्श एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—(लेखक डाक्टर रामनारायण सक्सेना वाइस प्रिन्सिपल बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झाँसी)—पाश्चात्य द्रव्य-गुण विषय की यह पुस्तक अबतक की प्रकाशित सभी पुस्तकों से उत्कृष्ट है। भाषा बहुत सरल एवं बोधगम्य है। एलोपैथिक चिकित्सा के लिए यह एक बहुत ही सहायक एवं प्रमुख पुस्तक है। मूल्य ११) मात्र।

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक—डा० एल० वी० 'गुरु' प्रोफेसर—आयुर्वेदिक कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।)—गर्भ का शिशु भला कौन-सी कहानी कहेगा ? आश्चर्य न कीजिए। इस विज्ञान को समझिये, इसके अनुसार दिनचर्या बनाइये और सबल सुपुष्ट शिशु को जन्म दीजिये—यही गर्भस्थ शिशु कहता है। ऐसी अमूल्य पुस्तक का मूल्य २) मात्र।

व्रणशोथ विमर्श—(ले०-डा० अवधविहारी अग्निहोत्री, ए० एम० एस० (का हि. वि. वि.)—Inflammation के कारण, उत्पत्तिक्रम, लक्षण, निदान, सापेक्ष्य निदान (Differential Diagnosis), व्रणशोथ ग्रस्त रोगी की परीक्षाविधि, सामान्य चिकित्सा, विशिष्ट चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य आदि का आयुर्वेदिक तथा पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली (एलोपैथी) के मतानुसार विशद् रूप में तथा भली प्रकार समझाकर लिखा गया है। मूल्य ३) मात्र।

बाल रोग चिकित्सा—ले० डा० रमानाथ द्विवेदी एम० ए०, ए० एम० एस० आयुर्वेद बृहस्पति—बच्चों के समस्त रोगों का इलाज बडे ही सुगम ढंग से एलोपैथिक एव आयुर्वेदिक ढंग से बताया गया है। मू० ५) मात्र।

डा० प्रिय कुमार चौबे बी० ए०, ए० बी० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

१—नासा, गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा—कान, नाक एवं गले में होने वाले सभी रोगों का बृहद् वर्णन एवं उनकी चिकित्सा एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक ढंग से बतायी गई है। मू० ३-५० न० पै०।

२—संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—आकस्मिक संकटकालीन अवस्था में तात्कालिक उपचार बताया गया है। तथा कोई दुर्घटना से चोट, मोच, कटना, फटना, रक्त बहना, जल जाना, हड्डी टूटना, मूर्छित हो जाना, स्तब्धता, वमन, शूल आदि अवस्थाओं की तात्कालिक उपचार विधि दी गई है। इसके अतिरिक्त विष चिकित्सा तथा घायल रोगी को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की विधि सचित्र बतायी गई है। पुस्तक चिकित्सक तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी, पठनीय तथा संग्रहणीय है। मू० केवल ४-७५ न० पै०।

३—चर्म रोग चिकित्सा—प्रस्तुत पुस्तक एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक मतानुसार बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। समस्त चर्म रोगों के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा दी गई है। मू० २) मात्र।

४—विटामिन्स—वानस्पतिक खाद्य पदार्थों में पाये जाने वाले समस्त जीवनीय द्रव्यों का वर्गीकरण तथा बृहद् वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध कम्पनियों द्वारा प्रस्तुत विटामिन्स का औषधि रूप में योगों का पूर्ण विवेचन है। मू० १-७५।

५—मासिक धर्म एव गर्भपात—प्रस्तुत पुस्तक में स्त्रियों में होने वाले समस्त मासिकगत विकारों के कारण एवं उसके निवारण करने की विधि एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक मतानुसार लिखी गई है। साथ ही गर्भपात के मूल कारणों एवं उपायों का भी वर्णन है। मू० १)

६—जननेन्द्रिय रोग चिकित्सा—पुरुषों एवं स्त्रियों के गुप्त रोगों की चिकित्सा बतायी गई है। मूल्य १)

७—सल्फोनामाइड और एण्टीबायोटिक्स—आधुनिक चिकित्सा के अन्तर्गत समस्त चमत्कारिक तथा जीवाणुघ्न औषधियों का प्रस्तुत पुस्तक में पूर्ण वर्णन है। मूल्य २॥)

डा० सुरेश प्रसाद शर्मा, प्रिंसिपल द्वारा लिखित—

होमियोपैथिक पुस्तकें—

होमियो कम्परेटिव प्रिंस मेटेरिया मेडिका (तृतीय संस्करण)—तुलनात्मक विवेचन, फार्माकोपिया आदि के साथ हिन्दी में यह सर्वश्रेष्ठ मेटेरिया मेडिका है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत। मूल्य ६) मात्र।

होमियो पारिवारिक चिकित्सा (तृतीय संस्करण)—हरेक रोगों के बारे में विशद् ज्ञान देकर, कारण, निदान, लक्षण के साथ चिकित्सा बतायी गयी है। पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है। मूल्य ६) मात्र।

स्त्री-रोग चिकित्सा (सचित्र)—(तृतीय संस्करण)—स्त्री-रोग पर ऐसी वृहद् पुस्तक पहली है। एक खण्ड में अवयव वर्णन, दूसरे में उसके होने वाले रोगों का सकारण वर्णन और तीसरे में तुलनात्मक चिकित्सा है। गृहिणी की चिकित्सा स्वयं कर लें। मूल्य ४॥) मात्र।

आर्गेनन (तृतीय संस्करण)—महात्मा हैनिमन कृत आर्गेनन का सादर अनुवाद और साथ में अनुभव पूर्ण व्याख्या। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत। मूल्य ५) मात्र।

बायोकेमिक चिकित्सा (तृतीय संस्करण)—टीशू रेमिडीज की कुल १२ औषधियों का पूरा वर्णन और उससे चिकित्सा। उ० प्र० सरकार से पुरस्कृत। मूल्य ४) मात्र।

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका (द्वितीय संस्करण)—प्रारम्भिक चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिए परम उपयोगी। साथ में रोग चिकित्सा भी। मूल्य ३॥) मात्र।

रोगी की सेवा और पथ्य (सचित्र)—हरेक घर में तीमारदारी का ज्ञान रखना आवश्यक है। साथ में आहार गुण, पट्टी बाँधना (फर्स्ट एड), किसको कितने आहार की आवश्यकता है, टेबुल देकर समझाया गया है। मूल्य ३) मात्र।

होमियो गृह चिकित्सा—२॥)। भेषजसार—२)। होमियो इंजेक्शन चिकित्सा—हिन्दी में पहली पुस्तक, तृतीय संस्करण—१॥)। भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेण्ट मेडिसिन (तृतीय संस्करण)—मू० १॥)। होमियो पाकेट गाइड (पञ्चम संस्करण)—मू० १)। बायोकेमिक पाकेट गाइड (पञ्चम संस्करण)—मू० १)। होमियो गीतावली—२)। बायोकेमिक रहस्य—१॥)। होमियो टायफायड चिकित्सा - मू० ॥)। होमियो थाइसिस चिकित्सा—मू० ॥)। होमियो न्यूमोनिया चिकित्सा—मू० ॥)। एनीमा और कैथेटर (द्वितीय संस्करण)—।=)। थर्मामीटर—मू० ।)। रोग लक्षण संग्रह—=)। पुरानी बीमारियाँ—मू० ४॥)। बाह्य प्रयोग की औषधियाँ—मू० १)। वात, गठिया तथा लकवा रोग चिकित्सा—१)। नेश रिजनल लीडर्स—मू० २॥)। बायोकेमिक रेपर्टरी—मू० ८)।

नीम-चिकित्सा-विधान—मू० ॥=) मात्र। तुलसी चिकित्सा विधान मू०—।=) मात्र। आयुर्वेदिक घरेलू चिकित्सा—मू० १।) मात्र। बबूल चिकित्सा विधान—मू० ।=) मात्र। मधु चिकित्सा विधान—मू० ॥) मात्र। कब्ज या कोष्ठबद्धता—मू० ॥) मात्र। प्राकृतिक-शिशु-चिकित्सा—मूल्य २) मात्र। मवेशियों की घरेलू चिकित्सा—मू० ॥)। सुलभ देहाती नुस्खे—मू० १।) मात्र। जल चिकित्सा—॥) मात्र।

आयुर्वेद विज्ञान—मू० ३॥) मात्र। नाड़ी रहस्य—मू० ॥) मात्र। वृक्ष-विज्ञान चिकित्सा—मू० २।) मात्र। आरोग्य विज्ञान—मू० २) मात्र।

छप रही हैं।

१—डा० बोरिक की होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका
२—एनाटोमी एण्ड फिजियोलाजी—
३—आधुनिक चिकित्सा
४—रोगी परीक्षा

प्राप्ति स्थान

धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़, अलीगढ़।
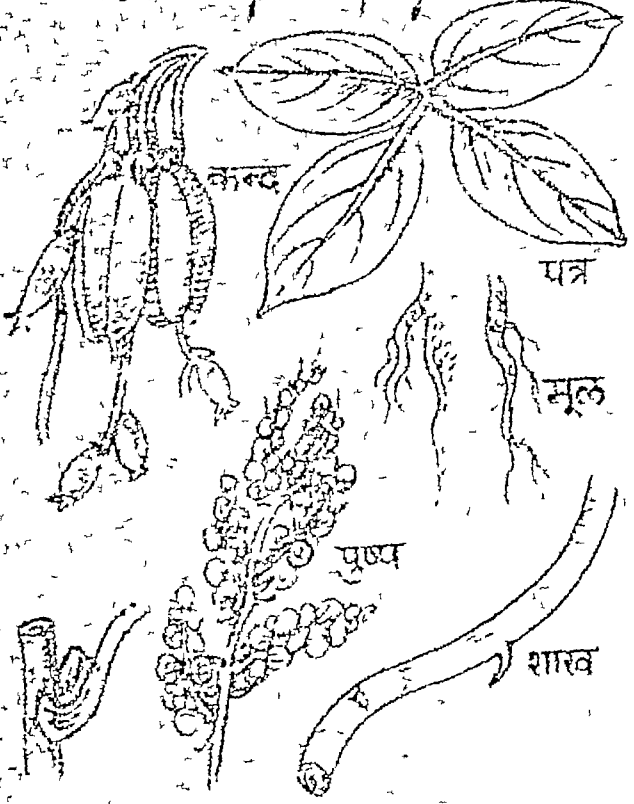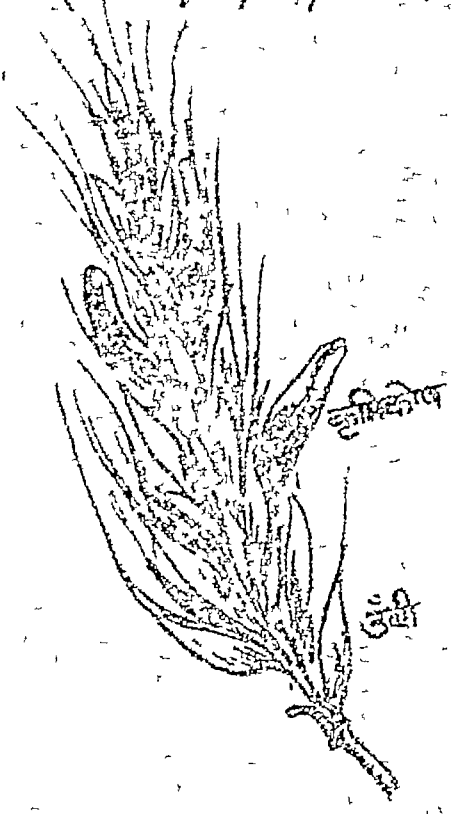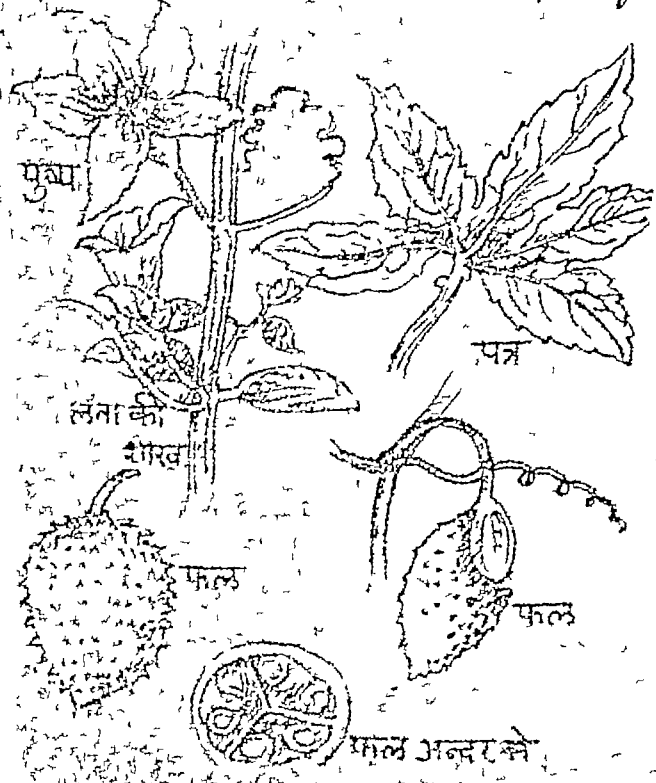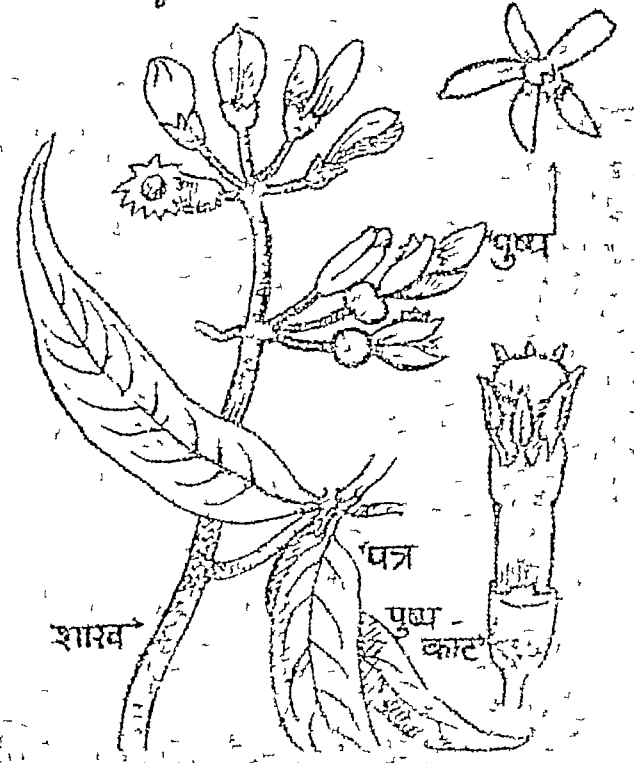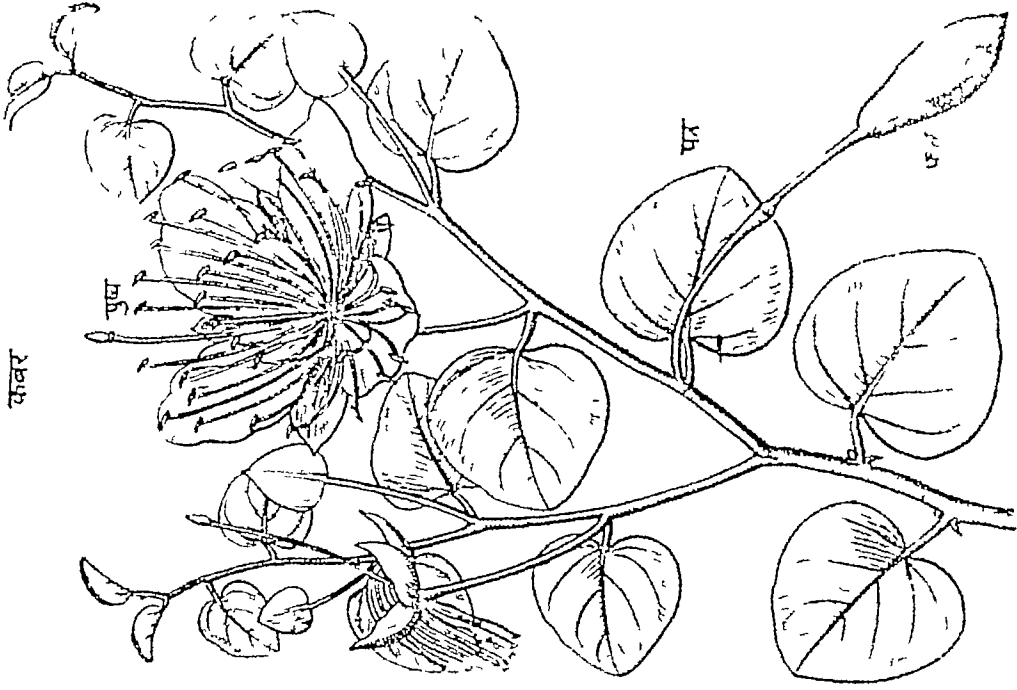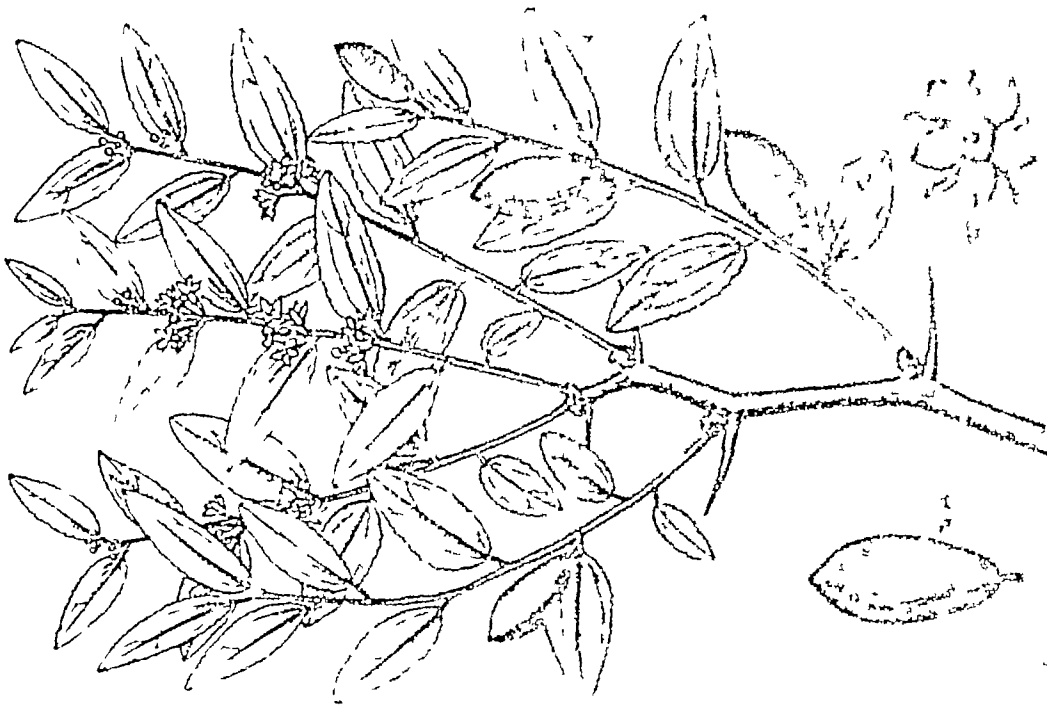
धत्तेभरं कुसुमपत्र फलावलीनां धर्मव्यथां वहति शीतभयां रुजं च ।
यो देहमर्पयति चान्य मुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमस्ते ॥
—भवभूति

भाग ३७
अङ्क २

वनौषधि विशेषांक

फरवरी
१९६३

वनौषधि-प्रार्थना

या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणी ।
बृहस्पतिप्रसूता स्तानो मु चन्त्वंहस ॥
—यजु १२ । ८९

बृहस्पति द्वारा आविर्भूत फलयुता अथवा फल रहिता पुष्पो सहित अथवा पुष्पो रहित जो औषधियां हैं वे हमारे रोगजनित दुःखा को दूर करें ।

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्याद्युत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद् देवकिल्विषात् ॥
—यजु १२ । ९०

वे औषधिया मुझको शपथ सम्बन्धी दोष सज्जन निन्दक-दोष, यमराज के आतक के भय तथा देवताओ के प्रति किये हुए सम्पूर्ण अपराधो से छुडावे ।

अवपतन्तीरवदन्दिव औषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुष ॥
—यजु १२ । ९१

[दिव] स्वर्ग से [अवपतन्ती] उतरती हुई [ओषधय] औषधिया [परि] मिलकर [अवदन्] बोली [य] जिस [जीवम्] जीवको [अश्नवामहै] हम प्राप्त होवें [स] वह [न] नही [रिष्याति] दुःखी होगा ।

निवेदन

"वनौषधि-रत्नाकर" जो अब विशेषाक के रूप में प्रकाशित हो रहा है उसका यह द्वितीय खण्ड है। इसके प्रथम खण्ड मे 'अ से औ' तक की प्रमुख वनौषधियो का सचित्र वर्णन विभिन्न रोगो पर उनके प्रयोगात्मक विवरण सहित ग्राहक, अनुग्राहक, सहृदय विद्वान, अभिभावक एव समालोचको के सम्मुख आ चुका है तथा उस पर विद्वानो के मुक्तकण्ठ से दिये हुए समालोचनात्मक प्रशसापत्रो का प्रकाशन यथा समय धन्वन्तरि के गताङ्को मे हो चुका है। लेखक उन सबका आभारी और कृतज्ञ हैं।

इस ग्रन्थ की रूप रेखा आदि का विवरण विस्तारपूर्वक प्रथम खण्ड के प्राक्कथन मे दिया जा चुका है। अत उसका पुन पिष्टपेषण अनुपयोगी एव अनावश्यक होने से हम इस खण्ड के विषय मे इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि इसमे 'क' वर्ग की यथा प्राप्त प्राय सर्व प्रमुख वनौषधियो का विवरण अनति-विस्तार रूप मे किया गया है। वनौषधि के विषय मे महत्त्वपूर्ण और उपादेय बातों का जितना उल्लेख होना चाहिए उतना ही और वह भी सक्षेप मे ही किया गया है। कारण अधिक विस्तार कर व्यर्थ ही ग्रंथ के कलेवर को वढाना हमे तथा पाठको को और प्रकाशको को अभीष्ट नही है।

इस खण्ड की तथा आगे के खण्डो की रचना मे हमें "द्रव्यगुण विज्ञान" (लेखक श्रीयुत प्रियव्रत शर्मा एम ए, ए एम एस. आयुर्वेदाचार्य प्राध्यापक आयुर्वेदिक कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी) से बहुत सहायता मिली है। एतदर्थ हम लेखक महानुभाव के हृदय से आभारी हैं। तथा वैद्याचार्य श्री उदयलाल जा महात्मा वनौषधि अन्वेषक, श्री शेख फय्याज खा विशारद आयुर्वेद शास्त्री और तैसे ही जिन जिन कृपालु महानुभावो ने हमे वनौषधि के अनुभवात्मक प्रयोगो से उपकृत किया है उन सबके हम विशेष आभारी हैं।

इस खण्ड मे आयी हुई वनौषधियो के लेटिन और अग्रेजी नामो की सूची इसमे यथा स्थान दी जा रही है। हमे खेद है कि प्रथम खण्ड की यह सूची स्थानाभाव से नही दी जा सकी। अब द्वितीय सस्करण मे उसे देने का प्रयत्न किया जायगा।

अन्त मे विनम्र निवेदन है कि त्रुटिया होना स्वाभाविक होने से स्नेही विद्वजन उन्हे परिमार्जित कर सूचित करने की कृपा करेंगे, जिससे उनका सशोधन भावी सस्करण मे कर लिया जावेगा।

"द्रव्याणा गुण रूप कर्म कथन स्वल्प यदा दुष्करम्, यथार्थ्येन तु सर्वतो विवरणं तेषा कुतः संभवम्। यद यत्न क्रियते ययाऽत्र विदुषामग्रे पर लीलया, तद्दोषानवलोकन प्रमुदित स्वान्तान्तराशावशात्॥"—द्र. गु वि.

विनम्र निवेदक

—कृष्णप्रसाद त्रिवेदी

ककड़ी [Cucumis-Utilissimus]

यह आयुर्वेदानुसार शाकवर्ग की तथा आधुनिक निघण्टु के अनुसार कर्कोटकी या कर्कटी वर्ग [1] (Cucurbitacae) की एक प्रमुख वनस्पति है।

ककडी कई प्रकार की होती हैं। ये सब प्रकार वास्तव मे खीरा (त्रपुष) या कर्कटी वर्ग के उद्भिद विशेष हैं। ये सब एक दूसरे से गुणादि मे भिन्न हैं। प्रस्तुत प्रसंग में जिस ककडी का वर्णन किया जाता है, उसे देशी भाषा मे डगरी या डागरी ककडी या जेठुई ककडी कहते हैं। सस्कृत[2] मे 'एर्वारु' या 'उर्वारु' इसे ही कहते है। इसका भेद मीठी ककडी या खीरा ककडी है, जिसके विषय मे कहा गया है कि-'एवारुक मधुर कर्कटी'। इसे 'खीरा' के प्रकरण मे देखिये। फूट ककडी इसका ही एक दूसरा भेद है। इसे 'फूट' के प्रकरण मे देखिये।

यह डगरी ककडी प्राय खरबूजे के समान होने मे किसी किसी ने इसका भी अंग्रेजी नाम Cucumis Melo अर्थात् खरबूजा रख दिया है। किंतु खरबूजा इससे भिन्न है। आगे 'खरबूजा' का प्रकरण देखिये। ककडी (डगरी), खीरा और खरबूजा इन तीनो के बीज यद्यपि देखने मे एक समान दिखाई देते हैं, तथापि भेद यह है कि ककडी के बीज, खीरा बीज की अपेक्षा अधिक श्वेत, वजन मे भारी और उत्कृष्ट होते है। ककड़ी बीज खरबूजे के बीजो की अपेक्षा अधिक चौड़े

---

[1] इस वर्ग की वनस्पतियां ऊपर की ओर चढ़ने वाली या इतस्तत: फैलने वाली छोटी या बडी निर्गन्ध लता रूप में होती हैं, जो प्रायः वर्षायु होती हैं। कुछ बहुवर्षायु भी होती हैं। इनमें से कुछ लतायें विष जैसी अत्यन्त कडुवी तथा कुछ निर्विषैली एवं मधुर होती हैं।

वर्षायु लता की जड़ छोटी होती हैं और बहुवर्षायु की जड़ें कुछ लम्बी, गांठदार एवं कन्दयुक्त होती हैं। मधुर या निर्विषैली लताओं (ककड़ी, खीरा, खरबूजा आदि) के फलों में शक्कर का अंश होता है, तथा विषैली लताओं के फल अत्यन्त कडुवे व जड़ों में पिष्टमय अंश होता है (इंद्रायण, जंगली तुरई, कड़वी नाय आदि)।

इन लताओं में से तागे जैसे तंतु निकलते हैं। पत्रो अंतर से निकलते हैं, वे डंठल के पास प्रायः हृदयाकृति, किनारे कोरदार, विभक्तदल एवं खुरदरे होते हैं। फूल-पत्र कोन से प्रायः पीले या श्वेत वर्ण के निकलते हैं। नर और मादा फूल प्रायः एक ही लता पर भिन्न भिन्न आते, अथवा एक बेल पर नर फूल गुच्छाकार, व दूसरी बेल पर गुच्छा रहित अकेला मादाफूल लगता है। पुष्पपात्र घंटाकृति, पांच धारी वाला, बीज कोष-सयुक्त होता है। फल-गूदेदार, त्यधिक जलयुक्त होता है। फल में बीज भी अत्यधिक ोते हैं, जो प्राय चिपटे, चिकने और तैलयुक्त होते हैं।

इस वर्ग की वनस्पतियां—चिरगुणकारी, पौष्टिक, ाचक, वायुहर, उपलेपक, मूत्रल, रेचक, वामक, तथ ा वर, कृमि, शोथ आदि नाशक गुणों से युक्त होती हैं।

—लेखक।

[2] डंगरी डांगरी चैव दीर्घोर्वारुश्च डांगरी:। डांगरी गागरुण्डी च गजदंतफला मुनि:। इत्यादि-निघण्टुरत्नाकरे।

(उत्तरी पश्चिमी सूबा), पजाव, वम्बई, खानदेश आदि स्थानो की रेतीली भूमि तथा नदियो के किनारे यह खूब बोई जाती है और विपुलता से होती है ।

विवरण—

यह प्राय फागुन या चैत मास मे बोई जाती है । इसकी बेल खीरा ककडी की बेल जैसी ही खूब लम्बी फैलती है । पत्ते पचकोणाकार कगूरेदार खीरे के पत्तो से कुछ छोटे और चिकने होते हैं । फूल पीले रग का होता है । फल—यह वैशाख या जेठ मास मे फलती है । इसीलिये यह जेठुई ककडी कहलाती है । दक्षिण मे इसे ही वालुक कहते हैं । इसके फल खीरे की अपेक्षा लम्बे, मोटे, गोलाकार, कुछ मुडे हुये, लगभग १ या १॥ हाथ तक लम्बे होते हैं । फलो पर लम्बाई के रुख उभरी हुई रेखायें होती हैं । स्थल विशेष के कारण कही कही इसकी खूब लम्बी और कही कही छोटी ककडिया देखने मे आती हैं । कच्ची छोटी अवस्था मे ये ककडिया खूब नरम, हरे रग की तथा रोयेदार होती हैं । वढने या वडी होने पर ये कुछ पाडु वर्ण (श्वेत और पीली) की हो जाती है । तथा पक जाने पर विशेष लालिमायुक्त पीली पड जाती है । कच्ची अवस्था मे ही अधिकतर यह खायी जाती है, तथा इसका साग वनाया जाता है । यह ककडी वर्षा ऋतु मे भी होती है किन्तु उक्त ग्रीष्म ऋतु की श्रेष्ठ गुणदायक होती है । वर्षा व शरद ऋतु की रोगकारक मानी जाती है । कहा है "सर्वा कर्कटिका वर्षा शरदि जाता न हिता ।" (नि० रत्नाकर) ग्रीष्म और हेमत मे होने वाली ककडी विशेष रुचिकारक, पित्त-नाशक और हितकारी होती है ।

इसी ककडी का एक भेद वालुक या क्षेत्र कर्कटी है । यह ऊपर से थोडी वालुकायुक्त होती है, अत 'वालुक' कहाती है । इसकी बेल मे बहुत फल लगते हैं, अत 'बहुफला', प्राय शरदकाल मे फलती है, अत 'शारदिका' तथा प्राय खेतो मे होने से क्षेत्ररुहा, क्षेत्र-कर्कटी आदि कहाती है ।

ककडी शीत गुण प्रधान होने से इसके अधिक सेवन से शरीर मे कफ वात के विकार पैदा हो जाते हैं । इसके ऊपर का छिलका छीलकर अन्दर के गूदे के टुकडे कर काली मिर्च व नमक का चूर्ण मिला खूब मसल डालने पर जो जल निकले उसे दूर कर दें, और फिर उन टुकडो को खाने मे कोई हानि नही होती । ककडी के अन्दर से जो जल निकलता है उसे गूथे हुए गेहू के आटे मे मिला देने से आटे की चिकनाहट (स्निग्धता) दूर हो जाती है, वह रूक्ष हो जाता है ।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

ककड़ी—शीतल, रुचिकारक, मूत्रल, तृप्तिकारक, तथा मूत्रावरोध, दाह, पित्त, रक्त विकार, तृषा, शोष, जडता, वमन, श्रम आदि नाशक है । मधुमेह मे लाभ-कारी है ।

कच्ची कोमल ककडी—मधुर, शीतकर, हलकी, रुचिकारक, तृप्तिकर, मूत्रल, पुष्टिदायक, वीर्यस्तम्भक, तथा पित्त प्रकोप, दाह, भ्रांति, मूत्रावरोध, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, वमन, श्रम, रक्तपित्त, रक्तविकार आदि नाशक है । यकृत को शांतिकर है । अत्यन्त मूत्रल होते हुये भी जीर्ण ज्वर को उभार करने वाली वायु तथा गुल्म को उत्पन्न करती है । अधिक सेवन करने से यह भारी, अजीर्णकारक, वात ज्वर कारक और कफ कारक होती है ।

बालुक कच्ची—शीतल, मधुर, भारी, आध्मान-कारक, हृद्य, रुचिप्रद, खासी और पीनस को पैदा करने वाली तथा श्रम और पित्तनाशक है ।

पकी ककड़ी—बेल की पकी हुई—मधुर, कच्ची की अपेक्षा कुछ उष्ण, कफनाशक, अग्निवर्धक, पाचक, रक्तदोषकारक, पित्तकारक होते हुए भी प्यास और दाह निवारक, तथा वमन श्रमक्लाति को दूर करती है । घर मे रखने से पकी हुई ककडी मे उक्त गुणो के साथ ही साथ कफ और वातनाशक विशेष गुण पाये जाते हैं ।

वालुक पकी—हलकी, अग्निकृत, भेदी और रक्त-पित्तनाशक होती है ।

अधपकी ककडी—खासी और पीनस को उत्पन्न करती है ।

ककड़ी का छिलका—कडुवा, कफपित्तनाशक पाचक और अग्नि प्रदीपक होता है ।

केवल ककडी को छीलकर खिलाने से या ककडी को पीसकर उसमे प्याज का रस मिला सेवन कराने से मदात्यय (शराब का नशा) मे, ककडी के रस मे नीबू रस तथा थोडा जीरा व मिश्री मिलाने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह मे, ककडी के छोटे छोटे टुकडे कर शक्कर मिला सेवन करने से मूत्रदाह व मूत्ररोध मे, ककडी को पीसकर गरम कर बांधने से जानुशोथ व गृध्रसी मे तथा पकी हुई जूनी ककडी के रस मे विडलोन व सेंधानमक मिला नस्य देने से गलगंड मे लाभ होता है। ककडी को खिलाकर ऊपर से खट्टा छाछ पिला अग्नि का सर्वाङ्ग बफारा देकर स्वेदन कर्म करने से जीर्ण शीतज्वर का नाश होता है, किंतु यह गावठी इलाज है। अनुकरणीय नहीं है।

ककडी के बीज—मधुर, पुष्टिप्रद, शीतल तथा दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर आदि नाशक है। बीजो से निकाला हुआ तैल गुण मे बहेडे के तैल के समान होता है। यही गुण फूट ककडी के बीजो का है। यह तैल वातपित्त नाशक, बालो के लिये हितकारी, कफकारक, भारी और शीतल होता है।

बीजो को अच्छी तरह पीस कर दाख या किसमिस के क्वाथ मे मिला सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग मे, बीजो को मुलैठी और दारुहल्दी समभाग चूर्ण के साथ पीसकर चावलो के धोवन के साथ सेवन से पित्तज-मूत्रकृच्छ्र मे, बीजो को पीस क्वाथ सिद्धकर सेवन से जीर्ण विषम ज्वर मे, बीजो के साथ जीरा और शक्कर मिला सेवन से श्वेतप्रदर मे और इसी प्रयोग मे कमल की पखुडिया मिला सेवन करने से रक्त प्रदर मे लाभ होता है। बीजो की खीर (यवागू) बनाकर पीने से मूत्र नलिका का दाह (जलन) दूर होकर मूत्रेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय के रोग नष्ट होते हैं, पुष्टि प्राप्त होती है। गर्मी के दिनो मे ककडी के बीज ठडाई मे घोट कर पिये जाते हैं। ये कातिप्रद, रुधिर की दाह तथा तृष्णा को शमनकर्त्ता, प्रकृति को प्रसन्न करने वाले हैं। बीजो का लेप मुख की मलीनता को दूर करता है। ये बीज मसाने की पथरी के लिए विशेष लाभकारी होते हैं। बीजो के साथ जीरे को पीसकर मिश्री मिला जल में छानकर पीने से मूत्राघात मे विशेष लाभ आ गया है।

नोट—ककडी भी गर्म नमक मिर्च के साथ खाई जाती है, इसका साग भी उत्तम होता है तथा इसके छोटे छोटे टुकडे कर मिरच में छोंककर नमक मिलाकर खाया जाता है। कद्दूकस से कसकर दही या छाछ में मिला उसमें हींग और राई का छौंक देकर जो रायता बनता है वह भी उत्तम रुचिकारक, जठराग्निवर्धक होता है।

कड़ुवी ककड़ी—रस और पाक में कटु है, भेदक, वमनकारक तथा मूत्रकृच्छ्र, आध्मान और अर्शांश नाशक है।

चीना ककडी—शीतल, मधुर रुचिकारक, भारी कफवातकारक, तृप्तिकारक, रूक्ष तथा पित्त रोग, दाह और शोथनाशक है।

अरण्य (जङ्गली) ककडी—उष्ण, तिक्त, भेदक, पाक मे कटु तथा कफ, कृमि, पित्त, कण्डू (खुजली) और ज्वरनाशक है।

यूनानी मतानुसार—

कद्दू या खीरा की अपेक्षा ककडी अत्यधिक जलीयांश युक्त होने से दूसरे दर्जे मे या दूसरे दर्जे के अन्त मे सर्द और तर है। प्यास को बुझाती है, पित्त या रक्त-प्रकोपजन्य उग्रता, दाह तथा यकृत की गर्मी को शांत करती है। मूत्रल और भूख को बढाती है, पित्तविकार को नष्ट करती है। यह शीघ्र पचती है, किंतु दोषो को शीघ्र प्रकुपित भी कर देती है। इसमे पौष्टिक या धातुपरिवर्तक शक्ति खरबूजे से कम होती है, किंतु वस्ति (मूत्राशय) के लिये यह बहुत ही अनुकूल है। अत्यधिक सेवन से यह ज्वर पैदा करती है। इसे खूब चाबकर खाना चाहिए जिससे यह आमाशय में विकृत न हो सके। अन्यथा यह अत्यन्त दूषित प्रकार के रोग पैदा कर देती है। कहा जाता है कि यदि यह दूध पीने वाले छोटे बालक के बिछौने पर रख दी जाय तो यह उसके ज्वर को खीच लेती है और स्वय अत्यन्त कोमल (मुलायम) हो जाती है।

जिस ककडी मे कुछ खटास (अम्लता) हो, वह अत्यधिक सर्द व तर होती है। यह अपने सर्द (शीतल) गुण से पित्त या गरमी को दूर करती है। विशेषत. खटासयुक्त परिपक्व ककडी मे यह गुण अधिक पाया जाता है। पित्त की शाति के साथ ही साथ यह अन्यान्य विकारो को खड़े कर देती है। रक्त मे जलीयाश की वृद्धि

एवं वायु को उत्पन्न कर कूल्हों में और पेट मे शूल (कुलज) तथा चिरस्थायी ज्वर आदि पैदा करती है।

कच्ची ककडी अपने सुगन्धयुक्त शीतल गुणो से गरमी की मूर्च्छा को (केवल सु घाने मात्र से) दूर करती है, प्यास को दूर करती है तथा रक्तप्रकोप, आमाशय और यकृत की हरारत (ऊष्मा) दाह व पित्तप्रकोप को शमन करती है। वस्ति और गुर्दो की पथरी को निकालती है, इस कार्य के लिये कड़वी ककडी विशेष गुणकारी होती है।

हानिकर्ता—ककडी शीतल प्रकृति को हानिकारक है, आमाशय मे शीघ्र विकृत होकर अफरा, अजीर्ण और कुलज (उदरशूल) पैदा करती है। दर्पघ्न द्रव्यों के बिना इसका अत्यधिक सेवन करते रहने से यह ऐसे ज्वर पैदा कर देती है, जो बड़ी मुश्किल से छूटता है।

दर्पघ्न—शीतप्रकृति का व्यक्ति यदि ककडी का सेवन करे तो साथ मे नमक, कालीमिर्च, अजवायन, मुनक्का और सौंफ लेवे। उष्ण प्रकृति का व्यक्ति इसके साथ थोड़ा सौंफ और सिकंजबीन ले लिया करे तो उसे और भी लाभ हो।

प्रतिनिधि—ककड़ी के अभाव मे खीरा या लम्बा कद्दू (लौकी) ले सकते है।

ककड़ी के बीज—पहले दर्जे मे सर्द और तर है, कुछ लोग इसे दूसरे दर्जे में सर्द व तर मानते हैं। ये मूत्रल होते हुए भी किंचित दस्तावर है, यह इनमे विशेषता है। ये स्रोतसो को खोलने वाले, कांति को बढाने वाले, रक्त के जोश, पित्तप्रकोप व प्यास को बुझाने वाले हैं। आमाशय, प्लीहा और यकृत मे अत्यधिक गरमी से सूजन आदि विकार हो गये हो तो इनका सेवन लाभदायक होता है। ये फेफड़ो को शुद्ध करते हुए तदन्तर्गत् वेदनायुक्त क्षतो को लाभ पहुँचाते हैं। पित्त की खासी को दूर करते हैं। पित्त या गरमी के ज्वरो मे ये उष्णता को मूत्र द्वारा निकाल बाहर कर लाभ पहुँचाते है। मूत्र की दाह और जलन को दूर करते हैं। इनका क्वाथ या फाट रूप मे सेवन विशेष लाभकारी होता है। हलुवा कुछ कब्जी करता है। ये खीरे के बीजो की अपेक्षा अधिक पुष्टि और उत्साहवर्द्धक है, किंतु खरबूजो के बीजो की अपेक्षा इनमे यह शक्ति कम दर्जे की पाई जाती है। अत विशेष लाभ के लिए इन्हे खरबूजा या खीरा के बीजो के साथ सेवन किया जाता है। इनके बीजो की सेंकी हुई मीगियो का चूर्ण अत्यन्त मूत्रल होता है।

बीज लगभग ७॥ माशे तक पानी मे पीस छान कर पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर मूत्ररोध मे तथा बीजो के साथ जवाखार मिला पीस-छानकर सेवन से मूत्र की जलन, मधुमेह और पथरी मे लाभ होता है। बीजो की मिगी को शक्कर मे पागकर सेवन करने से शरीर पुष्ट और बलवान होता है। बीजो की मिगी को पीसकर प्रलेप करते रहने से त्वचा मुलायम होकर चेहरा निखर उठता है, मिगियो का तैल जलाने और खाने के काम मे आता है।

हानिकर्त्ता—बीजो का विशेष सेवन प्लीहा तथा प्रतिश्याय के रोगी को हानिकर होता है। दर्पघ्न सिकंजबीन अथवा शहद वा मकोय इसके हानि निवारक है। इनके अभाव मे खीरा के बीज प्रतिनिधि रूप मे लिए जाते हैं। मात्रा—६ माशे से ९ माशे तक, कोई-कोई इसकी मात्रा १७॥ माशे से १ तोले तक लेते हैं।

बीजों का छिलका—दीर्घपाकी, वायु, उदरशूल और वमनकारक होता है।

ककड़ी की जड़—वमनकारी है। इसे पीसकर शहद और जल के मिश्रण के साथ लेने से वमन होते है।

ककड़ी के पत्ते—पागल कुत्ते के काटे हुए को (जलसत्रास रोगी को) तथा कफजन्य अर्बुद और उदर्द पीड़ित रोगी को लाभकारी है। इसके ताजे पत्तो को पीसकर शहद मिला, कफज उदर्द में पित्तियो पर मर्दन करने से लाभ होता है। इसकी शुष्क पत्तिया पित्तज अतिसार मे लाभ पहुँचाती है।

आधुनिक मतानुसार—

ककड़ी मे प्रतिशत ९६ ४ पानी, ०.३ खनिज पदार्थ, ०.४ प्रोटीन, ०.१ वसा, २.८ कार्बोहायड्रेट, ० ०१ कैलशियम, ० ०३ फासफोरस, तथा लौह प्रति सौ ग्राम १.५ मिलीग्राम, विटामिन बी प्रति सौ ग्राम ३० ६ यू, विटामिन सी प्रति सौ ग्राम ७ मिलीग्राम, और विटामिन ए नाम मात्र को रहता है। [हेल्थ बुलेटिन न २३]

ककडी शीतल, पाचक और मूत्रजनन है। गेहूँ, ज्वार, मक्का, अरहर, उडद, मूग आदि मांसल (गरिष्ठ) अन्न खाने से होने वाले अजीर्ण मे ककडी खाने से लाभ होता है। कुपचन [अजीर्ण] रोग के मुख्य ३ प्रकार हैं—प्रथम प्रकार मे [आमाशय के पाचक रस की उत्पत्ति कम या न होने से] मासल [भारी] भोजन का पाचन नही होता। दूसरे प्रकार मे [पाचक रस मे तीव्रता और अम्लता की वृद्धि होने से] चावल नही पचता, तथा तीसरे प्रकार मे [यकृत् के पित्त का स्राव कम होने से] घृत, तैल आदि स्निग्ध पदार्थो का पचन नही होता। इनमे से प्रथम प्रकार के अपचन मे ककडी हितकर है। भोजन के साथ या भोजन के वाद ककडी खिलाई जाती है। ककडी और प्याज के रस के सेवन से शराव का नशा दूर होता है।

ककडी के वीज शीतल, मूत्रजनन और वल्य हैं। अजीर्ण से वमन होते हो, तो वीजो को छाछ मे पीसकर पिलाते हैं। जनन और मूत्रेन्द्रियो के रोगो मे वीजो का यूप वनाकर देने से मूत्र की जलन मिटती है। ऐसी दशा मे ककडी, कद्दू, खरवूज और तरवूज के वीजो के मिश्रण का यूप सिद्ध कर अधिकतर दिया जाता है। श्वेतप्रदर मे ककडी के वीजो के साथ कमल के वीज, जीरा और मिश्री का सेवन कराते है। रक्तप्रदर हो तो उक्त प्रयोग मे कमल पुष्प की पखुडिया मिलाते हैं।

ककडी के पत्तो की भस्म—श्लेष्म निस्सारक होती है। श्वासनलिका के शोथ मे यह भस्म दी जाती है।

—डा० देसाई (औषधी सग्रह)

कच्ची ककडी मे आयोडीन होता है। यह घेंघा के लिये लाभदायक है। इसको कुचलकर रस निकालकर पीने से यह अधिक लाभ करती है। इसके रस से हाथ मुह धोने से वे फटते नही हैं, मुह मे सौन्दर्य आता है। गर्मी मे पैदा होने वाली कोमल ककडी अधिक लाभदायक है, क्योकि उसमे तरावट रहती है। ककडी खाकर तुरत भोजन नही करना चाहिये। जव पच जाय तभी खाना चाहिये। यदि ककडी कडी हो तो उसका रस निकाल कर पीना अधिक अच्छा है। हिन्दुस्तानी ऐलोपैथ कहते हैं कि ककड़ी खाने से हैजा होता है। इस कथन की सत्यता मे सन्देह है। ककडी काटकर खिलाने से शराब का नशा उतर जाता है। ककडी काटकर सूघने से वेहोशी जाती रहती है।

—कविराज महेन्द्रनाथ पाडेय (फल चिकित्सा)

ककडी का वीज शीतल, खाद्योपयोगी, तथा मूत्रल है। वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र एव मूत्रावरोध मे इसका उपयोग होता है। ककडी वीज २ ड्राम, पानी मे पीस कर कल्क वनाते है और उसे अकेले या नमक और काजी के साथ सेवन कराते है। —डाक्टर उ च दत्त।

डाक्टर राक्सवर्ग का कथन है कि ककडी के शुष्क वीजो का चूर्ण तीव्र मूत्रल है, तथा यह पथरी रोग मे लाभकारी है। डाक्टर चोपडा के मत से ककडी वीज शातिदायक और मूत्रवर्धक है।

ककडी के फूलो—को घृत मे छौककर सेंधा नमक और कालीमिर्च मिलाकर वनाई हुई साग रक्तविकृति मे लाभकारी है। ककडी के फूलो का ताजा रस सलाई से नेत्रो मे आजने से जलन, दाह दूर होकर तरावट पहुँचती है। नकसीर मे फूलो के रस की नस्य देते हैं। —लेखक।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग—

(१) मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, मूत्राघात पर— ककडी का रस २ तोला मे जीरा चूर्ण ४ माशे तथा थोडा नीवू रस और मिश्री या शक्कर मिला पिलावे। अथवा—

ककडी के वीजो के साथ गोखरू, पाषाणभेद, इलायची, केशर और सेंधा नमक समभाग पीसकर महीन चूर्ण वना रक्खें। मात्रा—४ या ६ माशे चूर्ण को चावल के धोवन के साथ सेवन करने से घोर असाध्य मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभ होता है। अथवा—

ककड़ी के वीजो की गिरी ४ भाग मे दारुहल्दी और मुलैठी १-१ भाग मिला महीन चूर्ण कर चावलो की यवागू के साथ पिलावें।

अथवा ककडी के वीजो का चूर्ण १ से २ तोला तक लेकर किंचित सेंधानमक के साथ पीसकर काजी मिला पिलाने से मूत्ररोध, मूत्राघात दूर होता है।

मूत्रविरेचनार्थ—ककडी के वीज ३ माशे और सेंधानमक १॥ माशा दोनो को एकत्र खूब महीन पीस

कर आध सेर दूध और पानी में मिला लस्सी बना खडे होकर एकदम पी जावें और घूमते रहे (बैठें या लेटें नही)। इस क्रिया से अन्दर रुका हुआ मूत्र अधिक प्रमाण मे निकलेगा, मूत्राशय की उष्णता दूर होकर मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोध, प्रमेह आदि विकार दूर होंगे। मूत्रावरोध जन्य उदावर्त मे मूत्र खोलने के लिये यह उपयोगी है।

(२) अश्मरी (पथरी) पर—ककडी और खीरे के बीजो की सिल पर पिसी हुई लुगदी ३ तोले को पाषाण भेद, गोखरू, वरुना और ब्राह्मी समभाग कुल २ तोले के अष्टमाश क्वाथ मे मिला तथा उसमे शुद्ध शिलाजीत ६ माशे तक और गुड २॥ तोले मिला सेवन करने से पथरी अवश्य नष्ट होती है। अथवा—

ककडी के बीजों को कबूतर की विष्ठा के साथ पीस चावलो के धोवन मे मिलाकर पिलावें।

(३) हिक्का (हिचकी) रोग पर—[अ] ताजी ककडी को सिल पर पीसकर लुगदी को वस्त्र मे रखकर निचोड लें। जो स्वरस निकले उसमे मुलैठी चूर्ण, अपामार्ग के बीजों का चूर्ण, मोरपखी की भस्म और भ्रमर या मधुमक्खी के छत्तो की भस्म समभाग ३-३ माशे (ककड़ी का स्वरस १० तोला) तथा शहद २॥ तोले तक मिलाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

[आ] वातपित्त ज्वर के उपद्रव रूप मे हिक्का हो तो ककडी के बीजों की मिंगी ३ से ६ माशे तक स्त्री के दूध मे पीसकर पिलावें।

(४) श्वेतप्रदर पर—ककडी के बीजो की मिंगी १ तोले और श्वेत कमल पुष्प की पखुडिया १ तोला दोनो को खूब महीन पीस उसमे जीरा चूर्ण २ माशे और मिश्री चूर्ण ६ माशे मिला सेवन करने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(५) गर्भिणी के उदरशूल पर—ककडी की जड़ १ तोला को १ पाव दूध और १ पाव जल के मिश्रण मे कुचल कर मिलादें और फिर मदाग्नि पर पकावे। दुग्ध मात्र शेष रहने पर सुखोष्ण पिलाने से लाभ होता है।

(६) दाहयुक्त मूत्र की जलन पर—ककडी के बीज १ तोला पीसकर उसमे १० तोला जल और १ तोला मिश्री मिला पिलावे।

(७) वृक्क शोथ (Nephritis) या कफोदर—के कारण सर्वाङ्ग मे सूजन आ गई हो, उदरवृद्धि, मूत्राल्पता, अन्नद्वेष, कास आदि लक्षण हो तो अरण्य ककडी की जड या लता (ताजी हो या शुष्क) का अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर यथायोग्य प्रमाण मे (१ से २॥ तोला तक) प्रात साय सेवन करावें तथा इसी क्वाथ को शरीर पर मर्दन करें। प्राय तीन दिन मे ही अवश्य लाभ होता है। किन्तु ध्यान रहे रोगी को किसी भी प्रकार के तैल का सेवन तो दूर रहा उसकी गध भी नहीं आनी चाहिए। अन्यथा प्रयोग व्यर्थ जाता है और हानि होने की सभावना है।

(८) अश्मरी या पथरी पर—अरण्य ककडी की जडको बासी पानी मे पीसकर तीन दिन तक सेवन कराने से पथरी अवश्य निकल जाती है। —योगरत्नाकर।

ककर खिरुनी (Kakar Khiruni)

यह एक पुष्प वृक्ष का कोकण देशीय कोकणी या मरेठी नाम है। इसे संस्कृत मे करवीरणी कहते हैं। ये वृक्ष ग्रीष्मकाल मे फूलते हैं। फूल लाल रग का होता है।

गुणधर्म—

यह कड़ुवा, गरम, चरपरा तथा कफ, वात, विप, आध्मानवात, वमन, ऊर्ध्वश्वास और कृमिनाशक है।

—वैद्य शब्द सिन्धु।

ककोड़ा (Momordica Dioica)

यह कर्कटी वर्ग (Cucurbitacae) की वनौषधि है। आयुर्वेदानुसार इसकी गणना शाक वर्ग मे की गई है। इसके सदृश ही एक अन्य वेलदार वनस्पति होती है, जिसमे फल नही लगते। वह "वाझ ककोडा" कहाती है। आयुर्वेद मे इसकी गणना गुडूच्यादि वर्ग मे की गई है। इसके (वाझ ककोडा) गुणधर्म भिन्न होने से हमने भी इसका वर्णन आगे के भिन्न प्रकरण मे किया है।

नर या वाझ ककोडा से भिन्न दर्शाने के लिये फल वाले ककोडा को 'ककोडी' भी कहते हैं। ये दोनो प्राय एक ही स्थान मे जङ्गलो मे उगते है। किसी किसी जङ्गल मे ये अत्यधिक प्रमाण मे उगने से उस जङ्गल को ककोडे वाला जगल कहते हैं। वाझ ककोडा मे केवल एक प्रकार का नर फूल लगता है तथा फल के स्थान मे खाली एक कोप सा लगता है। ककोडी मे नरफूल और मादा फूल दोनो लगते है तथा फल भी खूब लगते हैं। ककोडी[1] की किसी किसी वेल मे कडुवे फल भी लगते है। मीठे ककोडे की साग वहुत सुस्वादु और पथ्यकर होती है। चरकाचार्य जी ने शाकवर्ग मे ज्वर रोगी के लिये इसे पथ्यकर दर्शाया है। औषधि प्रयोगो मे मीठे और कडुवे दोनो ककोडे लिये जाते हैं। सुश्रुत मे शिरोरोग प्रकरण के नस्य विधान मे जिस कर्कोटक का नाम लिखा है, वह कडुवी तोरई या कडुवा फल वाला उक्त ककोडा हो सकता है, मीठा ककोडा नही।

चरक सहिता के 'धामार्गव कल्प' प्रकरण मे धामार्गव के पर्यायवाची शब्दो मे 'कर्कोटकी' शब्द आया है।[2] अत भ्रमवश किसी किसी ने इस ककोडा को ही धामार्गव मान लिया है। किन्तु ध्यान रहे, जिस

[1] कोई कोई कहते हैं कि वीज से रोपण की हुई ककोड़ी ४,५ या ६ वर्ष तक फल नहीं देती, केवल फूलती है, तब तक वाझ ककोडा कहलाती है। वही पुरानी होने पर फलने भी लगती है तब उसका वाझपना निकल जाता है। उसी में किसी का फल मीठा और किसी का कडुवा होता है। किन्तु यह कथन हमे निराधार मालूम देता है। कारण जंगलों में इसे कोई भी रोपण करने नहीं जाता तथा इनके वीज जो झडते भी हैं वे पशु-पक्षियों से वचते नही। यदि कोई वीज अंकुरित भी हो जाय तो यदि वह मीठे ककोडे का हो तो उससे मीठे ही फल वाली वेल निकलती है। वह ४ से ६ वर्षों तक फलती नहीं, ऐसा हमारे देखने में तो नहीं आया। नहीं कह सकते कि प्रकृति वैचित्र्य के कारण ऐसा भी कहीं कहीं होता हो। —लेखक।
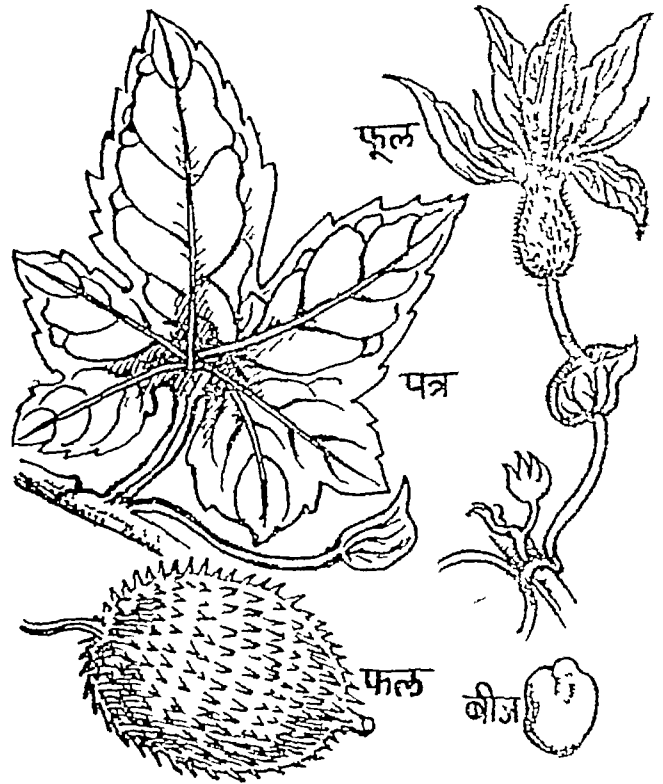
[2] कर्कोटकी कटुफला महाजालिनिरेवच।
धामार्गवस्य पर्याय राजकोशातकी तथा॥
—चरक

धामार्गव का कल्प (या कल्प विधि) वहा लिखी है वह ककोडा नही है, प्रत्युत् कडवी तोरई है। आगे कडुवी तोरई का प्रकरण देखिये।

'वन काकडा' (या वन ककरी) नाम की एक भिन्न वनौषधि होती है। 'भुइखेखसा' नाम की एक अलग वनौषधि है, यथास्थान उसका वर्णन किया गया है।

नाम—

संस्कृत—कर्कोटक, स्वादुफला, कंटफला।

हिन्दी—ककोडा, खेखसा, ककरौल, वन करेला, चठेल।

मराठी—कर्टोली, काटोल, कांटली, फाकली।

गुर्जर—कंटोली, कंटोल। बंगाली—कांकरोल।

लेटिन—मोमोर्डिका डायोइका।

उत्पत्ति स्थान—

यह बगाल, उडीसा, मध्यप्रदेश, बम्बई, गुजरात, कनाड़ा आदि दक्षिण भारत तथा कूचविहार, रगपुर आदि कई स्थानो की रेतीली, जगली एव पहाडी भूमि मे प्रचुरता से पैदा होता है।

विवरण—

इसकी बेल चैत्र मास के अन्त से लेकर वैशाख, जेठ तक ग्रीष्मकाल मे ही अकुरित होकर ऊपर वृक्षो पर या झाडी और खेत की वाडी पर फैलने लग जाती है। इसकी बहुवर्षायु जड कदाकार गाजर जैसी होती है। यह जड ६ इञ्च से १ फुट तक अनियमित लम्ब गोलाकार होती है। इस जड या कद की ऊपरी छाल खुरदरी, खाकी रग की तथा पतली होती है जो नखो से खुरचने से सहज ही अलग हो जाती है। इसके भीतर श्वेत रग का रसयुक्त दानेदार सत्व सा भरा रहता है। यह गध मे कुछ उग्र तथा स्वाद मे कसैला और कुछ कडुवा होता है। इसी जड मे से इसकी बेल या लता ग्रीष्मकाल मे निकल कर वर्षाकाल मे फूलती और फलती है। शीतकाल मे यह सूख जाती है, किन्तु जड जीवित रहने से पुन दूसरे वर्ष बेल अकुरित हो फैलने लगती है।

पत्ते—देवदाली या ककडी के पत्ते जैसे ही तिकोनाकार प्राय ४ या ५ कोने के पत्ते अधिक होते हैं। जिसमे मध्य का कोन विशेष लम्बा होता है। पत्ते प्राय २ से ४ इञ्च तक लम्बे तथा १॥ से ३॥ इञ्च तक चौडे होते हैं। ये ऊपर नीचे दोनो ओर रोमो से व्याप्त रहते है।

फूल—नर और मादा फूल भिन्न भिन्न लताओ पर पीले वर्ण के ककडी के फूल जैसे, किन्तु उससे कुछ छोटे होते है। ये प्राय सायकाल मे खिलते है।

फल—देवदाली या धतूरे के फल जैसे, सूक्ष्म हरे, कोमल काटो से युक्त, गोल कुछ लम्बाकार होते है। कच्ची दशा मे ये वाहर से हरे और अन्दर श्वेत होते है। किन्तु पकने पर ये बाहर और भीतर पीताभरक्त वर्ण के हो जाते है। इनकी साग या तरकारी प्राय कच्ची दशा मे ही बनाई जाती है। फलो मे बीज प्राय परवल के बीज जैसे होते हैं जो पकने पर कुछ काले रग के हो जाते है। इसमे फल प्राय आषाढ मास मे लगते है तथा भाद्रपद मास मे ये पक जाते है।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

ककोडा—रस मे मधुर, लघु, विपाक मे—कटुरस युक्त, अग्निदीपक, मल को हरने वाला तथा कुष्ठ, हृल्लास (जी मिचलाना), अरुचि, श्वास, कास, ज्वर, गुल्म, शूल, त्रिदोष, प्रमेह, किलास, लालास्राव और हृदय की पीडानाशक है। गुणो मे यह करेला के समान ही है।[१]

इसका पत्ता रुचिकारक, वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक तथा कृमि, ज्वर, क्षय, श्वास, कास, हिचकी और अर्शनाशक है। इसके कोमल पत्तो की भाजी बनाकर देते हैं। तथा क्वाथ सिद्ध कर ज्वर और क्षय की दशा मे थोडा शहद मिलाकर सेवन कराते हैं।

इसका कद मस्तिष्क विकार, रक्तार्श, ग्रन्थि, मधुमेह आदि नाशक है। मस्तिष्क के विकारो

१ 'कर्कोटक फलं ज्ञेय कारवेल्लक वद् गुणै.॥'
—राजनिघण्टु।

पर इसके कन्द का चूर्ण शहद के साथ सेवन कराया जाता है। कद को शहद के साथ घिसकर वातज मस्तक-शूल पर लेप करने से लाभ होता है। कद के चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन से रक्तार्श मे लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार--

यह समशीतोष्ण है। कफ, रक्तपित्त, अरुचि, खासी जीर्णज्वर, अर्श, फेफडे तथा गुर्दे, पसली, कान आदि शारीरिक पीडाओ को दूर करता है। मुहासो (यौवन पिडिकाओ) को नष्ट करता है।

इसकी जड का लेप वालो की जडो को दृढ करता है। जड को गोघृत में तल कर नाक मे टपकाने से आधा सिर का दर्द शीघ्र दूर होता है।

हानिकारक—यह पेट मे अफरा पैदा करता है, और देर से पचता है। इसके दर्पघ्न गरम मसाले और अदरख हैं।

आधुनिक मतानुसार--

इसके फलो की साग भोजन के साथ वहुत पथ्यकर और हितकारी होती है। इसके श्लेष्मल, मसृण कद (mucilaginous tubers) वाझककोडा के कदो की अपेक्षा आकार मे कुछ वडे होते हैं। इन कदो का अवलेह (electuary) या शर्बत रूप मे एक से दो ड्राम की मात्रा मे सेवन रक्तार्श तथा आत्र विकारो मे लाभदायक होता है। यह दो या दो से अधिक मात्रा मे दिन मे दो वार सेवन करने से श्वास कास हर (expectorant) है। कद के चूर्ण का त्वचा पर मर्दन त्वचा को मुलायम करता है, और स्वेद को रोकता है।

इसके बीजो मे हरितवर्ण का तैल ४३ ७ प्रतिशत पाया जाता है, तथा इसमे रूक्ष गुणो (Siccative properties) की प्रधानता है[1] ऊपर का छिलका दूरकर, ये वीज भून लिये जाते हैं, तथा अकेले ही या अन्य खाद्य द्रव्यो के साथ खाये जाते हैं। ये कफ विकार और छाती के दर्द पर लाभकारी माने जाते हैं। बगाल प्रदेश मे प्रसूति के पश्चात् ही तुरन्त, तथा बाद में भी प्रतिदिन कुछ दिनो तक स्त्री को जो भाल नामक एक प्रकार का उष्ण प्रधान क्वाथ या यूष तपाये हुये मक्खन को मिला कर पिलाया जाता है उस भाल मे इन वीजो के चूर्ण का मिश्रण प्रधान रूप से किया जाता है।

इसके वीज और पत्ते मृदु रेचनीय (Aperient) तथा यकृत व प्लीहा के अवरोध दशा मे सेवनीय माने जाते हैं। विकृत व्रणो पर तथा कटिग्रह (Lumbago) या कमर की जकडन, गर्भाशय का नीचे की ओर घसरना, अस्थिभग और अस्थि-स्खलन की दशा मे इसका वाह्य-प्रयोग हितकारी माना जाता है। कहा जाता है, कि इसकी जडो का प्लास्टर या प्रलेप वालो को वढाता तथा वालो के झडने को रोकता है।

—डाक्टर कर्णी [इ मे मेडिका]

कक्कोल या काक्रोल नाम से इसके वीज वाजारो मे विकते हैं, तथा प्रसूति अवस्था मे इनका यूष [पेय] वना कर दिया जाता है। —डाक्टर देसाई [औ. सग्रह]

रोगानुसार प्रयोग—

(१) कास, श्वास पर—इसकी जडो को साफ कर छोटे छोटे टुकडे वना एक हाडी मे भर ऊपर से अच्छी तरह कपडमिट्टी कर १० सेर उपलो की आच मे फूक दें। पश्चात् भस्म को पीसकर शीशी मे भर रक्खें।

मात्रा—२ से ३ रत्ती तक शहद और अदरख के रस मे देने से भयङ्कर खासी और श्वास मे तत्काल लाभ प्रतीत होता है। [गुप्त सिद्ध प्रयोगाक–धन्वन्तरि]

(२) अश्मरी (पथरी) पर—इसकी जड १ से ३ तोले तक महीन पीस छान कर जल या दूध के साथ १० दिन तक सेवन कराने से शर्करा तथा वृक्क और मूत्रेन्द्रिय की पथरी नष्ट होकर निकल जाती है।

(३) रक्तार्श पर— इसके कद को छाया शुष्क कर चूर्ण बना रक्खें। मात्रा—१॥ से ६ माशे तक शक्कर के साथ सेवन कराने से खूनी बवासीर और रक्त मूलक व्याधियो मे लाभ होता है।

---

[1] सर्व साधारण ककोडों के बीजों के विषय में यह नहीं है। काकरोल या गोल काकरा नामक एक इसी की जाति का ककोडा होता है, जो खासकर बगाल और कनाडा में अधिक होता है, उसे भी लेटिन नाम Muricia Cochinchinensis दिया गया है। उसके बीजों के विषय की चर्चा यहा की गई है। ये वीज आकार प्रकार में बड़े तथा करेला के बीजों जैसे होते हैं। ये फल के पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। —लेखक।

(४) मधुमेह पर—कद के चूर्ण की मात्रा १॥ से ६ माशे तक तथा उसमे वगभस्म १ या २ रत्ती तक मिला शहद के साथ सेवन करावें।

(५) ग्रंथि पर— इसके कन्द के साथ इद्रायण की जड को शीत जल मे घिस कर बार बार प्रलेप करने से लाभ होता है।

(६) प्लीहा वृद्धि पर—इसके कद को रविवार के दिन लाकर रोगी के हाथो से उसे चूल्हे पर बधवा देवें। जैसे जैसे वह कन्द सूखेगा तैसे तैसे प्लीहा भी नष्ट होगी। (वनौषधि गुणादर्श)

उक्त प्रयोगार्थ वांझ ककोडा का कद विशेष लाभकारी है।

(७) सिर दर्द पर—इसकी जड को कालीमिर्च, लालचन्दन और नारियल के तैल के साथ पीसकर लगावें।

(८) अभ्रकद्रुति—ककोडे के फलो का चूर्ण (इसके लिये बडा ककोडा, काकरोल या गोलकाकरा के फल लेने होंगे) और मित्रपचक (मधु, घृत,गुंजा, सुहागा व गूगल) १-१ भाग लेकर दोनों एकत्र मिला उसमे समभाग धान्याभ्रक डालकर एक दिन नीबू के रस (या काजी) मे खरल कर मूषा मे रखकर आग पर धीरे धीरे फूकने से अभ्रक अवश्य प्रवाही हो जाता है।

(र० रा० सुदर)

कर्कोटकी सत्व—इसके कद को छील कर कूट लिया जावे तथा पानी मे घोलकर छानलें। छने हुए पानी के तल भाग मे नितारने के पश्चात् गुलाबी झाई वाला श्वेत पदार्थ प्राप्त होता है। यही सत्व है। यह सत्व अमीवा वाले अतिसार और प्रतिश्याय मे विशेष लाभदायक है। वातश्लेष्मजन्य रोगी पर अन्य औषधियो के साथ इसे सफलतापूर्वक दिया जा सकता है।

ककोड़ा—बांझ [Momordica Cochinchinensis]

यह आर्य निघण्टु के अनुसार गुडूच्यादिवर्ग की, तथा पाश्चात्यो के अनुसार कर्कटी (Cucurbitacea) वर्ग की ही वनौषधी है।

इसकी वेल मे फल नही लगता, अत यह वन्ध्या या बांझ ककोडा कहा जाता है। इसके विषय मे विशेष वक्तव्य हम ककोडा के प्रकरण मे दे चुके हैं।

कोई कोई इसके भी पुरुष और स्त्री जाति के दोनो भेद मानते हैं, और कहते हैं कि पुरुष जाति की वेल पर केवल फूल आते हैं फल नही। और स्त्री जाति की वेल पर फूल और फल दोनो आते हैं। फल देखने मे ककोडा के फल जैसा ही होता है, किन्तु वह कडुवा होता है इत्यादि। इस कडुवे फल वाली वेल को बांझ ककोडा कहना हमे युक्तसगत नही जचता। अत हम इसे ककोडा का ही एक भेद मानते हैं।

यह सर्पादि के जगम विषों का नाशक होने से नागारि, सर्पदर्पहरी, सर्पदमनी आदि नाम इसे दिये गये हैं। यह संखिया आदि स्थावर विषो को भी नष्ट करता है, अत 'विषद्वयनाशिनी' भी कहा जाता है। यह प्राय कई रोगो पर उत्तम कार्य करता है अत "सर्वौषधि" तथा इसके कद ककोडी के कद की अपेक्षा सुचिक्कन एव सुडौल होते है, अत 'सुकन्दा' आदि कई प्रभाव गुण सूचक नामो से पुकारा जाता है।

बाजारो मे इसके कदों के साथ अन्य कन्दो का मिश्रण कर देते हैं। अत अच्छी तरह जाच कर इसे लेना आवश्यक है। इन कदो को "कटूल" भी कहते है

नाम—

सं०—वन्ध्याकर्कोटकी, विषहंत्री, योगेश्वरी
हिन्दी—बांझ ककोडा, बांझ खेखसा, अफल ककोड़ा, वनककोड़ा
म.—बांझ कंटोली (काटोल)
गु०—बांझ कंटोलो, फलवगरना कंटोला
बं०—तित्कांकरोल। पंजाबी—बांझखाख
लेटिन—मोमोर्डिका कोचिनचिनेसिस,
मोमोर्डिका डायोइकामेल (Momordica Dioicamale)

उत्पत्ति स्थान—

भारतवर्ष के प्राय सब प्रान्तो के जगल-झाडियो मे जहा ककोडा होता है, वही यह भी पाया जाता है। बगाल और दक्षिण भारत के जगलो मे यह बहुतायत से होता है।

विवरण

इसकी बेल, पत्र, फूल आदि सब ककोडा के समान ही होते है। इसका कद स्वाद मे कसैला और कडुवा होता है। औषधि मे प्राय इसका कद ही लिया जाता है। जो वामक और रेचक होता है, तथा इसीसे यह सर्पादि के विषो को दूर करता है। यह कद ककोडी के कद की अपेक्षा कम लुआबदार होता है। इसमे फल के स्थान मे जो एक कोष सा होता है, वह भी औषधि कार्य मे लिया जाता है। कन्द मे रेचक गुण की अपेक्षा वामक गुण की विशेषता रहती है।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह कडुवा, विपाक मे चरपरा, वीर्य मे उष्ण व तीक्ष्ण, रसायन, शोधन, हल्का, तथा कफ, स्थावर जगम विष, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कामला, नेत्ररोग, सिरो-रोग, उपदश, सन्निपात, कास, श्वास, शूल, अपस्मार, रुधिर विकार, प्लीहावृद्धि, मृतवत्सा (स्त्री रोग) और खाज खुजली आदि नाशक है। यह व्रण शोधक और पारे को बाधने वाला है। पीठ व कमर के दर्द को, पक्षाघात को दूर करता है, वातनाशक है।

इसके कन्द के चूर्ण को सौठ के चूर्ण के साथ मिला शरीर पर मर्दन करने से शरीरशैथिल्य तथा शीत बाधा दूर होकर शरीर मे काफी गरमी आती है। इस चूर्ण को प्रसूता स्त्री के सिर पर मर्दन कर तथा इसके साथ आमला का चूर्ण मिला जल मे पका कर उस जल से स्नान कराने से शीतबाधा नही हो पाती।

कन्द को पीसकर उसमे घृत मिला पिलाने से विष बाधा मे, कन्द को मधु के साथ घिस कर आखो मे आजने, कन्द को पानी मे घोट छानकर पिलाने व प्रलेप करने से साप, बिच्छू, चूहा, लूता (मकडी) आदि के विषो मे, कन्द को जल के साथ पकाकर, पतला बना गाढा गाढा प्रलेप करने से स्तन रोग मे, कन्द को जल में पका तथा उसमे चीनी मिला नस्य देने से अपस्मार में; कन्द को मधु के साथ सेवन करने से श्वेत प्रदर व मूत्र-कृच्छ्र मे, कन्द को स्त्री दुग्ध मे घिसकर नस्य देने से श्लीपद रोग मे, और कन्द को बकरे के मूत्र मे भिगो तथा शुष्क कर कांजी मे पीस नस्य देने से विषजन्य मूर्च्छा मे लाभ होता है। ज्वर को उतारने के लिये कन्द को घिसकर आखो मे आजते है। व्रण को पकाने व फोडने के लिये कन्द को गोमूत्र मे घिसकर लेप करते है।

पत्र—इसके पत्तो का रस कान मे टपकाने से कर्ण शूल मिटता है। पत्तो को पीस कर कृमियुक्त व्रणों पर बाधने से लाभ होता है। इसके कोषाकार सूखे फल के चूर्ण की नस्य देने से छीकें बहुत आती हैं, तथा नाक से कफ स्राव होकर फिर हल्का हो जाता है।

इसके पचाङ्ग को तैल मे जलाकर तथा तरल कर व्रणो पर लगाने से विशेष लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार—

यह उष्ण है। इसके कन्द का मुरब्बा पलको के रोग को दूर करता है। मात्रा—७॥ माशे, या कुछ अधिक दिन मे दो बार देते हैं। यह मुरब्बा आत्र के कई रोगो पर भी लाभकारी है। सिर के रोगो की यह एक उत्तम औषधि है।

छिपकली के मूत्र से जो सूजन हो जाती है, उसे दूर करने के लिये इसकी जड का रस दिया जाता है। इसकी जड १ तोला तक शहद और चीनी के साथ सेवन करने से पथरी गल जाती है।

नोट—शेष सब यूनानी मत आयुर्वेदानुसार ही है। यह वनौषधि यूनान आदि देश मे नही होती। अत इसके विषय में उनका कोई खास स्वतंत्र मत नहीं है।

आधुनिक मतानुसार—

इसके कन्द सलगम जैसे, किंतु उनसे कुछ लम्बे, रग मे पीताभ श्वेत होते हैं। उनपर ककणाकृति चिन्ह होता है। स्वाद मे कसैले होते हैं। इसकी राख मे अपस्कान्ति (मैंगनीज) पाई जाती है। इसमे रेचक धर्म नही है। मात्रा—अधिक होने से यह वामक है। इसमे थोडा रक्त-

साग्राहिक गुण है। मात्रा–१ से ५ ड्राम, शक्कर के साथ।

रक्तार्श मे कन्द का चूर्ण देते हैं। सिर दर्द पर इसके पत्तो के स्वरस मे काली मिर्च, लालचन्दन और नारियल का रस मिलाकर मर्दन करते है। कन्द के चूर्ण के साथ वगभस्म मधुमेह मे देते हैं। —डा देसाई (औ सग्रह)

इसकी जड़ को भूनकर रक्तार्श के रक्तश्राव को वन्द करने के लिए, तथा आतो के विकारो को दूर करने के लिये देते है। छोटा-नागपुर की मु डा जाति के लोग इसकी जड़ को मूत्राशय की व्याधियो मे काम लेते हैं। इसकी जड को जल के साथ पीसकर शरीर पर मालिश करने मे मूर्छा युक्त ज्वर की दशा मे अवश्य सुधार होता है, रोगी को शाति प्राप्त होती है। इसकी जड का उपयोग सर्पदशजन्य क्षत मे किया जाता है।

–डा सन्याल (ड्रि. ड्रग्ज आफ इडिया)

इसका ज्यादा व्यवहार करने से मेदा की ताकत क्षीण हो जाती है और रोगी कमजोर होना शुरू हो जाता है। इसके पत्तो को खूब महीन पीस उसका रस १ पाव निकाल कर अच्छी प्रकार छान के भाप द्वारा शोषित कर लेवें। इस सत का व्यवहार ज्वर, मृगी, हूपिंगकफ, विसर्प पर किया जाता है। मात्रा—४ रत्ती से दो माशे तक हैं। इसकी जड़ को अच्छी प्रकार साफ कर कूट कर चूर्ण वनाया जाता है, जो उपरोक्त रोगो को हरण करता है। चूर्ण को पानी मे खरल कर मशीन द्वारा ४ रत्ती प्रमाण के टेवलेट वनाये जाते है जो श्वास रोग को शीघ्र ही हरण करते है। यह श्लीपद (हाथिपाव) रोग की प्रधान दवा है। इसका इ जेक्शन वनाकर देनी तथा खिलाना और तेल की मालिश करनी चाहिये। अफरा रोग मे इसके चूर्ण को गरम पानी के साथ रात को शयन के समय लेना चाहिये। गर्भावस्था के आक्षेप मे इसका स्वरस देवें। हूपिंग कफ (कुकुरखासी) मे नित्य प्रति इसका स्वरस पिलाकर १ तोला मिश्री खिलाकर देने से लाभ होता है। जीभ का लकवा होने पर इसे सेवन करावें और तैल वनाकर मालिश करें।

शिशुओ (छोटे वालको) के वमन रोग मे यह उत्तम औषध है। दूध पीते ही जोर से वमन हो, और वमन के वाद वालक निस्तेज होकर सो जाया करता हो। कभी दूध पीने के कुछ देर वाद दूध दही की तरह थक्का थक्का होकर कै होती हो, तथा उसके साथ हरा रग का लसलसा मल निकलता हो, और आक्षेप (Convulsion) होते हो तो ऐसी अवस्था मे इसकी १ रत्ती मात्रा पानी या दूध मे मिलाकर देवे या उपर्युक्त कोई दवा मात्रानुसार देवें तुरन्त लाभ होता है।

अत्यन्त ज्वर, त्वचा सूखी, नाडी पूर्ण और जल्द चलती हो, वहुत वेचैनी और प्यास लगती हो, ऐसी अवस्था मे इसका स्वरस या क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलाना लाभदायक है।

ब्राइट पीड़ा (Brights disease) मे मूत्र उत्पत्ति न होने पर भी इससे वहुत उपकार हो जाता है। पत्ता पीस कर पानी मे मिला पिलावें, और गर्म आहार वन्द करदें।

अतिशय माघातिक निमोनिया रोग मे जव छाती तरल कफ से भर जाती है, और दुर्वलता होने से रोगी कफ को निकाल नही सकता, कफ मे दुर्गन्ध आती है, रोगी ठडी हवा लेना पसद करता है, उस वक्त पर इसे पिलाने से सव तकलीफ नाश हो जाती है। कफ निकलने लगता है। रोगी स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

मलेरिया ज्वर और सविराम ज्वर मे इसका प्रभाव अति उत्तम होता है। इसका चूर्ण गरम पानी से देवें या ताजी जड को पानी मे पीसकर नित्य पिलावें।

स्वरभग मे इससे वहुत ज्यादा प्रभाव होता है। वह स्वभग जो गिली हवा या सध्या समय वढता है उसमे इसका रस चूसना ही फायदा देता है। आहार पुष्टिकर होना चाहिये।

शराव पीने से जो अजीर्ण दोष पैदा हो जाता हैं, उस अजीर्ण (Dygpepsia) मे इसके पत्ते पानी मे पीस कर पिलाना चाहिये।

उदरशूल मे इसको एक पाव पानी के साथ १० नग कालीमिर्च मिलाकर पिलावें, शूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

मुहासा मे नित्य दूध मे या नीवू के रस के साथ घिस कर लेप करने से मुहासा और छीप दोनो दूर होते हैं।

उपदश रोग मे इसका सेवन करना, तथा घाव पर पानी मे घिस कर चन्दन की तरह लेप करना और धूनी देनी चाहिये।

मसूढे की सूजन पर इसे चवाना, अथवा इसके चूर्ण का मजन करना अति उत्तम लाभ देता है।

इसकी जड को मुख मे चवाते रहने और थूकते रहने से मुखपाक शीघ्र ही दूर हो जाता है।

प्रत्येक प्रकार के फोडो पर इसके पत्तो की लुगदी बनाकर बाधने से लाभ होता है। इत्यादि।

—प्रो०रामकृष्ण वर्मा (अभिनव बूटी दर्पण)

हस्तमैथुन की कुटेव से नपु सक स्थिति मे पडे हुये एक बीमार को किसी वैद्य ने अधिक मात्रा मे सखिया खिला दिया जिससे उसका शरीर जलने लगा, और पक्षाघात की तरह स्थिति हो गई। उसके खून का रग काजल की तरह काला हो गया जीभ और गले मे इतनी जडता पैदा हो गयी, कि वह कुछ भी खा पी नही सकता था। ऐसी दशा मे उस रोगी को डोली मे डाल कर हमारे पास लाया गया। हमने कुछ विचार करके वाझ ककोडे की जड, वेग (पाताल गरुडी) की जड, सिरस की अतर छाल, और गूलर के पत्ते समान भाग लेकर प्रात साय ४ तोले की मात्रा मे क्वाथ बनाकर देना प्रारभ किया। धीरे धीरे सखिया का विष नष्ट होकर उसका शरीर पूर्ववत् हो गया। पश्चात् योग्य अनुपान के साथ सुर्वण भस्म के सेवन कराने से उसकी नपु सकता भी दूर हो गयी।

—वैद्यशास्त्री शामलदास गोर (जगल की जडी बूटी)

सिद्ध साधित प्रयोग—

[१] बध्याकर्कटासव—इसके कद का चूर्ण २॥ तोला मे १ पाव (२० तोला) रेक्टीफाईट स्प्रिट और १० तोला शुद्ध जल (वाष्प जल) मिला, शीशी मे अच्छी तरह डाट वद कर रक्खें। प्रतिदिन २-३ वार हिला दिया करें। १५ दिन वाद छान कर उसमे १५ तोले तक और वाष्प-जल मिला बोतल मे वन्द कर रक्खे।

मात्रा—१० बूद से ६० बूद या इसका चौगुना दे सकते हैं। ज्वर, अपस्मार, विसर्प, कास श्वास, शूल आदि पर लाभकारी है। अथवा—

इसकी ताजी जडो का स्वरस निकाल कर, जितना स्वरस हो उसका चौथाई भाग उसमे रेक्टिफ़ाईट स्प्रिट मिला शीशी मे डाट अच्छी तरह वद कर रक्खें। ७ दिन पश्चात् छानकर दूसरी शीशी मे भर रक्खें।

मात्रा—४ से बूद से ३० तक, उक्त सब रोगो पर दे सकते हैं।

[२] शर्बत—इसके कन्द का चूर्ण ५ तोले मे १ सेर जल मिला पकावें, चतुर्थांश जल शेप रहने पर छानकर उसमे आध सेर तक मिश्री या शुद्ध शर्करा मिला पुन आग पर पकावें। शर्वत की चासनी आ जाने पर बोतल मे भर रक्खें।

मात्रा—६ माशे से २॥ तोले तक सेवन करने से कास श्वास आदि कफ जन्य विकारो पर उत्तम लाभ होता है।

[३] बध्याकर्कोटागद—इसकी जड २ भाग और धतूरे की जड १ भाग दोनो को अच्छी तरह सुखाकर चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण मे इन्ही दोनो की जडो के स्वरस की ७ भावनायें देकर छोटे वेर जैसी गोलिया वना रखें।

सर्पदश या विच्छू के दश पर गोली को पानी मे घिसकर दश स्थान पर लगावें, तथा सर्पदश पर १-१ गोली १-१ घटे से चावल के दो-दो तोले धोवन के साथ पीस कर पिलावें। लाभ होता है।

रोगानुसार प्रयोग—

१—विषो पर—इसके कन्द को १॥ तोले की मात्रा मे पानी के साथ पीस कर पिलाने से वमन द्वारा हर प्रकार का स्थावर और जगम विष नष्ट हो जाता है।

सर्पदश पर—इसके कन्द को घिस कर प्रलेप करें। तथा जल के साथ उक्त मात्रा मे पिलावें, तथा कन्द को बकरे के मूत्र की भावना देकर और काजी मे पीस कर नस्य बार बार देते रहे।

अथवा—उक्त 'बध्याकर्कोटागद' का सेवन बहुत उत्तम लाभकारी है।

छिपकली के विष पर—कन्द को उचित मात्रा मे जल के साथ घिसकर ७ दिन तक पिलावे।

सखिया के विष पर—इसे पानी मे पीसकर जब तक वमन होती रहे तब तक पिलावें। वमन के वन्द होजाने

पर घृत को दूध मे मिलाकर पिलावें ।

सर्प विष पर इनकी जड ५ माशे और काली मिर्च २॥ दाने दोनो को पानी के साथ सिल पर महीन पीस थोडे जल मे घोलकर पिला देने से विष सर्वथा निर्मूल हो जाता है। यदि १५ मिनिट मे विष विकार पूर्णतया नष्ट न हो जाय, तो इसी प्रकार पुन दूसरी मात्रा देने पर रोगी अवश्य चैतन्य हो जाता है।

जिसे अत्यन्त विषैले साप ने काटा हो और वह औषधोपचार से अच्छा हो जाय, किन्तु लेशमात्र भी विष का दोष शेष रहने पर आगे थोडा भी व्यतिक्रम होने से, जैसे आग के सामने बैठने, धूप मे मार्ग चलने और गरम चीजो के खाने पीने से-गरमी के बढ जाने के कारण रोगी घबराहट से व्याकुल हो उठता है। ऐसी अवस्था मे मृदु विरेचन द्वारा मलावरोध दूर करके केले की जड १ तोला और कालीमिर्च ५ दाने सिल पर महीन पीस, उसमे मिश्री २ तोले और गोदुग्ध एक पाव मिला घोल छान कर प्रात पिलावें। इसी प्रकार प्रतिदिन एक बार ४० दिन तक सेवन करने से सर्प का शेष विष निर्मूल होकर शाति प्राप्त होती है। ध्यान रहे सर्पदशित रोगी को शीतल जल से स्नान कराना और टहलना हितकारी है। विष मुक्त होने के पश्चात् भी कम से कम १२ घंटे रोगी को सोने नही देना चाहिये क्षुधा लगने पर प्रथम आधा पेट घृत मिश्री गोदुग्ध मे मिला पिलाना श्रेष्ठ है।

—वैद्यराज महावीर प्रसाद जी मालवीय "वीर"

सर्पदश पर इसके कंद को चावलो के धोवन के साथ पकाकर पिलाने तथा उसको चुपडने से लाभ होता है। अथवा कद के कल्क मे घृत मिला कर पिलाते हैं।

—वनस्पतिशास्त्र[1]

२—खाज, दाद, व्रण आदि पर—इसके छाया शुष्क पत्तो के चूर्ण १ भाग मे व्हेसलीन १० भाग, अच्छी तरह खरल कर शीशी मे भर रक्खें। इसे खाज, दाद उकौत, व्रण आदि पर लगावें। अथवा—

इसके पत्र रस मे चौगुना तेल मिला पकावें, तेल मात्र शेष रहने पर उसे लगाया करें। अथवा—

जो खुजली सायकाल के समय या ठड के समय अधिक बढती हो, उस पर इसके कन्द को पीस कर थोडा तेल मिला उबटन की तरह मालिश कर और गर्म जल से स्नान करे।

उकौत पर—इसके कन्द के कल्क मे थोडा तूतिया मिला लेप करने से लाभ होता है। —बूटी दर्पण

३—प्लीहा वृद्धि पर—(अ) इसकी जड २ माशे और काली मिर्च ५ दाने, दोनो को एकत्र कूट पीस कर दो तोले शहद के साथ प्रतिदिन सेवन करने से ११ दिन मे तिल्ली बिलकुल नष्ट हो जाती है। इसी प्रयोग से रक्तविकार भी दूर हो जाता है। —प० भगीरथ स्वामी

(आ) ककोडा के प्रकरण मे न० ६ का तात्रिक योग देखिये।

४—स्थौल्य या मेद रोग पर—इसके कन्द के रस मे ताम्र भस्म और हरताल भस्म समभाग खूब तीन दिन तक मर्दन कर शुष्क कर रक्खें। इसकी मात्रा १ से २ रत्ती तक शहद के साथ सेवन करने और क्षार जल पान करने से लाभ होता है। (बसवराजीय)

५—शूल रोग पर—इसके कन्द के साथ कलिहारी की जड या कन्द १-१ भाग लेकर उसमे दो गुना शख का चूर्ण मिला ३ दिन तक जबीरी नीबू के रस मे खरल कर शराव सम्पुट मे बन्द कर गजपुट मे फूंक देवें।

मात्रा—१ माशा तक यह भस्म लेकर उसमे थोडा कालीमिर्च का चूर्ण और घृत मिला सेवन करने से शूल तत्काल नष्ट हो जाता है।

६—शीताग सन्निपात पर—इसके कन्द के चूर्ण के साथ कुलथी, पीपल, वच, कायफल, और काला-जीरा का चूर्ण मिला शरीर पर मालिश करने से लाभ होता है।

७—अश्मरी पर—इसके कन्द को सुखाकर महीन चूर्ण बना रक्खें। इसे ३ माशे की मात्रा मे नित्य शहद और शक्कर के साथ सेवन करने से पथरी नष्ट होती है।

---

[1] चूहे के विष पर—दंश स्थान पर इसके पत्तों की लुगदी बांधते हैं। तथा इसके कन्द के क्वाथ को पिलाते हैं। अथवा कन्द के चूर्ण को पानी के साथ सेवन कराते हैं। चूहे के विष पर यह अव्यर्थ महौषधि है।

—वैद्य शीतल प्रसाद जी शर्मा आयुर्वेद शास्त्री

इसी प्रयोग से उपदश के कारण तालू मे पडा छिद्र भी मिट जाता है। —[ग्रा विश्वकोप]

८—अपस्मार पर—इसकी जड़ को घृत के साथ घिसकर और उसमे थोडी शक्कर मिला नस्य देने, तथा इसकी जड के चूर्ण की मात्रा १ मासा नित्य प्रति पीस कर पिलाने व पौष्टिक आहार का सेवन कराते रहने से लाभ होता है।

९—कामला पर—इसकी जड के चूर्ण की नस्य देने तथा गिलोय पत्र को तक्र के साथ पीसकर पिलाने और पथ्य मे केवल तक्र व भात देते रहने से लाभ होता है। —[वगसेन]

१०—श्वास और कास पर—इसके कन्द के चूर्ण की मात्रा ३ मासे तक लेकर उसमे ४ नग काली मिर्च का चूर्ण मिला जल के साथ पीस छानकर पिलावें। एक घटा पश्चात् दूध पिलावे। सब कफ निकल कर श्वास मे लाभ होगा।

रोगी में इसके चूर्ण को [उचित मात्रा मे] गरम पानी के साथ प्रात साय सेवन करावें तथा इसकी वटिका बना कर चूसें। —[बूटी दर्पण]

११—मृतवत्सा रोग पर—गर्भसधान काल मे, अथवा एक पक्ष, मास या दो तीन वर्ष की होकर जिस स्त्री की सतान काल कवलित हो जाती हो उसके लिए इसकी जड को कृत्तिका नक्षत्र मे उखाड कर धोकर शुष्क करने के बाद ऋतुस्नानोंपरान्त ७ दिनो तक प्रति दिन प्रात ३ मासे की मात्रा मे गौदुग्ध के साथ घोट कर पिलावें। मसान रोग दूर होकर बच्चा दीर्घजीवी होता है। —बूटी प्रचारक।

१२—पारद वधन और मारण—इसके मूल के स्वरस मे पारे को घोटने से उसकी गोली बनती है। तथा इसके स्वरस की ५-७ भावनायें देकर इसके मूल मे रख कर कपडा भिगोकर शराव सपुट मे धरकर फूकने से पारद भस्म हो जाती है।

—आयुर्वेदाचार्य प भागीरथ स्वामी [स नि व शास्त्र]

१३—शोथघ्न लेप—इसके कन्द के शुष्क चूर्ण को गरम पानी मे आवश्यकतानुसार घोटकर दिन मे ३-४ बार पतला पतला लेप करने से मसूडो का शोथ, कर्ण मूलशोथ, तथा भयङ्कर पीडा एव शोथयुक्त कठिन फोड़ा पककर शीघ्र फूट जाता है या बैठ जाता है। साथ ही चोट लगने से हुए शोथ तथा रक्तज शोथ पर भी यह लाभदायक है।

—वैद्यराज प० परशुराम जी जोशी

कचनार [लाल] [Bauhinia Variegata]

यह शिम्बी वर्ग (Leguminoseae) की भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध वनौषधि है। डाक्टर देसाई जी ने शिम्बी वर्ग के स्थान मे पूति करञ्जवर्ग (Caesalpinae) लिखा है और उसी मे इसकी गणना की है। इस वर्ग का वर्णन पूतिकरञ्ज के प्रकरण मे देखिए। भावप्रकाश आदि आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अनुसार इसकी गणना गुडूच्यादि वर्ग मे की गई है।

कचनार के कई भेद हैं। डाक्टर ऐन्सली ने इसके १३ भेदों का वर्णन किया है। उनमे से एक मालजन, मपूर आदि हिन्दी नामों से प्रसिद्ध लता जाति का कचनार है। इसका वर्णन आगे 'मपूर' के प्रकरण मे देखिए। एक कठमहुली नाम का कचनार है जिसका वर्णन आगे कचनार भेद के प्रकरण मे किया गया है। एक कुराल या कन्दला नाम का कचनार है, इसका वर्णन कुराल के प्रकरण मे देखें।

एक करमई नामक कचनार की जाति विशेष है। इसके झाडीदार पेड दक्षिण मलाबार आदि प्रान्तो मे बहुतायत से होते हैं। हिमालय की तराई मे गगा से से लेकर आसाम तक तथा बगाल और बर्मा मे भी यह पाया जाता है। बम्बई मे इसकी चरपरी पत्तिया खाई जाती हैं तथा अन्यत्र भी इसकी कोमल पत्तियो का साग बनाकर खाते हैं। इनके गुणधर्म कचनार के समान ही है।

एक छोटा कचनार होता है जिसे कचनारी, कच-

नियां या कांचनी कहते हैं। इसकी पत्तियां और फूल अपेक्षाकृत बहुत छोटे छोटे होते हैं।

इनके अतिरिक्त नागपूत (Bauhinia anguina), गु डागिलला (Bauhinia monostachya) आदि कई भेद कचनार के हैं।

दशहरे (विजयादशमी) के दिन इसकी पत्तिया सुवर्ण (काचन) के समान आपस में भेंट रूप से वितरण की जाती हैं, इसीसे शायद इसे कांचनार, कचनार आदि कहते हैं।

आयुर्वेदीय निघण्टु मे इसके लिये 'कोविदार'[1] शब्द की योजना बहुत भ्रमोत्पादक हो गई है। कोविदार शब्द से प्राय श्वेत, लाल, पीले आदि सर्व प्रकार के कचनारो का बोध कराया गया है। कोई लाल कचनार को और कोई श्वेत कचनार को कोविदार मानने का आग्रह करते हैं तथा आधुनिक पडितो के मत से श्वेत कचनार को ही कोविदार माना गया है। तथा चरकाचार्य जी ने भी दशेमानि वमनोपवर्ग मे और सुश्रुत जी ने ऊर्ध्वभाग रक्तपित्तहर गण मे कोविदार या कर्वुदार नाम से इसे ही अभिहित किया है। अस्तु।

आयुर्वेदीय मत से भी पुष्पो के रग भेद से कई प्रकार के कचनार के वृक्ष होते हैं। उनमे से तीन प्रकार के कचनारो का विशेष उल्लेख किया गया है—

(१) कचनार लाल—जिसमे कुछ जामुनी लाल रग के पुष्प आते हैं। अन्य कचनारो की अपेक्षा यह प्राय सर्वत्र सुलभता से प्राप्त होता है।

(२) कचनार श्वेत—सफेद फूल वाला कचनार। इसमे कुछ सुगन्धित पुष्प वाले और कुछ निर्गंध पुष्प वाले होते हैं। आपटा या अश्मन्तक इसी का ही एक भेद है।

कचनार (लाल)

Bauhinia variegata, Linn.

कली

पत्र

फली

पुष्प

---

१ कोई कहते हैं कि यह भूमि को विदारण कर (को: भूमेः विदारणात् कोविदार:) निकलता है, अत: कोविदार कहाता है तथा देखने में आता है कि कचनार वृक्ष की जड के पास की भूमि प्रायः कुछ दरारयुक्त होती है। यह बात हमारे देखने में नहीं आई है तथा शब्द की व्युत्पत्ति के फेर में न पड़ते हुए हम इतना ही कह सकते हैं कि कोविदार यह साधारणतया कचनार का एक पर्यायवाची शब्द है। भावप्रकाश की टीकाकारों ने कचनार के पर्यायवाची शब्दों को लाल और श्वेत कचनार में विभक्त कर दिया है और कहा है कि कांचनार अर्थात् लाल कचनार के कांचनक, गंडारि और शोणपुष्पक पर्यायवाची नाम हैं तथा कोविदार (श्वेत कचनार) के चमरिक, कुद्दाल, ताम्रपुष्प आदि नाम हैं।

उक्त विभाजन युक्तियुक्त है। कांचनार के लिये जो शोण पुष्पक शब्द है वह गहरे लाल का द्योतक नहीं, प्रत्युत कोकनद (कोकान् चक्रवाकान् नदति नादयति) छवि अर्थात् चितकबरा, रंगबिरंगी लाल, कुछ जामुनी रंगयुक्त लाल का बोधक है (जैसे—नीलनलिनाभमपि तन्वि तव लोचनं धारयति कोकनद रूपं—गीतगोविन्द) तथा इसीसे लेटिन में इसे बोहीनिया व्हेरिगेटा (Bauhinia variegate) अर्थात् रंगबिरंगी कचनार नाम दिया गया है। इसे कर्वुदार भी कह सकते हैं।

किन्तु उधर कोविदार (श्वेत कचनार) के पर्याय में जो ताम्रपुष्प शब्द है, वह अड़चन पैदा करता है। यदि यहां ताम्र से कुछ गुलाबी रंगयुक्त श्वेत अर्थ लिया जाय तो यह अड़चन दूर हो जाती है। —लेखक

(३) कचनार पीला—पीले पुष्प वाला कचनार। किसी किसी ने आपटा को पीले कचनार का भेद माना है।

प्राय सब कचनार की लकडी का रग लाल या घूमर होना है और छाल से रग निकाला जाता है जो चमडा रगने के काम मे आता है। छाल के रेशो से रस्सी आदि वनाई जाती है। इसके पत्ते चारे के रूप मे पशुओ को खिलाये जाते हैं तथा पहले इसी के पत्तो की वीडिया भी वनाई जाती थी। तथा अभी भी पहाडी प्रदेशो मे इमी के पत्तो मे तमाखू भरकर पीने की वीडी वनती हैं।

इसके वृक्ष और फूल अत्यन्त शोभायमान होते है। कविश्रेष्ठ कालीदास जी ने तो इसे चित्त को विदारण करने वाला कहते हुए कोविदार सज्ञा की सार्थकता की है—

> चित्तं विदारयति कस्य न कोविदार ॥
>
> —ऋतुसंहार

प्राय सभी कचनार के फूलो की कलियो का साग, अचार, रायता आदि वनाया जाता है। साग वडा सुन्दर और रुचिकारक होता है। यह विशेषकर मधुर, किंचित् कसैला, शीतल, मलरोधक, रूक्ष और वातकारक है तथा पित्त, रक्तस्राव, रक्तप्रदर आदि रोगो मे अधिक हितकारी है। प्रमेह विशेषत पुराने प्रमेह रोग मे इस साग का अच्छा असर देखा जाता है। मधुमेह मे कचनार की कलियो का तक्र (मट्ठा) या दही के साथ वनाया हुआ रायता वडा लाभदायक होता है।

यद्यपि सर्व प्रकार के कचनार प्राय समान गुण-धर्म वाले हैं तथा एक के अभाव मे अन्य का व्यवहार भी किया जाता है, तथापि स्पष्ट वोधार्थ हमने इनका वर्णन पृथक पृथक प्रकरणो मे किया है। प्रथम कचनार का वर्णन इस प्रकार है—

नाम—

संस्कृत—कांचनार, काचनक, गंडारि, शोणपुष्पक
हिन्दी—कचनार लाल। मराठी—रक्तकांचन, तांवडे मदार। गुर्जर—चपाकाटी, कृष्णावली
बंगाल—रक्तकांचन, काचन, फूलेर गाछ
अंग्रेजी—मौन्टेन एवोनी (Mountain eboncy)
लेटिन—वोहीमिया व्हेरीगेटा

उत्पत्तिस्थान—

यह हिमालय की तराई प्रदेशो मे वहुतायत से होता है तथा भारतवर्ष, सिक्किम और वर्मा के जङ्गलो मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। वाग–वगीचो मे भी यह शोभा के लिये लगाया जाता है। प्राय पहाडी शुष्क प्रदेशो मे यह वहुत होता है।

विवरण—

इसका पेड छोटे आकार का लगभग ५ से १० फुट या १५ फुट तक ऊचा, सीधा और घेरेदार होता है। तना या पीड ठिंगना, गोलाई मे ४-५ फुट होता है। यह अन्य कचनार वृक्षो से टिकाऊ और मोटा होता है। शाखायें पतली पतली झुकी हुई होती है। छाल हलकी तथा धूसर वर्ण की एक इन्च तक मोटी कुछ खुरदरी सी होती है। छाल से लाल रग निकाला जाता है। यह स्वाद मे कुछ कसैली होती है। अन्दर की लकड़ी भूरापन लिये वादामी रग की होती है। इसकी जडें लम्वी जमीन मे गहरी गई हुई होती हैं।

पत्र—इसके पत्ते विपमवर्ती, ३ से ५ इन्च तक लम्वे और उतने ही चौडे, गोलाकार और सिर पर दो भागो मे विभक्त होते हैं। दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो दो पत्तिया परस्पर मे जुडी हुई हो और सिरे पर पृथक हो गई हो। इसीलिये इसे 'युग्मपत्र' कहते हैं। पत्र पर वारीक वारीक नसें उभरी हुई ९ से ११ तक होती हैं तथा पृष्ठ भाग सूक्ष्म रोवो से व्याप्त होता है। शीतकाल मे ये पत्तियाँ झड जाती हैं, फिर फाल्गुन से ज्येष्ठ मास तक नवीन पत्र फूटते हैं।

पुष्प—पत्तो के झड जाने पर वसत ऋतु मे प्रथम कली के रूप मे हरे और लम्वे पुष्प निकलते हैं। विकसित होने पर (खिलने पर) ये गुलावी लाल या जामुनी रग के वडे सुहावने मालूम देते हैं। प्रत्येक पुष्प मे ५ पखुडिया चौडी विषमाकृति की होती है। इनमे ४ पखुडिया हलकी जामुनी लाल रग की और एक गहरे रग की होती है। पु केशर की सख्या ५ तथा उनके मध्य मे एक स्त्री केशर होता है। पुष्पो से भीनी मीठी सुगन्ध आती है। भौरो और मधुमक्खियो से गु जायमान

इसका फूला हुआ वृक्ष वहुत ही शोभायमान दिखलाई देता है।

फलिया—पुष्पो के झड जाने पर इसमे चिपटी ६ से १० इन्च तक लम्वी तथा पाव इन्च से एक इन्च तक चौडी सेम जैसी फलिया लगती हैं। प्रत्येक फली मे ६ से १२ तक गोल चिपटे आकार के छोटे छोटे वीज होते हैं। वृक्ष पर ही फलियो के सूख जाने पर वे फूटती हैं तथा वीज विखर जाते हैं। वीजो से एक प्रकार का तैल निकाला जाता है जो प्राय जलाने और वार्रनिश के काम मे आता है। इसके गुण वहेड़े के तैल के समान है।

गोद—इसके पेड से एक प्रकार का भूरे रङ्ग का गोद निकलता है जो कतीरा गोद के समान पानी मे फूल उठता है। वहुत कम घुलता है। यह औपधि कार्य मे आता है। छाल के प्राय सव गुणधर्म इस गोद मे पाये जाते हैं।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह रस मे कसैला, वीर्य में शीतल, विपाक मे कटु, ग्राही तथा पित्त, कफ, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रं श, गडमाला, व्रण, वातरोग, रक्तविकार, फिरङ्ग-उपदंश और आम वातादिनाशक है। यह वातज दोषो को मल मार्ग से वाहर निकाल देता है। इसकी मुख्य क्रिया त्वचा और रस ग्रंथियो पर होती है।

कफ और मेदा के विकारजन्य (कफवृद्धि व मेद दौर्वल्य के कारण) जो गडमाला, अपची आदि रोग होते हैं, उन पर यह अपनी कफ शोषण और मेद को वलप्रदान रूप क्रिया से सुधार करता है। भल्लातक या भिलावा अपनी कफमेद पाचन रूप क्रिया से यही कार्य करता है, यही इन दोनो मे भेद है। किन्तु भिलावा सवकी प्रकृति के अनुकूल नही होता और यह प्राय सवको अनुकूल ही होता है।

उक्त गडमाला आदि रोगो पर कई वार इसकी योजना गूगल के साथ की जाती है अथवा इसकी छा... के क्वाथ मे सोंठ का चूर्ण मिलाकर या छाल के ... को तण्डुलोदक के साथ पीसकर कुछ दिनो तक (... ४२ दिन) सेवन कराते हैं तथा छाल को पीसकर वाह्य प्रलेप आदि क्रिया की जाती है। यही प्रलेप स्नायुक (नहरुआ) रोग पर भी लाभदायक होता है।

जिन कुष्ठ आदि त्वचा के रोगो मे लसिका स्राव की विशेषता हो, उन पर यह अपनी शोपण क्रिया द्वारा लसिका स्राव को वन्द करता है, तथा अपने कपाय रस से त्वचा को शुद्ध कर देता है। इन रोगो पर भी इसकी छाल का उपयोग गूगल के साथ, या क्वाथ आदि रूपो मे किया जाता है।

प्रमेह आदि मूत्र सम्वन्धी विकारो मे यह अपने मूत्र सग्रहणीय गुणो से कार्य लेता है, तथा अपने कषाय रस प्रधान गुणो से, विशेप कर कफ पित्त जन्य प्रमेह रोगो मे वढे हुये द्रव कफधातु क्लेद मूत्रादि का शोषण कर शरीर के शैथिल्य को दूर करता है, तथा मेद को वलवान वनाता है। इसी प्रकार यह व्रणो पर भी अपना इष्ट कार्य करता है। व्रणान्तर्गत् राध, पूय, क्लेद आदि को शोपण करता है, जिससे व्रण का शोधन होकर रोपण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाता है। विशेपकर मधुमेह जन्य व्रण पिडिकाओ पर इसकी छाल के क्वाथ का वाह्याभ्यन्तर प्रयोग लाभदायक होता है।

गुद शैथिल्य या प्रवाहिका के उपद्रवस्वरूप हुआ जो गुदभ्रं श रोग, उसमे भी यह अपने कपाय रस प्रधान गुणो से गुदा का सकोचन करता है, तथा तदन्तर्गत शैथिल्य को दूर कर देता है। इस पर भी इसकी छाल के क्वाथ का अन्तर और वाह्य प्रयोग किया जाता है।[1]

छाल के क्वाथ मे स्वर्ण माक्षिक भस्म वुरका कर

[1] कचनार की पत्तियों की लुगदी वना वाधने से या इसके वीजों का तैल लगाने से भी गुदभ्रंश में लाभ होता है। इसकी छाल का काढ़ा सेवन करने से अतिसार के साथ ही साथ शरीर का मोटापन दूर होकर शरीर हलका हो जाता है।

स्त्रियों की आर्तव शुद्धि के लिये इनके फूलों का क्वाथ पिलाया जाता है, जिससे आर्तव की शुद्धि के साथ अधिक ...न से होने वाली अशक्ति भी दूर होती है। ...पंचाङ्ग की भस्म को उचित मात्रा में (२ मास ...के साथ चटाते रहने से कास श्वास में लाभ

—लेखक।

पिलाने से अन्तर्गत मसूरिका (चेचक) बगैर किसी कष्ट के बाहर निकल आती है, और रोगी को शाति प्राप्त होती है। छाल के रस मे या क्वाथ मे जीरा चूर्ण और थोडा कपूर मिलाकर पिलाने से दाह मे, तथा छाल को औटाकर गडूप या कुल्ले करने से दात और मसूढो की पीडा मे लाभ होता है। छाल के क्वाथ के सेवन से मदाग्नि दूर होती है।

छाल और पुष्प की मात्रा ६ माशे तक है।

फूल—इसके फूल शीतल, कसैले, रूक्ष, ग्राही, मधुर, हलके तथा पित्त, क्षय, प्रदर, खासी, अतिसार, प्रमेह, रक्तविकार आदि नाशक है। फूलों की कलियो का साग, रायता आदि बनाया जाता है। ऊपर विशेष वक्तव्य मे इसके गुणधर्म हम लिख चुके हैं।

फूलो की कली को घृत मे भूनकर खाने से अरुचि मे, तथा इस कली के साथ कच्चे केले को मिलाकर साग बनाकर सेवन करने से अतिसार मे लाभ होता है। फूलो के क्वाथ मे मधु मिला कर सेवन करते रहने से रक्त विकार दूर होता है।

पत्र—कसैले, मुखशुद्धिकारक और दतपीडानाशक हैं। इसके कोमल पत्तो के चूर्ण से मजन करने से दातो की पीडा दूर होती है।

फली—कसैली, ग्राही, प्रमेह और अतिसारनाशक है। कच्ची कोमल फली का साग घृत मे जीरा और काला मिर्च का छौंक देकर बनाया जाता है जो प्रमेही और अतिसारी को लाभ पहुँचाता है। स्वास्थ्य दशा मे भी यह साग महत् उपकारी है। साग बनाते समय प्रथम फलियो को पानी मे उबाल कर पानी फेंक देना चाहिए।[1]

यूनानी मतानुसार—

यह दूसरे दर्जे मे शीतल और रूक्ष है। कोई इसे समशीतोष्ण मानते हैं। यह मेद और आतो को कुव्वत देता है, पेट को शुद्ध करता है, अतिसार और स्त्रियो के अधिक ऋतुस्राव को दूर करता है, पेट के कीडो को नष्ट करता और खूनफिसाद (रक्त विकृति) को दूर करता है।

यह देर से हजम होता है, अफरा पैदा करता, और खुश्की करता है। गुलकद, मास, नमक और गर्म मसाला इसके दर्पघ्न है। सूखा बाकला इसका प्रतिनिधि है।

इसकी जड की छाल का काढा पिलाने से अग्निमाद्य दूर होता है, आत्रक्रमि नष्ट होते हैं। छाल के क्वाथ को ठण्डा कर, शहद मिला सेवन करने से रक्तशुद्धि होती है। छाल को चावल के धोवन मे पीस छानकर तथा सौंफ का चूर्ण मिलाकर सेवन करते रहने से गण्डमाला मे लाभ होता है। छाल को चावल के धोवन के साथ पीस व पकाकर पुलटिस बना बाधने से फोडा शीघ्र पक जाता है। छाल के साथ जामुन और मौलसरी वृक्षो की छालो को कूटपीस जल मे पकाकर गुदमार्ग को धोते रहने से रक्त की ववासीर मे, छाल के साथ अकाकिया और अनार के फूल मिला काढा बना कुल्ले करने से पारा, हिंगुल, भिलावा व रस कपूर से हुये मुखपाक और अन्य मुख रोगो मे, तथा छाल का चूर्ण शुक्रमेह मे लाभदायक है।

फूल—फूलो का गुलकन्द अथवा सूखे फूलो के चूर्ण मे शक्कर मिला सेवन से कोठे का कडा मल ढीला पड जाता है। फूलो को चावल के धोवन मे पीस व पकाकर पुलटिस बना बाधने से फोडा पक जाता है। फूलो की कलियो के काढे से आत्र क्रमि नष्ट हो जाते है। फूलो का चूर्ण मिश्री और मक्खन के साथ सेवन से रक्तार्श मे, तथा फूलो के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से सुर्ख बाद (त्वचा का लाल पड जाना) रोग मे लाभ होता है।

फली—इसकी फलियो के चूर्ण को जल के साथ सेवन करने से आमातिसार मे लाभ होता है।

बीज—बीजो को सिरका के साथ पीसकर प्रलेप करने से व्रण के क्रमि नष्ट होते है।

पत्ते—इसके पत्रो के चूर्ण को अर्क सौंफ के साथ सेवन करने से आमातिसार मे लाभ होता है।

लकडी—इसकी लकडी के कोयलो से मजन करने से दातो का दर्द दूर होता है।

नोट—शेष गुणधर्म आयुर्वेदीय मतानुसार ही हैं।

---

[1] छोटा कचनार या कांचनी जो लाल कचनार का ही एक भेद है, वह शिरोरोग और त्रिदोषनाशक है। स्तनों मे दूध बढ़ाने वाला है।

इसके फूलों का क्वाथ आमातिसार नाशक है। कहा है—"कांचन्युक्ता शीर्षरुज त्रिदोष च विनाशयेत्। स्तन्यस्य पद्ध नकरीत्यपिभि सूक्ष्मदर्शिभि.॥" (नि. रत्नाकर)

आधुनिक मतानुसार—

इसकी छाल मे कषायसार (Tannin) ग्लूकोज और एक भूरे रग का गोद पाया जाता है।

छाल रसायन या धातु परिवर्तक (Alterative) वल्य व सकोचक है। इसकी जड कोष्ठवातप्रशमन (Carminative) है। पुष्प-आनुलोमिक या कोष्ठमृदुकर (Laxative) हैं।

औषधि-निर्माण—इसके इमलशन, वटिका, कल्क, (Paste), गंडूप (Gargle) और क्वाथ बनाये जाते हैं। मात्रा आधे से १ औंस तक।

छाल के काढे से व्रण और चर्म रोगों को धोना उपयोगी है, तथा यह अतिसार नाशक है। इसके फूलों की सूखी कलिया अतिसार, कृमि, अर्श और प्रवाहिका मे उपयोगी है।

इसके मूल का क्वाथ अग्निमाद्य और मेद रोग (स्थूलता) पर दिया जाता है। छाल के कल्क मे सोंठ का चूर्ण मिला गंडमाला की ग्रन्थियो पर लेप किया जाता है। —डा० नाडकर्णी (इ० मे० मेडिका)

इसकी छाल और पुष्प कलिया रसायन और संकोचक (स्तंभन, ग्राही या सग्राहक) है। छाल का क्वाथ कुष्ठ, गंडमाला, विविध चर्म रोग, और व्रणो मे दिया जाता है। गंडमाला रोग मे गलग्रंथियो के बढ जाने पर इसकी छाल के साथ सोंठ मिला चावल के धोवन मे तैल पानी का घोल अर्थात् इमलशन (Emulsion) के रूप मे तैयार कर दिया जाता है। अथवा उसके साथ शाल्मली निर्यास (Gum resin of Boswellia Serrata) हरड एव अन्यान्य सुगंधित द्रव्यो को मिला कर दिया जाता है। इसकी छाल के साथ अनार के पुष्प और बबूल की छाल मिला क्वाथ बनाया जाता है, जो गलक्षत तथा लालास्राव के प्रतिकारार्थ कुल्ले कराने के काम मे आता है। इसके पुष्प कली का क्वाथ अत्यधिक आर्तवस्राव, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि के रक्तस्राव (Haemarrhoids) श्लेष्मधरकला के रक्तस्राव (Bleeding from thi mucous surfaeecs) खासी और रक्तमूत्रता रोगो मे दिया जाता है।-डा० आर. एन खोरी (म से इंडिया)

इसकी क्रिया त्वचा तथा त्वचा के उपभाग रस ग्रंथि पर होती है। इन भागो की विनिमय क्रिया का सुधार हो जाता है। यह ग्राही, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। इसकी अधिक मात्रा देने से वमन और रेचन होता है।

गंडमाला और अपची रोगों मे इसका व्यवहार बहुत किया जाता है। छाल के क्वाथ को गुग्गुल आदि प्रयोजक औषधियो के साथ दिया जाता है। तथा उससे व्रणों का प्रक्षालन किया जाता है। इसके प्रयोग से नवीन रोगो (अचिरकाल उत्पन्न रोगो) मे शीघ्र लाभ होता है। —डा० देसाई (औ० सग्रह)

इसकी छाल कसैली, वल्य और चर्म विकारो मे हितकर है जड का क्वाथ ग्रहणी, उदराध्मान (अफरा) मे दिया जाता है। फूलो को पीस कर शक्कर मिला सेवन करने से कोष्ठ का कडापन दूर होता है। इसकी सूखी कली रक्तातिसार और अर्श मे हितकारी है। डा० डीमक के मत से इसके पत्तो का क्वाथ मलेरिया ज्वर सिर पीडा को दूर करता है।

—डा० जार्जवैट (टी० एक० प्राडक्ट्स इंडिया)

इसकी जड का क्वाथ मेद या वसा (Fat) नाशक है। अत यह स्थूल मनुष्यो के लिये विशेष लाभदायक है। इसके रस के पुट देने से सुवर्ण भस्म होता है। इसका गोद अर्श और प्रवाहिका रोग मे विशेष गुणकारी है। इसकी छाल के साथ खैर की छाल मिला काढा बना कुल्ले करने से जीभ का फटना दूर होता है।

—डा० नगेन्द्रनाथ सेन

सिद्ध-साधित प्रयोग—

(१) कांचनार गुग्गुल—कचनार की छाल का चूर्ण ४० तोला (आधा सेर) के साथ हरड, बहेडा, आमला ८-८ तोला, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, वरने की छाल ४-४ तोला तथा इलायची, दालचीनी और तेजपात प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला सब चूर्ण को एकत्र कर उसमे सबके समभाग गूगल मिला २४ घण्टे कुटाई करें। जब अच्छी तरह एकजान हो जाय तो ३-३ माशे की गोलिया बनाले। मात्रा—१ से २ गोली, गोरखमुण्डी, अथवा खैरसार (कत्था) अथवा हरड़ या गरम जल के साथ सेवन करने से भयकर गंडमाला, अपचि, अर्बुद,

ग्रथि, घाव, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर का नाश होता है। अथवा—

कचनार की छाल का चूर्ण १२ तोला, सोठ, मिर्च, पीपल २-२ तोला, त्रिफला १ तोला इन सबके चूर्ण को एकत्र कर उसमे २१ तोला गूगल मिला खूब कूटें। अच्छी तरह एकजान हो जाने पर उसमे ३० तोला शहद मिला खूब खरल करे। जब गोली बनाने लायक हो जाय तो ३ से ६ माशे तक की गोलिया बनाले। इनका सेवन उक्त प्रकार से करने से गडमाला, गलगड, व्रण, ग्रथि आदि का नाश होता है।

(२) काचनारादि क्वाथ—कचनार छाल १ सेर, शाहतरा (पित्तपापडा), मुडी, कुटकी, उसवा प्रत्येक ४०-४० तोले और वरना की छाल २० तोले इन सबको एकत्र जौकुट कर रक्खें।

मात्रा—२॥ तोला चूर्ण आध सेर जल में पकावें। चौथाई (१० तोला) शेष रहने पर छान लें। ठण्डा हो जाने पर उसमे १ तोला शहद मिला सेवन करें। इस प्रकार प्रात साय सेवन करने से गडमाला, ग्रथि तथा अन्य रक्तविकारजन्य रोगो मे परम लाभ होता है। गुग्गुल के अनुपान मे यह क्वाथ विशेष लाभदायक होता है।

नोट—क्वाथ के अन्य प्रयोग शास्त्र में देखिए।

(३) गुलकद कचनार—कचनार के अर्धविकसित पुष्प (अधखिले) १ भाग और मिश्री चूर्ण या दानेदार शक्कर २ भाग दोनो को अच्छी तरह मसलते हुए मिलाकर भरनी मे भर १५ दिन तक धूप में रक्खें। गुलकद तैयार हो गया।

मात्रा—२॥ तोले तक, नित्य प्रात सेवन से कब्जी तथा रक्तविकार और बवासीर खूनी का नाश होता है।

(४) काचनारारिष्ट—इसकी कोमल फलिया ५ सेर जौकुट कर उसमे १ मन १२ सेर जल मिला पकावें। १३ सेर जल शेष रहने पर उसे चिकने तथा गूगल से धूपित मटके मे भर उसमें धाय के फूल आध सेर, शहद १० सेर तक तथा सोठ, सफेद जीरा, कालीमिर्च और शुद्ध गूगल का चूर्ण ४-४ तोले मिला ले। अच्छी तरह मुख मुद्रा कर एक मास तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात् छानकर बोतलो मे कर रक्खें।

मात्रा—१ से ४ तोला तक निवाये जल के साथ सेवन करने से शीघ्र रक्त शुद्धि होती है। गडमाला, कुष्ठादि चर्मरोग, दाह, अतिसार तथा आत्र के कृमियो का यह नाशक है।

नोट—कचनार के अन्यान्य प्रयोग शास्त्रों में देखिए।

रोगानुसार प्रयोग—

(१) गडमाला, अपची आदि ग्रथियो पर—इसकी छाल ४ तोले जौकुटकर कलईदार पात्र मे ४० तोला जल के साथ पकावें। अष्टमाश अर्थात् ५ तोला जल शेष रहने पर नीचे उतार सुखोष्ण होने पर छानकर उसमे सोठ चूर्ण ३ से ५ माशे तक व मधु १ तोला मिलाकर नित्य एक बार पिलावें। ४० दिन के अन्दर ही लाभ होता है। यदि रोगी को कोष्ठवद्धता हो तो सोठ के स्थान मे केवल शहद ६ माशे तक मिला सेवन करें। इससे दस्त साफ होकर शनै शनै गडमाला की ग्रथियो का जोर कम पड जाता है। इस क्वाथ के प्रयोग के समय कचनार की छाल को पीसकर ग्रथियो पर नित्य दो बार प्रलेप करते रहना चाहिये। इस प्रकार इसके सेवन से शरीर की प्राय किसी भी प्रकार की ग्रथियो मे लाभ होता है।

यदि रोगी के शरीर मे दाह हो अत्यधिक पित्त-प्रकोप हो तो उक्त क्वाथ मे केवल सफेद जीरे का चूर्ण और थोडा कपूर मिलाकर पिलाना चाहिए।

यदि गडमाला या कोई भी ग्रथि बहुत बढ गई हो तो कचनार की जड के साथ चित्रक और अडूसे की जड की छाल को पानी मे पीसकर ६-७ दिनो तक नित्य २-३ बार लेप करने से वह फूट जाती है।

गडमाला की प्रारम्भिक अवस्था मे यदि उक्त क्वाथ की खटपट न हो सके तो कचनार की छाल १ से ४ तोले तक, १० तोले चावलो के पानी के साथ पीस छानकर उसमे सोठ चूर्ण मिलाकर सेवन करते रहने से भी अवश्य लाभ होता है।

(२) मुखपाक पर—इसकी छाल ३ तोला को आध सेर जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान-कर उसमे १ तोला कत्था मिला कुल्ले करते रहने से मुख के अन्दर के छाले, जीभ का फटना आदि मुख रोगो मे लाभ होता है।

यदि यह मुखपाक उपदंशजन्य हो तो कचनार की छाल अथवा पत्ते १ पाव जौकुटकर उसमे ३ तोले तक कत्था और ६ माशे फिटकरी मिला २ सेर जल मे औटावें। एक या डेढ सेर जल शेष रहने पर उतार कर छान लें और सुखोष्ण होने पर कुल्ले करें। एक माह तक साथ ही साथ त्रिफला चूर्ण ६ माशे और मिश्री ६ माशे नित्य सेवन करें। पथ्य में हलकी वस्तुऐं खावें। एक माह तक नित्य उक्त क्वाथ ताजा तैयार कर दिन मे ३-४ बार कुल्ले करें।

(३) मसूरिका (चेचक) पर—इसकी छाल ३ या ४ तोले को जौकुट कर आध सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान लें। यदि चेचक निकलकर किसी कारणवश अन्दर बैठ गई हो तो इसमे १ रत्ती उत्तम सुवर्ण माक्षिक भस्म मिलाकर सेवन करने से वह अच्छी तरह बाहर निकल आती है।

(४) आध्मान (अफरा) पर—इसकी जड का अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे ३ माशे तक अजवायन के चूर्ण को प्रथक फाक कर ऊपर से क्वाथ पिलाने से पेट का अफरा मिट जाता है।

(५) शोथ (सूजन) पर—इसकी जड को पानी मे घिसकर तथा गरम कर सधिवात और रक्तविकार जन्य शोथ पर प्रलेप करें।

(६) दन्तरोग पर—इसकी छाल को जलाकर कोयला करें और उसे पीस महीन चूर्ण बना रक्खें। इससे नित्य मंजन करने से दात मजबूत होते हैं और उनसे खून आना बन्द हो जाता है।

(७) नेत्रो की दाह और लालिमा पर—इसकी ताजी पत्ती पीसकर टिकिया बना नेत्रो पर रख बाधा करें। शीघ्र ही २-४ दिनो मे लाभ होता है।

(८) प्रमेह पर—इसके पुष्पो की कलियो को खाड के साथ कुछ दिन सेवन करने से लाभ हो जाता है।

(९) स्वर्ण और रौप्य भस्म—इसकी छाल या फूलों को पीसकर उसमे ६ माशे गधक मिलाकर इस कल्क के मध्य भाग मे स्वर्ण मुद्रा या स्वर्ण पत्र को रख शराव सम्पुट कर अग्नि दें। इस प्रकार २१ बार फूकने से स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है।

चादी की भस्म करनी हो तो उक्त कल्क मे गधक मिलाने की आवश्यकता नही है। —बूटी प्रचार

कचनार छाल के रस मे समभाग शुद्ध पारद और गधक की कज्जली को प्रथम खूब खरल करें। पश्चात् १ भाग स्वर्णपत्रो पर १ भाग कज्जली कल्क का लेप कर दें। फिर कचनार छाल को महीन पीस दो मूषा बना उनमे उक्त स्वर्णपत्रो को बन्द करे और इस मूषा को शराव सम्पुट मे बन्द कर ऊपर से अच्छी तरह कपड-मिट्टी कर तीव्राग्नि मे फूक देवे। इस प्रकार केवल ३ बार पुट देने से निरुत्थ स्वर्णभस्म तैयार होती है। यह शास्त्रानुमोदित उत्तम प्रक्रिया है। —लेखक।

कचनार सफेद [Bauhinia Acuminata]

निर्गन्ध और सुगन्ध भेद से यह दो प्रकार का है। विशेष वक्तव्य देखिये कचनार-लाल के प्रकरण मे।

नाम—

सं--कोविदार, चमरिक,कुद्दाल, कुंडली, श्वेतकांचन।
हि.—कचनार-सफेद। मरठी—पांढरे कांचन।
गुजर—धोलो कोचली। बंगला—श्वेत कांचन।
लेटिन—निर्गन्ध श्वेत कचनार को—बौहिनिया—अक्युमिनेटा, और सुगन्धयुक्त को—बौहिनिया कंडिडा (Bauhinia Candida)

विवरण—

इसके पेड ऊचे नहीं होते, तथा लाल कचनार के पेड जैसे ये मोटे और टिकाऊ भी नही होते। पत्ते ३ से ६ इन्च तक लम्बे, तथा पुष्प कुछ लालिमायुक्त श्वेत वर्ण के होते हैं। कुछ सुगंधित पुष्प वाले और कुछ गध रहित पुष्प वाले होते हैं। शेष-विवरण लाल कचनार के समान ही है।

गुण धर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह मधुर, रुचिकारक, धारक तथा मूत्रकृच्छ्र, त्रिदोष, शोष, दाह, कफ, वात, प्रदरनाशक है। रक्तपित्त और अर्श मे विशेष पथ्यकर है।

इसकी जड मे वामक गुण की विशेपता कही गई है किंतु वास्तव मे अत्यधिक मात्रा मे यह कुछ वार्तिकर है, तथा अन्य वमनकारक औपधियो के गुण-स्थापनार्थ यह उनके साथ मिलाई जाती है।

इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को दही के साथ या मट्ठे के साथ मथकर सेवन कराने से अर्श रोग मे लाभ होता है।

दूपित जलवायु के कारण हुये ज्वर मे जो सिर पीड़ा होती है, उसके निवारणार्थ इसके पत्तो का क्वाथ और साग का सेवन कराया जाता है।

इसके पुष्प अधिकतर साग बनाने के काम मे लाये जाते हैं। यह पुष्प-शाको मे स्वादिष्ट है। इसके पुष्पों के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करने से पित्त प्रकोप की शांति होती है।

इसके पत्तो को घृत मे भूनकर खाने से बुद्धि बढती है।

इसके शेष गुण और प्रयोग लाल कचनार के समान ही हैं—

कचनार पीला [Bauhinia Purpurea]

इसमे ललाई लिये हुये पीले पुष्प लगते हैं। यह भारतवर्ष मे पहाडी प्रदेशो को छोड अन्यत्र देखने मे बहुत कम आता है। चीन देश मे यह बहुतायत से होता है।

यह अधिकतर पहाडो पर ही होता है, अत संस्कृत मे इसे 'गिरज', इसके पत्ते लाल और श्वेत कचनार के पत्तो की अपेक्षा बहुत बडे होते हैं, अत 'महायमलपत्रक' और इसके पुष्प भी अपेक्षाकृत बडे होने से 'महापुष्प' कहते हैं।

मरेठी आदि भाषा मे जिसे 'आपटा' तथा लेटिन मे बौहिमिया टोमेन्टोसा या रेसिमोसा (Bauhinia Tomentosa या B Recemosa) कहते हैं, वह इसी पीत कचनार का ही एक भेद है, जो भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे 'कचनार-भेद' नाम से किया जावेगा।

यहा पर केवल 'पीले-कचनार' का वर्णन किया जाता है।

नाम—

सं.—पीतकाचन, गिरिज, महापुष्प, महायमलपत्रक।

हि—पीलाकचनार, कनियार, कांड, कोलियार, सोना। खैरपाल। मरेठी—पिवला कांचन, आटमटी, देवकाचन।

बंगला--कोइराल, देवकांचन। पंजावी--कारा,कोइराल। लेटिन--बौहीनिया पप्युरिया।

उत्पत्ति स्थान--

हिमालय की तराई मे तथा आबू, काठियावाड, जूनागढ की टेकडियो पर पथरीले स्थानो मे यह होता है।

विवरण--

इसका पेड मध्यम आकार का १० से १५ फीट तक ऊचा होता है। जड जमीन मे अन्दर गहरी जाती है। जिसमे से कुछ मोटी और कुछ पतली उपजडें चारो ओर फैलती है। जड की ऊपरी छाल जाडी, खुरदरी, कलौंछ लिये हुए खाकी रङ्ग की होती है। अन्तरछाल दृढ रेसाओ से युक्त होने पर भी ऊपर खीचने पर शीघ्र निकल आती है। यह गध मे सुवासित तथा स्वाद मे कसैली, चरपरी होती है।

शाखायें ऊपर को चारो ओर फैली हुई वडी सुन्दर दिखाई देती हैं। शाखाओ की ऊपरी छाल, खाकी या गहरे बादामी रग की कुछ चमकीली सी होती है। अदर की छाल पीताभ श्वेत वर्ण की दृढ रेसायुक्त होती है। गध मे किंचित उग्र, स्वाद मे कुछ मिठास लिये हुई कसैली तथा दाहक चरपरी सी होती है। कोमल शाखायें हरित वर्ण की तथा भूरे रग के रोवो से युक्त होती है।

पत्र--साधारण कचनार के पत्र जैसे ही होते है। किन्तु गध मे मधुर नीबू जैसे और स्वाद मे कुछ खटास-युक्त कसैले होते हैं। पत्ते की डेंठ मे दोनो ओर एक एक उपपत्र होता है। जेठ आषाढ मास मे कोमल पत्ते फूटते हैं। इनकी भाजी वडी स्वादिष्ट और निर्मल होती है।

पुष्प--गहरी गुलावी छटा युक्त पीले रग के अन्य कचनारो के पुष्पो से कुछ आकार प्रकार मे वडे होते हैं। पुष्प का वाह्य कोप (Calyx) आध इच लम्वा तथा घने रोवो से व्याप्त होता है। पुष्प का आभ्यतर कोप (Corolla) की पखुडिया १॥ से २ इच तक लम्वी होती है।

फलिया--चपटी ४ से ५ इच तक लम्वी तथा आध इच से कुछ अधिक चौडी होती हैं। ये फलिया कुछ पीताभ हरित वर्ण की होती है किन्तु सूखने पर वादामी रग की हो जाती हैं। फली के भीतर ६ से १२ या १५ तक गोल गोल चिपटे चमकीले भूरे रग के बीज होते हैं।

गुणधर्म--

आयुर्वेदीय मतानुसार--

अन्य कचनारो के समान ही यह कसैला, ग्राही, दीपन, व्रणरोपण तथा वात, कफ, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर आदि नाशक है।

इसकी छाल का क्वाथ शातिदायक, आत्रकृमि तथा उदराध्मान (अफरा) नाशक है। रक्तातिसार मे यह अपने सकोच धर्म द्वारा उत्तम कार्य करता है।

इसकी जड को पानी के साथ पीस कर सधिवात जन्य या रसविकार जन्य शोथ पर प्रलेप करने से, तथा इसकी छाल और पत्तो के क्वाथ को छाछ के साथ मिला पिलाने से जानवरो के चेचक (अकस्मात् शरीर पर वडी वडी ग्र थिया उठ आने जैसे) रोग मे लाभ होता है।

इसकी शुष्क फलियो का चूर्ण आमातिसार नाशक है। इसके बीजो के ऊपर का छिलका उतार कर अन्दर की दाल को पानी के साथ पीस कर प्रलेप करने से ग्र थि, गूमडा, मोच, अस्थिभग आदि पर लाभ होता है।

इसके फूल मृदु विरेचक हैं।

शेष गुण धर्म व प्रयोग लाल कचनार के समान ही है।

कचनार भेद (Bauhinia Recemosa)

यह भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र होता है। हिन्दी मे झिंझरी, कठमहुली आदि प्रात भेद से इसके कई नाम हैं।

भारतवर्ष के महाराष्ट्र, कोकण, गुजराथ आदि

प्रान्तो मे यह अत्यधिक पाया जाता है। महाराष्ट्र मे तो असली कचनार यही माना जाता है। और आपटा नाम से प्रख्याति है। दसहरे के दिन इस वृक्ष की पूजा की जाती है। और उस दिन सायकाल से लेकर रात्रि तक तथा दूसरे दिन भी इसकी पत्तिया परस्पर मे सुवर्ण रूप से भेंट दी जाती है।

इसकी लकडी प्राय ई धन रूप से जलाने के काम आती है। तथा मजवूत होने से इसके डडे, छडी आदि भी वनाते हैं। इसकी अन्तरछाल की रेसाओ से सुदृढ़ रस्से आदि वनाये जाते हैं। इसका एक भेद और है, जिसमे लाल फूल लगते हैं। छाल व शाखायें कोमल होती हैं। इससे वन्दूक का तोडा वनाते हैं। इसकी आग वुझती नही।

नाम—

स.—अश्मन्तक, इन्द्रक, वनराज। हिन्दी—कटमहुली, कचनार-भेद, झिंझेरी, झिंझोरा, सिरहटा, असिमिलौरा, झिंझा, पापडी।
मराठी—आपटा, सोना, पिवला कांचन, चामल।
गुर्जर—आसुन्द्रो, आशोंदरो, जेजवो। वंगला—वनराज।
पंजावी—कोसुन्द्र। अग्रेजी—डौनी मौंटेन एवोनी (Downy mountain ebony)
लेटिन—वौहीनिया रेसीमोसा (B Recimosa)
,, टोमेन्टोसा (B Tomentosa)

उत्पत्ति स्थान—

इसका मूल उत्पत्ति स्थान मलावार माना जाता है, वैसे तो यह समस्त भारतवर्ष मे पाया जाता है। लका मे भी यह कहीं कही देखा जाता है। पहाड टेकडी आदि प्राय पहाडी भूमि मे यह अधिक पैदा होता है।

विवरण—

यह वहुशाखी वृक्ष पीत कचनार जैसा ही ऊचा होता है। जड और शाखायें भी तैसे ही होती है।

छाल—श्वेत, धूसर वर्ण की और स्वाद मे कसैली होती है।

पत्र—अन्य कचनार पत्र जैसे ही, किन्तु आकार प्रकार मे छोटे दोहरे, गोल, लवाई मे १ से १॥ या ३ इच तक होते हैं। कहा जाता है कि पत्र के दो विभक्त दल रात्रि के समय परस्पर जुड़ जाते हैं, और प्रात अलग हो जाते हैं।

पत्र-डठल—गोल, कुछ चमकीले, प्राय रोमयुक्त, ½ से ¾ इन्च तक लम्वे होते हैं। पत्तो की गन्ध नील चम्पा के फूल जैसी होती है, किंतु मसलने पर मूली के पत्ते जैसी गन्ध आती है। ये स्वाद मे कसैले तथा कुछ खटासयुक्त मीठे होते है।

फूल—पुष्प धारण करने वाली डडी २ से ६ इच तक लम्वी, शाखा के पास से या पत्र कोण मे से निकलती है, जिस पर एक से एक सटे हुये चारो ओर फूल लगते हैं। कली की दशा मे ये छोटी लौंगी मिरची जैसे पतले, कुछ टेढे और अनीदार होते हैं। खिलने पर ३-३ पुष्प-दल अलग हो जाते हैं। ये दल या पखुडिया पीताभ श्वेत घटी के आकार की होती हैं, तथा उनके भीतर तत् होते हैं। पुष्प-मकरन्द मधु जैसा मधुर होता है।

फली—वाकले की फली या लाल कचनार की फली जैसी होती है। यह ४ से ८ इच लम्वी और आधे से एक इच तक चौडी, चिपटी होती है। स्वाद मे कसैली और कुछ मीठी सी लगती है। कच्ची फली को मसलने से
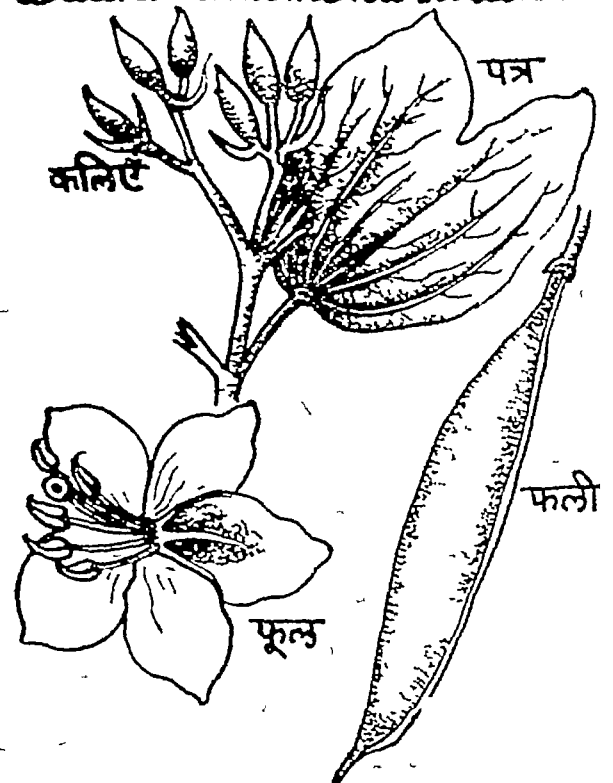
प्रथम खीरे की सी गध आती है। पकने पर फली का रग कुछ काला सा पड़ जाता है। फली के भीतर छोटे, चपटे, काले रङ्ग के बीज सख्या मे लगभग २० तक होते हैं। इन बीजो से तैल निकाला जाता है।

इसकी छाल, कच्ची फलिया और फूल रग के काम मे आते हैं। इसके वृक्ष से जो गोद निकलता है वह कीकर के गोद के समान काम मे लाया जाता है। इसकी अन्तर छाल के रेशे या ततु घावो-पर टाके लगाने के काम मे आते हैं।

गुण धर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

यह कसैला, अम्ल, शीतल, ग्राही, मूत्रल, शोषक, कफ, वीर्य और मल को शुष्क करने वाला, तथा-पित्त, वात, वहुमूत्र, प्रमेह, तृपा, विपमज्वर, मूर्च्छा, भूत-वाधा, शुक्राश्मरी, कठमाला, रक्तदोप, विस्फोटक, शोथ, अतिसार, कुष्ठ, गुदभ्रंश, कृमि, यकृत रोग, व्रण, विष, वमन आदि नाशक है।

छाल और पत्ते—सकोचक तथा पित्त, कृमि, ज्वर, मूत्र सवन्धी रोग, क्षयजन्य-ग्रन्थिया, अर्वुद आदि नाशक है।

छाल के चूर्ण के साथ—काले तिल, मजीठ और सतावरी का चूर्ण मिला दूध के साथ सेवन से स्त्रियो को द्वितीय मास मे होने वाली गर्भस्राव की शिकायत दूर होती है। मूल की छाल सग्रहणी रोग मे सेवन कराने से, तथा मूल को कालीमिरच के साथ पीस छान कर पीने व वाह्य प्रलेप से वातपीडा और शोथ मे लाभ होता है।

इसके कोमल पत्रो के स्वरस से गौदुग्ध और मिश्री मिलाकर पिलाने से वालको के मूत्र मे जो श्वेतसार (खर) जाता है, वह तथा जलन वन्द होती है। पत्तो को महीन पीस दूध के साथ देने से शोथ मे, पत्तो को सुखाकर बीडी वनाकर पीने से कफ श्वास मे; तथा पत्तो को कालीमिरच के साथ पीस कर लेप करने से ज्वर की सिर पीडा मे लाभ होता है।

फली—कसैली, शीतल, ग्राही, रूखी, भारी, दोपद्रावक, मलरोधक आध्मानकारक तथा कफ, प्रमेह आदि नाशक है। कफज प्रमेह, व्रण, ज्वर आदि पर उत्तम कार्य करता है। वालको के वढे हुये कफ पर फली को घिसकर शहद के साथ चटाते हैं। कच्ची फली के रस मे प्याज का रस और काली मिरच का चूर्ण मिला सेवन करने से अतिसार व आम मे लाभ होता है।

इसके वीजो को सिरके के साथ पीसकर विच्छू आदि विषैले जानवरो के दश पर लगाने से शाति प्राप्त होती है।

इसके शेप गुणधर्म और प्रयोग लाल कचनार जैसे ही हैं।

यूनानी मतानुसार—

यह सर्द तर है। कोई इसे पहले दर्जे मे गरम और तीसरे मे खुश्क (रूक्ष) तथा कोई दूसरे दर्जे मे गरम और तर वतलाते है।

इसकी छाल-पाचक है, तथा कफ, पित्त, खांसी और पेट के कीडो को नष्ट करती है। जड की अन्तरछाल के

आप्टा (झिंझा) कचनारभेद

Bauhinia racemosa Lan.
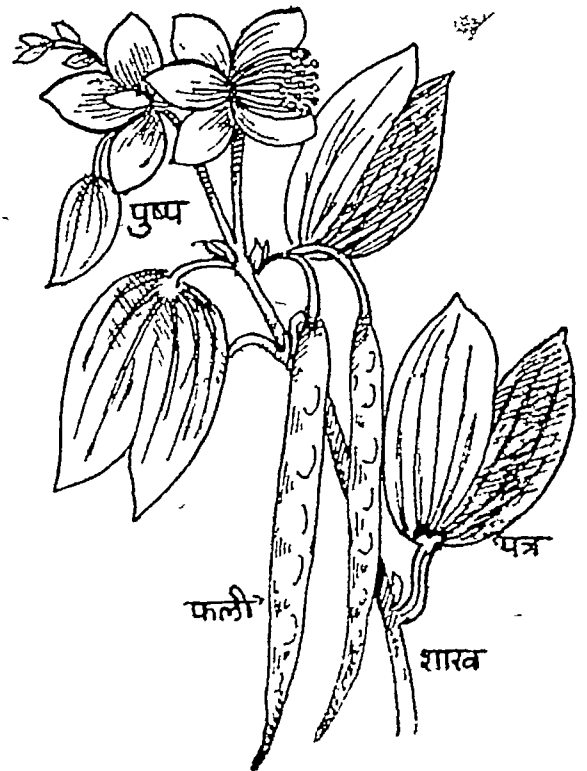
काढे से प्लीहा की पित्तजन्य सूजन और उदर कृमि नष्ट होते है। इसके काढे से कुल्लिया करने से मुख-पाक दूर होता है, दात मजबूत होते हैं।

पत्तो के चूर्ण से आमातिसार दूर होता है।

फूल—मूत्राशय की ठड को दूर करते, भूख को वढ़ाते, आखो के विकारो को दूर कर रोशनी को वढाते, दस्तो को रोकते, ववासीर के खून को और स्त्री के अत्यार्तव को रोकते हैं तथा पित्त, रक्तदोप, विप, प्लीहोदर, प्रमेह, अजीर्ण, कफ आदि नाशक हैं। ये मादक भी है। शराब वनाने के काम आते है।

फली—सर्द, खुश्क और मीठी, दीर्घपाकी, सग्राही है, दस्त, वादी, और कफनाशक है, किन्तु पित्त और दमा (श्वास) पैदा करते है। इसके चूर्ण से अतिसार मे लाभ होता है। (खजाइनुल अदविया)

आधुनिक मतानुसार—

इसमे कषायिन (Tannin) की प्रचुरता है। यह अतिसारनाशक और कृमिघ्न है। इसकी फलिया मूत्रल हैं तथा वीज वल्य और वाजीकरण (Aphrodisiac) हैं।

मूल छाल का क्वाथ यकृत शोथनाशक और कृमिघ्न है। इसके सूखे पत्ते, कलिंया और फल अतिसार मे प्रयोजित होते हैं। वीजो का व्यवहार पौष्टिक, वाजीकरण की दृष्टि से किया जा सकता है। जहरीले जानवरो के दशजन्य क्षत पर इसके वीजो को सिरके (Vinegar) के साथ पीसकर कल्क रूप (Paste) मे लगाने से उत्तम लाभ होता है।

—डा० नाडकर्णी (इं मे मेडिका)

इसके पत्तो का रस काली मिर्च और प्याज के रस के साथ अतिसार व आम की दशा मे देते हैं, अथवा इसके फूलो को इस दशा मे देते हैं।

इसकी छाल को औटाकर जो एक प्रकार का कत्था तैयार किया जाता है वह अतिसार मे कायनो नामक कत्था जैसा ग्राही कार्य करता है। इसके कोमल पत्तों को पीसकर ज्वर की सिरपीडा पर प्रलेप किया जाता है। वायगोला पर पत्तो का रस कालीमिर्च के साथ देते हैं। —डा० देसाई (औ सग्रह)

रोगानुसार प्रयोग—

(१) मूत्रकृच्छ्र पर—इसके पत्तो को रात्रि के समय जल मे भिगोकर प्रात रोगी की अवस्थानुसार ॥ भग दो तोला तक उसका रस निकाल कर उस मे समभाग दूव और शक्कर या मिश्री मिला पिलावें। इस प्रकार दिन मे ४ वार पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। इस प्रयोग से मूत्र साफ होने लगता है। उसका गदलापन, श्वेतसार आदि दूर हो जाता है। पत्तो का रस सहज नही निकलता। अत उन्हे पानी मे भिगोना पड़ता है, या पानी डालकर पीसना पडता है।

(२) कष्ट प्रसव पर—प्रसवकाल मे वालक शीघ्र वाहर न निकलता हो तो इसके वृक्ष को प्रणाम कर जिसका उपनयन न हुआ हो ऐसे किसी लडके के द्वारा या कुमारी कन्या के द्वारा वृक्ष के पत्ते तुडवाकर उन्हें उस स्त्री के शरीर पर ऊपर से नीचे की ओर फेरने मात्र से शीघ्र प्रसव होता है। ऐसा कहा जाता है।

—वैद्य अप्पा शास्त्री साठे (घरगुती औपधि)

अथवा किसी छोटे वालक को नग्न कर स्नान करावें, फिर वह इस वृक्ष की छाल को अपने दातो से निकालकर तैसे ही मुख मे धारण किये हुए उस स्त्री के पास जाकर उसके मस्तक पर छाल को थूक देवे। शीघ्र प्रसव होता है।

—वैद्य श दा शास्त्री पदे (व गुणादर्श)

नोट—विच्छू के दंश तथा भूत वाधा आदि पर इसके कई तांत्रिक प्रयोग हैं जो विस्तार भय से यहां नहीं लिखे जा सकते।

(३) श्वेतप्रदर पर—इस वृक्ष के तने की छाल १ से ३ माशे तक लेकर शीतल जल के साथ पीस छान कर सेवन कराने से लाभ होता है।

(४) वातगुल्म और शूल पर—इसके पत्र रस १ से २ तोला मे कालीमिर्च का चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक और ७ वूद तिल तैल मिला पिलावें।

नोट—गंडमाला, गलगंड, ग्रन्थि तथा व्रण आदि पर इसके प्रयोग लाल कचनार के समान ही हैं।

कचरी [Cucumis Dudain]

यह कर्कटी या त्रपुप (Cucurbitaceae) वर्ग की वनौषधि है।

इसे कही कही ऐरालु भी कहते हैं। तथा एक प्रकार की पहाडी ककड़ी जो तरबूज की तरह होती है जो कुमायूँ से सिक्किम तक प्राप्त होती है, उसे भी ऐरालु कहते हैं।

यह ककडी की ही जाति की एक वेल है जो वर्षा ऋतु मे स्वय विशेषत्र. खरीफ की फसल के खेतो मे पैदा होकर वढती, फूलती और फलती है। बीच खेत मे पैदा होने पर किसान लोग इसे उखाड़ कर फेंक देते हैं। कारण यह फसल को नुकसान पहुँचाती है। खेत के वाजू से मेंडो पर यह फूलती फलती रहती है। कडुवी और मीठी के भेद से, वड़ी और छोटी के भेद से या लम्वी व गोल फलवाली के भेद से यह कई प्रकार की होती है। इनमे से छोटे से छोटे चने जैसी फलवाली जो कचरी होती है जिसे हिन्दी मे अगमकी 'चिराटी' विलारी आदि तथा कही कही ग्वाल ककरी भी कहते हैं। वह इस कचरी से भिन्न है। उसका वर्णन 'चिराटी' के प्रकरण मे देखिये।

कचरी की वडी जाति को या वडे वडे फल वाली कचरिया को 'गोपाल ककडो' कहते है। यह ४ या ५ अगुल तक लम्वी, कच्ची दशा मे कडुवी और पकने पर कुछ खटास स्वाद वाली हो जाती है। इसे कही कही रामपेंहटा भी कहते हैं। कोई इसके कच्चे फल को सेंधा और पक कर सूख जाने पर या काटकर सुखाने पर कचरी कहते हैं। कही कही प्राय कच्चे फलो को काटकर सुखाये गये टुकडो को ही 'कचरी' नाम से पुकारा जाता है।

उक्त प्रकार से शुष्क टुकडो को या कचरी को भून कर साग वनाई जाती है। अचार भी रखा जाता है। जयपुर आदि मारवाड के प्रदेशो मे कचरी वहुत होती है। तथा इसके साग आदि का वहा वहुत प्रचार है। जयपुर की कचरी वहुत प्रख्यात है। वह अधिक खट्टी तथा कम कडुवी होती है।

मरुदेश (मारवाड) मे यह अत्यधिक होने से "मरुजा" कहाती है। गोपाल (ग्वाले) इसे वहुत खाया करते है, अत गोपाल ककडी (कर्कटी) इसे कहते हैं।

एक सफेद कचरी होती है, जो ऊपर से श्वेत और इसका रस भी दूध जैसा सफेद निकलता है। इसे धेनु-दुग्धा और गोरक्ष-कर्कटी (गोरख ककडी) कहते हैं। इसे गाय अधिक खाती हैं।

एक चित्र विचित्र रेखा युक्त फलवाली और स्वाद मे खट मीठी कचरी होती है। इसे विचित्र फला, रोचन फला कहते हैं।

छोटी इद्रायन के एक भेद को भी कचरी [पिंहठा] कहते हैं।

वगाल की ओर कचुगाछ नाम का जो एक पौधा है [जिसकी जड मे कन्द होता है] उसी की जात का एक क्षुप वगदेश और चट्टग्राम मे पैदा होता है। इस क्षुप को देशी भाषा मे "कचिरी" कहते है। यह नदी तालावो आदि जलाशय के किनारे वहुत होता है। ध्यान रहे यह प्रस्तुत 'कचरी' से एकदम भिन्न है।

तैसे ही 'कचरी' या 'काचरी' नामक एक भिन्न वनौषधि होती है, जिसे काश्मीर मे 'वादावर्द' कहते हैं।

नाम—

सं.—चिर्भटं, चित्रफला, मृगाक्षी, मृगेर्व्वारु
हिन्दी—कचरी, कचरिया, सेंध, पेंहटा, भकुर, गोरख-ककड़ी, गुराड़ी। मारवाडी—काचरी, सेंध
पजावी—चिब्भड
मराठी—चिभूड, रोंराड़, रोंदणी, टकमके
गुर्जर—चिभडी, कोटीवां, गोठभड़ी, काचरां
बंगला—वनगोमुक, कुन्दुरुकी, काकुड, फुटी
अंग्रेजी—ककुम्बर प्युबेसेंट (Cucumber Pubescent)
,, स्माल (Cucumber Pubacent Small)
लेटिन—क्युक्युमिस डुडेम,
,, प्युबेसेन्स्ट (Cucumis Pubescenst)
,, मेक्युलाटा (C Maculata)
,, नेड्रास पटामस (C Madras Patamus)

उत्पत्ति स्थान—

यह प्राय समस्त भारतवर्ष के खेतो और पहाडी स्थानो मे होती है। विशेषत राजपूताना, उत्तरप्रदेश, पजाब आदि प्रदेशो मे अधिक पैदा होती है।

विवरण—

इसकी बेल खीरे की बेल जैसी, किन्तु उससे लम्बाई मे छोटी लगभग ५ या ६ हाथ लम्बी होती है। यह वर्षाकाल मे प्राय स्वय पैदा होती है, कही कही बोई भी जाती है। इसकी शाखायें खीरे की शाखा जैसी ही पतली तथा काटेदार रोवो से व्याप्त होती हैं।

पत्ते—छोटे ४ इच तक लम्बे और ६ इच तक चौडे, नरम या कोमल होते हैं। आकार प्रकार मे ककडी पत्र जैसे ही होते हैं।

फूल—फूल भी ककडी के फूल जैसे ही किन्तु कुछ छोटे पीले रग के होते है।

फल—प्राय भाद्रपद मास में छोटे लम्ब गोल या अण्डाकार फल लगते है। ये १ से २॥ इच लम्बे, कोई कोई इससे भी बडे ४ या ५ अगुल तक लम्बे होते हैं। इन फलो को ही कचरी कहते है। कच्ची दशा मे ये हरे रग के या हरियाली लिये हुए सफेद रग के अर्थात् चितकबरे रग के, हरे पीले पट्टेदार तथा अत्यन्त कडुवे होते हैं। पकने पर ये पीले पड जाते है। किसी किसी पर लम्बाई के रुख हरी रेखायें होती हैं तथा स्वाद मे खटमीठे हो जाते है। मीठी जाति के फल कच्ची दशा मे ककडी के समान मीठे होते हैं और पकने पर कुछ खटासयुक्त हो जाते है। पकी हुई या अधपकी हुई कचरी मे बडी मीठी सुगन्ध आती है। अत कई लोग केवल सुगन्ध के लिये ही इसे अपने पास रखते हैं और बार बार सू घते रहते हैं। कहा जाता है कि एक प्रकार की कचरी ऐसी मनमोहक सुगन्धयुक्त होती है कि हिरन उसमे आसक्त होकर उसकी बेल के चारो ओर मडराया करते हैं।

बीज—खीरे के बीज जैसे, किन्तु अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। पके बीज का छिलका कुछ काला सा हो जाता है और अन्दर की गिरी पीताभ श्वेत रग की होती है। कच्चे बीज बहुत कडुवे होते है किन्तु पकने पर कुछ खट्टे हो जाते हैं।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

छोटी कचरी—चरपरी, कडुवी, दीपन, रोचक, पाक मे अम्ल, वातपित्त और पीनसरोग नाशक है। परिपक्व दशा मे गरम और पित्तकारक है।

बडी कचरी—कच्ची दशा मे भेदक, स्वादु, लघु, उष्ण, अग्निदीपक, रोचक और पित्तनाशक है। परिपक्व मे मधुर, तृप्तिकारक, हृदय को हितकारी, दाह, शोषनाशक है।

सफेद कचरी—मधुर, रूक्ष, भारी, कफ-पित्तनाशक, ग्राही, मलस्तम्भक, शीतल तथा मूत्रकृच्छ्र, दाह, प्रमेह आदि नाशक है। कच्ची दशा मे कुछ खटासयुक्त कडुवी, पाक मे दीपन, वात प्रकोपक, अभिष्यन्दी और कफ-पित्त नाशक है।

सुखाई हुई कचरी—रूखी, रुचिकारक, दीपन, भेदक, शीतल तथा अरुचि, जडता, कृमि, कडु और ज्वरनाशक है।

नोट—प्राय सर्व प्रकार की कचरिया वातकफकारक, स्वादु (स्वादिष्ट) और शीतल हैं। कच्ची कचरी का साग अतिसार मे उपयोगी होता है। कचरी की जड में अश्मरी (पथरी) नाशक अपूर्व गुण हैं। इनका फूल त्रिदोषनाशक होता है। कचरियां तमाखू पीने वालों को हितकारी हैं।

यूनानी मतानुसार—

यह दूसरे दर्जे मे गर्म और खुश्क है। यह मधुर, गर्म, हल्की, कोठे को मुलायम करने वाली, भूख बढाने वाली, कामोद्दीपक (वाजीकर) तथा बवासीर, अर्द्धांग पक्षाघात आदि वातरोगो को और कफ के रोगो को आराम करती है। वात रोगो पर यह सोठ के साथ दी जाती है। इसमे सुगन्ध होती है अत यह दिल और दिमाग को ताकत पहुँचाती है। दीपन-पाचन चूर्णों मे यह प्राय मिलाई जाती है। किसी किसी को यह शीघ्र कब्जी पैदाकर ज्वरग्रस्त बना देती है (यह बात मेरे भी अनुभव मे आई है—लेखक)। पक्की या कच्चा कचरी पेशाब को बढ़ाती है। इसे कुछ दिन सेवन करने

से पथरी टूट-फूटकर निकल जाती है (यह बात सशयास्पद है, इसकी जड मे यह गुण हैं, न कि फल मे —लेखक)।

कचरी को गोश्त के साथ मिलाकर पकाने से यह उसे शीघ्र गला देती है और उसे सुगन्धित कर देती है। दाल वगैरहो मे प्राय पाचनार्थ और वातनाशार्थ इसे डालते है। इसकी धूनी बवासीर मे बहुत लाभकारी है। इसका छिलका जल्दी हजम नही होता।

कचरी उष्ण प्रकृति वालो को हानिकारक होती है, सिर दर्द पैदा कर देती है। ऐसी दशा मे धनिया या दही का सेवन कराना चाहिए। ये इसके दर्पघ्न हैं। इसके प्रतिनिधि—अजीर, अण्डखर्बूजा आदि है। इसकी मात्रा ४॥ माशे तक है।

प्रयोग—

(१) अश्मरी (पथरी) पर—इसकी जड १ तोला तक लेकर जौकुट कर रात्रि के समय १० तोले पानी मे भिगोकर प्रात अच्छी तरह उसी जल मे पीस छानकर पिला दें। नित्य एक बार इसी प्रकार पिलाने से ७ दिन मे लाभ होता है। यदि पिलाते समय उसमे १ या २ माशे तक जवाखार मिला दिया जाय तो और शीघ्र लाभ होता है। इस कार्य के लिये बडी कचरी (गोरख कचरी) की जड लेना चाहिये।

(२) मूत्रकृच्छ्र पर—बडी कचरी के बीज ६ माशे तक लेकर चावल के धोवन के साथ पीस छानकर तथा उसमे थोडा लाल चन्दन घिसकर पिलाने से लाभ होता है।

(३) वातज उदर शूल पर—छोटी या बडी कचरी का चूर्ण २ से ४॥ माशे तक लेकर उसे ५ तोले तक उष्ण जल मे मिलाकर पीने से लाभ होता है।

कचलोरा (Pithecolobium Bigeminum)

इस शिम्बी वर्ग (Leguminosae) की बनौषधि का उल्लेख आयुर्वेदिक या यूनानी निघण्टुओ मे नही मिलता।

कर्नल कीर्तिकर, मेजर बसु, कर्नल चोपडा आदि आधुनिक वनौषधि-शोधको ने इसका सक्षिप्त वर्णन अपने अपने ग्रन्थो मे किया है।

हिन्दी मे कही कही इसे कचोरा' भी कहते हैं, किंतु ध्यान रहे प्रसिद्ध औषध कचूर या कचोरा इससे एकदम भिन्न हैं।

एक 'कचलू' नामक अन्य पेड होता है, जो जमुना के पूर्व दिशा मे, हिमालय पर पाच से लेकर ९ हजार फीट की ऊचाई तक पाया जाता है। यह पेड देखने मे बहुत सुन्दर दिखलाई देता है। पत्तो के भेद से इसकी कई जातिया है। इसके गुणधर्म अज्ञात हैं। केवल प्रसगवश इसकी सूचना यहा करदी गई है। 'कचालु' घुइयाँ (अरवी) का एक भेद है।

नाम—

हिन्दी—कचलोरा, कचोरा। बरमी—दर्नापंथी, दनपिन्थि। लेटिन—पायथेकोलोबियम बायगेमिनम।
मिमोसा लुसिड़ा (Mimosa Lucida)

उत्पत्ति स्थान—

गगानदी से पूर्व की ओर, अर्थात् पूर्वी हिमालय की तलैटी के जगलो मे, तथा दक्षिण के पश्चिमी घाट, कोकण और मद्रास प्रान्त के जगलो मे यह वनौषधि बहुतायत से पैदा होती है।

विवरण—

इसका पेड मध्य श्रेणी का विशेप ऊचा नही होता है। शाखायें बहुत कम होती हैं। पत्ते बडे मुलायम, किंतु तीखी नोक वाले तथा कचनार के पत्र जैसे दो भागो मे विभक्त होते हैं।

फूल—पत्रकोण मे निकली हुई पुष्प डडी बडी कोमल होती है और उस पर छोटे छोटे पीताभ श्वेत और कुछ लाल रंग के पुष्पो के गुच्छे लगते हैं। पुष्पो मे कोई विशेप गध नही होती है।

फली—लाल तथा कुछ बादामी रग की, चपटी एक या दो अगुल तक लम्बी होती है। फली के भीतर ५ से लेकर ८ तक बीज, सिरस के बीज जैसे किंतु आकार मे कुछ बडे चिपटे चक्राकार होते हैं।

गुणधर्म –

यह कुष्ठ और मधुमेहनाशक है। कुष्ठ रोग मे इसके पत्तो का काढा पिलाया जाता है तथा ऊपर से व्रणो मे लगाया, लेप किया जाता है। उत्तम लाभकारी है।

पत्तो का काढा सिर के बालो पर लगाने से वे खूब बढने लग जाते है।

बरमा मे इसके बीजो का प्रयोग मधुमेह रोग को मिटाने के लिये किया जाता है।

इसमे एक प्रकार का विरेचक गुण प्रधान क्षार पाया जाता है, जो आतो को लाभ पहुँचाता है। अपने प्रभाव से आत्रस्थित दूषित वायु को निकाल कर उसे साफ कर देता है। शरीर के दोषो को यह स्वास और मूत्रमार्ग द्वारा बाहर निकाल देता है। किंतु हृदय पर इसका विष जैसा अनिष्ट असर होता है।

कचूर (Curcuma Zedoaria)

यह हारिद्रवर्ग (Scitamineae) की एक वनोषधि है। वर्ग का वर्णन हलदी के प्रकरण मे देखिये।

आयुर्वेदीय निघण्टुकारो ने इसे कर्पूरादि वर्ग मे, तथा किसी किसी ने पिप्पल्यादि वर्ग मे इसे लिखा है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे कचूर का स्वतत्र प्रयोग नही मिलता[1]। चरक के हिक्का और श्वास निग्रहकारी दश औषधियो मे जो 'शटी' नाम आया है, वह इसी कचूर का है। शट्यादि चूर्ण, शट्यादि क्वाथ, घृत आदि जितने प्रयोगो मे 'शटी' नामक द्रव्य की योजना की गई है, वह कचूर ही है। कई महानुभाव 'शटी' नाम से 'कपूर-कचरी' का आग्रह करते हैं · चरक सू स्थान अ २७ मे गुणधर्म दर्शाया गया है।

इन दोनो के पर्यायवाची शब्दो मे 'शटी' शब्द लिख कर इस विवादास्पद प्रश्न को खडा कर दिया है कि क्या ये दोनो एक ही है या भिन्न भिन्न ?

हमारे विचार से ये दोनों एक ही वर्ग के होने तथा दोनो [केवल दोनो ही नही इनके नरकचूर आदि जो भेद हैं उनकी भी] की जडो मे 'शटा' अर्थात् जटा सदृश कुछ भाग होने से इनके पर्यायवाची शब्दों मे 'शटी शब्द की योजना की गई। इनके गुणधर्मों मे भी बहुत कुछ समानता पाई पाती है, तथा एक के अभाव मे दूसरे को लिया जा सकता है। तथापि ये भिन्न भिन्न हैं। कचूर का

कचूर
Curcuma zedoaria Rose.

पुष्प
पत्र
कटा हुआ कन्द
कन्द
मूल

[1] चरक सू. अ. ४ देखिये।

पौधा क्षुप रूप मे होता है। कपूर कचरी का कुछ लता-रूप मे होता है। इनके उत्पत्तिस्थान भिन्न भिन्न हैं। कचूर के पत्तो मे कालापन होता है, तथा इसी से यह 'काली हलदी' कहाता है। कपूर कचरी के पत्तो मे कालापन नही होता, किंतु इसे 'छोटा कचूर' कही कही कहते हैं। आगे कपूर-कचरी का प्रकरण देखिये।

कोई कोई कचूर को 'वन हल्दी' कहते हैं। किन्तु वास्तव मे वनहल्दी इससे भिन्न है। यद्यपि दोनो एक ही वर्ग की एव क्षुप जाति की है। तथा गुणधर्म मे भी साम्य है। तथापि दोनो की जडो में, रगो मे, रुचि और गध मे भिन्नता है। 'जगली हल्दी' का प्रकरण देखिये।

कचूर को एकागी या मुरामासी कहना भी भूल है। मुरामासी यह कपूर-कचरी का एक भेद है। इसके लिये मुरामांसी का प्रकरण देखिये।

कचूर को कोई लोग 'नरकचूर' कहते हैं। किन्तु वस्तुत 'नरकचूर' यह कचूर की एक बडी जाति का नाम है। लेटिन मे इसे Zingiber Zerumbel कहते हैं।

कचोरा नाम का एक शालिधान्य भी होता है। वह पित्त दोष नाशक माना गया है।

कचोर या कचोरा, कचलोरा पेड को भी कहते हैं। देखिये पीछे "कचलोरा" का प्रकरण।

नाम--

सं०—कचूर, गंधमूल, वेधमुख्य, द्राविड, शटी
हिन्दी—कचूर, कालीहल्दी, आम आदा
मराठी—कचोर, नरकचोरा, काचरी
गुर्जर—कोचूर, पटकचूरो, कचूरी
बगला—कोचूर, गंधशटी, शोरीकोचूर
अंग्रेजी—लांग जेडोआरि (Long Zedoary)
लेटिन–कर्क्युमा जेडोरिया अमोमम जेरम्बेर
,, जेरम्बट (C Zerumbet)
,, सीसिया (C Saesia)

उत्पत्ति स्थान–

यह पूर्व हिमालय मे तथा सिंहलद्वीप, और ब्रह्मदेश के पश्चिम भाग मे स्वयमेव खूब पैदा होती है। कोकण और बम्बई प्रात मे कही कही खेतो में बोई जाती है। जगल मे भी उत्पन्न होती है। हल्दी के खेतो मे भी यह हो जाती है।

विवरण–

वर्षा के प्रारम्भ मे ही इसके क्षुप उग उठते हैं। इसके पौधे हलदी के पौधे जैसे ही होते हैं। केवल पत्तो और जडो मे अन्तर रहता है।

पत्ते—कुछ काले रग के, एक से दो फुट तक लम्बे डठल की ओर सकुचित, मध्य भाग मे चौडे तथा आगे की ओर क्रमश. सिकुडते हुये छोर मे अनीदार होते हैं। पत्तो का साग बनाया जाता हैं, तथा मत्स्यभक्षक लोग इन पत्तो को मछलियो के भूनने मे काम लाते हैं।

जड—इसकी जड अनेक गाठो से युक्त होती है। ये गाठें अदरख की गाठ जैसे खुरदरी, सफेद वर्ण की, ठोस या जाडी होती हैं। गाठ को मध्य भाग से काटने पर भीतर कुछ चक्राकर गोल नील धारा दिखाई देती है। विशेषत कपूर कचरी की गाठ मे ये गोलाकार नीली धारायें अधिक प्रमाण मे दिखाई देती हैं।

उक्त गाठयुक्त जडो को खोद कर तथा पानी मे जोश देकर या वैसे ही कचरा कर सुखा लेते हैं। इसी को कचूर कहते है। यह स्वाद मे कडुवी, चरपरी कपूर जैसी तथा गध मे सोठ की गध जैसी होती है। इस गाठ को कूट कर चूर्ण करते समय इसकी महक इलायची की महक जैसी चारो ओर फैलती है। जमीन से खोदने पर ये गाठें चारो ओर से जटा सदृश ततुओ से वेष्टित रहती हैं। इसीसे ये 'शटी' कहाती हैं।

ये कचूर की गाठें शुष्क, कटी हुई सिंहलद्वीप (सीलोन) और चितगाग (ब्रह्म देश के पश्चिम) से बम्बई के बाजार मे बहुतायत से आती हैं। इन गाठो को उबाल कर सुगध और गुणवर्धनार्थ आचारो मे डालते हैं। तथा सुगध एव त्वग्रोगनाशार्थ अन्य द्रव्यो के साथ तैल, उबटन आदि मे मिलाते हैं।

पुष्प—इसके फूल प्राय पत्तो के साथ-ही साथ उगते हैं। ये पुष्प नलिकाकार पीले रग के गुच्छो मे लगते हैं। पुष्प के भीतर ही त्रिकोणाकार बीज कोष होता है तथा बीज श्वेत अडाकार होते हैं।

किन्तु ध्यान रहे, सब ही कचूर के क्षुपो मे पुष्प नही आते। एक कचूर के पौधे जैसा ही अन्य पौधा होता है, जिसे महाराष्ट्र मे शिलिंद या 'शिदोडा' कहते है। इसके लम्बे, पीले एव कुछ लाल रग के सुगन्धयुक्त पुष्प श्रावण मास मे खूब लगते हैं, जो देव पूजा के काम मे लिये जाते है। इसकी जड या गाठ कचूर की गाठ जैसी ही होती है, किन्तु गुण मे उसकी अपेक्षा अधिक उष्ण और स्वाद मे विशेष चरपरी होती है। आगे गुणधर्म मे इसके विशेष गुणो का उल्लेख देखिये।

नोट—कचूर के पौधे में फल या फली नहीं लगती। कपूर कचरी में फली लगती हैं।

गुणधर्म—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

रस मे यह चरपरा व कडुवा, वीर्य में उष्ण तथा विपाक मे कटु (चरपरा) तथा लघु (हलका), दीपन, रुचिकारी, हृद्य (हृदय को हितकारी), मुख को स्वच्छ करने वाला और कफ, वात, प्लीहा, गुल्म, अर्श, कुष्ठ, कास, श्वास, कृमि, हिक्का, वातज्वर, अजीर्ण, अपस्मार, मुख की जडता, व्रण, गलगड, गडमाला, अरुचि आदि नाशक है।

यह अपने तिक्त, कटु, लघु, उष्ण गुणो से कफनाशन का कार्य तथा उष्ण वीर्य द्वारा वातशमन का कार्य करता है। किन्तु उष्ण प्रकृति मे इसके सेवन से रक्त-पित्त प्रकोप होने का भय है। इसीसे इसे रक्तपित्त प्रकोपक भी कहा गया है।

अपने सुगन्धयुक्त तिक्त कटु रसो के द्वारा यह मुख और आमाशयान्तर्गत् श्लेष्मा को दूर कर पाचक-पित्त की वृद्धि करता है जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर क्षुधा बढती है। इस कार्य के लिये इसके चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। उक्त प्रकार से मुखान्तर्गत् कफ के हट जाने से तथा जाठराग्नि के प्रदीप्त होने से जिह्वा मे रुचि बढती है, अरोचक का नाश होता है। अग्निमाद्य-जन्य अपान व समान वात की विकृति से पैदा हुए अर्श और गुल्म रोगो मे यह इसी प्रकार लाभ पहुँचाता है।

इसके कटु रस और उष्ण वीर्य के कारण अन्नपचन क्रिया एव आन्त्र मे रस शोषण क्रिया यथास्थित होते रहने से स्रोतसों मे दोषों को सचित होने का अवसर ही नही मिलने पाता। अत कोष्ठगत दूष्य आदि तथा कफज कृमियो का स्वयमेव नाश हो जाता है। किन्तु इसमे दोष इतना ही है कि इसका कटु विपाक होने के कारण कुछ कोष्ठबद्धता होती है, दस्त साफ नही उत-रता। अत इसके साथ अनुलोमक या सारक द्रव्य की योजना आवश्यक होती है।

प्राय आमकफादि आम द्रव्य पचनमार्ग मे या धातुपाक प्रणाली मे पैदा होकर फुफ्फुस, कण्ठ, प्राणवह स्रोतस और शिरो भाग मे वात के कार्य मे रुकावट डालता है, जिनमे प्राण व उदानवात का प्रकोप होकर कास, श्वास, हिक्कादि विकारो का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी दशा में कचूर या इसके समान ही अग्नि को दीपन करने वाली तथा उर स्थान मे यथायोग्य कार्य करने वाली औषधियो की योजना करनी पडती है जो आम रस का निर्माण ही न होने देवें और यदि हो गया हो तो उसके पाचन मे पूर्णतया समर्थ हो। ऐसे द्रव्यो के प्रभाव से आम कफ का नाश होकर वात का योग्य विधि से सचरण होने लगता है तथा प्राण व उदान का अनुलोमन होने से कफ, श्वास, हिक्का आदि प्राणान्तक व्याधिया शान्त हो जाती हैं। फिर वे अपना सिर नही उठा सकती। इसलिये चरक ने श्वास और हिक्काहर औषधि पाठ मे कचूर को यथायोग्य स्थान दिया है। कास, श्वास और हिक्का मे इसके चूर्ण को शहद के साथ वार वार चटाते है।

कचूर कफनाशक होने से क्लेद प्रधान कुष्ठ और व्रणो मे इसका प्रयोग लाभदायक होता है। इसके वस्त्र-पूत महीन चूर्ण को विगडे हुए व्रणो मे बुरकने या भर देने से व्रणान्तर्गत् कृमियुक्त दुर्गंध नष्ट होकर शुद्धि हो जाती है।

कचूर को नित्य प्रात उठते ही मुख मे चवाकर थूकने और गर्म जल से कुल्ले करने से लालास्राव, मुख-विरसता, मुख जाड्य आदि का नाश होता है।

इसके रस या क्वाथ को पिलाने से, तथा इसकी गाठो की माला बना बच्चो के कंठ भाग मे धारण कराने से कृमि व्याधि दूर होती है।

इसके प्रयोग से हाथ की हथेली और पैरो के तलवो की जलन दूर होती है। कपूर कचरी के अभाव मे इसे जल के साथ पीस कर सिर के वालो पर लगाने से केश वृद्धि होती है। तथा जूँ, लीख आदि नष्ट होते हैं।

शिलिन्द नामक कचूर के कन्द के क्वाथ या चूर्ण शहद के साथ सेवन से खांसी मे, कन्द को जल के साथ पीस कर पीने से कामला मे, कन्द के क्वाथ मे मधु मिलाकर सेवन से ज्वर मे, और कन्द को घृत मे घिस कर नेत्रो मे आजने से फूला, जाला, माडा आदि नेत्र-रोगो मे लाभ होता है।

कचूर को पाक मे मिलाकर या वैसे ही सेवन करने से स्त्री की प्रसूतिजन्य दौर्वल्य और उदरशूल मे; कचूर के साथ छोटी पीपल और दालचीनी मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिश्रण कर सेवन से प्रतिश्याय [जुखाम] मे, कचूर के साथ कालीमिर्च, मुलहठी और मिश्री को औटाकर पिलाने से श्वासनली के रोगो [कास, श्वास आदि] मे विशेष लाभ होता है। कचूर को फिटकडी के साथ पानी मे पीस लेप करने से चोट और मोच मे, तथा केवल इसके ही लेप करने से शरीर की वातपीडा मे लाभ होता है।

यूनानी मतानुसार—

यह दूसरे दर्जे मे गर्म और खुश्क है। जोश को पैदा करता, हृदय, मस्तिष्क व मेदा को ताकत देता, भूख वढ़ाता, रुकावटो को खोलता, काम शक्ति को और चरवी को वढाता, मूत्रल, आर्तव प्रवर्तक तथा वमन, अतिसार, हृदय की धड़कन, कफ की खासी, वालको की प्रवाहिका पाहु आदि का नाशक है। यह विषैले जानवरो के विष को दूर करता है।

चेहरे पर इसका लेप करने से मुहासे नष्ट होते हैं। मुख मे रखने से दांतो के दर्द को दूर करता, चवाने से सर्द व तर खासी को तथा लहसुन व प्याज की दुर्गन्ध को दूर करता है। वात कफ की सूजन पर इसके प्रलेप से सूजन उतरती है, दर्द मिटता है। कोई कोई इसे दस्तावर कहते हैं। इसके एक वडे टुकडे को कमर मे वाध रखने से वीर्य स्खलन नही होता, स्तभन होता है। काम-शक्ति वढ़ती है।

हानिकर्त्ता—यह दिमाग, हृदय और फुफ्फुस को हानि पहुँचाता है, सिर दर्द पैदा करता है। इसके हानि-निवारक—धनिया, वनफसा, सफेद चन्दन और जटामासी है। इनके प्रतिनिधि—अजीर और अदरख हैं। इसकी मात्रा—३ माशे से ७ मासे तक है। इसकी शक्ति ३ वर्ष तक कायम रहती है।

आधुनिक मतानुसार—

इसमे एक प्रकार का सारभूत (Essential) तैल [जो पीताभ श्वेत, चिपचिपा, कपूर जैसे गध व स्वाद युक्त होता है] तथा एक कडुवा मुलायम राल, सेन्द्रिय क्षार (Organic acids), गोद, श्वेतसार (Starch), शर्करा, कर्कशतुत (Crude Fibre), राख, अल्व्युमिनाइड्स, कक्युमीन अरविन्स (Curcumin arabins) आदि पाये जाते हैं।

यह उत्तेजक, कोष्ठ वात प्रशमन, श्लेष्मनिस्सारक मृदुकर (Demulcent), मूत्रल, और शोणितोत्क्लेशक (Rubefacient) है।

इसकी जड मे सुहावनी कपूर जैसी गध आती है। यह अफरा, अजीर्ण, तथा दस्तावर औषधियो के मरोडे आदि दोषो के निवारणार्थ उपयोगी है। मुख के अन्दर की चिपचिपाहट को दूर करने के लिये तथा विशेषत गायक लोग कण्ठ शुद्धि के लिये इसे चवाते हैं। इसका उपयोग कठ क्षोभ की दशा मे और वातनलिका (Wind-pipe) के उर्ध्वभाग के प्रदाह मे भी किया जाता है। शीत और ज्वर की दशा मे कफ तथा पित्तजन्य कास (Bronchitis) के निवारणार्थ या शमनार्थ इसकी योजना क्वाथ रूप मे पीपल, दालचीनी, मुलैठी, शहद और मिश्री के साथ की जाती है। इसके चूर्ण को उवटन रूप से शरीर पर तथा फिटकरी मिलाकर इसे चोट पर लगाते हैं। अशुद्ध या विकृत रक्त के कारण हुये चिर-कालीन चर्मरोगो के निवारणार्थ जो सौन्दर्यवर्धक प्रयोग वनाये जाते है उनमे सुगधित द्रव्य के रूप मे इसकी योजना की जाती है। इसकी ताजी जड का प्रयोग श्वेत-प्रदर और सुजाकजन्य प्रस्राव को रोकता है। मृदुकर या स्निग्धता सपादक, श्लेष्मनिस्सारक और सुगध गुणो के लिये इसकी मात्रा १ ड्राम [३ माशे ६ रत्ती] की है।

बालकों के कृमिरोग पर इसके कन्द का स्वरस दिया जाता है। यह प्राय अन्य औषधियो के साथ व्यवहार मे लाया जाता है तथा औषधीय तैलों के निर्माण कार्य मे प्रयुक्त होता है। इसकी पत्ती का स्वरस जलोदर मे दिया जाता है।

इसकी शुष्क जड के साथ पतग (Caesalpinia Sappan) की लकडी का चूर्ण मिश्रण करने से एक प्रकार का लाल चूर्ण तैयार होता है जिसे अबीर कहते है। होली के अवसर पर इसे पानी मे घोल कर शरीर पर छिडकते हैं। —डा नाडकर्णी (इ मे मेटिका)

यह वातहर और मूत्रजनन है। प्रसवावस्था मे स्त्री को इसके ताजे कन्दो का पाक दिया जाता है। शीत से अङ्ग वेदना की दशा मे तथा विषम ज्वर मे इसके साथ पीपल और दालचीनी मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला सेवन कराते है तथा इसे पीसकर शरीर पर लेप करते हैं। सुजाक मे मूत्र साफ होने तथा वेदना नाशार्थ इसका फाट दिया जाता है। उदर रोग मे इसके पत्तो का रस देते हैं। —डा. देसाई (औ सग्रह)

कम्बोडिया मे इसकी जड उत्तेजक, पौष्टिक और शोधित मानी जाती है। सिर के चक्कर मे यह विशेष लाभ पहुँचाने वाली है। बेचैनी और भ्रम (सिर के चक्कर) मे इसका अर्क उपयोग मे लेते हैं। प्रसूति के पश्चात् लगभग १४ दिन तक दिन मे ३ बार इसे प्रसूता स्त्री को दिया जाता है। आक्षेपक से पीडित बच्चो के शरीर पर माताऐं इसकी जड को चबाकर लगाती है। —डा रीड

सिद्ध साधित प्रयोग—

[१] कर्चूरादि चूर्ण—कचूर के साथ भुई आमला, सोठ, मिर्च और पीपल को समभाग कूट पीसकर चूर्ण बना रक्खें।

मात्रा—१॥ माशा चूर्ण, गुड और घृत (गुड व घृत ६-६ माशे) के साथ मिला सेवन करने से घोर प्रतिश्याय (जुखाम), पार्श्व पीडा, हृदय शूल और वस्ति शूल का नाश होता है।

'शठ्यादि' चूर्ण के अन्य प्रयोगो को ग्रथो मे देखिए।

[२] कर्चूर क्वाथ—कचूर २ तोला जौकुटकर १ सेर जल मे अष्टमांश क्वाथ सिद्ध करें।

मात्रा—२॥ तोला से ५ तोला तक प्रातःसाय थोडी शक्कर और शहद मिला सेवन करने से वमन, क्षुधानाश, ज्वर, भ्रम आदि मे लाभ होता है।

कर्चूरादि क्वाथ—शठ्यादि गण[1] के द्रव्य कचूर, पोखरमूल, कटेली, काकडासिंगी, धमासा, गिलोय, सोंठ, पाठा, चिरायता और कुटकी समान भाग लेकर क्वाथ सिद्ध करें।

इसके सेवन से सन्निपात ज्वर, खांसी, हृदय की जकडन, पसली की पीडा, श्वास और तन्द्रा नष्ट होती है।

नोट—शठ्यादि क्वाथ, गुटिका और घृत के प्रयोगों को शास्त्रों में देखिये। कचूर का मुरब्बा-शर्बत आदि भी बनाये जाते हैं।

रोगानुसार प्रयोग—

[१] कास, श्वास और हिक्का पर—कचूर के साथ अतीस, नागरमोथा, काकडासिंगी, हरड, सोठ, हींग (भुनी हुई) और सेंधानमक समभाग लेकर चूर्ण बनावें। इस चूर्ण को तक्र (छाछ) मे मिला चाटने योग्य लेह तैयार कर लें। यह लेह नित्य प्रात तयार कर थोडा थोडा दिन मे ४ या ५ बार चाटने से कफ की खांसी दूर होती है। साधारण कास तो कचूर के टुकडे को मुख मे रखकर चूसते रहने से ही दूर हो जाती है।

कचूर के साथ सुगन्धवाला, कटेली की जड और सोठ समभाग लेकर अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर खाड और घृत के साथ पीने से पित्तज खासी नष्ट होती है।

श्वास और हिक्का पर—कचूर के साथ भुई आवला, भारंगी, शङ्खपुष्पी, सुगन्धवाला और पोखरमूल १-१ भाग तथा खाड ८ भाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—१ से ४ माशे तक शहद के साथ सेवन से

---

[1] शठी पुष्कर मूल च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा।
गुडूची नागर पाठा किरातं कटुरोहिणी॥
एष शठ्यादि कोवर्ग. सन्निपात ज्वरापहः।
कास हृद् ग्रह ....॥
—चक्रदत्त

लाभ होता है ।

उक्त प्रयोग मे शङ्खपुष्पी और भारंगी के स्थान मे कमलकन्द, दालचीनी, तथा नागरमोथा, तुलसी की जड़, पीपल, अगर और सोठ इतने द्रव्य अधिक मिलाकर खाड ८ भाग के स्थान मे केवल दो भाग मिश्रण कर तैयार चूर्ण और भी लाभकारी होता है।

[२] ज्वरो पर—कचूर के साथ सोठ, पित्तपापडा, देवदार, अनन्त मूल, कटेली, नागरमोथा, कुटकी और चिरायता समभाग लेकर अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर उसमे शहद और पीपल का चूर्ण मिला सेवन करने से विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर और सन्निपात का नाश होता है। यह क्वाथ सूतिका रोग मे भी उत्तम लाभकारी है। अनन्तमूल के स्थान मे कई लोग धमासा लेते है।

त्रिदोषज ज्वर मे दोषो को पचाने के लिये कचूर के साथ वच, सोठ, कायफल, गिलोय और धमासा समभाग लेकर अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर सेवन कराने से लाभ होता है।

अजीर्णजन्य ज्वर—कचूर १ तोला जौकुट कर आध सेर जल मे अष्टमास क्वाथ सिद्धकर उसे दिन मे ३ वार पिलावें। प्राय सर्व प्रकार के ज्वरो पर इसे दे सकते हैं।

कफज ज्वर पर—कचूर के साथ पोखरमूल, भारगी, पाठा, कायफल, देवदार, पित्तपापड़ा, नीम की छाल और काकर्डासिगी समभाग का अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर सेवन करावें।

[३] वमन पर—कचूर के साथ दारुहल्दी, हरड, सोठ और पीपल समभाग लेकर चूर्ण बनावें।

मात्रा—१॥ माशा चूर्ण को घृत ६ माशे मे मिला तक्र के साथ सेवन करने से त्रिदोपज वमन भी नष्ट होती है। अथवा—

कचूर १ तोला का आधा सेर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर उसमे ३ माशे शहद और ६ माशे खाड मिला वार वार १ से ५ बूद तक पिलावें। इससे पित्त-प्रकोप की शान्ति होती है। और वमन दूर होता है।

[४] आमवात पर—कचूर के साथ सोठ को पीस-कर इसे पुनर्नवा (साठी) के क्वाथ मे मिलाकर पीने से एक सप्ताह मे लाभ होता है। अथवा—

कचूर के साथ सोठ, हर्र, वच, देवदार, अतीस और गिलोय समभाग लेकर अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर सेवन करने तथा पथ्य मे रूक्ष आहार करने से लाभ होता है।

[५] ग्रहणी रोग पर—कचूर के साथ सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, जवाखार, सज्जीखार, पीपलामूल, विजौरे नीबू का गूदा और सैंधानमक समभाग लेकर चूर्ण बनाले।

मात्रा—१॥ से ३ माशे तक चूर्ण काजी के साथ प्रात साय सेवन करावें।

[६] गुल्म पर—कचूर के साथ समभाग सोठ मिला अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर उसमे थोडा कालानमक मिला प्रात साय सेवन करावें।

गुल्म पर शट्यादि काकायन गुटिका भी उत्तम कार्य करती है। इसका प्रयोग 'बृहन्निघण्टुरत्नाकर' मे देखिए। अथवा चरक सहिता चि स्था अ ५ में शट्यादि गुटिका देखिए।

[७] हृल्लास, वमन व हैजा पर—कचूर के महीन चूर्ण को तुलसी पत्र स्वरस के साथ खरल कर मिर्च जैसी गोलियाँ बना रक्खें। बार बार १ से ३ गोलियां खाने से मितली और वमन मे लाभ होता है। वमन के लिये देखिये ऊपर प्रयोग न ३।

हैजा पर—कचूर की ताजी जड का स्वरस और प्याज का रस एकत्र पिलाते रहने से लाभ होता है।

[८] अङ्गमर्द, थकावट, शैथिल्य पर—कचूर के पत्ते और अरणी के पत्ते दोनो को पानी मे पकाकर उस जल से स्नान कराने से लाभ होता है।

[९] अर्श पर—इसका महीन चूर्ण ६ माशे तक नित्य प्रति प्रात साय जल के साथ १४ दिन सेवन करने से परम लाभ होता है।

[१०] क्षुधामाद्य पर—इसका महीन चूर्ण लगभग १॥ या २ माशे लेकर उसमे वह अच्छी तरह भीग जाय, सन जाय इतना शहद मिला नित्य प्रात चाटने से भूख खुलकर लगती है। जठराग्नि प्रदीप्त हो उठती है।

[११] अडकोप के शोथ पर—अण्डकोप पर वात

के कारण सूजन आ गई हो तो कपूर के चूर्ण को जल मे गाढा लेप बना आग पर थोडा गर्म कर फोतों पर अच्छी तरह लगाकर ऊपर से इसी का पान अथवा खाने का पान बांध देने से शीघ्र लाभ होता है।

कटकरंज [Caesalpinia Bonducella]

करज और कटकरज तथा इनके भेद व उपभेद आयुर्वेदानुसार ये सब प्राय गुडूच्यादि वर्ग मे लिये गये हैं।

आधुनिक निघण्टु के मतानुसार ये सब शिंबी वर्ग (Leguminosae) मे लिये गये हैं। इस बृहत् वर्ग मे लगभग ७००० भिन्न भिन्न वनस्पतियो का समावेश होने से पहिचान की सुविधा के लिये पुष्पभेद से इसके मुख्य तीन उपवर्ग किये गये हैं। एक कटकरज वर्ग (Caesalpinicae)—इसमे कटकरज, पतग, अमलतास आदि है। दूसरा गोकर्ण या कोयल वर्ग (Papilionaceae)—इसमे करज वृक्ष, कोयल, पलास, मुलैठी आदि हैं और तीसरा बबूल वर्ग (Mimoseae)—इसमे बबूल, खैर, सीकाकाई आदि हैं।

इनमे से कटकरज वर्ग की वनौषधियो के पुष्प आकार मे भ्रमर या उडती हुई मधुमक्खी जैसे होते है तथा पुष्प की पखुडिया नीचे ऊपर छोटी बडी एव सबसे ऊपर की बडी पखुडी मध्यभाग की नलिका के भीतर रहती है। पुष्प की पखुडियो की नलिका मध्यभाग के निम्न स्तर पर रहती है। [1]अन्य उपवर्ग का वर्णन प्रसगानुसार देखिए।

करज (वृक्ष करज) और कटकरज (लता करज) के कई भेद होने से तथा उनका स्पष्ट उल्लेख या वर्णन न होने से आयुर्वेदीय ग्रथों मे उनकी पहिचान या प्रयोगों में बडी गडबडी होती है। सुश्रुत, वाग्भट आदि ग्रंथों मे करजद्वय शब्द आया है। उस पर टीकाकार डल्हण जी लिखते हैं—करजद्वयमिति एकश्चिरबिल्वो, द्वितीय कटकी विटप करज। —सुश्रुत टीका अ० ३८

अर्थात्—सुश्रुत जी के मत से चिरबिल्व या नक्तमाल एक प्रकार का करज है। यह करज वृक्ष है तथा दूसरा विटप (क्षुप) करज, जिसे वास्तव मे पूतिक कहते हैं। यह दूसरे प्रकार का करज है।[2]

पूति या पूतिका शब्द की योजना आयुर्वेदिक ग्रंथों मे उक्त दोनों करजो के पर्यायवाची सज्ञाओं मे की गई है। अत और भी भ्रम हो जाता है। वास्तव मे पूति करज से कटकरज ही माना जाना चाहिये। कारण पूति अर्थात् दुर्गन्ध की विशेषता इसी मे पाई जाती है।

चिरविल्व, नक्तमाल आदि सज्ञाओं का विचार आगे करज वृक्ष के प्रकरण मे देखिये। यहा तो केवल कटकरज का ही वर्णन अपेक्षित है।

इसमे कांटो की प्रचुरता होने से यह कटकरज (कटक-करज) कहाता है और विटप या क्षुप रूप होने से बगाल मे इसे ही नाटा करज कहते हैं।

लता करज और कटकरज दोनो एक ही जाति के

---

[1] वर्ग लक्षण—पुष्पावाहक, द्विबीजपर्ण, विभक्तदल, ऊर्ध्वस्थगर्भाशय, पर्ण संयुक्त दल, पत्राकार, पत्ते एकान्तर, उपपत्र प्राय नहीं होते, पुष्प रचना कलगी या मंजरी जैसी, पुष्प बाह्यकोष के दल ५ बहुधा अलग अलग एक के ऊपर एक, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ५, नरकेसर १० अलग अलग भिन्न लम्बाई के तथा फलस्वरूप में लम्बी या गोल फलिया लगती हैं। इस वर्ग का मुख्य गुणधर्म-शोधन है। यह वर्ग पृथ्वी के उष्णकटिबन्ध में क्षुप, झाडी या वृक्ष रूप में पाया जाता है। —डा० देसाई

[2] वाग्भट जी का कथन है—'एक' पूतिकरंजश्चिरबिल्वाख्य'। द्वितीय नक्तमालाख्य ' (वा० सू० अ० १५) ॥ वाग्भट जी चिरविल्व को ही पूतिकरंज कहते हैं। यह अपना अपना मत है। किन्तु दूसरा नक्तमाल नामक करंज है, ऐसा लिखकर उन्होंने करंजद्वय से सूचित पूतिकरंज नामक विटप या लतारूप कटकरंज तथा नक्तमाल नामक वृक्ष रूप करंज इन दोनों की अभिव्यक्ति स्पष्ट कर दी है। —लेखक

है, दोनो में काटे होते हैं। भेद इतना ही है कि लता करज के क्षुप कुछ बेल या लता रूप मे होते हैं। इसे लेटिन मे सीसेलपानिया बाडक (Caesalpinia Bonduc) या सीसेलपायनिया जयाबो (C Jayabo) कहते हैं। यह भारतवर्ष में बहुत कम देखी जाती है।[1]

कटकरज के समान ही एक बडी काटेदार झाड़ी होती है जिसे 'घृत करज' कहा जाता है। वह वास्तव मे याकेरी मूल है। इसका वर्णन वाकेरीमूल के प्रकरण मे देखिये। गुच्छकरज भी इसीका भेद है।

कटकरंज के वर्ग की ही एक झाडीनुमा बेल और होती है। उसे भी करज, रेलू आदि हिन्दी मे तथा लेटिन में सीसेलपायनिया सेपायरिया (C Sepiaria) कहते हैं।[2]

नाम—

सं.—कुबेराक्षी, पूतिकरंज, दु:स्पर्श, लताकरंज, प्रकीर्ण्या

हि—कटकरंज, करंजुवा, गटाइन, गटेरन
मारवाडी—किणगच, कुलगच। कुमाऊं—करौंज
मरेठी—सागरगोटा, गजगा, वागेराकरंज।
गुर्जर—कांकच, कांकचिया, करवट, सागरगोटा, कचकां
बगला—डहरा, नाटाकरंज, कांटा करंज, नाटक फल,
अंग्रेजी—फीवरनट (Fever nut), फिजिक नट (Physic nut), बांडकनट (Bonduc-nut) निकर ट्री (Nicker-tree), मोलुका बीन (Molucca-been)
लेटिन—सीसेलपायनिया बांड्युसेला।
सी. बांडक (C. Bonduc), सी. क्रिस्टा (C Christa)

उत्पत्तिस्थान—

यह प्राय: उष्ण प्रदेशो मे होने वाली औषधि समस्त भारतवर्ष मे खेतो की बाडो या इधर उधर की झाडियो मे प्रचुरता से पाई जाती है। विशेषत: बगाल, बम्बई, त्रावनकोर, कारोमण्डल किनारा, और बर्मा के समुद्रतटवर्ती देशो मे अधिकता से होती है। पहाडो पर २५०० फुट की ऊंचाई तक यह पाई जाती है।

कंटकरंज
Caesalpinia crista Linn.

---

[1] यह सीलोन, मलाया प्रायद्वीप और वेस्ट इन्डीज में बहुत होती है। इसे अरब में बुन्दुक। तेलगु में गच्च्य अंग्रेजी में बेजोर नट (Bezoar nut) कहते हैं। इसके पत्ते ऋतुस्राव नियामक है और जड़ रक्तातिसार नाशक है। —लेखक

[2] आयुर्वेद निघण्टुओं मे इनके अतिरिक्त उदकीर्य(षडग्रन्थ) अङ्गारवल्ली, महाकरंज, रीठाकरंज (रीठा वास्तव में करंज से भिन्न है) आदि कई करंज से सम्बन्धित नाम पाये जाते हैं। जिनमे पाठकों को और भी भ्रम हो जाता है। उक्त करंजद्वय भेद के अतिरिक्त बंगाल में—अम्लकरंज विषकरञ्ज माकड़ाकरञ्ज और गेटेकरञ्ज नाम और देखे जाते हैं। इनमें से अम्लकरञ्ज तो वास्तव में करौंदा (करमर्दक) है। विष करञ्ज यह अङ्गारवल्ली या महाकरञ्ज है। माकडा या मर्कटी करञ्ज उदकीर्य है तथा गेटे करञ्ज षडग्रन्थ है। आगे प्रकरणानुसार इनका वर्णन देखिये। —लेखक

रेलू करज—इसे ऐला कांदो उडी आदि हिन्दी में, चिल्लारी-चिल्लारी आदि मरेठी एव गुजराथी में, बहामा सोपान (Bahama Soppan) तथा अंग्रेजी और लेटिन में (Caesalpinia Sepiaria) कहते हैं। इसकी क्षुप के सदृश बेल-प्राय: भारत में सर्वत्र होती है। पत्ते ६ से १४ इञ्च तक लम्बे होते हैं। ये पत्ते मीठे पौष्टिक मृदुरेचक ज्वर-नाशक ऋतुस्राव नियामक तथा पित्तविकार को शान्त करते हैं।

विवरण—

इसके प्रसरणशील क्षुपो का खूब विस्तीर्ण फैलाव होता है। इसकी प्रचुर कटकयुक्त शाखा प्रशाखायें परस्पर मे गुथी हुई, अन्य वडे पेडो के आश्रय से ३० से ५० फुट तक ऊपर चढ जाती हैं। जहा इसके बीज गिर जाते हैं, वही वर्षाकाल मे इसके क्षुप उग उठते हैं, तथा जूने क्षुपो मे नूतन पत्र फूटते हैं। माली और किसान लोग अपने वाग और खेतो के रक्षार्थ इसे चारो ओर वोते हैं।

मूल—इसकी मुख्य जड जो सुदृढ़ और मोटी होती है, जमीन मे वहुत अन्दर तक जाती है, तथा इसमे असख्य काटे या उपमूलें चारो ओर को जमीन मे धसे हुये रहते हैं। मूल की अन्दर की लकडी श्वेत रग की ऊपरी छाल वादामी रग की गध और स्वाद मे कड़ुवाहट होती है, किंतु पत्ते और बीजो की अपेक्षा यह बहुत ही कम होता है।

शाखायें—इसकी उगली से लेकर हाथ के पहुँचे जैसा मोटी, तथा उन पर अधिकता से खडे पीताभ, पतले एव मजवूत काटे होते हैं। शाखा के अत्यत मोटे भाग पर ये काटे कुछ कम होते हैं। छाल हलके भूरे रग का होता है। अन्दर की लकडी दृढ होती है।

पत्ते—उक्त शाखाओ पर विषमवर्त्ती १०-१४ इन्च लम्बी उपशाखायें या मोटी सीकें निकलती हैं, तथा इन उपशाखाओ पर समवर्त्ती ३ या ४ इच लम्बी सीकें होती हैं, और प्रत्येक सीक पर ६ से १० तक जोडेदार पत्ते होते है। ये पत्ते सिरस के पत्र जैसे ही, किंतु कुछ अधिक लम्बाई लिये हुये गोलाकार होते हैं। ये तीन चौथाई इन्च से १ या १॥ इन्च तक लम्बे और आधे से तीन-चौथाई या १ इन्च तक चौडे होते हैं। पत्र के प्रत्येक जोड के वीच मे क्षुद्र तीक्ष्ण काटे प्रचुरता से होते है।

फूल—वर्षाऋतु मे पत्र कोण या पत्र-डठल की जड से जो कटकयुक्त सीकें निकलती हैं, उन पर पीतवर्ण पुष्प गुच्छ या मजरिया लगती हैं। पुष्प की पखुडिया दो-तिहाई इन्च से आध इन्च तक लम्बी, किंचित् अण्डाकार नुकीली तथा हलके पीले रग की होती हैं। प्रत्येक पुष्प मे प्राय ५ पखुडिया होती हैं, इनमे वीच की कुछ लाल रग की होती है। पुकेसर १० और स्त्री केसर १ होता है, जो पुकेसर की अपेक्षा कुछ जाटा नाटा, तथा भूरे रग के रोवो से व्याप्त रहता है।

फली—का उद्गम प्राय फूल के मध्यभाग से होता है। श्रावण या भाद्रपदमास मे फूलो के झड जाने पर इसका कटकयुक्त फलिया निकल आता हैं। ये गोल दीर्घाकार ३ इच तक लम्बी और १॥ या ३ इन्च चौडी होती हैं। जो लताकरज (C Bonduc) भारतवर्ष मे वहुत कम होता है उसकी फली प्राय ६-७ अगुल लम्बी और २॥ या ३ अगुल चौडी होती है। कच्चा दशा मे ये पीताभ हरितवर्ण की तथा माघ या फागुन मास मे पक जाने पर या सूखने पर भूरे रग की हो जाती हैं। पककर फूटने पर इसके अन्दर के वीज नीचे विखर जाते हैं।

वाज—प्रत्येक फली मे १ से ३ या ४ तक गोल वेर या कौडी जैसे आधे से तीन चौथाई व्यास के वीज होते हैं। इन वीजो को ही करजुवा या सागरगोटा कहते हैं। वीज का ऊपरी छिलका अत्यधिक कड़ा, चिकना तथा गहरे घूसर वर्ण का होता है। वीज के भीतर दो दलवाली एक तैलयुक्त पीताभ-श्वेत गिरी होती है। यह गध मे उग्र और खूब कडवी होता है। इसमे लुआव, श्वेतसार, अडलाल (Albumin) और १४ से १५ फीसदी तैल पाया जाता है।

गुणधर्म—

आयुर्वेदानुसार—

कडुवा, कसैला, उष्णवीर्य, पाक मे कटु, दीपन, यकृद्-उत्तेजक, अनुलोमन, रेचक, कभी कभी मलरोधक, रक्त शोधक, वेदना स्थापन, वल्य या कटुपौष्टिक (ज्वरोत्तर दौर्बल्यनाशक), शोथहर, कफ, वात, कुष्ठ, कृमि, ज्वर, प्रमेह, अर्श और श्वासनाशक है। यह गर्भाशयोत्तेजक और मूत्रल भी है।

बीज मज्जा या गिरी—उष्णवीर्य, रूक्ष, दीपन, सकोचन, वल्य, नियतकालिक ज्वर प्रतिवधक, शोथघ्न, रक्त स्तम्भक, वेदनाहर, शूल, शोथ, गुल्म, आध्मान, श्वास, वातविकार, सूतिका ज्वर, चर्म रोग, मूत्रविकार, श्वेत प्रदर एव व्रण नाशक है। अण्डवृद्धि पर इसका लेप लाभदायक होता हैं।

पत्र—रेचक, कफवात, श्लीपद, शोथ एवं कृमि नाशक हैं।

फूल—उष्णवीर्य तथा कफवातनाशक हैं।

यूनानी एवं आधुनिक मतानुसार—

क्षयजन्य कास और श्वास पीडित रोगी को इसके बीजो का क्वाथ सेवन कराने से लाभ होता है।

इसके बीजो की गिरी के तैल की मालिश से त्वचा कोमल होती है, व्यङ्ग, व्रण, आक्षेप, पक्षाघात, आमवात या गठिया मे लाभ होता है। कर्णस्राव की दशा में इस तैल को कान मे डालते रहने से लाभ होता है।

अजीर्ण मे हींग के साथ अथवा काली मिरच के चूर्ण के साथ इसकी गिरी का चूर्ण मिला कर तक्र के साथ सेवन से लाभकारी है। रक्तातिसार मे गांजा के साथ इसका उपयोग किया जाता है।

इसका तैल उष्ण और वीर्यनाशक है। इस तैल मे समभाग नीबू का रस मिलाकर कई प्रकार के चर्म रोगों पर लगाया जाता है।

इसके बीज की गिरी लवङ्ग के साथ सेवन कराने से उदरवेदना तथा वमन मे लाभ होता है। इसके पत्र उष्ण वीर्य, आध्मानहर और रसायन हैं। इनका प्रयोग ग्रहणी अपस्मार, उदराध्मान, अतिसार, कुष्ठ, प्लीहा एव यकृत के विकारो पर किया जाता है।

इसकी जड का रस शीतल और स्निग्ध है। यह सुजाक रोग के विकृत व्रणो के शोधनार्थ प्रयुक्त होता है।

इसके पत्तो के क्वाथ का बफारा एव उसी क्वाथ का सिंचन वातवेदना दूर करता है। तथा इसका उपयोग भगन्दर मे क्षत के रोपणार्थ एव शोधनार्थ किया जाता है।

इसके पुष्पो को मुख मे धारण करने से उग्र कास, गण्डमाला, मधुमेह एवं स्त्रियो के सोम रोग मे लाभ होता है।

इसके पत्रो का स्वरस शीतपित्त, जीर्ण ज्वर, उपदश की द्वितीयावस्था मे उत्पन्न चर्मविकार तथा कृमि एव यकृत विकार मे प्रयुक्त होता है।

प्रसूतावस्था या सूतिका ज्वर मे इसके बीजो के प्रयोग से विशेष लाभ होता है, गर्भाशय का सकोच होता है, ज्वर कम हो जाता है, शूल दूर होता है, तथा आर्तव शुद्धि होकर यदि कही व्रण हुआ हो तो वह भी ठीक हो जाता है। यह गर्भधारणा के भी काम मे आता है। वन्ध्यत्व को दूर करता है।

मात्रा—

बीज मज्जा चूर्ण ५ से १५ रत्ती। मूल चूर्ण–१० से २० रत्ती और पत्रस्वरस की मात्रा १ से २ तोले तक औषधि कार्यार्थ प्रयुक्त होती है।

मुख्य प्रयोग–

१ ज्वर पर—इसके बीजो की गिरी को धूप मे सुखा कर महीन चूर्ण कर लें। फिर इसमें चौथाई भाग छोटी पीपल का चूर्ण मिला शहद के साथ खूब खरल कर छः छः रत्ती की गोलिया बनालें। विषमज्वर (मलेरिया) मे दिन मे २ या ३ बार जल के साथ सेवन कराने से लाभ हो जाता है। ज्वर के उतरने के बाद इसका प्रयोग करें। प्रात भूखे पेट मे इसे नही देना चाहिये पहले रोगी को गरम दूध पिलाकर थोडी देर बाद सेवन करावें अन्यथा वमन होने की शका रहती है। यह प्रयोग उदर रोग मूर्च्छा गर्भावस्था, पित्तजन्य प्रलापयुक्त जीर्ण ज्वर इत्यादि दशाओ मे बालक, युवा वृद्ध, स्त्री आदि सबको नि शक दिया जा सकता है। इस के सेवन करने से पूर्व रोगी की उदर शुद्धि जुलाब की औषधि या केवल शुद्ध रेंडी के तेल द्वारा करा देनी चाहिये, जिससे शीघ्र लाभ होवे।

अथवा—इसकी गिरी और कालीमिर्च समभाग का चूर्ण ८ से १५ रत्ती की मात्रा मे दिन मे दो बार जल के साथ सेवन करने से बारी से आने वाला ज्वर दूर हो जाता है। साधारण ज्वर मे भी यह लाभदायक है।

अथवा—इसकी गिरी भुनी हुई २ तोले के साथ छोटी पीपल १ तोला, जीरा ६ माशे तथा बबूल के कोमल पत्ते ६ माशे खूब खरल कर थोडा शहद या जल मिला चने जैसी गोलिया बनालें। ज्वर आने के एक घण्टा पूर्व दो गोली जल के साथ दिन मे ३ बार देने से ३-४ दिन में ज्वर बिलकुल दूर हो जाता है।

२ अण्डकोष वृद्धि या जलार्बुद और अर्श पर—इसकी कोमल पत्ती और बीज गिरी को अथवा केवल पत्तियो को ही पीस कर रेंडी तैल या घृत मे थोडा गरम कर अण्डकोष पर मोटा मोटा लेप कर बाध देने से वेदनायुक्त अण्डकोष का शोथ या उसमे हुई जल की वृद्धि धीरे धीरे कम हो जाती है।

जलोदर की सूजन पर इसकी गिरी को कुछ लवङ्गों के साथ थोडा जल मिला पीसकर लेप करने से लाभ होता है। इन प्रयोगो से अर्श पर भी लाभ होता है।

अथवा—इसके बीजो की गिरी के चूर्ण को एरण्ड-पत्र पर बुरक कर और थोडा गरम कर अण्डकोष पर बाधने से तथा इसके बीज ३ नग भूनकर (भूभल या गरम राख मे परिपक्व कर) अन्दर की गिरी निकाल कर महीन चूर्ण कर प्रतिदिन प्रात (रोगी को थोडा दूध या कुछ खिलाकर) जल के या शहद के साथ सेवन कराने से ७ दिन मे लाभ होता है। अण्ड की जल वृद्धि दूर होती है।

३ उदरशूल और कृमि नाशार्थ—इसकी गिरी, सचर नमक (कालानमक), सोठ और भुनी हुई हीग सब समभाग महीन चूर्ण कर ३ से ६ माशे की मात्रा मे उष्णोदक के साथ सेवन करावें। अथवा—इसकी गिरी और लौंग दोनो का चूर्ण एकत्र खरल कर सेवन कराने से शूल मे लाभ होता है। साथ ही साथ इसकी गिरी के चूर्ण को हुक्के मे रख कर धूम्रपान करावें। शीघ्र लाभ होता है।

उदरकृमि नाशार्थ—इसके एक बीज की गिरी को ११ दाने वायविडग के साथ पीस उसमे थोडा गुड मिला खिलाने से दूसरे दिन ही अन्दर के सब कृमि गिर पडते है।

४ गर्भधारणार्थ—इसकी गिरी को स्त्री के दूध मे पीस कर उसमे स्वच्छ महीन वस्त्र भिगो बत्ती बना योनि मार्ग मे धारण कर कुछ देर बाद निकाल लेवें। पश्चात् सम्भोग करने से गर्भ धारणा होती है। जिसे गर्भस्राव बार बार हो जाता हो उसे भी इस प्रयोग से लाभ होता है। किन्तु सगर्भा स्त्री को इसका प्रयोग नही करना चाहिये।

५ मसूढे और दात विकार पर—यदि मसूढों में सूजन, व्रण (Gum boils) हो, वे पिलपिले हो गये हो तो इसकी गिरी को भूनकर उसमे थोडी फिटकरी और भूनी हुई सुपारी एकत्र मिला चूर्ण करें। इस मजन के उपयोग से लाभ होता है।

शरीर में हुए व्रण या जख्म मे कीडे पड गये हो तो इसकी गिरी का तैल लगाने से लाभ होता है।

६ नेत्र में फूली पड गयी हो तो इसकी गिरी का महीन चूर्ण कर उसमे पलास फूल के रस की २१ भावनायें देकर लम्बी लम्बी बत्तिया बना लें। इसे जल मे घिस कर लगाते रहने से कुछ दिनो मे फूला निकल जाता है।

नोट—इस लताकरंज के योग से—करजारिष्ट, विषमज्वरघ्नी वटी, अर्शनाशक चूर्ण आदि कई औषधियां निर्माण की जाती है। शास्त्रों मे इन्हें देखिये।

कटभी [Careya Arborea]

वटादि वर्ग की इस वनौषधि के वृक्ष ऊचे ३० से ६० फुट तक होते हैं। पुष्प भेद से इसके श्वेत और कृष्ण दो प्रकार हैं। श्वेत कटभी जिसके वृक्ष बहुत ऊचे होते हैं वह महाश्वेता और जिसके वृक्ष छोटे कद के होते हैं वह ह्रस्व श्वेता कही जाती है। इनके फलो का आकार प्रकार कुछ कुम्भ (घड़ा) जैसा होने के कारण इसे कुम्भी भी कहते हैं। [चित्र कुम्भी मे देखिये]

भारतवर्ष के कई प्रान्तो में तथा सीलोन, श्याम आदि देशो मे इसके वृक्ष जङ्गलो मे पाये जाते हैं। इसके पत्ते महुये के पत्ते जैसे लम्बे, गोलाकार, चौड़े, मुलायम और तीक्ष्ण नोक वाले होते हैं। पुष्पो की मजरी सा लगती है। किसी वृक्ष मे श्वेत वर्ण के और किसी मे कुछ

काले वर्ण के फूल, कुछ दुर्गन्धयुक्त होते हैं। इसमे ४ पखुडियां होती है।

इसके फल हरितवर्ण के गोलाकार, मुलायम, गूदेदार अण्ड खरबूजे जैसे किन्तु इनसे छोटे होते हैं। वृक्ष की छाल भूरे रङ्ग की और लकडी सुदृढ होती है। इसके दस्ते वनाये जाते हैं।

इसकी छाल, फल, फूल और पत्ते औषधि कार्य मे लिये जाते हैं।

नाम—

संस्कृत—कुम्भी कटभी कंभीर पर्पटद्रुम मधुरेणु आदि
हिन्दी—कटभी कटही हारियल
मरेठी—कुम्भा वाकुम्भा वंगला—कम्ब कुम्भ वकुम्भ
गुर्जर—कुम्वि टीवरू वाघुम्वा
अंग्रेजी—पाटन ओक (Patana oak, Careystree)
लेटिन—केरिया आरवोरिया (Careya Arborea)

गुणधर्म—

दोनो प्रकार की कटभी तिक्त या चरपरी, उष्ण, रूक्ष, वात, कफ, अजीर्ण, शूल, आध्मान, प्रमेह, प्रदर, अर्श, नासूर, कृमि, व्रण, श्वेतकुष्ठ, गुल्म, सिर के रोग, और विषनाशक है।

इसका फल—कसैला, सकोचक और कफ एव शुक्र नाशक हैं। कोई कोई इसे धातु और कफवर्धक मानते हैं तथा इस वृक्ष के निर्यास या गोंद को गुरु, वृष्य, वल्य और वायुनाशक मानते हैं। इसकी छाल सकोचक और व्रण शुद्धिकारक, शोथ और प्रदरादि नाशक है।

प्रयोग—

[१] व्रण और शोथ पर—प्रथम व्रण शुद्धि के लिये उसे इसकी छाल के क्वाथ से धोते है। पश्चात् रोपणार्थ पत्तो की पुल्टिस वनाकर वाधते हैं। यह पुल्टिस दिन मे ३-४ वार वदली जाती है। दुष्ट व्रण पर भी लाभ होता है। शोथ पर छाल को पीसकर वांधने से पीडायुक्त सूजन दूर होती है।

[२] कास [खासी] पर—विशेषत शुष्क कास पर इसके फूल और ताजी छाल के कल्क को शहद के साथ चटाते हैं या छाल के चूर्ण की गोली वना मुख मे धारण करते है।

[३] श्वेत प्रदर पर—इसके फूल या छाल का चूर्ण ६ से १२ रत्ती की मात्रा मे शहद और घृत के साथ दें।

[४] अजीर्ण पर—फूलो का अचार वनाकर खाने और छाल के क्वाथ को पीने से लाभ होता है।

नोट—इस वनौषधि का प्रयोग सर्प और विच्छ के दंश पर भी लाभदायक माना जाता है। इसकी ताजी छाल को कूट पीसकर दंश स्थान पर लगाते हैं तथा छाल के रस को पिलाते हैं। आधुनिक अनुभवात्मक प्रयोगों से इसकी विषनाशक शक्ति प्रमाणित नहीं होती है। आगे देखिये कुंभी।

इस वनौषधि के योग से एक तैल सिद्ध किया जाता है जो अपस्मार (मिरगी) की अवस्था में रोगी के सिर पर मर्दन किया जाता है। देखिये कटभी-तैल योगरत्नाकर ग्रन्थ में।

कटमोरंगी (Ormocarpum Sennoites)

इस वूटी का वर्णन कर्नल चोपरा ने अपने ग्रन्थ [Indigenous drugs of India] मे किया है। उसका ही सक्षिप्त साराश यहां दिया जाता है। तामिल भाषा मे इसे कट्टमुरङ्गई, लेटिन में आरमोकार्पम सेन्नायटिस कहते हैं।

भारतवर्ष के दक्षिण प्रान्तो मे इसकी छोटी छोटी शाखावाली झाडिया होती है। पत्ते फैले हुए महीन कटकयुक्त एव खुरदरे होते है। फूल छोटे छोटे अल्प प्रमाण मे लगते है। छाल मुलायम तथा स्वाद मे फीकी होती है। जड़ उत्तेजक और पौष्टिक होती है। पक्षाघात और कटिवात मे औषधि रूप से व्यवहृत होती है।

कटरालि [Cerabera Odollam]

कर्नल चोपरा के उक्त ग्रंथ से ही इसका सक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। तामिल भाषा मे इसके कटरालि और लेटिन मे सरवेरा ओडोलम, वगला मे ढाकुर, डाबुर आदि अन्य अन्य प्रान्तो के नाम हैं।

इस बूटी के क्षुप दक्षिण मे समुद्र के किनारे विशेषता से होते हैं। इसकी शाखायें अपेक्षाकृत मोटी और इनके अन्त मे ही पत्ते बरछी के आकार के एव तीक्ष्ण नोकदार होते हैं। पत्र मे नसें बहुत एव नाजुक होती हैं। फूल बडे आकार के पीलापन लिये हुए श्वेत एव सुगन्धित होते हैं। फल हरितवर्ण का बहुत चिकना होता है।

इस बूटी के प्रत्येक अङ्ग मे अम्ल (खट्टा) दूधिया किन्तु विषैला रस भरा रहता है। इसके पत्ते आदि तोडने से इस प्रकार का रस टपकने लग जाता है। इसके पत्ते सूखने पर एकदम काले पड जाते हैं।

गुणधर्म—

इसका रस वामक और रेचक, फल निद्रा लाने वाला एव तीव्र विषैला होता है। यह कुत्तो के मारने के कामो मे लाया जाता है। इसमे ग्लुकोसाइड, सरवेरिन और ओडोलिन नामक कटु तत्व पाये जाते हैं।

कटसरिया [Barleria Prionitis]

यह पुष्प वर्ग की वनौषधि आयुर्वेदानुसार आरग्वधादि, वरुणादि और वीरतरादि गणो मे गुणानुसार ली गई है। पुष्प के आकार प्रकारानुसार आधुनिक मत से यह वासादिवर्ग (Acanthaceae) का औषधि है। इस वर्ग का वर्णन अडूसा मे देखिये।

यह पुष्प भेद से—पीला, नीला या वेंगनी, श्वेत और लाल चार प्रकार का होता है। इनमे से पीली फूल वाली कटसरैया (पियावासा) प्राय सर्वत्र प्राप्त होने से ही ऊपर लेटिन नामो मे से बारलेरिया प्रायोनिटिस एक ही नाम दे दिया गया है। तथा औषधि प्रयोगो मे इसीका विशेष उपयोग किया जाता है। शेष तीन प्रकार की कटसरैया भी प्रयत्न करने से प्राप्त हो सकती है। २००० फीट की ऊचाई पर ये विशेष पाये जाते है।

कटसरैया के क्षुप उष्ण पर्वतीय प्रदेशो मे अधिक होते हैं। पजाव, वम्बई, मद्रास, आसाम, लका, सिलहट आदि प्रान्तो मे विशेष पाये जाते हैं। सब के क्षुप प्राय एक समान २ से ५ फीट तक ऊचे होते हैं।

यहा प्रत्येक का वर्णन अलग अलग दिया जाता है—

(१) पीत पुष्प कटसरैया—

(*B PRIONITIS*)

नाम—

सं —कुरण्टक, पीतकुरव, कुरण्ड, सहचरी, पीत झिण्टी,
हि.—पीली कटसरैया, पीला पियावांसा, झिण्टी,
म —पीवला कोरण्टा, कालसुंद,
गु.—कांटा सेरियो। वगला—पीत झांटीगाछ, कांटा झांटी
ले—वरलेरिया प्रायोनिटिस (B Prionitis)

परिचय—

इसके बहुशाखी क्षुप प्राय सर्वत्र वाग वगीचो का वाडो मे, खेतो के किनारे इत्यादि स्थानो पर देखे जाते हैं। शाखायें मूल से निकलती हैं। पत्र आरम्भ मे छोटे, लम्बे, एव नोकदार होते हैं। पत्र और शाखा के मध्य मे तीक्ष्ण नोक वाले, बबूल के काटे जैसे लम्बे जोडे से निकलते है। पुष्प वर्षा व शीत ऋतु मे विशेषत कार्तिक मास से ही फूलना शुरू होते हैं। ये छोटे छोटे किंचित घण्टाकार कुछ लालिमायुक्त पीले वर्ण के होते हैं। फल–बीज कोष

कटसरैया पीत

Barleria prionitis Linn.
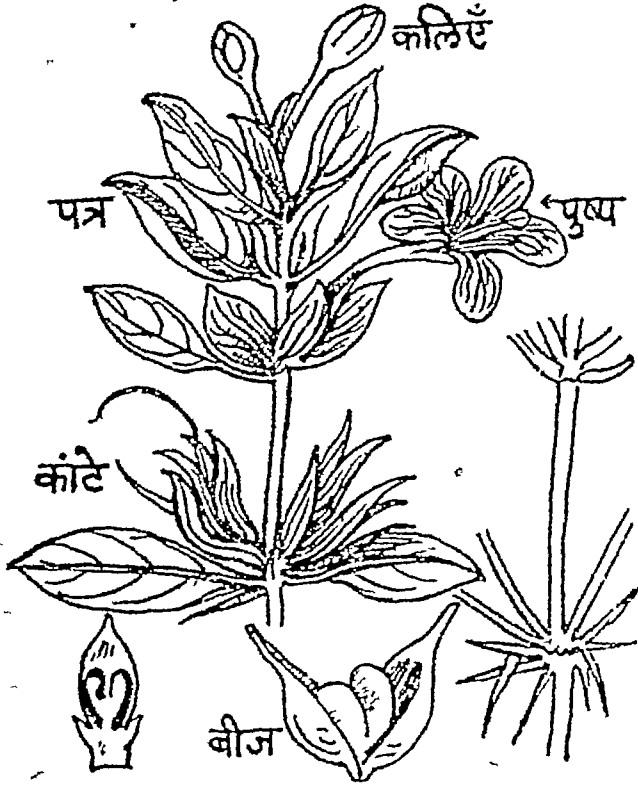
या डोडी भी कांटो से युक्त १ इञ्च लम्बी और चिपटी होती है तथा प्रत्येक बीजकोष मे २-२ बीज चिपटे अण्डाकार होते हैं। ये बीजकोष प्रारम्भ मे हरे रग के, पकने पर भूरे वर्ण के होजाते हैं।

गुणधर्म—

शीतल, कुछ कसैली, उष्ण, दीपन, कटुपौष्टिक, कफ वात नाशक, शोथ, तृष्णा, विदाह, खुजली, रक्त विकार, त्वग्रोग, कृमि, सूतिकारोग, दत विकार को दूर करती है। यह केशो के लिये हितकारी है, अर्थात् वालो को पुष्ट, काले करती और वढाती है।

मात्रा—चारो कटसरैया के स्वरस की मात्रा १ से २ तोला। क्वाथ मात्रा—५ से १० तोला।

मुख्य प्रयोग—

(१) सूतिका रोग पर—इसकी जड़ का क्वाथ प्रति दिन सायकाल मे सिद्ध कर उसे दूसरे दिन प्रात छानकर थोडी छोटी पीपल का चूर्ण मिला कुछ दिन पिलाने से सूतिका के सर्व प्रसूति सम्वन्धी उपद्रव शात होते है।

स्त्री के गर्भ धारणार्थ—इसके मूल को दूध मे पीस छानकर पिलाते हैं।

(२) दात और मसूढो के विकारो पर—दत शैथिल्य और कृमिविकार हो तो इसके पत्तो को पानी मे उवालकर दिन मे कई वार मुख मे धारण कर कुल्ले करने से दातो का हिलना डुलना एव शूल या पीड़ा भी दूर होती है। दांत सुदृढ होते हैं। इस प्रयोग के लिये नीले फूल वाली कटसरैया विशेष उपयोगी होती है।

मसूढो मे शोथ हो, वे पिलपिले हो गये हो (Spongy gums) उनसे रक्तस्राव होता हो तो इसके पत्र-स्वरस मे, किंचित् सेंधानमक मिला मुख मे वार वार धारण कर कुल्ले करने से लाभ होता है।

पत्तियो को सेंधानमक के साथ पीस कर मजन करने से; अथवा--पत्तियो के साथ थोडा अकरकरा पीस कर लगाने या डाढो के नीचे दवाये रखने से दात या डाढ का दर्द दूर होता है। रक्तस्राव भी वन्द हो जाता है।

(३) व्रण पर—इसके पत्ते और जड की छाल को पीस तिल तेल मे मिला, तथा उसमे तेल से दूना पानी मिला पकावे। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर लगाने से व्रण शुद्ध होकर शीघ्र ठीक हो जाते हैं। यह तेल वात की पीडा, दाद, खुजली मे भी लाभदायक होता है।

पत्तो की राख को अच्छी तरह छानकर शुद्ध घृत मे मिला लगाने से नही पकने वाले फोडे तथा विकृत व्रण भी ठीक हो जाते हैं।

पाददारी—विवाई हो या हाथ पैर फटते हो तो इसके पत्र स्वरस का मर्दन करने या धीरे धीरे कई वार प्रलेप करने से लाभ होता है।

वात पीडा, शोथ पर—इसके पचाग को जौकुट कर क्वाथ वना उसका वाष्प स्वेद या वफारा देते तथा उसी उष्ण क्वाथ से खूव सिंचन कराते हैं।

शोथ—विशेषत ग्रन्थि शोथ पर इसकी जड को

पीस कर गर्म कर बाधने से या लेप करने से लाभ होता हैं। सर्वाङ्ग शोथ पर क्वाथ से स्नान कराते हैं।

(४) बालको के कफोल्वण ज्वर तथा अतिसार मे इसके पत्र स्वरस मे थोडा शहद मिला, दिन मे २-४ बार चटाते हैं। अतिसार हो तो पत्र के क्वाथ मे थोडा सोठ का चूर्ण मिला पिलाते है।

खासी—विशेषत शुष्क खासी मे पत्र क्वाथ मे शहद मिला पिलाते हैं।

पित्त वृद्धि मे इसके पत्र रस मे, तुलसी भागरे का रस मिला, तथा उसमे दूध और मिश्री मिला पिलाने से लाभ होता है।

(५) उपदश पर—पत्तो के साथ काली मिर्च को पीस और पानी मे छान कर पिलाते हैं।

(२) श्वेत कटसरैया

(*B CARULEA*)

इसका क्षुप उक्त पीली कटसरैया जैसा ही होता है किन्तु पुष्प श्वेत लगते है। यह वर्षाकाल मे खूब फूलता है।

नाम—

सं—सहचर, सैरेयक, श्वेतकुरण्टक, झिंटिका
हिन्दी—सफेद कटसरैया बं—श्वेत झाटी, सदा झांटी
लेटिन—वरलेरिया क्याक्रुलिया
तथा बरलेरिया डिकोटोमा (B Dichatoma)

गुणधर्म और प्रयोग—

उष्ण, चरपरी, मधुर, स्निग्ध केशरजक, दातो को हितकारी, तथा वात, कफ, रक्तविकार, कण्डु, कुष्ठ, शूल, शोथ, कास, चर्म-विकार, वलि (देह पर झुरिया पडना) पलित (असमय मे बाल पकना) एव विषनाशक है।

शुक्रप्रमेह पर—इसके पत्र स्वरस मे जीरा का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं।

कर्ण प्रदाह पर—पत्र-रस कान मे डालते हैं।

चूहे के दश पर—इसकी जड को चावल के धोवन के साथ पीस छान करथोडा शहद मिला दिन मे दो बार पिलाते हैं।

(३) नीली कटसरैया

[*B STRIGOSA*]

इसके और लाल कटसरैया के क्षुप प्राय. २००० फीट की ऊचाई पर अत्यधिक पाये जाते हैं। इसका क्षुप उक्त दोनो के क्षुपो की अपेक्षा कुछ ऊचा दिखाई देता है। शाखायें बहुत सीधी, खुरदरी तथा गोल ग्रन्थियो से युक्त होती हैं। यह बाग बगीचो मे शोभा के लिये बहुत लगाया जाता है। इसके नीले पुष्प बडे सुहावने होते हैं। यह शीतकाल मे ही विशेष फलता है।

नाम—

संस्कृत—आर्त्तगला, बाण दासी, नीलकुरण्टक
हिन्दी—काली कटसरैया या पियाबासा
मराठी—काला कोरण्ट। बगला—नीलझांटी
लेटिन—बर्लेरिया स्ट्रिगोसा

गुणधर्म और प्रयोग—

उक्त दोनो कटसरैया के समान। वातज क्षय मे (जिस क्षय रोग मे वात की प्रधानता हो) इसके पचाग

कटसरैया नीला
Barleria strigosa Willd.
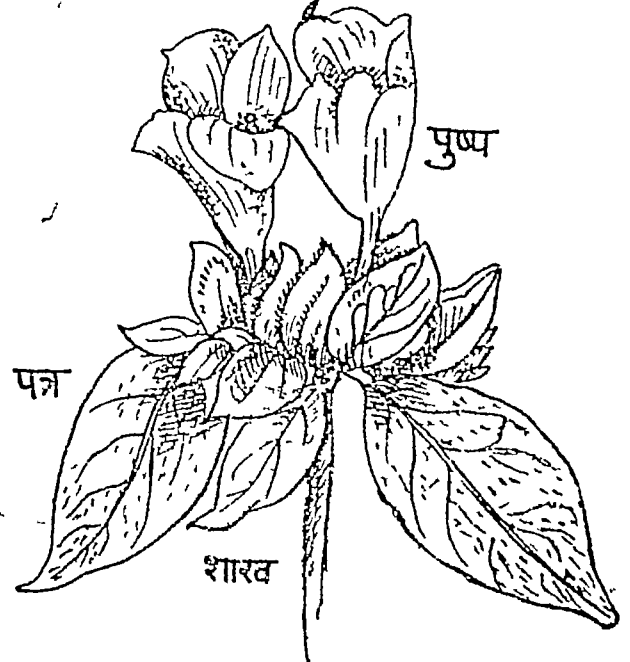
के क्वाथ और कल्क द्वारा सिद्ध किये हुए घृत का सेवन लाभकारी होता है। स्वर को भी सुधारता है।

सिध्म कुष्ठ पर—इसके पत्र रस को कुष्ठ स्थान पर मर्दन तथा ऊपर से मूली के बीजो को कांजी मे पीसकर प्रलेप करते हैं। कफ विकार पर जड का फांट दिया जाता है।

(४) लाल कटसरैया

[B CRISTATA]

इसके क्षुप पीली कटसरैया के जैसे ही होते हैं। किन्तु पुष्प लाल रङ्ग के होते हैं। बागो मे यह भी पायी जाती है। किन्तु सर्वत्र नही।

नाम—

संस्कृत—कुरवक, मधूत्सव, रक्त कुरण्टक, शोण झिंटिका
हिन्दी—लाल कटसरैया
लेटिन—बर्लेरिया क्रिस्टाटा तथा बर्लेरिया सिलिएटा (B Ciliata)

गुणधर्म और प्रयोग—उक्त तीनो के जैसे ही है।

कटसरैया (लाल)

Barleria cristata Linn.
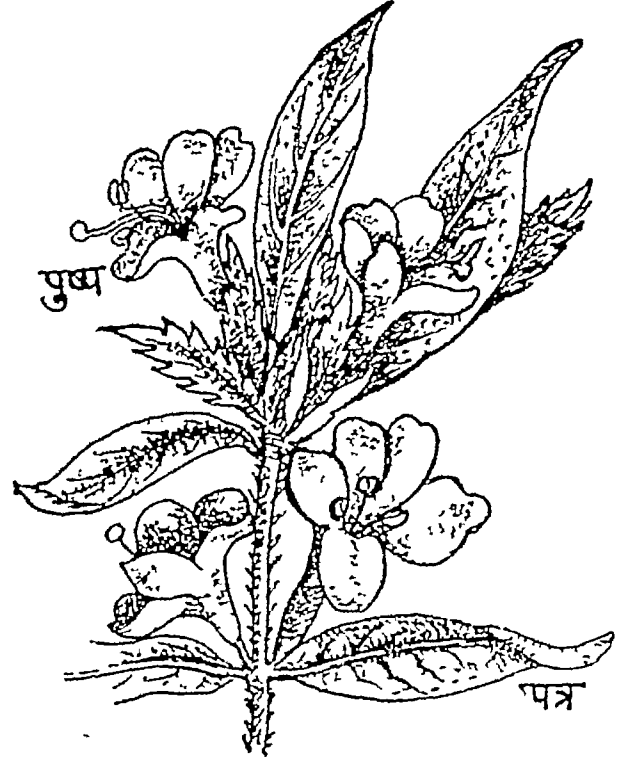
कटसोन [Rubus Molucanus]

इसके छोटे बडे पेड झाडीनुमा भारतवर्ष के दक्षिण पश्चिम घाट और हिमालय के कुछ प्रदेशो मे बरमा, आसाम आदि मे विशेष पाये जाते हैं।

इसकी शाखाओ पर रूआँ या रोम पीतवर्ण का तथा छोटे छोटे काटे होते है। पत्ते समाकार (लम्बाई चौडाई मे बराबर), ऊपर का भाग हरे रङ्ग का और पृष्ठ भाग मुलायम, पीतवर्ण का एव रुएंदार नसो से युक्त होता है। इसके पुष्प श्वेत रङ्ग के और फल गोल गोल छोटे होते हैं।

इसे हिन्दी मे नैपाल की ओर कटसोल या कटसोन तथा लेटिन मे रूबस-मोलूकेनस कहते है।

गुणधर्म—

इसके पत्ते संकोचक, ऋतुस्राव नियामक, किन्तु गर्भस्थ बालक के लिये मृत्युकारक होते है।

कटहल (Artocarpus Integrifolia)

यह आयुर्वेदानुसार फलादि वर्ग का एक वृहत् फल वाला वृक्ष है। आधुनिक द्रव्यगुण विज्ञानानुसार यह वटादि वर्ग (Urticaceae) का वृक्ष है। इस वर्ग का लक्षण 'वट' प्रकरण मे देखिये।

यह भारतवर्ष का ही एक खास वृक्ष है। यहा के उष्ण प्रदेशो मे, वाग वगीचो मे लगाया जाता है और भारत के दक्षिणी पहाडो पर यह स्वय ही पैदा होता है। यहीं से इसके वीज जमेका, ब्राजिल आदि प्रदेशो मे वोये गये हैं। इसके फल की जितनी कदर भारत मे है उतनी अन्यत्र नही। वौद्ध लोग इसे एक पवित्र वृक्ष मानते हैं और अपने मन्दिरो मे इसे सम्मानपूर्वक रोपण करते है और पूजते है।

कटहल अनेक प्रकार के होते हैं। सर्वश्रेष्ठ कटहल वह होता है जिसके कोये (वीज) वहुत छोटे, तन्तुरहित एव इतने सरस, मृदुल होते है कि मुख मे डालते ही घुल जाते हैं। इस जाति के कटहल वहुत कम पाए जाते हैं।

मध्यम श्रेणी के वे हैं जिनके वीज विशेष वडे नहीं होते, रेषा या तन्तु रहित, शीघ्र टूटने वाले, सुस्वादु एव सुगन्धियुक्त होते हैं। निकृष्ट वे हैं जिनके वीज

साधारण वडे और मोटे होते है। तन्तुयुक्त एव कुछ दुर्गन्धयुक्त होते है।

इसके फल वृक्ष के प्राय सर्वांग मे होते है। अत यह 'फलिन, फल वृक्षक' कहाता है। जमीन के भीतर जड़ मे लगने वाले फलो के वढने पर ऊपरी जमीन का स्तर भाग विदीर्ण सा हो जाता है। यह जड मे होने वाला फल विशेष मधुर, सुस्वादु और सरस होता है। जिस फल के छिलके के ऊपरी कगूरे अधिक कड़े और लम्वे होते हैं, उसके भीतर के कोये उत्तम एव वडे आकार के होते हैं तथा गूदा मीठा होता है।

इसकी लकडी से मजूषा, नौका, चौखट आदि कई प्रकार की सामग्रिया तैयार की जाती हैं। तथा इसकी लकडी, छाल, मूल और फल से एक प्रकार का पक्का चमकदार पीला रग निर्माण किया जाता है, जो रेशम के वस्त्रो के रंगने मे काम आता है।

नाम—

सं.—पनसः, फलिनः, फलवृक्षकः, कण्टकिफलः।
हि.—कटहल, कठैर, कंथल।
म —फणस। वं —कांटा लगाछ।
गु —पणस, मानफणस।
अग्रेजी—इण्डियन ज्याक ट्री (Indian jack tree)।
ले —आर्टो कार्पस इन्टेग्रिफोलिया।

परिचय—

कटहल का वृक्ष ४० से ५० फीट ऊंचा एवं सघन, सदावहार होता है। छाल काले रग की होती है। इसे छेदने से दूध निकलता है।

पत्र—लसोडे के पत्र जैसे ४-५ अगुल लम्वे, गोलाकार, चमडे जैसे कडे, मोटे और कर्कश होते हैं, ऊपर की ओर श्यामवर्ण के सुचिक्कन तथा नीचे की ओर रूक्ष होते हैं। फूल—अदृश्य होते हैं। शाखायें मोटी तथा फलो के भार से झुकी हुई होती हैं।

फल—माघ, फाल्गुन मास मे लगते हैं, जो ज्येष्ठ, आषाढ़ तक खूव वड़े वड़े लगभग २० से ३० इन्च और ६ से १८ इन्च तक मोटे तथा वजन मे २ से २० सेर तक होते हैं। फलो का ऊपरी छिलका वहुत मोटा तथा

बहुत से नुकीले किंतु कोमल कगूरो से युक्त होता है। फल के भीतर गूदे में आच्छादित गुठलियां एवं उनके अन्दर गूदेदार कोये ५०-६० तक होते हैं, ये पकने पर मीठे होते हैं। कोयों के भीतर बहुत पतली झिल्लियों से लिपटे हुए सुचिक्कन बीज लगभग १ इञ्च लम्बे, त्रिकोणाकार होते है। फलो से तथा छाल मे जो लसीला, चिपकने वाला दूध निकलता है, उसका एक साधारण रवड़ वनाया जाता है।

गुणधर्म और प्रयोग-

कटहल विष्टम्भी (कब्ज करने वाला) है। कच्चा फल कसैला, ग्राही, गरिष्ठ, मलस्तम्भक, वात दाहकारक, वलदायक, किंतु शीत एवं स्निग्धवीर्य होने से कफ और मेदवर्धक होता है। कच्चे फल का गूदा श्वेत तथा पके फल का पीला होता है। कच्चे की तरकारी, अचार आदि वनाये जाते हैं। यह तरकारी खाज खुजली वालो को लाभ करती है।

कच्चा फल—कसैला, ग्राही, मलस्तभक, वातकारी, भारी (गरिष्ठ), दाहकारक, किन्तु कुछ वलवर्धक भी होता है।

पका फल—शीतल, स्निग्ध, भारी, पित्तशामक, वातनाशक, तृप्तिकारक, वलदायक, मांसवृद्धिकारक, मृदुरेचक, रक्तस्तंभक, क्षुद्रदौर्वल्य नाशक एव रक्तपित्त, व्रण, क्षत क्षय आदि विनाशक होता है। ये ही गुण इसके अर्धपक्व फल के हैं, यह विशेष रुचिदायक फल होता है।

जड़ मे से निकला हुआ फल-पुष्टिकारक, वातकर, पित्त हारक एवं हृदय के लिये वल्य होता है। कटहल के अधिक खाने से अजीर्ण, वमन या रेचन होता है। इस अजीर्णजन्य उपद्रवो की शांति के लिये केला खाना हित-प्रद है। अथवा इसके बीज को भूनकर खावें।

प्रात खाली पेट, कटहल कदापि नही खाना चाहिए। तथा इसे कभी भी, खाने के पश्चात् पान नही खावे, विषैला परिणाम होता है। इसके विषैले परिणाम-निराकरणार्थ मक्खन का सेवन करें। ध्यान रहे विष्टम्भी होने के कारण कटहल गुल्म, अग्निमांद्य आदि उदर रोगो मे निषिद्ध है। कहा है—

'विशेषात् पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मन्दवह्निभि ॥'
—भा. प्र.

बीज—भूनकर खाने से अखरोट जैसा गुणकारी है। यह मधुर, भारी, मल को बाधने वाला, मूत्र तथा वीर्यवर्धक होता है। फल के गुरुत्व को या अजीर्ण जन्य उपद्रवो को यह आग पर भूना हुआ बीज दूर कर देता है।

बीज का घृत के साथ सेवन स्निग्ध, हृदय को हितकारी एव वल्य है। त्रिदोषनाशक है।

दूध—वृक्ष और फल का दूध शोथहर और व्रण पाचन है। इस दूध को सिरके मे मिलाकर प्रलेप करने से ग्रन्थि-शोथ, विस्फोटादि मे लाभ होता है।

पत्र—इसके कोमल पत्र फोडो या घावो को शुष्क करते हैं। इनको घृतलिप्तकर वार वार उकौत (छाजन) पर वाधने से लाभ होता है। ये विषघ्न हैं।

मूल जड—कसैली व स्तभक है। तथा त्वग्दोषहर है। इसके पत्र तथा मूल का क्वाथ चर्म रोगो पर दिया जाता है। यह क्वाथ अतिसार मे भी लाभकारी है।

जड़ को औटाकर व छान कर नाक में टपकाने से (नस्य से) सिर दर्द दूर होता है। जड का चूर्ण प्रतिदिन १-१ माशा उत्तरोत्तर वढाते हुए सेवन करने से वमन, रेचन होकर फिरग रोग दूर होता है।

कटेरी छोटी (Solanum Xanthocarpum)

यह क्षुद्रगुल्म जाति की वनौषधि आयुर्वेदानुसार गुडूच्यादि वर्ग की एव गुण कर्मानुसार वृहत्यादिगण की प्रमुख औषधि है। इस गण मे छोटी व वडी कटेरी, कुटज, पाठा और मुलैठी हैं। [सुश्रुत]

आधुनिक शास्त्रानुसार यह अपने वर्ग या कुल-कण्टकारी कुल [Solanaceae] की प्रथम वनस्पति है। इस वर्ग मे सर्व प्रकार की कटेरी, वृन्ताक[वेंगन], काकमाची आदि १७ वनौषधिया है। इस वर्ग के पत्र एका-

न्तर, सावे, क्वचित् विभक्त उपपत्र रहित, पुष्प पत्र-कोण या शाखाग्र से उत्पन्न, तथा फल गोल या लम्बे होते है।

कटेरी के मुख्य दो भेद हैं—बडी और छोटी ये दोनो ही सस्कृत मे 'बृहती' कहलाती हैं। 'क्षुद्रा व क्षुद्र-भण्टाकी वृहतीति निगद्यते।"

यहा छोटी कटेरी का प्रथम वर्णन दिया जाता है। इसके दो भेद हैं एक तो वैंगनी या नीले रग के फूल वाली, जो कि प्राय सर्वत्र सुलभ है। दूसरी श्वेत पुष्प वाली, जो सर्वत्र सुलभ नही है। असली 'लक्ष्मणा' प्राय दुर्लभ होने एव लक्ष्मणा जैसे यह भी गर्भकारिणी होने से प्राय इसका उपयोग 'लक्ष्मणा' के स्थान पर किया जाता है। तथा इसका एक पर्यायवाची नाम ही लक्ष्मणा पड गया है।

नाम और परिचय—

सं०-कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, चित्रफला
हिन्दी—कटेरि, कटाई (छोटी) भटकटैया, कटाली
मराठी--भुईरिंगणी, डोरली, महुकडी, रूपाखुरी
गुजराती - बेठी भोरिंगणी। बं०-कांटकरी
अंग्रेजी--वाईल्ड एग्जप्लाट (Wild eggs plant)
ले०—सोलेनम जैन्थोकारपस (Solanum Xanthocarpum)

छोटी कटेरी [वेंगनी पुष्प वाली] भारतवर्ष मे प्राय. सर्वत्र ही, विशेषत रेतीली भूमि पर अपने चारो

कटेरी छोटी (SOLANUM XANTHOCARPUM)

कटेरी छोटी

Solanum xanthocarpum Schr & Wendl.
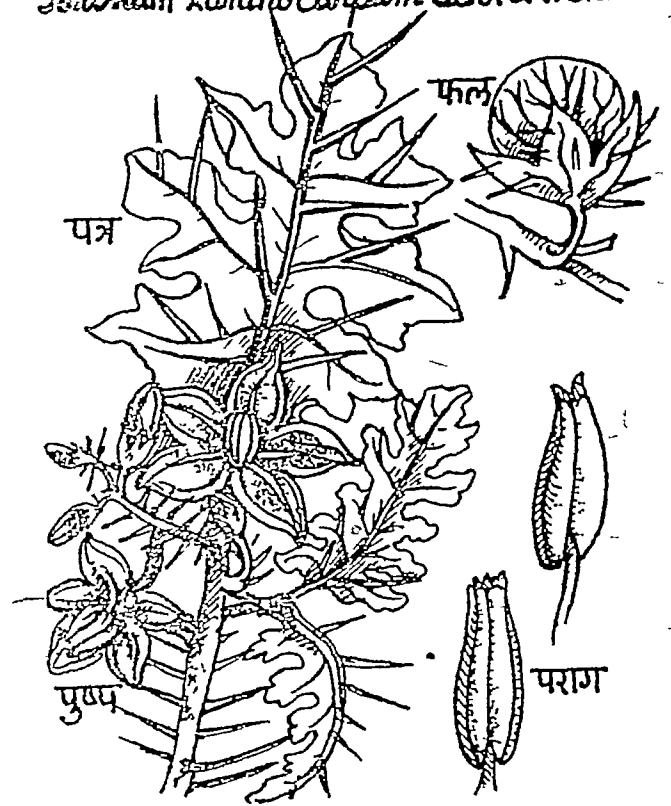
ओर २ से ६ फीट के घेरे मे फैली हुई पाई जाती है। इसके सर्वाङ्ग मे सीधे, पीले, चमकीले काटे होने से यह कण्टकारी कहाती है।

इसकी शाखायें बहुत आडी टेढी होती हैं। पत्ते २ से ४ इच लम्बे, विषम दरार युक्त या गहरे कटे हुए किनारो वाले १ से २ इच चौडे डिम्बाकृति के एव श्वेत रेखाङ्कित होते हैं। शाखाओ पर तथा पत्तो के नीचे और ऊपरी पृष्ठ भाग पर असख्य उक्त प्रकार के तीक्ष्ण काटे होते हैं। यह सरलता से स्पर्श नही की जा सकती, अत दु स्पर्शा कही जाती है।

फूल—वेंगनी या गहरे नीले रग के छोटे छोटे वसत या ग्रीष्म मे फूलते हैं। इनके वहिरावरण भाग पर भी काटे होते हैं। पुष्प के भीतर पीले रग की केसर होती है।

फल—गोलाकार लगभग एक इच व्यास के चिकने

पीले एव नीचे की ओर झुके हुए, कच्ची अवस्था मे श्वेत रेखाकित हरे रग के ग्रीष्म ऋतु मे आते हैं। तथा शरद मे ये परिपक्व होकर पीले पड जाते हैं।

हेमन्त और शिशिर ऋतु मे इसके क्षुप जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं। फलो मे वीज नन्हे नन्हे वैंगन के वीज जैसे चिकने और मुलायम होते हैं। इसकी मूल छोटी अगुली जैसी मोटी एव सुदृढ होती है।

इसकी दूसरी जाति श्वेत पुष्पा कटेरी का क्षुप भी श्वेताभ होता है। इसके श्वेत पुष्पो के भीतर की केसर पीली तथा किसी किसी की श्वेत भी होती है। समस्त शाखाओ व पत्ती पर श्वेत रोयें होते हैं।

श्वेत कटेरी के नाम—

सं०—श्वेत चन्द्रपुष्पा, श्वेत लक्ष्मणा, दुर्लभा, चन्द्रहासा, गर्भदा आदि

हिन्दी—सफेद कटेरी, लक्ष्मणा

मराठी- पांढरी रिंगणी। वंगाली-श्वेत कण्टकारी

यह विशेषत बंगाल आसाम पंजाव और दक्षिण भारत में पाई जाती है।

गुण धर्म—

तिक्त, कटु, लघु (हलकी), रूक्ष, तीक्ष्ण, विपाक मे कटु उष्णवीर्य होने से कफ वात शामक, वेदनास्थापन, शोथहर एव कृमिघ्न है। कटुतिक्त और उष्ण होने से दीपन, पाचन एव तीक्ष्ण होने मे रेचन और कृमिघ्न है। कफघ्न एव कफ निस्सारक होने से कास, श्वासहर, हिक्कानाशक तथा कण्ठ्य (व्याघ्र के समान स्वर को गभीर वनाने वाली है अत. इसे 'व्याघ्रि' भी कहते हैं।) है। तथा यह ज्वर, अरुचि, आमदोष, पीनस, पार्श्व पीडा और हृद्रोगनाशक, रक्तशोधक, मूत्रल एव स्वेद-जनन है।

श्वेत पुष्प वाली छोटी कटेरी उक्त सर्व गुणो से युक्त होते हुये, विशेषत गर्भधारण करने वाली होती है।[1]

[1] श्वेत कटेरी—रुचिकारी, चरपरी, उष्णवीर्य, कफवात-नाशक दीपन, चक्षुष्य (नेत्रों को हितकारी) और पारे को बांधने वाली होती है कहा है-श्वेतकण्टारिका रुच्याकटूष्णा कफवातनुत्। चक्षुष्यादीपनी ज्ञेया रसेन्द्रस्य नियामिका॥
—रा० नि० व० ४

छोटी और वडी दोनो कटेरियो के फल—पाक मे कटु और तिक्त रसयुक्त, शुक्ररेचक, मलभेदक, पित्त और अग्निवर्धक, लघु होते है, तथा कफवात जन्य विकार, खुजली, खासी, मेद रोग, कृमि एव ज्वर मे प्रयुक्त होते हैं।

इसमे कफनाशक विशेष शक्ति है। अत कफ ज्वर, कास, श्वास, छाती की पीडा आदि मे इसका अधिक उपयोग होता है। इसका क्वाथ देने से छाती मे जमा हुआ कफ दूर हो जाता है। भयकर श्वासरोग मे इसके फलो के क्वाथ मे हीग भुनी हुई १-२ माशे तक तथा उतना ही सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से विशेष लाभ होता है। छोटी कटेरी का उपयोग जलोदर, प्लीहा, सुजाक, यकृतवृद्धि, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय की अश्मरी आदि पर भी सफलतापूर्वक किया जाता है।

मात्रा—पत्र स्वरस ३ से ६ माशे, मूल चूर्ण १ से २ माशे, फल या पुष्प चूर्ण १ से ३ माशे, क्वाथ १॥ से ४ माशे तक।

रोगानुसार मुख्य मुख्य प्रयोग—

(१) मन्दाग्नि, उदरशूल, पित्तविकार आदि पर—फलो के वीजो को सेधानमक मिले हुए तक्र (मट्ठा या छाछ) मे औटाकर धूप मे शुष्क करें। इस प्रकार ७ दिन तक प्रतिदिन रात मे मट्ठे मे भिगोकर दिन मे सुखाकर घृत मे तल २-३ माशे खाने से उक्त विकार दूर होते हैं।

अथवा—इसका स्वरस और गिलोय स्वरस ३-३ पाव लेकर १ सेर घृत मिला धीमी आच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें।

मात्रा—१-१ तोला दोनो समय किंचित शक्कर मिला सेवन करें। यह अजीर्ण तथा वातज कास को भी दूर करता है। इससे श्वास और स्वरभेद मे भी लाभ होता है। नीचे देखो कण्टकारी घृत।

(२) कफविकार, कास श्वास, ज्वर, जुकाम, श्वासनलिका शोथ आदि पर—कफ की प्रथमावस्था मे इसके मूल के क्वाथ को शहद और सेंधानमक मिला सेवन करावें। द्वितीयावस्था मे उक्त मूल क्वाथ या पत्र

स्वरस मे छोटी पीपल का चूर्ण और शहद मिला सेवन करने से खासी का कष्ट दूर होता है।

✓इसकी मूल और गिलोय दोनो के मिश्रण का क्वाथ ज्वरयुक्त कास मे विशेष लाभकारी है। इससे कुछ पसीना आता है, शरीर की पीडा कम होती तथा मूत्र की मात्रा भी कुछ बढती है। गला एव श्वास नलिका की शुष्कता वा शोथ दूर होता व कफ ढीला हो जाता है। गले के स्वरयन्त्र का शोथ भी दूर होता है।

✓इसके फलो को (अथवा सर्वांग को) जलाकर की हुई काली राख (भस्म) की मात्रा १ रत्ती से १ माशा तक शहद के साथ चाटने से कास तथा तमक श्वास के दौरे के समय विशेष लाभ होता है।

✓अथवा फलो का क्वाथ ६ माशे से १ तोला तक थोडी शुद्ध हीग एव सेंधानमक मिलाकर देने से शीघ्र ही कफ ढीला होकर श्वास का दौरा दूर होता है।

अथवा इसकी जड और आवला प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ तोला और शुद्ध हीग ६ माशे एकत्र खरल करें। मात्रा—३ से ६ माशे तक शहद से दिन मे दो बार सेवन से शीघ्र ही तमक श्वास मे लाभ होता है।

✓अथवा इसका मूल, श्वेत जीरा और आमला का समभाग महीन चूर्ण २ से ४ माशे तक शहद से चटाने से (दिन मे ३ बार) कफ प्रधान जीर्ण श्वास रोग शान्त होता है। इससे मूत्रावरोध मे भी लाभ होता है, आम विष दूर होता है।

✓कास की अवस्था मे यदि कफ अत्यधिक चिपचिपा हो गया हो, बडे कष्ट से निकलता हो तो इसके मूल के चूर्ण में समभाग पीपल चूर्ण मिला १-१ माशा शहद के साथ दिन मे ३ बार चटाने से अथवा इसके क्वाथ में पीपल चूर्ण मिला दो बार पिलाते रहने से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है।

✓कफ ज्वर की सामावस्था मे इसकी मूल के साथ गिलोय, पीपल और सोठ समभाग जौकुट कर अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन से लाभ होता है। इसे निदिग्धकादि क्वाथ कहते हैं। कफ के साथ वात प्रकोप भी दूर होता है।

सन्निपात की दशा मे बेहोशी दूर करने के लिये इसके बीज और सोठ चूर्ण एकत्र महीन खरल कर १-२ रत्ती नासिका मे फूक देने से छींकें आकर कफ आदि दोषो का शमन हो जाता है।

षडङ्ग[1] कण्टकारी जल मे मूग की दाल पकाकर यूष तैयार करें, फिर उसमें किंचित हल्दी चूर्ण आमले का रस इतना मिलावें कि वह कुछ खट्टा हो जाय। इसका सेवन कास रोगी के लिये हितकारी होता है। यह षडङ्ग जल मदात्यय की पिपासा को भी दूर करता है।

बालकों के कास पर—इसके फूलों की केशर शहद के साथ चटाते हैं।

कास, श्वास आदि विकारो पर कटेरी अर्क, कटेरी सत, क्षार, अवलेह आदि के शास्त्रीय प्रयोग (निर्माण विधि नीचे देखिये) भी विशेष लाभकारी है।

✓(३) जुखाम, पीनस और हिक्का पर—इसकी जड २ भाग के साथ पित्त पापड़ा और गिलोय १-१ भाग जौकुट कर अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे १ या २ बार सेवन से वायु या ऋतु परिवर्तन से अथवा हवा पानी की खराबी से होने वाले प्रतिश्याय तथा ज्वर मे भी लाभ होता है।

इसके पचांग को पीस लुगदी को ४ गुना सरसो के तैल मे खूब पकाकर तैल छान लें। इसकी दो-दो बूदें नासिका मे डालने से (या इसके पचाग के रस को ही डालने से) अथवा व्याघ्री तैल[2]—(ध्यान रहे नस्य

[1] षडङ्ग—जिन औषधियों का षडङ्ग जल बनाना हो उन्हें समभाग २-२ तोला लेकर ४ सेर जल में पकावें। इसी जल मे मूंग की दाल आदि डालकर पुनः पकावें, यही षडङ्ग यूष भी कहाता है।

[2] कटेरी का पंचांग तथा दन्तीमूल, वच, सहिंजना छाल, तुलसीपत्र, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल व सैंधानमक समभाग पीसकर कल्क करें। कल्क से ४ गुना तिल तैल और तैल से ४ गुना कटेरी पंचाग का क्वाथ मिला मंदाग्नि पर तैल सिद्ध कर। इसकी नस्य से पीनस, मस्तिष्क में कृमि का होना आदि रोग दूर होते हैं। इस तैल के पीने से कफ दूर होकर कास एव श्वास मे लाभ होता है।

के लिये सरसो के तैल को और पीने के लिये तिल तैल को सिद्ध करना चाहिये) के नस्य से नाक मे से निकलने वाले पीप और दुर्गन्धयुक्त पीनस रोग नष्ट होता है।

इसकी जड का क्वाथ थोडा थोडा १-१ घण्टे से ३-४ बार पीने से प्रवल हिक्का शान्त होती है।

(४) डाढ, दात, नेत्र और मस्तक की पीडा पर और नकसीर पर—यदि डाढ या दात का पीडा किसा प्रकार भी दूर न होती हो तो इसके बीजो का धूम्रा इस प्रकार प्रयोग करें। किसी पात्र मे आग लेकर उस पर इसके शुष्क बीज डाल उस पर एक ऐसी छोटी मटकी औंधी ढाक देवें, जिसके पैंदे के मध्य मे एक छिद्र हो। इस छिद्र मे कोई नली या एरण्ड की पोली डडी डालकर उस नली का मुख जिस स्थान मे पीड़ा हो उस पर लगादें। अन्दर से धूम्रा के पहुँचते ही दर्द तत्काल दूर होता है। कृमिज कर्ण शूल, व्रणशूल, भगन्दर आदि मे भी यह धूम्र प्रयोग लाभकारी है। साथ ही साथ इसकी जड़, छाल, पत्ते और फल का काढा वनाकर कुल्ले करें। कृमिजन्य दन्त या डाढ का शूल शीघ्र ही दूर होता है। अथवा—

इसके फल के चूर्ण को चिलम या हुक्के मे डालकर धूम्र को मुख मे थोडी देर रख निकाल देवें। इस प्रकार कई बार करने से भी दन्तकृमि नष्ट होकर पीडा दूर हो जाती है।

नेत्रविकार मे—इसके पत्तो को पीसकर लुगदी नेत्रो पर रखकर वाधने से पीडा दूर होती है।

यदि आख दुखने आई हो तो इसके ताजे पत्तो को तोडने पर जो दूधिया रस निकलता है उसे २-३ बार आखो मे लगाने से आखो से दूषित पानी निकल कर शीघ्र लाभ होता है।

आखो मे धुध या जाला हो तो इसके मूल को नीवू रस मे रगड़ कर लगावें। कुछ दिनो के प्रयोग से अवश्य ही लाभ होता है।

मस्तक की पीड़ा पर—इसके पके फलो के टुकडो को एक बोतल मे भर उसमे इतना तिल तैल डालें कि सब टुकडे डूब जावें। फिर बोतल का मुख बन्द कर ४० दिन धूप मे रखें। पश्चात् तैल को छानकर रखलें। इस तैल की नस्य से सिर का दर्द, अर्द्धावभेदक शीघ्र दूर होता है। यह तैल इसी प्रकार नस्य के द्वारा अपस्मार, योपापस्मार को भा दूर करता है। सधिशूल, अङ्गमर्दन एव सुस्ता को दूर करने के लिये इस तैल की मालिश का जाती है। इसके फूलो के रस को ललाट पर लेप करने से भा मस्तक का पीडा दूर होती है।

नकसीर पर—इसकी जड़ का पाना के साथ पीसकर सिर पर लगाते हैं। अथवा इसकी जड या पत्तो को पीसकर रस निकाल नाक मे टपकाते है।

(५) मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, नपुसकता और ध्वजभग पर—इसके पचाङ्ग को कूट पीसकर स्वरस निचोड लेवें अथवा पुटपाक विधि से पका कर रस निकालें। यह रस ६ माशे से १ या २ तोले तक समभाग शहद मे मिला प्रात.काल पीने से मूत्रकृच्छ्रादि मूत्र सम्बन्धी विकारो की शान्ति होती है।

उक्त स्वरस को छाछ मे मिलाकर पीने से भा पेशाव की रुकावट दूर होती है। अथवा—

इसके जौकुट चूर्ण को रात्रि भर पानी मे भिगो प्रातः मल छान कर मिश्री मिला पिलाने से भा लाभ होता है।

ध्वजभग और नपुसकता पर—फल के वीजो को पीस शिश्न पर धीरे धीरे मर्दन कर ऊपर एरण्ड पत्र बाधा करें। कुछ दिन मे लाभ होता है।

इसकी या वडी कटेरी की जड की छाल १० तोले कूट पीसकर पोटली में वाध २ सेर गौदुग्ध मे पकावें। आधा दूध शेष रहने पर छानकर नित्य प्रात साय पीने से नपुसकता दूर होती है। वातकारी एव अम्ल पदार्थों से परहेज रखना आवश्यक है।

(६) अर्श और अण्डवृद्धि पर—विशेपतः वातप्रधान अर्श पर—अर्श की अन्य चिकित्सा के अनुपान रूप मे वात एव मलावरोध के निवारणार्थ इसके पचाग का क्वाथ पिलाया जाता है।

अण्डवृद्धि पर—इसकी जड़ का छाल ताजी गीला हो तो १॥ या २ तोले, सूखी हो तो १ तोला लेकर ७

कालीमिर्च के साथ पीसकर पानी मिला छानकर प्रतिदिन प्रात पिलावें। ७ दिन पिलाने से अण्डवृद्धि दूर हो जाती है। ताजी छाल से लाभ शीघ्र होता है। पथ्य मे चने की रोटी और घृत खावें।

(७) सन्धिशूल, अपस्मार और आमवात पर—इसके ताजे फलो को कूट पीस समभाग पानी और दो गुना सरसो तेल मिलाकर अथवा इसके पचाङ्ग के स्वरस मे दो गुना तैल मिलाकर मन्दाग्नि से पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। इसकी मालिश से सन्धिवात आदि वातविकार ७ दिन मे दूर हो जाते है। अपस्मार या योषापस्मार पर इस तैल की अथवा इसके पत्तो को तोडने से जो दूध जैसा रस निकलता है उसकी अथवा इसकी जड और भाग के बीज समभाग लेकर एक शिशु बालक के मूत्र के साथ पीस एव छान कर रोगी की नाक मे टपकाने या नस्य देने से लाभ होता है। उपर्युक्त न० ४ का मस्तक पीड़ा पर दिया हुआ प्रयोग भी विशेष लाभकारी हैं।

आमवात पर—इसके पत्र स्वरस मे कालीमिर्च का चूर्ण मिला पिलाते हैं और पत्तो को पीस और गर्म कर लेप करते है।

(८) स्त्री रोग–गर्भपात, मृतवत्सा आदि विकारो पर—इसकी या बडी कटेरी की और छोटी पीपल को भैंस के दूध मे पीस छानकर कुछ दिन नित्य दोबार पिलाते रहने से गर्भ सुरक्षित रहकर स्वस्थ शिशु का जन्म होता है।

स्तनो की शिथिलता निवारणार्थ—इसकी जड़ और अनार वृक्ष की छाल और कदूरी की छाल, तीनो को पीस कर लेप करते रहने से लटकते हुए ढीले स्तन दृढ एव कडे हो जाते हैं।

(९) बालरोग–डिब्बा पर—छोटी और बड़ी दोनो कटेरी के पत्र समभाग कूट कर निचोड कर स्वरस निकाल लें। मात्रा—३ माशे मे पापड़ दो बार आधी रत्ती और थोडा शहद मिला पिलाने से वमन एव सौम्य रेचन होकर कफ निकल जाता है एव रोग निवृत्त होता है।

यदि आवश्यकता हो तो पुन एक घण्टे बाद उक्त मिश्रण को तैयार कर पिलावें।

बालकों के शकुनि ग्रह[1] के प्रतिकारार्थ इसकी मूल को कण्ठ मे धारण कराते है।

(१०) इन्द्रलुप्त (सिर के बाल झड जाना)—इसके पत्र स्वरस मे थोडा शहद मिला सिर पर मर्दन करने से कुछ दिनो मे कीटाणु नष्ट होकर तथा त्वचा मुलायम बनकर नये बाल आजाते है।

(११) जलोदर पर-कण्टकार्यासवार्क—इसका पचाङ्ग ५ सेर, गुड २॥ सेर और जल १० सेर लेकर प्रथम गुड को जल मे घोल कर कटेरी को जौकुट कर मिला देवे। चिकने मटके मे भर मुख बन्द कर घोडे की लीद मे दबा देवें। १५ दिन बाद भबके द्वारा अर्क खींचकर बोतलों मे भर रक्खें। मात्रा—४ तोले प्रात. साय निम्न गोलियो के साथ सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है—

रेवन्दचीनी, कलमी सोरा और नौसादर तीनो समभाग महीन पीस चने जैसी गोलिया बना लेवें। १-१ गोली खाकर ऊपर से उक्त आसवार्क पीवे।

सिद्धसाधित योग—

(१) कण्टकार्यारिष्ट—इसका पचाङ्ग ४ सेर तथा अडूसा जड की छाल आध सेर, दोनो को जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। शेष जल ८ या १० सेर तक रह जानेपर छानकर एक शुद्ध मटके मे भर उसमे मिश्री १० सेर, शहद १५ सेर, धाय के फूल १० छटाक और छोटी पीपल, कालीमिर्च, काकडासिंगी, कूठ व मुलैठी ४-४ तोले महीन चूर्ण कर मिलावें। फिर अच्छी तरह सन्धान कर एक मास तक सुरक्षित रखे। पश्चात् छान कर बोतलो मे भर रखें।

---

[1] इस विकार के मुख्य लक्षण अतिसार, सन्धिशोथ, त्वग्विस्फोट आदि होते हैं। यह सम्पूर्ण महास्रोत के श्लैष्मिक कला की शोथावस्था के कारण होता है, जिससे बालक के शरीर में तथा विशेष कर मल में मछली की गन्ध आती है। किसी विशिष्ट-दूषित आहार के परिणामस्वरूप में यह रोग हो जाता है।

मात्रा—२ से ४ तोले तक, सेवन करने से शुष्क खासी, क्षय की या जीर्ण खामी व श्वास पर विशेष लाभ होता है। वृक्क के रोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात पर लाभदायक हैं। शीतला (मसूरिका) का वेग भी शात होता है। शीतपित्त तथा साधारण खुजला भी इसके सेवन से दूर होती है। (वृ आ संग्रह)

(२) कण्टकारी अर्क—जमीन मे एक बडा गड्ढा खोदकर उसके मध्य भाग मे नीचे एक और छोटा गड्ढा खोदें। इस छोटे गड्ढे मे एक चीनी का प्याला रख दें। तथा उसके ऊपर एक बडी मटकी जिसके पेंदे में कई छोटे छोटे छिद्र कर दिये हो अच्छी तरह जमा देवे। इस मटकी मे कटेरी के पचाङ्ग को अच्छी तरह कुचल कर भर देवें, तथा उसके मुख पर सकोरा रखकर कपडमिट्टी करदे। पश्चात् मटकी के चारो ओर जगली उपले से गड्ढे को भर कर आग लगा दें। आग के शात हो जाने पर नीचे के प्याले मे एकत्र हुए अर्क को शीशी मे भर रक्खें।

मात्रा—१० से ३० बू द तक पीने से कास श्वास मे अपूर्व लाभ होता है। आखें आई हो तो इसे लगाने से आराम होता है। सुजाक मे इसे शहद के साथ चटाते हैं। कास, श्वास मे इसकी बू दें पान के रस के साथ सेवन करना चाहिए। इससे वातज, कफज, क्षयज कास, छाती का दर्द, शीत ज्वर आदि दूर हो जाते हैं।

(३) कण्टकारी सत—इसके पचाङ्ग को जौकुट कर उसमें आठगुना पानी मिला पकावें। दो गुना पानी शेष रहने पर उसे छानकर स्थिर होने के लिये रख दें। पश्चात् ऊपर का पानी पुन पकावें। गाढी हो जाने पर चीनी के पात्र मे सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१ मासा तक, शहद के साथ सेवन से श्वास, कास दूर होता है। यह पाचक और कृमिघ्न है। (यूनानी)

(४) कण्टकारी अवलेह—कटेरी का पचाङ्ग ५ सेर जौकुट कर १६ सेर जल में लगभग १॥ सेर तक हरड चूर्ण मिला पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छानकर उसमे ५ सेर गुड मिला मदाग्नि पर औटावें। चाशनी ठीक आजाने पर उसमे सौंठ, मिरच, पीपल समभाग का चूर्ण १२ तोले और शहद २४ तोले मिलावें। पश्चात् वसलोचन, खैरसार (कत्था), ब्राह्मी, भारङ्गी, काकडासिगी, कायफल, पुष्करमूल और अडूसामूल प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोले तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची व नागरमोथा का चूर्ण १-१ तोला मिला अवलेह तैयार करे।

मात्रा—६ माशे से २ तोले तक प्रात साय सेवन से त्रिदोषज व्याधिया कास, श्वास, पीनस, क्षतरोग, क्षय, उर क्षत दूर होते है। मदाग्नि, यकृत प्लीहा की वृद्धि, वायुगोला, हिक्का आदि पर भी यह गुणकारी है। इस योग को भृगुहरीतकी भी कहते हैं। अथवा—

कटेरी मूल ५ सेर जौकुट कर २५ सेर पाना मे औटावे। ६। सेर पानी शेष रहने पर छान कर पुनः मंदाग्नि पर पकावे। २॥ सेर शेष रहने पर उसमे १ सेर शक्कर व ३२ तोला घृत मिला धीमी आच पर रखदें। करछली [चम्मच] से चलाते रहे। गाढा अवलेह होजाने पर ठडा कर उसमे गिलोय, चित्रक, चव्य, नागरमोथा, पीपर, काकडासिंगी, काली मिरच, सोठ, जवासा, भारङ्गा मूल, और रासना प्रत्येक का महीन चूर्ण २-२ तोला मिला दें। दूसरे दिन शहद ३२ तोला, वसलोचन व पीपर ८-८ तोला का चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—६ माशे से १॥ तोले तक प्रात साय चाटने से कास, श्वास और हिक्का मे विशेष लाभ होता है।

(५) कण्टकारी घृत—जौकुट किया हुआ कटेरी पचाङ्ग और गिलोय १॥-१॥ सेर लेकर ६४ सेर जल मे औटावें। १६ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे ४ सेर गोघृत मिला मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रखलें।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक सेवन करें। यह वात प्रधान कास नाशक एव जठराग्नि दीपक है।

(६) कण्टकारी क्षार—कटेरी पचाङ्ग को छाया शुष्क करें। फिर जलाकर भस्म को पानी में घोलकर २-३ दिन पडा रहने दें। पश्चात् उसके ऊपर का साफ पानी लेकर पकावें। पानी के जल जाने पर जो क्षार मिले उसे खुरच कर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—१-१ रत्ती शहद के साथ या पान के रस के साथ सेवन से कास, श्वास में परम लाभकारी, पाचक,

क्षुधाजनक है। इसमे समभाग जौहर नौसादर मिला नस्य देने से अपस्मार एव योषापस्मार को दूर करता है।

कटेरी द्वारा धातु भस्म और मल्ल भस्म—

कटेरी द्वारा, सुवर्ण, चादी आदि कई धातुयें भस्म की जाती हैं। यहा विस्तारभय से केवल चादी भस्म और मल्ल (सखिया) भस्म की विधि दी जाती है—

चादी की भस्म—इसके पचाङ्ग का स्वरस निकाल कर उसमे चादी के बुरादे को चार प्रहर खरल कर टिकिया बना उपलो की आच मे (टिकियो को सुदृढ शराव सपुट मे रखकर) फूक देवे। इस प्रकार ३-४ बार पुट देने से उत्तम भस्म होती है। मात्रा—आधी रत्ती, मलाई के साथ सेवन से शरीर मे शक्ति की वृद्धि होती है। यह उत्तम पाचक एव वाजीकरण है।

मल्ल भस्म—इसके पचाङ्ग को जलाकर लगभग दो सेर राख प्राप्त होने पर मिट्टी के मजबूत पात्र मे आधी राख भरकर उस पर श्वेत सखिया की १ तोला की डली रख उस पर शेष आधी राख अच्छी तरह जमाकर भर देवें। फिर उस पात्र को चूल्हे या भट्टी पर रखें। जब राख ऊपर तक गरम हो जाय, तब ऊपर से ही एक सलाई से सखिया की परीक्षा कर लें। यदि सलाई उसमे प्रविष्ट हो जाय तो आग को शात कर देवें। सखिया की उत्तम खिली हुई भस्म प्राप्त होगी। मात्रा—आधा चावल मक्खन के साथ सेवन से कास श्वास को शीघ्र ही दूर करती है। यह भी महान पाचक एव क्षुधावर्धक है।

कटेरी बड़ी [Solanum Indicum]

इसके क्षुप बैंगन (भाटे) के क्षुप जैसे ३ से ६ फुट ऊचे होवे हैं। इसके काण्ड और पत्ते चपटे टेढे काटो से युक्त होते है। शाखा प्रशाखायें विपुल होती हैं जिनमे श्वेत रोमश, किंचित् टेढे तथा मुलायम काटो की भरमार होती है।

पत्ते—३ से ६ इच तक लम्बे, १ से ४ इच चौडे, लहरदार, कटे किनारे वाले ठीक बैंगन पत्र जैसे। पुष्प-बैंगन के फूल जैसे ही बैंगनी रग के, कभी कभी श्वेताभ, पाच दल वाले होते हैं।

फल—छोटी कटेरी के फलो से कुछ बडे, कच्ची दशा मे हरे, तथा पकने पर पीले पड जाते हैं। ताजे फल कडवे चरपरे, सूखने पर कडुवापन नही रहता। इस कटेरी में फूल और फल प्राय साल भर तक लगते रहते हैं।

इसका एक भेद श्वेत पुष्प वाला होता है, जिसे श्वेत बृहती और लेटिन मे सोलेनम टोरव्हम (Solanum Torvum) कहते हैं। यह भेद ठडे एव आर्द्र स्थानो मे अधिक पाया जाता है। इसके क्षुप उक्त बृहती के समान ही किन्तु ६ से १० फुट तक ऊचे होते हैं। शाखायें सीधी, मुलायम, तथा उन पर काटे बहुत कम होते है। इसमे प्रशाखाये बहुत कम होती हैं। पत्ते भी उक्त बृहती पत्र से कुछ अधिक लम्बे और चौडे होते है।

कटेरी बड़ी (SOLANUM INDICUM)

फूल—श्वेत तथा वाह्य कोण मे काटे नही होते हैं।

जगली भाटा भी इसी का एक भेद है। इसके क्षुप शुष्क स्थानो मे पाये जाते है। इसे हिन्दी मे वन भाटा, जगली वैंगन, ठीको, रोकीं, गठेगनी आदि तथा लेटिन मे सोलेनम मेलोगेना (Solanum melongena) कहते हैं। पत्ते कुछ अण्डाकार ४ से ७ इ च बडे, लहरदार कुछ कुछ कटे हुए होते हैं। फूल नीले। फल श्वेताभ पीले, गोल चिकने लगभग १ इ च व्यास के होते हैं।

इसकी जड भी छोटी कटेरी की जड की अपेक्षा काफी वडी और अगुठे या हाथ की कलाई जैसी मोटी एव अनेक शाखायुक्त होती है। मूल की छाल कुछ पीलापन लिये हुए भूरे वर्ण की खुरदरी होती है। इसकी गव उग्र, स्वाद मे तीक्ष्ण होती है।

नाम—

सं०—महा या स्थूल वृहती, क्षुद्र भण्टाकी, सिंही
हिन्दी—वडी भटकटैया, वरहंटा, अंजड आदि
मराठी—मोठी, डोरली, चिंचुरटी, वांगी
गुजराती—उभी भोरिंगणी
वगला—व्याकुर, तित वेगुन, गुरकामाई। पं०—कंडयारी
लेटिन—सोलेनम इण्डिकम (Solanum Indicum)

यह भारत के प्राय समशीतोष्ण प्रदेशो की ऊसर भूमि मे विशेपत पाया जाता है। पजाव और दक्षिण भारत मे अधिक होता है।

आधुनिक रासायनिक सगठन की दृष्टि से इसके मूल और फल मे मोम, वसाम्ल (Fatty acids) तथा सोलेनिन (Solanine) और सोलेनायडीन (Solanidine) नामक क्षारतत्व पाये जाते हैं। छोटी कटेरी मे उक्त क्षार तत्वो के अतिरिक्त पोटाशियम क्लोराइड पोटोशियमनाइट्रेट, लोह तथा कुछ सेन्द्रियअम्ल और फलो मे सोलनकार्पीन [Solan Corpine] नामक तत्व पाया जाता है।

गुण धर्म—

उक्त दोनों [छोटी और वडी] कटेरी की गणना कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण, शोथहर, अङ्गमर्द प्रशमन, लघु पचमूल एव दशमूल तथा वृहत्यादि गणो में की गई हैं। कासहर, शोथप्रशमन और वरुणादि गणो मे छोटी कटेरी की विशेपता है।

छोटी और वडी दोनो कटेरी के गुणधर्म प्राय समान होते हुए भी वडी कटेरी मे निम्न गुणो की प्रधानता है— कण्डुनाश, केशो को हितकरी, उत्तेजन, ग्राही, कुष्ठनाश, एव ग्रहणी, उदरशूल, अरुचि, मुख की विरसता, तथा सूतिका रोग निवारता।

वृहत्यादिक्वाथ तथा दशमूलारिष्ट मे इसकी योजना की जाती है।

प्रयोग—

वेदनायुक्त स्थानो पर इसका लेप किया जाता है।

योनिकण्डु मे—इसके फल को हल्दी और दारु हल्दी के साथ कूट पीस कर धूनी देने से या इस मिश्रण को पानी के साथ खूब पीस कर वत्ती वना योनिमार्ग मे धारण कराने से लाभ होता है।

कटेरी बड़ी

Solanum indicum, Linn.

वमन पर—फल के रस को गोघृत व शहद के साथ देते है।

अर्श पर—फलो की धूनि दी जाती है।

जीर्ण कास पर—फलो को काट कर उसमे सेधा नमक मिला खाने से कफ निकल कर लाभ होता है।

ध्वज भग पर—इसके बीजो का लेप करते हैं।

सज्ञानाश [बेहोशी] पर—इसके बीजो के चूर्ण के के साथ छोटी पीपल और सोठ का चूर्ण मिला नासिका मे फूक देने से छीकें आकर बेहोशी दूर होती है।

अश्मरी पर—इसकी और छोटी कटेरी दोनो की जड की छाल को एक साथ मीठे दही मे पीस दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से ७ दिन में पथरी निकल जाती है।

वमन वेग शमनार्थ—इसके पत्र स्वरस में अदरक का रस मिलाकर देते हैं। शिर शूल या सिर की पीड़ा पर फलो का लेप किया जाता है। त्वग्रोगो मे पत्तो का लेप करते हैं। अन्य सब प्रयोग छोटी कटेरी के समान ही है।

इसकी श्वेत जाति [श्वेत वृहती] भी गर्भस्थापक है और आंखो में इसके फलो के रस का या पत्र स्वरस का अञ्जन लगाने से नेत्रो के विविध रोग नष्ट होते है।

कठगूलर [Ficus Hispida]

आयुर्वेद तथा आधुनिक वनौषधि विज्ञान के अनुसार यह वटादि वर्ग [Urticaceae] की वनौषधि है। इसका चित्र अञ्जीर के प्रकरण मे 'जङ्गली अञ्जीर' के नाम से दिया गया है।

इसका वृक्ष गूलर या अञ्जीर के वृक्ष जैसा ही, किन्तु कुछ छोटा मध्यमाकार का होता है। इसकी कोमल टहनिया तथा पत्ते और फल सूक्ष्म रोमो से आच्छादित होने से इसे लेटिन मे हिस्पिडा [Hispida] कहते हैं।

पत्र—गूलर पत्र जैसे ही किन्तु कुछ बडे, समवर्ति, ४ से ६ इन्च तक लम्बे एव अण्डाकार, अनीदर ४ इन्च तक चौडे, स्पर्श में खुरदरे होते हैं। पत्र दण्ड या डण्ठल आधे से १॥ इन्च तक लम्बा होता है। कोमल टहनी, पत्ते या फलो को स्पर्श करने से खुजली होने लगती है।

फल—गूलर या अञ्जीर के फल जैसे किन्तु उनसे कुछ छोटे और रोमश होते हैं। ये वृक्ष के निम्न भाग काण्डदेश या तने और जड मे भी गुच्छो मे लगते हैं। इसीलिये इसे सस्कृत मे "जघने फला" कहते है। ऊपरी शाखाओ मे फल बहुत कम पाये जाते है। कच्ची अवस्था मे ये हरे तथा पकने पर जामुनी रग के या पीले और मधुर हो जाते हैं।

इसका वृक्ष पुराना हो जाने पर स्थान स्थान पर गाठदार हो जाता है। छाल पतली एव धूसर रङ्ग की रेशेदार होती है। इससे रस्सिया बनाई जाती हैं। गूलर या अञ्जीर वृक्ष के समान ही इसके सब अङ्गो मे से छेदने या तोड़ने पर दूध निकलता है। किन्तु यह दूध जहरीला होता है।

इसका वृक्ष बहुत शीघ्र बढकर दो या तीन वर्षों में फल देने लगता है। यह भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। पजाब, बगाल, मध्य और दक्षिण भारत तथा राजस्थान में अधिक होता है।

नाम—

संस्कृत—काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयू, जघने फला, खरपत्री

हिन्दी—कठूमर, कोठाडुमर, कठगूलर, तटमिला, गोवला, भुदोई

मरेठी—भुई डम्बर, काला डम्बर

गुजराथी—ढेड डम्बरो, कालो उभरडो

बंगाल—काकडुमुर, काल डुमर

पंजाबी—फगवाडी। फारसी—अजीरे दस्ती

लेटिन—फाइकस हिस्पिडा

तथा फाइकस आपोजिटी फीलिया

नोट—श्वित्र रोग में उपयोगी होने से संस्कृत में इसे श्वित्र भैषज्य भी कहते हैं। ध्यान रहे काकोदुम्बरिका और फल्गु अंजीर को भी कहते हैं, किन्तु यह (कठगूलर) जगली अंजीर है। इसके गुणधर्म अंजीर से भिन्न हैं। इसमें टैनिन, सैपोनीन और मोम का रासायनिक संगठन पाया जाता है। यह अंजीर से अधिक उष्ण और रूक्ष होता है।

गुणधर्म—

यह रूक्ष, लघु, तिक्त, कसैला, विपाक मे कटु शीतवीर्य, ग्राही है। तिक्त, कसैला और रूक्ष होने से कफ दोष का तथा तिक्त, कषाय और शीतवीर्य होने से पित्त दोष का शामक है। व्रण, श्वित्र कुष्ठ, कण्डू, शोथ, पाण्डु, अर्श, कामला, रक्तातिसार, त्वचा के रोग एव रक्तविकार नाशक है।

फल—कच्चे फल—कसैले, शीतल, गुरु, कफनाशक, वामक, रेचक एव पित्तशामक होते हैं। इसके प्रयोग से पित्त गिरकर ग्रामाशय और यकृत हल्के हो जाते है।

पके फल—मधुर, स्निग्ध, वातकारक, दाहशामक, कामोद्दीपक, रक्तस्तम्भक, स्तन्य जनन, बल्य और बृंहण होते हैं।

छाल—कसैली, शीतल, व्रणनाशक, वामक, रेचक, पित्तशामक, नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक और लघु मात्रा में ग्राही एव बल्य है।

ध्यान रहे—इसके फलो के बीजो मे और छाल में रीठे के समान वामक द्रव्य होता है। पके हुए फलो के बीजो का चूर्ण ४ माशे की मात्रा मे गरम पानी के साथ पीने से उत्तम वमन होती है।

जड की छाल—कटु, पौष्टिक एव विषघ्न है। इसकी जड और फलो का प्रयोग कुष्ठ पर लाभदायक है।

मात्रा—छाल का चूर्ण सशोधन के लिये २ से ५ माशे तक। बृंहण या पुष्टि के लिये १ से २ माशे। फल आधे से एक नग।

प्रयोग—

[१] अर्श और रक्तपित्त पर—इसकी जड की छाल का महीन चूर्ण कर उसमें इसके पचाग के स्वरस की ३ भावनायें देकर सुरक्षित रखें। मात्रा—१ से २ माशे तक शहद और घृत के साथ दोनों समय सेवन कराने से अर्श की पीडा दूर होती है। पश्चात् इसके वृक्ष से निकलने वाले दूध को दिन मे दो बार मस्सो पर लगाते रहने मे वे शुष्क होकर गिर जाते है। रोगी को उदर शुद्धि के लिये प्रतिदिन २ से ५ तोले तक शुद्ध घृत खिचड़ी [पतली खिचडी] के साथ लेते रहना चाहिए।

रक्तपित्त पर भी उक्त प्रयोग या इसके आसव का प्रयोग लाभदायक होता है। शरीर के किसी भी स्थान से बहने वाले रक्त मे रुकावट हो जाती है। अर्श या रक्तपित्त पर यह प्रयोग १५ या २० दिन तक पथ्यपूर्वक करें। इसके आसव या अरिष्ट का प्रयोग नीचे देखिये 'काकोदुम्बरिकारिष्ट।'

[२] ग्रन्थि, बद, व्रण आदि पर—इसके फलो को थोडे जल मे पकाकर पत्थर पर पीस गाढा कल्क कर पुल्टिस जैसे बनाकर बाधने से [बांधने के पूर्व बद या ग्रन्थि पर थोडा घी लगा देना चाहिए, इस प्रकार २-२ घण्टे पर यह पुल्टिस सुहाता हुआ गरमागरम बाधते रहने से] वेदना शमन होकर वह शीघ्र ही बैठ जाती है या पक जाती है। इसी प्रकार अपक्व या पच्यमान विद्रधि पर भी यह पुल्टिस लाभ करती है।

जो व्रण या घाव चिरकाल से रोपण न होते हो, न भरते हो उनमे इसका जड का महीन चूर्ण दबाकर बाधने तथा इसके क्वाथ से उन्हे धोते रहने से वे शीघ्र भर जाते हैं।

भयङ्कर विस्फोटक, भगन्दर, नासूर आदि पर इसकी जड को जलाकर की हुई राख मे इसके पचाङ्ग के काढे का ४ भावनायें देकर शुष्क हो जाने पर उसमे १०० बार धोये हुए घृत को मिला मलहम बनावें, पश्चात् उसमें सेइया (या स्याही नाम का एक छोटा सा जगली जानवर जिसके शरीर पर लम्बे लम्बे मोटे काले रंग के कांटे होते हैं) के काटो की भस्म, उक्त मलहम के वजन से आधी मिलाकर तथा अच्छी तरह घोट कर मिलालें। इसके लगाते रहने से उक्त प्रकार के दूषित व्रणो में शीघ्र लाभ होता है।

सिर के गज और व्रणो पर कच्चे फलो का चूर्ण बुरकाते हैं तथा सिरका के साथ उसका लेप करते हैं। इसके पके फलो का लेप कण्ठमाला पर लगाते रहने से लाभ होता है।

इसका दूध दाद, तिल या मस्सो पर लगाने से फफोले होकर वे अच्छे हो जाते है।

(३) श्वेत कुष्ठ (श्वित्र या किलास कुष्ठ) पर—इसकी जड के साथ गूलर वृक्ष की जड समभाग कूट पीस कर क्वाथ बनाकर सुखोष्ण रोगी को पिला कुछ देर धूप मे बैठावे। इससे श्वित्र या किलास या पुण्डरीक कुष्ठ मे फफोले उठेंगे, जिन्हे फोडकर वहा चीते या हाथी का चमडा जलाकर तिल तैल मे मिला लेप करने से लाभ होता है। (सुश्रुत चि अ ६)

(४) पाडु और कामला पर—इसके अरिष्ट की मात्रा १ से १॥ तोला तक मे १ से २ माशे तक कुटकी चूर्ण मिला पिलाने से (दिन मे दो बार) लाभ होता है।

यदि कामला रोग मे यकृत की विशेष वृद्धि होगई हो तो प्रात रोगी को इसके एक या आधे फल को बकरी के १० तोले दूध मे उबालकर खिलावें और रात्रि मे उक्त अरिष्ट का प्रयोग करें। यह प्रयोग अशक्त व्यक्ति को नही देना चाहिए। शीतज्वर या मलेरिया मे कामला या यकृत वृद्धि होने पर उक्त प्रकार मे फलो का प्रयोग अच्छा लाभकारी होता है।

(५) स्त्री रोग—प्रदर पर—फलो के चूर्ण में समभाग शक्कर और शहद मिला १ से २ तोले तक दिन में दो बार सेवन कराने से रक्तप्रदर तथा कफप्रधान श्वेतप्रदर मे भी लाभ होता है। अथवा—

इसके फलो का रस ६ मासे से १ तोला तक लेकर उसमे समभाग शहद मिला सेवन करावें। इस प्रयोग से मासिक धर्म मे अति रक्तस्राव भी दूर होता है।

इसके फलो को खाने से गर्भपात की शिकायत दूर होती है। तथा स्तन्यवृद्धि होती है।

गर्भिणी का जी मिचलाना या उबाक पर—

फल्गुवाटिका—इसकी जड १० तोले के महीन चूर्ण मे मुलैठी ५ तोला, आकडी (मदार) के शुष्क फूल, लौंग और शालीमिश्री १-१ तोला, इन सबका महीन चूर्ण मिला शहद के साथ खरल कर १॥ या २ माशे की गोलियां बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में ३ बार खिलाने से गर्भिणी को होने वाली मचलिया या उबाक की शांति होती है।

(६) शीतज्वर पर—इसकी छाल के चूर्ण को १ से २ माशे की मात्रा मे दिन में ३ या ४ बार गौ के दूध के साथ सेवन कराने से जाडे से आने वाला तीन या विषम ज्वर दूर हो जाता है।

(७) दमा और खांसी पर—दमा रोग मे इसके अरिष्ट के साथ मण्डूर भस्म का सेवन कराते है।

उक्त नं ५ मे कही हुई फल्गुवटिका का सेवन सर्व प्रकार की खांसी, छाती का दर्द और जलन दूर करता है। इन वटिकाओं को हुक्के के धुएं के साथ लेने से बैठा हुआ कंठ (कण्ठावरोध) खुल जाता है। इसके फल की तरकारी यक्ष्मा मे लाभकारी है।

(८) सुजाक और प्रमेह पर—इसकी जड २॥ तोले जौकुट कर ४० तोले जल मे मिट्टी के पात्र मे शाम के समय भिगोकर प्रात चूल्हे पर चढावें। चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर छानकर दिन मे दो बार ५-५ तोले की मात्रा मे १ से २ तोला शहद मिला पिलाते रहने से एक मास मे मूत्र सम्बन्धी समस्त विकार, सुजाक, पित्तप्रमेह, वीर्यस्राव, जलन आदि दूर हो जाते हैं। मूत्रनलिका शुद्ध हो जाती है। इसके अरिष्ट के सेवन से भी इसी प्रकार लाभ होता है।

उक्त क्वाथ या अरिष्ट के सेवन से त्वचा के रोग-खाज, खुजली, फोडे फुन्सी, दाद आदि भी दूर होते है।

(९) पागल कुत्ते के विष पर—इसकी जड का चूर्ण ६ माशे और धतूरे के बीजो का चूर्ण १ माशा, दोनो का मिश्रण प्रात एक बार चावलो के धोवन के साथ पीसकर पिलावें। कुत्ता काटने के बाद ८ से १५ दिन के भीतर ही इस प्रयोग को प्रारम्भ कर देना चाहिये। इससे विष प्रकुपित होकर नष्ट हो जाता है। प्रतिदिन केवल प्रात ही इसे पिलाते रहे। ध्यान रहे इस प्रयोग से रोगी को

कुछ नशा आजाय और वमन हो जाय, उतनी ही मात्रा देना चाहिये। यदि नशा न आवे तो मात्रा बढाई जा सकती है। (गावो मे औषधि रत्न)

(१०) काकोदुम्बरिकारिष्ट—(न १)—इसका जड ५ सेर तथा फल २ सेर जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावें। १३ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छान कर शुद्ध चीना मिट्टी के पात्र मे भर देवें। ठडा होजाने पर उसमे धाय के फूल १० छटाक, शहद ३ सेर, मिश्री ६ सेर तथा श्वेतचन्दन, लालचन्दन, लौंग और नागरमोथा ४-४ तोला चूर्ण कर मिला दें। अच्छी तरह मुख सन्धान कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर बोतलो मे भर देवें।

मात्रा—१ से ४ तोले तक। दुगने जल के साथ सेवन करने से रक्त प्रदर, रक्तपित्त, कुष्ठ विकार नष्ट होता है। यह गर्भधारक होने से ऋतुस्नान के पश्चात् चतुर्थ दिन से केवल ३ दिन तक इसका सेवन कर गर्भाधान करावें। यह गर्भपातावरोधक भी है। जिसे गर्भपात हो जाता हो, उसे इसका सेवन कुछ दिनो तक कराना हितकर होता है। (वृ आ सग्रह)

(११) काकोदुम्बरारिष्ट—(न २)—इसकी जड १४० तोला, मुलहठी ४० तोला, बेल की जड, अडूसे का जड और गोखरू १-१० तोला इन सबका जौकुट कर २५ सेर पानी मे औटावे। १२॥ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छान कर उसमे कबावचीनी, सोंठ, पीपर, मिर्च, जायफल, चन्दन जौकुट बुरादा, चित्रकमूल और लौंग ३-३ तोला, कालीदाख, धाय के फूल २५-२५ तोला ये सब कूटकर मिला देवे। पश्चात् ५ सेर गुड मिलाकर खूब हिलाकर चीनी की बर्नियो मे भर २० दिन तक पडा रहने देवें। छानकर बोतलो मे भर रक्खें। [व चन्द्रोदय]

इसके प्रयोग मे रक्तपित्त, रक्तार्श, पाण्डु, कामला, रक्तविकार, सुजाक और प्रमेह मे लाभ होता है।

नोट—कठूमर का एक भेद और होता है, जिसे छोटा जंगली अजीर तथा लेटिनमे फायकस राईब्स (Ficus Ribes) या फायकस पोलिकार्पा (Ficus Policarpa) कहते हैं। इसका वृक्ष उक्त कठगूलर से भी छोटा, शाखायें पतली और लम्बी होती हैं। पत्ते लम्बे अनीदार एव कंगूरेदार होते हैं। इसकी जड़ के ऊपरी भाग से जो रोमयुक्त तथा पत्र रहित शाखायें निकलती है, उन्हीं पर गूलर जैसे फल आते हैं।

गुणधर्म में यह उक्त कठगूलर के समान ही है। इसके फलों का शर्बत कोष्ठबद्धता को दूर करता है। फल की तरकारी क्षयरोगी को खिलाते है।

कड़वी तुम्बी (Lagenaria Vulgaris)

आयुर्वेदानुसार यह शाकवर्ग मे लौकी या कद्दू का कडुवा भेद है। तथा वमन, फलिनी, ऊर्ध्वभाग हर आदि गणो मे इसकी गणना की गई है।

आधुनिकमत से आकारप्रकारानुसार यह कोशातकी कुल [Cucurbitaceae] की मानी गई है।

यह भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र जगलो मे गावडो पाई जाती है। कही कही यह लगाई भी जाती है। इसकी बेल या लता बहुत दूर तक फैलती है। इसके तन्तु लम्बे एव दो शाखायुक्त होते हैं।

पत्ते—लगभग ६ इच व्यास के कोमल तथा पच कोण विशिष्ट होते है।

पुष्प—लौकी या कद्दू के फूल जैसे ही श्वेत वर्ण के और पुष्प दण्ड लगभग ६ इच लम्बा होता है। यह प्राय वर्षा मे ही फूलती फलती है।

फल—लगभग १॥ फीट लम्बा, नीचे का भाग चौडा गोलाकार [पिण्डफला] या सुराहीदार होता है। इसका छिलका बहुत मोटा एव कडा होने से इसके साधारण सितार या बीन या तम्बूरा के कुन्दे बनाये जाते हैं। इसीलिये यह तुम्बी या तूम्बडी कहाती है। पानी भरने के लिये इसका कमण्डलु आदि बनाते है। अत अंग्रेजी मे The bottle gourd इसे कहते हैं। मीठी लौकी देखिए कद्दू के प्रकरण मे। इसके बीज मीठी लौकी के बीजो से छोटे व मटमैले होते हैं।

नाम—

संस्कृत—कटुतुम्बी, इक्ष्वाकु, तिक्तालाबू, पिण्ड-फला, तिक्त बीजा

हिन्दी—तित (कड़ुवी) लौकी, कड़ुवी तुम्बी, तितुआ लौका, कड़ुवी आल

मराठी—कडूभोपला, रानभोपला; कड दुधी

बंगला—तितलाऊ। अंग्रेजी—बिटर बोतल गोर्ड Bitter bottle gourd)

लेटिन—लेजानेरिया व्हलगेरिस, कुकुरबिटा लेजा-नेरिया (Cucurbita Lagenaria)

गुणधर्म और रासायनिक संगठन—

इसके फल मे कार्बोहाइड्रेट, अलब्युमिनायड, ईथर एक्स्ट्रेक्ट, सैपोनिन (Saponin), क्षार और काष्ठ सूत्र होते है। ताजे फल मे प्रतिशत ९०.३६ तक जलीयांश होता है। बीजो मे एक प्रकार का स्थिर तैल होता है।

गुणधर्म मे यह प्राय इन्द्रायण के समान है। यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, विपाक मे भी कटु और शीतवीर्य (इन्द्रायण उष्णवीर्य है, किसी किसी के मत से कटुतुम्बी भी उष्णवीर्य है) है। यह तीव्र वामक, भेदक (इससे तुरन्त ही जल के समान विरेचन होने लगते हैं), रक्तशोधक, शोथ और शूलहर, कफपित्त सशोधक एव सशामक, कफनिसारक (छोटी मात्रा मे लेने से उबकाई आकर कफ गिरने लगता है और दस्त भी साफ होता है), साथ ही साथ यह शिरोविरेचक, जन्तुघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, व्रणशोधक और विषघ्न भी है। किन्तु अधिक मात्रा मे इससे हैजा के समान अत्यधिक वमन और रेचन होकर रोगी मरणासन्न हो जाता है।

इसके पत्ते पाक मे मधुर, उत्तम मूत्र शोधक, पित्त-शामक तथा श्वेत प्रदर, योनि एव गर्भाशय के विकारो पर लाभकारी होते हैं।

सेवनीय मात्रा—स्वरस ६ माशे से १ तोला तक, बीज चूर्ण १ से ३ माशे तक।

इसके अभाव मे प्रतिनिधि के रूप मे कड़ुवी तुरई का प्रयोग करते हैं।

प्रयोग-

—वमनार्थ—इक्ष्वाकु कल्प—कास, श्वास, विष, वमन (उबकाई या जी मचलाना), ज्वर तथा कफ इनमें से किसी भी विकार से पीड़ित या कफ पित्तज रोगों से पीड़ित रोगी के संशोधनार्थ इसका प्रयोग उत्तम होता है।

पुष्परहित (जिसमे फूल न आये हों ऐसी) कटु-तुम्बी की लता के नवीन पत्रांकुरों को मुट्ठी भर (४ तोले) लेकर २ प्रस्थ (१२६ तोले) दूध में पाक कर छान लें। पश्चात् रोगी को विधिपूर्वक सेवन कराने से पित्त प्रधान ज्वर तथा कफज्वर में (या जिस कफज्वर मे पित्त उन्मार्गगामी हो) लाभ होता है। ध्यान रहे उक्त दूध के पाक के लिये उसमें दूध से चौगुना पानी मिलाकर पाक करना चाहिए। अथवा—

इसके फल के स्वरस १ भाग को ३ भाग दूध में पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर छाती या फेफड़ों मे कफ के प्रबल होने पर तथा स्वरभेद और प्रतिश्याय मे रोगी को देवें। अथवा—

पकी हुई कटुतुम्बी के मध्यभाग (गूदा और बीज) को निकालकर उसमे दूध डाल दे। दूध जमकर दही बन जाय तो उसे कफज कास, श्वास और वमन मे रोगी को देवें। इसके बीजो को बकरी के दूध मे पकाकर वह दूध विष, गुल्म, उदररोग, श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला का दशा मे पिलावें।

इसके फूलो और फल के रस को धूप मे सुखाकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को पुष्पो की माला पर बुरक कर रोगी को धारण कराने से उसकी गन्ध से वमन होकर दोष शान्ति होती है। इत्यादि देखिये इक्ष्वाकु कल्प 'चरक कल्प स्थान अ० ३'

इसके ताजे फल को कूट पीस और निचोड़कर या सूखे फल को जल के साथ पीस छानकर निकाला हुआ रस ६ माशे से १ तोला तक या इससे अधिक रोगी के बलाबलानुसार पिलाने से जीर्ण कफज कास, श्वास मे लाभ होता है। वमन द्वारा कफ निकल जाता है।

अथवा—इसकी मूल का चूर्ण १ रत्ती या फल का गूदा चौथाई रत्ती मे १ रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण मिला शहद के साथ चटाने से कफ सरलता से गिरने लग जाता है। कफ प्रकोप की शान्ति होती है।

(२) कामला (पीलिया)—प्राय पित्तनलिका मे

अवरोध होने पर शरीर पर विशेषत चेहरे पर और आखो मे पीलापन छा जाता है। यदि अवरोध कम प्रमाण में हो तो धीरे धीरे ४-८ दिनो मे, यदि अवरोध अधिक प्रमाण मे हो तो एक दिन मे ही पीलिया हो जाता है। इनमें से धीरे धीरे होने वाले कामला में इसके पत्तो का रस प्रात साय १ या २ तोला पिलाने से अथवा इसके ४ तोले पत्तो का क्वाथ कर ३-४ दिन पिलाने से लाभ होता है। प्रतिदिन केवल प्रात काल ही इस क्वाथ को पिलावें। साथ ही साथ इसके स्वरस को अच्छी तरह छानकर प्रात ३-४ बूदे नासिका मे टपकाकर ऊपर को खीचने से नाक के द्वारा पीलिया का समस्त विकार पानी के रूप में टपक कर नेत्र और चेहरे का पीलिया और मस्तिष्क के प्रसेकजन्य शिर शूल, अर्द्धावभेदक कफज रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं।

अथवा—सूखी कड़ुतुम्बी के फल के भीतर का श्वेत गूदा पीसछान कर महीन चूर्ण का नस्य देने से नाक से पीले रग का स्राव होकर पीलिया दूर हो जाती है। उक्त रस या चूर्ण की नस्य क्रिया मे यदि नासिका मे अत्यधिक जलन हो तो घृत को नासिका मे टपका देने से जलन या दाह शात हो जाती है और पानी का स्राव भी रुकता है।

कोई कोई इसमे ताजे फल को चीरकर रात्रि के समय बाहर ओस मे रख देते हैं। उस पर जो ओस की बूंदें जमा हो जाती हैं, उन्हे रोगी की नाक में टपकाते और आखो मे आजते है। इससे नाक मे जलन नही होती तथा दृष्टि लाभ हो जाता है। रोगी को उक्त प्रयोग से दो घडी बाद हरड और मिश्री का चूर्ण ३ से ६ माशे तक जल के साथ सेवन करावें, और उस दिन केवल दही भात खिलाते हैं।

[३] कण्ठमाला, गलगण्ड तथा शोथ पर—इसके पके फल के अन्दर का गूदा आदि निकाल देवें, फिर उसमे जल या मद्य भर कर ७ दिन तक सुरक्षित रक्खें। जल की मात्रा १ से २ तोला और मद्य की ४० या ५० बूंदें थोड़ा जल मिला प्रात साय सेवन करावें।

यदि गलगण्ड (Goitre) हो या गले पर कडी सूजन हो तो रात्रि के समय उक्त फल मे जल भर कर प्रात ५-१० तोले तक पिलावे। साथ ही साथ—फल का रस और तिल तैल सम भाग, अथवा ५ तोले तैल मे २० तोले रस मिला पीतल के पात्र मे पका कर सिद्ध किये हुये तैल को गण्डमाला या गलगण्ड पर धीरे धीरे मर्दन करे। रोगी को केवल दूध भात खाना चाहिये। नमक, तैल, मिरच, खटाई तथा गरिष्ठ भोजन नही करे।

शोथ पर—यदि सधिस्थानो पर सूजन आगई हो या जन्तु के दश मे सूजन हो तो इसकी जड या फलका गूदा और जटामासी इन दोनो को समभाग लेकर काजी मे मिला पकावें। फिर इसकी भाप शोथ स्थान पर देने से तथा पात्र मे जो कल्क रहे उससे सेंक करने से शीघ्र लाभ होता है।

[४] अर्श पर—इसके बीजो को रेहक्षार या नेनुआ मिट्टी के साथ थोडी काजी मे पीस छोटी छोटी गुटिकायें बनावें। एक एक गुटिका गुदा में धारण करावें, तथा दही मिला हुआ भोजन खिलावें। दही भैंस के दूध का होना चाहिये।

अथवा—इसके फल के गूदे को गुड और काजी के साथ पीसकर गुदार्श पर लेप करें।

यदि नासार्श हो तो इसकी जड को बासी पानी के साथ पीस और छानकर इसकी कुछ बूंदें नाक मे टपकाने से नाक के मस्से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

[५] व्रण, नासूर आदि पर—इसके पत्तो को लोध के साथ पीसकर लेप करने से, अथवा—इसके फल का रस २० तोले, भेड की ऊन की राख १ तोला और सरसो तेल ५ तोला इन सबको मदाग्नि पर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे रख लें। इसे रुई मे भिगोकर दुष्ट व्रण या नासूर मे भरने से शीघ्र लाभ होता है।

[६] कुष्ठ तथा रक्त विकार पर—इसके पचाङ्ग को कूटकर गरम पानी मे घोलकर उस पानी मे दोनो पैरो को डुबो दें और धीरे धीरे मर्दन करें। ऐसा करने से कुछ देर मे मुख मे जब कड़ुवाहट मालूम दे तब पैरो को बाहर निकाल गरम मोटे वस्त्र ओढ़कर लेट जावें। पसीना आने पर अच्छी तरह पोछ डालें। ऐसा कुछ दिन करने से कुष्ठ, पुरानी खुजली, फोडा, फुसी आदि दूर

हो जाते हैं। रोगी को तुम्बी में भरकर रक्खा हुआ जल थोडा थोडा पीते रहना भी आवश्यक है। इससे रक्त की शुद्धि हो जाती है।

✓[७] स्त्री रोगो पर—जरा (आवल) का रुकना—प्रसव के पश्चात् यदि आवल ठीक समय पर न निकले तो इसके फल का सूखा चूर्ण २ भाग, कडवी तुरई का चूर्ण १ भाग और सर्प की केंचुली १ भाग इन तीनो के मोटे चूर्ण को सरसो तेल मे मिला आग पर थोडा थोड़ा डाले तथा उस पर एक नलिका रख, योनि मे धुआ प्रवेश करावें। आवल या अमरा शीघ्र निकल पडेगी।

योनि सकोचनार्थ—इसके बीजो की गिरी और लोध को पानी मे घिसकर योनि के भीतर लेप करने से प्रसव के पश्चात् हुई विस्तृत या शिथिल योनि आकुचित हो जाती है।

प्रसूता स्त्री की योनि मे यदि क्षत हो गये हो तो इसकी पत्ती के साथ लोध चूर्ण को जल मे पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

[८] जलोदर—इसके पके हुए ताजे फल को ऊपर छेद कर उसमे लोह भस्म, मडूर भस्म, बडी हरड का चूर्ण और सौंठ चूर्ण १-१ तोला भर कर छिद्र का मुख बन्द कर दो मास तक पडे रहने देवें। जब वह फल बिलकुल शुष्क हो जाय, तब उसे फोडकर बीजो को अलग कर दें। अन्दर का मगज और भरी हुई औषधियो को अच्छी तरह खरल कर उसमे छोटी पीपल, इन्द्र जौ, वायविडङ्ग, अजवायन और भुनी हीग का ६-६ माशे चूर्ण मिला ग्वारपाठे (घृतकुमारी) के रस मे खरल कर ६-६ रत्ती की गोलिया बना लें। प्रतिदिन प्रात २-२ गोली लेकर ऊपर १ तोला गोमूत्र पिलावें।

पथ्य मे केवल दूध देवें। स्वल्प मात्रा मे चावल दे सकते हैं। नमक और पानी नही देना चाहिये। पानी यदि देना ही पडे तो उसमे स्वल्प मात्रा मे सोडा मिला कर देवें। इन प्रयोग से जलोदर, पाडु कामला आदि भी दूर हो जाते हैं। (जगलनी जडी बूटी)

[९] दन्तक्रिमि पर—इसकी मूल को बार बार चबाकर थूकने तथा गरम जल से कुल्ले करते रहने से अथवा इसकी जड़ का महीन चूर्ण दन्त कृमि के छिद्र मे भर देने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

✓[१०] रतौंधी पर—इसके शुष्क फल को मटकी में भर कर गजपुट मे भस्म कर लें। इस भस्म को खूब महीन कर शहद मे मिला नेत्र मे आजने से दृष्टि साफ हो जाती है, रतौंधी दूर होती है। किंतु पौष्टिक भोजन करना तथा तमाकू, गाजा आदि का व्यसन छोड दे।

[११] अश्मरी (पथरी) पर—इसके पत्र स्वरस २ तोला मे जवाखार और मिश्री प्रत्येक का चूर्ण १। तोले मिला प्रात साय सेवन करावे। पथरी शीघ्र दूर हो जाती है।

✓[१२] लकवा (पक्षाघात या अर्दित) पर—इसके बीजो को जल मे पीस कर गरमकर लेप करते हैं।

पाददारी या बिवाई पर भी इसी प्रकार बीजो का लेप करते रहने से लाभ होता है।

[१३] कर्णशूल या कान मे कोई कीडा घुस गया हो तो इसके फल के पत्ते के रस को कान मे डालने से कान की वेदना दूर होती है। कीडा मर जाता है।

[१४] कटुतुम्बी तैल—वायबिडङ्ग, जवाखार, सेंधा नमक, चव्य, रास्ना, चित्रक, सौंठ, मिर्च, पीपल और देवदारु सब समभाग लेकर कल्क करें। इसमे कटुतुम्बी का स्वरस ४ भाग और सरसो तैल १ भाग मिला तैल सिद्ध कर लें। इस तैल के मर्दन और नस्य से गण्डमाला, गलगण्ड, ग्रन्थिशोथ, व्रण, कुष्ठ आदि पर लाभ होता है। अथवा—

इसके बीज और सौंठ समभाग जल के साथ पीस लुगदी बनाकर तैल सिद्ध करलें। यह तैल घोर व्रण एवं सडे गले लिंग मास को अच्छा करता है। विशेष अनुभूत है।

—वैद्य मोहरसिंह आर्य हितैषी
महेन्द्रगढ (पू पं)।

कड़वी तोरई [Luffa Amara]

यह भी कडवीतुम्बी के अनुसार शाकवर्ग मे तोरई का कडुवा भेद है। तथा वमन, फलिनी, ऊर्ध्वभागहर एव उभयतो भागहर गणो मे इसकी गणना की गई है।

आधुनिक मतानुसार यह कोशातक्यादि वर्ग की प्रमुख बूटी है। शाकवर्ग की तोरई मे जो खर्रा या भिंगा तुरई होती है। जिसके फलो पर ऊंची ऊची धारिया होती हैं, फल विशेष लम्बे नही होते तथा जिसे लेटिन मे लुफा एक्युटेंगुला (Luffa Acutagula) कहते हैं (इसका वर्णन तोरई के प्रकरण मे देखिये) और सस्कृत मे राजिमत्फला इत्यादि कहते हैं, उसीका यह एक भेद कडवी या जगली तोरई है। इसे अग्रेजी में रिब्ड लुफा (Ribbed Luffa) और लेटिन मे लुफा अमारा कहते हैं।

तोरई की दूसरी जाति जिसे नेनुआ या घियातोरई कहते हैं। (इसका वर्णन घिया तोरई के प्रकरण मे देखिये), जिसे अग्रेजी मे स्मूथ लुफा (Smooth Luffa) तथा लेटिन में लुफा ईजिप्टियाका (Luffa Aegypyt-) iaca) या लुफा पेन्टेनड्रिया (Luffa Pentandrea) कहते हैं, इसकी भी एक कडवी जाति होती है।

इस प्रकरण मे उक्त दोनो कडवी जातियो की तोरई का वर्णन किया जाता है—

कडवी खर्रा तोरई और कडवी नेनुआ या घिया तोरई इन दोनो की खूब फैलनी वाली लतायें जगलो मे खेतो या बाग बगीचो की वाडो मे या घर के आस पास के कूड़ा-कर्कट के स्थानो पर पायी जाती हैं। बगाल और दक्षिण भारत मे अधिक होती है। दोनो का रसायनिक सगठन प्राय एक ही प्रकार का होता है। दोनो के सर्वाङ्ग मे इन्द्रायण के सदृश कोलोसिन्थीन (Colocynthin) नामक तिक्त सत्व तथा लुफीन (Luffein) नामक तिक्त द्रव्य प्रमुखता से पाया जाता है। दोनो के बीजो मे एक प्रकार का स्थिर तैल होता है।

नाम —

सं०—तिक्त कोषातकी (कोषयुक्त फल); कृतवेधन, मृदंग फला (मृदंगाकार फलवाली) जालिनी (जिसकी फल मज्जा जालयुक्त हो) आदि तथा धामार्गव, महाकोषातकी, महाजालिनी आदि ये दोनों प्रकार की कडु तोरई के भिन्न भिन्न नाम हैं।

हिन्दी—कड़वी तोरई (खर्रा) जगली तोरई, घिलोडी आदि तथा कडू नुनुआ या घियातोरई

म०—कडू दोडके, रानढोडकी, कडु सिरोला

गु०—कडू घिसोड़ी, कड़वातुरम्बा या गलकांतुरया

वं०—तीत झुड़का धुन्दुल झिंगा घोषालता

अंग्रेजी—बिट्टर लुफा (Bitter Luffa) बारामरा (Baramara) रिब्बेर्ड या स्मूथ लफा (Ribbed or Smooth Luffa)

लेटिन— लुफा अमरा (Luffa Amara)

उक्त दोनो (खर्रा और नेनुआ तोरई) की लतायें एक समान ही खूब दूर तक फैलने वाली होती है। दोनो के पत्र प्राय पचकोण विशिष्ट, दन्तुर एव लगभग ६ इच व्यास के होते हैं। पुष्प पीत वर्ण के होते है। नेनुओ के फल ५-१० इच लम्बे गोल, तथा खर्रा के फल उसकी अपेक्षा छोटे ३ से ६ ईच लम्बे एव धारीदार १ से १॥ इच मोटे होते हैं। फल की मज्जा श्वेत तथा विशेष उग्र गधयुक्त होती है। बीज धूसर वर्ण के एव काले दानो से युक्त होते है। नेनुओ का बीज काले रग का होता है।

गुणधर्म—

दोनो के गुणधर्म प्राय एक समान ही लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, रस और विपाक मे कडवी उष्णवीर्य (किसी किसी के मत से शीतवीर्य) एव वमन और विरेचन कारक हैं। दोनो कफ पित्त सशोधक, रक्त शोधक, नि सारक, शोथ और आध्मानहर हैं। उदर, गुल्म रक्तविकार, प्लीहा वृद्धि, कास, श्वास, कुष्ठ, पाण्डु, अर्श, क्षयजनित ग्रन्थियो तथा योनिमार्ग की ग्रंथियो को नष्ट करता है। कटु खर्रा तुरई विशेषत कुष्ठघ्न और कटुपौष्टिक है। कटु नेनुआ तुरई विशेषत कफ के रोगो पर सशोधनार्थ, तथा कास, श्वास एव कुष्ठ या स्वर के विकारो पर प्रयुक्त होती है।

कड़वी तोरई

(LUFFA AMARA)

पुष्प
पुष्पकली
पत्र
फल
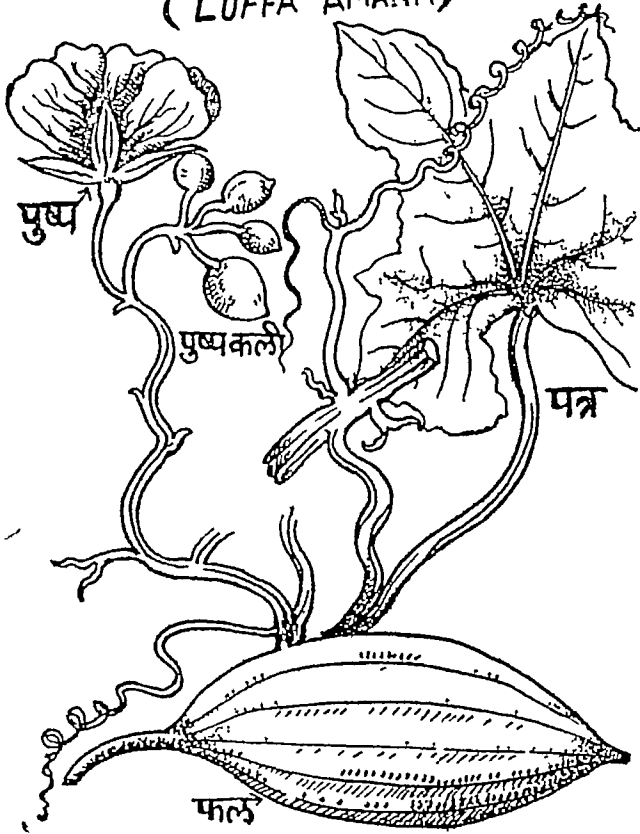
इसके जड की छाल गर्भस्रावक, विरेचक और मूत्रल है। ज्वर, कास, अर्श आदि पर प्रयुक्त होती है । शोथ-युक्त रक्तस्राव पर इसके फल का चूर्ण मर्दन करते हैं । सिर दर्द पर फल का रस लगाते हैं। विषैले कीटको के दश पर भी यह फल का रस काम देता है । यह रस पिलाया जाता है तथा फल को पीस कर लेप करते हैं । जिससे वमन और रेचन होकर विष निकल जाता है । पाडु और कामला पर इसके रस का नस्य करने से पीले रग का पानी निकल कर लाभ होता है। श्वास कास पर इसके फल की भस्म २-३ रत्ती पान मे रख कर खिलाने से लाभ होता है। बीजो की मज्जा उत्तम कफघ्न एव ईपिकाक्युआना के समान ही वामक है। यह नष्टार्तव मे दी जाती है, तथा अतिसार नाशक है। यह बीज की मज्जा या गिरी थोडी मात्रा कफघ्न एव उपनेपक है। सग्रहणी पर भी यह उत्तम लाभकारी है।

मात्रा—वमनार्थ-१० से १५ रत्ती, स्वरस ३-६ माशे, चूर्ण-१-३ माशे ।

छोटी मात्रा (३ से ५ रत्ती) मे यह क्षुधावर्धक और उदर शोधक है। मध्यम मात्रा मे विरेचन एव मूत्र का वृद्धि करती है। बडी मात्रा मे वमन तथा जल सदृश विरेचनकारक है ।

नोट—ध्यान रहे यद्यपि यह बूटी अत्यन्त गुणकारी है तथापि अति तीव्र तथा विशेष वामक और विरेचक होने से इसका उपयोग बहुत ही सावधानी से करने की आवश्यकता है। कमजोर तथा अशक्त हृदय वाले इसे सहन नहीं कर सकते। यदि भूल से इसके प्रयोग के कारण रोगी की हालत बिगड़ जाय तो उसे गोघृत का पान कराना और सुंघाना हितकर होता है।

प्रयोग—

औषध प्रयोगार्थ इसके अर्क, फाण्ट, हिम और क्षार की कल्पना इस प्रकार की जाती है—

अर्क—इसके पंचाङ्ग का चूर्ण १ भाग और मद्य (६० प्रतिशत) २० भाग एकत्र मिला काच की बोतल मे ७ दिन बन्द कर रक्खें। पश्चात् छान लें। मात्रा—१ से २० बूद।

फाट—इसकी जड़ का चूर्ण १ तोला लेकर खूब गरम (उबलते हुए) जल मे ५० तोले मे मिलाकर आध घण्टे तक ढाककर रक्खें। फिर छान कर काम मे लावें। मात्रा—२॥ से ५ तोले तक दिन मे २ या ३ बार देवें।

हिम—इसके सूखे फल १ या २ लेकर ऊपर का छिलका और अन्दर के बीजो को दूर कर शेष जाली के समान जो भाग रहता है उसे यदि १ पल लिया हो तो २० तोले और २ पल लिये हो तो लगभग आध सेर ठण्डे जल मे किसी काच के पात्र मे १ या २ घण्टे भिगोकर छान लें। मात्रा—२॥ से ५ तोले तक रोगी को प्रात पिलाने से वमन और दस्त होकर कोठा साफ हो जाता है। कफ, पित्त या विष के विकार दूर होते हैं। पाण्डु, प्लीहा, कामला, अर्श, शोथ, जलोदर, गुल्म, त्वचा के विकार, ज्वर आदि पर इसका प्रयोग कुछ दिन

पथ्यपूर्वक कराने से लाभ होता है।[१]

क्षार—इसके पचाङ्ग को जलाकर सफेद राख करे। फिर ऊपर का स्वच्छ जल नितार कर आग पर पकावें। सब जल के उड जाने पर नीचे जो क्षार मिले उसे सुरच कर एक शीशी मे रक्खें। मात्रा—१ से ४ रत्ती तक घृत के साथ सेवन से कफ प्रकोप एव अम्लपित्त पर विशेष लाभ होता है।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग—

(१) कफ, पित्त के विकार, विष विकार, वमनार्थ—विशेषतः कड़वी खरी तुरई के बीजो की गिरी का चूर्ण २ से ५ रत्ती तक जल के साथ देने से वमन मे कफ निकल कर कफ विकारो की शान्ति होती है। उक्त चूर्ण की मात्रा ८ से १६ रत्ती तक देने से अथवा उक्त हिम को ही प्रात ५ तोला तक पिलाने से वमन के साथ विरेचन होकर कफ के साथ ही साथ पित्त विकार, विष विकार, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, गुल्म, जीर्ण ज्वर, श्वास आदि रोगो की शान्ति हो जाती है।

उक्त प्रयोग मे मलेरिया ज्वर पर क्विनाइन या सिनकोना के प्रयोगो की अपेक्षा अधिक उत्तम लाभ होता है। इस प्रयोग को धैर्यपूर्वक कुछ दिन देते रहने से मलेरिया के कारण हुई यकृत या प्लीहा वृद्धि, शोथ, कामला आदि उपद्रवों की शान्ति हो जाती है।

(२) कामला और पाण्डु पर—इसके फल को कूट कर कपडे मे निचोड कर जो रस निकले उसकी २-४ बूदें नासिका मे टपका देवें। रोगी उन्हे ऊपर को सास से खींच लेवे। तत्काल ही पीले रग का स्राव शुरू हो हो जावेगा। पीलिया का सब विकार बाहर हो जावेगा। किन्तु इसमे धैर्य की आवश्यकता है। कोमल प्रकृति वालो को इस प्रयोग से सिर दर्द, जलन, चक्कर आदि आने लगते हैं। किसी किसी को ज्वर भी हो जाता है। ये सब उपद्रव गोघृत को नासिका द्वारा ऊपर खीचने से ३-४ घण्टे मे दूर हो जाते हैं।

इसका ताजा फल न मिलने पर शुष्क फल का महीन चूर्ण लेकर नस्य या नाक से १-२ रत्ती ऊपर खीचने से वही लाभ होता है। यदि विशेष छीके आवें नासिका मे दाह, जलन होवे तो उसी प्रकार घृत के सुघाने से सब उपद्रवो की शान्ति हो जाती है। तथा पीलिया रोग दूर होता है।

उक्त हिम की नस्य से भी इसी प्रकार का लाभ होता है। अथवा इसके बीज को पानी मे घिसकर नस्य लेने से भी वही असर होता है। कोई कोई फल के चूर्ण मे छोटी पीपल और राई का चूर्ण मिलाकर नस्य कराते हैं। किन्तु यह बहुत ही उग्र एव तीव्र हो जाता है। बलवान देहाती व्यक्ति ही इसे सहन कर सकता है।

(३) कुत्ता, चूहा एव अन्य विषैले कीटको के दश पर—पागल कुत्ते के काटने पर इसका फाट या हिम प्रतिदिन प्रात पिलाने मे ७ दिन मे विष का असर नहीं होने पाता। वमन और विरेचन द्वारा विष बाहर निकल जाता है। फल के रस का या कल्क का लेप दश स्थान पर करते रहना चाहिए। इसी प्रयोग से चूहे का या अन्य विषैले कीटको का विष नष्ट किया जा सकता है। फाट या हिम उतनी ही मात्रा मे देवें जिसमे वमन विरेचन होकर विष निकल जावे।

(४) अर्श पर—इसका क्षार १ तोला को ४० तोले जल मे मिला उसमे बेंगन के टुकडे डाल कर उबालें। बेंगन नरम हो जाने पर जल को निकाल डालें। फिर घृत की छौंक देकर पका लेवें। इसका सेवन गुड मिलाकर करें। हो सके उतना बेंगन खाकर ऊपर से मठ्ठा पीवें। इस प्रकार एक सप्ताह तक बेंगन पर रह जाने से अर्श के सब मस्से जल जाते हैं।

—गावो मे औषधि रत्न

इसके फल के साथ हल्दी मिला पीस कर अर्श पर लेप करने से अथवा इसकी जड को इसके पत्तो के रस मे पीसकर लेप करते रहने से मस्से गिर जाते हैं। इसके फलो को सुखाकर कूट कर जौकुट भूसा सा बना गादी मे भर कर उस पर ही नित्य अपनी बैठक रखने से कुछ दिनो

---

१ इस हिम का उपयोग दूषित या सडने वाले व्रणों को या कैंसर के व्रण को धोने में करने से व्रणों की शुद्धि होकर वे शीघ्र ही भरते हैं। सिर दर्द या आधाशीशी में उस हिम का नस्य कराने से नासिका स्राव होकर दर्द दूर हो जाता है।

मे अर्श की व्याधि स्वयमेव दूर हो जाती है। अथवा नित्य शाम को पानी से भरे लोटे मे इसके सूखे फल को डालकर प्रात इसी जल से शौच क्रिया करते रहने से ४-६ मास मे अर्शांकुर नष्ट हो जाते है।

(५) सिर दर्द पर—इसके कोमल फल को पुटपाक विधि (फल पर गीला वस्त्र लपेट आग की भूभल मे दवा कर) से पकाकर रस निकाल कनपुटियो पर मर्दन करने से साधारण सिर दर्द शीघ्र ही दूर हो जाता है। यदि दूर न हो, मस्तिष्क मे कृमि हो गये हो, नासिका से दूषित स्राव होता हो तो सूखे फल के महीन चूर्ण की नस्य से और भी जलस्राव होकर पीडा दूर हो जाती है। पश्चात् गोघृत की नस्य देने से जलन आदि शान्त हो जाती है। किन्तु कोमल प्रकृति वालो को यह नस्य देना ठीक नही होता।

यदि अनन्तवात का सिर दर्द हो [जिसमे एक या दोनो भौंओ, कभी चेहरे मे भी दर्द होता है। अंग्रेजी मे टिक् डोलोरो (Tic Douloureux) कहते हैं। यह सिर दर्द अर्धावभेदक के समान ही होता है] तो इसके ताजे फलो का रस निकाल कर या इसके हिम को उडद के आटे के साथ गूंध कर एक रोटी वना तवे पर एक तरफ से सेंक कर दूसरी ओर की कच्ची वाजू को सिर पर वाधकर उक्त हिम से भीगा हुआ वस्त्र उस पर रख दें। इस प्रकार कुछ दिन करने से लाभ हो जाता है।

(६) त्वचा के रोगो पर—इसके फाट का सेवन दिन मे दो वार कराते रहने से पामा, दाद, उकवत, श्वेत कुष्ठ आदि चर्मरोग भीतर के मलो का शोधन हो जाने से शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

यदि गर्मी या उपदश के कारण शरीर पर दूषित व्रण हो गये हो तो इसके वीजो का चूर्ण और सोठ चूर्ण १-१ पाव, तिल तैल १ सेर और जल ४ सेर एकत्र मिला मन्दाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे रक्खें। इसके लगाते रहने से सर्व प्रकार के व्रण दूर हो जाते हैं। भगन्दर पर भी यह तैल लाभ-दायक है।

(७) उपदश और मूत्रकृच्छ् (Dysuria) पर—इसकी जड के चूर्ण के साथ समभाग जासौंद (गुडहल Hibiscus Rosasinensis) की जड का चूर्ण और सारिवा (अनन्तमूल) मूल का चूर्ण मिला कर शीशी मे भर रक्खें। मात्रा—३ से ६ माशे तक, १० तोले से २० तोले तक गौदुग्ध के साथ मिलाकर (दूध मे २ तोले वूरा या मिश्री और ६ माशे जीरा चूर्ण मिला लेवें) सेवन करावें।

(८) प्लीहोदर, यकृद्दाल्युदर (प्लीहा वृद्धि के साथ साथ हुई यकृत की वृद्धि) तथा यकृत की विकृति से हुए जलोदर पर—इसका अर्क विशेष उपयोगी होता है। प्रारम्भ मे १० से २० वूंदें, २॥ तोले जल मे मिला सेवन करावें अथवा इससे भी अधिक मात्रा मे देकर रोग पर जैसा जैसा इसका असर हो मात्रा न्यूनाधिक करें। वालको की प्लीहा या यकृत वृद्धि इससे शीघ्र ही दूर होती है। उनके लिये मात्रा १ से ५ वूंद की रखें।

(९) नेत्र कृष्ण भागगत अव्रण शुक्ल या फूली पर—इसके वीजो की गिरी या मगज को तिली के शुद्ध तैल मे घिसकर आजने से लाभ होता है।

(१०) दन्त कृमि पर—इसके पत्तो की वीड़ी या इसके पत्तो को छाया शुष्क कर उसके या इसके फल के चूर्ण को वीडी या चिलम मे भर कर धूम्रपान कराते है।

(११) केश नाशार्थ—वालो को पहले उस्तरे से निकाल कर उस स्थान पर इसके वीजो का तैल लगाने से फिर वहा वाल नही उगते। प्राय गुह्य स्थान के वालो पर यह प्रयोग किया जाता है। —राजमार्तण्ड

कड़वी नायकन्द [Corallocarpus-Epigeous]

यद्यपि उपलब्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे हमे इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता, तथापि यह शाक वर्ग की ही एक वनौषधि है। आधुनिक शास्त्रानुसार यह कोषातक्यादि वर्ग (Cucurbitaceae) की वूटी है। यह कड़वी और

माठी दो प्रकार की होती है। मीठी का शाक वनाया जाता है।[1]

इसे नाय या नाहीकन्द भी कहते है। ध्यान रहे छोटा किरायता (नागजिव्हा, मार्मजवो) को भी कडवी नाय कहा जाता है। किन्तु वह प्रस्तुत वूटी से भिन्न हैं। उसका वर्णन चिरायता छोटा के प्रकरण मे देखिये।

कडवी नायकन्द (नाहीकन्द) की लता वर्षाऋतु मे जमीन पर या वृक्षो पर वडी शीघ्रता से फैलती है। लता मे सुतली जैसी दो धारवाली, पतली, हरी एव चमकीली कई शाखायें फूटती हैं। पत्ते तिकोन या पचकोन युक्त नोकदार, किनारे तीक्ष्णरोमयुक्त, दोनो ओर खुरदरे और कुछ मोटे होते हैं। पत्र की डंठल १॥ इञ्च तक लम्वी होती है, तथा पत्र ३ इञ्च तक लम्वा होता है। फूल गुच्छो मे हरिताभयुक्त पीले रग के होते है। फल—वृन्तयुक्त आवे से एक इञ्च तक लम्बा गोलाकार, मोटी छोटी लालमिर्च के समान हरे रंग के होते हैं। इसीलिए राजस्थान की ओर इसे मिर्चियाकन्द कहते हैं। प्रत्येक फल पर छोटी चोच सी निकलती है। मध्य भाग फल का कुछ लाल होता है। फल के गूदे के भीतर नारङ्गी रंग के नन्हे-नन्हे वीज होते हैं। इसका कन्द गाजर जैसा पीताभ श्वेत, खुरदरा तथा गाढा चिपचिपा रस वाला होता है। यह कन्द कुछ अम्लतायुक्त कड्वा होता है, वाद मे इसका स्वाद कुछ मीठा होजाता है।

यह भारतवर्ष मे पंजाव से सीलोन तक सिन्ध, राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, मद्रास आदि प्रातो मे विशेपत पाया जाता है।

नाम—

सं.—कटुनाही, नाहीकन्द, महामूला.
हि.—कड़वी नायकन्द, कड़वी नई, आकाशगदा, राक्षसगदा, मिर्चाकन्द।
म —गरजफल, नरकीचाकांदा।
वं.—आकाश गड्डी। गु —कड़वीनाही, कड़वी नाइनोकन्दा मरचीवेल, नाहीकन्द।
अं.—ब्रायोमस (Bryoms)
ले.—कोरलो कार्पस एपिजियस (इसके फल प्रवाल सदृश वर्ण वाले होने से कोरलोकार्पस (Corallocarpus) तथा इसका कन्द घर में पड़ा रहने पर अंकुरित हो उठता है, अतः एपिजियस (Epigeous) कहाता है।) इसका प्राचीन लेटिन नाम-ब्रायोनिया एपिजिया (Bryonia Epigcea) हैं।

इसका कन्द विशेप औषधि कार्य मे आता है। इसमे कडुवा चिपचिपा विषैला ब्रायोनिन (Bryonin) नामक सत्व होता है।

गुणधर्म—

यह सौम्य विरेचक, शोथहर, रक्तशोधक, प्रदाहहर, वामक, कृमिघ्न, विपहर तथा कुष्ठ आदि त्वग्रोग, प्रमेहपिटिका (कारवकल) आदि व्रण, उपदश, जीर्णज्वर, जीर्णातिसार, कठमाला आदि रोगो का नाशक है। इसके फल कड्वे और कुछ कसैले होते हैं। पत्तो का लेप विपहर है। कन्द—वातुपरिवर्तक (रसायन), मृदु विरेचक, तथा जीर्णातिसार, उपदशीय सधिवात (गठिया) नाशक है और विषशामक (अगद Alexipharmic) है।

मुख्य प्रयोग—

[१] महाकुष्ठ, विस्फोटक, प्रमेहपिटिका, तथा अन्य व्रण खुजली आदि रक्त एव त्वचा के विकारो पर—इसके ताजे कन्द की मात्रा लगभग ६ माशे तक जल मे पीस छानकर रोगी को प्रात पिलाने मे दो चार उलटिया (वमन) तथा एक दो दस्त (रेचन) होते हैं, दिन भर कुछ उत्क्लेश या जी मिचलाना और डकारे आती हैं। किंतु घवड़ाने की आवश्यकता नही। हिम्मत व विश्वास के साथ इसका सेवन कुछ दिन केवल प्रात ही करने से तथा पथ्य मे केवल चावल, घृत और शक्कर लेते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। एक रोगी जिसके हाथ और पैरो से कोढ चूना प्रारम्भ (गलित कुष्ठ) हो गया था जो कष्ट के कारण आत्महत्या कर रहा था केवल एक सप्ताह इस प्रयोग के सेवन से अच्छा हो गया, उसके सव जखम सूख गये। (जगलनी जडी वूटी)

उक्त प्रयोगो से शरीर मे होने वाले विस्फोटक, गरमी एव उक्त विकृति के रोग खुजली आदि नष्ट होते हैं।

---

[1] नाय (नाकुलीकन्द) इससे भिन्न है, देखिये सर्पगंधा।

प्रमेह पिटिका (कारबंकल) या अन्य दूषित व्रण, फोडे आदि हो तो उसके कन्द का चूर्ण ६ रत्ती से १॥ माशे तक लेकर उसमे थोडा गुड मिलाकर अथवा ताजे कन्द की मात्रा ६ माशे तक जल मे पीस छानकर थोडा गुड मिला प्रात पिलावें। लगभग आधे घन्टे मे गुदाग्र होने लग जाता है। इस प्रकार इसके तीन दिन के प्रयोग से प्रमेह पिटिका की भयङ्कर गठाने भी पिघल जाती है। पिटिकाओ पर ऊपर से इसके कन्द को ही पानी मे पीस थोडा नमक मिलाकर प्रलेप करे। पथ्य रूप मे केवल गेहू की सूखी रोटी, मूग का यूप और गुड देवें। तैल, लाल मिर्च और हीग से सख्त परहेज रक्खें। रोगी को इनकी गन्ध से भी दूर रहना चाहिये। यदि रोगी औषधि सेवन काल मे इन चीजो को खावेगा या गन्ध लेगा तो उसका गला एकदम बन्द होकर उससे बोला भी नही जावेगा। यदि ऐसी भूल हो जाय या अधिक दस्त और वमन होने लगें तो रोगी को दो तोले गोघृत मे दो माशे तक छोटी इलायची का चूर्ण मिला (२-३ वार) पिलाने से शान्ति प्राप्त होगी।

२ शोथ और अण्डवृद्धि पर—इसके कन्द को पानी मे पीस कर शोथ या अण्डवृद्धि पर लगाते रहने से थोडे दिनो मे ही शरीर के किसी भी भाग मे रस सग्रहीत होकर आई हुई सूजन निवृत हो जाती है। यदि रोग प्रवल हो और रोगी सशक्त हो तो उक्त लेप के साथ ही साथ प्रथम २-३ दिन गुड के पानी मे (गुड के शर्वत मे) ३-४ माशे निसोथ चूर्ण सेवन करावें। पश्चात् कुछ दिन प्रतिदिन प्रात साय कन्द का चूर्ण ६ से ६ रत्ती तक उक्त शर्वत के साथ देने से लाभ होता हो जाता है।

३ उपदश और गठिया पर—इसके कन्द के चूर्ण की मात्रा ३ या ४ माशे तक जल के साथ प्रतिदिन १ बार सेवन करने से ६-१० दिन मे रक्त की शुद्धि होकर उपदश के विकार दूर हो जाते हैं।

गठिया पर—इसके कन्द के साथ सोंठ और [illegible] को मिला कर तैल में पीस कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

४ जीर्ण ज्वर पर—कन्द का चूर्ण ३ रत्ती की मात्रा में समभाग छोटी पीपल का चूर्ण मिला दिन में दो बार सेवन करा दें। थोड़े दिनों में ही चाहे जैसा जीर्ण ज्वर हो दूर हो जाता है।

ज्वरान्तक चूर्ण—इसका कन्द १० तोला व [illegible] २॥ तोला दोनो का महीन चूर्ण १ रत्ती से २ रत्ती तक दिन मे ३ बार देने से बालकों का ज्वर [illegible] अपचन व कफ प्रकोप दूर होता है। यदि दस्त होते हों तो फिटकरी का फूला १ रत्ती उक्त चूर्ण में मिलाकर दें। ज्वर अधिक परिमाण में हो, तो गोदन्ती भस्म १ रत्ती मिला देनी चाहिये।

बड़े मनुष्य को पित्त ज्वर हो पतले दस्त हो, अधिक स्वेद, सिर दर्द आदि हो तो इस चूर्ण की मात्रा १॥-२ माशा फिटकरी फूला ३-४ रत्ती मिला कर देवें।

—द० त० सा०

५ कास पर—कफ के विशेष वन जाने से जो खासी हो अथवा क्षतज कास हो, तो इसके कन्द के चूर्ण का क्वाथ पिलाते रहने से कफ निकल कर लाभ होता है। इससे आगे के लिये भी विकृत कफ की उत्पत्ति रुक जाती है। ज्वर भी दूर होता है। यदि कृमि हो तो वे भी नष्ट हो जाते हैं।

६. सर्प या गोह के दंश पर—इसके कन्द को पानी मे घिस कर पिलाने, या कन्द के चूर्ण को पानी के साथ पिलाने से वमन और विरेचन होकर विष नष्ट हो जाता है। दश स्थान पर कन्द को घिस कर लेप करते हैं।

अफीम का विष भी इस प्रयोग से नष्ट हो जाता है।

कड़वी परवल [Trichosanthis Cucumerina]

यह शाक वर्ग की ही एक वनौषधि है। आधुनिको के अनुसार कोषातकी कुल (Cucurbitaceae) की है।

परवल विशेषत उत्तर भारतवर्ष की एव विशेष गुणकारी प्रसिद्ध शाक है। आयुर्वेदानुसार इसकी गणना

तृप्तिघ्न, तृष्णानिगहण, पटोलादि तथा आरग्वधादि गणो मे की गई है। जिसकी शाक की जाती है, वह तो मीठा परवल (T. Dioich) है। उसकी ही जगली एव कडवी जाति का वर्णन प्रस्तुत प्रसग मे किया जाता है। स्वाद के अतिरिक्त रूप गुण आदि में दोनो की साम्यता है। इसे संस्कृत मे पटोलिका कहते हैं। तिक्त रस युक्त होने से कटु परवल, कडवी परवल कही जाती है। भाव मिश्र जी मधुर परवल का गुण वर्णन करते हुये कहते हैं—'दोपत्रयहर प्रोक्त तद्वत्तिक्ता पटोलिका'।

—भा. प्र. निघण्टु

कड़वी परवल के अभाव मे जङ्गली या कड़वा चचेंडा या चिचिड़ा का उपयोग किया जाता है। कड़वा चिचिडा (Trichosanthes Anguina) का फल सर्पाकार लम्बा होता है, बस इतना ही कटुपटोल और कटु चिचिडा मे भेद है। अन्यथा दोनों की लता पत्रादि एक समान होते हैं। गुणधर्म मे भी दोनो मे प्राय साम्य होने से कटु पटोल के अभाव मे कटु चिचिडा तथा कटु चिचिडा के अभाव मे कटु पटोल का व्यवहार किया जाता है। इसीलिये लेटिन मे दोनो को एक ही नाम 'ट्राइकोसेंथस क्युक्युमेरिना'' दिया गया है। मरेठी और गुजराथी मे कटु चिचिडा को भी रान [कड] पडवल, कड़वी पाड़र, कड़वी पटोल कहा जाता है।

नाम—

संस्कृत—अमृतफला, बीजगर्भा, कुष्ठहा, कासभञ्जन
हिन्दी—कड़वी परवल, जंगली चिकोड़ा, सीतापरवल
मरेठी—रानपरूल, कडुपडोल। पंजाबी—ग्वालककड़ी
बंगला—वनपटोल, पालतालता
गुर्जर—कड़वी परवल (पडोल)
लेटिन—ट्रायकोसेंथिस क्युक्युमेरिना

इसकी वर्षायु लता मधुर परवल की लता जैसी ही बहुत लम्बी फैलती है। काड के प्रत्येक ग्रन्थि से मूल निकलता है। यह जङ्गल और पहाडी जमीन मे अधिक पाई जाती है। पत्ते कटे हुए हृदयाकार, कर्कश, ३ या ४ इन्च लम्बे तथा २ इन्च तक चौडे एव नुकीले होते हैं। फूल प्राय एक लिंगी और श्वेत होते हैं।

फल—लम्ब गोलाकार, २-३ इन्च लम्बे, दोनो सिरो पर कुछ नुकीले, मधुर परवल के जैसे ही ऊपर से श्वेत धारियो वाले होते हैं। फल कच्ची दशा मे श्वेताभ हरितवर्ण के तथा पकने पर नारगी रग के पीले और लाल हो जाते है। बीज चिपटे होते हैं। इस लता के सर्वांग मे महा कटुता होती है।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु- रूक्ष, रस मे तिक्त, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, तृष्णानिग्रहण, पित्तसारक, अनुलोमन, रेचन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, कफघ्न, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, बल्य, विषघ्न तथा अग्निमाद्य, अजीर्ण, तृष्णा, यकृद्विकार, कामला, उदररोग, अर्श, रक्तविकार, रक्तपित्त, कास, श्वास, पित्तज्वर, जीर्णज्वर, पाण्डु, जलोदर, एव चर्मरोग नाशक है। अधिक मात्रा मे यह वामक और विरेचक है।

कड़वी परवल
Trichosanthes cucumerina Linn.

फल
पुष्प
कटा फल
पत्र
लता
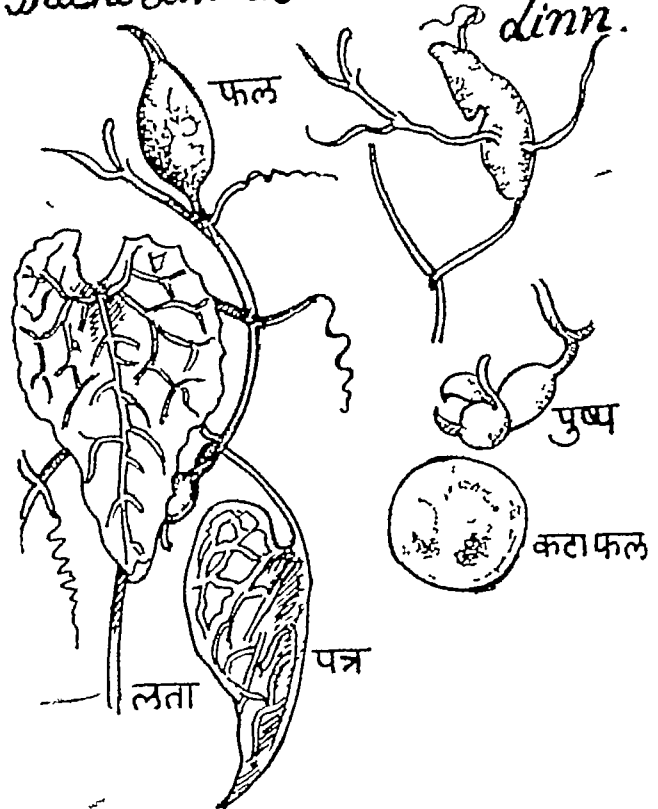
पत्र—पित्तनाशक हैं। पत्तो का फाट या क्वाथ पित्तज्वर पर विशेष लाभदायक है। पत्र स्वरस के लेप या मर्दन से व्रण तथा खालित्य [बालो का गजापन] दूर होता है। यकृत वृद्धि पर यकृत स्थान पर पत्र स्वरस का मर्दन करते है। पत्र स्वरस या अर्क समस्त शरीर पर मर्दन करने से निरन्तर आने वाला ज्वर दूर होता है। पाचन क्रिया की वृद्धि के लिये इसके शुष्क कोपलो का फाट या क्वाथ शक्कर मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

मूल—विरेचक और वल्य है। मूल के स्वरस या अर्क की ५ तोले की मात्रा विरेचनकारक होती है, किंतु यह आन्त्र मे प्रबल दाहोत्पादक होती है। शिर शूल मे मूल को पीसकर लेप किया जाता है।

बीज—बीजो का चूर्ण आन्त्र कृमिनाशक और ज्वरघ्न है। यह चूर्ण चिरायते के अर्क के साथ ज्वरनाशार्थ देते है। इसके मूल का क्वाथ चेचक या मसूरिका के विकार मे पित्त प्राबल्य को नष्ट करने के लिये विशेष लाभकारी है।

रक्तविकारजन्य रोगो पर इसके फल का रस पिलाते हैं।

मात्रा—स्वरस की १-२ तोला। क्वाथ ५ से ७ तोले तक।

ज्वर पर—इसकी जड के साथ समभाग अदरख और चिरायता मिला जौकुट कर अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर उसमे शहद मिला पिलाने से सौम्य रेचन होकर ज्वर दूर होता है। इसी प्रकार कुछ दिन सेवन कराने से बलवीर्य की वृद्धि होती है।

दुसाध्य ज्वर पर—इसका पचाग और धनिया समभाग १-१ तोला एकत्र जौकुट कर १५ तोले गरम जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात मल छानकर प्रात साय ५-५ तोले की मात्रा मे थोडा शहद मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। पैत्तिक ज्वर पर उक्त प्रयोग का फाट न देकर क्वाथ बनाकर देने से सौम्य रेचन होकर लाभ होता है।

कफ पित्त जन्य वमन पर—इसके फल के साथ समभाग सोठ को पीस कल्क करे। उसमे ४ गुना घृत और उतना ही जल मिला घृत सिद्ध करें। इस घृत को थोडा थोडा चटाने से लाभ होता है।

विस्फोटक, मसूरिका, विसर्प तथा कण्डू आदि त्वचा के रोगो पर पटोलादि क्वाथ—इसके पत्ते, गिलोय, नागरमोथा, अडूसा (वासा) की जड, धमासा, चिरायता, नीम की अन्तर छाल, कुटकी और पित्तपापडा समभाग जौकुट कर चूर्ण करें।

मात्रा—२ तोले चूर्ण को १६ गुने जल मे मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे दो बार सेवन करें। कुछ दिनो मे ही शीघ्र अपक्व मसूरिका शान्त होती है तथा पक्व मसूरिका शुद्ध होकर शीघ्र ही मसूरिका के स्फोट सूख जाते हैं। बालको को मसूरिका की सर्व अवस्था मे निर्भयतापूर्वक दिया जाता है। यह क्वाथ पित्त प्रधान विषम ज्वर को तथा विसर्प, कण्डू आदि त्वग्रोगो पर भी विशेष लाभकारी है।

यदि रोगी को कब्ज न हो तो उक्त क्वाथ मे कुटकी मिलाने की आवश्यकता नही है तथा धमासा के स्थान मे खैर छाल मिला सकते हैं।

कड़ौंची (Momordica Cymbelaria)

कोषातकी वर्ग (Cucurbitaceae) की इस वनौषधि का बहुत सक्षिप्त वर्णन धन्वन्तरि निघण्टु मे मिलता है।

इसकी लता करेला की लता जैसी होती है, किंतु यह जमीन पर ही फैलती हुई प्राय देखी जाती है। कभी कभी छोटे २ पौधो पर भी फैल जाती है। इसकी लता और फलो का भी स्वरूप करेला के जैसा ही किंतु उससे बहुत ही छोटे आकार प्रकार का होने से सस्कृत मे इसे क्षुद्र कारवेल्लिका और बगला मे छोटा करेला कहते हैं।

वर्षारम्भ मे विशेषत ज्वार के खेतो मे या आसपास कूड़ाकर्कट मे यह पैदा होकर फैलने लगती है। लता विशेष लम्बी नही होती। पत्ते—श्यामता लिये हुए हरे रंग के कोमल चिकने एव किंचित् मुलायम रोमयुक्त १ से

२ इन्च चौड़े पंचकोण या पंचखण्डयुक्त होते हैं।

पुष्प—श्वेत रंग के तथा पीले रंग के भी होते हैं। फल एक इन्च तक लम्बे तथा पतले और पाव इन्च चौड़े होते है। फल का ऊपरी भाग करेला जैसा ही झुर्रीदार होता है। यह फल के कुछ पकने पर आते ही विदीर्ण होकर चार खण्ड होजाते हैं। बीज कालीमिरच जैसे लाल, कठोर किन्तु चमकीले होते हैं। लता की गूल शलगम जैसी गोल, कड़ी, ककडी के गंध जैसी गंध युक्त तथा अत्यन्त कडवी होती है।

नाम—

सं.—क्षुद्रकरवेल्लिका, कटुहुंची, कारवी, कन्दलता, लघुलता,
हि.—कर्दोच, कामरकाट्ट।
म.—कडवंची। बं.—छोट करला, छोट उच्छे।
ले.—मोमोर्डिका मिम्बलेरिया।
लुफा ट्यु बरोसा (Luffa Tuberosa)

गुणधर्म और प्रयोग—

यह चरपरी, कडवी, उष्ण, रूक्ष, रुचिकारी, दीपन, रक्त एवं वात के दोषो को पैदा करने वाली है। इसका कन्द अर्श एवं तज्जन्य कोष्ठबद्धता, योनिदोष विनाशक, विषघ्न तथा गर्भपातार्थ प्रसिद्ध है। योनि मे कन्द के धारण करने से या जल के साथ घिस कर पिलाने से गर्भपात हो जाता है। कण्ठमाला पर कन्द को घिसकर प्रलेप करने से लाभ होता है। निम्ब पत्र स्वरस और काजी के साथ इसके कन्द को पीसछान कर पिलाने से प्रत्येक प्रकार का उष्ण या शीतल विष नष्ट हो जाता है। योनिस्राव अर्थात् योनि से जो चिपचिपा पदार्थ निकला करता है उसे यह बन्द करती है।

इसके फल—शीघ्रपाकी, पाचक एव बल्य हैं। किसी भी शाक के साथ इसे पकाकर ज्वार की रोटी के साथ पथ्य रूप मे सेवन करते हैं। यह क्षुधाजनक एव मलावरोधनाशक है।

कन्टाई [Flacuoutia Ramontchi]

यह तालीसादि वर्ग (Flacourtiaceae) की कटीली वनौषधि हिमालय के प्रान्तीय भागो मे तथा पजाब और बिहार के वन्य प्रदेशो मे गगा के मैदान तथा दक्षिण के पश्चिम घाटो मे पायी जाती है। इसका पेड छोटा, पिंड पर तथा फैली हुई शाखाओ पर काटे होते है। छाल खुरदरी और कुछ काले रंग की होती है। पत्ते अण्डाकार ऊपरी भाग मे चिकने तथा तलभाग में रोयेंदार होते हैं। ये पत्र कुछ नोकदार, छोटी कोमल दशा मे लालरंग के और फिर हरे हो जाते हैं। फूल—हरितामपीत वर्ण के फाल्गुन मास मे लगते हैं। फल—आध इन्च तक लम्बे गोलाकार बडे बेर जैसे लाल या गहरे बैगनी रग के होते हैं। प्रत्येक फल मे ८ से १६ तक बीज होते हैं। इसे कही कहीं केकर भी कहते हैं।

गुणधर्म और प्रभाव—

कसैली, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, विपाक मे मधुर, तथा शीघ्र पाकी (लघु) है।

इसका फल मधुर, अग्निदीपन, क्षुधावर्धक और पाचक होता है। पाडु और प्लीहावृद्धि पर इसका प्रयोग लाभ-

दायक होता है। आर्द्रता या शीत प्रकोप से वचने के लिये ग्रामीण लोग प्रसवावस्था के पश्चात प्रसूता के सर्वाङ्ग पर इसके बीजो को हल्दी के साथ पीस कर मालिश करते हैं।

इसके गोद को अन्य द्रव्यो के साथ पीसकर हैजा की दशा मे सेवन करते हैं।

विषम ज्वर मे इसकी छाल को सिरस की छाल-के साथ पीसकर देते हैं।

सस्कृत मे कण्टाई को—किंकणी, विककत, क्षुवावृक्ष कहते है। प्राचीन काल मे इसकी लकडी के यज्ञ-पात्र वनाये जाते थे।

कन्टला (Agave Americana)

यह गुडुच्यादि वर्ग या तालमूली (स्याहमूसली) कुल (Amaryllidaceae) का एक प्राकृतिक पौधा है। इसका मूलस्थान अमेरिका माना गया हैं, किन्तु यह है एक प्रकार का क्षुद्रकेतकी या रामवास, जो वम्वई, मद्रास, मध्यभारत और गगा के मैदानो मे वहुतायत से पाया जाता है। इसकी पत्तियो के रेशे से रस्सिया वनाई जाती हैं। इसे सस्कृत मे कण्टालु कहते हैं। उपलब्ध आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसका कही भी विशेष उल्लेख नही मिलता।

मरेठी मे जिसे घायाल और गुजराथी मे जगली कुवारा कहते हैं वह इसकी ही एक जाति विशेष है। लेटिन मे इसे अगावी कटाला (Agave Kantala) कहते हैं। यह भी वम्बई और मद्रास की ओर वहुत होता है।

यह पौधा ग्वारपाठा (घृतकुमारी) के सदृश ही आकार प्रकार मे होता है। इसके पत्ते ग्वारपाठा के पत्र जैसे ही होते हैं, किंतु उतने मोटे नही होते। ये पीले रग के दोनो किनारो की ओर उभरे हुए एव काटेदार होते हैं।

नाम—

सं.—कंटालु।
हि.—कण्टाला, वड़ाघीग्वार, राकसपात, रामकाटा, हाथी सेंगार, वन्सकियोरा।
म —विलायती कोरकन्द।गु—जंगली कुनोरा (कुंवार)
वं.—वस कियोरा, विलायतीपात, जगली अनारस।
अं.—अमेरिकन अलू, कराटा (American aloe, Carata)।
ले.—अगेवी अमेरिकना।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह मूत्रल, स्वेदकारक, सौम्यरेचक, रजस्थापनीय या ऋतुस्राव नियामक, रक्त शोधक तथा उपदश, गण्डमाला, कण्डू, और व्रण आदि नाशक है।

उपदंश पर—इसकी मूल के साथ सारिवा की मूल मिला जौकुट कर (१० तोले चूर्ण मे ४० तोला छाल) अष्टमास क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। साथ ही साथ वीच वीच मे इसका पत्र रस भी पिलाया जाता है।

रक्तविकार या गण्डमाला पर—उक्त प्रयोग अथवा इसकी मूल का रस ५ तोले की मात्रा मे दिया जाता है।

सुजाक पर—पत्र-रस मे शक्कर मिला कर सेवन कराते हैं।

शरीर मे वाहरी या भीतरी चोट, आघात लगने पर इसके ताजे रस का मर्दन या प्रलेप हितकर होता है।

दत पीडा पर—पत्र या मूल का रस लगाते हैं।

इसके पत्तो के टुकडे कर पुल्टिस के रूप मे गरम कर व्रणो पर वाधते हैं।

इसके रस मे जो एक प्रकार की शर्करा होती है उससे मद्य बनाया जाता है।

कण्टिकआरी (*CARTHAMUS OXYACANTHA*)

यह भृङ्गराज कुल (Compositae) की एक गौण वनस्पति है। यह कुसुम (Carthamus Tinctorius) का ही एक जाति है। इसके गुणधर्म भी कुसुम के जैसे ही हैं। आगे कुसुम का प्रकरण देखिये।

इसकी शाखायें श्वेत वर्ण की, पत्ते वरछी के समान होते है। इसमे गोल और मोटी मजरी लगती है, जिनमे पीले और नारङ्गी रग के छोटे छोटे फूल होते हैं।

इसे हिन्दी मे—कण्टिआरी, खारेजा, करार, खारी, पोली, पोलियन आदि तथा लेटिन मे—क्यारथमस आक्सि-केथा कहते है।

इसके बीजो से निकाला हुआ तैल वातपीडा पर मर्दन आदि के काम मे आता है।

कण्टालु (*DIOSCOREA PENTAPHYLLA*)

कटालू या कटकालु वनस्पति वराहकन्द कुल (Dioscoreaceae) की होती है। इसके आरोही लम्वे क्षुप होते हैं। मूल वड़ी स्थूल गाठदार होती है। पत्र सामान्य या एक ही डठल मे लगभग चार दल सयुक्त होते हैं। पुष्प—छोटे कुछ गोलाकार होते हैं। बीज कोष त्रिकोष्ठीय होता है। यह भारतवर्ष, सीलोन, अफ्रीका, आदि उष्ण प्रदेशो मे पाई जाती है।

इसकी लम्वी ग्रन्थियुक्त मूल ही प्राय औषधि कार्य मे ली जाती है।

नाम—

सं०—कंटकालु, सूरालु

हिन्दी—कंठालु, मूसाकन्द, सुनसुनीकन्द, वसेराकन्द, सिठी, देवर आदि

वं०—कांटाआलु, कूकरआलु।

लेटिन—डायोस्कोरिया पेंटाफायला

गुणधर्म—

इसका कन्द पौष्टिक होता है। वराहकन्द के स्थान मे इसका उपयोग हो सकता है।

इसे पीसकर इसका लेप या पुल्टिस बनाकर लगाने से शोथ या सूजन पर शीघ्र लाभ होता है।

कताद (*ASTRAGALUS STROBILIFERUS*)

यह शिम्वीवर्ग (Leguminosae) का काटेदार वृक्ष ईरान आदि अरव के प्रदेशो मे होता है। कताद यह इसका अरवी नाम है। लेटिन मे अस्ट्रागेलस स्ट्रोविली-फेरस कहते हैं।

इसका काड वास जैसा कटकहीन होता है; शेष सर्वाङ्ग मे अन्यन्त तीक्ष्ण, नीचे की ओर झुके हुए काटे होते हैं। फूल पीले रग का होता है। तथा फूल के भीतर से ही छुआरे की गुठली जैसा फल निकलता है।

वृक्ष की पिंड मे चीरा देने से एक प्रकार का गोद निकलता है, जिसे कतीरा कहा जाता है। कोई कोई गुलू या खडिया पेड के गोद को ही कतीरा गोद कहते हैं। 'गुलू' का प्रकरण देखिये।

कताद का गुणधर्म उष्ण और रूक्ष है। कई इसे तर या सर्द मानते हैं।

इसके पत्तो के क्वाथ की मात्रा ८ से १० तोले तक लेकर शक्कर मिला सेवन करने से जीर्ण कास, श्वास तथा उर क्षत में लाभ होता है।

इसकी जड को घिस कर सिरका या शहद के साथ मर्दन करने से शरीर के व्यङ्ग, चेहरे की झाई आदि काले दाग दूर हो जाते हैं।

इसकी जड मे स्नेहाश प्रचुर मात्रा मे होने से वह जलाने पर मसाल के समान जलती है

कथई (SAMADERA INDICA)

यह इगुदी (हिंगोट) कुल (Simaronbaceae) की एक गौण वनस्पति है। कथई यह इसका वर्मी भाषा का नाम है। सीलोन की सिंहली भाषा मे इसे समादार कहते है। यही नाम लेटिन मे समादेरा इंडिका रख दिया गया है। अंग्रेजी मे नीपा वार्क (Neepa bark) तथा मरेठी मे इसे लोखडी कहते हैं।

इस वनस्पति मे समेडेरिन (Samaderin) नामक एक प्रकार का स्थिर तैल, तथा उसी नाम का या क्वासीन (Quassin) नामक एक कटु सत्व ग्लूकोसाईड पाया जाता है।

यह वनस्पति भारत के दक्षिण मे पश्चिम किनारे पर, दक्षिणी कोकण और मलावार के आर्द्र भूमि पर तथा सीलोन मे वहुतायत से पाई जाती है।

गुणधर्म—

इसकी छाल बहुत कडुवी होती है ज्वरघ्न है। ज्वर पर इसका क्वाथ दिया जाता है।

फल के गूदे से निकाला गया तैल गठिया वात पर मर्दनार्थ उत्तम उपयोगी है।

पत्तों को पीस कर अग्नि विसर्प (Erysipelas) पर पुल्टिस बना बांधते हैं या लेप करते हैं।

इसके बीजों की माला बनाकर, श्वास एवं फुफ्फुस विकारों के प्रतिकारार्थ गले मे बांधते हैं।

इसकी लकड़ी का क्वाथ बल्य (Tonic) है। तथा पत्तों का क्वाथ या शीत निर्यास उत्तम कृमिघ्न है, यह श्वेत चीटों के नाशार्थ काम मे लिया जाता है।

यह वनस्पति छोटी झाड़ी रूप में होती है। शाखायें मोटी, पत्ते बड़े तीखी नोकवाले और मुलायम होते हैं। फूल क्वचित ही होते हैं। फलियां चिपटी और बहुत चिकनी होती हैं। इसी मे गोल गोल बीज होते है।

कदम (ANTHOCEPHALUS CAMBA)

इस पुष्पवर्गीय प्रसिद्ध वृक्ष की धाराकदम्व, राजकदम्व और धूलिकदम्व इन तीन जातियो का उल्लेख ग्रन्थो मे मिलता है।

आधुनिक शास्त्रो मे ये सब जातिया मजिष्ठादि कुल (Rudiaceae) की मानी गई है। आयुर्वेद मे कदम की गणना वेदनास्थापन, शुक्रशोधन वमनोपग, न्यग्रोधादि, रोध्रादि गणो मे की गई है।

सर्वप्रसिद्ध सुगन्ध और सौंदर्य के धनी कदम्व को ही (या उसकी ही खास जाति को) धाराकदम्व या राजकदम्व कहा जाता है। यह वर्षाकाल मे फूलता है अत. संस्कृत मे इसे 'प्रावृष्य' या प्रावृषेण्य' भी कहते हैं। लेटिन मे इसको ही एन्थोसेफेलस केडम्वा या सार्कोसेफलस केडम्वा (Sorcocephalus Cadambh) या नाउक्लिया केडम्वा (Nauclea Cadamba) कहते हैं।

संस्कृत मे इसे कदम्वक और वगला मे विशेषत धूलिकन्दक या केलिकदम्वा कहते हैं। इसके पुष्प वसंत-ऋतु मे आते हैं। इसके पुष्पाच्छादित फल उक्त धाराकदम्व से छोटे सुपारी जैसे होते है। ये पुष्प सुगंधित तो होते हैं किन्तु वैसे सुन्दर नही होते। इसे हिन्दी मे हल्दू और लेटिन मे एडिना कार्डिफोलिया (Adine Cordifolia) कहते हैं। यह वस्तविक कदम से भिन्न है। इसका वर्णन 'हल्दू' के प्रकरण मे देखें।

इसा कुल मे कदम नाम की और एक वनस्पति होती है। पजाव की ओर कलाम, वम्बई की ओर कगई कदम्वे, राजपुताना मे गुरी तथा लेटिन मे स्टेफेगिनी पराव्हिफोलिया (Stephegyne Parvifolia) इसे कहते हैं। इसके पत्ते गोल; तीक्ष्ण नोक वाले तथा फूल हरे, पीले एव सुगन्धित होते हैं। गुणधर्म मे यह ज्वरघ्न और उदर शूल नाशक है। इसकी छाल का लेप मासपे।

शियो की पीडा पर लगाया जाता है।

भूमिकदम्ब या भूकदम्ब यह वास्तव में बडी गोरख-मुण्डी का एक भेद है जो भृङ्गराज कुल (Compositae) का है। इसका लेटिन नाम स्फिरेन्थस अमरेन-थायडस (Sphaeranthus Amaranthoides) है। इसका वर्णन गोरखमुण्डी के प्रकरण मे देखें।

अब हम प्रस्तुत सर्वप्रसिद्ध कदम का वर्णन करते हैं।

इसका पौधा शीघ्र ही बढ़कर मध्यम आकार का वृक्ष हो जाता है। यह अन्य बडे वृक्षो की तरह अधिक वर्षों तक नही रहता। इसका तना सीधा, ऊंचा एवं मोटी शाखायें चारों ओर फैली हुई और छोटी शाखाये कुछ नीचे की ओर लटकती हुई होने से यह एक उत्तम छायादार वृक्ष होता है।

पत्ते—महुए के पत्र जैसे कितु उनसे कुछ छोटे, अण्डाकार तथा ऊपर से चिकने, चमकीले, गाढे हरे रंग के, स्पष्ट उभरी हुई सिराओ से युक्त एव दूसरी ओर हलके रंग के अति सूक्ष्म रोमो से आच्छादित होते हैं। पत्तो का सिरा नोकदार तथा डठल बहुत छोटा होता है। पत्ते शाखाओ पर एक दूसरे के सम्मुख जोडो मे लगते हैं। बडे वृक्ष की अपेक्षा छोटे पौधो के पत्ते बड़े होते हैं।

फूलयुक्त फल—वर्षाकाल मे वृक्ष की छोटी छोटी शाखाओ के सिरो पर छोटी डठल पर पीले पुष्प कन्दुक लगते हैं। इन गोल गोल कन्दुक के ऊपरी फूलो की पीली केशर जैसी पखुडिया झड जाने पर गोल गोल हरे फल रह जाते हैं जो पकने पर कुछ लाल, स्वाद मे मधु-राम्ल होते हैं। इनकी चटनी, अचार आदि बनाते हैं।[1]

वृक्ष की छाल मोटी, खुरदरी, बाहर से भूरे रङ्ग की तथा अन्दर से लाल होती है। स्वाद मे तिक्त और कसैली होती है।

कदम के पेड उत्तर, पूर्व बंगाल, मलय देश, पेगू आदि प्रान्तो की रेतीली एव क्षार मिश्रित भूमि मे आप ही आप जङ्गली उत्पन्न हो जाते हैं। उत्तर भारत, उत्तर प्रदेश (विशेषत मथुरा वृन्दावन की ओर) तथा विहार, बम्बई, ब्रह्मा, सिहल आदि प्रान्तो मे भी कही बाग बगीचो मे इनका रोपण किया जाता है।

नाम—

संस्कृत—कदम्ब, वृत्तपुष्पः, नीपः, प्रावृष्य, ललनाप्रियः
हिन्दी—कदम, कदम्ब। गुर्जर—कदम्ब
मराठी—कलम्ब, राजकदम, कदम। बंगला-कदमगाछ
अंग्रेजी—वाईल्ड सिंकोना (Wild cincnona)
लेटिन नाम ऊपर देखिये।

गुण धर्म—

लघु, रूक्ष, रस में कटु, तिक्त और कषाय, विपाक मे कटु एव वीर्य शीत है। यह त्रिदोषहर, विषघ्न, रक्तस्तम्भन, शोथहर, कासहर, शुक्रशोधन, मूत्र विरज-नीय, अश्मरी शर्करा नाशन, स्तन्यजनन, योनिदोषहर, वर्ण्य (कान्तिवर्धक), नाड़ी सस्थान को बल्य, कटु

कदम्ब
Anthocephalus Cadamba Miq.

वृक्ष
पत्र
पुष्प
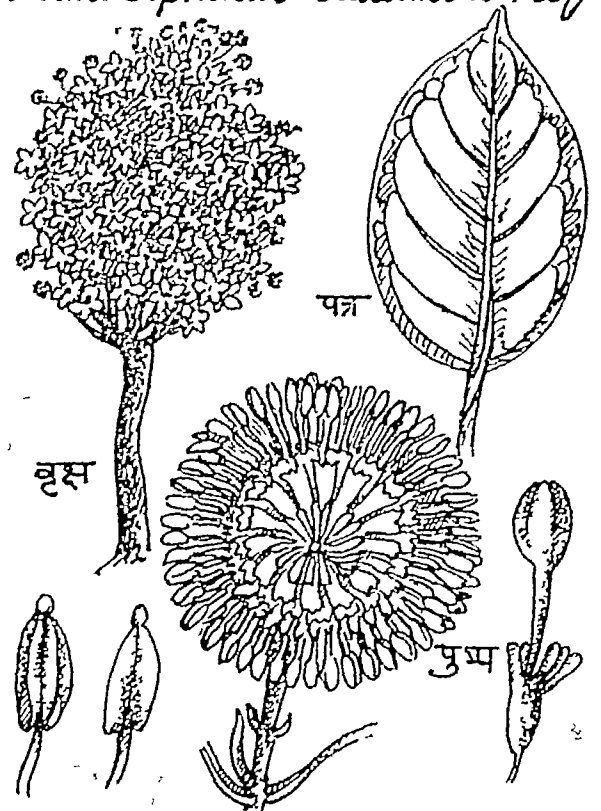
[1] प्राचीनकाल में इन फलों से कादम्बरी नाम की मदिरा बनाई जाती थी। अब भी एक प्रकार की मदिरा इससे बनाते हैं।

पौष्टिक तथा धातु वृद्धिकर है। इसका बाह्य प्रयोग वेदना स्थापन, शोथहर एव व्रण का शोधन व रोपण करता है। इसकी छाल कटु तिक्त होने से दीपन, पाचन (ग्रामपाचन) व ज्वरघ्न है। ज्वर पर इसका कार्य कुनैन के जैसा ही होने से अंग्रेजी मे इसे वन्य कुनैन (Wild cinchona) कहा गया है। यह शीत वीर्य होने से दाह प्रशमन कार्य करता है किन्तु कभी कभी वात का विष्टम्भ (वायु का न खुलना) भी करता है। यह कसैला होने से ग्राही, तृष्णा व वमन का निवारक है।

इसके अकुर कसैले, शीतवीर्य, किन्तु कुछ अग्निदीपक और लघु हैं। ये अरुचि, रक्तपित्त व अतिसारनाशक होते हैं।

फल—रुचिकारक, कफकारक, गुरु एव विष्टम्भकारक हैं। किन्तु परिपक्व फल त्रिदोपनाशक माने गये हैं। फलो मे 'बन्ध्यत्वकरण' का भी गुण है। ऋतु स्नान के बाद ये फल और शहद बर्फ के शीतल जल के साथ नियमपूर्वक ३ दिन तक पीने से स्त्री अवश्य वन्ध्या हो जाती है। कहा है—"फल कदम्बस्य च मक्षिकानि, तुपोदकेन त्रिदिन निपीय। स्नानावसाने नियमेन चापि, वन्ध्यामवश्य कुरुते हठेन।" —पचायक (धन्वन्तरि भाग ३६ अङ्क ९)

औषधि कार्यार्थ—इसकी छाल, पत्ते और फल लिए जाते हैं।

मात्रा—छाल का चूर्ण ६ से १२ रत्ती, फल स्वरस १-२ तोला, पत्र स्वरस १-२ तोला, छाल का क्वाथ २॥ तोले से ५ तोले तक। जमुना नदी के किनारे के कदम्ब वृक्ष की छाल विशेष गुणवर्धक होती है।

प्रयोग—

(१) मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी छाल का क्वाथ एव गोदुग्ध के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पान करने से मूत्र का कष्ट से आना तथा उसकी विवर्णता दूर होती है।

(२) शिशु के तालुपात विकारो मे—उसके सिर पर इसका ताजा रस लगाते हैं। साथ ही साथ थोडा रस जीरा और शक्कर के चूर्ण के साथ सेवन कराते हैं।

(३) व्रण या विस्फोटो पर—पत्र क्वाथ से धोते हैं तथा कोमल पत्तो को वसलोचन के साथ पीसकर पलस्तर लगाते तथा कोमल पत्रो से ही आच्छादित कर बाध देते हैं। इससे वे शीघ्र परिपक्व होकर ठीक हो जाते हैं।

(४) ज्वर पर—इसकी छाल तीव्र ज्वरघ्न है, छाल का महीन चूर्ण या क्वाथ पिलाने से मलेरिया ज्वर दूर होता है।। ज्वर मे यदि प्यास प्रबल हो तो इसके फल का रस थोडा थोडा चटाते हैं।

चक्षुशोथ या अभिष्यन्द पर—छाल का रस, नीबू का रस, अफीम व फिटकरी समभाग लेकर आग पर थोडा गरम कर आखो के चारो ओर प्रलेप करें।

मुखपाक या मुख के छालो पर—इसके पत्तो के कुल्ले कराते हैं।

अतिसार, ग्रहणी और वमन पर—साधारण अतिसार या रक्तातिसार पर इसकी छाल के क्वाथ से लाभ होता है। वमन पर इसकी छाल का चूर्ण या रस, जीरे का चूर्ण और शक्कर मिला सेवन कराने से वमन रुक जाती है। व्यङ्ग, न्यच्छ आदि क्षुद्र रोगो मे इसकी छाल कालेप किया जाता है। अश्मरी, शर्करा एव मूत्रकृच्छ्र पर इसकी मूल का क्वाथ देते हैं।

शुक्रमेह तथा योनि रोगो मे छाल का प्रयोग किया जाता है। प्रदर मे इसके पत्र स्वरस एव क्वाथ का प्रयोग होता है। स्तन्य (दुग्ध) वृद्धि के लिये इसके फलस्वरस का उपयोग होता है।

कदम्बारिष्ट—कदम की छाल ५ सेर लेकर जौकुट कर २६ सेर जल मे पकावें। ६॥ सेर जल शेष रहने पर कुछ ठण्डी हो जाने पर शुद्ध चिकने घडे मे भर उसमे १० सेर गुड अच्छी तरह घोल देवे तथा धाय के फूल ८ छटाक, जीरा, वायविडङ्ग, हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोले मिला अच्छी तरह सन्धान कर १५ दिन सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर बोतलो मे भर लें। मात्रा—१ से २॥ तोले तक।

यह वीर्यबर्धक, पौष्टिक, ज्वरनाशक है। बच्चो का अतिसार युक्त ज्वर जिसमे तृष्णाधिक्य तथा तालुस्थान अत्यधिक फडकता है, इस अरिष्ट के सेवन से शीघ्र दूर होता है।

कद्दू नं.१ (लौकी, मीठी तुम्बी) Cucurbita Lagenaria

यह शाकवर्ग का प्रसिद्ध शाक कोषातकी कुल (Cucurbitaceae) का है। इसका स्वरूप वर्णन सक्षिप्त मे कडवी तुम्बी के प्रकरण मे दिया गया है। यह उसका मीठा भेद है, जिसे मीठी लौकी, दूधी आदि कहते है।

ध्यान रहे कुष्माण्ड, कुम्हडा (जिसके पीत कुष्माण्ड और श्वेत कुष्माण्ड या पेठा दो भेद हैं) प्रस्तुत कद्दू या लौकी का ही भेद है। प्रान्तीय भाषा मे कुष्माण्ड को ही कद्दू कहते हैं। अत इसका वर्णन आगे के प्रकरणो मे कद्दू नं २ और ३ के नाम से किया जावेगा।

मीठी तुम्बी की वेल कडवी तुम्बी जैसी ही होती है। दोनो मे श्वेत पुष्प आते हैं। फल के आकार मे भी साम्य होता है। वीज कुछ भूरा, चिपटा तथा सिरे पर त्रिशीर्षयुक्त होता है। कडवी तुम्बी के वीज इसकी अपेक्षा कुछ छोटे और मटमैले से होते हैं।

यह लौकी वर्ष मे दो वार (वर्षा और ग्रीष्म मे) फूलती फलती है। इसके फल १ से २ गज तक लम्बे, वाहर से हरे या हरिताभ श्वेत वर्ण के तथा भीतर से श्वेत ही होते है। गूदे का स्वाद फीका मीठा होता है।

जो लौकी श्वेत हरित वर्ण की ताजी, कोमल और मधुर हो, आकार मे न वहुत वडी और न छोटी हो, तथा जिसमे रेशे न हो वह शाक या औषधि कार्यार्थ प्रशस्त मानी जाती है।

वगाल मे सभी प्रकार के कद्दू को कदु या लाऊ कहते है। किंतु उत्तर प्रदेश के कई स्थानो पर गोल फल वाले को कद्दू तथा लम्बे फल को लौकी, लौआ आदि कहते हैं।

यह समस्त भारत मे ग्राम्य या वन्य रूप मे पाया जाता है।

नाम--

सं —अलाबु, मिष्ट तुम्बी।
हि —कद्दू, मीठा कद्दू, लौका, लौकी, लौआ, रामतरोई, मीठी तुम्बी, घिया आदि।
म.—दुध्या भोपला। गु.—दूधी, भोपला, आलेडी।
वं.—लऊ, कोदू, मिष्ट लाऊ।
अं--व्हायट पम्पकिन, स्वीट गौर्ड (White gourd, Sweat gourd)
ले--कुकुरविटा लेजेनेरिया।

गुणधर्म और प्रयोग–

गुण मे यह लघु, (किंतु अधिक मात्रा मे सेवन करने पर भारी अर्थात् कफ की विशेष वृद्धि कर शरीर मे भारीपन, अरुचि आदि उत्पन्न करती है। इस भारीपन (गुरु) के परिहारार्थ लौग का सेवन करना चाहिये। स्निग्ध, सर, रस और विपाक मे मधुर तथा शीतवीर्य मेध्य, हृद्य,मस्तिष्क शामक, निद्राजनक, वात पित्तशामक, रोचन, तृष्णा निग्रहण, रक्तस्तम्भन है) स्निग्ध होने से यह कफ नि सारक, सधानीय,मूत्रजनन, गर्भपोषक, शुक्र-वर्धक, वृ हण, ज्वरहर एव दाहप्रशमन है। फल की मज्जा
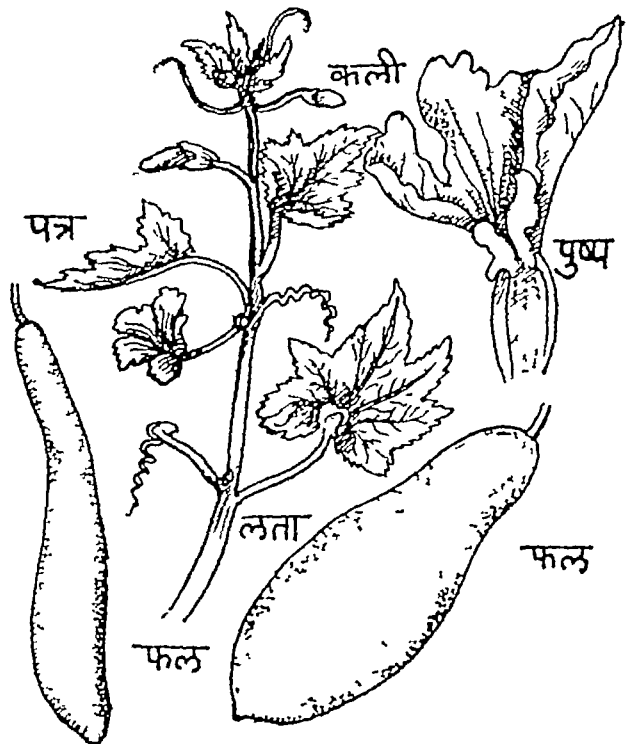
और बीज मूत्रजनन है। पत्र स्वरस रेचन है। लम्बी लौकी (क्षीर तुम्बी) और गोल लौकी (गोरख तुम्बी) इन दोनो मे उक्त गुण धर्म पाये जाते हैं।

वातपित्तजन्य विकारो पर तथा कास, उर क्षत, यक्ष्मा, रक्तष्ठीवन, हृद्रोग एव रक्तपित्त मे इसका सेवन प्रशस्त है। मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह और पूयमेह मे यह अति उपयोगी है। तैसे ही मस्तिष्कद्वेग उन्माद, मानसिक दौर्वल्य तथा [निद्रानाश] की दशा मे इसका प्रयोग उत्तम है।

ज्वरातिसार आदि से दुर्वल रोगियो को इसका पथ्य उपादेय है। साधारण दुर्वलो के लिये भी पौष्टिक रूप मे यह उपयोगी है।

सन्निपातज्वर, उन्माद, शिर शूल एव मदात्यय मे इसकी फल मज्जा का प्रलेप सिर पर करते है। तथा इसके बीजो का तैल सिर पर लगाते हैं। मस्तिष्क की रूक्षता एवं निद्रानाश मे इस तैल का सिर पर मर्दन तथा नस्य कराते है।

जीर्ण ज्वर मे इसके फलो का शाक हितकारी है। दाह की शांति के लिये बीजो को पीसकर पानक के रूप मे (४ तोले बीजो को जौकुट कर ६४ गुना जल मिला पकावे, आधा शेष रहने पर उसमे रुचि के अनुसार मिश्री व काली मिर्च का चूर्ण मिला और छानकर] दिन मे वार वार थोडा थोडा पिलाते हैं।

कामला मे इसके पत्र स्वरस के प्रयोग से पित्त का सशोधन और शमन होता है।

मात्रा—फल स्वरस ५-१० तो, पत्र स्वरस १-२ तो, और बीज चूर्ण ३-६ माशे तक।

लौकी के अभाव मे प्रतिनिधि रूप मे कूष्माण्ड [कुम्हडा] दिया जाता है।

कद्दू नं. २—कूष्माण्ड [Cucurbita Maxima]

यह भी सर्व प्रसिद्ध शाक कोषातकी कुल [Cucurbitaceae] की है। इसे हिन्दी मे कुम्हडा, भतुआ, लालकद्दू आदि कहते हैं। तथा जिसे पेठा, भूराकुम्हडा आदि हिन्दी मे और लेटिन मे कुकुराविटा मास्केटा [Cucurbita Moschata] बेनिनकेसा सेरिफेरा [Benincassa Cerifera] कहते हैं, वह भी इसी कूष्माण्ड की एक जाति विशेष है। उक्त दोनो की वेल एक समान मचान, छप्पर या खेतो मे दूर तक फैलती हैं। ये दोनो वर्षायु है। पत्ते ४-६ इन्च व्यास के गोलाकार कडे एव श्वेत रोमो से व्याप्त होते हैं। श्वेत या भूरे कुम्हडे के पत्ते कटे किनारे वाले या ५ भाग वाले होते है। दोनो के पत्रवृन्त लम्बे होते हैं। दोनो के पुष्प पीत वर्ण के फलो के सिरे पर या अलग भी वेल पर आते हैं। लाल कुम्हडे के फल वृहदाकार के होते हैं। श्वेत के फल उतने वडे आकार के नही होते। लाल कुम्हडे के वीज चिपटे, वडे, कुछ पीतवर्ण के तथा श्वेत के बीज उनकी अपेक्षा छोटे और श्वेत वर्ण के होते हैं।

लाल कद्दू और श्वेत कद्दू [पेठा] मे विशेष भेद ये है—लाल की वेल, काण्ड और पत्तो पर जैसे रोए होते हैं, तैसे श्वेत मे नही होते। श्वेत के पत्ते बहुत ही मुलायम और प्राय श्वेत धब्बो से युक्त होते है। लाल को प्राय सर्वाङ्ग शाक रूप मे खाया जाता है, जैसे इसके कोमल कोपलो या पत्तो का सलाद बनाते हैं, फूलो की भाजी, भजिये आदि बनाते है, कच्चे और पक्के फलो की शाक, सब्जी तो सर्व प्रसिद्ध ही है, बीजो की गिरी का पाक बनाया जाता है इत्यादि। श्वेत का सर्वाङ्ग इस प्रकार काम मे नही आता। केवल इसके कच्चे फलो का शाक बनाया जाता है। तथा पके फलो की टुकडीदार मिठाई [पेठा] आदि बनाते हैं। औषधि रूप मे तो दोनो के फल, फल-स्वरस, बीज, तैल, पत्रादि काम मे आते हैं।

लालकद्दू का ही एक भेद और होता है, जिसे चप्पन कद्दू, विलायती कद्दू या काशीफल तथा लेटिन मे कुकुरबिटा पेपो [Cucurbita Pepo] कहते है। इसके फल गोलाकार छोटे छोटे वजन मे १ या २ सेर तक होते हैं। इसमे लाल कद्दू जैसी मिठास नही होती। इससे भी छोटे कद्दू को कुष्माडी या कर्कारु कहते हैं। यह भारतवर्ष मे

सर्वत्र बोया जाता है।

नाम–

सं.–पीतकूष्माण्ड (जिसके बीजों में उष्णता न हो-कुनास्ते ऊष्मा अण्डेषु बीजेषु यस्य स') बृहत्फल, ग्राम्य (ग्रामों में खूब होने वाला) गुडयोग फल।

हि.–लाल कद्दू, कुम्हडा, सीताफल, मीठाकद्दू, कोला, काशीफल।

म.–कोहला, लाल भोपला, तांबडा भोपला।

गु.–पीलु कोहलु। बं.–सफरुई, कुमरा।

अं.–ग्रेट पम्पकिन (Great-Pumpkin), रेड गोर्ड (Red-gourp)

ले.–कुकुरबिटा मेक्सिमा, बेनिनकेसा हिस्पिडा (B enınca-Hıspıda)

गुणधर्म और प्रयोग–

गुरु [पचने में भारी], पित्तजनक, मंदाग्निकारक, वात को कुपित करने वाला, मूत्रल, पौष्टिक, तृषानाशक
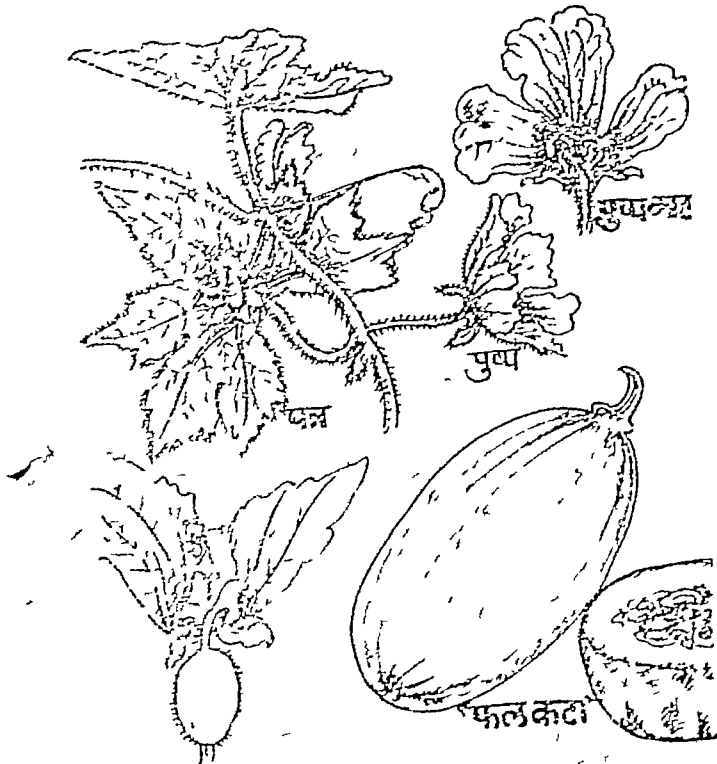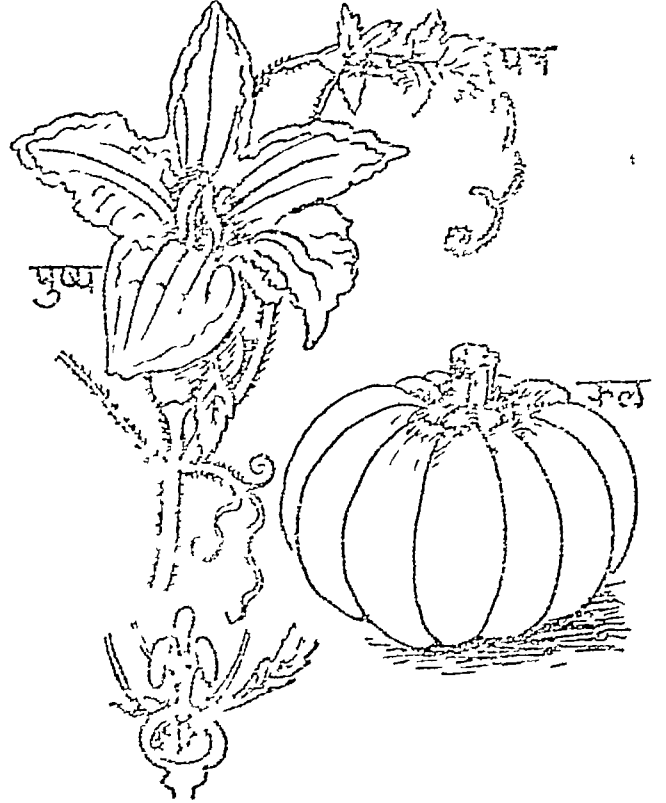
है। वात या कफ प्रकृति वालो को इसका अधिक सेवन हानिकारक है। पित्त प्रकृति वालो को इसका सेवन अनार या खट्टे अंगूर के साथ करना विशेष लाभदायक है। परिपक्व कद्दू का ही सेवन ठीक होता है। कच्चा कद्दू आमाशय को हानिकर है।

इसके बीज विषनाशक तथा उदर कृमिनाशक है। बीजो का तैल स्नायुमण्डल को पुष्टिकारक है। इस तैल को सिर और शरीर पर मर्दन करने से शरीर में स्फूर्ति आती है। मस्तिष्क की रूक्षता दूर होती तथा अनिद्रा रोग मे लाभ होता है।

इसके फल के गूदे का पुल्टिस शोथयुक्त प्रदाह जले हुये स्थान पर तथा व्रणो पर लगाते है। आन्तरिक दाह के शमनार्थ फल को पुटपाक विधि से पकाकर रस निकाल कर पीने से लाभ होता है। इसके बिल्कुल छोटे फल को जिसके ऊपर का फूल भी न गिरा हो लेकर उस पर

आटा लपेट कण्डो की गरम राख में दवा दें। जब वह भुरता सा हो जाय, उसका रस निचोड कर आखो मे आजने से पीलिया [कामला] मे लाभ होता है।

मस्तिष्क की ऊष्मा पर फल के छोटे छोटे टुकडे कर इमली और शक्कर के साथ आग पर जोश देकर मल छान पिलाने से दिमाग की गरमी, सिरदर्द और उन्माद मे लाभ होता है।

उदर कृमि पर २॥ तोले बीजो की गिरी को शक्कर के साथ रात्रि के समय खाकर प्रात रेंडी तैल पिलाने से सव कृमि झड जाते हैं। अथवा—२॥ तोले बीज गिरी को थोडे जल और शक्कर के साथ पीसकर शहद जैसा गाढा हो जाने पर प्रात खाली पेट सेवन कर दो घण्टे वाद रेंडी तैल पिलाने से खास कर उदर के चिपटे कृमि निकल जाते हैं।

सुजाक या मूत्र सम्बन्धी विकारो पर बीज चूर्ण की मात्रा १॥ से २॥ तोले मिश्री या शहद मिला कर देवें।

रक्तस्राव पर—फल के गूदे को शुष्क कर शक्कर की चाशनी मे पकाकर खाने से आतो मे या अर्श से होने वाले रक्तस्राव पर लाभ होता है।

कनखजूरा आदि विषैले कीटको के दश पर पके फल की डेठ जो कि फल पर लगी रहती है, उसे निकाल जल के साथ पीसकर प्रलेप करते है।

छोटा कद्दू या विलायती कद्दू [कुष्माण्डी] कच्ची अवस्था मे ही शाक वनाकर खाया जाता है—यह ग्राही, भारी, शीतल और रक्तपित्तनाशक है। इसका पका फल कुछ कडुवा, दाहकारी, खारी तथा कफ वातनाशक होता है।

कद्दू नं.३ श्वेत कद्दू—पेठा [Benincasa Cerifera]

इसका वहुत कुछ परिचय कद्दू न० २ के प्रकरण मे आ चुका है। यह भूरा कुम्हडा या पेठा नाम से उत्तर भारत मे प्रसिद्ध है। इसके फल १ से १॥ फीट तक लम्वे, गोल, चौडे वेलनाकार तथा श्वेत रोमो से व्याप्त होते हैं। इसमे लाल कद्दू [न २] के अनुसार फाके नही होती। कच्ची अवस्था मे फल का छिलका हरा और नरम होता है तथा पकने पर छिलका बहुत कडा हो जाता है।

नाम—

सस्कृत--श्वेत कुष्माड, पुष्पफल (पुष्प के साथ ही फल का पूर्वरूप स्पष्ट हो जाता है), घृणावास (इसे ब्रह्मा का सिर समझकर कई लोग इसे वोना या खाना घृणित मानते है)

हिन्दी--सफेद कुम्हड़ा, पेठा, रकसवा, सफेद कोला

मरेठी--पाढ़रा कोलहा। गुर्जर-भूरूं कोलूं, कंटालु कोलू। वंगला-मलकुम्हडा, कुम्हडा गाछ

लेटिन – वेनिनकेसा सेरीफेरा, कुकुरविटा मासचाटा (Cucurbita Moschata)

गुणधर्म—

लघु [पक्व पुराना फल लघु अर्थात् पचने मे हलका है, किन्तु मध्यमावस्था का फल भारी होने से भाव मिश्र आदि निघण्टुकारो ने इसे गुरु कहा है], स्निग्ध, रस व विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, मेध्य [मेधा शक्ति-वर्धक], मस्तिष्क के लिये शामक, वलदायक, निद्राजनन, अनुलोमन, तृष्णा निग्रहण, हृद्य, रक्तपित्तशामक, मूत्रल, शुक्रधातुवर्धक, निर्वल तथा वृद्ध शरीर को पुष्टिकारक, वृ हण, दाह एव सन्ताप निवारक है। फुफ्फुस के लिये वल्य एव क्षयनाशक है।

सब्जी या शाक के रूप मे इसके जो कोमल कच्चे फल या मध्यमावस्था के फल खाये जाते हैं वे कफ तथा वात प्रकोपक होते हैं। अत इसे जल मे खूब उवाल कर एव रस को निचोड कर अधिक स्नेह मे पकाकर खाने के काम मे लेना चाहिए। तैसे ही इसके मध्यमावस्था के फलो की जो टुकडे टुकडे दार मिठाई वनाई जाती है वह भी कफकारक ही होती है। इसीसे भावप्रकाश, मदनपाल निघण्टु तथा निघण्टु रत्नाकर मे इसे कफ-

कारक ही कहा है। हमारा भी ऐसा ही निजी अनुभव है। इसके पूर्ण परिपक्व एवं लगभग एक वर्ष के फल या जो फल बेल पर ही अच्छी तरह पक्व हो जाने पर तोड़े गये हो वे गुरु एवं कफकारी नहीं होते, प्रत्युत् अधिकांश में कफनाशक होने से सुश्रुत, हारीत संहिता, राजवल्लभ आदि ग्रन्थों में इसे कफनाशक कहा गया है।

इसका परिपक्व फल स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, किंचित् शीतल, अग्निदीपक, बस्तिशोधक, उन्माद आदि मानसिक रोगनाशक एवं त्रिदोषनाशक होता है। तथापि शीतप्रकृति वालों को पेठा का सेवन हानिकारक होता है। इसके अहित प्रभाव के निवारणार्थ नमक, सौंफ और कालीमिर्च का सेवन किया जाता है। इसके अभाव में लौकी का प्रयोग किया जाता है।

अनुलोमन एवं रक्तस्तम्भक होने से रक्तार्श, रक्तपित्त तथा उरःक्षत में रक्तस्राव की तीव्रावस्था में यह पथ्य के रूप में दिया जाता है।

इसके फल के गूदे का लेप दाह शामक है। इसके बीज कृमिघ्न [स्फीत कृमि—Tape worms] नाशक तथा दाहशामक हैं। दाहशामनार्थ बीजों को पीसकर ठण्डाई के रूप में पिलाते हैं। इसका क्षार उदर शूल में देते हैं। ग्रीष्मकाल में फलों का अवलेह, मुरब्बा आदि खाते हैं। जीर्ण ज्वर में यह दाह और ज्वर की तेजी को शमन करता है। पारद के विष पर फल का स्वरस पिलाते हैं। अग्निदग्ध में इसके पत्तों का स्वरस लेप करते हैं। बीजों की गिरी पित्तनाशक, मधुर, पुंसत्वशक्तिवर्धक और बस्तिशोधक है। बीजों का तैल वातपित्त हर, कफ प्रकोपक, भारी, शीतल एवं केशों के लिये हितकर है।

मात्रा—फलस्वरस १-२ तोला, बीज गिरी ५-७ माशे तक, बीज चूर्ण ३-६ माशे, बीज तैल ६ माशे से १ तोला।

अवलेह, खण्ड कूष्माण्ड, पाक हलुवा तथा निम्न सिद्ध प्रयोगों के निर्माणार्थ पुराना पेठा ही लेना चाहिए—

[१] खण्ड कूष्माण्ड अवलेह—उत्तम पेठे का गूदा ५ सेर से लेकर १० सेर जल के साथ कलई की कढाई में पकावें। आधा जल शेष रहने पर उतार कर खादी के कपड़े में अच्छी तरह निचोड़ते हुए छान लें। कपड़े में रहे गूदे को १३ छटाक घृत [गोघृत हो तो उत्तम] में भून ले। भूनते-भूनते जब उसका रंग शहद जैसा हो जाय तब उक्त पेठे के निचोड़े हुए जल को कढाई में डाल आग पर रक्खें। उबाल आने पर उसमें भुना हुआ गूदा तथा ५ सेर मिश्री पीसकर पकावें। अवलेह जैसी चाशनी हो जाने पर नीचे उतार उसमें पीपल, सोंठ, श्वेत जीरा ८-८ तोले, धनिया, तेजपात, छोटी इलायची के बीज, कालीमिर्च और दालचीनी २-२ तोला इन सबका महीन चूर्ण तथा ६॥ छटाक शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—२-४ तोला नित्य प्रातः खाकर ऊपर से १ पाव तक गोदुग्ध पीवें। रक्तपित्त, हृदय या फेफड़े के रोग, अपस्मार, उन्माद आदि मानसिक रोगों पर विशेष
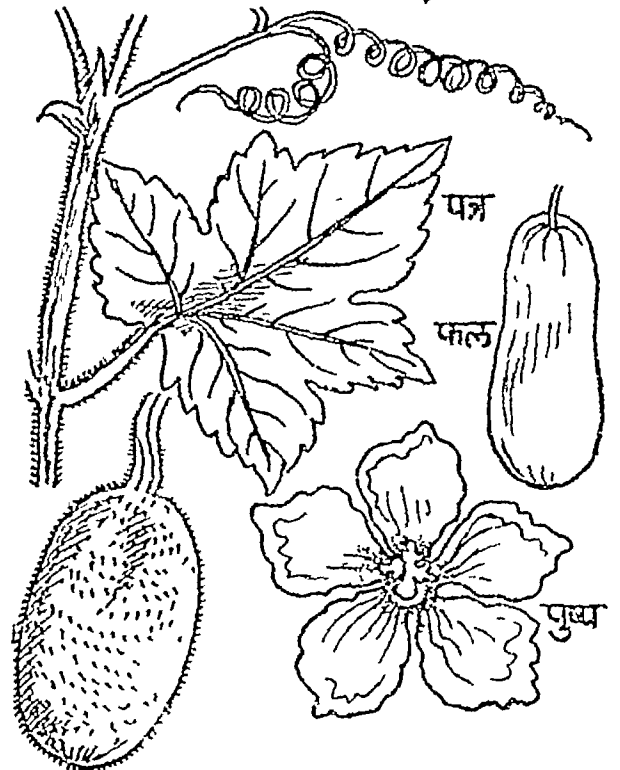
लाभकारी है। क्षय [T B] ग्रस्त रोगियो के लिये यह लघु सुपच आहार है। वृद्धो और बालको को अति हितकर है। दाह, प्यास, प्रदर, निर्बलता, कास, श्वास पर भी लाभ करता है। इस योग मे शहद से आधी खाड, उसमे आधी द्राक्षा, द्राक्षा से आधी लौंग व उससे आधा कपूर मिलाने से और भी उत्तम होता है।

नोट—कुष्मांड पाक या अवलेह के कई प्रयोग हमने बृहत्पाक संग्रह में दिये हैं। विस्तार भय यहां नहीं दे सकते। वासाखण्ड कुष्माड, गुड़ कुष्माड कुष्मांड गुडकल्याणक आदि को भैषज्य रत्नाकर आदि ग्रंथों में देखिये।

[२] खण्ड कुष्माड पाक—पेठे का रस ५ सेर, गौ दुग्ध ५ सेर और आमला चूर्ण ३२ तोला सबके मिश्रण को मन्दाग्नि पर पकावे, खोया जैसा एकदम गाढा हो जाने पर उसमे ४ सेर मिश्री का चूर्ण मिलाकर रक्खें।

मात्रा—१ से २ तोले नित्य दो बार दूध के साथ सेवन से अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, कामला आदि रोग दूर होते है।

[३] अर्क कुष्माड—५ सेर वजन का एक उत्तम पेठा लेकर डठल की जगह चाकू से काट छेदकर एक लम्बी चम्मच से अन्दर के गूदा, बीज आदि को अच्छी तरह चला देवें [मथ डालें], फिर उसमे २० तोला हीरा हीग का चूर्ण भर कर निकाले हुए डण्ठल को अपने स्थान पर जमाकर ऊपर से अच्छी तरह कपडमिट्टी कर जमीन मे गाढ देवें। इसका मुख ऊपर को ही होना चाहिए। पेठे के ऊपर लगभग ८'९ इच मिट्टी आ जाय इतना गहरा गढा खोदकर उसे गाढें तथा वह जमीन शुष्क होनी चाहिए। १ मास के बाद निकाल सम्हाल कर पेठे के मुख को खोल उसमे से लोहे की नलिका यन्त्र द्वारा अर्क खींच लें। छानकर बोतलो मे भर रक्खे।

मात्रा—५ से १० बूद दिन मे ३ बार २॥-२॥ तोले जल मे मिलाकर पिलावें। इसके सेवन से अति उष्णता उत्पन्न होती है, समस्त वातरोग, कटिग्रह, सधि वेदना, पक्षाघात आदि शमन हो जाते है। कफ प्रधान सब रोगो का भी निवारण हो जाता है। —रसतन्त्रसार

रोगानुसार प्रयोग—

१—अम्लपित्त पर—पेठे का रस ५ सेर, गौदुग्ध ५ सेर, आमला चूर्ण और खांड ३२-३२ तोले तथा गौ घृत ८ तोले सबके मिश्रण को मन्दाग्नि पर पकावें तथा करछली से चलाते रहें। जब इतना गाढ़ा हो जाय कि एक पिण्ड सा बन जाय तब उतार लें।

मात्रा—१-१ तोला सेवन से अम्लपित्त नष्ट होता है। —भै. र.

२—अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र पर—इसके दो तोले रस को ४ रत्ती यवक्षार और ६ माशा खांड या गुड़ के साथ सेवन करते रहने से पथरी के छोटे छोटे कण निकल जाते है। यदि बड़ी अश्मरी हो तो वह भी इसके सतत प्रयोग से धीरे धीरे घुलकर नष्ट हो जाती है। पथरी के रोगी का रुका हुआ पेशाब खुलकर आ जाता है। अथवा—

इसके ४ तोले स्वरस मे ४ रत्ती यवक्षार और १ रत्ती हींग मिलाकर पिलाने से वस्ति व मूत्रेन्द्रिय के शूल, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है।

मूत्राशय पर पेठे के और खीरे के बीजो को पीस कर लेप कर देने से रुका हुआ मूत्र निकलने लगता है।

३—उदर कृमि पर—इसके बीजो का १। तोले तैल पिलाकर थोडी देर बाद हलका जुलाब दे।

४—क्षय और रक्तस्राव पर—क्षय रोग की बढी हुई अवस्था मे उर:क्षत होकर फेफडो से रक्तस्राव प्रारभ हो जाता है, ऐसी अवस्था मे पेठे का ताजा रस मुक्ता-भस्म के साथ दिन मे ३ बार देते है। इसका स्वरस पिलाने से सब प्रकार का रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

क्षय तथा रक्तस्राव की अवस्था मे उपरोक्त सिद्ध प्रयोग न० १ खण्डकुष्माण्डावलेह उत्तम है।

५—कास श्वास पर—इसकी जड या शाखाओ के चूर्ण को सुखोष्ण जल के साथ सेवन करने से भयंकर कास और श्वास मे लाभ होता है। अथवा—इसके फल के चूर्ण का भी उक्त प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

६—अपस्मार, उन्माद और मदात्यय पर—पेठे का रस १८ सेर, घृत १ सेर और मुलहठी की लुगदी या कल्क १ सेर मिला घृत को सिद्ध करले। इस कूष्माण्ड घृत को १ से ४ तोला तक गौदुग्ध के साथ प्रात साय दें।

इसके बीजो की गिरी को जल के साथ पीस छान कर शहद मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से उन्माद या पागलपन की उग्र दशा मे तीसरे दिन ही कमी दीखने लगती है। अथवा–

इसके फल स्वरस १ तोला मे कूठ का चूर्ण ४ रत्ती और शहद ६ माशे मिलाकर प्रतिदिन ३ बार पिलायें।

इसके फल व स्वरस मे गुड को घोलकर पिलाने से मदात्यय विशेषत मादक कोदो धान्य से बनी हुई शराब का नशा दूर हो जाता है।

७—शूल पर–पेठे के महीन टुकड़े कर धूप मे सुखा लेवें, पश्चात् इन्हें इस प्रकार आग पर जलावे कि वे जल कर सख्त कोयले बन जाय, राख न होने पावें। ठंडा हो जाने पर पीस कर रख ले।

मात्रा–२ माशे को समभाग सोंठ चूर्ण मिला जल के साथ पीने से दारुण असाध्यशूल भी नष्ट होता है। भा प्र.

८—मधु मेह पर–इसके फल के छिलके के रस १० तोला मे ६ माशे केशर और उतना ही साठी चावल का चूर्ण मिला इसकी दो मात्रा को प्रात साय १–१ मात्रा सेवन करने तथा पथ्य मे केवल जौ की रोटी का भोजन करने से लाभ होता है। —डा० डीमक

९—हैजे पर–इसके फूलो को पीस कर १-१ माशे की गोली बना खिलाने से लाभ होता है।

कनकचम्पा (*PTEROSPERMUM ACERIFOLIUM*)

यह उलटकम्बलादि वर्ग [Sterculiaceae] की वनौषधि बंगाल की ओर की आर्द्र भूमि मे अधिकता से पाई जाती है। वहा इसे मुचुकुन्द कहते हैं। वास्तव मे मुचुकुन्द [P Suberifolium] [जो इसी कुल का है] इससे भिन्न है। मुचुकुन्द का प्रकरण देखिये।

ध्यान रहे सर्वसाधारण चम्पक या चम्पा वृक्ष श्वेत चम्पक और पीत चम्पक भेद से दो प्रकार का होता है। उनमे से पीत चम्पक के पीले पुष्प विशेष सुगन्धित होते हैं और उसे सोन चम्पा तथा अंग्रेजी मे गोल्डन चम्पा [Golden Champa] कहते हैं। वह प्रस्तुत कनक चम्पा से भिन्न कुल [Magnoliaceae] का है। किन्तु गुणधर्म मे बहुत कुछ समानता है।

यह कनकचम्पा विशेषत आर्द्र या दलदल की भूमि मे बगाल की ओर तथा पश्चिम हिमालय से लेकर कुमाऊ, चिटगाव एव दक्षिण मे कोंकण और बम्बई की ओर भी आर्द्र भूमि मे बहुलता से होता है।

इसके सुन्दर ऊंचे वृक्ष साधारण चम्पा वृक्ष के जैसे ही होते है। वृक्ष की छाल चिकनी पिलावट लिये हुये श्वेत वर्ण या खाकी रग की होती है। इसकी टहनियो के नीचे का भाग तथा फलियो के डंठल हरित वर्ण के एव रोयेंदार होते हैं। पत्ते बडे आकार के चिकने तथा पृष्ठ भाग मे रोओं से आच्छादित होते हैं। पुष्प पांच पखुडियो वाले श्वेत पीत वर्ण के आकर्षक सुगन्धित होते हैं। इनकी सुगन्ध बहुत दूर तक फैलती है। इसकी
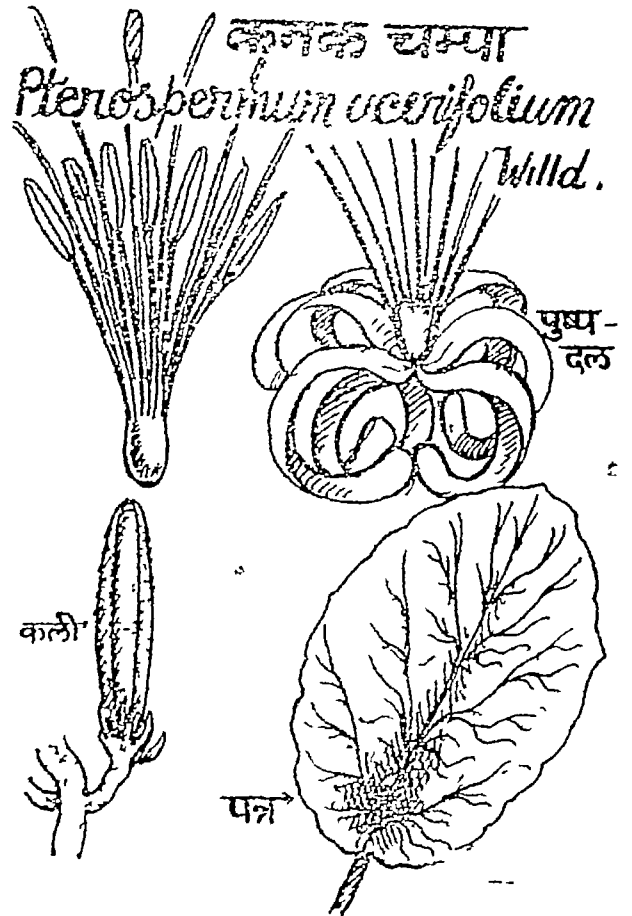
फलिया ४ से ६ इच लम्बी तथा बीज गोलाकार पतले दबे हुये से होते है। यह वृक्ष वसत या ग्रीष्म मे फूलता फलता है।

नाम—

संस्कृत–कनकचम्पक कर्णिकारक पद्मोत्पल आदि
हिन्दी–कनकचम्पा कठचम्पा कनियार आदि
वंगला–मुचकुन्द कनकचम्म आदि
लेटिन–टेरोस्पर्मम अमेफोलिया

गुणधर्म—

कडवा, कसैला, चरपरा, हलका, शोधक, मृदुरेचक, कृमिनाशक तथा, शोथ, व्रण, प्रदाह, श्वेतप्रदर, रक्त-विकार, उदर पीडा, जलोदर, कुष्ठ, मूत्राशय के विकार और अर्बुद मे लाभकारी है।

इसके फूल और छाल की भस्म कमीला के साथ मिलाकर चेचक की फुंसियों पर वुरकाने से उनमे राध पूय, आदि नही जमने पाते।

पत्तो के ऊपरी श्वेत रोम्रो को, घाव या चोट का रक्तस्राव बन्द करने के लिये काम मे लाते हैं।

नोट–ऊपर कनकचम्पा के स्वरूप परिचय में इसकी फलियों के विषय में जो कहा है वह भ्रमात्मक है। वास्तव में वे फलिया नहीं फल ही हैं जो पांच उठी किनारियों वाले होते हैं। इन पर नसवरी रंग के छिलके होते हैं। ये फल लगभग १२ महीने बाद पकते हैं और फट जाते हैं तथा उनमें से बडे मटियाले पतले परों वाले बीज बाहर निकल पड़ते हैं।

कनकौवा (Kankowa)

इस बूटी का सक्षिप्त परिचय केवल यूनानी ग्रन्थो मे ही मिलता है। इसे हिन्दी मे कही कही कवाकौवा, वोकना कहते हैं। लेटिन नाम हमे प्राप्त नही हुआ।

यह घास जैसी वनस्पति मध्यभारत तथा बुदेल-खड की ओर आर्द्र भूमि मे विशेष होती है। यह गाठ दार शाखाओ से युक्त अधिक से अधिक १॥ फीट तक ऊची होती है। पत्ते युग्म रूप मे छोटे छोटे एव कोमल होते हैं। फूल नन्हे नन्हे धूसर वर्ण के टोपीनुमा परदो से निकलते हैं। इसी मे इसके बीज होते हैं।

इसका एक भेद "कौआसाग" नाम का और होता है जिसके पत्ते कौवे की चौच के आकार के किन्तु रग मे लाल पीले होते हैं। इन पत्तो की साग ग्रामीण लोग बडे प्रेम से खाते हैं। इसका फूल लाल होता है।

गुणधर्म –

यूनानी मतानुसार यह कफकारक, पित्तनाशक, हृदय को प्रफुल्लित करने वाला, कामाद्दीपन, तथा नेत्र और मूत्र सम्वन्धी विकारो मे गुणकारी है।

ऊगली व्रण (Whiltow) मे इसके पत्र थोडा नमक के साथ पीस कर वाधते हैं।

कनफोड़ [*CARDIOSPERMUM HALICACABUM*]

यह अरिष्टक (रीठा) या फेनिल (Sapindaceae) वर्ग की एक प्रमुख वनौषधि है इसकी वर्षजीवी आरोही लता भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत वगाल, महाराष्ट्र, उत्तर पश्चिम सीमात प्रदेश आदि स्थानो के ऊसर या जगली भूमि मे पायी जाती है। इसके पत्ते कोरदार कटे हुए, कुछ सकरे लम्वे एव नुकीले होते हैं। फूल नन्हे नन्हे श्वेत या गुलावी रग के होते है। इसकी शाखाये फिसलनी, वडी नाजुक होती हैं। फलिया त्रिकोणाकार कुछ लम्बी, चपटी, ऊपर से हरित वर्ण की झिल्ली से आवृत, भीतर तीन कोषो मे विभक्त तथा प्रत्येक कोष मे काले रग का घु घची (गु जा) जैसा चिकना गोल एक एक दाना या बीज होता है। जैसे लाल गु जा पर काला दाग होता है तैसे

ही रस काले रग के वीज पर सफेद दाग होता है। इसी-लिये कोई कोई इसे काली घु घची कहते है। इस फली को नीचे पटकने पर फटाका जैसा कान फोडने वाली आवाज होने से इसे कर्ण स्फोटा (कनफोड़ा) कहते है।

इसकी जड श्वेतवर्ण की अप्रिय गन्ध वाली स्वाद मे चरपरी, कडुवा तथा उत्क्लेदकारी होती है। शीत ऋतु को छोड अन्य सब ऋतुओ मे यह फूलती फलती है।

नोट—(१) संस्कृत के कई नामों में इसे 'ज्योतिष्मति' नाम भी दिया गया है। किन्तु ध्यान रहे ज्योतिष्मति (मालकागनी) हरीतिन्यादि वर्ग की या आधुनिक मतानुसार अपने ही कुल (Celastraceae) की है। वह प्रस्तुत कर्णस्फोटा से एकदम भिन्न है। मालकांगनी का प्रकरण देखिये।

(२) कनफुटी नाम से इससे भिन्न और छोटी जाति की बूटी होती है जो हिमालय की तराई के प्रदेश में तथा शिमला, कुमायूं, चित्रागांग की ओर अधिक पाई जाती है। इसका लेटिन नाम फ्लेमिंगिया स्ट्रोबिलीफेरा (Flemingia strobilifera) है। इसकी जड अपस्मार में प्रयुक्त होती है।

नाम—

संस्कृत—कर्णस्फोटा, त्रिपुटा, पर्वतागी, स्फोटलता, ज्योतिष्मती
हिन्दी—कनफोड़ा, कानफटा
मराठी—कानफोडी, बोधा, घनवेल शिंजल। गु.—करोडिया
वगला—लताफटकी, नोयाफटकी, कानफोटा
अंग्रेजी—बलून व्हाईन (Baloon Vine), विंटर चेरी (Winter cherry), हार्टस पी (Heart's pea)
लेटिन—कर्डियोस्पर्मम हेलिक केबम

गुणधर्म और प्रयोग—

यह चरपरा, कडुवा, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, वमनकारक, गुल्मोदर, प्लीहा, आनाह, आमवात, कटिवात, ज्वर, विष, कफज शूल और त्रिदोषनाशक है। रज स्राव नियामक, मूत्र प्रवर्तक, कामेन्द्रियो को शक्तिप्रद तथा कर्णव्रण, शोथ, अर्बुद आदि नाशक है।

इसकी जड़ और पत्ती—मूत्रकारक, मृदुरेचक, जठराग्निदीपक और रसायन है। आमवात, वातव्याधि, अर्श, वायुप्रणाली, शोथ जन्य चिरकारी कास और क्षय में इसकी जड़ और पत्ती का उपयोग होता है। इसके बीज वृक्क या मूत्राशय की अश्मरीनाशक, मूत्र प्रवर्त्तक, कटिशूल और उन्मादनाशक गर्भाशय सकोच निवारक तथा वीर्य को गाढा करने वाले हैं। बीजो मे एक प्रकार का तिक्त, उत्तेजक, उडनशील तैल होता है, इसमे जो सैपोनिन (Saponin) नामक फेनिल तत्व होता है उसी पर इसके गुणधर्म निर्भर हैं।

पत्र प्रयोग—सिर दर्द पर पत्तो को कुचल कर धूम्रपान कराते है। कर्णशूल या शूल पर पत्र स्वरस डालते हैं। मूत्राशय की पीडा पर पत्तियो की पुल्टिस बना पेडू और गुदा पर बांधते हैं। उपदशजन्य व्रणो पर पत्तो को पीस कर लेप करते हैं। रजोल्पता मे पत्तो को थोडा भूनकर और पीस कर भग पर लगाते हैं। आमवातजन्य शूल, शोथ एव अर्बुदो पर पत्तो को रेंडी तैल मे उबाल कर बांधते हैं। शस्त्रो के व्रणो पर पत्तो का लेप करते हैं। कहा जाता है कि शरीर के भीतर घुसी हुई बन्दूक की गोली भी इसके पत्तो के लेप से बाहर निकल आती है। नेत्र व्रण पर पत्तो को गुड के साथ मिलाकर तथा तैल मे उबाल कर लगाते हैं।

शोथ और अर्बुद पर—इसके पचाङ्ग को दूध मे पीस कर लगाने से शोथ या अर्बुद का कडा स्थान मुलायम हो जाता है। आमवात पर पचाग को घृत और जल के साथ पीसकर लगाते हैं। अर्श और रजोल्पता पर इसकी जड का क्वाथ २॥ तोला की मात्रा मे पिलाते हैं।

रज स्थापनार्थ, आर्तवदोष संशोधनार्थ तथा मासिक धर्म की अत्यल्पता मे इसके पत्तो के समभाग सजिका (पोटेसियम कार्बोनेट), बच और बहेडा की जड की छाल लेकर सबका महीन चूर्ण कर अथवा दूध के साथ इस चूर्ण का कल्क (चूर्ण की मात्रा २ से ४ माशे तक) पीस छान कर प्रतिदिन एक बार सेवन कराने से तीन दिन मे यथोचित आर्त्तवस्राव होने लगता है।

—डा० यू० सी० दत्त

कनेर (श्वेत और लाल) [Nerium Odorum]

इस गुडुच्यादि वर्ग की वनौषधि का नैसर्गिक वर्ग एपोसाइनासी (Apocynaceae) है।

पुष्प के रग भेद से श्वेत, लाल और पीला कनेर प्राय सर्वत्र देखा जाता है। श्वेत और लाल कनेर के ६ प्रकार हैं—

१ श्वेत पुष्पयुक्त, २ द्विगुण श्वेतपुष्पयुक्त, ३ श्वेत-गुलाबी पुष्पयुक्त, ४ द्विगुण श्वेतगुलाबी पुष्पयुक्त, ५ रक्त पुष्पयुक्त और ६ द्विगुण रक्त पुष्पयुक्त कनेर। इन सबके गुणधर्म प्राय समान ही हैं।

उक्त प्रमुख तीन प्रकार के कनेरो मे श्वेत और लाल प्राय एक ही आकार प्रकार के होने से लेटिन मे दोनो के लिये एक ही नाम दिया गया है। पीला कनेर प्राय जङ्गली एव उक्त दोनो से पुष्प, फल तथा गुणो मे भी कुछ भिन्न होने से लेटिन मे थेवेटिया नेरिफोलिया (Thevetia Nerifolia) कहा गया है।

सस्कृत मे कनेर के कई नामो मे अश्वघ्न, हयमार, तुरगारि नाम होने से यह नही समझना चाहिए कि कनेर केवल घोडो का ही काल है प्रत्युत् यह सबके लिये एक घातक विष है। यहाँ अश्व, तुरग आदि शब्दो को उपलक्षणात्मक समझना चाहिए। तारतम्य भेद से श्वेत कनेर लाल कनेर की अपेक्षा अधिक घातक तथा पीला कनेर उससे भी विशेष घातक होता है।

राजनिघण्टु और निघण्टु रत्नाकर मे कृष्ण या काले कनेर की भी वात कही गई है किन्तु यह कही देखने मे नही आता है। नीचे श्वेत और लाल कनेर का वर्णन किया जाता है—

इनके पेड प्राय १० फीट तक ऊचे होते हैं। स्निग्ध एव हरिताभ श्वेत अनेक शाखा प्रशाखायें इनके मूल तथा काड से ही निकलने के कारण ये सघन गुल्म या झाडी-दार हो जाते हैं। शाखा के दोनो ओर प्राय तीन तीन पत्तिया एक साथ आमने सामने निकलती हैं। पत्ते ४ से ६ इञ्च लम्बे, लगभग १ इञ्च चौडे, सिरे पर नोकदार, ऊपर से चिकने, नीचे खुरदरे, श्वेत रेखायुक्त पत्र चिमडे होते है। इनकी मध्य शिरा कडी होती है। पत्र तथा छाल को कुरेदने से श्वेत दुग्ध निकलता है।

फूल उपरोक्तानुसार साधारण सुगन्धयुक्त श्वेत रक्त एव गुलाबी रङ्ग के लगभग १॥ इन्च व्यास के तथा व्यस्त छत्राकार (Salver shaped) होते है। फूलो के झड जाने पर ५ से ६ इन्च तक लम्बी, पतली चिपटी, कडी एव गोलाकार फलिया लगती है। ग्रीष्म और वर्षा मे पुष्प तथा शीतकाल मे फलिया लगती हैं। फलियो के पकने पर उनमे छोटे छोटे चपटाकार भूरे रग के बीज श्वेत रोओ से युक्त पाये जाते है। मूल या जडें लम्बी पतली प्राय श्वेत या रक्ताभ श्वेत तथा स्वाद मे खारी होती हैं। इसका सर्वाङ्ग विषैला होता है। जानवर इसे नहीं
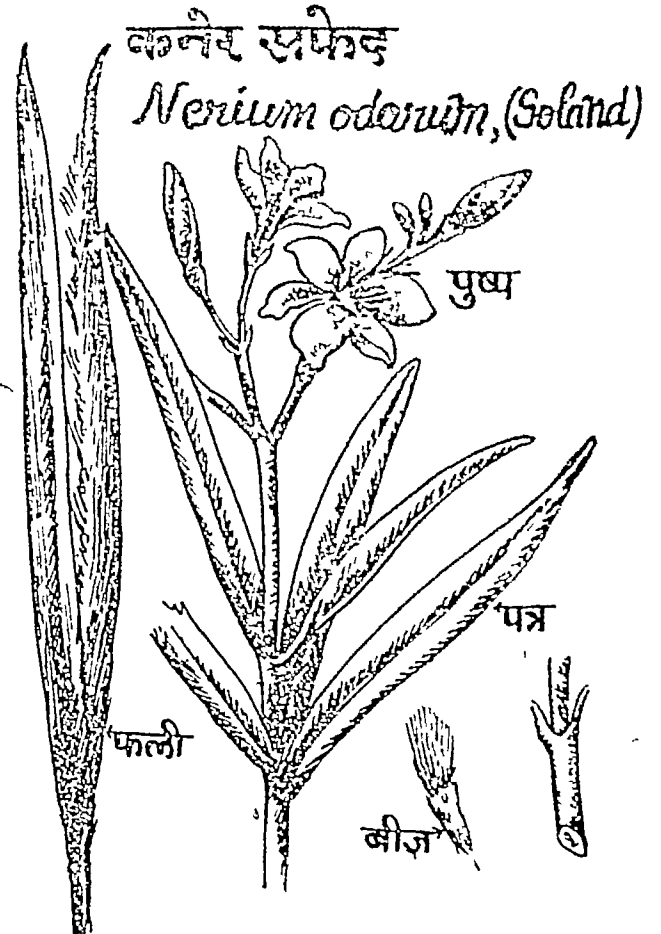
रख है। इसके मूल-त्वक और पत्र का चिकित्सा मे उपयोग होता है। जड की छाल (मूल-त्वक) सर्वाधिक विषैली होती है। कनेर के पेड भारत मे प्राय सर्वत्र तथा अफगानिस्तान, चीन, जापान आदि देशो मे भी पाये जाते हैं। बाग, वगीचो मे फूलो के लिये लाये जाते हैं।

नाम—

श्वेतकनेर—

सं०—श्वेतकरवीर, हरप्रिय,शतकुंभ,अश्वमारक, हयमार।
हिन्दी—सफेद कनेर या कनैल
मराठी—पांढरी कण्हेर, धावे कनेरी
गुजराथी—धोलाकनेर, करेण
वंगला—करवी सादा, करवी गनीर
अंग्रेजी—स्वीट सेंटेड ओलियंडर (Sweet Scented Oleander), रोजबेरी स्पर्ज (Roseberry Spurge)
लेटिन—नेरियम ओलियंडर (Nerium Oleander)

लालकनेर—

सं०—रक्तपुष्प, चण्डात, लगुड,रक्तकरवीरक,गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम इत्यादि
हिन्दी—लालकनेर, कनइल। मराठी—तांवडी कण्हेर
वंगला—लालकरवीगाछ, रक्त करवी
गु—राता फुलनी या राती कणेर
लेटिन—नेरियम ओडोरम (Nerium Odorum, Soland)

रासायनिक संगठन और गुणधर्म—

श्वेत और लाल दोनो कनेरो का मूल मे नेरिओडोरीन (Neriodorin) नामक ऐसे दो पदार्थ पाये जाते हैं जो हृदय के लिये अत्यन्त घातक होते हैं। वे उसकी गति को रोक देते हैं, या कम कर देते है। इसके अतिरिक्त इनमे ग्लुकोसाइड् रोजोगिनिन (Rosaginine) एक सुगंधित उडनशील तैल तथा डिजिटैलिस के समान एक नेरिन (Nerine) नामक रवेदार पदार्थ टैनिक एसिड और मोम होता है। इसमे नेरिन यह हृदयोत्तेजक है। यदि कनेर मे यह तत्व न होता तो वह-उपविष न होकर सद्य मारक उग्र विष हो जाता।

इनके पत्तो मे ओलिएण्ड्रिन (Oleandrin) नामक क्षारतत्व, तथा एक ग्लुकोसाईड नेरीन आदि पदार्थ होता हैं। इनमे ओलियेण्ड्रिन नामक जो द्रव्य होता है, उसका इंजेक्शन अधिक मात्रा मे देने से नाडीस्पन्दन एकदम घट जाता है। पश्चात् हृत्स्पदन और श्वास प्रश्वास भी अवरुद्ध हो जाता है। इनके मूल की छाल अमोघ मूत्रकारक है। गर्भपात एव आत्महत्या के लिये इसका प्रयोग होता है। लाल या पीले कनेर की अपेक्षा श्वेत कनेर की जडे अत्यत विषैली होती हैं। हृदय की पुष्टि के लिये उक्त ओलियण्ड्रिन का त्वचा मे इंजेक्शन $\frac{1}{11}$ से $\frac{15}{33}$ ग्रेन की मात्रा में किया जाता है। इसके मूलत्वक का क्वाथ जलोदर और हृदयकुंचन मे देते हैं। मूलत्वक का लेप फिरग, गुह्यभाग के व्रण एव दाद पर लगाते हैं। त्वचा रोग मे एव व्रणशोथ पर इसकी जड को गोमूत्र मे घिस कर लगाते हैं। हृद्रोग तथा हृदय मे जलसग्रह (Cardiac dropsy) इसके प्रयोग से मूत्राधिक होकर जल सग्रह कम होता है इसका उपयोग खाली पेट नही करना चाहिये।

आयुर्वेद मे कनेर का विधान [illegible] प्राचीन काल से है। चरक ने इसकी गणना तिक्तस्कन्ध और कुष्ठघ्न गणो मे की है, तथा हिलते हुए दात को दृढ करने के लिये इसका प्रयोग दर्शाया है।[1] सुश्रुत ने शिरोविरेचन और लाक्षादि द्रव्यो के वर्ग म इसका गणना की है, तथा उसके क्षार का विधान अश्मरी पर किया है। धन्वन्तरीय निघटु मे इसके केवल प्रलेपादि का ही व्यवहार करने के लिये कहा है, अन्यथा उसके जहरीले असर की सूचना दी है। यही वात भावमिश्र जी ने भी कही है "भक्षित विषवन्मतम्"।

श्वेत और रक्त दोनो कनेर गुण मे लघु रूक्ष और तीक्ष्ण हैं। रस मे कटु, तिक्त, विपाक मे कटु तथा वीर्य उष्ण है। ये दीपन, भेदन, विदाही, कफवातशामक, त्वग्रोगहर, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रणशोधन व्रणरोपण, मूत्रल,

---

[1] सुश्रुत ने दूष्योदर की चिकित्सा मे लिखा है—
दूष्योदरिणंतुप्रत्याख्याय.. .. ..शुद्धकोष्ठं तुमद्येनाश्व मारक ' ''' मूलकल्कं पाययेत। (सु० चि० अ० १४)
अर्थात दूषीविषजन्य उदर रोगी को असाध्य समझ कर सातला, सेहुण्ड आदि द्वारा विरेचन करावें और कोष्ठ शुद्ध होने पर मद्य के साथ कनेर गुंजा आदि की जड का कल्क पिलावें।

स्वेदजनन, ज्वरघ्न, नियतकालिक ज्वर प्रतिवन्धक, नेत्राभिष्यन्द नाशक कामोद्दीपक, तथा सर्प विष पर लाभकारी है। लाल कनेर मे शोधक गुण प्रधान है। तथा व्रण, कण्डु, कुष्ठादि मे इसका लेप किया जाता है। गुलाबी कनेर मस्तकशूल तथा कफ वात नाशक है। शेष गुण सब श्वेत के ही समान हैं।

उक्त कनेरो की जड की छाल एव पत्तो का विशेषत बाह्य प्रयोग ही किया जाता है। त्वग्रोग व्रणशोथ, कुष्ठ कण्डू, शुष्क एव पपडीयुक्त त्वचा के विकारो पर इसके पचाङ्ग के स्वरस से अथवा केवल मूल की त्वचा से सिद्ध तैल का व्यवहार किया जाता है। व्रण, अर्श, कुष्ठादि की पीडायुक्त शोथ मे इसके पत्तो के क्वाथ से सेंकते हैं। तथा इसकी जड को गोमूत्र मे घिसकर लगाते हैं। उपदशजन्य व्रण पर इसकी जड को जल मे घिस कर लगाने से, तथा पत्तो के क्वाथ मे प्रक्षालन करने से लाभ होता है। ध्यान रहे अधिक दीर्घव्रण मे इसका अत्यधिक प्रयोग करने से तीव्र विषैले सार्वदैहिक परिणाम होने की सभावना है।

कनेर के फूल प्रदाह, सधिशोथ, कटि वात, सिरदर्द और कण्डु [खुजली] पर उपयोगी हैं। फूलो को मलने से चेहरे की कांति निखर उठती है।

औषधि प्रयोग मे इसका आन्तरिक सेवन करना हो तो इसे टुकडे कर दोलायन्त्र विधि से गोदुग्ध मे प्रहर तक स्वेदन कर शुद्ध कर लेना आवश्यक है।

मात्रा विचार—

मूल छाल की सेवनीय मात्रा ½ से १ रत्ती या एक चावल से ६ चावल तक है। अत्यधिक मात्रा (१ मासा से उपर की मात्रा) का सेवन करने से वमन, विरेचन, नाडी क्षीणता, श्वास क्रिया मे शीघ्रता, सधिपीडा, देह का जकडना, मूर्च्छा और मृत्युहोती है। गर्भवती का गर्भपात होकर उसकी भी मृत्यु कभी कभी होती है। इसका विषैला प्रभाव दो घण्टे के भीतर या कुछ बाद मे होता है। सरसो के तैल मे मिला कर पिलाने से विष प्रभाव बहुत ही शीघ्र होता है।

इसके विष प्रभाव के प्रतिकारार्थ तुरन्त ही ईसबगोल को मट्ठे मे भिगोकर पिला देने से अथवा कतीरा को पानी मे मिला उसमे थोडा बादाम तैल डालकर पिला देने से आमाशय एव आन्त्रस्थ विष प्रकोप शमन हो जाता है। अथवा १ पाव गाय के दूध मे ६ माशे हल्दी और मिश्री २ तोले का चूर्ण मिला पिलावें, अथवा कच्चा दूध और मिश्री खूब भर पेट पिलावें, यदि हैजे केसे जैसे लक्षण हो तो ताजे दही मे बूरा या मिश्री मिला पिलावें। कभी कभी इसके विष प्रभाव से धनुर्वात (Tetanus) के लक्षण प्रकट होते है। ऐसी दशा मे तुरन्त ही वमन करावें तथा नाडी के उत्तेजनार्थ हेमगर्भ पोटली रस, या चन्द्रोदय, या कस्तूरी की योजना करे। रक्त मे विष प्रभाव लक्षित हो तो टैनिक एसिड देवें। टैनिक अम्ल से कनेर का विष प्रभाव शीघ्र दूर होता है। आधुनिक चिकित्सक पोटाशियम परमेगनेट के घोल से स्टमक पम्प द्वारा आमाशय को साफ कर टैनिक एसिड की योजना करते है। यदि सरसो के तैल के साथ यह विष लिया गया हो तो आमाशय को उक्त क्रिया द्वारा धोकर ही आगे की योजना करें। यदि कुछ न मिले तो दही बार बार पिलावें। पश्चात् चन्द्रोदय, कस्तूरी आदि हृदयोत्तेजक औषध दव। ताजा खजूर खिलाना विशेष लाभकारी है ध्यान रहे बागो मे लगाये गये कनेर वृक्ष की अपेक्षा स्वयमेव पैदा हुए वृक्षो मे अधिक तीव्र विष होता है। तथा पत्ते, छाल और फूल की अपेक्षा जड की छाल ही अधिक विषयुक्त होती है। किन्तु इसके पत्ते, पिंड की छाल या फूलो से जो अर्क खीचा जाता है, उसमे भी विष की उग्रता अत्यधिक होती है।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग (श्वेत कनेर)—

(१) कुष्ठ, पामा (उकवत, छाजन) आदि चर्म रोगो पर—चरक ने कुष्ठ (महाकुष्ठ) नाशक, स्नानार्थ आठ कषाय योगो मे श्वेत कनेर मूल के कषाय का निर्देश किया है, अर्थात् कुष्ठ रोगी को कनेर मूल त्वक से साधित जल व्यवहार स्नान और पान के लिये करना हितकर है। —च चि अ ७

अथवा—जल मे कनेर के पत्तो को उबाल कर उसी जल से कुष्ठ रोगी को स्नान कराना तथा उसके वला-

वल को देखकर उसी जल को अच्छी तरह छान कर पीने के लिये देना विशेष निरापद उपाय है। भोजन मे चना की रोटी घृत के साथ देना चाहिए। इस प्रकार लगभग ३ माह प्रयोग करने से रोग निकल जाता है। साथ ही साथ श्वेत करवीराद्य तैल का अभ्यङ्ग (देखें सिद्ध साधित प्रयोग नं० १) कराना चाहिए।

पामा (छाजन, एग्जिमा) पर कनेर के पचांग और कल्क से तैल सिद्ध कर लगाने से पामा, शुष्क खुजली, उकवत आदि चर्मरोग दूर हो जाते हैं। साधारण त्वचा के रोग तो इसकी मूल को गोमूत्र मे पीस कर लगाते रहने से ही नष्ट हो जाते हैं। पामा या खुजली पर निम्न तैल भी उत्तम लाभकारी है।

(२) कटिशूल, पक्षाघात आदि वात व्याधियो पर—श्वेत कनेर के पत्ते या फूलों को पानी मे मिला आग पर पकावें। आधा पानी शेष रहने पर अच्छी तरह मथकर छान लेवें। पश्चात् इस छने हुए क्वाथ मे चतुर्थांश जैतून का तैल और तैल का चौथाई गोद मिला कर पकावें। जलीय अंश जल जाने पर छान कर रखलें। इनकी मालिश से पीठ व कमर की पीड़ा पर विशेष लाभ होता है। पुरानी पीडा पर विशेष लाभ होता है। पुरानी पीड़ा दूर होती है। इस तैल से सूखी और गीली दोनो प्रकार की खुजली भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। अथवा नीचे सिद्ध साधित प्रयोगो मे दिये हुए नं. १ और नं २ के प्रयोग उत्तम लाभदायक हैं।

पक्षाघात (लकवा)—विशेषत नवीन पक्षाघात पर श्वेत कनेर की जड की छाल, काले धतूरे के पत्ते और श्वेत गुजा (चिरमिटी) की गिरी (छाल और पत्ते समभाग तथा गिरी अर्ध भाग) सबको पानी मे पीस कल्क करें। कल्क का ४ भाग सरसों तैल और १६ भाग पानी मिला धीमी आच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लेवें। इस तैल की मालिश से कुछ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(३) सिर दर्द पर—श्वेत कनेर की सूखी जड को पत्थर पर थोडे जल के साथ घिसकर लेप करने से अथवा इस जड के महीन चूर्ण को पीडित स्थान पर मर्दन करने से, अथवा इसके फूलो का महीन चूर्ण १ या २ चावल भर जिस ओर दर्द हो उस ओर का नासिका छिद्र से सु घाने मात्र से छीकें आकर अन्दर का दूषित विकार नासिका द्वारा स्रवित हो जाता है तथा दर्द मिट जाता है।

(४) अश्मरी, शर्करा आदि मूत्र के विकारो पर—इसकी क्षार मात्रा १ से ४ रत्ती तक प्रतिदिन प्रात सायं मलाई या मक्खन के साथ अथवा भेडी के मूत्र के साथ पिलाने मे तथा रोगी को दूध और घृत का पर्याप्त सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

क्षार विधि—इसके जड की छाल को अच्छी तरह सुखाकर मिट्टी के पात्र मे रख चारो ओर से कपड़मिट्टी कर जङ्गली उपलो की आच मे रख दें। पश्चात् आग के शान्त हो जाने पर पात्र के अन्दर से काले रङ्ग की क्षार युक्त भस्म निकाल कर सुरक्षित रक्खें।

(५) वाजीकरण, स्तम्भक एव नपु सकतानाशक प्रयोग—वाजीकरण और स्तम्भनार्थ नीचे सिद्ध प्रयोगो मे ताम्र भस्म और कामेश्वर वटी का प्रयोग देखिए।

नपु सकता के लिये—श्वेत कनेर की परिपक्व फली के भीतर से निकले हुए बीजो का महीन चूर्ण कर रखें। प्रथम दिन १ रत्ती की मात्रा मे मक्खन के साथ, दूसरे दिन १॥ रत्ती, तीसरे दिन २ रत्ती, इस प्रकार आधी-आधी रत्ती बढाते हुए ७ दिन सेवन करावें। यदि रूक्षता प्रतीत हो तो गोदुग्ध पान करावें। खट्टी तथा वातकारी आहार से परहेज करें। नपु सकता दूर हो जावेगी।

—आ वि. कोष से

नपु सकतानाशक तिला—श्वेत कनेर की जड़, जायफल, अफीम, छोटी इलायची और सेमल की छाल समभाग चूर्ण करें। चूर्ण से दूना जल और १६ गुना तैल मिला आठ दिन तक रहने देवें। फिर गरम कर छान लें। मूत्रेन्द्रिय का नीचे का भाग छोडकर धीरे धीरे मालिश करते रहने से ३ दिन में जाग्रति आ जाती है।

—गांवा म आषाधरत्न

(६) नेत्राभिष्यन्द पर—इसके कोमल पत्तो को तोड़ने पर जो रस निकलता है उसका अजन करने से अथवा इसके पत्तो को पीसकर और निचोड कर जो रस निकले उसे आखो में डालने से, अथवा पत्तो को पीसकर

लेप करने से आखो का उठना, अश्रुस्राव, दाह, मल आदि दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं।

(७) विषम ज्वर पर—जड की छाल का चूर्ण मात्रा आधी रत्ती दिन मे २-३ बार सुखोष्ण जल के साथ देने से पारी से आने वाला ज्वर रुक जाता है। चढे ज्वर को पसीना लाकर उतार देता है। कहा जाता है कि इसके मूल का टुकडा रविवार के दिन लाकर हाथ या गले मे बांधने से भी ज्वर रुक जाता है।

(८) पलित्य पर—यदि योग्य अवस्था के पूर्व ही बाल श्वेत हो रहे हो तो किसी प्रकार उन सफेद बालो को उखाडकर कनेर की जड को दूध मे पीसकर उन बालो की जड मे लेप लगाते रहने से बाल पकते नही, श्वेत नही निकलते। छोटी दूधी (दुग्धिका) का भी इसी प्रकार प्रयोग किया जाता है। दुग्धिका और कनेर दोनो पलित (Hoariness) नाशक हैं। —च चि ग २६

(९) अर्श पर—इसकी जड के कल्क को पानी मे घोलकर बवासीर के मस्सो को धोकर उसी का लेप करें तथा आधी रत्ती की मात्रा मे प्रतिदिन रात मे जल के साथ सेवन करें।

(१०) सर्प, विच्छू, विषखपरा तथा श्वान विष पर—श्वेत कनेर की जड पानी मे घिसकर दशित स्थान पर बारम्बार लेप करते हैं। (विशेषत फुरसा सर्प के दश पर इसका प्रलेप गुणकारी होता है) तथा इसकी जड की छाल १-२ रत्ती की मात्रा मे थोडे थोडे अन्तर से देते हैं। इसकी मात्रा अधिक से अधिक ३ से ६ माशे तक इस अवसर पर दी जाती है जिससे वमन और कुछ विरेचन होकर विप निकल जाता है। ऐसे अवसर पर निम्न नस्य भी दिया जाता है। श्वेत कनेर का सुखाया हुआ फूल और तमाखू की पत्ती समभाग लेकर थोडी छोटी इलायची मिला कूट पीस कर महीन चूर्ण बना रोगी को बार बार नस्य देते है। सर्प या विषखपरा दष्ट रोगी को श्वेत कनेर की जड के स्थान पर इसके पत्तो को पीस कर रस निचोड कर भी बार बार पिलाया जाता है। यदि इन प्रयोगो से रोगी को व्याकुलता हो, ग्लानि मालूम हो तो घृत पिलाते हैं।

श्वान विष पर—श्री धीरेन्द्रमोहन भट्ट जी ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य (विहार) का प्रयोग—कनेर के मूल को आधी रत्ती से १ रत्ती तक गोदुग्ध मे पीस लगातार ३ से ५ दिनों तक पिलाने से शरीर से श्वान विष समाप्त होता है। मुझे पीत कनेर ही अधिक प्राप्त होने से मैंने इसी का प्रयोग किया है। मुझे विश्वास है कि श्वेत या रक्त कनेर का प्रयोग भी लाभकर होगा।

(११) बच्चो के जुकाम पर—प. ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य अमृतधारा भवन, देहरादून से लिखते हैं कि सफेद फूल वाली कनेर के फूलो को एकत्र कर छाया मे शुष्क कर महीन चूर्ण कर लेवें। यह छोटे बच्चो के लिये नसवार है। जब नन्हे को जुकाम हो, नाक बन्द हो तो इसमे से १ चावल भर नसवार उसके नाक मे रखकर फूक दें। उसका मुख जरा ऊपर कर दें। छींक आयेगी, नाक खुल जायेगी, जुकाम दूर होगा। कई बूढी स्त्रियां तो बच्चो को हर पन्द्रहवें दिन वैसे ही एक बार यह नसवार दे देती हैं जिससे बच्चा स्वस्थ रहता है।

(१३) यदि दात हिलते हो तो श्वेत कनेर की दातौन करते रहने से दात की जडें दृढ हो जाती हैं तथा कीडे नही लगते।

(१४) अपस्मार के विषय मे कहा जाता है कि श्वेत कनेर के पत्तो के महीन चूर्ण का नस्य (नसवार) ६ मास पर्यन्त करते रहने से जीर्ण अपस्मार दूर हो जाता है।

श्वेत कनेर के सिद्ध साधित प्रयोग—

१—करवाराद्य तैल न १—तिल तैल (दक्षिण मे तिल तैल तथा भारत के उत्तर मे सरसो का तैल लेते है) ४ सेर, श्वेत कनेर की मूल का क्वाथ ८ सेर, गोमूत्र ८ सेर, चित्रक मूल और वायविडङ्ग आधा-आधा सेर का कल्क एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लें। इस तैल की मालिश या लेप से सर्व प्रकार के कुष्ठ, पामादि चर्म विकार दूर होते है। —चरक

तैल न २—श्वेत कनेर मूल और वत्सनाभ इन दोनो के (१-१ पाव) कल्क के साथ गोमूत्र ४ सेर तथा तिल या सरसो का तैल २ सेर मिला कर तैल सिद्ध कर लें। इसके लगाने से चर्मदल (चर्म का मोटा पड जाना), कुष्ठ, सिध्म, खाज, फफोले, क्रिमि और किटिभ कुष्ठ

Psoriasis) नष्ट होते है। —चक्रदत्त

उक्त तैल न १ की विधि प जगन्नाथप्रसाद शुक्ल राजवैद्य के अनुसार इस प्रकार है—श्वेत कनेर की जड १ पाव सिल पर पीस उसमे १ सेर पानी मिलावे और १ सेर तिल तैल कडाई मे चढा इसे डाले। फिर १ पाव कनेर की जड को ४ सेर पानी मे पकावे, जब १ सेर रहे तब उसे भी छानकर उसी तैल मे डालकर पकाते हुए तैल मे १ सेर गोमूत्र, आधा पाव वायविडङ्ग एव आध पाव चित्रक भी कूट-पीस कर १ सेर पानी मे घोल उसी मे डाल दें। सिद्ध होने पर छानकर रक्खें। इसके लगाने से सम्पूर्ण चर्मरोग-दाद, खाज, पामा आदि अच्छे होते हैं। —अगदतन्त्र

तैल नं ३—श्वेत कनेर के पत्ते ३ सेर, छोटे छोटे टुकडे कतर कर पानी से भरे एक वडे पात्र मे डालकर आग पर धीरे धीरे तीन पहर (८-९ घण्टे) तक पकावें। फिर नीचे उतार कर उसे ठण्डे पानी से भरे पात्र मे डाल दें। जब पत्तिया नीचे बैठ जाय और तैलाश ऊपर उतरा आवे तब उस तैल को धीरे से हाथ से लेकर कटोरे के किनारे मे सग्रहीत करें। फिर उस तैल मे सफेदा ७ माशा, रस कपूर ६ माशा, मुरदाशङ्ख ४॥ माशा तथा नीलाथोथा और फिटकरी ३॥-३॥ माशा इन सबको पीसकर मिलाले। इस तैल के लगाने से खुजली, चर्मदल कुष्ठ आदि दूर होते हैं। (यूनानी प्रयोग आ वि कोष से)

२—ताम्रभस्म—१ तोला को (तावे का बुरादा) आग मे गरम करके १०० वार इसकी जड के ताजे काढे मे बुझा लें। फिर श्वेत कनेर के फूल १ सेर पीसकर कल्क करें और उक्त तावे को कल्क के भीतर रख ऊपर से कपडमिट्टी करें। पश्चात् उस गोले को निर्वात स्थान मे एक मन उपलो की आग देवें। अत्यन्त श्वेत वर्ण की भस्म प्रस्तुत होगी। यह भस्म वाजीकरण एव स्तम्भनार्थ अनुपम है। चावल भर की मात्रा मे मक्खन या वताशा मे रखकर सेवन करें और ऊपर से दूध में गोघृत मिला पान करें। —आ वि. कोष

३—कामेश्वर वटी—श्वेत कनेर की जड का रस लेकर उससे पारद को तब तक घोटें जब तक उसकी नष्ट पिष्टी हो जाय। फिर इसकी गोली वना काले साप के पेट मे भर जलौकावन्ध कर लवण यन्त्र मे चार प्रहर की आच दें। स्वाग शीत होने पर गोली निकाल रक्खें। उसे मुख मे रख या कमर मे बाधकर सम्भोग करने से यथेच्छ स्तम्भन होता है। इसे दूध मे डालकर उबालें और फिर गोली निकाल दूध को पीने से भी कामशक्ति बढती है। —अगदतन्त्र

लाल कनेर के प्रयोग—

उक्त प्रयोगो मे श्वेत के अभाव मे लाल कनेर का प्रयोग किया जा सकता है। विशेष प्रयोग इस प्रकार हैं—

(१) विसर्प पर—इसके फूल और चावल समभाग लेकर रात मे ठडे जल मे भिगो पात्र को खुला रख ओस मे रख छोडें। दूसरे दिन प्रात दोनो को पीसकर लेप करें।

(२) दाद पर—इसके पत्तो को द्राक्षा के या गन्ने के सिरके या एसेटिक एसिड मे पीसकर लेप करने से दाद जड से दूर हो जाता है।

(३) उपदश पर—इसकी जड की छाल को जल मे (कोई कोई गोमूत्र लेते हैं) पीसकर लेप करते रहने से वेदना कम होकर सूजन उतर जाती है, तथा घाव भर जाता है। धोने के लिये इसके पत्तो का क्वाथ लेने से शीघ्र लाभ होता है। अन्य दूषित व्रणो को धोने के लिये भी इसी क्वाथ का उपयोग लाभकारी होता है।

(४) व्रण शोथ पर—यदि व्रणशोथ कच्ची हो तो इसके मूल-त्वक के उक्त लेप से दब जाती है, अन्यथा पक कर फूट जाती है। इस कार्य के लिये प्राय श्वेत कनेर की मूल ही ली जाती है। किंतु अभाव मे लाल कनेर से भी काम सिद्ध हो जाता है।

कनेर पीली (Thevetia Nerifolia)

पीले कनेर का उल्लेख, चरक, सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थो मे नही मिलता। मध्यकालीन निघण्टुकारो मे से केवल काशीराज ने ही अपने राजनिघण्टु मे इसका सक्षिप्त उल्लेख किया है। कहा जाता है कि यह अमे-

रिका से भारत मे आया है। अब तो भारत मे प्राय सर्वत्र ही यह पाया जाता है। उष्ण प्रदेशो मे यह अधिक होता है। पुष्पो के लिये तथा शोभा के लिये यह बगीचो मे लगाया जाता है।

इसका सघन, सुपल्लवित, सुन्दर, सदैव हरा भरा पेड लगभग १२ फीट तक ऊचा, पत्ते अन्य कनेरो के पत्र के पत्र जैसे ही किंतु उनसे पतले छोटे और अधिक चमकीले होते है। फूल—पीले, घटाकार, पाच दल वाले मीठी सुगन्धयुक्त शाखाओ के अग्र भाग पर लगते है। फल-फूलो के झडजाने पर इसमे फल गोलाकार, मासल त्वचायुक्त कच्ची अवस्था मे हलके हरे रग के तथा पकने पर भूरे रग के १॥ से २ इञ्च व्यास के होते हैं। फल के भीतर एक त्रिकोणाकृति गुठली होती है। यह गुठली भूरे रग की कडी चिकनी होने से बालक उसे गुल्लू कहते हैं और इससे खेला करते है। इस गुठली के अन्दर हलके पीले रग के चिपटे दो बीज महाविषैले होते हैं। बालकगण खेल-खेल मे कभी कभी गुठली को फोड कर इन बीजो को खा लेते हैं, उनका कोमल शरीर शीघ्र ही निष्क्रिय एव निश्चेष्ट हो जाता है। आखें पिचक जाती हैं और शीघ्र प्रतिकार न किया जाय तो मृत्युवश हो जाते है।

इस पेड के प्रत्येक भाग से तोडने पर एक प्रकार का दूध निकलता है जो जहरीला है।

पीले कनेर की ही एक जाति और होती है, जिसके पेड आकार प्रकार मे पीत कनेर के पेड जैसे ही होते हैं। किंतु फूल कुछ टेढे झुके हुए से कुछ चिपटे से होते है। लेटिन मे नेरियम सीडियम (Nerium Psidium) कहते है। गुण धर्म सबके एक समान हैं। सस्कृत मे इसे पीत करवीर, तथा हिन्दी और बगला मे हल्दी करवी कहते है।

नाम—

संस्कृत—पीतप्रसव, हयुपा, सुगन्धित कुसुम
हिन्दी—पीले फूल का कनेर, पीली कनहल
बगला—पीतकरबी, काल का फुलेर गाछ
मराठी—पीवला कण्हेर, शेराती, थिवटी
गुर्जर—पीला फुलनी, कनेर
अग्रेजी—दि एक्जाइल या येलो ओलिएन्डर
(The exile or yellow oleander)
लेटिन—थेवेटिया नेरिफोलिया, सेरबेरा थेवेटिया
(Cerbera Thevetia)

रासायनिक संगठन तथा गुणधर्म—

इसके बीजों में प्रतिशत [illegible] के प्रमाण में एक प्रकार का विषैला स्थिर तैल होता है, जिससे एक थिवेटिन (Thevetin) नामक [illegible] प्राप्त किया जाता है। [illegible] और भी जहरीले तत्त्व रहते हैं। इसके भागों में भी इस प्रकार के तत्त्व होते हैं।

इसका दूध [illegible] और विषैला होता है। छाल [illegible], [illegible], [illegible] विषघ्न [illegible] प्रतिबन्धक है। [illegible] होती है, औषधि कार्यार्थ इसे अत्यन्त [illegible] मात्रा में दी जाती है अन्यथा [illegible] पतले दस्त और वमन होने लगते हैं। इसके फल से वमन बहुत होते हैं। इस कनेर का पुष्प विषैला परिणाम
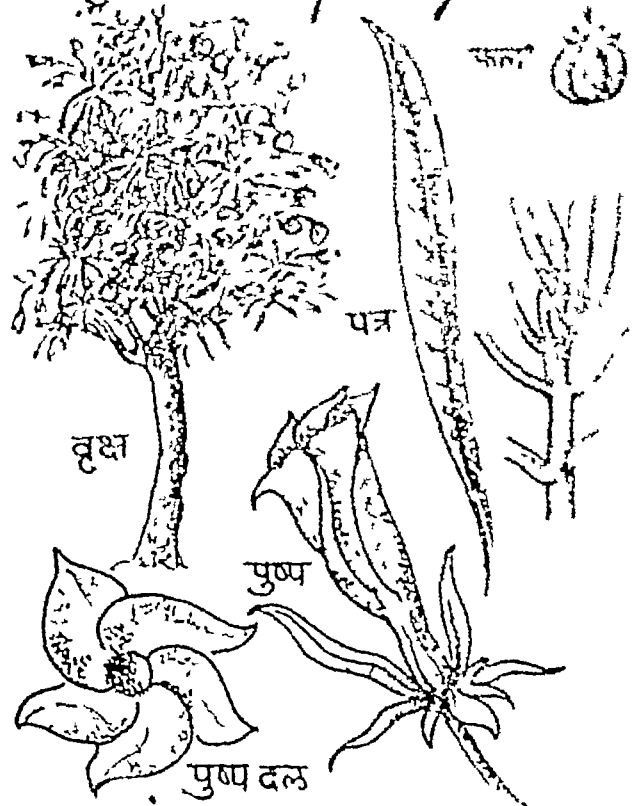
हृदय की मासपेशियो पर होता है। तीव्र विषैला होने के कारण ही यह औषधि प्रयोग मे प्राय नही लिया जाता है। इसके बीज आत्महत्या, परहत्या तथा गर्भपात आदि निषिद्ध कामों मे प्रयोजित होते हैं। इसकी छाल (छाल का टिंक्चर, घनसत्व) का व्यवहार औषधि कार्य मे होता है। इसकी कोमल टहनियो की छाल को खुली हवा में सुखाकर काम मे लाना चाहिए। यह सुखाकर रखी हुई छाल कुछ महीनो मे बेकार हो जाती है। इसीलिये इसका टिंक्चर या घनसत्व बनाकर रखते हैं। टिंक्चर की मात्रा १० से १५ बूद और घनसत्व की मात्रा ½ रत्ती दी जाती है।

इसके विष की क्रिया मे वमन विरेचन के साथ ही साथ मुख मे दाह, जिह्वा मे झनझनाहट, आख की पुतलियो का उलट जाना, श्वासोच्छ्वास मे उत्तेजना, नाड़ी क्षीणता, हृदयावसाद, कभी कभी धनुर्वात की भाति आक्षेप आदि लक्षण होते हैं।

घातक मात्रा—बालको के लिये इसका १ बीज तथा युवा पुरुषो के लिये ६ से १० बीज घातक होते हैं। इसकी जड़ की छाल १॥ तोला तक घातक होती है।

विष प्रतिकारार्थ—जो उपाय ऊपर श्वेत कनेर के प्रसग मे कहे गये हैं उन्हे ही यहा करना चाहिए।

विशेष गुणधर्म और प्रयोग

एक रत्ती इसकी छाल का चूर्ण सिकोना की मामूली मात्रा लगभग १५ रत्ती तक के बराबर गुणकारक होता है, तथापि इसका प्रयोग बडी सावधानी से करना चाहिए। विषम ज्वर या पारी से आने वाले ज्वर मे इसकी छाल का अर्क या टिंक्चर १०-१५ बूंद की मात्रा मे दिन मे २ या ३ बार देते हैं। अथवा अर्ध रत्ती इसके घन क्वाथ को थोडे से पानी मे घोलकर पिलाते हैं। ज्वर की पारी नही आने पाती। इससे बहुत पसीना आता है। यदि थकावट हो और शरीर ठण्डा पड जाय तो थोड़ी अच्छी मदिरा एव उष्ण दुग्ध पिलाते है। ध्यान रहे इसका प्रयोग खाली पेट कदापि नही करना चाहिए। अन्यथा अत्यधिक प्रस्वेद होकर शरीर ठण्डा पड जाने की सम्भावना है।

हृद्विकारजन्य जलोदर तथा हृदयावसाद आदि रोगो पर इसके प्रयोग से हृदय की मज्जातन्तुओ पर तथा रक्त क्रिया प्रणाली पर प्रभावशाली असर होकर हृदय को बल प्राप्त होता है। रुधिराभिसरण क्रिया ठीक होने लगती है। तथा वृक्को मे रक्ताभिसरण अधिक एव मूत्रोत्सर्ग अधिक प्रमाण मे होकर उदर कम हो जाता है। इसका यह प्रभाव श्वेत कनेर या डिजिटेलिस की जाति के द्रव्यो के समान ही होता है।

नोट—जल कनेर के विषय मे देखिये 'दादमारीनं, २'

कनैकुडिया (कनकोडर)

इसके पेड़ २० से ४० फीट तक ऊचे, शाखायें काले रङ्ग की, पत्ते कमरख के पत्र जैसे २-३ इञ्च लम्बे तथा १-१॥ अगुल तक चौडे होते हैं। फूल—बौंडी के अन्दर छोटे छोटे श्वेत वर्ण के मौलसरी के पुष्प जैसे ही सुगन्धित होते हैं। फल—कटेरी (भटकटैया) के फल जैसे गोलाकार, कच्ची अवस्था मे हरे, कुछ पकने पर पीले तथा परिपक्व होने पर सूखकर काले हो जाते हैं। बीज शरीफे (सीताफल) के बीज जैसे काले रङ्ग के कुछ टेढे टेढे होते हैं। इसके पेड मे अङ्कोल वृक्ष के सदृश काटे सीधे लम्बे कोई कोई टेढे भी होते हैं। छोटे पेड़ मे ये काटे अधिक होते हैं।

इसके पेड़ भारतवर्ष मे वनो और बगीचो मे भी पाये जाते हैं। निघण्टुओ मे इसका वर्णन नही मिलता। उत्तर प्रदेश मे विशेषत अवध प्रान्त मे इसे कनैकुडिया, कनकुडिया, कनकोहर आदि कहते हैं। कविराज विश्वनाथप्रसाद भिषगाचार्य लखनऊ के एक लेख* के आधार पर हम यहां इसका वर्णन दे रहे हैं। लेटिन या अंग्रेजी मे इसके नाम का पता हमे नही लगा।

* देखो धन्वन्तरि भाग २६ अङ्क ८

सर्व प्रकार के व्रण, दन्त विकार, वात पीडा, कास, श्वास, शीतपित्त आदि रोगो को नष्ट करता है।

(१) व्रग पर—इसकी ताजी छाल को पानी के साथ महीन पीसकर गरम कर टिकिया सी बना फोडे के स्थान पर बाधने से फोडा पक कर फूट जाता है।

कारवकल आदि दूषित व्रणो पर—इसका एक फल तथा १ तोला इसकी पत्ती दोनो को पीसकर टिकिया बना शीतोष्ण कर बाध देने से अन्दर की दूषित राध (पीब) निकल कर व्रण शुद्ध हो जाता है। पश्चात् निम्न मलहर (मलहम) लगाना लाभप्रद है।

इसके पक्व फल ५ तोला को एक पाव अलसी के तैल मे पकावें। पकते पकते जब फल काले हो जाय तब लोढा या खरल की मूसली से खूब घोटकर उसमें १ तोला अच्छा मोम मिलावें। मोम का एकदिल हो जाने पर नीचे उतार कर सुरक्षित रक्खें। इस मलहम के लगाने से चाहे जैसा विकृत व्रण हो अवश्य ठीक हो जाता है।

(२) कास श्वास पर—इसके शुष्क फलो का क्षार बनाकर १ रत्ती की मात्रा मे पान मे खाने से कास श्वास, बालको की उत्कट वात कास (कुकर कास) भी दूर होती है। छोटे बालको को पान का बीडा बना उसे कूट रस निचोड कर उसमे इसकी मात्रा देनी चाहिये।

(३) वात पीडा शमनार्थ—इसकी छाल १ सेर को ४ सेर पानी मे पकावें। लगभग आधा जल शेष रहने पर इसका बफारा देने से वायु पीडा दूर होती है। शोथ पर इसकी छाल का लेप किया जाता है।

(४) अत्युत्कट शीत पित्त पर—इसकी ताजी पत्ती १ सेर को ८ सेर पानी मे पका दो सेर शेष रहने पर उसी जल से रोगी को स्नान करावे। ३-४ दिन इसी प्रकार स्नान कराने से ही असाध्य शीतपित शात होता है।

(५) कनकोहर आसव—इसके पक्व फल ५ सेर जल ६४ सेर मे मिला पकावें। १६ सेर शेप रहने पर उसमे १० सेर गुड (पुराना) और शहद १ सेर मिला आसव विधि से आसव बना ले। लेखक ने इसका नाम कनकागुदी आसव रक्खा है। मात्रा—६ माशा से १ तो. तक, भोजनोपरात १ तोला जल मिलाकर पिलावें। इससे कास, श्वास, बालको की कुकर खासी, वायु विकार, कृमि, वातरक्त, चर्मरोग प्रभृति मे उत्तम लाभ होता है। क्षय कास मे भी यह लाभदायक है।

(६) दत पीडा पर—पत्तो के क्वाथ से कुल्ली करने से पीडा दूर होती है, मसूडो की सूजन, रक्तस्राव भी दूर होता है। इसकी ताजी लकडी से दातुन करने से दात की वादी एव दत विकार दूर होते हैं।

कनौचा (*PHYLLANTHNS MADERASPATENSIS*)

यह अपने स्नुह्यादि या एरण्डादि वर्ग (Euphorbiaceae) की वनौषधियो मे सबसे अधिक लुआबदार है। इसके बीज जो नोचा के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। उनका लुआब ही प्राय औषधिकर्म मे प्रयुक्त होता है। कनोचा के असली बीज तो प्राय इधर नही प्राप्त होते। पजाव की ओर जो कनौचा नामक बीज मिलते है। उनके विषयो मे कहा जाता हैं कि वे तुलस्यादि वर्ग की मलन्हिया स्पिनोसा (Salvia Spinosa) नामक वनौषधि के बीज हैं जो रूप रग तथा गुणधर्म मे असली कनौचा जैसे ही होते हैं। पानी मे घोलकर इन बीजो का लुआब ही सुजाक, मूत्रकृच्छ्र आदि मूत्रप्रणाली के रोगो मे सफलतापूर्वक व्यवहृत होता है। औषधि कर्म मे प्राय बीज ही लिये जाते हैं।

आयुर्वेदीय निघण्टुओ मे इसका कुछ भी उल्लेख नही मिलता।

इसके पौधे रेंडी के पौधे जैसे किन्तु कुछ मोटे होते हैं। इसके काड प्रकाण्ड सब चिपचिपे, लुआबदार होते हैं। पत्ते फैले हुए, गोल, मुलायम होते हैं। फलिया गोल, लम्बी किन्तु कुछ दबी हुई होती हैं। बीज अलसी के बीज जैसे ⅙ इञ्च तक लम्बे तथा उतने ही चौडे भूरे या बादामी रग के तिकोनाकार, चिकने एव ऊपर

से बादामी रंग के जालीनुमा रेखाओ से चित्रित होते हैं। बीज का छिलका कडा किन्तु शीघ्र ही टूटने वाला होता है। बीजो की अन्दर की गिरी स्नेहयुक्त और मधुर होती है। बीज को जल मे भिगोने से वह अत्यधिक लुआबदार होकर फूल जाता है।

नाम—

हि० पं०—कनोच,कनौंचा, हजरमनी
गुजराती—कनोछा। फारसी—तुख्मपर्व
लेटिन—फायलन्थस मडरास्पटेन्सिस, सलव्हिया स्पायनोसा (Salvia Spinosa)

यह पजाब, लका के शुष्क भाग तथा अफ्रीका, अरब, चीन, जावा और आस्ट्रेलिया के गरम स्थान मे अधिक पाया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके बीज आध्माननाशक, आश्वसकोचक, यकृत के लिये हितकरी, व्रणशोथपाचक, वातानुलोमन, मूत्रल, प्रस्वेदकारी, तथा सुजाक या मूत्रकृच्छ्र कर्णरोग, शूल आदि नाशक हैं। भुने हुये बीज सग्राही होते हैं। इसके पत्ते कफ निस्सारक, ज्वरनाशक तथा अश्मरी पर लाभकारी माने जाते हैं।

प्रयोग

(१) व्रणशोथ पर—कडे से कडे व्रणशोथ पर बीजो की पुल्टिस बनाकर लगाने से अथवा बीजो को पीसकर शहद मे मिला लगाने से लाभ होता है।

(२) शीतपित्त पर—बीज के लुआब को चमेली तैल के साथ बासी मु ह थोडा पिलाते हैं।

(३) रक्तातिसार और प्रवाहिका पर—बीजो को भूनकर चूर्ण कर चूका बीज का चूर्ण मिला मात्रा ५ से ७ माशे तक दही के साथ देते है।

(४) कर्णशूल पर—बीजो का लुआब स्त्री के दूध मे मिला कान मे डालने से सिर दर्द दूर होता हैं।

(५) मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर—बीजो को पानी मे भिगोने से जो लुआब होता है उसे और भी पतला कर तथा उसमे थोडा गोदुग्ध मिला रोगी को बार-बार पिलाने से लाभ होता है।

नोट—उक्त बीजों के अभाव में तुख्मरीहां (अजगंधा अर्थात् जंगली तुलसी जिसे वावई या मब्जा तुलसी भी कहते हैं, इसके बीज) लिये जाते हैं। कनोचा बीजों के सूंघने या नस्य से जो सिर दर्द होता है, उसके निवारणार्थ बादाम तैल और चूका के बीजों का उपयोग होता है।

कन्टकालु (*DIOSCOREA PENTAPHYLLA*)

यह वराहकन्दादि वर्ग (Dioscoeraceae) की एक वनौषधि भारतवर्ष में देहरादून, बुन्देलखण्ड, दार्जिलिंग, तथा दक्षिण के प्रदेशो मे भी पाई जाती है।

इसके कन्द लम्बगोल होते हैं। ये कन्द ही औषधि कार्य मे लिये जाते हैं।

नाम—

हिन्दी—कंटालू, मूसा, गजरिया, चुनचुनीकन्द, बसेराकन्द, सिठी, देबर। बंगला—सूरआलु, कूकर आलु, लेटिन में—डायोस्कोरिया-पेन्टाफिला कहते हैं।

गुण धर्म—

यह शोथनाशक है शोथ या सूजन पर इसके कन्द को पीस कर लगाते हैं।

कन्तगुरमई [Azima Tetracantha]

यह पिल्वादि वर्ग (Salvadoraceae) की एक विशेष वनौषधि है। यह गुल्म जाति की औषधि अनेक शाखाओ से युक्त हरी-भरी एव कटकपूर्ण होती है। पत्ते तीक्ष्ण नोक वाले, खुरदरे एव चमकीले होते हैं। शाखा के प्रत्येक काण्ड एव प्रकाण्डो मे २ या ३ पत्ते तथा पत्र डठल से सटे हुए लम्बे-लम्बे नुकीले १ से ३ तक काटे तथा १ या २ छोटे गोलाकार मुलायम, श्वेत वर्ण के फल होते हैं। फूल—श्वेत गुलाब के छोटे छोटे फूल जैसे होते

है। फूल मे—छोटे वडे ४ से ८ तक कटकयुक्त दल या पखुरिया होती हैं।

यह वनौषधि भारत के दक्षिण के कारोमण्डल किनारे पर और सीलोन मे अधिक पाई जाती है। इसका उल्लेख आयुर्वेदीय या यूनानी निघण्टुओ मे नहीं मिलता। सस्कृत मे किसी ने इसके कुण्डली और कन्तनगुर नाम रख दिये हैं। कण्टगुरकमई इसका दक्षिणी (दक्षिण के जिन स्थानो पर यह होता हैं वहा का स्थानीय) नाम है। इसी नाम से सस्कृत का कन्तन गुरु और हिन्दी का कन्त गुरमकई नाम हुआ है। वगला मे-त्रिकातजुटि (जिसमे ३ काटे एक साथ हो) और लेटिन मे एभ्भिमाटेट्राकेन्था कहते है।

गुणधर्म—

इसकी जड छाल और पत्ते उत्तेजक पुष्टिकारक, व्रण-पूरक, मूत्रल तथा कास, आमवात, रक्तातिसार तथा ज्वर नाशक हैं।

प्रयोग—

(१) जलोदर—जड की छाल का स्वरस लगभग ४ तोले तक की मात्रा मे वकरी का दूध १ पाव मिला कर पिलाने से उदर का दूषित विकार मूत्र के द्वारा निकल जाता है।

(२) जड की छाल और पत्तो का क्वाथ सिद्ध कर उसमे वच, अजवायन और नमक मिलाकर जीर्ण रक्तातिसार की अवस्था मे पिलाते है।

(३) चेचक या मसूरिका पर—चेचक निकल आने के पश्चात् इसके पत्तो को पीसकर लगाने से चेचक के व्रण शीघ्र दूर होजाते हैं।

(४) गर्भाशय शुद्धि और पुष्टि के लिये प्रसूता स्त्री को प्रसव के पश्चात् तुरन्त ही उसके पत्तो का काढा पिलाने से गर्भाशय की शुद्धि एव वल वृद्धि होती है।

(५) आमवात मे—इसके पत्तो का साग भोजन मे दिया जाता है।

(६) कास और ज्वर पर—इसके पत्तो का ताजा रस थोडा थोडा पिलाने से खासी मे लाभ होता है। शीत ज्वर पर इसकी छाल का क्वाथ देते है।

कंटगुरुकमई

Azima tetracantha Lam.
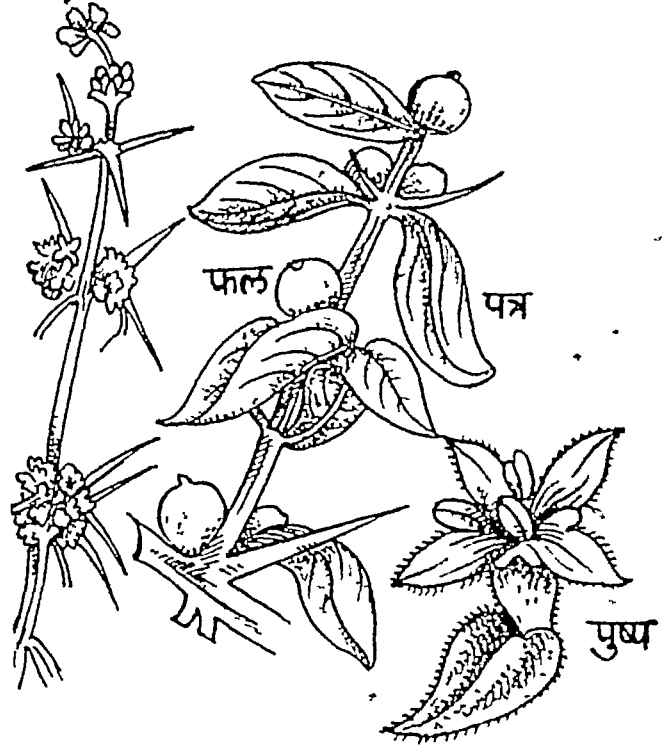
कन्थारि [Capparis Sepiaria]

वरुणादि वर्ग (Capparideae) की इस वनौषधि के विषय मे वहुत मतभेद है। यह मतभेद सस्कृत के 'काकादनी' नाम के कारण हुआ है। आयुर्वेद विज्ञानकार तथा डा देसाई ने कथारी को ही काकादनी कहा है (काकादनी—काकतुण्डी, गुजा, श्वेतगुंजा, कौआठोडी आदि को भी कहते हैं)।

राजनिघण्टु मे काकादनी गुडूच्यादिवर्ग मे तथा धन्वन्तरि निघण्टु मे यह करवीरादि वर्ग के अन्तर्गत कही गई है और कथारि को शाल्मल्यादि वर्ग मे पृथक कहा गया है। हिन्दी मे जिसे 'कवर' (यह भी वरुणादिवर्ग का है)

उसे भी सस्कृत मे 'काकादनी' कहा जाता है। 'कवर' का वर्णन आगे देखें। कोई कोई कबर और कन्थारि को भ्रमवश एक ही मानते हैं। किसी किसी ने भूल से नागफनी थूहर को ही कन्थारि मान लिया है।

कन्थारि की ३-४ जातिया भारतवर्ष के दक्षिण प्रदेशो मे विशेषत शुष्क स्थानो मे तथा सीलोन, मलाया इन्डोचीन, आस्ट्रेलिया आदि देशो मे पाई जाती हैं।

इसकी मोटी एव खूब लम्बी काष्ठमय वेलें खेतो की वाडो पर या ववूल, थूहर आदि की झाडियो पर फैली हुई होती हैं। शाखा प्रशाखाओ पर तीक्ष्ण अनीदार वक्र (टेढे) काटे छोटे पत्र वृन्तयुक्त, अर्थात् पत्र के डठल के नीचे ही उससे सटे हुए होते हैं। पत्ते-छोटे लम्बे गोलाकार एव कुछ सुकडे होते है। फूल सफेद रग के श्वेत केशर युक्त, छत्राकार गुच्छो मे वसन्त ऋतु मे आते हैं। फल गोल, मुलायम, छोटे करौंदे जैसे, ग्रीष्मऋतु मे लगते हैं। पकने पर ये काले पड जाते हैं। बीज-गोल वक्राकार ७ के अङ्क जैसे चिपटे होते हैं।

नाम–

सं.—कन्थारि, कन्थार, गृध्रनखी, वक्र-कण्टका, अहिंस्रा, काकादनी इत्यादि।
हि.—कथारि, कंधारी, हैसा।
म.—कांथारी, कंथाखेल।
बं.—कालियाकडा, कांटागुड़काभाई।
गु.—कालो कंथारो, कंथारो।
ले—क्यापेरिस सेपिएरिया।

गुणधर्म—

यह रस मे कुछ चरपरी, विपाक में कडवी, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, पौष्टिक, तथा शोथ, ग्रन्थि, स्नायुरोग, रुधिर विकार, त्वचा के रोग, प्रदाह, मासपेशियो की पीड़ा, ज्वर वात कफ नाशक है।

प्रयोग–

(१) विद्रधि, ग्रन्थि या प्लेग की गाठ पर—जड़ी की छाल को पीस कर पुल्टिस बना वाधते हैं। इसकी पुल्टिस वाधने से जलन तो खूव होती है, किंतु लाभ शीघ्र होता है।

(२) नेत्र शोथ पर—जड को थोडी अफीम के साथ पीस कर इसका प्रलेप आखो के पलको के ऊपर तथा आखो के नीचे के भाग पर लगाने से वेदना एव लालिमा सहित सूजन शीघ्र ही दूर हो जाती है।

(३) उदरशूल पर—इसकी छाल या जड़ का फाट (छाल या जड के चूर्ण से चौगुना पानी लेकर प्रथम पानी को पकावें, चतुर्थाश पानी जल जाने पर उसमें उक्त चूर्ण डालकर नीचे उतार ढक्कन से ढक दे। ठण्डा होने पर उसे मल छान कर) मात्रा—१ से ४ तोले तक, उसमे थोडी कालीमिर्च का चूर्ण मिला पिलाने से लाभ होता है।

(४) रक्त विकार एव त्वग्रोगो पर—इसकी जड की छाल या पत्तो का क्वाथ प्रात साय देते रहने से रक्त शुद्ध होकर त्वचा के रोग दूर होते है।

(५) आम ज्वर और सन्धिपीड़ा पर—जड की छाल के क्वाथ का पथ्यपूर्वक सेवन करने से आम का पाचन हो ज्वर शात हो जाता है।

सधि पीडा पर इसके पके फलो के गूदे का लेप करें।

(६) गोधेर नामक सर्प के दश पर—इसकी जड को पीसकर नस्य देते हैं। जड़ के रस को वार बार नाक मे टपकाते है।

कन्थारि
Capparis sepiaria Linn.
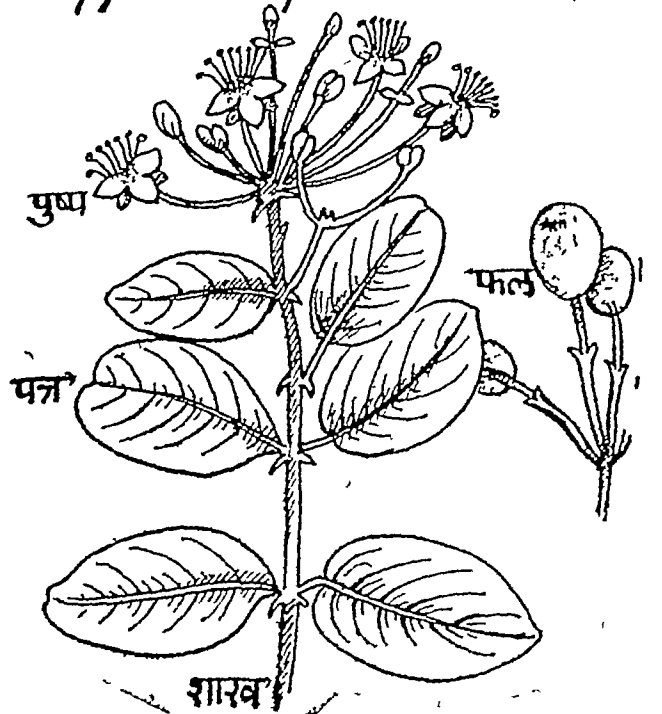
कन्दूरी [कन्दरू] (Coccinia Indica)

यह शाकवर्ग की वनौषधि कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र तथा वगाल और विहार मे अधिकता से पायी जाती है।

आयुर्वेद मे मूलनी और उर्ध्वभागहर व्रणों मे इसकी गणना है। यह कटु और मधुर दो प्रकार की होती है। कडुवी कन्दूरी की लताऐं प्राय जङ्गलो मे तथा घरो के आसपास कूडा कर्कट पर वर्षाकाल में होती हैं। इसका सर्वाङ्ग कडुवा होता है। औषधि कार्य मे इसीका विशेष उपयोग होता है। बिहार की ओर इसे तिरकोल तथा लेटिन मे सेफ़ालेंड्रा इण्डिका (Cephalandra Indica) कहते हैं।

मीठी कुदरू ग्राम्य होती है। प्राय वरई या तमोला लोग पान के भीटो पर परवल की वेल जैसे ही इसकी वेलें लगाते हैं।

जङ्गली कडुवी—कन्दूरी वेल की जड को वागो में या पान के भीटो पर वो देने से धीरे धीरे वह मीठे फल वाली हो जाया करती है। मीठी कन्दूरी के फलो का तथा कही कही इसके पत्तो का भी साग बनता है।

इसकी वहुशाखायुक्त वर्षायु लताऐं वर्षाकाल मे पैदा होकर जमीन पर चारो ओर तथा किसी वस्तु के सहारे ऊपर की ओर फैलने लगती हैं।

पत्ते—परबल के पत्ते जैसे विच्छेदयुक्त त्रिकोण या पचकोणाकार, दन्तुर, वृत्ताकार, १॥ से ३॥ इन्च लम्बे तथा लगभग २ से ४ इन्च व्यास के होते हैं।

पुष्प—श्वेत रग के २-४ के गुच्छे मे लगते हैं।

फल—स्निग्ध, मासल, वेलनाकार, परवल जैसे ही किन्तु उनसे कुछ छोटे १ से २ इन्च लम्बे तथा आधी से १ इन्च चौडे होते है। कच्ची अवस्था मे हरे रङ्ग के ऊपर श्वेत धारायुक्त, स्वाद मे फीके होते हैं। इसकी तरकारी वनाते हैं। पकने पर ये फल सुन्दर गुलावी लाल रङ्ग के हो जाते हैं। इनकी उपमा सुन्दर ओष्ठ (होठ) को 'विम्वोष्ठ' नाम से दी जाती है। फल मे अनेक वीज छोटे छोटे गोल होते है। फलो के पक जाने पर वेल सूख जाती है। फिर वर्षाकाल मे उसकी पुरानी जड से वेल उगती है। इसकी जड लम्बी, कुछ शङ्ख के आकार के कन्दयुक्त, स्वाद मे कसैली तथा कटु कुन्दरू की जड कडुवी होती है।

नाम—

संस्कृत—विम्बी, विम्बाफल, तुण्डी, तुण्डिकेरी, ओष्ठोपम फल, विम्बोष्ठ, पीलुपर्णी, तिक्ततुण्डी, कटुतुंडी
हिन्दी—कन्दूरी, कुन्दरु, कुनली, गुलकांख, तिरकोल, कडु कुन्दरू
मरेठी—तोंडली। वंगला—कुन्दरकी, तेलाकुचा
गुर्जर—घीलोड़ा, तीडोरी, टींडोरी, घोलो
लेटिन—कोसिनिया इण्डिका, को. कार्डिफोलिया (Coccinia Cordifolia), सेफालेन्ड्रा इण्डिका) Cepha-

landra Indica), मोमोर्डिका मोनोडेल्फा (Momordica Monodelpha), पिछले दो लेटिन नाम कडू कन्दूरी के हैं।
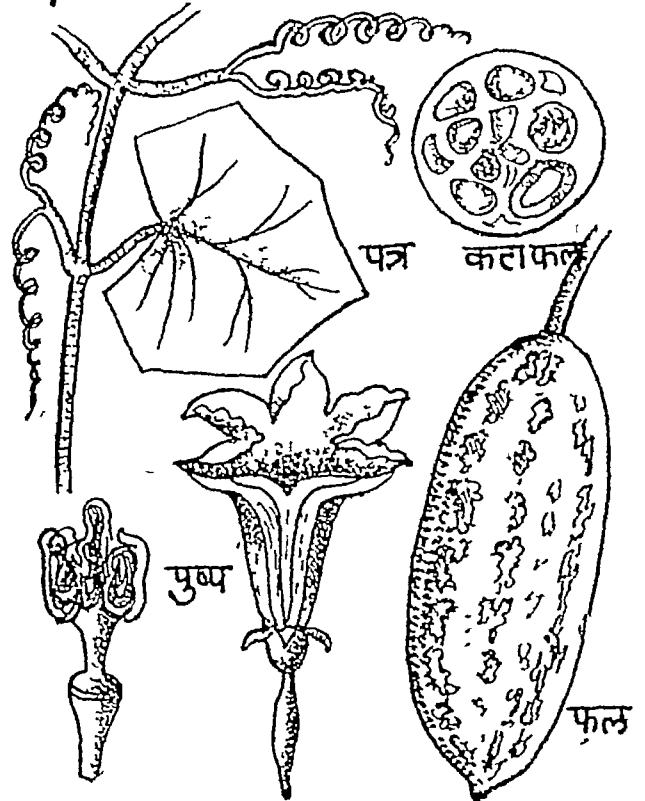
गुण धर्म—

मीठी कंदूरी—मधुर, शीतल, स्तम्भन, लेखन, गुरु, स्तन्य जनन, रक्तपित्त और दाहनाशक है। अधिक मात्रा मे खाने से आध्मानकारक, मलमूत्ररोधक है। यह बुद्धिनाशक भी मानी जाती है। अत विशेषकर वालको को इसका अधिक सेवन नही कराना चाहिए।

पत्र शाक-पत्तो की शाग शीतल, मधुर, लघु, मलरोधक, वातकारक तथा कफपित्तनाशक है। इसकी जड़ शीतल, प्रमेहनाशक, स्तम्भक, वातुवर्धक तथा हाथ पैरो की दाह, वान्ति और भ्रान्ति को दूर करती है।

इसके फल-कण्डू, पित्त और कामलानाशक है। पका फल क्षुधावर्धक, वातपित्त तथा कामलानाशक है।

कड़ुवी कंदूरी—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कसैली, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कटु पौष्टिक, रुचिकारक, वातप्रकोपक, दीपन, वामक, रेचक, यकृदुत्तेजक, रक्त-शोधक, शोथहर, कफपित्तहर (वमन द्वारा कफ को तथा रेचन द्वारा पित्त को बाहर निकालती है), मूत्र संग्रह-णीय, स्वेदजनक, ज्वरघ्न, कामला, रक्तपित्त, श्वास, कास, शोथ, पाण्डु और मधुमेहनाशक है।

इसके कच्चे फल वमनकारक एव कफनाशक है। पके फल शीतल, रस और पाक मे मधुर तथा पित्त-नाशक हैं।

इसकी जड़ का स्वरस उत्क्लेशकारक, वामक, तीव्र रेचक एव दाहकारक है। जड का ताजा रस बहुमूत्र, मधुमेह, ग्रन्थिशोथ, व्यग या झाई जैसे चर्मरोगो पर व्यवहृत होता है। मात्रा १ तोला तक दी जाती है। मधुमेह के लिये तो यह इन्सुलीन (Insulin) की प्रति-निधि मानी जाती है। किन्तु यह कुछ निश्चित तथ्य नही है। यदि इस रस के साथ वगेश्वर आदि औषधियो की योजना की जाय तो बहुताश मे लाभ होता है।

जड़ को काटने या छेदने मे जो चेंपदार रस निक-लता है वह सूखने पर लाल गोद जैसा हो जाता है। इसे गोद कन्दूरी कहते हैं। यह अति विबन्धकारक है।

इसकी जड़ कवर मूल (Caper root) के अभाव मे ली जा सकती है। जड की छाल का चूर्ण २ माशे की मात्रा मे सेवन करने से खुलकर रेचन होता है। इसके क्वाथ के सेवन से मूत्र मे पिच्छिल (चिपचिपा) पदार्थ का आना बन्द होता है। प्रदर पर जड का चूर्ण अल्प मात्रा मे देते हैं।

मात्रा—छाल का चूर्ण २ माशे तक। जड़ का स्वरस ४ माशे से लगभग २ तोला तक। शाखा और पत्र क्वाथ १। तोला से ५ तोला तक। टिंक्चर या आसव २ से ४ माशे तक।

पत्र या छाल का क्वाथ—कफ निस्सारक, आक्षेप-निवारक तथा वालको की खासी एव वायुप्रणालिका शोथ (ब्राकाइटिस) सम्बन्धी जुकाम पर लाभकारी है।

प्रयोग—

(१) शोथ, व्रण तथा त्वचा के विकारो पर—इसकी पत्तियो को गरम कर शोथ पर बाधते हैं। व्रणो पर अथवा त्वचा पर चेचक जैसे दाने निकलने पर पत्तो को पीस कर उसमे घृत मिलाकर लगाते हैं। दाद, विचर्चिका (एक क्षुद्र कुष्ठ, जिसमे अतिशय खाज और पीड़ायुक्त रूखी रेखायें उत्पन्न होती हैं) या कण्डू पर इसके पत्तो को तिल तैल मे पकाकर तैल सिद्ध कर लगाते हैं। यह तैल क्षत या नाडी व्रणो पर भी उपयोगी है। व्रणो पर पत्तो की पुल्टिस बाधने से वेदना दूर होती है और व्रण पककर फूट जाता है।

मुखपाक—अर्थात् मुख के अन्दर जिह्वा आदि पर छाले हो गये हों तो इसके फलो को चबाकर रस को कुछ समय तक मुख मे धारण करने से लाभ होता है।

(२) प्रमेह पर—विशेषकर इक्षुमेह (Alimentary glycosuria) मे पत्र स्वरस या मूल स्वरस, मात्रा १ तोला तक या चूर्ण ३ से ६ माशे की मात्रा मे देते है। ओजोमेह (Albuminuria) और पूयमेह (Pyuria) मे भी यह उपयोगी है।

मधुमेह या बहुमूत्र पर—इसकी जड का ताजा र १ तोला के साथ अथवा पत्र चूर्ण ४ से ६ माशे के स। वगेश्वर या सोमनाथ रस की १ गोली की योजना कु दिनो तक प्रात एक वार करे तथा रोगी को इसक

पत्र साग भोजन में देवें। लाभ होता है।

(३) गर्भावस्था मे स्त्री को रक्तस्राव होता हो तो इसके पचाग का स्वरस मिला दिन मे दो बार देते हैं।

(४) ज्वर मे प्रस्वेदार्थ--इसकी जड को इसके ही पत्रस्वरस मे पीसकर सर्वांग पर लेप कर ओढकर लेट जाने से पसीना छूट कर ज्वर उतर जाता है।

(५) कर्ण शूल पर--इसके पत्र रस को तैल और पानी मे मिला थोड़ा गरम कर डालने से लाभ होता है।

(६) प्रतिश्याय तथा कास श्वास पर—इसके पत्र और पत्र का क्वाथ देते है। या टिंक्चर देवें।

(७) सुजाक पर--इसका टिंक्चर देते हैं।

√कपास [Gossypium Herbaceum]

आयुर्वेद के गुडुच्यादि वर्ग तथा वृहणीय वात-सशमनीय गणो का एव आधुनिक मतानुसार अपने ही कार्पासकुल (Malvaceae) का यह एक मुख्य सर्वप्रसिद्ध पौधा है। भारतभूमि ही इसकी आदिजननी है। इसका प्रसार अन्य देशो मे भारत से ही हुआ ऐसी प्राय. सर्वसम्मत मान्यता है। जलवायु एव स्थान भेद से इस पौधे मे कई रूपान्तर होने से इसकी कई जातिया हो गई है। इसकी लगभग २४ जातियो का उल्लेख आधुनिक वनस्पति शास्त्रो मे पाया जाता है।

कपास की सब जातियो का अन्तर्भाव निम्न तीन प्रमुख भेदो मे हो जाता है—

(१) पहला भेद सर्वत्र प्रसिद्ध देशी-कृषि कपास का है, जो सर्वत्र खेतो मे बोई जाती है।

(२) दूसरा देशी कपास का भेद देव-कपास है। वन कपास और काली कपास इसके ही उपभेद है।

(३) तीसरा भेद विदेशी कपास का है। जिसमे ब्राजील कपास (Gossypium Acuminatum, Bragilian Cotton) जो आजकल बम्बई प्रान्त मे अधिक बोया जाता है। और अमेरिकन कपास (Gossypium Barbadense) जो सिन्ध, आसाम, और उत्तर प्रदेश मे भी बोया जाता है। इन दो प्रकार के कपासो की प्रधानता है।

सब प्रकार के कपास गुणधर्म की दृष्टि से प्राय एक समान ही होने से हम यहा विस्तारभय से विदेशी कपास के उक्त तीसरे भेद को छोड कर केवल देशी कपास के दो भेदो (कृषिकपास और देवकपास) का ही वर्णन करते हैं।

नोट--पीलीकपास (Cochlospermum Gossypium) नामक एक और भिन्न जाति का वृक्ष होता है, जिससे कतीरा नामक गोंद प्राप्त होता है। इसका वर्णन पीली कपास के प्रकरण मे देखिये।

लेटिन में—गासीपियम (Gossypium) कपास या रुई को कहते हैं।

(१) सर्वसाधारण कृपिकार्पास के पौधे ४-५ फीट तक ऊचे वर्षायु होते हैं। प्रतिवर्ष प्राय वर्षा के प्रारम्भ

होते ही खेतो में इसके बीज बोये जाते हैं। तथा कार्तिक से फाल्गुन या चैत तक रुई को संग्रह कर पौधो को काट डाला जाता है, अन्यथा वे आप ही सूख जाते हैं। पत्ते हाथ के पंजे जैसे किन्तु उनसे छोटे आकार के ३ से ७ कोन वाले होते हैं। फूल घंटाकार, पीले रंग तथा मध्य मे कुछ लाल या बैंगनी रंग के होते हैं। फल या डोडी तिकोनी लगते है। प्रत्येक डोडी के भीतर श्वेत रुई से लिपटे हुए ५-७ बीज होते हैं। जिन्हें बिनौले या सरकी कहते हैं। ये बीज किंचित् श्याम वर्ण के चने जैसे गोल होते हैं। बीज के भीतर श्वेत गिरि या मज्जा होती है। जिसमे एक प्रकार का तैल १० से २९ प्रतिशत तक होता है। जड़ ऊपर से पीताभ एवं भीतर से उज्वल श्वेतवर्ण की, तथा जड की छाल पतली, चमडी सी रेशेदार, स्वाद मे कुछ चरपरी कसैली होती है।

यह सर्वसाधारण कृषि कपास वैसे तो भारतवर्ष के प्राय. समस्त भागों में न्यूनाधिक प्रमाण मे होती है, बम्बई, गुजरात, बंगाल और मद्रास मे इसकी खेती अधिक प्रमाण मे होती है। भारत के अतिरिक्त मिश्र, अरब, चीन, मलाया, एशिया मायनर आदि उष्ण प्रदेशो मे इसकी उपजातियो की खेती प्रचुरता से होती है।
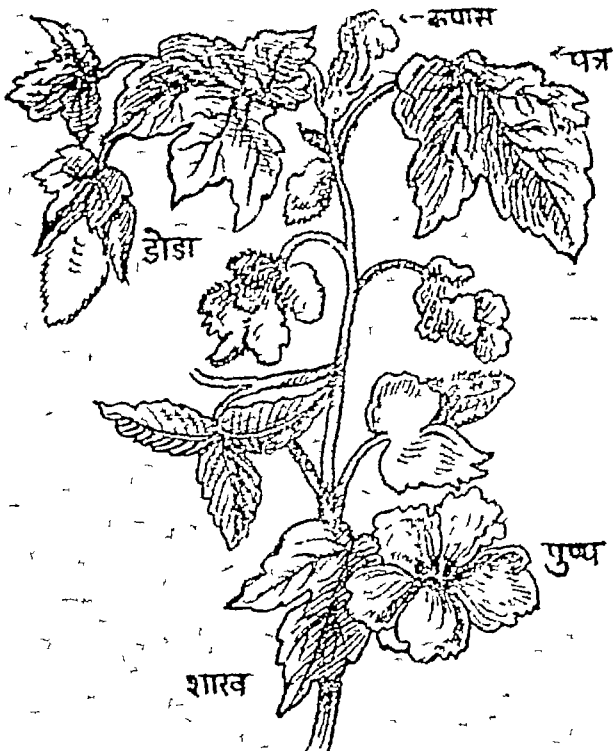
नाम—

सं०—कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता (समुद्रतटवर्ती प्रदेशो में अधिक होने से) बादर, गुणसू (सूत्रोत्पादक)
हि०—कपास, मनवां, रुई का पौधा,
पंजाबी—कर्पासगाछ, तुलागाछ, सूतरेगाछ
मराठी—कापसी, कापुस चें झाड
गुजराथी—रूणजाड, कापासनुझाड,
अंग्रेजी—इंडियन काटन प्लांट (Indian Cotton Plant)
लेटिन—गासिपीयम हरवेसियम, गासीपियम इंडिकम (Gossypium Indicum) G Neglectum, G obtusifolium) ये सिधी कपास, वराडी कपास, रोझी, जरी कपास के नाम है।

सर्व प्रकार के कपास के बीजों के नाम—

सं०—कार्पास बीज कीकस, कार्पासास्थि, तूलशर्करा
हिन्दी—बिनौला, बनौर, कुकटी, काकड़े, वेनठर
वं०—कपासेर बीज। गु०—रुनुबीज
मं०—सरकी, कापसीबी। अं०— Cotton Seeds

(२) देवकपास (Gossypium Arboreum) के पौधे बाग बगीचों मे, घरो के या देवालयो के प्राङ्गणो मे शोभा तथा रुई के लिये लगाये जाते हैं। ये पौधे, ऊचे तने वाले, लाल रंग के एवं झाड़ीदार (Arborens) ६ से १५ फीट तक ऊंचे होते हैं। फूल गहरे लाल रंग के तथा पत्ते और फल (बोडे) उक्त सर्वसाधारण कपास के जैसे ही किन्तु उनसे कुछ बडे होते है। ये पौधे बहुवर्षायु एवं बारहों मास फलते फूलते रहते हैं। बीज-हरे रंग के तथा रुई बहुत मुलायम श्वेत एवं लम्बे रेशो वाली होती है। देवालयो मे दीपक के लिये बत्तिया बनाने. एवं जनेऊ (यज्ञोपवीत) बनाने के लिये यह उत्तम मानी जाती है। देवकपास तथा इसके उपभेद भारतवर्ष मे न्यूनाधिक प्रमाण में प्राय सर्वत्र तथा बंगाल प्रान्त मे और दक्षिण चीन मे बहुतायत से पाये जाते हैं।

नोट—कहीं कहीं रक्तशाल्मली (सेमर-Bombax Malabaricum) को ही देव कपास, नर्मा आदि कहते हैं।

कपास देव (नरमा कपास)
GOSSYPIUM ARBOREUM LINN.

किन्तु वह भी कार्पास कुल का होते हुए भी प्रस्तुत प्रकरण के देव कपास से बिलकुल भिन्न है।

नाम—

संस्कृत—उद्यान कार्पास।

हिन्दी—देव कपास, नर्मा, लाल कपास, रामकपास, मनुआ।

मरेठी—देव कापसी। गुर्जर—हिरवणी।

अंग्रेजी—रिलिजस काटन ट्री (Religious Cotton tree)

लेटिन—गासपियम आरबोरियम।

उक्त देवकपास का उपभेद जो वन कपास है उसके क्षुप दृढ झाड़ीदार ४ से ६ फीट ऊंचे होते हैं। ये क्षुप फैलने वाले य वृक्ष के सहारे ऊपर को चढने वाले भी जङ्गल में स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं।

पत्ते करतलाकार तीन खण्डो मे विभक्त ४-५ इञ्च व्यास के होते हैं। इसके बीज उक्त कार्पास बीजो की अपेक्षा लम्बे और काले रङ्ग के होते है तथा इसकी रुई पीताभ होती है। खानदेश और सिंध प्रान्त मे यह वन कपास होती है।

नाम—

संस्कृत—वन कार्पासी, अरण्य कार्पासी, भारद्वाजी।

हिन्दी—जंगली या वन कपास, नरमाबाडी।

मरेठी—रानकापूस। बंगला—वन कार्पास, वनढाड़श।

अंग्रेजी—दी वाईल्ड काटन (The wild cotton)

लेटिन—थेसपसिया लेम्पास (Thespesia Lampas), हिबिसकस लेम्पास (Hibiscus Lampas)

नोट—इस वन कपास के बीजों में कुछ कस्तूरी जैसी सुगंध आने से तथा इसके पत्ते और फल (बौंड) भैंडी (भिंडी) के पत्र और फल जैसे होने से कोई इसे ही 'लताकस्तूरी' या वन भिंडी कहते हैं। तथा लता कस्तूरी के नाम से इस वन कपास के बीजों को ही व्यवहार में लाते है। किंतु ध्यान रहे जंगली भिंडी या लता कस्तूरी को लेटिन मे हिबिसकस एबलमोस्कस (Hibiscus Abelmoschus) कहते हैं। वह यद्यपि कार्पास कुल की है, तथापि प्रस्तुत वन कपास से वह सर्वथा भिन्न है।

देव कपास का दूसरा उपभेद जो 'काला कपास' है, उसके बीज वन कपास के बीजो की अपेक्षा अधिक काले होते हैं। पत्ते अग्र भाग पर तीन खण्डों मे विभक्त होते हैं। फूल नामवर्णयुक्त कृष्णवर्ण के होते हैं। तथा इसकी रुई में भी कुछ कालापन होता है। यह कपास बहुत ही कम देखने और सुनने में आती है।

नाम—

संस्कृत—कालाञ्जनी, नीलाञ्जनी, कृष्ण कार्पासिका।

हिन्दी—काली कपास। बंगला—कालि कार्पासिकनी, काल कापास। मरेठी—काली कापसी। गुर्जर—हिंस्रणी कपाशिया।

लेटिन—गासिपियम नायग्रम (Gossypium Nigrum)

नोट—विदेशी कपास के बीजो का छिलका बहुत कड़ा होता है तथा उनमें देशी कपास के बीजों के समान मधुरता नहीं होती। जानवरों के दूध एवं घृत की वृद्धि के लिये तथा अन्य चिकित्सा सम्बन्धी उपयोग के लिये देशी बिनौले ही हितकर होते हैं। वैसे ही औषधि कर्म में विदेशी कपास की मूल का ग्रहण नहीं किया जाता।

२—देव कपास, वन कपास और काली कपास ये सब गुणधर्म में साधारण कपास के ही समान हैं। विशेषता यह है कि देव कपास में स्निग्धता अधिक होती है तथा इसके पत्ते और जडों का उपयोग लेप कार्यार्थ विशेष सुविधाजनक होता है। देव कपास के बीज मूत्रकृच्छ्र, पुरातन प्रमेह, मूत्राशय प्रदाह, क्षय एवं कफ विकारजन्य रोगों पर उत्तम कार्य करते हैं। इसकी रुई अग्निदग्ध व्रण एवं अन्यान्य शस्त्रकर्म साध्य रोगों में बाह्योपचारार्थ विशेष उपयोगी होती है।

वन कपास—विशेषत शीतल, रुचिकारी, व्रण तथा शस्त्रजन्य क्षतों को नष्ट करती और रक्तविकार, वातविकारों को दूर करती है। इसकी जड़ तथा फल सुजाक और फिरङ्ग रोग पर विशेष काम में आते हैं।

काली कपास—चरपरी और उष्ण है, तथा यह मल, आम एवं कृमिनाशक है। अपान वायु के आवर्त को शमन एवं जठर रोगों को नष्ट करती है।

रासायनिक संगठन—

कपास पौधे की छाल में—स्टार्च (श्वेतसार) क्रोमोजन (Chromogen) २८ प्रतिशत, पीत राल, ग्लूकोज, स्थिर तैल, किंचित् टेनिन आदि होते हैं। बीजो मे १०-२९ प्रतिशत तक तैल, अलब्युमिनाइड तथा १८-२५ प्रतिशत तक अन्य नेत्रजन्य युक्त पदार्थ एवं १५ से २५ प्रतिशत तक लिगनिन (Lignin) होता है।

मूलत्वक् में—एक पीत या वर्ण रहित अम्लराल, डाइहाइड्रोक्सि बेंजाइक एसिड (Di hydroxy benzoic acid) तथा फेनोल होते हैं। पुष्पों में एक रजक द्रव्य तथा गासिपेटिन (Gossypetin) नामक ग्लुकोसाइड पाया जाता है। बीजो के तैलो मे गासिपाल (Gossypol) नामक एक स्फटिकीय द्रव्य होता है।

गुणधर्म—

गुण मे स्निग्ध लघु, रस मे मधुर, किंचित् कषैला तथा विपाक मे मधुर होने से वातशामक, कफवर्धक, स्तन्यजनन है। वीर्य मे कुछ उष्ण होने से पित्त को बढाता है, किंतु अपने प्रभाव से वेदनास्थापन, व्रणरोपण कार्य करता है तथा तृषा, दाह, श्रम, भ्रान्ति, मूर्च्छानाशक और हृदय को बल देता है।

बीज (बिनौले)—स्नेह होने से स्तन्यजनन और कफवर्धक है। तथा स्रंसन होने से कफनिस्सारक भी है। वृष्य (नाडी संस्थान के लिये पौष्टिक), मूत्रजनन, पूयमेह, चिरकारी सुजाक, वस्ति प्रदाह, क्षय, कफजन्य विकार, विष तथा विषम ज्वरनाशक है [1]।

बीजो का प्रयोग नाडी संस्थान के दौर्बल्य से उत्पन्न उन्माद, अपस्मार आदि विकारो पर तथा विबन्ध मे सफलतापूर्वक किया जाता है। शिश्न के दृढीकरणार्थ इसका तैल मर्दन किया जाता है। तैसे ही सन्धिवात, शिर शूल आदि वातविकारो पर इसकी मालिश की जाती है। शुद्ध बिनौला तैल कुछ पीतवर्ण का, निर्गन्ध होता है। यह तैल स्नेहन, पौष्टिक तथा अधिक मात्रा मे स्निग्ध रेचक है। जैतून तैल (ओलाइव्ह आयल) के स्थान पर इसका उपयोग होता है। इसकी मालिश से त्वचा के चट्टे, दाग, झाँई, व्यङ्ग आदि दूर होते हैं।

प्रयोग—

(१) नेत्रो के जाला, फूला पर—बिनौला तैल १॥ तोला में समुद्रफेन चूर्ण १२ रत्ती मिला नित्य थोडा थोडा सलाई से आंजते रहने से लाभ होता है। निद्रानाश पर इनकी गिरी को पीस शहद मिला नेत्र मे लगाते हैं।

बीजो का लेप शोथ वेदनायुक्त विकारो पर तथा अग्निदग्ध व्रणो एवं क्षतो पर किया जाता है। मूत्रकृच्छ्र मे बीज चूर्ण को इसके पत्र स्वरस के साथ देते हैं। बीजो का फांट शीत ज्वर मे ज्वर से पूर्व देते हैं। ध्यान रहे, उष्ण प्रकृति वालो को बीज के चूर्ण को सिकजबीन के साथ तथा शीत प्रकृति वालो को दालचीनी और शर्करा के साथ देने से यथोचित लाभ होता है। कामोद्दीपन होता है।

(२) शीतज्वर पर—इनके बीज ढाई पाव लेकर १। सेर पानी मे पकावें। एक पाव शेष रहने पर छान लें। इसे १२। तोले की मात्रा में शीतज्वर आने के १ या २ घण्टे पूर्व ही पिलाने से ज्वर रुक जाता है।

✓(३) बहुमूत्र पर—बिनौलो को जल मे भिगो दें, जब वे अच्छी तरह भीगकर कुछ मुलायम पड जाय, तब उन्हे उसी जल मे खूब मसलकर छान लें। इस छने हुए जल मे अर्ध भाग मिश्री या खाड मिला यहा तक पकावें कि गाढी चाशनी अवलेह सी हो जाय। मात्रा—२ तोले तक नित्य प्रात इसे चाटकर लगभग तीन घण्टे वाद भोजन करें। शीघ्र लाभ होता है।

✓(४) सुजाक (पूयमेह) पर—बिनौला और जीरा प्रत्येक ८ माशे से १६ माशे तक, सौंफ ४ माशे से ८ माशे तक लेकर पत्थर के खरल मे ७॥ तोले से १० तोले तक जल मे रगड कर छान लें। फिर उस छने हुए जल मे वंसलोचन का महीन चूर्ण लगभग १ माशा से २ माशे तक मिला ले। मात्रा—१ से २॥ तोले तक दिन रात में ४-५ वार सेवन करावें। इस प्रकार प्रतिदिन ताजा पेय बनाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। इस कार्य के लिये देव कपास के बिनौले और भी उत्तम हैं।

✓(५) बालको की स्वास्थ्य रक्षार्थ—उत्तम बिनौलो को आध सेर तक लेकर पानी मे उबालकर रक्खें। फिर समभाग रेंडी बीजो को आग पर थोडा सेंक कर छिलके अलग कर उक्त उबले हुए बिनौलों के साथ कूट कर लुगदी

---

[1] ध्यान रहे कपास के बीज या बीज गिरि वृक्कों के लिये अहितकर हैं। अत वृक्क सम्बन्धी विकारो पर इसका प्रयोग सोच समझ कर करना चाहिए। यदि कोई उपद्रव हो तो शर्बत बनफ्शा का सेवन करावें।

कपास बीज के अभाव में—कीकर या कुसुम के बीज लेवें। —यूनानी मत से।

वना लें। एक मटकी मे २॥ सेर पानी आग पर चढा दे। जव पानी उवलने लगे तव उसमे उक्त लुगदी डाल दें। थोडी देर वाद नीचे उतार कर ऊपर तैरते हुए तैल को रुई के फाये से लेकर इकट्ठा कर धूप मे सुखा ले। जलीयाश निकल जाने पर शीशी मे रक्खे। मात्रा—३ मासे से १ तोला तक शक्कर के साथ देने से उदर शुद्धि होकर वालक स्वास्थ्य लाभ करता है।

√(६) अतिसार और रक्तातिसार पर—विनौलो को जवकुट कर १ से २॥ तोला तक एक पाव खौलते हुए या अत्युष्ण जल मे डालकर नीचे उतार लें, कुछ देर ढाक रक्खें, पश्चात् छानकर सुखोष्ण पिलावें। कुछ दिन के सेवन से लाभ होता है। यह विनौले की चाय मृदुरेचक, कफ नि सारक और स्तन्यवर्द्धक है।

√(७) कामला पर—जवकुट किया हुआ विनौला ६ मासे से १ तोला तक रात्रि के समय जल मे भिगोकर प्रात पीस छान कर थोडा नमक मिला पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है।

√(८) धतूरा तथा अफीम के विष निवारणार्थ—१० तोले विनौलो को १६ गुने पानी के साथ औटाकर चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर मात्रा ४ तोले आधे आधे घटे के अन्तर से पिलाते रहे, जव तक कि धतूरा विप नष्ट न हो जाय। अथवा—

विनौला की गिरी ३ तोला को पानी मे पीस वार वार पिलावें।

अफीम के विप पर—विनौला चूर्ण और फिटकरी चूर्ण समभाग एकत्रकर १ से ३ माशे की मात्रा मे १-१ घण्टे के अन्तर से जल के साथ पिलावें।

(९) सिर दर्द आदि मस्तिष्क के विकारो पर—विनौले की गिरी को खरल मे घोटकर ५ या ७ माशे की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से वातनाडी सवल होकर लाभ होता है। साथ ही साथ गिरी को पीसकर कनपुटियो पर लेप भी करना चाहिए। निम्न स्वेदन परम हितकर है। कोहनी, उदर, स्फिक्, सिर, घुटना, पाव की अगुली, गुल्फ, कन्धे तथा कमर की वातजनित पीडा की शाति के लिये विनौले की गिरी को काजी मे पीस कर पोटली वना तथा तवे पर उष्णकर पीडायुक्त स्थान पर स्वेदन करें। यदि उक्त गिरी के साथ कुलथी की धुली दाल, तिल, जौ, एरण्ड वीज, अलसी, पुनर्नवा और शण के वीज मिला लें तो और भी उत्तम है। (भै र.)

(१०) वातदौर्वल्य निवारण और स्त्री के स्तनो मे दुग्ध वृद्धि के लिये—विनौला की गिरी को जल मे पीस छानकर गौ दुग्ध मे मिला, चावलो के साथ खीर वना कर कुछ दिनो तक सेवन करे।

(११) कामोद्दीपनार्थ—इसकी गिरी का हलुवा वनाकर खिलावें तथा गिरी के साथ गंधा विरोजा महीन पीस शिश्न के छिद्र मे धारण कराते रहने से शनै शनै शैथिल्य दूर होता है।

इसकी गिरी के साथ समभाग गिरी वादाम, चिलगोजा, पिस्ता, अखरोट और काजू मिलाकर आव तोले से १ तोले प्रतिदिन गोदुग्ध से सेवन करते रहने से पुरुष स्त्री प्रिय वनता है।—कवि श्री हरदयाल वैद्यवाचस्पति

√(१२) वद, गाठ, अण्डशोथ या कुरण्ड पर विनौलो को पीसकर टिकिया सी वना कुछ गरम कर वद, गाठ पर वाधने से वह विखर जाती है।

इसकी गिरी को समभाग अदरख या सोठ के साथ पानी मे पीस कुछ गर्म कर प्रलेप करते रहने से अण्डशोथ (कुरण्ड Orchitis) दूर हो जाता है।

(१३) अग्निदग्ध पर तथा दन्तशूल पर—इसकी गिरी को पीसकर प्रलेप करते रहने से प्रदाहयुक्त आग से जलने पर हुए छाले क्षत आदि शात हो जाते हैं।

विनौलो के क्वाथ से कुल्ले करते रहने से दन्तशूल दूर होता है।

(१४) गर्भस्थापनार्थ—वीज की मज्जा ६ माशे, असगंध चूर्ण १ माशा लेकर ऋतुस्नानोत्तर प्रात ही गौघृत के साथ पान करने से गर्भस्थिति होती है। अनुभव मे यह आचुका है कि अनेक स्त्रियो मे १ मास के ही प्रयोग से गर्भधारणा हुई है। प्राय २-३ मास तक इसे दिया जाता है। एक ही मात्रा प्रतिदिन दी जाती है।

—कविराज श्री हरदयाल वैद्यवाचस्पति

कार्पास मूल-त्वक्

कपास की जड या जड़ की छाल—मूत्रल, रज प्रवर्त्तक, स्तन्यजनन, स्नेहन, गर्भाशय उत्तेजक है। गर्भा-

शय पर इसकी क्रिया अरगट (Ergot) की अपेक्षा अधिक उत्तम होती है। इसके प्रयोग से गर्भाशय पूर्णतया सकुचित होकर दूषित रक्त पूर्णत निकल जाता है और फिर रक्त-स्राव बन्द हो जाता है। यह गण्डमाला, अपची तथा स्तनरोगादि नाशक है।

इसकी जड की छाल का निम्नलिखित क्वाथ गर्भस्रावकारी एव त्वरित प्रसवकारी है। विलम्बित प्रसव की दशा मे प्रसव वेदना उत्पादनार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है।

प्रसव के पश्चात् गर्भाशय के उत्तम रीति से सशोधनार्थ जब जाल गिर जावे तब इस क्वाथ के प्रयोग से आर्तवस्रावे होकर गर्भाशय शैथिल्यजन्य कष्ट, शूल, ज्वर आदि की शान्ति होती है। यदि क्वाथ के पिलाने के लगभग एक घण्टे बाद भी गर्भाशय शैथिल्य दूर न हो, गर्भाशय सकुचित होकर गेंद जैसा प्रतीत न हो, तथा नाड़ी की गति तीव्र हो, तो पुन इसी क्वाथ की एक मात्रा और देवें।

(१५) क्वाथ विधि—जड़ की छाल १० तोला जौ-कुट कर ६० तोला जल मे अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध करें, अर्थात् ३० तोला जल शेष रहने पर छानकर मात्रा २॥ तोला से ५ तोला तक दिन में ३-४ वार पिलावें।

इस क्वाथ मे सोया, कलौंजी और पुराना गुड मिलाने से उत्तम क्रिया होती है। पीडितार्तव तथा शीत-जन्य अनार्त्तव मे भी यह उपयोगी है। यदि रोग की तीव्रता अधिक हो, शीघ्र लाभ न हो, तो आध आध घण्टे या २०–२० मिनट पर इसे सेवन करावें। प्रारम्भ में इसकी मात्रा बड़ी से बडी ६ से ७ तोले तक दी जा सकती है। पश्चात् इसकी मात्रा कम करें। मूलत्वक का तरल सत्व (Extract Gossypii Radicis Corticis) मात्रा–३० से ६० बूंद तक सफलतापूर्वक दिया जा सकता है। अथवा इसके टिंक्चर का प्रयोग करें। उक्त तरल सत्व के अभाव मे जड की छाल का स्वरस ३० से ६० बूंद की मात्रा मे देने से भी गर्भाशय की विकृति दूर हो जाती है। यदि उक्त क्वाथ या सत्व स्वरस के सेवन से गर्भाशय के शूल का निवारण न हो तो उक्त क्वाथ को अधिक प्रमाण मे बनाकर रुग्णा को उससे कटिस्नान कराते है। योषापस्मार की दशा मे इस काढे मे बैठाकर कटिस्नान कराने से लाभ होता है। वेदना शांत होती है। ध्यान रहे सगर्भा स्त्री पर इस क्वाथ आदि का प्रयोग नही करना चाहिये।

✓ (१६) अनार्तव या रजोरोध पर—निम्न इलाजुल-गुर्बा का क्वाथ प्रयोग विशेष उपयोगी है।

जड की छाल का क्वाथ उक्त विधि से ही किन्तु चतुर्थांश सिद्ध करें, अर्थात् १ सेर जल हो तो शेष जल २० तोला रहने पर छानकर उसमे अंदाज की चीनी मिला २॥ से ५ तोला तक की मात्रा मे दिन मे दो बार देवें। उक्त क्वाथ के सेवन से मूत्रदाह शान्त होता है।

कष्टार्त्तव (Dysmenorrhoea) के प्रशमनार्थ इसकी मूल ५ तोला का यथाविधि षोडशगुण जल परि-साधित अष्टमावशिष्ट क्वाथ १० तोला मे बादाम रोगन १ तोला मिला प्रात पान करने से यथेष्ट लाभ होता है। अनेक स्त्रियो मे यह व्याधि चिरसंगिनी एवं दीर्घकालानुबंधिनी रहती है। ऐसी अवस्था मे भैषज्यरत्नावली का 'प्रमदानन्द रस' की २-२ वटिका उक्त क्वाथ के साथ देते रहने से अभूतपूर्व लाभ होता है, तथा स्त्री इस दु खद कष्ट से मुक्त होती है।

—कविराज श्री हरदयाल जी वैद्य

(१७) अपची, गण्डमाला तथा स्त्री के स्तन के शोथ आदि विकारो पर–वनकपास की जड की छाल के महीन चूर्ण को समभाग चावल के आटे के साथ मिला पानी से गूंध कर छोटी छोटी टिकिया बना गोघृत मे परि-पक्व कर सेवन करने से अपची या गण्डमाला कुछ दिनो मे नष्ट हो जाती है। (वगसेन)

स्तन मे व्रण या शोथ हो तो इसकी या साधारण कपास की जड को लौकी की जड के साथ गेंहू की बनाई हुई काजी मे पीस लेप करते हैं।

✓ (१८) श्वेतप्रदर पर तथा स्तन मे दुग्ध वृद्धि के लिये—इसकी जड की छाल को चावल के धोवन के साथ पीसकर सेवन करते रहने से शीघ्र ही पाण्डु या कफजनित श्वेतप्रदर पर लाभ होता है।

साधारण कपास की जड-(वनकपास की प्राप्त हो तो और उत्तम) और ईख की जड समभाग एकत्र काजी

(गेंहू) मे पीस छान कर ६ माशे से १ तोला का मात्रा मे सेवन करने से दुग्ध वृद्धि होती है।

(१९) कुष्ठ पर—जड की छाल और इसके फूल दोनो को पीस कर प्रलेप करते हैं।

कफातिसार पर—जड की छाल का स्वरस मात्रा-१५ से ३० बूद मधु के साथ देते हैं।

गर्भाशय भ्रंश पर—इस विकार मे चलते फिरते उठते बैठते गर्भाशय को नीचे की ओर सरकता हुआ अनुभव करती है, अत वह प्राय ही नाभि के नीचे अपने हाथ का अवलम्ब देती हुई क्रिया करती है। यह कष्ट प्राय दो कारणो से उत्पन्न होता है। एक तो गर्भाशयीय स्नायविक दौर्बल्य के कारण, दूसरे प्रसव काल मे बलात् शिशु को बाहर खीचने से। इनमे से द्वितीय कारणजन्य गर्भाशय भ्रंश दैवात् ही ठीक होता है। प्रथम कारणोद्भव औषधीय चिकित्सा से साध्य है। इसके लिये इसकी जड को जौकुट कर ५ तोला लेकर यथाविधि षोडषगुण परिमाथित अवशिष्ट क्वाथ १० तोला, रजतभस्म १ रत्ती, क्षीरकाकोली चूर्ण १ मासा व चोबचीनी चूर्ण ४ रत्ती १० तोला, रजतभस्म १ रत्ती का मिश्रण मधु के साथ चाटकर ऊपर से उक्त क्वाथ पीवें। सप्ताह मे दो बार बला-तैल की उत्तरबस्ति दें। इस प्रकार ४० या ८० दिन करने से लाभ होता है। औषधि की एक ही मात्रा प्रात निरन्नोदर देनी चाहिये।

—कविराज श्री हरदयाल जी वैद्यवाचस्पति।

कार्पास पत्र—

कपास के कोमल पत्तो का स्वरस स्नेहन, पिच्छिल, रक्तवर्द्धक, मूत्रल तथा वात, अतिसार, प्रवाहिका, आमवात, प्रदर, मूत्रकृच्छ्रादि नाशक है।

पत्र स्वरस को कान मे डालने से कर्णस्राव कर्णनाद आदि कान के विकारो मे, पत्र स्वरस के साथ शक्कर और वगभस्म के सेवन से या इसको चावल के धोवन के साथ देने से श्वेत प्रदर मे, केवल पत्र स्वरस के सेवन से स्तन मे दुग्ध के अभाव मे, इसे सेव शर्वत के साथ देने से अतिसार मे लाभ होता है।

विशेष पत्र प्रयोग-

(२१) आगतुकज्वर तथा ज्वर के पश्चात् होने वाले त्वचा के विकारो पर—आगतुकज्वर मे देवकपास के पत्तो का रस २-३ तोला की मात्रा मे पिलाते हैं। तथा इन पत्तो को गोदुग्ध के साथ पीसकर, कुछ गरम कर शरीर पर लेप करते है। ज्वर के पश्चात् होने वाली त्वचा की रूक्षता खुजली आदि दूर करने के लिए देव-कपास या साधारण कपास के पत्तों के रस मे कालीजीरी पीसकर शरीर पर उबटन जैसा अच्छी तरह लगाकर फिर ३ घटे बाद स्नान कराने मे लाभ होता है।

(२२) सधिशोथ या सधिवात पर—साधारण कपास के पत्तो को पीसकर तैल या गुलरोगन में मिला प्लास्टर जैसा लेप करने मे अथवा पत्तो को तैल मे चुपडकर और गरम कर बाधने मे उक्त विकार चाहे आमवातजन्य हो या वातरक्त से हो लाभ होता है।

(२३) मूत्र के विकारो पर—इसके पत्तो को (देव-कपास पत्र हो तो और उत्तम) पीसकर दूव के साथ पिलाने मे मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, अश्मरी मे लाभकारी है।

मूत्र मे धातु जाती हो तो देवकपास के २-३ पत्ते और मिश्री नित्य प्रात साय चबाकर खाने से ८ दिन मे लाभ हो जाता है। किंतु उत्तेजक पदार्थो से परहेज करना आवश्यक है।

(२४) आत्रशैथिल्यजन्य अतिसार आदि व्याधियो पर—पत्तो का शीत कषाय या फाट (चाय जैसी) बनाकर पिलाते हैं। यदि क्षण क्षण मे मलोत्सर्ग की प्रवृत्ति होती हो या टेनेसमस (Tenesmus) नामक गुदव्याधि विशेष हो तो पत्तो का वाष्पस्वेद दिया जाता है।

(२५) मासिकधर्म की रुकावट (अनार्त्तव, कष्टार्त्तव), गर्भाशयिक शूल और योषापस्मार पर—पत्रो के साथ इसके फूल भी समभाग दोनो मिलाकर १० तोला को एक सेर जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे ४ तोला गुड मिला सुखोष्ण (छानकर) पीने से अनार्तव या कष्टार्त्तव दूर होता है।

इसके कोमल पत्तियो के काढे मे कटिस्नान कराने से गर्भाशय का शूल नष्ट होता है तथा योषापस्मार मे भी लाभ होता है।

(२६) ग्रन्थि, व्रण, अर्श और रक्तस्राव पर—पत्तो की पुल्टिस बनाकर बांधने से ग्रन्थि या व्रण शीघ्र पक कर फूट जाते हैं। पश्चात् व्रण रोपणार्थ देवकपास के कोमल पत्र और पानडी (पानिरी) के पत्र दोनो को पीस बाधते हैं। व्रण या क्षत से रक्तस्राव विशेष होता हो तो इसके या देवकपास के छाया शुष्क पत्तो का महीन चूर्ण बुरकने से लाभ होता है।

अर्श (रक्तार्श) पर—देवकपास पत्र-रस ३ तोले तक गाय के दूध के साथ पिलाते हैं।

(२७) बिच्छू विष तथा अफीम विष पर—देवकपास के पत्तो को मनुष्य के मूत्र मे उबाल कर दशस्थान पर लेप करते हैं, या पत्तो के साथ राई को पीसकर लेप करते हैं, तथा पत्तो को पीसकर जहा तक बिच्छू का जहर चढा हो मालिश करते हैं।

अफीम के विष पर—देवकपास के पत्तो का रस बार बार पिलाते हैं।

(२८) नेत्रशूल, नेत्राभिष्यन्द पर—पत्तो को दही के साथ पीसकर प्रलेप करने से नेत्रशूल मे, तथा देवकपास के पत्तो को माता के दूध मे पीस लेप करने से बालको के नेत्राभिष्यन्द (आख आना) मे लाभ होता है।

(२९) अग्निदग्ध व्रण पर—अग्नि, घृत, तैल, उष्णोदक एवं स्फोटक पदार्थों से त्वचा दग्ध होगई हो तो तत्काल दग्ध स्थान पर इसके ताजे आर्द्र पत्तो को महीन पीस कर अगुष्ठमात्र मोटा लेप कर दें, ऊपर सूक्ष्म श्वेत वस्त्र चिपका दें, और इसे शीतल जल या बर्फ के टुकडे से थोडी थोडी देर के बाद आर्द्र रखने का प्रयत्न करते रहे। दाह, जलन शीघ्र ही शात होती है। लेपस्थिति तब तक ही रखनी चाहिये जब तक दाह (जलन) शात न हो जाय। इसके प्रभाव से न तो स्फोट होता है न त्वक्-विवर्णता या कुरूपता ही रहती है।

—कविराज श्री हरदयाल जी वैद्यवाचस्पति

कार्पास-पुष्प

कपास के फूल—उत्तेजक, सौमनस्य जनन, मनोल्हास-कारी, यकृदुत्तेजक और विषघ्न है। मानस रोग मे तथा यकृद्विकार और कामला मे पुष्पो का पानक बनाकर ५-५ तोला १-१ घण्टे पर पिलाते हैं।

(३०) कुष्ठ तथा अग्निदग्ध पर—फूलो को पीस कर प्रलेप करते रहने से चारो प्रकार के कुष्ठो मे तथा अग्निदग्ध या अत्युष्ण तरल द्रव्य से दग्धाङ्ग मे लाभ होता है।

(३१) अत्यार्तव पर—फूलो की पुटपक्व भस्म ३ मासे की मात्रा मे जल के साथ दिन में २-३ बार पिलाने से मासिक धर्म के समय प्रमाण से अत्यधिक रक्तस्राव मे लाभ होता है।

(३२) मानसिक खिन्नता और उन्माद मे—फूलो का शर्बत बनाकर पिलाते रहने से उदासीनता प्रधान मानसिक रोग या वहम तथा उन्माद रोग मे लाभ होता है।

(३३) नेत्राभिष्यन्द पर—फूलो की पखुरियो को गोदुग्ध मे पीसकर ऊपर से लेप करने से या उसकी लुगदी बाधने से आई हुई या उठती हुई आखों मे शाति प्राप्त होती है। शीघ्र अच्छी होती है।

कार्पास फल

कपास के बोड ढेढ (कपास के कच्चे फल) स्नेहन, मूत्रल, सकोचक, बाल विकार, रक्त विकार, कर्णनाद, कर्णान्तर्गत व्रण, पूतिकर्ण, अतिसार, आमातिसार, पूयमेह आदि नाशक है।

(३४) अतिसार पर—इसकी कच्ची बोड (देव कपास की हो तो और उत्तम) के भीतर उचित मात्रा मे जयपाल और थोडी अफीम भर कर उसका निर्धूम अग्नि पर रखकर पुटपाक कर चूर्ण कर रखें। इसे यथ योग्य मात्रा मे सेवन कराने से आमातिसार मे शीघ्र लाभ होता है।

छोटे बालक के अतिसार पर देव कपास के बोड को कण्डो (गोबरो) की गरमागरम राख या भूभल मे दबाकर १५ मिनट बाद कूट पीसकर स्वरस निकाल कर पिलावें। अथवा बालक की माता उस बौड को अपने मुख मे चबावे और मुख की पीक बच्चे के मुख मे डाले। ऐसा २-४ बार करने से लाभ होता है।

(३५) कर्णान्तर्गत व्रण, कर्णनाद आदि पर —बोड को कूट पीस तिल या सरसो के तैल मे पकाकर तैल सिद्ध कर लें। इसे अच्छी तरह छानकर रखें। इसकी

४-५ बूदे दिन मे दो बार कान मे छोडते रहने से लाभ होता है। व्रण की सडान को दूर करने के लिये बौंड को पीस कर पुल्टिस बना लेप करते हैं और बाघते हैं।

(३६) दन्तरोग (पायोरिया) और कामला पर—कपास के बौंडो की पुटपाक भस्म तैयार कर दन्त मजन करने से पायोरिया पर धीरे धीरे लाभ होता है।

√(३७) पामाहर मलहम—रूई निकालते हुए इसके फलो की भस्म को कपडे से छान १० तोले भस्म मे कपूर, नीला थोथा ३-३ माशा मिला लेवें। फिर २॥ तोले धतूर पत्र को १० तोले तिल तैल मे भूनकर छान लें। इस तैल को आग पर चढाकर उसमे ६ माशे मोम मिला नीचे उतार कर कुछ शीतल होने पर उक्त द्रव्यो को मिला मलहम बना लें। इसके लेप से सर्व प्रकार के पामा, कच्छ, असाध्य उकवत ७ दिन मे दूर होते हैं। सूखी खुजली व शीतपित्त मे इस मलहम को गरम कर ४ गुना तिल तैल मिला मालिश करने से लाभ होता है। —रसतन्त्रसार।

कामला निवारणार्थ—देव कपास के बोड का रस नाक मे छोडते या नस्य देते हैं।

नोट—बौंड और फूल दोनों को जौकुट कर क्वाथ बनाकर पीने से स्त्री का रज प्रवर्तन होता है तथा गर्भपात भी होता है।

रुई या कपास

रुई या कपास के पर्यायवाची शब्दों में जो 'तूल' या 'तूला' शब्द है, उसका प्रयोग प्राय. सेमल की रुई के विषय मे किया जाता है। वैसे तो कपास की रुई को कार्पास तूलक, पिचु तूल आदि कहते हैं।

रुई या कपास यह एक प्रकार के मृदु काष्ठ तन्तुओं का समूह ही है। व्रण एवं क्षत के लिये यह एक उत्तम सरक्षक है। एतदर्थ इसे आधुनिक वैज्ञानिक रीति से विशुद्ध (Sterlized) किया जाता है, जिसे शोषणकारी कपास (Absorbant Cotton) कहते हैं। यह व्रणों की गहराई मे होने वाली अस्वच्छता का शोषण करती है।

रुई का प्रयोग बाह्योपचारार्थ ही प्राय. किया जाता है।

(३८) शोथ या अपक्व फोडे की तीव्रता निवारणार्थ—साफ धुनी हुई कपास को एक घण्टे तक ठडे जल मे भिगोकर अच्छी तरह निचोड कर अच्छी जाडी टिकिया (ऐसी बनालें जिसमे शोथस्थान पूर्णतया ढक जावे) बनाले। फिर किसी पात्र मे थोडे से घृत के साथ (घृत केवल उतना ही हो जितने मे टिकिया मामूली भीग जाय) उसे आग पर पकाकर और सुखाकर शोथ या फोडे पर रख बाध देने से वेदना शीघ्र ही दूर होती है। इसी प्रकार २-४ बार बाधने से वह शीघ्र पक जाती है। किसी वेदनायुक्त व्रण या क्षत पर इसी तरह बांधने से अवश्य लाभ होता है। शोथ पर आगे नोट देखिये।
—आ वि कोप

(३९) नकसीर पर—पुरानी रूई को निर्धूम आग पर रखने से जो धूम्र उठता है उसे नासिका से खींचने से नकसीर (नासिका से रक्तस्राव) पर, एसे ही उस धूम्र को मुख से अन्दर खीचने से मसूढो के रक्तस्राव पर लाभ होता है। उक्त धूम्रपान के पश्चात् रोगी को कपास की पत्ती का स्वरस २ या २॥ तोले मे १ तोले मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए।

(४०) अत्यार्तव अथवा गर्भपात के कारण अत्यधिक रक्तस्राव होता हो तो अच्छी तरह धुनी हुई रूई को योनिमार्ग मे दबाकर भर दी जाय जिससे डाट लग कर रक्तस्राव रुक जावे। पश्चात् तुरन्त ही उस स्त्री को अद्रक स्वरस मे शुद्ध की हुई अफीम १ रत्ती थोडे से गौदुग्ध मे घोलकर पिलाने से लाभ होता है।

नोट—शोथ एवं वेदनायुक्त स्थान पर प्रथम सोंठ और नरकचूर समभाग का चूर्ण धीरे धीरे मर्दन कर पुरानी रुई को गरम कर बाध देने से वेदना दूर होती है। शोथ तथा पक्षाघाताक्रान्त अङ्गों पर भी इससे लाभ होता है। जली हुई रुई की भस्म को शोथ ग्रस्त अङ्गों पर अच्छी तरह दबाकर बांधने से भी लाभ होता है। व्रण, क्षत या जख्म में इस भस्म को भर देने से शीघ्र रोपण होता है। अण्डशोथ पर ताजी रुई (बौंड से तुरन्त ही निकाली हुई) को कूटकर अण्डकोष पर रखकर ऊपर से रेंडी का पत्ता बांधने से लाभ होता है।

मात्रा—कपास के पचाग का क्वाथ ५-१० तोला तक, जड की छाल का क्वाथ २॥ तोला तक, बीज या बिनौले की गिरी का चूर्ण ३ से ६ माशे तक, जड की छाल का चूर्ण २ से ४ माशे तक, मूल-त्वक् का कल्क १ से ३ माशे तक, बीज तैल १ मे २॥ तोले तक, पत्र स्वरस १ से २ तोला, पुष्प चूर्ण १ से १॥ माशे।

कपूर [Camphora Officinarum]

यह तंज या कर्पूरादि वर्ग [Lauraceae] की एक प्रमुख औषधि है। इस वर्ग की वनौषधियो के पत्र उपपत्ररहित, सादे, तैल ग्रन्थियुक्त, सदाहरित, पुष्प शाखा के अग्रभाग पर पुंकेशर २-३ और फल कुछ मांसल होते हैं। आयुर्वेद मे कपूर के व्यवहार का उल्लेख अति प्राचीनकाल से है। चरक और सुश्रुत के सूत्र स्थानो में इसके गुणो का उल्लेख है।

कपूर एक प्रकार का जमा हुआ उड़नशील श्वेत तैलीय पदार्थ है। देश भेद, निर्माणभेद और वर्ण भेद से यह अनेक प्रकार का होता है। जैसे—

देश भेद अर्थात् उत्पत्ति स्थान के भेद से यह प्राय. तीन प्रकार का पाया जाता है।

१ जापानी या चीनी कपूर—इसका ही उक्त लेटिन नाम केम्फोरा आफिसिनेरम या सिंनेमोमम केम्फोरा [Cinnamomum Camphora] है। इसके वृक्ष मध्यम आकार के ३०-४० फीट ऊचे, देखने मे सुन्दर, सदा हरे भरे रहते हैं। वृक्ष की छाल ऊपर से खुरदरी और भीतर चिकनी होती है। पत्ते पीताभ हरितवर्ण के चिकने, तेजपत्र के जैसे, नोक की ओर सकुचित, एकान्तर या अभिमुख होते हैं। पुष्प हरिताभ पीतवर्ण के मजरियों में होते हैं। फल मटर के समान और गुच्छो मे आते है। बीज छोटे और कपूर की गन्धयुक्त होते हैं। वृक्ष से भी कपूर की गन्ध आती है। वसन्त मे यह पुष्पित होता है और ग्रीष्म मे फल लगते हैं।

वृक्ष की छाल मे चारा देने से या गोदने से एक दुग्ध जैसा तैल निकलता है। इससे कपूर तैयार किया जाता है। तथा इसकी छाल, डालियां पत्ते और जड़ो के टुकडे टुकडे करके भवके के द्वारा उष्णता पहुँचाने से कपूर उड़कर ऊपर की ओर जम जाता है। उसे पुन ऊर्ध्वपातन विधि से शुद्ध कर लिया जाता है। आयुर्वेद मे कपूर का जो पक्व भेद कहा है वह यही है।

ध्यान रहे, चीन या जापान से आजकल उक्त कपूर अधिकांश शुद्ध रूप मे नही आता। इनमे भी जापानी कपूर चीनी कपूर की अपेक्षा कुछ शुद्ध एव परिष्कृत होता है। यह जापानी कपूर वृहत् चतुष्कोण, पिष्टाकृति लगभग १॥ इन्च स्थूल और मध्य मे सूक्ष्म छिद्र युक्त होता है। अब इसकी छोटी छोटी वटिया या चकत्तियाँ भी आने लगी हैं।

उक्त कर्पूर वृक्ष के अतिरिक्त दालचीनी [Cinnamum Cassia] के एक भेद "दारचीनी जीलानी" [C Zeylanicum] के पेड से भी उक्त प्रकार का कर्पूर निकाला जाता है।

प्राचीन समय मे यह कपूर चीन देश से ही वहुत प्रमाण मे इधर आता था। और चीनाक, चीन कर्पूर, चीनिया या चिनाई कपूर नाम से इसकी प्रसिद्धि थी। किन्तु अब चीन मे इसकी उत्पत्ति अत्यल्प प्रमाण मे होने से जापान और फारमोसा से ही इसका विशेष
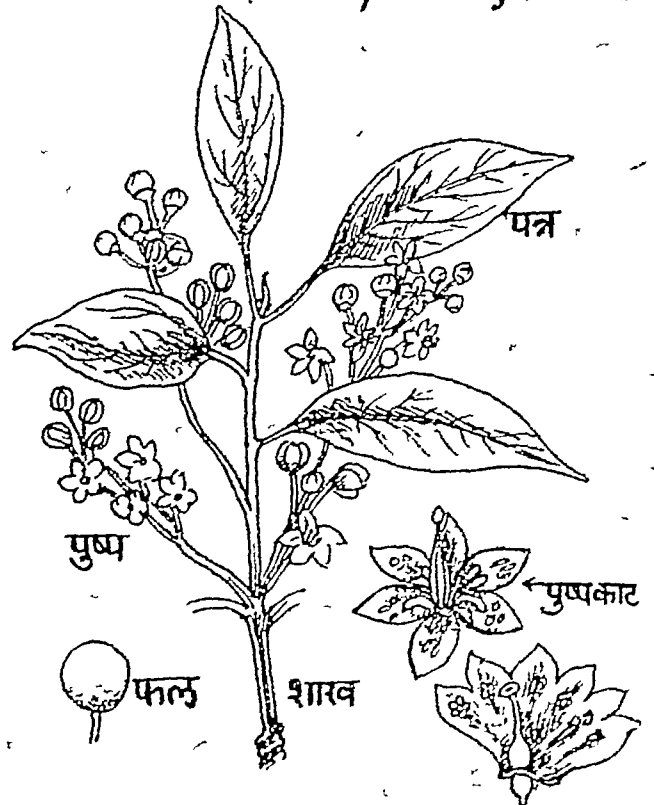
आयात होता है। यह कपूर पानी की अपेक्षा हल्का होता है। हवा और गरमी मे शीघ्र उड जाता है। तथा इसका चूर्ण सरलता से किया जा सकता है।

२ भीमसेनी कपूर—इसकी अधिक उत्पत्ति वोर्नियो और सुमात्रा द्वीप मे होती है। इसके पेड़ बहुत ऊचे, शाल कुल [Diptercarpae] के होते हैं। और लेटिन नाम ड्रायोवेलेनाप्स एरोमेटिका [Dryobalanops Aromatica] है। इन पेडो [विशेषत पुराने पेडो] के बीच से और गाठो मे से कपूर का जमा हुआ डला निकलता है। अथवा इनके काण्डो मे जहा कही पोल या चीरे पड जाने पर जो एक सकार का निर्यास एकत्रित हो जाता है उसे ही कपूर वरास, भीमसेनी, हिमवालुका, अपक्व या कच्चा कपूर, वोर्नियो या सुमात्रा कपूर कहते हैं। "वरास" शब्द वोर्नियो का ही अपभ्र श है।

यही आयुर्वेद का अपक्व कपूर है जो पक्व की अपेक्षा उत्कृष्ट माना जाता है। यह वाजारो मे बहुत कम एवं अत्यधिक मूल्य मे प्राप्त होता है। यह पानी मे डूब जाता है। हवा या मामूली उष्णता मे उडता, गलता या जलता नही। इसमे अम्बर आदि की मिश्रित गन्ध आती है। इसके छोटे, बडे, गोल, श्वेत, नमकीले, चिकने एव कुछ कडे स्फटिक होते हैं जो चीनी कपूर के जैसे सहज ही मे चूर्ण नही किये जा सकते और वायु से आर्द्रता को नही सोखते। गुणधर्म मे प्राय चीनी कपूर के समान होते हुए भी यह त्वचा की रक्तवाहिनियो का अधिक विस्फार करता है और उसकी अपेक्षा वाह्य प्रयोग मे कम दाहजनक है यह मस्तिष्क के लिये अधिक अवसादक है।

उक्त भीमसेनी कपूर के अभाव मे साधारण चीनिया कपूर मे ही अन्य औषधियो का योग देकर भीमसेनी कपूर बनाया जाता है। जैसे—

दूव, शीतल मिर्च, इलायची और जौ हरड़ [छोटी हर्र] समान मात्रा मे पीस एक बटलुई मे विछा दें और उस पर कपूर के छोटे छोटे टुकडे पानी मे भिगोकर रख दें एव कुछ घृत भी डाल दें। इस बटलुई पर केले का पत्ता ढाक कर उस पर एक दूसरा पीतल का कटोरा रख दें। इस कटोरे मे थोडा जल डाल दें। फिर बटलुई को जलयुक्त पात्र मे रखकर मन्द आच पर गरम करें। ऊपर के कटोरे का पानी गर्म होने पर उसे निकाल कर ठंडा पानी डालते रहें। जब सब कपूर उडकर ऊपर जम जाय तब उसे निकाल कर व्यवहार करें। (श्री गगासहाय पाडेय, भा ग्र)

प्राचीन वैद्यो की उत्तम विधि यह है—श्वेत चन्दन, सम और काली अगर ४-४ तोला, शीतलचीनी, श्वेत जीरा, वालछड़, लौंग, केशर, बडी इलायची बीज, शुद्ध कस्तूरी, समुद्रफेन, इत्र चमेली और अर्क गुलाब २ २ तोला, जायफल जावित्री, नागरमोथा १-१ तोला तथा कपूर ८ तोला लेकर चूर्ण करने योग्य द्रव्यो का चूर्ण कर उसमे इत्र और अर्क को मिला कपूर सहित सबको इतना खरल करें कि कपूर के कण दिखाई न दें। फिर इस कल्क को कांसे की थाली के मध्य मे रख ऊपर एक कासे का कटोरा औंधा रख गूंधे हुए आटे से सन्धि बन्द कर दें। घी का दीपक जिसमे उगली जैसी मोटी वत्ती पडी हो जलाकर उस पर उक्त थाली को स्थापित करे। कटोरे पर ठण्डे जल मे भीगा हुआ कपडा रक्खें। वारह घण्टे की सतत दीपक की आंच से कपूर उठकर ऊपर के कटोरे मे जम जावेगा। शीतल हो जाने पर कपूर को खुरच कर निकाल ले। लगभग ७ तोला भीमसेनी कपूर प्राप्त होता है।

(३) भारतीय या देशी कपूर—कुकरौंधा (Blumea) जाति के क्षुपो से पाक विधि से प्राप्त होने वाला पत्री या नागी (Blumea Camphor)[1] नामक पक्व कर्पूर ही वस्तुत भारतीय कपूर है। अथवा 'कपूरी तुलसी' (Ocimum Kilimands Charicum) जो तुलसी कुल (Labiatae) है। तथा जिसके क्षुप तुलसी क्षुप के समान ही होते हैं। पत्तियो से तीक्ष्ण गध आती है, इसके द्वारा भी पाक विधि से भारतीय कपूर की निष्पत्ति होती है। किन्तु खेद है कि इस कपूर को निकालने के लिये आवश्यक प्रयत्न ही नही किया जाता है।

---

१ पत्री नागी (ब्लूमिया कपूर) को ही यूनानी मे काफूरमोती कहते हैं। यह मृत्तिका वर्ण का क्षुप के पचाग को क्वथित करने से प्राप्त होता है।

जो देशी या भारतीय कपूर के नाम से प्रसिद्ध है वह तो अशुद्ध चीनी कपूर का ही शुद्ध किया हुआ एक रूपान्तर मात्र है। हम ऊपर चीनी कपूर के प्रसग मे कह आये हैं कि चीन या जापान से यहा अधिकाश मे अविशुद्ध कर्पूर ही आया करता है। इसी कपूर मे विशेष वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा (१४ भाग कपूर मे २।। भाग) जल शोषित करा एव उसे शुद्ध बनाकर देशी कपूर के नाम से विख्यात किया जाता है।

निर्माण भेद से—कपूर के पक्व और अपक्व ऐसे दो प्रकार निघण्टुकारो ने माने हैं। पक्व कर्पूर वह है जो पाक विधि द्वारा निर्मित होता है तथा अपक्व वह है जो वृक्ष के कोटरो से प्राकृतिक रूप में प्राप्त होता है। इन दोनो का वर्णन ऊपर के प्रसगो मे आ चुका है।

आजकल रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कई प्रकार के कृत्रिम कपूर निर्माण किये जाते हैं। जो औषधि कार्य की अपेक्षा सेल्यूलाइड आदि बनाने के कार्य मे उपयोगी हैं।

वर्ण या रग भेद से—यूनानी ग्रन्थो मे तीन प्रकार का कपूर कहा गया है (१) रियाही—यह कुछ लालिमा लिये हुये श्वेत एव प्राकृतिक होता है। यह वही अपक्व कर्पूर या भीमसेनी कपूर है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। (२) कैसूरी—वह है जो अत्यन्त श्वेत, उज्ज्वल परतदार (स्तरयुक्त) होता है। यह फार्मोसा केम्फर है। यह भी अपक्व होता है तथा यह भीमसेनी (वोर्नियो केम्फर Borneo Camphor) कपूर का ही एक भेद है। (३) कार्पूर मोती—यह उपर्युक्त पत्री या नागी कपूर है जो मटियाले रंग का होता है।

नोट—राजनिघण्टु में गुण, स्वाद और वीर्य के अनुसार १४ प्रकार के कपूर कहे गये हैं। पोतस, भीमसेनी, शीतकर शंकरावास, पांशु, पिंज, अब्दसार, हिमयुता, वालुका, जूटिका, तुषार, हिम, शीतल और पजिका। इन सबका उक्त तीन प्रकार में ही समावेश हो जाता है।

कर्पूर परीक्षा—पक्व कपूर की अपेक्षा अपक्व कपूर उत्तम एव अधिक गुणवाला होता है। उसमे भी जो अपक्व कपूर अक्षुण्ण (चूर्ण रूप न हो) तथा स्फटिक (बिलौर) के समान हो वह अधिक उत्तम होता है। पक्व कपूर मे जो दानेदार, स्निग्ध, किंचित हरी आभा वाला तथा तोड़ने पर जिसके कण एकदम अलग अलग नहीं होते जो अत्यन्त हलका हो, किन्तु तौल मे अधिक चढे, खाने मे कडवा, शीतल, हृदय को प्रिय, अत्यन्त सुगन्ध की लपट देने वाला वह उत्तम होता है।

कृत्रिम (नकली) और असली की परीक्षा—कपूर को भौं के ऊपरी भाग पर किंचित् मलते ही आखो में कुछ प्रदाह तथा आंसू निकल कर शाति हो तो असली समझें। केवल प्रदाह हो और शाति या ठंडक प्रतीत न हो तो नकली समझें। यूनानी हकीमो की दूसरी पहिचान यह है कि कपूर को शीशी मे डालकर उसे आग पर रक्खें तो असली कपूर कुछ धूआं देकर उड जाता है, नकली नही उड़ता। इत्यादि कई परीक्षायें हैं, तो भी इसकी परीक्षा मे बहुत कम सफलता मिलती है। तथापि जहा तक हो सके औषधि कार्यार्थं शुद्ध असली कपूर सग्रह कर वायु मे विशेषत गर्मी मे शीघ्र उड न जावे, एतदर्थ बोतल मे इसके साथ ही कालीमिर्च लौंग या जौ के कुछ दाने डाल देने चाहिये, तथा सुदृढ़ डाट लगाकर सुरक्षित रखना चाहिये जिससे बाह्य वायु का प्रवेश न हो सके

नाम—

सं०—कर्पूर (कर चासौ पूरश्च-जो रोगों को नष्ट कर शरीर स्वस्थ रखे) सिताभ्र, हिमाह्व, चन्द्र (हिम बर्फ और चन्द्र के सब पर्यायवाची शब्द कपूर को दिये जाते हैं), घनसार (ठोस सार भाग वाला)।

हिन्दी म० गु० और बं०—कपूर (भीमसेनी बरास), काफूर, कापूर, कपुर और कर्पूर। अरबी—काफूर।

अं०—कैम्फर (Camphor)

लेटिन—कैम्फोरा (Camphora) आफिसिनेरम

कपूर के वृक्ष से जो एक प्रकार का पतला कपूर जैसा ही सुगंधित तैल प्राप्त होता है, उसे कर्पूर तैल (Camphor oil) हिम तैल आदि कहते हैं।

कपूर शोधन—चिकित्सा कर्म मे आन्तरिक सेवनार्थ कपूर को केले के पानी मे (केले का पेड़ काटने पर जो पानी निकलता है, उसे छान कर बोतलो मे भर रक्खें) या अजवाइन के अर्क मे घोट कर शुद्ध कर लेवें। भीमसेनी, बरास आदि अपक्व कपूर प्राय शुद्ध ही होते हैं।

उन्हे शुद्धिकरण की आवश्यकता नही ।

गुणधर्म—

, लघु, तीक्ष्ण, रस मे तिक्त और कुछ मधुर होने से कफवात शामक, वीर्य मे शक्ति और विपाक मे मधुर युक्त कटु होने से पित्त एव तृष्णा आदि शामक, दीपक ज्वरघ्न, स्वेदजनक, क सहर, नेत्रो को हितकर, वृष्य (वीर्य वर्द्धक), दाह, मुख की विरसता, आक्षेपवात, रक्त-पित्त, आध्मानादि उदर रोग, कठरोग, मूत्रकृच्छ्र, तथा वेदनानाशक है । इसमे कुछ लेखन गुण होने मे यह भेद-एव विप दोप नाशक उद्वेष्टन विरोधी, तथा शोथ-हर है । अल्प मात्रा मे यह कामोतेजक तथा मस्तिष्क हृदय एव श्वसन के लिये भी उत्तेजक है । किंतु अधिक मात्रा मे यह कामवासनानाशक, स्तन्यनाशक, मदकारक, दाहोत्पादक एव विपाक्त गुण प्रकट करता है ।

कपूर पसीना आदि मल के दुर्गन्ध को नष्ट करता है तथा अपने प्रभाव एव शील और रूक्षता के कारण शव को सड़ने से बचाता है । इसीलिये इसे मुर्दे के साथ कफन मे रखते हैं ।

भीमसेनी या बरास कपूर—लघु, रस व पाक मे मधुर, शीतल, बृंहण, बल्य, शुक्रजनक, त्रिदोषनाशक, नेत्रहितकर, प्यास, दाह, रक्तपित्त, मूत्र की जलन, पित्त ज्वर, तपेदिक, उर क्षत, सग्रहणी, नकसीरनाशक, तथा निद्राजनक, मनोल्लासकारी है ।

चीनिया कपूर—कड़वा, चरपरा, उष्णवीर्य, कुछ ठडा, कफनाशक, कण्ठदोषहर, मेधाजनक, पाचन, कृमिघ्न, कुष्ठ, खुजलीनाशक एव वृष्य है । तथा ऊपर के सब गुण न्यूनाधिक प्रमाण मे इसमे पाये जाते हैं ।

नवीन या ताज़ा कपूर—स्निग्ध, कड़ुवा, गर्म एव दाहकारक होता है । पुराना कपूर दाह और शोष नाशक है ।

कपूर का शारीरिक प्रमुख स्थानो पर प्रभाव और प्रयोग—

[१] श्वसन सस्थान पर—इसके प्रभाव से फुफ्फुस तथा श्वसन प्रणालियो की श्लेष्मल-कला की रक्त सवहन क्रिया बढ जाती है, कफस्राव अधिक होने लग जाता है अर्थात् कफ ढीला होकर सरलता से निकल जाता है, श्वास नलिका साफ होती है एव श्वासोच्छ्वास की क्रिया ठीक प्रकार से कुछ तेजी के साथ होने लगती है । इस दृष्टि से यह कफ नि सारक, कासश्वास हर एव कण्ठ्य है ।

अवसादक आहार-विहार या मदकारी, नशीली औषधियो के दुष्परिणाम से जब श्वसन क्रिया शिथिल होती है, तब इसके प्रयोग से वह उत्तेजित होकर श्वास की गति एव उसकी गहराई बढती है । कुकुर कास, तमक श्वास, एव जीर्ण श्वसन प्रणाली के शोथ आदि विकारों मे इसके प्रयोग से उक्त प्रकार से श्लेष्मकला का रक्त-प्रवाह बढकर कफ पतला होकर निकलने लगता है, उक्त विकारों में लाभ होता है । ऐसी दशा में शुद्ध कपूर का सेवन उचित मात्रा मे पान में करते हैं । अथवा—[१]

प्रयोग न [१] हिंगुवटिका–(कपूर और हीग सम-भाग थोडे से मधु के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियां बना ४-४ घ टे से अदरख के रस के साथ) सेवन से तमक श्वास मे लाभ होता है । प्रतिश्याय में कर्पूरासव का सेवन तथा कपूर का बार-बार सू घना लाभकारी है ।

[२] हृदय तथा रक्त सवहन सस्थान पर—कपूर के सेवन से हृदय को जो उत्तेजना प्राप्त होती है, उसका प्रभाव रक्ताभिसरण क्रिया पर पड़ता है, जिससे रक्तवाहिनियो मे सकोचन होकर धमनियो के रक्त का दवाव बढता है, एव नाडी की गति जोरदार होती है । इस प्रकार कपूर अपने प्रभाव से अधिक उष्णता या अन्य किसी कारण से उत्पन्न हुई हृदय एव रक्ताभिसरण की विकृति, अनियमितावस्था या शैथिल्य या अवसाद को दूर कर देता है । इसीलिये कहा जाता है कि कपूर हृदय के सरक्षण कार्य को सम्पन्न करता है । साथ ही साथ यह रक्त के श्वेतकणो की अभिवृद्धि करता है ।

कपूर का उक्त प्रभाव स्वस्थ हृदय की अपेक्षा अस्वस्थ या दुर्बलावस्था पर ही अधिक पड़ता है । सान्निपातिक ज्वर, फुफ्फुस पाक आदि मे जब हृदय दौर्बल्य से नाडी दुर्बल हो जाय और हृदयावसाद (Heart Failure) के लक्षण हो तो उक्त कपूर-हिंगु वटिका अच्छा काम करती है । यदि रोगी इस गोली को निगलने

---

१ यह प्रयोग डा देशाई की पुस्तक से लिया गया है । अन्य प्रयोग देखें कपूर की बनावटें नं. १ में ।

मे असमर्थ हो तो आर्द्रक रस मे घोटकर उसमे आधी या चौथाई रत्ती कस्तूरी मिला चटा देवें। एसी दशा मे कपूर का जैतून तैल मे वनाया हुआ त्रिलयन अधस्त्वक् सूचिकाभरण द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। इसे कैम्फर इन आयल इजेक्शन (Camphor in oil Injection) कहते हैं। एक सी सी. से २ सी. सी तक के एम्पुल मे १॥ से ६ ग्रेन तक कपूर रहता है।

ग्रन्थि ज्वर, आन्त्रज्वर, शीतला, मसूरिका तथा विसर्प आदि मे हृदय के सरक्षणार्थ तथा मस्तिष्क एवं सुषुम्ना केन्द्र के उत्तेजनार्थ कपूर दिया जाता है, जिससे वात प्रकोप नहीं होने पाता। आगे ज्वर पर प्रयोग नं १६ देखिये। ध्यान रहे तीव्र ज्वरादि की दशा मे हृदय के उत्तेजनार्थ डिजिटेलिस की अपेक्षा कपूर का प्रभाव वहुत उत्तम होता है। कपूर हृदय के साथ ही साथ मस्तिष्क के नीचे के केन्द्र स्थानों की उत्तेजना प्रदान करता है। अन्दर जमे हुए कफ को ढीला करके निकालता, कास वेग को शांत करता, तथा श्वासोच्छ्वास के केन्द्र-स्थान को और रक्ताभिसरण को भी उत्तेजना देता है। डिजिटेलिस तो केवल हृदय और रक्ताभिसरण क्रिया को ही उत्तेजित कर सकता है।

वातजन्य हृदय की धड़कन, कम्पवात, अपस्मार, योषापस्मार तथा उन्माद आदि मे—

२—भीमसेनी या चीनिया कपूर को थोडे से मद्यसार मे घोट कर १ या २ रत्ती की गोलिया वना दिन मे ३-४ वार १-१ या २-२ गोलिया सेवन कराते है।

प्राय उदर मे सचित हुआ वात ऊर्ध्वगामी हो हृदय की क्रिया मे वाधा पहुँचाता है, श्वास रोग पैदा करता एव हृदय की धडकन को वढा देता है। ऐसी दशा मे उक्त प्रयोग न. १ की कर्पूर हिंगुवटिका ३-३ घटे मे देने से हृदय का फूलना, धड़कना, कांपना, श्वास विकार दूर होता है।

३—आभ्यन्तर नाड़ी सस्थान एव मज्जातन्तुओ पर—यह अल्पमात्रा मे देने से वेदनास्थापन, मेध्य एव आक्षेपहर कार्य करता है। मस्तिष्कगत वात नाड़ी तथा कसेरुका (Vertebra) के मज्जातन्तु के अपतत्रक, कम्प आदि आक्षेप प्रधान रोगो मे कपूर का उक्त प्रयोग न २ उत्तम कार्य करता है। अथवा—

३—शुद्ध कपूर का सेवन मात्रा २-२ रत्ती के प्रमाण में अर्जुनारिष्ट के साथ दिन मे २ या ३ वार कराते रहने से लाभ होता है।

४—मज्जातन्तु की पीडा या नाड़ी शूल (नर्वस सिस्टम की पीडा) पर कपूर की मात्रा दो रत्ती तथा वेलाडोना या अफीम चौथाई रत्ती-दोनो का मिश्रण सेवन कराने से तथा साथ ही साथ कपूर दो भाग और पिपरमेंट (पोदीना सत) तथा अजवायन का सत १-१ भाग इन सवको एकत्र मिश्रण करने पर जो तरल 'अमृतधारा' तैयार होता है उसे पीडा स्थान पर पक्षी के पर से लगावें।

५—एक भाग कपूर को ४ भाग काले तिल के तैल या जैतून तैल या शुद्ध रेंडी तैल के साथ खरल कर वेदना स्थान पर धीरे-धीरे मर्दन करने से नाडी शूल आमवात (गठिया) जन्य सधिशूल, पेशियो की आक्षेप-जन्य पीडा तथा शरीर का कोई भी भाग पिच जाने से या मोच आने पर होने वाली पीडा, कमर की पीडा आदि दूर होती है। आगे कपूर के औषधि प्रयोग मे कपूर तैल देखें।

६—कपूर २॥ रत्ती और अफीम आधी रत्ती दोनो के मिश्रण की १ गोली वना सोते समय निगल कर ऊपर से सोंठ की चाय वना पीवें। तथा मोटा कपडा ओढकर लेट जावें। पसीना आता है, नीद आती है तथा पीड़ा कम हो जाती है। इस प्रकार कुछ दिनो के उपचार से पुराना गठिया भी दूर हो जाता है।

७—कपूर २॥ तोला खरल कर उसमे गन्ने का सिरका २॥ पाव तथा गुलावजल २॥ पाव मिलावें। फिर उसमे कपडे को भिगो भिगोकर वार वार पीडा स्थान पर रखने से आमवात की पीडा, स्नायु पीडा, तथा मस्तक की पीडा भी दूर होती है। मस्तक की पीडा पर—

८—कपूर को तुलसी के पत्र के रस मे श्वेतचन्दन के साथ पत्थर पर घिसकर लेप करें।

९—मासपेशियो की तथा रक्तवाहिनी सिराओ की पीडा निवारणार्थ कपूर और अफीम को राई के तैल मे मिलाकर मर्दन करने से लाभ होता है। आमाशय की पीड़ा भी इससे दूर होती हैं।

[४] पाचन सस्थान पर—कपूर के सेवन से प्रथम मे ठडक की और फिर उष्णता की प्रतीति होती है। जिससे रक्त संवहन, लालास्राव एव कफ निःसरण की वृद्धि होती है। अत यह मुखदौर्गन्ध्य आदि मुख के रोगो मे प्रयुक्त होता है। यह रुचिवर्द्धक तथा वातपित्तशामक होने मे तृष्णारोग को शमन करता है।

आमाशय मे पहुँचकर यह रक्ताभिसरण क्रिया को बढाता है जिससे पाचक रस की वृद्धि होती है। वायु का अनुलोमन होता है। इस तरह यह दीपन कार्य सम्पन्न करता है। इसीलिये यह अग्निमाद्य, अतिसार (विशेषत उष्णकालीन अतिसार), वमन, विसूचिका की प्रारम्भिक अवस्था, आध्मान, शूल, पैत्तिक ज्वर, वृक्करोग तथा भूतोन्माद के कारण होने वाले वमन आदि मे लाभदायक है। आन्त्र मे इसकी क्रिया जन्तुघ्न एव आक्षेपहर होती है। किन्तु ध्यान रहे यह तीक्ष्ण होने के कारण इसका अतिमात्रा में सेवन आमाशय पर लेखन कर्म करता है जिससे अरुचि, हृल्लास एव वमन आदि होने लगते हैं।

१०—कर्पूरासव—उत्तम मद्य (रेक्टिफाईड स्प्रिट अथवा मृतसंजीवनी सुरा) ५ सेर लेकर शुद्ध चीनी मिट्टी के पात्र मे रख उसमे शुद्ध कपूर या भीमसेनीकपूर ३२ तोला, इलायची छोटी, नागरमोथा, सौंठ, अजवायन और काली मिरच का चूर्ण ४-४ तोला मुख सन्धान कर १ मास तक सुरक्षित रख पश्चात् छानकर शीशियो मे रक्खें।

मात्रा—५ से २० बूद बताशा, मिश्री अथवा सौफ के अर्क के साथ देने से हैजा और अतिसार शीघ्र दूर होता है। अथवा—

११—देशी कपूर १५ तोला कूट कर एक बोतल मे भर उसमे उत्तम मद्य ३० तोला और शुद्ध अफीम दो तोले डालकर बोतल का मुख अच्छी तरह बन्द कर रक्खें। ७ दिन पश्चात् काम मे लावें।

मात्रा—१ से ३ बूद तक मिश्री चूर्ण या बताशे के साथ देने से हैजे की उल्टी और दस्त शीघ्र बन्द होते हैं। अथवा—

१२—अर्क कपूर—कपूर ६। तोले लेकर छोटे छोटे टुकडे कर मद्यार्क (रेक्टिफाइड स्प्रिट) ३० तोले मे मिला बोतल को खूब हिलाओ। जब कर्पूर गल कर अच्छी तरह मिल जावे, तब उसमे पिपरमेट का शुद्ध तैल [आयल मेथल पिपरेटा] १॥ तोले मिला दो। बस अर्क कपूर तैयार हो गया।

मा.त्रा—२ से १० बूद बताशे मे डाल खिलावें। जब तक कै और दस्त बन्द न हो तब तक १५-१५ मिनट या आधे आधे घण्टे से इसे देते रहे। रोगी के बलाबल के अनुसार मात्रा न्यूनाधिक की जा सकती है। अर्क कपूर देने के बाद लगभग १ घण्टे तक पानी नही पिलावें। यदि रोगी को पहले से ही प्यास अधिक लगता हो तो अर्क कपूर की मात्रा वाष्प जल [डिस्टिल वाटर] या आकाश जल के साथ देना चाहिए।

नोट—ध्यान रहे कर्पूर के उक्त सब प्रयोग हैजा की प्रारम्भिक अवस्था में ही काम देते हैं। अन्तिम अवस्था में इनसे विशेष लाभ नहीं होता।

उक्त कर्पूरार्क के स्थान में यदि 'अमृतधारा' (देखो ऊपर प्र. नं. ४) का प्रयोग किया जाय तो और भी उत्तम होता है। अमृतधारा में तीनों द्रव्य समान भाग न लेते हुए निम्न प्रमाण से भी यह बनाया जाता है।

१३—अमृतधारा—पिपरमेट १ भाग, कपूर २ भाग और अजवायन सत ३ भाग मिलाकर रख देने से शीघ्र ही सबका तरल हो जाता है। इसे बताशे या शुद्ध जल के साथ मात्रा ५ से ७ बूद तक देने से लाभ होता है। इससे आध्मान [पेट का फूलना], पेट की पीडा आदि उदर विकार, उदर कृमि एव भूतोन्माद की अवस्था मे होने वाली वान्ति भी दूर होती है।

लू लगने पर कय दस्त हो या केवल वान्ति हो तो वह भी उक्त अर्क कपूर या अमृतधारा के सेवन से दूर होती है। डाक्टर देसाई का निम्न कर्पूर मिश्रण भी उत्तम लाभकारी है।

१४—कर्पूर मिश्रण—कपूर १० रत्ती, बादाम १॥ तोले और चीनी १॥ तोले लेकर प्रथम कपूर और चीनी को एकत्र घोटें, फिर बादाम मिलाकर खूब घोटें। घोटते समय थोड़ा थोडा पानी मिलाते जावें। लगभग ढाई पाव तक पानी मिला देने पर कपडे से छान कर बोतल मे भर रक्खें—

मात्रा—२॥ तोले से ८ तोले तक सेवन कराने से विसूचिका मे हृदय की कमजोरी, चक्कर आना आदि

दूर होते हैं। यह उत्तेजक है, ज्वर की सुस्ती को भी दूर करता है।

छोटे बच्चो के आध्मान और उदर शूल पर कर्पूराम्बु या कर्पूर पानीय का प्रयोग लाभदायक होता है–

१५–कर्पूराम्बु—१ सेर शुद्ध जल या वाष्पीय जल मे कपूर ८ रत्ती पीसकर मिला दें अथवा पतले कपडे मे कपूर को बाधकर डालें।

मात्रा–१ से ५ तोले तक आवश्यकतानुसार पिलावें। इससे मुखशोष, दाह, एव बेचैनी आदि भी दूर होती है।

१६–पैत्तिक तृषा तथा शीतला, मसूरिका, ग्रन्थि ज्वर आदि पर—तृषा के शमनार्थ–कपूर, श्वेतचन्दन और अगर को जल के साथ महीन पीस कर सिर, ललाट और शरीर पर प्रलेप करे।

शीतला, मसूरिका आदि ज्वर की दशा मे रोगी सुस्त हो या प्रलाप करता हो, नाडी अशक्त हो तो कर्पूर हिंगुवटिका [देखो प्रयोग न १] ३-३ घण्टे मे जल से या अदरख के रस से देवें।

अथवा २-३ रत्ती शुद्ध कपूर दूध मे घोलकर देवें। यदि नाडी बहुत ही कमजोर और जल्दी जल्दी चलती हो तो कपूर हिंगुवटिका के साथ एक या दो सरसो भर कस्तूरी भी मिलाकर अदरख के रस के साथ देवें। रोगी बेहोश हो तो उक्त प्रयोग को जीभ पर रगड देवें। जब तक नाडी न सुधरे ४-४ घण्टे मे यह उपचार करे। साथ ही साथ रोगी के पगतल और हृदय स्थान पर तारपीन तैल की धीरे धीरे मालिश करे अथवा राई का पलस्तर लगावें। यदि इससे रोगी के सिर मे पीडा होने लगे या गरमी बढ जाय तो इसका प्रयोग बन्द कर देवें। यह उपचार बडी सावधानी के साथ किया जाता है।

ज्वरोष्मा और लू के निर्वारणार्थ उक्त कर्पूराम्बु की मात्रा मे इमली का गूदा और खाड ३-३ माशे मिलाकर पिलावें। यदि ज्वर मे कफ सूख गया हो, खासने पर कफ न निकले, रोगी बहुत परेशान हो तो कपूर हिंगुवटिका को शहद के साथ देवें। बेहोशी मे इसे ही जीभ पर रगडें। इससे रक्ताभिसरण और श्वासोच्छ्वास को उत्तेजना मिलकर कफ ढीला पड निकलने लगता है।

उदर शूल पर–

१७–कपूर जायफल और हल्दी एकत्र पानी मे पीसकर गर्म कर उदर पर प्रलेप करे।

मुख दौर्गन्ध्य पर–

१८–कपूर, शीतलचीनी और भुना सुहागा एकत्र पीस गोली बना मुख मे धारण करे। यदि आत्र और गुदामार्ग मे कृमि हो तो कपूर को गर्म जल मे घोलकर वस्ति देवें।

१९–कृमि पर–छोटे छोटे बच्चो के पेट मे कृमि हो या चिन्नू हो तो कपूर १ या २ रत्ती तक गुड मे मिला खिलावे। बडो को कपूर ५ रत्ती तक देवे और कपूर के घोल की वस्ति देवें।

२०–प्रसूतोन्माद, भूतोन्माद एव अन्य उन्माद पर—कपूर की मात्रा २ रत्ती दिन मे तीन बार ब्राह्मी स्वरस या सारस्वतारिष्ट के साथ सेवन करावें।

५ मूत्रवह सस्थान एव प्रजनन सस्थानो पर—कपूर वृक्को को उत्तेजित कर मूत्र अधिक लाता है अर्थात् मूत्रल है, साथ ही जतुघ्न भी होने से यह मूत्रकृच्छ्र और पूयमेह (सुजाक) मे विशेष उपयोगी है। अल्प मात्रा मे देने से यह कामोत्तेजक (बाजीकरण) है, किन्तु अधिक मात्रा मे (दीर्घकाल तक सेवन से) कामावसादक, जननेन्द्रिय निर्वलकारक, गर्भाशय उत्तेजक और रज स्राववर्धक है। यह स्तन्य शमन भी है।

क्लैव्य (नपुसकता) रोग मे पाक आदि कई औषधियो के साथ यह दिया जाता है। अति कामोत्तेजना की दशा मे यह अधिक मात्रा मे दिया जाता है। बच्चे के मृत हो जाने पर माता के स्तनो का स्राव कम करने के लिए इसका सेवन कराते हैं और स्तनो पर इसका लेप भी करते हैं।

२१–मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र पर—चीनिया कपूर को पीस महीन कपडे मे लपेट कर बत्ती बनाकर अथवा महीन कपडे की बत्ती को कर्पूरासव मे भिगोकर पुरुष के शिश्न मुख मे और स्त्री के योनिमार्ग मे धारण कराने से रुका हुआ मूत्र खुलकर हो जाता है। साथ ही साथ पेडू पर कर्पूरासव को मलकर थोडा सेंक देने से मूत्र की रुकावट शीघ्र ही दूर हो जाती है।

२२–सुजाक की दशा मे कामेन्द्रिय के उत्तेजित होने से जो अपार कष्ट होता है उसके शमनार्थ दो रत्ती कपूर और आधी रत्ती अफीम का मिश्रण (यह एक मात्रा है) दिन मे दो बार खिलाते है और कामेन्द्रिय की सीवन पर कर्पूर तैल की मालिश करते हैं। इससे मूत्र के समय की वेदना दूर होती है।

२३–प्रवल कामवासना के कारण शिश्न का निरन्तर उत्थापन होना अथवा स्त्रियो की जननेन्द्रिय मे खुजली होकर प्रवल कामवासना होने की दशा मे कपूर २-२ रत्ती केले के रस के साथ दिन मे दो बार सेवन करे और कर्पूर के घोल से इन्द्रिय प्रक्षालन करे।

स्त्रियो मे उक्त विकार के साथ ही या स्वतन्त्र रूप से गर्भाशय पीड़ा हो या कष्टार्तव हो तो कपूर १ से ३ रत्ती तक शक्ति अनुसार दिन मे २-३ बार सेवन करावे। किन्तु प्रथम विरेचन देकर कोष्ठ साफ कर देना चाहिये। अथवा–

✓२४–कपूर मात्रा ३ या ४ रत्ती तक स्याह जीरा चूर्ण १ माशा के साथ शहद मिला सेवन तथा कपूर तैल की मालिश पेडू व कमर पर करने से गर्भाशय की तीव्र पीडा और मासिक धर्म बडे कष्ट के साथ होना आदि विकार दूर होते हैं।

२५–प्रसव वेदना और प्रसवोपरान्त होने वाली मानसिक क्लान्ति के निवारणार्थ कपूर ५-७ रत्ती तक पान के बीडे के साथ खिलावे। प्रसूता के आक्षेप पर कपूर मात्रा २ रत्ती के साथ रस कपूर १ रत्ती मिलाकर देने तथा ऊपर से एरण्ड तैल पिलाने से लाभ होता है।

✓२६–स्वप्नदोप, शुक्रप्रमेह या अनैच्छिक वीर्यपात मे इसके समान लाभदायक औषधिया बहुत कम हैं। कपूर २ रत्ती और अफीम ½ रत्ती का मिश्रण खुरासानी अजवायन चूर्ण १ माशा के साथ रात्रि मे सोते समय सेवन करें।

(६) त्वचा पर कपूर का प्रभाव और प्रयोग—कपूर तीक्ष्ण गुण युक्त होने से इसका प्रलेप शोथ कोथ प्रशमन, रक्तोत्क्लेशक, वेदनास्थापक और चक्षुष्य (नेत्र को हितकारी) है। स्थानीय नाडियो को यह प्रथम उत्तेजित एव पश्चात् अवसादित करता है जिससे शैत्य की प्रतीति होती है। यह रक्तवाहिनियो को प्रसारित एव स्वेदग्रन्थियो को उत्तेजित करता है। अत यह स्वेदजनन और दाह प्रशमन है। इसीलिए यह ज्वर और दाहकारी विकारो पर उपयोगी है। मसूरिका, रोमान्तिका, आन्त्रिक ज्वरो, ग्रंथिज्वर आदि मे कर्पूराम्बु (प्र न १५) का उपयोग किया जाता है, जिससे हृदय को बल मिलता है व ताप भी कम होता है।

यह त्वग्रोगकारक एव प्रतिक्षोभक होने से इसे ४ गुना तैल मे मिला कर जीर्ण आमवात, मोच, मरोड, चोट, मासपेशियो की ऐंठन से उत्पन्न पीडा, कटिशूल पार्श्वशूल आदि (देखो प्र० न ५) पर, तथा जीर्णकास, बच्चो की खांसी, फुफ्फुसावरण शोथ आदि की दशा मे इसकी मालिश की जाती है।

२७—उकवत, पामा (एग्झीमा), अपरस, दाद, चमडे का फटना, कान के ऊपरी भाग मे खुजली और व्रण होना, अग्निदग्ध व्रण एव दूषित व्रणो पर कपूर और श्वेतकत्था समभाग, सिन्दूर, कपूर से आधा भाग इन तीनो को एकत्र महीन खरल कर उसमे कपूर से १० गुना घृत मिला ठडे जल से १२१ वार धोकर सब पानी के निथर जाने पर काच के पात्र मे सुरक्षित रक्खें। इस मलहम के लगाते रहने से लाभ होता है।

२८—गर्मी या उपदश के चट्ठो पर—कपूर को एक कटोरी मे जलाकर तुरन्त ही उसमे थोडा घृत डाल कर घोट कर रक्खें। इसे बार बार लगाने से अथवा उक्त मलहम के लगाने से भी लाभ होता है।

गुप्तस्थान की खुजली दाद आदि पर—कपूर १ भाग यशद भस्म ½ भाग एकत्र चमेली के तैल या नारियल के तैल के साथ खरल कर रक्खें। इसके लगाते रहने से या कपूर को वेसलीन मे मिला कर लगाने से शिश्न, योनि के चारो ओर होने वाली खाज, पामा आदि चर्म व्याधि दूर होती हैं। विचर्चिका (Rhagades) पर भी यह प्रयोग लाभकारी है। कपूर २ मासे और सुहागा २॥ तोला का लेप शिश्न की खुजली नाशक है।

३०—अन्य स्थानो की खुजली पर—कपूर दो भाग तथा चूना और हल्दी चूर्ण १–१ भाग इन तीनो के मिश्रण को नारियल तैल मे मिला कर मर्दन करें।

३१—शय्याक्षत पर—रुग्ण दशा मे खाट पर चिरकाल तक पडे रहने से शरीर मे होने वाले व्रणों (Bed Sore), पर कपूर को मद्य मे मिला कर कूल्हे जाघ और पीठ पर लगाते रहने से अथवा कर्पूरासव को लगाते रहने से व्रण नही उठने पाते। यदि उठे हो तो ठीक हो जाते हैं।

३२—विकृत व्रण या जहरवात पर—कपूर को पीस कर छिड़कते रहने से शीघ्र लाभ होता है। छिडकने या बुरकने के लिये कपूर को खरल मे घोटते समय थोडे से रेक्टिफाइड स्प्रिट से आर्द्र कर लेने से चूर्ण बन जाता है, खरल मे चिपकता नही।

शस्त्र से कट जाने पर कपूर को पानी में घिस कर लगाते हैं।

३३—शीतपित्त (पित्ती उछलना), उदर्द आदि पर—कपूर के चूर्ण (प्र नं ३२) को नारियल तैल मे मिला मालिश करें।

३४—नेत्र के विकारों पर—मोतियाबिन्दु—भीमसेनी कपूर को कमल मधु मे खरल कर रक्खें। इसे नित्य नेत्रो मे लगाते रहने से मोतियाबिन्दु का बढना रुक जाता है, तथा दृष्टि शक्ति यथास्थित रहती है। आख का जाला भी इससे दूर होता है।

फूले पर—वट (बरगद) वृक्ष के दूध मे कपूर को खरल कर लगाते रहने से महीने तक की फूली शीघ्र कट जाती है। अधिक काल की तथा बहुत बढ़ी हुई फूली पर शस्त्रक्रिया ही करनी पडती है।

आखो की सुर्खी और दर्द पर—कपूर और लाल चन्दन को पानी मे घिस कर आख के ऊपर लगाते हैं।

आखो की जलन पर—कपूर दो से ४ रत्ती तक लेकर ५ तोला केले के पानी मे घोट कर शीशी मे भर रक्खें। इसे सलाई से लगावें। इस प्रयोग से आखो से ढरका या पानी बहना भी दूर होता है।

आखो की बरोनी झडते हो, तो नीम पत्र के रस मे कपूर को घिस कर लगाते हैं।

३५—एक श्रेष्ठ नेत्राजन—कपूर दो माशे, त्रिफला का महीन चूर्ण ५ तोला नारियल का पानी ४० तोला और कमल मधु २ तोला लेकर प्रथम त्रिफला चूर्ण को रात्रिभर नारियल जल मे भिगो रक्खे। प्रात धीमी आच पर पकावें। लगभग १२ तोले जल शेष रहने पर छानकर पुन. औटावें। जल गाढा हो जाय, तब उसमे कमल मधु और कपूर मिला खूब खरल कर शीशी मे सुरक्षित रक्खें। इसे सलाई से नित्य रात्रि मे आजने से नेत्रो के प्राय. समस्त विकार, जलन, लालिमा, फूला, जाला, शोथ आदि दूर होकर दृष्टिशक्ति तेज होती है।

कपूर के अन्यान्य प्रयोग—

कफ रोगो पर कपूर का प्रयोग विशेष लाभकारी होता है। श्वास, कास, हूपिंग कफ (कुकर कास), श्वासनलिका शोथ आदि पर इसके प्रयोग से कफ ढीला होकर खासते ही निकल जाता है, घबराहट दूर होती है, हृदय को बल प्राप्त होता है।

३६—श्वास पर—श्वास का वेग जब जोरो से उठता है, तब २-२ घण्टे से कर्पूरहिंगुवटिका (प्र न १) का सेवन कराने तथा छाती पर कर्पूर तैल या तारपीन तैल की मालिश कराने और ऊपर से सेक देने से कष्टपूर्वक सास का आना या सास का फूलना दूर होता है और हृदय की तीव्र धड़कन मे लाभ होता है।

३७—कास पर—जीर्ण कास रोग पर कपूर का उपयोग कफ एव कासनाशक औषधियो के साथ करे।

बच्चों के कास रोग पर कपूर को तैल मे मिला और गरम कर रात्रि के समय बच्चे की छाती पर धीरे धीरे मर्दन करने से लाभ होता है।

३८—श्वासनलिका शोथ पर—कपूर २ रत्ती तक पान के रस के साथ या शहद के साथ ४-४ घण्टे से सेवन करावें तथा छाती पर कपूर तैल या तारपीन तैल की मालिश करें। विशेषत वृद्धो की श्वासनलिका शोथ पर यह शीघ्र लाभ देता है।

३९—जीर्ण प्रतिश्याय या पीनस पर—किसी छिद्र वाले पात्र मे कपूर को जलाकर छिद्र पर कागज की नली रख दें। उसमे से निकलते हुये धूम्र को नासिका द्वारा बार बार ऊपर को खीचते रहे। ऐसा कुछ दिन करते रहने से पीनस पर आशातीत लाभ होता है। किन्तु ध्यान रहे इस प्रकार धूम्रपान करते समय मुख और

सिर को अच्छी तरह आच्छादित कर लेना चाहिए ।

साथ ही साथ रोगी को व्योपादि वटी (शार्ङ्गधर सहिता की) के साथ कपूर २ रत्ती तक दिन मे दो वार सेवन करावें । अथवा—

कपूर २ रत्ती के साथ खुरासानी अजवायन चूर्ण २ रत्ती और शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण आधी रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा है) शहद के साथ देवें । कोई कोई वत्स-नाभ के स्थान मे कुनैन मिलाते हैं ।

कपूर को वन तुलसी के रस मे मिलाकर नस्य देने से भी पीनस मे लाभ होता है । दूषित कृमि नष्ट हो जाते है ।

४०—नहरुआ (स्नायुक कृमि Guinea worm) पर—कपूर की मात्रा २ से ५ रत्ती तक घृत मे मिला सेवन कराते हैं । तथा कपूर और नरक्चूर २-२ तोले पीसकर ३ तोले गुड मिला थोडा गरम कर जव पतला हो जाता है तव एक महीन वस्त्र के टुकडे पर फैलाकर केन्द्र भाग मे छिद्र रख नारू पर चिपका देते हैं । २-३ दिन मे उक्त प्लास्टर के छिद्र मार्ग से समस्त नाहरू निकल जाता है । अथवा कपूर २ भाग मे एलुवा १ भाग मिला दोनो को खरल कर लगाने से नारू की वेदना शान्त होती है ।

४१—दूषित व्रणो पर—कपूर को पानी मे पीसकर इस घोल से व्रण को धोते रहने से दूषित कृमि नष्ट हो जाते है और कृमि नही पडने पाते । जानवरो के व्रण मे कीडे पड गये हो तो कपूर चूर्ण उसमे भर दे ।

४२—दन्त कृमि पर—दात या दाढ़ मे क्षत, पोल या गढा हो गया हो, उसमे कृमि हो, अत्यन्त वेदना हो तो अर्क कपूर मे फाया तर कर खोल मे भर दें, अथवा कपूर को वट वृक्ष के दूध मे मिलाकर अथवा केवल कपूर के ही छोटे टुकडे को दात या डाढ के नीचे दवाने से लार वह कर दन्तकृमि नष्ट हो वेदना दूर होती है ।

४३ कर्पूर मजन— कपूर १ तोले, फिटकरी का फूला, अकलकरा, माजूफल, सुहागे की खील ६-६ माशे और तज व लवङ्ग ३-३ माशे और सेलखडी (चाक मिट्टी) १० तोले सवका महीन चूर्ण वना रक्खें । इस मजन को दांत और डाढ पर धीरे धीरे मल कर कुछ देर वाद कुल्ले करने से समस्त विकार दूर होते हैं । दांत सुदृढ होते हैं ।

४४—नकसीर पर—कपूर को गुलावजल या साधारण शीतल जल मे पीसकर नासिका मे टपकावें । नया धनिया के हरे पत्तो के रस मे या वन तुलसी के पत्र रस मे कपूर को पीसकर मस्तक एव सिर पर धीरे धीरे मर्दन करने से लाभ होता है । कपूर को वार वार सुघाने से भी लाभ होता है ।

४५—रक्तार्श पर—कपूर की धुनी गुदमार्ग मे देने से रक्तस्राव वन्द हो जाता है ।

स्थावर जंगम विषों पर कपूर का प्रभाव—

४६—सखिया के विष पर—कपूर १ माशा तक गुलाव के अर्क (गुलाव जल) मे घोट कर पिलाते है ।

कुचला, वत्सनाभ, अफीम और मद्य के विष पर—कर्पूरासव का सेवन जल मे मिलाकर वार वार कराने से विष की शान्ति होती है एव हृदय और मस्तिष्क को वल प्राप्त होता है ।

विच्छू, वर्र आदि के दश स्थान पर कपूर को सिरके मे पीसकर लगावें या अर्क कपूर को वार वार लगावे । विच्छू के तीव्र विष पर ४ रत्ती कपूर पान के वीडे मे रखकर खिलावें ।

कर्पूर तैल—

कपूर के वृक्ष से जो प्राकृतिक तैल निकलता है, उसे हिम तैल, शीतांशु तेल आदि कहते हैं । यह चरपरा, उष्ण, कफ एव आमनाशक, आक्षेप, कटिशूल, आध्मान, मांसपेशी की पीड़ा, शूल, आमवात, वात वेदना आदि वातरोग नाशक, स्वेदक, उग्र ज्वर, शिरोरोग, भग्नरोग, दन्तरोग, छाती की पीडा, खासी मे होने वाली पीडा आदि मे इसका व्यवहार मालिश प्रलेपादि के रूप मे लाभप्रद है ।

कृत्रिम कर्पूर-तेल—आगे कपूर की वनावटें या औषधि प्रयोग मे देखिये ।

४७—केश प्रसाधनार्थ—कपूर १ तोला तथा चौकिया सुहागा २ तोला दोनो को पीस एक पाव जल मे पकावें । १५ तोला जल शेष रहने पर उतार कर शीतल होजाने पर इसे हाथो मे थोडा थोडा लेकर वालो मे अच्छी तरह

मलकर शुद्ध पानी से धो डालें। वालो का सिमटना, रूसी मैल आदि दूर होकर वे मुलायम हो जाते हैं। वालो का झड़ना वन्द होता है, तथा उनकी जड़ें मजवूत होती हैं। ऊपर से थोडा कर्पूर तेल लगा लेना चाहिये।

कपूर की औषधोपयोगी मात्रा विचार—कपूर की अधिक मात्रा विशेष रूप से घातक तो नहीं किंतु विषाद-जनक होती है। अत. इसकी मात्रा विचारपूर्वक दें।

वेदना एव आक्षेप के निवारणार्थ यथाशक्ति वृद्धि या उत्तेजना और स्वेद (पसीना) की वृद्धि के लिये इसकी सर्वसाधारण मात्रा आधी रत्ती तक है। कपूर का व्यवहार तरल रूप मे शीघ्र परिणामकारक होता है। अत कपूर को मद्यसार मे मिला अर्क वना लेते हैं। अथवा कपूर के साथ पिपरमेंट और अजवायन सत्व मिला तरल वना लेते हैं। अथवा ८ भाग दूध मे १ भाग कपूर को घोटकर कपूर दुग्ध मिश्रण को चाय के छोटे चम्मच मे डालकर ३-३ घण्टे से देते हैं। किंतु कभी कभी शीघ्र लाभ की दृष्टि से इसकी या इसके कर्पूरार्क, कर्पूरवटी, अमृतधारा आदि योगो की अत्यधिक मात्रा कई वार देने मे आती है जो विषादजनन और कभी कभी घातक भी हो जाती है।

इसकी लगभग दो मासे की मात्रा विषादजनक और साधारणत. १ तोला की मात्रा घातक हो जाती है। छोटे वच्चो को १५ रत्ती की मात्रा ही घातक हो जाती है।

कपूर के विपाक्त लक्षण और उपचार—

प्रथम स्नायु मण्डल एवं वातनाडियो मे उत्तेजना अत्यधिक वढती है। पश्चात् शैथिल्य, आलस्य, अत्यन्त थकावट, अन्तर्दाह, मुह और गले मे दाहयुक्त वेदना, हृल्लास (जी मिचलाना), कभी कभी वमन और कभी कभी विरेचन, सिर मे चक्कर, नेत्रो मे जलन, नेत्र की पुतली फैल जाना, कभी कभी प्रलाप, कभी कभी वेहोशी (वेहोशी या सन्यास प्राय अन्तिम लक्षण है), हाथ पांव ठडे, सर्वाङ्ग मे झिनझिनी, नाडी क्षीण किंतु विशेष स्फुरणयुक्त, कमर मे पीड़ा, मूत्रावरोध, हाथ की पेशिया जकड जाना, ओष्ठ काले पड जाना श्वासोच्छ्वास मे कष्ट तथा मूर्च्छा और मृत्यु। वालको मे विशेषत आक्षेप के लक्षण होकर मृत्यु होती है।

उक्त प्रकार से मृत्यु प्राय वहुत ही कम (कही लाखो मे एक की) कपूर के विपाक्त प्रभाव से मृत्यु होती है। यथायोग्य उपचार से रोगी शीघ्र ही सुधर जाता है।

उपचार—प्रारम्भ में वमन करा देना ठीक होता है। जव वमन किये हुये पदार्थ मे कपूर की गध न आवे तव वमन कराना वन्द करें। वमन कराने के लिये स्टमकपम्प का प्रयोग सुविधाजनक होता है। रोगी को वीच-वीच मे शुद्ध हींग (भुनी) १-१ रत्ती खिलाते रहे।

किंतु कपूर का प्रभाव विशेष रूप से आत्र में पड़ जाने से अतिसार के अल्प लक्षण हो तो वमन के स्थान मे विरेचन कराना ही उचित होता है। किंतु रोगी का अतिसार आन्तरिक दाह के कारण रक्तातिसार मे परिणत हो गया हो तो अवरोधक औषधि देनी चाहिये। ऐसी दशा मे वीच-वीच मे प्रवाल और मकरध्वज का मिश्रण देते रहना ठीक होता है। प्रवाल से दाह की शाति होती है, तथा मकरध्वज यथावश्यक उष्णता को यथास्थित रखते हुए हृदय को वल प्रदान करता है। वृहत-कस्तूरी भैरव की भी योजना ठीक होती है।

पाश्चात्य चिकित्सक—उपद्रवो की शाति एव हृदय को उत्तेजित करने के लिये डिजिटेलिस या सोडियम वेन्झोएट (Sodium Benzoate) का प्रयोग करते हैं। वार-वार अमोनियां सुधाते हैं। आक्षेप के निवारणार्थ मारफिया या क्लोरोफार्म का भी प्रयोग करते है। तथा मूर्च्छा की दशा मे सिर पर शीतक्रिया, वर्फ आदि धारण कराते हैं। आवश्यकतानुसार रोगी को कृत्रिम श्वास कराते हैं। उत्तेजना वढाने के लिये काफी और तेज चाय का भी प्रयोग ठीक होता है।

वैद्य लोग इसके विपाक्त परिणाम के निवारणार्थ रोगी को छोटी पीपल और खाड को एकत्र पीसकर खिलाते हैं तथा ऊपर से खूव पान खिलाते हैं। कोई वैद्य कमलपुष्प को पीस उसका शर्वत वनाकर पिलाते है।

कपूर की वनावटें या औषधि प्रयोग—

अधिक विस्तारभय से हम यहा ऐसे ही प्रयोग देते हैं, जिनमे कपूर की विशेष प्रधानता है। वैसे तो शास्त्रों मे कई प्रयोग भरे पडे हैं जिनमे कपूर का प्रमाण अन्य द्रव्यो से न्यून होता है, या जिनमे कपूर की अपेक्षा अन्य

द्रव्यो की अधिकता एव प्रधानता होती है, जैसे कर्पूर सुन्दर वटी, कर्पूरादि गुटिका, कर्पूरह्योरस, चन्द्रकला रस इत्यादि ।

कर्पूर शोधन—इसका एक प्रकार ऊपर दिया जा चुका है। योगरत्नाकर की विधि इस प्रकार है—गोदुग्ध, त्रिफला क्वाथ और भागरे का रस समान भाग एकत्र मिला इसमे कपूर को एक प्रहर तक खरल करने से वह शुद्ध हो जाता है ।

(१) कर्पूर हिंग्वादि वटी और कर्पूर रस—शुद्ध कपूर, हीग, अफीम, नागरमोथा चूर्ण और इन्द्र जौ का चूर्ण १-१ भाग लेकर एकत्र पानी मे घोट पीसकर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। यह अतिसार, ज्वरातिसार, रक्तातिसार और सग्रहणी मे लाभकारी है ।

कर्पूर रस—उक्त प्रयोग में जायफल १ भाग और हीग के स्थान मे शुद्ध हिंगुल (सिंगरफ) मिला दें तो यह भैषज्यरत्नावली का कर्पूर रस होता है। इसमे कोई कोई सुहागा भी १ भाग मिलाते हैं। कर्पूर रस मे उक्त सब गुण हैं और यह उग्र रक्तातिसारनाशक है। शीघ्र रक्त को रोकता है। आन्त्रिक ज्वर के अतिसार मे भी इसे देते है। अजीर्णजन्य अतिसार मे अपचन, उदर मे आध्मान, शूल एव हृदय की धडकन विशेष हो तो इसके प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। यह अनिद्रा और प्रलाप को भी दूर करता है। विशूचिका (हैजा) मे भी अच्छा काम करता है। हैजा की दशा मे दूषित मल निकल जाने के बाद रोगी को १-१ या २-२ घण्टे पर इसका सेवन अदरख के रस मे मिलाकर करावें। पित्तज व वातज ग्रहणी मे यह विशेष उपयोगी है। रक्तातिसार के प्रारम्भ मे ही इसका उपयोग ठीक नही होता ।

ध्यान रहे, कर्पूर रस को केवल पानी के स्थान मे अदरख रस के साथ ३-४ घटे खरल कर आधी आधी रत्ती की गोलिया बना लेना ठीक होता है। मात्रा १ से २ या ३ गोली दिन मे ३ बार जल के साथ देवें ।

उक्त कर्पूर हिंग्वादिवटी का प्रयोग श्रीमान् वैद्यराज प जगन्नाथप्रसाद शुक्ल के अगद तन्त्र (तृतीय भाग) से लिया है। उन्होने इसका नाम कर्पूर रस दिया है।

(२) कर्पूर तैल—कपूर १ तोला गरम खरल मे डालकर घोटता जाय और थोडा थोडा उसमें नारियल या तिल तैल डालता जाय। इस प्रकार ५ तोले तैल के साथ घोटकर शीशी मे भर रक्खें ।

अथवा कपूर के चूर्ण को ४ गुना नारियल या तिल या जैतून के तैल मे मिला बोतल मे भर मजबूत डाट लगा तेज धूप मे रख दें। ३-४ घण्टे बाद इसे काम मे लावें। यह तैल वेदनानाशक है। चोट लगने, जीर्ण आमवात, कमर के दर्द पर, शोथ, सन्धिसकोच, गर्भकालीन पीडा, मासिक धर्म या प्रसूतावस्था मे होने वाला कटिशूल आदि पर इसका मर्दन १०-१५ मिनट करने से ही लाभ होता है ।

(३) सिर दर्द, सिर की खाज और बालो के गिरने पर कर्पूर तैल न २—कपूर, मुलैठी, महुआ और खस २॥-२॥ तोले लेकर प्रथम कपूर को छोड शेष तीन को पानी के साथ पीसकर कल्क बनालें। नागरबेल (पान) के ४ सेर रस मे यह कल्क और १ सेर तिल तैल मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे कपूर मिला बोतल मे भर रक्खें। इस तैल की मालिश से सिर पीडा और खुजली का नाश होता है और बालो का झडना बन्द होता है। —भा भै र.

(४) कर्पूरादि लेप (वीर्य स्तम्भनार्थ)—कपूर, पारा और सुहागा कच्चा समभाग एकत्र खरल कर और थोडा थोडा अगस्तिया (अगथिया) का रस और शहद मिला लेप बनालें ।

इसे शिश्न पर लेप कर एक प्रहर तक वैसे ही रहने दें, फिर धोकर स्त्री समागम करें, अत्यन्त वीर्य स्तम्भन होता है। यह प्रयोग नागार्जुन कथित है ।

—भा. भै रत्नाकर ।

(५) कर्पूर कस्तूरी वटी—कपूर, कस्तूरी और शहद समभाग लेकर खूब खरल कर आधी आधी रत्ती की गोलिया बना रक्खें। यह ज्वर एव शैथिल्य की दशा मे उपयोगी होती है ।

(६) ताजे घाव पर—कपूर चूर्ण १। तोले लेकर शुद्ध घृत ५ तोले में पीसकर चाकू, तलवार आदि के घाव या क्षत मे इसे भर कर ऊपर से पट्टी बाध देने से वह

शीघ्र ही भर जाता है। न तो उसमे पीडा होती और न वह पकता ही है। —वगसेन।

(७) कर्पूर मलहर (कपूर का मलहम)—कपूर के समभाग श्वेत राल, मुर्दासग और मोम एव वेसलीन या घृत ५ भाग लेकर प्रथम वेसलीन या घृत को गरम कर उसमे मोम मिला दें। फिर उसे नीचे उतार कर जब थोडा गरम रहे तब ही उसमे कपूर, राल और मुर्दासग का चूर्ण मिला लें। फिर इस मिश्रण को थाली मे डाल १०–२० वार शीत जल मे धोकर चौडे मुख की शाशी मे भर रक्खें। यह घाव या फोड़ो के लिये विशेष लाभकारी है। सडे हुये घावो को भी शोधित कर शीघ्र भर देता है।

कपूर कचरी [Hedychium Spicatium]

इस हरिद्रा कुल (Scitaminaceae) की वनौषधि की गणना चरक सहिता मे श्वासहर एव हिक्का निग्रहण गणो मे की गई है।

ध्यान रहे, कचूर (शटी), पृथुपलाशिका या नरकचूर तथा कपूर कचरी ये सब एक जाति के है। गुणधर्म मे भी साम्य है। इनका भेद कचूर के प्रकरण मे देखिये।

कपूर कचरी को कही कही छोटा कचूर भी कहते हैं हरिद्रा के क्षुप जैसे ही किन्तु लताकार इसके वहुवर्षायु क्षुप ४–६ फुट ऊ चे होते हैं। हिमालय के पहाडा लोग इसे सेंदूरी कहते हैं। क्योकि इसके फल कुछ सिन्दूरी वर्ण के होते हैं। इसके क्षुप के काण्ड पत्रमय होते है। पत्ते–डंठलरहित, लगभग एक फुट लम्वे चौडे गोलाकार भाले जैसे होते है। इसके पुष्प दण्ड शाखा प्रशाखा युक्त लगभग एक फुट लम्वे होते हैं जिन पर मृदु रोमश श्वेतवर्ण के मधुर सुगधित लम्व गोलाकार डठलरहित पुष्प १ से १॥ इंच लम्वे, पौन इ च चौडे, परतदार (एक पुष्प पर दूसरा पुष्प इस तरह नियमित) वर्षाकाल मे निकलते हैं। फल आयताकार (लवाई चौडाई से अधिक तथा दोनो किनारे समानान्तर) चिकने, चमकदार, भीतर से पीताभ, किंचित् सिन्दूर वर्ण के होते है।

जड या कन्द–क्षुप के नीचे जमीन के भीतर चारो ओर फैले हुये इसके मूलस्तम्भ गाठदार (अनेक गोल मासल खडो की माला जैसे) होते है। ये छोटे छोटे कन्द लम्व गोलाकार किंचित् कपूर जैसी सुगन्धि से युक्त, स्वाद मे कडुवे और चरपरे होते हैं। इन कन्दो को जल मे औटाकर गोल गोल टुकडे कर सुखा कर रखते हैं। ऐसा करने से ये कृमि तथा वायु आदि से दूषित नही होने पाते। ये गोलाकार चपटे, छोटे छोटे टुकड़े, कचूर के टुकडो जैसे ही वाजार मे विकते है। भेद इतना ही है कि ये कपूर कचरी के टुकडे अत्यन्त श्वेत, कपूर की विशिष्ट सुगधयुक्त होते है। इनके किनारो पर लालिमायुक्त भूरे रग की छाल लगी होती है। इस छाल पर श्वेत गोल गोल चिन्ह भी होते है। गुणधर्म मे यह कचूर की अपेक्षा उत्तम माने जाते हैं।

भारतीय या देशी तथा चीनी (विदेशी) भेद से यह दो प्रकार की होती है। ऊपर का वर्णन भारतीय कपूर कचरी का है। चीनी कपूर कचरी भारतीय की अपेक्षा आकार प्रकार में कुछ बड़ी अत्यधिक श्वेत किन्तु बहुत कम चरपरी होती है। इसका ऊपरी छिलका विशेष चिकना तथा हलके रंग का होता है। यह दीखने में सुन्दर किन्तु गुण और गंध में भारतीय से घटिया होती है।

ऊपर कहा है कि भारतीय कपूर कचरी की छाल पर श्वेत गोलाकार चिन्ह होते हैं। इन श्वेत चिन्हों के कारण ही हिन्दी में कहीं कहीं कपूर कचरी को सितरुली या 'सितर्फी' अथवा छोटा कुलंजन का एक भेद (Alpinia Galange) मानते हैं। इसमें और कुलंजन में बहुत कुछ साम्य भी है। भेद यह है कि कपूर कचरी का भीतरी भाग इसकी अपेक्षा अधिक श्वेत, सुगंधयुक्त तथा उष्ण, तीक्ष्ण एवं कषाययुक्त कटु होता है। कुलंजन में कुछ अधिक तीक्ष्णतायुक्त कटुता होती है।

कपूर कचरी भारत के पूर्वी प्रान्तों में तथा हिमालय के कुमायूं, नेपाल, भूटान आदि देशों में पंजाब में तथा चीनी देश में अधिक होती है। काश्मीर की ओर इसे गंधपलाशी कहते हैं। पंजाब की ओर इसे वन-हल्दी कहते हैं। किन्तु यह वन-हल्दी से भिन्न है।

नाम—

संस्कृत--पद्मग्रन्था (अनेक ग्रंथियुक्त मूल), सुगंधमूला, पलाशी (काण्ड पत्रमय होने से), गंधपलाशी, शटी
हिन्दी--कपूरकचरी (काचरी), गोठुरी, सितरुली
मराठी--कापूर काचरी, गीर, सुर्ची, गंधशटी, वेलतीकचर
गु.--कपूर काचली, गंधपलाशी।
बंगाली—कर्पूर कचूरी।
रासायनिक संगठन—

इसमें श्वेतसार (स्टार्च) सेल्युलोज, म्युसिलेज, अलब्युमिन, सेकरीन (शर्करा), राल, सुगंधित द्रव्य, स्थिर तैल, तथा मेथिल पेराकुमारिन् एसिटेट (Methyl Paracumarin Acetate) आदि द्रव्य पाये जाते हैं। औषधिकर्म में प्रायः इसका कन्द ही प्रयुक्त होता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह लघु, तीक्ष्ण, रस में कटु, तिक्त, कषाय, विपाक में कटु तथा वीर्य में उष्ण किन्तु आयुर्वेदानुसार अनुष्ण या शीत वीर्य माना गया है। यह अपने प्रभाव से ही दीपन कार्यकारी, कफवातशामक, वातानुलोमक जन्य और उत्तेजक है। यह रोचन, शूलप्रशमन एवं ग्राही होने से अरुचि, वमन, अग्निमांद्य, उदरशूल और अतिसार में उपयोगी है। उत्तेजक और रक्त शोधक होने से हृदय की दुर्बलता, रक्त विकारों में तथा इन्द्रिय शैथिल्य में अभीष्ट लाभकारी है।

यह कास श्वासहर और हिक्का निग्रहण होने से कास श्वास के वेग के समय इसका उपयोग अन्य कास श्वासनाशक द्रव्यों के साथ किया जाता है। हिक्का में इसके धूम्र को नासिका द्वारा खींचा जाता है।

यह शोथहर, वेदनास्थापक एवं त्वचा के रोगों का नाशक है। इसका लेप सविशोथ और आध्मान में किया जाता है। इसके चूर्ण का मंजन दन्तशूल पर करने से शीघ्र लाभ होता है। इससे मुख की दुर्गन्धि भी दूर होती है। इसके टुकड़े को मुख में रखने से दौर्गन्ध्य आदि मुख के विकार नष्ट होते हैं। घर के दुर्गन्ध तथा ग्रह बाधा निवारणार्थ इसके चूर्ण को धूप की तरह जलाते हैं।

(१) सिर के व्रण, खुजली, कृमि आदि पर—इसे मटकी में भर कपड़मिट्टी कर कण्डों की आग में जलाकर जो भस्म होती है उसे तिल तैल में मिला लगाते रहने से पूयस्राव, कण्डू एवं कृमियुक्त सिर के व्रण शीघ्र दूर हो जाते हैं।

(२) सिर दर्द आदि सिर के रोगों पर—इसके महीन चूर्ण को तैल में मिलाकर नस्य देने से लाभ होता है।

त्वचा के अन्य रोगों पर इसका लेप या उबटन लाभदायक है।

यह केश्य भी है। खालित्य में इसके चूर्ण को तिल तेल के साथ बालों में लगाते हैं। केशवर्धनोपयोगी अङ्गराग, लेपों या सौन्दर्यवर्धक चूर्ण (पाउडरों) के निर्माण में यह काम आती है।

यह ज्वरघ्न, ग्रहदोष नाशक, गुल्म रोग निवारक तथा उपदंश में भी लाभकारी है।

(३) वमन पर—इसे गुलाबजल के साथ पीसकर

मटर जैसी गोलिया वना लें। १ से ६ गोली तक जल के साथ देने से वेचैनी, उत्ताक एवं वमन की शाति होती है। छोटे वालको को १-१ गोली एक-एक या आध आध घटे से देते हैं। अथवा—

इसके साथ दारु हल्दी, छोटी हर्र, सोठ और पीपल समभाग लेकर चूर्ण वनालें। मात्रा १॥ मासा को शुद्ध घृत ६ माशे मे मिला सेवन करें और ऊपर से थोड़ा तक्र (छाछ) पीने से त्रिदोपज वमन नप्ट होती हैं। यह हारीत सहिता का एक प्रसिद्ध योग है।

(४) प्रतिश्याय तथा शूल पर—इसके साथ भुई-आमला तथा त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल) को समभाग लेकर एकत्र चूर्ण वना रक्खें। मात्रा १ या २ मासे तथा गुड और घृत ६-६ माशे एकत्र मिला सेवन करने से घोर प्रतिश्याय, पार्श्वपीडा, हृदय शूल और वस्तिशूल का नाश होता है। (योगरत्नाकर)

(५) अतिसार पर—इसका चूर्ण ६ माशे तक्र मे समभाग खाड मिला ठडे जल से देवें।

(६) अजीर्ण पर—इसका चूर्ण १ से ३ माशे तक जल के साथ अथवा इसका क्वाथ २॥ से ५ तोले दें।

(७) शोथ पर—इसके महीन चूर्ण का केवल मर्दन करते रहने से सूजन तथा वेदना दूर होती है।

कई प्रकार के अवीर, वुक्का आदि वनाने में कपूर कचरी का उपयोग होता है।

कपूर भेंडी (Turraea Villosa)

यह निम्वादि कुज (Meliaceae) की वनौषधि भारत के दक्षिण प्रदेशों मे पहाडियो पर अधिक होती है। उक्त कपूरभेंडी नाम महाराष्ट्र भाषा का है।

इसकी वडी भाडी होती हैं। पत्ते झिल्लीदार, तीखी नोकवाले होते है। फूल छोटे छोटे पीली पखुडियो से युक्त होते हैं। फलिया लम्वी गोल एव मुलायम होती हैं।

यह वम्वई की ओर महावलेश्वर, गुजराथ, कोकण, पश्चिमीघाट, मद्रास, उत्तरी कनाडा, ट्रावनकोर तथा जावा की पहाड़ियो पर अधिक पायी जाती है।

इसके अन्य भाषा के नाम प्रसिद्ध नही हैं। लेटिन मे टुरेया व्हिलोसा कहते हैं। ध्यान रहे—तिपानी (पित्तपा-पडा, पित्तवेल आदि) ये महाराप्ट्र नाम जिस वूटी के हैं, उसे भी कपूर भेंडी कहते हैं। वह इसी जाति की है, किंतु इस कपूर भेंडी से वह भिन्न है। उसका वर्णन तिपानी में देखिए। शाहतरा (पित्तपापडा) इससे एकदम भिन्न है। उसका वर्णन पित्तपापड़ा मे देखिये।

गुण धर्म—

यह रक्तशोधक, भगन्दर आदि नाडीव्रण तथा कुष्ठ नाशक है।

इसकी जड का प्रलेप भगन्दर तथा नासूर आदि दूपित व्रणो पर किया जाता है। कृष्ण कुष्ठ (काला कोढ़ रोग जिसमे त्वचा काली पड जाती है) पर इसका अन्त प्रयोग क्वाथ आदि के रूप मे किया जाता है।

कपूर-पात (Meriandra Bengalensis)

इस तुलस्यादि कुल (Labiatae) की वनौषधि के झाडीदार पौवे पहले अवीसिनिया प्रदेश मे होते थे। वही से यह भारतवर्ष मे लाई गई है। इसके पौधे वम्वई की ओर वागो मे लगाये जाते हैं।

इसका काण्ड चतुष्कोण होता है। पत्र तुलसी पत्र जैसे होते हैं। इनमें कपूर जैसी सुगन्ध आती है। वीज कोष प्राय चार खण्ड वाला और प्रत्येक खड मे १-२ वीज होते हैं। वीजो को जल मे डुवोने से लुआव निकलता है। इसे वम्वई की ओर कफूर या काफ़ूर का पान एव लेटिन मे मेरिएन्ड्रा वेंगालेंसिस कहते है।

गुणधर्म—

पौष्टिक, सकोचक, कृमिघ्न और आध्माननाशक है।

मुखक्षत और गले के रोगो पर इसके पत्तो का या जड का शीतकषाय दिया जाता है। पुष्टि के लिये वीजो का लुआव मिश्री मिलाकर देते हैं।

कपूरी जड़ी (Aerua Lanata)

यह अपामार्गादि कुल (Amarantaceae) की बहु-वर्षायु बूटी दक्षिण भारतवर्ष की मैदानी जमीन पर पाई जाती है। हिन्दी मे गोरखगाजा नाम से प्रसिद्ध है।

इस बूटी की जडें जमीन मे भी लम्बी तथा तना सीधा खडा हुआ होता है। शाखाओ और पत्तो पर सूक्ष्म काटे होते हैं। पत्ते १ से १। इञ्च तक लम्बे और लगभग आध इञ्च चौडे तथा नोकदार होते हैं। फूल हरिताभ श्वेतवर्ण के बहुत छोटे छोटे होते है। बीज काले रग के मुलायम होते हैं।

नाम—

हिन्दी—कपूरी जडी, गोरखगांजा, गोरखबूटी।
बं—चाया। गु—कपूरी माथुरी, गोरखगाजो, बूर।
म.—कपूर फुली, कुम्रपिंडी, कपूरी माथुरी। ले—ऐरुआ लानाटा।

गुणधर्म और प्रयोग—

स्नेहन, मूत्रल, अश्मरीनाशक तथा कासहर है। यह शान्तिदायक और मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है। इसकी क्रिया एव गुणधर्म प्राय अपामार्ग के जैसे ही हैं। इसमे कृमिनाशक गुण की विशेषता देखी गई है।

(१) मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर—इसकी जड का क्वाथ दोनो समय पिलाने से लाभ होता है।

(२) अश्मरी (पथरी) पर—वस्तिगत अश्मरी के नाशार्थ इसके फूलो का फाट दिया जाता है।

(३) कास, श्वास पर—इसके शुष्क पुष्प और पत्रो के चूर्ण को चिलम मे रख कर धूम्रपान करते हैं।

(४) पैरो मे हड-फूटन हो, वायटे से हो या शूल हो, तो इसके फूल और फूलों की कलियो को थैले मे भरकर उसके अन्दर पैरो को डालकर रौंदने से लाभ होता है।

(५) सिर दर्द पर—इसकी जड को पानी मे पीस कर लेप किया जाता है।
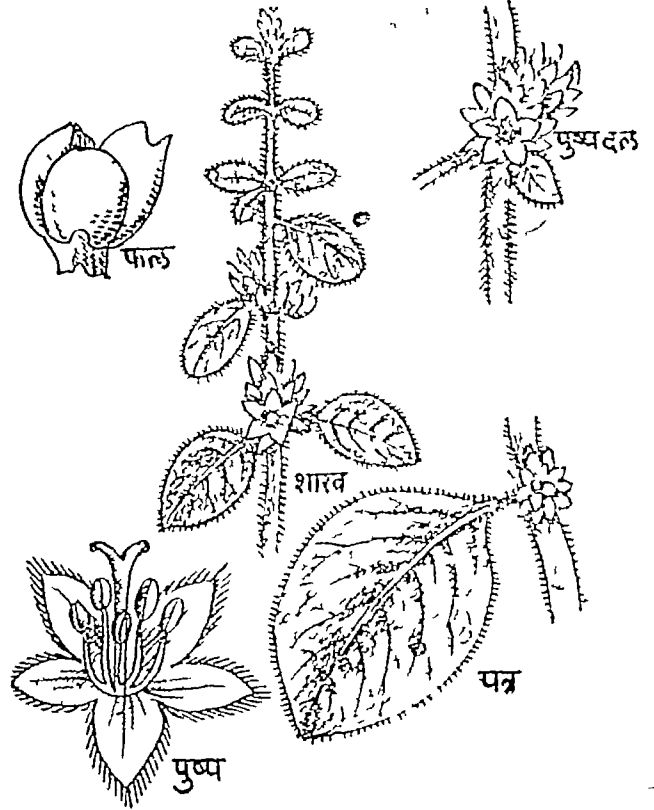
कबर (Capparis Spinosa)

यह करीरादि या वरुणादि कुल (Capparideae) की यह यूनानी वनस्पति एक प्रकार का श्वेत पुष्प का करील है। कबर या कब्र यह अरबी भाषा का शब्द है। यह शब्द करीर (करील) का ही वाचक माना जाता है। किन्तु यह कब्र नामक करीर भारतवर्ष मे प्राय नही पाया जाता। इसकी सूखी शाखायें और जडें बाहर से ही यहा आती हैं। इसके क्षुप अरब देश मे या पश्चिमी एशिया, अफगानिस्थान, बलुचीस्थान, उत्तर अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, यूरोप आदि प्रदेशो मे बहुतायत से पाये जाते है। भारत मे सिन्ध और झेलम के बीच के

प्रदेश में तथा पश्चिमी हिमालय की तराई मे, तैसे ही पूरव की ओर नेपाल तक और वम्बई की ओर महावलेश्वर आदि स्थानो मे जो इसके क्षुप पाये जाते है वे उतने प्रभावशाली नही होते। उत्तरी भारत मे जो कवरा या कौर नामक करील जाति की ही एक झाड़ी होती है वह कवर या कब्र का ही एक भेद मालूम देता है।

कवर के क्षुप प्राय ऊसर या ककरीली भूमि मे अधिक होते हैं। कभी कभी नदी या नहर के किनारो पर अथवा पुरानी दीवारों पर भी यह पाया जाता है।

करीर के समान ही तीक्ष्ण काटो से युक्त इसकी झाडियां या क्षुप होते हैं। करीर मे पत्र नही होते, इसमे होते हैं। इसकी नलिकाकार शाखायें कनिष्ठिका उगली से लेकर अगूठे जैसी मोटी होती है। शाखा के कोमल भाग पर रोऐं होते हैं। पत्ते–लम्ब गोल, मोटे, चिकने चमकीले, लगभग दो इञ्च व्यास के होते हैं। पत्तो के पिछले भाग पर डण्ठल के पास मुडे हुये तीक्ष्ण काटे होते हैं। पत्तो की गन्ध राई जैसी तीक्ष्ण और स्वाद मे नमकीन, चरपरा सा होता है। फूल–पत्र कोण से निकले हुए एकाकी श्वेत रग के अर्थात् पखुड़ियाँ श्वेत रग की १ से १॥ इञ्च लम्बी होती हैं। मुरझाने पर फूल बैंजनी रग का हो जाता है। फूलों के पु केसर बहुसख्य, सुन्दर, चरपरे होते हैं। यूरोप मे ये केपर (Caper) नाम से मसाले के रूप मे व्यवहृत होते है। इस पुष्प केसर मे भी प्राय. वे ही गुण हैं जो इसकी जड मे हैं तथापि औषधि कार्य मे इसकी जड़ या जड की छाल ही उपयोगी होती है। फल–लम्ब गोल, हरा किन्तु पकने पर लाल रङ्ग का २ से ४ इञ्च व्यास का होता है। फल का छिलका खुरदरा होता है। फल प्राय शीतकाल मे लगते हैं। बीज–गोल, चिकने और कुछ पीतवर्ण के होते हैं।

इसकी जड़ की छाल को जल मे मिला भवके द्वारा अर्क खीचने पर उसमे लहसुन जैसी गन्ध आती है। इस अर्क को तैल मे मिला घोटने से दूध जैसा श्वेत तरल पदार्थ एमलशन (Amulsion) वन जाता है।

नाम—

हिन्दी और पंजावी—कवर, कंडेर, कौर, कियारी, वीरी, कवार, पार्वती वाई। मरेठी—कब्र।
अंग्रेजी—केपर प्लांट (Caper plant)
लेटिन—केपेरिस स्पाइनोसा।

गुणधर्म और प्रयोग—

जड की छाल उष्ण, कडुवी, उत्तेजक, मूत्रल, कफ, दाहक और उदर वातनाशक, मृदुविरेचक तथा कृमिनाशक हैं। जलोदर, आमवात या सधिवात, अर्द्धांगवात, यकृत एव प्लीहावृद्धि; नष्टार्तव और दन्तपीडा पर इसका प्रयोग किया जाता है। व्रण, विद्रधि, प्लेग की गाठ, कठमाला आदि ग्रन्थि रोगो पर एव कफ और वात प्रधान व्याधियो पर आन्तरिक तथा वाह्योपचार लेप, पुल्टिस आदि रूप मे इसका व्यवहार होता है।

इसकी कली और फूल सारक और उत्तेजक हैं। स्कर्वी रोग (एक प्रकार का रक्तपित्त जिसमे मसूढे शोथ युक्त होकर रक्तस्राव होता है, अशक्ति वढती है) मे ये विशेष लाभकारी हैं। फल–दीपन, वातानुलोमन, सर और मूत्रल हैं। जीर्ण आमवात और शोथ मे उपयोगी है। फल और कलियो का सिरका या अचार यूरोप और अमेरिका के वाजारो मे खूव विकता है। करीर के फलो के जैसे ही इसके फलो का अचार या सिरका सधिवात आदि वातरोगो पर लाभदायक होता है। प्रसूता स्त्री के विकारो को और ज्वर के पश्चात् होने वाली कमजोरी को यह दूर करता है। विशेषत. इसके कच्चे फल और कलियो को नमक के पानी मे डालकर अथवा ईख के सिरके मे डालकर अचार तैयार किया जाता है। और कच्चे फलो को घृत या तैल मे तल कर कालीमिर्च और नमक मिलाकर भी इसका सेवन किया जाता है। अपच्चन या शीत के कारण जिन्हे श्वास का दौरा वार वार होता है उन्हे इसका अचार उत्तम लाभकारी है।

इसकी जड, फल और कली अपने उष्ण एव उत्तेजक गुण के प्रभाव से आमाशय और आन्त्र के दूषित आम को जलाकर दूर कर देते है तथा आन्त्र की परिचालन क्रिया को वढाकर शौच शुद्धि करते एव आत्रस्थ कृमियो को नष्ट कर वाहर निकाल देते हैं। किन्तु ध्यान रहे इसका प्रयोग उष्ण प्रकृति वालो को हितकारी

नही होता। उनके लिये आमाशय, वस्ति, वृक्कस्थान और मस्तिष्क मे हानि पहुँचाता है। अन्य प्रकृति वालो को दीर्घकाल तक इसके सेवन से खाज, खुजली उत्पन्न हो जाया करती है।

इसके बीज, पत्र और पुष्प एक दूसरे के प्रतिनिधि रूप से व्यवहार मे लाये जा सकते है। आयुर्वेद मे जिस प्रकार करीर का प्रयोग होता है प्राय तैसे ही यूनानी मे इसका होता है। इसके अभाव मे करीर लिया जा सकता है। इसके पत्ते सकोचक होते है। पत्तो का स्वरस उदर के कृमियो को नष्ट करता है। दद्रु और कठमाला पर पत्तो को पीसकर लेप करते है।

मात्रा—छाल चूर्ण २ से ४ माशे तक। स्वरस ६ माशे से २ तोले तक। क्वाथ २॥ तोले तक।

[१] अजीर्णजन्य उदरशूल, उदर कृमि तथा तीव्र वात वेदना पर—इसकी जड को जल के साथ पीस छानकर तथा उसमे थोडा और जल मिला १ से ५तोला तक पिलावें। तथा कृमिनाशार्थ पत्र-स्वरस दो तोले तक लेकर उसमे थोडा जल मिलाकर पिलाने से लाभ होता है। जहा वेदना हो, वहा इसका लेप करते हैं, तथा आमवात या सधियो की पीडा पर इसके पत्रों की पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

[२] जीर्ण गृध्रसी रोग पर—इसके बीजो को बकरी के दूध मे पका कर सेवन करावें तथा इसके फलों का अचार भोजन के साथ देते रहे।

[३] प्लीहा और यकृत वृद्धि पर—इसके फलो का सूक्ष्म चूर्ण मात्रा १ से ३ माशे तक २ तोले मृतसंजीवनी सुरा मे मिला प्रात साय सेवन करावें। तथा भोजन के साथ फलों का अचार (सिरके मे डालकर तैयार किया हुआ) देवें और इसके पत्तो को पीसकर प्लीहा या यकृत स्थान पर पुल्टिस बनाकर बाधना चाहिए।

[४] कर्णशूल पर—इसके ताजे पत्तो का रस कान मे डालने से कीटाणु नष्ट होकर शूल शमन होता है।

[५] दन्त शूल पर—इसके पत्ते और बीज के क्वाथ को मुख मे धारण कर बार बार कुल्ले करें, अथवा इस क्वाथ मे थोडी शराब मिलाकर कुल्ले करावें।

[६] दाद तथा कठमाला आदि ग्रथियो पर—इसकी जड की छाल को और पत्तो को सिरके मे पीस कर लगाया करें।

कबाबचीनी (Piper Cubeba)

आयुर्वेदानुसार कर्पूरादि वर्ग की यह औषधि उसके नैसर्गिक आकार प्रकारानुसार पिप्पली कुल (Piperaceae) की मानी गई है। इस वर्ग या कुल का वर्णन पीपर (पिप्पली) मे देखिये।

इसकी वृक्षो पर चढने वाली (आरोही) बहुवर्षायु लतायें होती हैं। काण्ड चिकना, लचीला एव जोडदार या मुडने वाला आधार मिलने पर ऊपर को चढने वाला होता है। पत्र प्राय बेर के पत्र जैसे किंतु ५-६ इच लम्बे अण्डाकार नुकीले अग्रभाग वाले चिकने तथा पृष्ठ भाग पर अनेक उभरी हुई सिराओ से युक्त होते हैं। पुष्प गुच्छो मे छोटे-छोटे श्वेत रग के या पीताभ श्वेतवर्ण के होते हैं। फल गुच्छो मे गोल मिर्च जैसे किंतु गहरे भूरे रग के प्रारम्भिक अवस्था मे डठलरहित, बढने पर प्रत्येक फल की डठल बढती है तथा वे गुच्छो मे पृथक पृथक दिखाई देते है। फलो की पूर्ण वृद्धि होजाने पर उनके हरे या कच्ची अवस्था मे ही वे गुच्छो से तोड लिये जाते हैं[१]। फलो के उक्त डठल दुम जैसे उनमे ही लगे रहते हे। फिर उन्हे धूप मे शुष्क कर लिया जाता है। ये मनोरम तीक्ष्ण मसालेदार विशिष्ट गध वाले होते हैं। इन्हे मुख में रखकर चबाने से मुख मे ठडक की प्रतीति होती है। इसीलिये इन्हे शीतलचीनी भी कहते हैं।

---

[१] फलों का प्रभावशाली तैलांश उनकी अपक्वावस्था में ही विशेप मात्रा में प्राप्त होता है। फलों के परिपक्व होजाने पर इसका तैल बहुत कुछ उड़ जाता है। तथा इनका वक्कल भी दृढ़ हो जाता है। इसीलिए उन्हें कुछ कच्ची अवस्था मे ही तोड़ लिया जाता है। ध्यान रहे पतली या मुलायम छाल वाले फल विशेप गुणकारी तथा दृढ़ या मोटी छाल वाले कम लाभदायक होते हैं।

इनमे पतली, गोल या किंचित् चिपटी दुम जैसी डेंठ होने के कारण इन्हे दुमदार या दुम की मिरच भी कहते हैं।

इसका अरबी नाम कबाब है। इसका अत्यधिक व्यापार चीनी लोग करते थे शायद इसीलिये इसे कबाब-चीनी कहने लगे। अंग्रेजी और लेटिन मे इसी शब्द से क्युबेबा (Cubeba) बना है। पिप्पली या पीपर के अनुरूप इसकी लता विशेप होने से इसे क्युबेबा पेप्पर या पाइपर क्युबेबा (Cubeba Pepper और लेटिन मे Piper Cubeba) कहते हैं।

सस्कृत के इसके ककोल या कक्कोल नाम के कारण वहुत मतभेद होगया है। विशेप खोज से पता चलता है कि इसकी लतायें प्राय एक ही आकार की होते हुये भी उनमे कई ऐसी भिन्न जाति की होती हैं जिनमें अपेक्षाकृत कुछ वडे और मोटे फल लगते हैं। इन्हे ककोल या कबावचीनी या ककोल मिरच कहते है, जिनमे छोटे एव पतले छिलके वाले फल लगते हैं, उन्हे शीतलचीनी कहते हैं। इन दोनो के स्वाद और गुणधर्म मे अन्तर है। शीतलचीनी को मुख मे चावने से जितनी ठडक की प्रतीति होती है, तैसी ककोल से नही होती और न तैसी इलायची व पिपरमेट जैसी सुगन्ध ही आती है। किंतु ककोल या कबावचीनी मे दीपन पाचन एव क्षुधावर्धन आदि गुणो की विशेपता है।

इसकी कुछ लतायें ऐसी भी होती हैं जिनके गुच्छो मे फल तो अत्यधिक प्रमाण मे लगते हैं किन्तु उनमें न कोई सुगन्ध होती है और न कोई उल्लेखनीय गुण ही होता है। किन्तु व्यापारी लोग ऐसी तथा इसी प्रकार के अन्य फलो को उक्त असली कबावचीनी मे मिला देते हैं।

असली कबावचीनी सुगन्धित एव तीक्ष्ण स्वादयुक्त होती है। इसके चूर्ण को गधकाम्ल (Sulphuric acid) के ऊपर डालने से वह एकदम लाल रंग का होजाता है। अथवा इसके क्वाथ मे आयोडीन का घोल मिला दें तो उसका अति सुन्दर नीला रंग होजाता है। यही उसकी परीक्षा है।

कबाव के भेद—चीनी, हब्शी और भारतीय भेद से इसके भेद हैं—(१) चीनी का दाना छोटा, काली मिरच के दाने से कुछ वडा, वजन में हलका, डठलयुक्त, तोडने पर भीतर से पोला तथा सुगन्धयुक्त स्वादवाला होता है। (२) हब्शी के दाने उक्त चीनी की अपेक्षा वहुत वडे कुछ लम्बोत्तर गोल वजन मे भारी तथा इसका एक सिरा कुछ श्वेत होता है। भीतर ठोस होता है, सुगन्ध खूब होती है और चवाने पर उक्त चीनी जैसी ही शीतलता देता है। उक्त चीनी के अभाव मे इसे लिया जा सकता है। (३) भारतीय कबाव का दाना गोल, उक्त चीनी की अपेक्षा कुछ वड़ा, विशेष वजनदार, भीतर यह पीताभ श्वेतवर्ण का होता है। इसमे डठल नही होती। तोडने पर यह भी उत्तम सुगन्ध देता है। उक्त दोनों के अभाव मे इसे काम मे लाते हैं। औपधि के कार्य मे इसके फल ही प्राय लिये जाते हैं। ये फल दो वर्प तक प्रभावशाली बने रहते हैं। आयुर्वेद मे अति प्राचीन काल से इसका व्यवहार होता है। चरक और सुश्रुत मे मुख के लिये नागरवेल के पान के साथ या स्वतत्र रूप से चवाने का विधान है तथा मुख रोग एव अन्यान्य कफ वातिक विकारो मे कई औपधियो के साथ इसका व्यवहार होता है।

इसकी उत्पत्ति—जावा, सुमात्रा, वोर्निओ, मलाया आदि देशो मे खूब होती है। भारत के दक्षिण मे विशेपत सीलोन, मद्रास, मैसूर मे इसकी उपज होती है।

नाम–

सं –कंकोल, कक्कोल, कोपफल, सुगन्ध मरिच।
हि.—कबावचीनी, शीतलचीनी, कंकोल, शीतल या दुमकी मिरच।
म.—कापूर चीनी, हिमसीमिरें, कंकोल।
वं.—कोकला। गु –चणकबाव, तढ़गिरी।
अं.—क्युबेबा (Cubeba), टेल्ड पेप्पर (Tailed pepper)
ले —पाइपर क्युबेबा, क्युबेबा आफिसिनेलिस (Cubeba Officinalis)

रसायनिक संगठन—

इसमे १० से २० प्रतिशत हरिताभ नीला या वेंगनी रग का उडनशील सुगधित तैल, तैलयुक्त राल (जिसमे क्युबेबिन-Cubebin नामक तत्व २ प्रतिशत और क्युबेविक अम्ल १ प्रतिशत होता है) वसा, मोम, स्टार्च, गोंद आदि होते हैं। इनमे प्रवान गुणकारी तत्व उडन-

शील तैल और क्युवेविक अम्ल (एसिड) हैं।

उक्त तेल (ककोल तेल) स्वच्छ, हलका पीताभ या नीलाभ हरित रग का, सुगधित एव उष्णकर्पू र जैसा स्वाद वाला होता है। इसमे प्रधान रूप से केडिनिन (Cadinene) सेस्क्विटर्पे स (Sesquiterpens) और किंचित् तार्पिन होता है। गुणधर्म आगे देखिये—

गुणधर्म और प्रयोग—

कबाब चीनी—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, उत्तेजक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृद्य, मूत्रल, वृष्य, मूत्रल, रस मे कटु, तिक्त, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य है। अत कफ वातनाशक, तृष्णाशामक, आर्त्तवजनन, श्लेष्म नि सारक तथा आध्मान, जडता और मुख दुर्गन्ध नाशक है।

यह कफवात शामक होने से प्राय कफवातजन्य व्याधियो पर प्रयुक्त होता है। अग्निमाद्य, अरुचि, विष्टम्भ, हृद्दौर्बल्य, स्वरभग, कास, श्वास, कष्टार्त्तव, रजोरोध, अतिसार, अर्श, ध्वजभग तथा विशेषत सुजाक, जीर्णपूयमेह, शुक्रमेह, श्वेतप्रदर एव मुखपाक आदि पर यह सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है।

ध्यान रहे—इसका क्वाथ रूप मे प्रयोग करने से इसमे जो प्रभावशाली उडनशील तेल होता है वह प्राय उड़ जाता है। अत इसका प्रयोग चूर्ण, गुटिका, कल्क, फाट रूप में अथवा केवल उसके तेल का ही प्रयोग करें तो ठीक होता है।

आमाशय और आत्र पर इसका प्रभाव कालीमिर्च के प्रभाव जैसा ही होता है। यथोचित अल्प मात्रा मे यह उत्तेजक, जठराग्निवर्धक (दीपन-पाचन) एव वातानुलोमन कार्य करता है। उचित मात्रा से अधिक होजाने पर यह पाचन क्रिया को विकृत कर अपचन के लक्षणों को प्रकट करता है। तथा अत्यधिक मात्रा में यह आमाशय, आत्र (विशेषत लघ्वात्र), वृक्क एव गर्भाशय मे क्षोभ उत्पन्न कर उत्क्लेश, वमन, उदरशूल और अतिसारादि उपद्रवो को करता है। शरीर मे खाज खुजली पैदा कर देता है।

मात्रा—चूर्ण १ से ४ माशे तक। कल्क या फाट २॥ तोला से ५ तोला। तेल ५ से २० बूंद तक। तेल की क्रिया श्लैष्मिक कला पर उत्तम होती है। सुजाक रोग मे यह विशेष लाभकारी तथा कृमिशोधक है। श्वेतप्रदरादि योनिस्रावो मे तेल का उपयोग लाभकारी है। उपदश के व्रणो पर इसे शिश्न पर लगाते है। सिरदर्द पर इसे गुलाबजल मे मिला कर लगाते है। इसके सेवन से मूत्रस्राव अधिक होता है।

इसके तैल को शीत और प्रकाशहीन स्थानो मे बन्द शीशी मे रखना चाहिए।

कवावचीनी के चूर्ण का अथवा तैल का प्रलेप या मालिश शोथयुक्त वेदना स्थान पर करते हैं। दन्तरोगो पर इसे मजनो में मिलाते हैं। नपु सकता पर इसका लेप शिश्न पर करते है, शिरोगत श्लेष्म एव सिरदर्द पर नस्य देते, शारीरिक दुर्गन्ध को दूर करने के लिये इसे अङ्गराग, उबटन या लेपों मे डालते हैं, शारीरिक शैथिल्य निवारणार्थ इसे सोठ के साथ सेवन कराते तथा सूजन या ग्रन्थि पर इसका प्रलेप करते हैं। इसके चूर्ण को दूध के साथ लेने से मुख से लालास्राव खूब होता है। यह हृदय की शक्ति को बढाता और उसकी गति को तीव्र करता है।

(१) सुजाक या मूत्रकृच्छ्र आदि विकारो पर—सुजाक की जीर्णावस्था हो या चिरकारी पूयमेह (Gleet) हो, शोथयुक्त वस्ति प्रदाह हो, इसके महीन चूर्ण की मात्रा ४॥ माशे तक किसी काच या चीनी मिट्टी के प्याले मे आध पाव मीठे दही मे मिला प्याले को गाढे वस्त्र से आच्छादित कर रात भर ओस मे या खुले स्थान मे रक्खें। प्रात अच्छी तरह घोल कर पीवें। तीन दिन मे लाभ होता है। पथ्य मे विना नमक के दही भात देवें।

नोट—सुजाकजन्य वेदना के निवारणार्थ रोगी को प्रथम मूत्र विरेचनार्थ कवावचीनी का मोटा चूर्ण ४ माशे तक लेकर आध पाव उबलते हुए पानी में मिला ऊपर ढक्कन ढक दें। १५–२० मिनट बाद छानकर ठण्डा हो जाने पर उसमें ५ बूंद चन्दन तैल मिला पिलावें। इसी प्रकार दिन में दो बार पिलाने से मूत्र साफ होकर वेदना दूर होती है। पश्चात् उक्त प्रयोग या निम्न प्रयोग रोगी की प्रकृति आदि का विचार कर काम में लावें।

इसका चूर्ण १५ रत्ती और २॥ रत्ती फिटकरी चूर्ण

एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) जल के साथ दिन में ३ वार देवें अथवा इसका चूर्ण १ से २ माशे तक दूध के साथ पिलावें। अथवा—

इसका चूर्ण और पोटाशियम नाइट्रेट (जवाखार) ५-५ रत्ती एकत्र मिला जल के साथ भोजन के २ घण्टे वाद सेवन करें। भोजन के पूर्व भी ले सकते हैं।

उक्त प्रयोगो से वस्ति का शोधन होकर रोग निवृत्त होता है। अथवा—

इसके चूर्ण का ५ भाग, मस्तङ्गी ४, चूना ३, चीना कपूर ३, इलायची ४, सनाय १/२, वन हल्दी (Curcuma Aromatica) ४, पाषाणभेद ३ और जवाखार ४ भाग इन सवका महीन चूर्ण वना रक्खें।

मात्रा—३ से ७ माशे तक दिन मे दो वार जल के साथ लेवें। साधारण सुजाक, चिरकारी सुजाक, श्वेत प्रदर एवं जनन मूत्रेन्द्रिय सम्वन्धी अन्यान्य चिरकारी विकारो पर लाभदायक है। आगे ककोलासव देखिये।

उक्त विकारो पर इसके तैल को शर्करा के साथ या गोंद के घोल में मिला खूव आलोडन करने पर जव वह दूध जैसा हो जाय तव पिलाते हैं। अथवा तैल को कैपसूल मे रखकर सेवन कराते हैं।

२-मुखपाक, मुखशोथ, स्वरभग आदि कण्ठ के विकारो पर—इसके चूर्ण को पान के रस मे खरल कर अथवा चूर्ण के साथ वच और कुलिजन का चूर्ण मिला पान के रस में खरल कर गोलिया चना जैसी वना रक्खें। इन गोलियो को चूसते रहने से अथवा पान के वीडे मे कवावचीनी के ४-८ दाने डालकर चवाने से मुखपाक, मुख मे छाले, मुख दौर्गन्ध्य, स्वरभग आदि विकार दूर हो जाते हैं।

(३) स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्वन्धी विकारो तथा पुराने प्रमेह पर—इसके चूर्ण के साथ छोटी इलायची के दाने और वशलोचन प्रत्येक का चूर्ण समभाग लेकर उसमे इसके चूर्ण का आधा भाग, छोटी पीपर का चूर्ण और सव चूर्ण का समभाग मिश्री मिला एकत्र खरल कर कपड़े से छानकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा—४-४ माशे, प्रात साय दुध के साथ लेते रहने से स्वप्नदोष दूर होकर और वीर्य की उष्णता निवृत्त हो वह गाढ़ा वनता है।

स्तम्भनार्थ—इसके चूर्ण के साथ दालचीनी, अकरकरा समभाग पीसकर शहद मे गोली वना सहवास के कुछ देर पहले मुख मे रख मुख की लार को शिश्न पर लगावें और सूखने पर सहवास करे।

पुराने प्रमेह या शुक्रप्रमेह पर—इसका चूर्ण और मिश्री चूर्ण समभाग २॥-२॥ तोले लेकर उसमे नारगी का शर्वत २॥ तोले और पानी ५ तोले मिला शीशी मे रक्खें। २ या २॥ तोला दिन मे तीन वार सेवन करें।

(४) श्वास, कास, प्रतिश्याय आदि पर—इसके मोटे चूर्ण को वीड़ो मे या चिलम मे भर भर कर धूम्रपान करने से श्वास के वेग मे कुछ कमी होती है और कास, प्रतिश्याय, कण्ठशोथ मे भी इस धूम्रपान से या इसकी धूनी देने से शान्ति प्राप्त होती है। साधारण कास मे इसके २-४ दाने मुख मे रख धीरे धीरे चवाते रहने से या चूर्ण को मधु से चाटने ही से लाभ हो जाता है। कफ सरलता से निकल जाता है।

प्रतिश्याय (जुखाम) होने पर इसके चूर्ण को सुघाने से (नस्य देने से) कीटाणु नष्ट होते हैं। प्रदाह की शान्ति होकर शीघ्र लाभ होता है। अथवा—

इसका महीन चूर्ण ५ रत्ती, ३० वूद गोद का लुआव और ढाई तोले दालचीनी का अर्क एकत्र मिला दिन मे ३ वार चटाने रहने से कफ निकल कर कास, स्वरयन्त्र प्रदाह और प्रतिश्याय मे लाभ होता है।

अथवा कासारि क्वाथ—इसके साथ मुलैठी, छोटी पीपर, हरड का वक्कल और कुलजन समभाग लेकर जौकुट करें। सव चूर्ण का १५ गुना जल इसमे मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें। मात्रा—२॥ तोले दिन मे ३-४ वार देवें। उग्र एव चिरकारी कासरोग मे परम-लाभदायक है। इस क्वाथ मे शहद मिलाकर अवलेह भी तैयार किया जा सकता है।

(५) आमातिसार पर—इसके चूर्ण के साथ थोडी सी अफीम घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया वना सेवन कराते हैं और पथ्य मे मूग, चावल और कच्चे केले की खिचडी वनाकर खिलाते हैं।

(६) कामला, शीतपित्त और श्वास नलिका के शोथ पर—कामला पर इसके चूर्ण को मूली के रस के

साथ ७ दिन तक सेवन कराते हैं।

✓शीतपित्त पर—इसे १॥ माशे तक पीसकर उसमे सिकजबीन मिलाकर चटाते हैं।

श्वासनलिका शोथ पर—इसके तैल को उष्ण जल मे डालकर उसकी वाष्प या बफारा देते है।

कबाबचीनी के अन्य योग—

१—ककोलासव—इसका मोटा चूर्ण १ भाग और मद्य (७० से ९० प्रतिशत वाली) ५ भाग एकत्र मिलाकर अथवा ७ तोले चूर्ण को ५० तोले रेक्टीफाइड स्प्रिट मे मिला वोतल मे भर दृढ काग लगाकर (यदि मद्य मे हो तो ७ दिन तथा स्प्रिट मे हो तो ३ दिन) रखा रहने देवें। बीच बीच मे हिलाते रहे। पश्चात् छानकर उत्तम शीशियो में भर रक्खें। इसे अग्रेजी या लेटिन में टिक्च्यूरा क्युबेबा कहते हैं।

मात्रा—३० से ९० बूंद तक, दुगना जल मिला सेवन से पूयमेह तथा मूत्रकृच्छ्रादि मूत्राशय सम्बन्धी विकारो मे बहुत लाभकारी है। गलक्षत, स्वरभग, कास और अग्निमांद्य मे भी इसका उपयोग किया जाता है।

२—कबाबचीनी १ तोला, देवदारु, मरोटफला १० मासे तथा कालाअगरा, कालीमिर्च, अकरकरा, सूरजमुखी के बीज और सन के बीज प्रत्येक २॥ मासा सबका महीन चूर्ण कर उसमे शुद्ध गूगल १२ तोले तथा यथोचित शहद मिला खरल कर ६–६ मासे की गोलिया बनालें। १–१ गोली दिन मे २ बार चटायें।

कमरकस [Salvia Phebeia]

यह तुलस्यादि कुल (Labiatae) की वनौषधि है। आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसका कही हमे पता नही चला। किन्तु यह भारत की मैदानी भूमि मे तथा पहाडो पर भी प्राप्त होती है।

डा. नाडकर्णी ने अपने (इडियन मटेरिया मेडिका) ग्रन्थ मे बहुत सक्षप मे इसके गुणधर्मों को लिखते हुये आयुर्वेद का सकेत (Actions and uses in Ayurued & Siddha) किया है। इससे मालूम होता है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थ मे वर्णन अवश्य होगा, जो हमे उपलब्ध नही है।

ढाक (पलाश) के गोंद को कमरकस कहते हैं। तथा कही कही असन या विजयसार के गोद को भी कमरकस कहते है। किन्तु यह उनसे भिन्न है। इसके तो प्राय बीज ही काम मे लिये जाये हैं। ये बीज पसारियो के यहा कमरकस बीज के नाम से बिकते हैं।

इसका पौधा तुलसी के पौधे से अधिक ऊचा होता है। इसका तना श्वेत एव चिकना, पत्र चौडे, नोकदार होते है। पुष्प–प्राय तुलसी के पुष्प जैसे ही मजरियो मे लगे होते हैं। तथा फल की डोडी लम्बी, मोटी कुछ बादामी रग की और चिकनी होती है जिसमे तुलसी बीज की अपेक्षा कुछ बडे हरित कृष्णाभ वर्ण के बहुत बीज होते हैं। आस्ट्रेलिया, चीन, मलाया आदि देशो से ये बीज बम्बई के बाजारो मे आते हैं और कमरकस
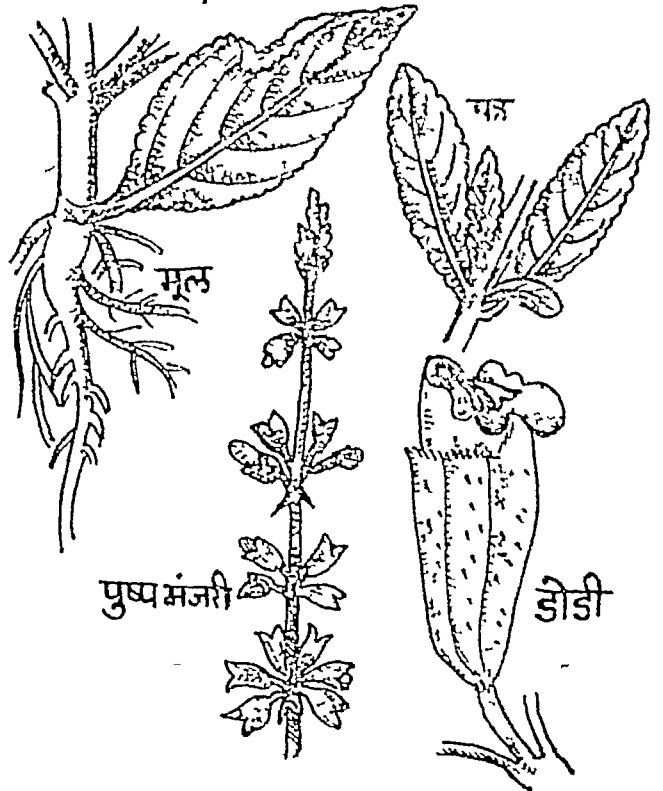
के नाम से ही बिकते हैं। तथा ये ही औषधिकार्य मे लिये जाते हैं।

नाम—

हिन्दी, वम्बई और गुजराथ में—कमरकस
बं०—सुईतुलसी, कोकाबुराटी
पं०—समुन्दरसोक, साठी। गु०—कमरकस, विजाबुरा
ले०—सालव्हिया प्लेवीया, सालव्हिया ब्राचीयाटा (S Brochiata)

गुणधर्म—

विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, मृदु पौष्टिक, उत्तेजक, दीपक, आध्मानहर, कफ तथा श्वास कासहर, मूत्रल हैं।

आयुर्वेदीय मतानुसार—

तीसरे दर्जे मे गर्म और खुश्क, दाहनाशक, यकृत, मस्तिष्क तथा हृदय के धड़कन आदि पर उत्तम, मूत्रल, गर्भस्राव तथा अर्श सुजाक, अत्यधिक रजस्राव, अतिसार आदि मे उपयोगी है।

स्तम्भनशक्ति के लिये और श्वेत प्रदर, वीर्य की कमजोरी रक्तपित्त मे भी इन बीजो का प्रयोग किया होता है।

कमरख [Averrhoa Carambola]

यह फलादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक कुल के अनुसार चागेरादि कुल (Geraniaceae) की मानी गई है।

खट्टा (खटमीठा) और मीठा (मधुर) भेद से यह दो प्रकार का होता है। इसकी ही एक विशेष जाति बिलम्बी या बेलबु (Averrhoe Bilimbi) नामक होती है। इसके फल कमरख जैसे किन्तु कुछ छोटे होते है।

कई लोगो का मत है कि यह विदेश (अमेरिका, मक्का या चीन देश) से भारत मे लाया गया है। किंतु यह बात ठीक नही जचती। क्योकि अति प्राचीन काल से आयुर्वेदीय तथा पुराणादि ग्रन्थो मे इसका कर्मरग नाम से उल्लेख पाया जाता है। कर्मार, कर्मरक आदि इसके प्राचीन नाम हैं। 'कर्मरक' शब्द का ही अपभ्रंश कमरक हुआ है। समस्त भारत के उष्ण प्रदेशो मे विशेषत. बाग बगीचो में यह बहुतायत से होता है।

इसका पेड छोटा, मध्यम आकार का, बहुत एव सघन शाखायुक्त होता है। पत्ते—अण्डाकार, दो अगुल लम्बे तथा १ या १॥ अगुल चौडे, कुछ नुकीले सीको मे लगते हैं। पुष्प—वर्षाकाल के अन्त मे, गुच्छो मे, छोटे छोटे किंचित् रक्ताभ श्वेत वर्ण के लगते हैं। फल—पुष्पो के झड जाने पर शरद या शीतऋतु मे ५ या ६ फांको वाले, हरे रग के कुछ लम्बे और मोटे से फल लगते हैं जो एकदम खट्टे होते हैं। पूस या माघ मास में ये फल पककर पीले पड जाते हैं। परिपक्व फल २॥ से ३॥ इन्च लम्बा तथा लगभग दो इन्च चौडा होता है। यह रस से पूर्ण खटमीठा होता है। कही कही इसका फल मीठा भी होता है। बीज—फल के मध्य भाग मे लम्बे और चपटे होते हैं।
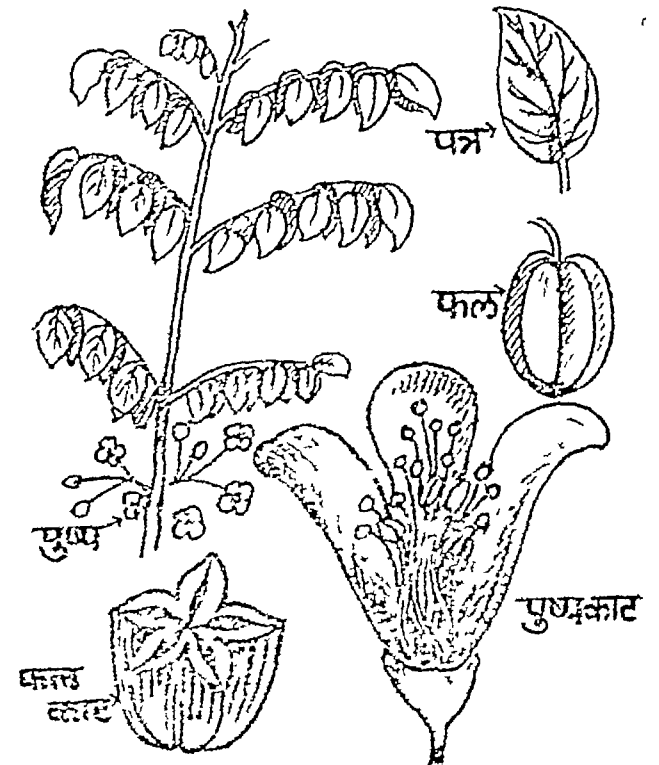
नाम—

संस्कृत—कर्मरंग, शिराल, कर्मरक, कारुक, शुक्रप्रिय, बृहदम्ल, धाराफला।
हिन्दी—कमरख, कमरंग। मरेठी—कर्मर, करमल। गुर्जर—कामरांगा, कमारक। बंगला—कामरङ्ग।
अंग्रेजी—कैरमबोल एपल (Carambole apple) चाइनीज गूजबेरी (Chinese gooseberry)

औषधि रूप मे पुष्प, पत्र, जड व बीज की अपेक्षा इसके फलो का ही विशेष व्यवहार होता है। इसमे एसिड पोटासियम आक्जलेट (Acid potassium oxalate) या आक्जेलिक एसिड (Oxalic acid) अधिक प्रमाण मे पाया जाता है। बीजो मे हर्गेलाईन नामक उपक्षार होता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, अम्ल, मधुर, कषाय रसयुक्त, रोचन, दीपन, ग्राही, कफ वातहर, अग्निमाद्य, ग्रहणी, रक्तार्श, रक्तपित्त, उन्माद, स्कर्वी आदि रक्तविकार नाशक है। विपाक और वीर्य मे कच्चा फल अम्ल और उष्ण और पका फल क्रमश मधुर और शीत होता है।

कच्चा फल वीर्य मे उष्ण होने से कफ वात शामक, मलरोधक, पित्तरोधक और पित्तकारक है। इसके अधिक खाने से छाती मे पीडा और ज्वर हो जाया करता है।

पका फल अपने माधुर्य और शीतवीर्य से पित्तशामक, रुचिकर, शोणितास्थापन, तृष्णा, रक्तविकारादिनाशक, बलकारक और कफवातकारक है। पित्त प्रधान ज्वर मे औपधि रूप मे इसका पानक (इसे बारीक कतरकर या छोटे छोटे टुकडे कर ४ तोले मे ६४ गुना पानी मिला पकावें आधा शेष रहने पर छानकर उसमे आवश्यकतानुसार नमक, चीनी, कपूर, पोदीना, इलायची, लौंग, केशर आदि मिला) थोडा थोडा पिलाते हैं अथवा इसका शर्बत काम मे लाते हैं। इसी प्रकार का पानक पाण्डु, चेचक और दाह की अवस्था मे दिया जाता है।

तृष्णा के शमनार्थ तथा पित्तज वमन और अतिसार पर फल का स्वरस पिलाते हैं। पुरुष और स्त्री के जननेन्द्रिय पर इसका उत्तेजक प्रभाव होता है। यह गर्भस्रावक है। स्त्रियो मे दूध को बढाता है। आख के जले पर इसका रस लगाते हैं। इसकी छाल मधुमेह नाशक है।

फल के खाने की विधि--पान में खाने का चूना थोडा लेकर फल के भीतर भर कर १-२ घडी रहने दें। फिर उसे काट कर खावें। इससे मुख मे कुछ भी जलन नही होती, जीभ नही फटती और उसकी तुर्शी एव तीक्ष्णता मिट जाती है। —वि कोष

फलो का अचार, चटनी, मुरब्बा, शर्बत आदि बनाते है। कढी भी बनाते हैं। अन्य साग एव खाद्य द्रव्यो के साथ इसे मिलाकर पकाने से वे अधिक सुस्वाद और सुपाच्य हो जाते हैं।

फल के रस से कपडो को धोने से दाग, धब्बे आदि दूर होकर वे स्वच्छ हो जाते हैं। इससे लोहे की जग या मूर्चा शीघ्र छूट जाती है।

इसके फलो का गुलकन्द नाशक होता है।

इसके पत्र कुछ अम्ल होते हैं। ये अमरूल (अलरोमा) या चागेरी (अम्बूटी) के पत्र जैसे ही शीतल, दाहनाशक, रक्तशोधक, ग्राही एव क्षुधावर्धक होते हैं। ये कृमिनाशक भी माने गये हैं। खाज, खुजली की औषधियो मे ये व्यवहृत होते हैं। इसके बीज निद्रा लाने वाले, ऋतुस्राव नियामक, वमनकारक और शूल नष्ट करने वाले हैं।

प्रयोग—

१—उन्माद तथा पित्तजन्य व्याधि मे फलो का शर्बत देने से लाभ होता है।

२—विसर्प पर फल का रस जौ आटे के साथ मिला लेप करते है या पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

३—कफ, पित्त और रक्तविकार पर इसके कच्चे फलो को कूटकर रस निचोड लें। फिर उसे चतुर्थांश शेष रहने तक धीमी आच पर पकावें। फिर उसे स्थिर होने के लिये कुछ देर रख छोड़ें। पश्चात् ऊपर का जल नितार कर उसमे यथोचित प्रमाण मे सेंधानमक, धनिया और जीरे का चूर्ण मिला सिरका तैयार करलें। इसे १ तोले की मात्रा मे प्रात साय पिलावें।

४—उदर की उष्मा या दाह पर इसके पत्तो को कालीमिर्च के साथ पीस छान उचित मात्रा मे पिलावें।

५–पित्तजन्य उदरशूल तथा पाण्डु पर—इसके बीजो का चूर्ण १॥ से ६ माशे पके फल के साथ सेवन करावें।

६–चोट के दर्द पर इसके ताजे फलो का रस इतना निकाले कि निथर कर उसमे १॥ छटाक चावल पकाये जा सकें। चावल पकाकर उसमे यथेष्ठ घृत और मीठा मिलाकर जिसे चोट लगी हो पिलादे और फिर उसे कपड़ा ओढ़ाकर सुला दें। इससे नया और पुराना २० साल तक का दर्द वन्द हो जाता है। यदि एक वार मे लाभ न हो तो पुन एक वार इसी विधि से चावल वनाकर खिलादें। जादू का काम करता है। सैंकडो वार का अनुभूत है। —श्री अत्तरसिंह वर्मा

छज्जुपुर (रसायन-फलो से इलाज)

७–मधुमेह, वहुमूत्रादि पर कर्मरगासव—इसकी छाल १ सेर और हल्दी ४ तोले जौकुट कर ३२ सेर जल मे पकावे। अष्टमाश शेष रहने पर छानकर शुद्ध चिकने घडे मे भर ठण्डा होने पर उसमे १ सेर शहद तथा १ पाव धाय-पुष्प चूर्ण मिला मुख मुद्राकर १ मास रखने के वाद छानकर काम मे लावें। मात्रा—१ तोले से २॥ तोले तक चूने के नितरे हुए चौगुने जल के साथ। मधुमेह, प्रमेह और वहुमूत्र को शीघ्र दूर करता है। पथ्य से रहना और व्यायाम आवश्यक है।

८–ज्वर पर इसकी जड़ का हिम पिलाते हैं।

कमल (Nelumbium Speciosum)

यह पुष्प वर्ग तथा चरक और सुश्रुत के मूत्र विरजनीय एव उत्पलादि गण का जल मे होने वाला सर्वप्रसिद्ध अपने स्वकुल (Nymphaeceae) का एक प्रमुख क्षुप है।

यह जलज क्षुप (पद्मिनी, नलिनी) भारत मे सर्वत्र, विशेषत वम्वई, काश्मीर, विहार और वगाल के जलाशयो मे अधिकता से पाया जाता है। इसका पौधा वीज से पैदा होता है। तना पतला, लम्वा, अनेक शाखाओ से युक्त होता है।

पत्ते—गोल, चक्राकार (थाली जैसे इन पर भोजन भी परोसा जाता है) १ से ३ फीट व्यास के मध्य मे नीचे की ओर ३ से ६ फीट तक लम्वे, पतली नाल से जुडे हुये होते हैं। पत्तो को हिन्दी मे पुरइन और नूतन अति कोमल पल्लव को सस्कृत मे 'सर्वत्तिका' कहते हैं। पत्ते का नीचे का भाग वहुत नरम, हलके लाल वर्ण का और ऊपरी भाग हरा, चमकीला और इतना सुचिक्कण होता है कि उस पर पानी की एक वूद भी नही ठहर सकती।

पुष्प—वसन्त ऋतु (चैत्र, वैशाख) से वर्षाकाल (सावन, भादो) तक फूलो की वहार रहती है। श्वेत, लाल और कही कही नीले वर्ण के ये फूल ४ से १० इंच व्यास के होते हैं और नाल के अग्र भाग पर लगते हैं। पुष्प दण्ड या फूलों की यह नाल ४-६ फुट लम्वी होती है। पुष्पो मे मीठी, भीनी महक या सुगन्ध होती है। पुष्पाकुर या फूल का पूर्वरूप प्रारम्भिक दशा मे पानी से

बाहर आने से पहले अत्यन्त कोमल, श्वेत रङ्ग का होता है। यह सुस्वाद, मधुर होता है। इसे पौनार कहते हैं। प्रात सूर्योदय पर विकसित होकर साय सूर्यास्त पर सकुचित होने वाले कमल सूर्यविकाशी कहलाते हैं। इसके विपरीत चन्द्रविकाशी छोटे कमल या कुमुदनी होती है जो साय या रात्रि मे चन्द्रोदय पर खिलती और प्रात वन्द हो जाती है। कमल पुष्पो मे पखुडिया या पुष्प दलो की सख्या वहुत होने से यह शतदल या सहस्रदल कहाता है।

पुष्प दलो के मध्य भाग मे केशर (किञ्जल्क पराग) से आच्छादित एक पीतवर्ण का छत्ता स्पञ्ज जैसा होता है। इस कर्णिका या बीजाधार छत्ता के नीचे से ही पुष्प के बाह्यदल निकलते हैं। इसमे स्त्री केशर की अपेक्षा पु केशर अनेक होते हैं। इस कर्णिका को सस्कृत मे पद्मवीज कोष, कमल गर्भ आदि; व० रद्मेरचाकि, मरेठी—मे धागुड, ढापणी और गुजराथी मे घीतेला कहते हैं।

इसकी गध भ्रमरो को मुग्ध कर देती है। मधु मक्खिया इस केशर या पराग के रस को लेकर जो मधु वनाती हैं, वह कमल मधु नेत्र रोगो के लिये अधिक लाभकारी होता है।

वीज—फूलो की पखुडियो के झड जाने पर बीच का उक्त छत्ता (बीजाधार कर्णिका) बढने लगता है। तथा उसके अन्दर के वीज भी बडे हो जाते हैं। ये बीज गोल आध इ च लम्वे, चिकने तथा वर्षा के अन्त मे पकने और सूखने पर काले, खूब कडे हो जाते हैं। इनको हिन्दी मे कमलघट्टा, स—कमलाक्ष, पद्मकर्कटी, मराठी व गुर्जर मे—कमलकाकडी, तथा वगला मे पद्मेर वीचि पद्मवीज कहते हैं। श्वेत कमल लाल कमल मे ये बीज अधिक होते हैं। वीज का छिलका कडा होता है, तथा भीतर मधुर श्वेत रग की गिरी होती है। यह गिरी या मीगी कच्ची दशा मे वडी सुस्वादु होती है। इसके अन्दर हरे रग की एक पत्ती सी होती है जो कड़ुवी है। उसे खाते समय या औषधिकार्य मे लेते समय निकाल दिया जाता है। ध्यान रहे, कोई कोई उक्त कमलगट्टो को ही मखाना कहते है। मखाना का क्षुप भी कमल के समान ही जलाशयो मे होता है। आकृति आदि मे भी कमल जैसा होता है, किन्तु वह कमल से भिन्न है। मखाना का वर्णन उसके प्रकरण मे देखिये। कमलगट्टो को भूनकर भी मखाना वनता है। वह उस मखाने से भिन्न है। फूल की नली (पद्मनाल, मृणाल, ☐ विस, विसनी,) जो ४ से ६ फुट तक लम्वी होती है। उसके तोडने से अन्दर महीन सूत (विसततु) निकलते हैं। इन मृणाल सूत्रो को शुष्क कर तथा वटकर देवालयो मे जलने को बत्तिया वनाई जाती हैं। प्राचीन काल मे इसके वस्त्र भी वनाये जाते थे। कहा जाता है कि इन मृणाल-वस्त्रो से ज्वर दूर हो जाता था।

कमल की जड—स० पद्ममूल, भूमलकन्द, भिस्साण्ड, शालुक। हिन्दी–भिस्सा, भसीड, मुरार, भसिडा। व—पद्मेर गेंडो, शालूक।

यह जड़ मोटी, लम्वी एव सच्छिद्र होती है। कच्ची दशा मे तोडने पर इन छिद्रो मे से भी मृणाल के तन्तु जैसे ही किन्तु उनसे कुछ स्थूल तन्तु (सूत्र) निकलते हैं। इन्हे भी बिस कहते है। (नीचे टिप्पणी देखो) इस जड की तरकारी वनाते हैं। दुष्काल के समय इन्हे पीस कर रोटी वनाकर खाते हैं।

☐ मृणाल और बिस के विषय में मतभेद है। वाग्भट के टीकाकार अरुणदत्त लिखते हैं—"मृणालं द्विविधं सूक्ष्मं स्थूलं च, तत्र सूक्ष्मं मृणालं, इतरत् बिसम्" अर्थात् सूक्ष्म व स्थूल भेद से मृणाल दो प्रकार का है। सूक्ष्म को मृणाल और स्थूल को बिस कहते हैं।

सुश्रुत ने बिस और मृणाल को कन्दवर्ग में लिया है। टीकाकार यहां बिस को सूक्ष्म और मृणाल को स्थूल पद्ममूल लिखते हैं। और भी कई स्थानों में मतभेद देखा जाता है।

वास्तव में कमल पुष्प की नाल को मृणाल, तथा इसमें से निकलने वाले सूक्ष्म तन्तुओं को बिस मानना युक्तिसंगत जचता है। इन्हें कन्द (कमल-कन्द) मानना ठीक नहीं तथापि—समन्वयार्थ 'बिष' से कमलकन्द लिया जा सकता है। चरक ने विसर्प की चिकित्सा में "दद्यादलेपनं वैद्यो मृणालं च बिसान्वितम्" —च० २१-७९

अर्थात्—विसर्प पर मृणाल (कमल-नाल) और बिस (कमल कन्द) इन दोनों का लेप करें। यहां मृणाल से खस भी लेते हैं।

चन्द्र या रात्रि विकाशी कुमुदनी या कुई या नीलोफर के वीज कमल वीज की अपेक्षा वहुत छोटे, कच्ची दशा मे लाल तथा पकने पर काले होते हैं। इन्हे 'वेरा' कहते हैं। इन वीजो को भून कर खील या लाई वनाते है। यह उपवास, व्रत मे तथा रोगी के पथ्य मे दी जाती है। नीलोफर (नीलोत्पल) अर्थात् नीले पुष्पो वाली कुमुदनी या कमल भारत मे सर्वत्र नही होता। यह काश्मीर के कुछ हिस्सो मे तिव्वत तथा चीन के किसी किसी स्थानों, मे पाया जाता है। इसके अभाव मे श्वेत कुमुदनी ही ली जाती है। तथा वाजारो मे नीलोफर नाम से प्राय यही मिलते हैं। कमलों के प्रकार पुष्पो के रग एव आकार भेद से कमल के कई प्रकार हैं। इनमे सूर्य विकाशी वड़े आकार के तथा चन्द्रविकाशी छोटे आकार के ऐसे दो प्रमुख भेदो के अन्तर्गत श्वेत, रक्त (लाल) और नील ऐसी तीन भेद निम्न प्रकार से हैं—

सूर्य विकासी–(१) पद्म–किंचित श्वेत। (२) पुण्डरीक–अतिश्वेत। (३) कुवलय, कोकनद–लाल कमल (४) नलिन–किंचित् लाल और (५) पन्पल, इन्द्रीवर–यह किंचित् नील होता है।

चन्द्र विकासी–(१) उक्त उत्पल की ही एक छोटी जाति जिसे नीलोफर कहते हैं। (२) कुमुद (कुई)–यह श्वेत और लाल दो प्रकार की होती है और (३) सौगन्धिक–यह अति नीली तथा अति सुगन्धयुक्त होती है। इसके विषय मे वहुत मत भेद है ■।

चन्द्रविकाशी उक्त कुमुदनियों का वर्णन अग्नि कुमुकुमुद के प्रकरण मे देखिये। यहा केवल सूर्य विकाशी कमलों का ही वर्णन दिया जाता है।

नाम–

सं.—कमल (जल को शोभित करने वाला), पद्म (मनोहर), अरविन्द (अराकार, चक्राकार पत्र वाला), नलिन (सुगंधित), उत्पल, महोत्पल (जल में पकने-वाला)

हि.—कमल पुरइन। म. गु०—कमल। बं०–पद्म।
अं०— सेक्रोड लोटस (Sacred Lotus)
ले.–नेलम्वियम स्पीसियोजम

रासायनिक संगठन—

इसके वीज और मूल मे राल, ग्लुकोज, मेटार्विन (Metarbin), कषायद्रव्य (टेनिन) वसा, नेलम्विन (Nelumbine) आदि क्षार तत्व पाये जाते हैं।

गुणधर्म—

लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, रस मे मधुर, तिक्त, कषाय विपाक मे मधुर और शीत वीर्य है। श्वेत, लाल, नील तीनो प्रकार के कमलो के पुष्प, वीज आदि मे उक्त गुण-धर्म के साथ ही शमन, मेध्य, स्तम्भन, हृद्य (हृदय संरक्षण) शोणितास्थापन, छर्दि निग्रहण, तृष्णा निग्रहण, अति–दाह प्रशमन, प्रजास्थापन, ज्वरघ्न, मूत्रल, वर्ण्य, त्वग्दोषहर, वल्य तथा किंचित् प्रमाण मे विषघ्न गुण पाये जाते है।

कफपित्तजन्य विकारो मे तथा मस्तिष्क दौर्वल्य, मूर्च्छा, मानसिक उद्वेग एव तज्जन्य अनिद्रा मे, वमन, तृष्णा, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्त-प्रदर, रक्तपित्त, प्रवाहिका, विसर्प, विस्फोट आदि पित्त और रक्तविकारो मे एव रक्ताल्पता मे भी इसका प्रशस्त उपयोग किया जाता है। हृद्रोग मे तथा अन्य तीव्र व्याधियो से हृदय पर आघात न पहुँचे एतदर्थ इसका प्रयोग उत्तम होता है। तीव्र ज्वर मे इसके प्रयोग से ज्वर शान्त होकर दाहादि उपद्रव दूर होते हैं और विषो का निर्हरण होकर हृदय को शान्ति प्राप्त होती है।

गर्भावस्था मे इसका प्रयोग गर्भाशय के स्रावो को वन्द करता तथा गर्भाशय को वलवान वनाता एव गर्भ का भी पोषण करता है। एतदर्थ इसके केशर को मक्खन के साथ देते हैं अथवा इसके वीजो की पेया वनाकर सेवन कराते हैं। आगे प्रयोग देखिये।

वाल्यावस्था मे विशेषत उन वालको को जिनको दस्त पतला होता है, दुर्वलता वढ़ती जाती है, क्षय ग्रस्त के लक्षण हो, इसका प्रयोग करने से दस्त ठीक होने लगता है और वल की वृद्धि होती है। वालको के लिये कमल के योग से वना हुआ 'अरविन्दासव' अमृत के

■ पीला कमल (तुर्की कमल) भारत में नहीं होता। अमेरिका, उत्तर जर्मनी, सायवेरिया आदि देशों में पाया जाता है।

स्थूल कमल का वर्णन 'रत्नपुरुष' के प्रकरण में देखिये।

समान गुणकारी है। अरविन्दासव के दो प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

कमल के भिन्न-भिन्न अङ्गों के विशेष गुणधर्म और प्रयोग—

पुष्प—शीतल, दाहशामक, हृदय बलवर्द्धक और रक्तसग्राही है। यह डिजिटेलिस के समान ही प्राय हृदय और छोटी रक्तवाहिनियो पर कार्य करता है। अर्थात् इसके सेवन से हृदय की गति शान्त होता है उसकी धडकन कम होती है। इसमे ग्राही और मूत्रल गुण बहुत कम प्रमाण मे हैं। भारत एव उष्ण कटिबन्ध मे उत्पन्न कमल की अपेक्षा ईरान, तिब्बत, काश्मीर आदि शीतल प्रदेशो मे उत्पन्न कमल मे गुणो की विशेषता अधिक होती है। अतिसार, विशूचिका, ज्वर और यकृत् के विकारो मे ये पुष्प विशेष लाभकारी होते हैं।

१. रक्तपित्त, रक्तस्राव आदि विकारो पर—लाल कमल के पुष्पो का विशेष उपयोग होता है। ऐसी दशा मे फूलो का फाट दिया जाता है।

गर्भाशय से रक्तस्राव होता हो अथवा गर्भस्राव या गर्भपात होता हो तो फूलो का फाँट अथवा कमल पुष्प या पुष्प की केशर और मुलहठी का क्वाथ अधिक लाभदायक होता है।

२. हृदय की अत्यधिक धडकन—पुष्पो के फाट या मथ के सेवन से हृदय की अनावश्यक तीव्रता तथा नाडी की तेजी मे शान्ति प्राप्त होती है।। किन्तु ध्यान रहे जीर्ण हृद्रोग या हृदय के कपाट की विकृति पर इसका विशेष प्रभाव नही पडता। यदि ज्वरादि की तीव्र उष्णता के कारण हृत्पेशी दूषित एव निर्बल पड गई हो तो इस फाट का प्रारम्भ से ही सेवन कराते रहने से अवश्य लाभ होता है। फाट जो कि चाय की विधि से ही बनाया जाता है उसकी अपेक्षा मन्थ बनाकर देना और भी उत्तम है। इसमे पानी को उबालने की आवश्यकता नही है। केशर सहित पुष्प को कूटकर [४ तोले मे १६ तोले जल के प्रमाण मे] ताजा जल मिला थोडी देर अच्छी तरह भीग जाने पर मथानी से खूब मथना चाहिये। खूब झाग उठने पर छानकर ८ तोले की मात्रा मे दिन मे दो बार पिलावें।

३ ज्वरातिसार और ज्वर से—पुष्प [नीलाफर], पुष्प केशर और अनार छाल का चूर्ण चावल के धोवन के साथ सेवन कराते रहने से रक्तातिसारयुक्त जीर्ण ज्वर मे लाभ होता है।

ज्वरावस्था मे विशेष दाह एव व्याकुलता हो ता पुष्पो को जल मे पीसकर हृदय पर लेप करते हैं। नाचे प्र न ५ देखिये—पद्मादि क्वाथ।

४. योनि शैथिल्य पर—नाल सहित एक कमल पुष्प को कूटकर उसमें फुलाई हुई फिटकरी १ माशा खूब मिला खरल कर लम्ब गोल वत्ती बना रात्रि के समय योनिमार्ग मे धारण करें। प्रात उसे निकाल डालें। ऐसा कुछ दिन करने से शीघ्र ही योनिमार्ग से वहता हुआ तरल पदार्थ वन्द होकर योनि सकुचित होती है। उसकी शिथिलता दूर हो जाती है।

५ पद्मादि क्वाथ—कमल पुष्प के साथ समभाग दोनो चन्दन, नेत्रवाला, मुलैठी, सारिवा, नागरमोथा और मिश्री लेकर जौकुट कर ८ गुने जल के साथ मन्दाग्नि पर चतुर्थांश सिद्ध किया हुआ क्वाथ ज्वर के लिये विशेष हितकारी है। इससे हृदय का उत्तम सरक्षण होकर पेशाव साफ आता है, दाह दूर होता और अतिसार भा वन्द होता है। यह क्वाथ सगर्भा स्त्री के दाहयुक्त ज्वर मे भी सफलतापूर्वक दिया जा सकता है।

६ सिर दर्द, विसर्प तथा त्वग्गत अन्यान्य प्रदाह युक्त विकारो पर—कमल पुष्प के साथ इसके कोमल पत्र, श्वेत चन्दन और आमला को पीस प्रलेप करते है।

७ फूलो का शर्बत—कमल पुष्प का स्वरस जितना हो उसमे चौथाई भाग [४ सेर मे १ सेर] शक्कर मिला कर चाशनी बना लें। यदि सूखे फूल हो तो ८ गुने जल मे उबाल अर्धावशिष्ट रहने पर छान कर उसमे दूनी शक्कर मिला शर्बत की चाशनी तैयार कर लें।

मात्रा—१ से ३ तोले तक सेवन करते रहने से रक्तपित्त, रक्तप्रदर, गर्भस्राव, तृषा, दाह, पैत्तिक सिर पीडा, भ्रम आदि की शान्ति होती है। यह लू लगने पर तथा रक्तविकार से उत्पन्न ज्वरो पर भी लाभदायक है। शीतला या चेचक रोग मे इस शर्बत के सेवन से दाह,

पीड़ा कम होकर चेचक के दाने बहुत कम निकलते है।

शुष्क पुष्पो के क्वाथ से निर्मित शर्बत की अपेक्षा ताजे पुष्पो के स्वरस का शर्बत विशेष लाभकारी होता है। यह गर्भस्राव को शीघ्र ही रोक देता है।

८. पद्ममधु [कमल का शहद]–मधु मक्खियो द्वारा निर्मित यह पुष्पो का मधु अथवा ताजे फूलो की पखुडिया तोड़ते समय जो एक शहद जैसा रस निकलता है उसे धीरे धीरे पोंछकर शीशी मे भर रक्खें। यह मधु या पुष्प रस शीतल, अत्यन्त वृंहण, त्रिदोषघ्न और नेत्र विकारनाशक है। इसे आजने से नेत्र के अनेक विकार दूर होते हैं। मात्रा—पुष्प चूर्ण १ से ६ माशे फूलो का फांट १ से ८ तोले शर्वत १ से ३-४ तोले, पद्ममधु ३० बूंद तक।

पुष्पकेशर [किंजिल्क]—शीतल, रूक्ष, कसैला, रुचिकारक, रक्त सग्राहक, कफनिस्सारक, कान्तिजनक, दाह-तृषा-पित्तशामक, वीर्यवर्धक, गर्भस्थापक [गर्भ को स्थिर करने वाला], शोप, विष और ज्वरहर और रक्त-पित्त, रक्तार्श, क्षय, मुख रोग और व्रणनाशक है।

९ गर्भावस्था के रक्तस्राव पर—चाहे किसी प्रकार का रक्तस्राव हो—इसकी केशर और मुलैठी को समभाग जौकुट कर क्वाथ वना मात्रा २॥ तोले तक गौदुग्ध के साथ नियमपूर्वक सेवन करें। इस प्रयोग से गर्भस्राव का निरोध होता है। अथवा–इसकी केशर के साथ सिघाड़ा, दाख, कसेरु, मुलैठी और मिश्री मिला गौदुग्ध मे पीस छानकर पिलावें।

१० अत्यधिक रजस्राव या रक्तप्रदर पर—इसकी केशर को मुलतानी मिट्टी और मिश्री के साथ पीस छान कर मात्रा १ से ४ माशे तक जल के साथ पिलाते है।

११. रक्तार्श पर इसकी केशर को मक्खन और मिश्री के साथ कुछ दिन चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

१२ ऊष्मा या दाह पर—उक्त केशर को शहद से या पद्म मधु से चटाते तथा इस केशर को आमले के साथ पीसकर प्रलेप करते है।

नोट–उक्त तथा आगे दिए हुए सब गुणधर्म प्रायः श्वेत कमल के हैं। लाल कमल में ये ही गुण किंचित न्यून प्रमाण में होते हैं। इसमें रक्तदोषहर तथा वृष्य (वल-वीर्य वर्धक) गुण की कुछ अधिकता होती है। लाल कमल नेत्र विकारों पर विशेष लाभकारी है तथा शीतपित्त, उदर्द, विस्फोटक (चेचक आदि विकारों) पर अधिक लाभदायक है। श्वेत कमल में शीतलता, माधुर्य आदि गुणों की तथा कफपित्तजन्य विकार नाशन की अधिकता है।

नीला कमल–शीतल, स्वादु, सुगन्धित, रुचिकारक, पित्तनाशक, रसायन मे श्रेष्ठ, शरीर को दृढ़ करने वाला और केशों के लिये हितकर है। यह वालों को काला करता है।

मृणाल (कमल नाल)—शीतल, स्वाद मे कसैली, भारी (दुर्जर), मधुरपाकी, स्तन्य (स्तनो मे दूध वढ़ाने वाली), वृष्य, सग्राही, कुछ रूक्ष, पित्त-दाह रक्तदोषनाशक, वात कफ जनक, विष्टभकारक तथा मूत्रकृच्छ्र और वमननाशक हैं।

१३ गर्भस्राव पर—दूसरे महीने मे गर्भस्राव हो जाया करता हो, तो नाल और कमल केशर को पीसकर गौदुग्ध के साथ पिलावें। यहा कमल केशर के स्थान पर नागकेशर लेना उत्तम है।

१४ मृणाल कल्प—कमल नाल को कूटकर रस निकाल उसमे काले तिल का चूर्ण घृत, शहद और खाड प्रत्येक रस को समभाग मिला सवको शुद्ध लोहपात्र मे मे भर मुखमुद्रा कर तुष के ढेर मे ऐसे स्थान पर दवावें, जिसके पास नित्य आग जलती हो। २१ दिन पश्चात् औषध निकाल कर सुरक्षित रक्खें।

इसे यथोचित मात्रानुसार सेवन कर ऊपर से खाड या काले गन्ने का रस लें, तथा पथ्यपूर्वक रहे। अम्ल, क्षार पदार्थ, क्रोध तथा मैथुन आदि का त्याग आवश्यक है। शीत स्थान मे रहना चाहिये। लगभग तीन मास तक सेवन करने से श्वेत वाल काले एव कोमल हो जाते हैं। शरीर दृढ और मनोहर हो उत्साह की विशेष वृद्धि, वल वीर्य की वृद्धि एव कोई रोग नही हो पाता। यह कल्प राजाओ के सेवन कराने योग्य है।

१५ उत्पलादि घृत—श्वेत, लाल और नीले कमल के तन्तु (मृणाल को तोडने से जो तन्तु सूत्रवत् निकलते है उन्हे लेवें, अथवा इसके अभाव मे कमल पुष्प की केशर) दो-दो तोला और मुलैठी दो तोला (सवको जौकुट कर) १२८ तोले पानी और ३२ तोले घृत (गौ घृत मिले तो उत्तम) के साथ मन्दाग्नि पर पकावें। घृत

मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। यह घृत (उचित मात्रा मे) रक्तार्श, रक्तप्रदर तथा गर्भाशय से होने वाले रक्तस्राव को रोकने के लिये वडा अकसीर माना जाता है। जिस स्त्री को हमेशा गर्भपात होने का भय रहता है, उसे गर्भपात के लक्षण शुरू होते हो तो शीघ्र यह घृत देना चाहिये गर्भपात होना रुक जाना है। इसी प्रकार इस घृत के पीने तथा शरीर पर मालिश करने से विस्फोटक और दूसरे जलन वाले रोग मिट जाते हैं।

शेष प्रयोग देखें कमल-मूल मे। (व. चन्द्रोदय)

कोमल पत्र (संवर्त्तिक)—

लघु, कसैले कुछ कडुवे, शीतवीर्य, सग्राहक (मलावरोधक), वातकारक, कफपित्तनाशक तथा दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ, अतिसार, रक्तपित्त, गुदभ्र शादि नाशक है।

पत्र स्वरस अतिसार मे पिलाते हैं। कमल के पत्तो की तथा कमल-नाल को तोड़ने से जो दूध जैसा चिपचिपा रस निकलता है वह अतिसार, मूत्रकृच्छ्र आदि नाशक है। गर्मी दूर करने के लिये पत्तो को पानी मे डालकर पिलाते हैं।

१६. दाहयुक्त तीव्र ज्वर तथा सिर शूल पर—इसके कोमल वडे वडे पत्तो को विछाकर उस पर रोगी को सुलाने और ऊपर से चादर की तरह ओढाने, तथा श्वेत कमल पुष्प के साथ पिसा हुआ कोमल पत्तो का कल्क सिर हृदयादि स्थानो पर प्रलिप्त करने से तीव्र ज्वर की ऊष्मा, दाह एव जलन दूर होती है। सिर दर्द भी मिटता है।

१७ गर्भिणी स्त्री के ज्वर पर—इसके पत्तो के साथ मुलैठी, लाल चन्दन, खस और सारिवा समभाग जौकुट कर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें। मात्रा-५ तोले तक मिश्री और शहद मिला सेवन करावें।

१८ विपम ज्वर पर कमल-हरीतकी—कमल पत्र का स्वरस १ सेर मे १ पाव हरीतकी (छोटी हर्रे) भिगो देवें। जव वे खव फूल जाय, तव सुखा चूर्ण करलें।

मात्रा—१ से ६ माशे तक ताजे जल के साथ सेवन करते रहने से (दिन मे ३ वार) जीर्ण विषम ज्वर दूर होता है।

१९ गुदभ्र श—पित्तप्रकोप से उत्पन्न वालको के गुदभ्र श (काच निकलना) रोग पर श्वेत कमल के कोमल पत्तो को शक्कर के साथ पीसकर सेवन करते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है। इन पत्तो को छाया शुष्क कर चूर्ण रूप से भी शक्कर के साथ देते हैं।

२०. विसर्प पर—कमल पत्र के साथ कोमल वट के पत्तो को जला तिल तेल मे मिला लगाते रहने से विसर्प या फैलने वाले फोडो मे आराम होता है।

कमल के वीज (कमलगट्टा)—

स्वादु, पाचक, शीतवीर्य, किंचित वातकर, रुचिकर, रूक्ष, वृष्य (पुष्टिकर), कफजनक, लेखन, ग्राही, वल्य, भारी, गर्भस्थापक, विष्टम्भकारक तथा रक्तपित्त, पित्तज वमन, दाह और रक्तविकारनाशक है। कोई कोई इसे कफ वातहर मानते हैं। वीज के भीतर की हरी या जीभी शीतल और तर होती है। हैजे पर लाभकारी है। कमल वीज का क्वाथ पसीना लाकर ज्वर को उतारता है। इस क्वाथ मे शक्कर मिलाकर पीने से खूब स्वेद आता है। लू [अंशुघात] लगाने पर इसे पिलाते हैं। वीजो को पानी मे भिगोकर वह पाना पिलाने से वच्चों की पित्तज तृषा शान्त होती है। वीज के भीतर की हरी पत्ती को घिसकर वालको को देने से लू का असर शीघ्र दूर होता है और अतिसार एवं तृषा शान्त होती है। श्वेत प्रदर यदि नया हो, जल सदृश पतला एव उष्णस्राव होता हो तो कमल गट्टे का चूर्ण या इसकी काजी या पाक बनाकर सेवन कराते हैं, शीघ्र लाभ होता है।

तृषा, दाहयुक्त ज्वर मे वीजो का फाट पिलाते हैं। कुष्ठ तथा अन्यान्य त्वग्रोगों मे वीजो को पीसकर प्रलेप करते हैं। इसकी गिरी को जल मे घिसकर वालको की तृष्णाधिक्य पर पिलाते हैं, वालको के अतिसार मे भी इससे लाभ होता है।

√२१ वमन पर—वीजो को आग पर सेंक कर ऊपर का छिलका दूर कर तथा भीतर की हरी पत्ती को अलग कर उस सफेद मिगी का महीन चूर्ण करें। मात्रा—१ से २ माशे शहद के साथ चटाने से लाभ होता है।

√२२ स्त्रियो की निर्वलता पर तथा गर्भस्राव व गर्भपात पर—वीजो के चूर्ण को मिश्री मिले हुये दूध के साथ ३-६ माशे तक सेवन कराते रहने से स्त्रियो का

शरीर सवल हो जाता है। मासपेशिया दृढ बनती हैं और वार वार गर्भस्राव या गर्भपात होता हो तो रुक जाता है। —गांवो मे औपधिरत्न

२३. स्तन शैथिल्य पर—उक्त नं २२ का प्रयोग लगभग ३ मास तक सेवन करते रहने से कुच कठोर हो जाते हैं। प्रयोग का सेवन प्रात साय दिन मे दो वार करना चाहिये तथा मिर्च, मसाला और मैथुन से वचें।

२४ हैजा पर—वीजो के भीतर हरी पत्ती को गुलाव जल मे घोट पीसकर मात्रा ३ से ५ माशे तक पिलाने से लाभ होता है।

कमल गट्टो का लावा या मखाना—वमन, श्वेत और रक्तप्रदर, गर्भाशय की शिथिलता, रक्तस्राव और वीर्य की उष्णता आदि पर लाभकारी है। इसे दूध के साथ खाते रहने से कामेच्छा [स्त्री सम्भोग की इच्छा] कम हो जाती है।

वीजकोष [कमल का छत्ता या कर्णिका]—कडुवा, कसैला, मधुर पाकी, लघु, शीतवीर्य, तृषा, रक्तविकार, मुख की विरसता और कफपित्तनाशक है।

इसे शुष्क कर और महीन चूर्ण कर मुख वैरस्य पर इस चूर्ण की १-१ चुटकी मुख मे डालते है। तथा तृषा और रक्त विकार के निवारणार्थ इस चूर्ण को मिश्री के साथ देते हैं।

पद्मकद [कमल मूल या भसिंडा]—कसैला, स्निग्ध, विपाक मे कडुवा, शीतवीर्यादि शेष सव गुण मृणाल [कमल नाल] के गुण जैसे ही हैं। यह कफवातनाशक, नेत्र हितकारी और गुल्म, कास, कृमि, मुखरोग और अर्श नाशक है। इसका चूर्ण पौष्टिक, स्निग्ध, ग्राही एव रक्त संग्राही है। वालको के लिये और अतिसार एव प्रवाहिका पर लाभदायक है। इसके चूर्ण का सत्व या श्वेतसार प्रस्तुत कर उससे अरारोट जैसा एक खाद्य पदार्थ निर्माण किया जाता है। यह चीन देश मे अधिक वनाया जाता है। इसे चीनी अरारोट कहते हैं।

इस जड को पानी मे घिसकर दद्रु आदि त्वग्रोगो पर प्रलेप करने से लाभ होता है। रक्तार्श और रक्तातिसार पर इसकी कांजी वनाकर देने से लाभ होता है। गुदभ्रंश पर इसका चूर्ण शहद के साथ देते हैं। इसकी मोटी जड़ का स्वरस, कल्क, क्वाथ या शीतकपाय [फाट] रक्तपित्त मे हितकारी है।

२५ रक्तपित्त और दाह पर—इसकी नाल को या जड़ को जौकुट कर जल और दूध समभाग मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर छानकर थोडी मिश्री पिलावें। यदि रक्तपित्त से रुग्ण माता के छोटे वालको के दात हिलते हो तो उक्त दुग्ध के पिलाने से उसके दांत दृढ हो जाते हैं।

यदि उक्त जौकुट किये हुये कल्क को नारियल के जल मे पका मिश्री या नमक मिला सेवन करें तो दाह की शान्ति होती है। शरीर मे वलवीर्य की वृद्धि होती है।

२६. मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और अर्श पर—इसकी जड़ का चूर्ण, घृत (गोघृत मिले तो और उत्तम) और मिश्री चूर्ण ६-६ माशे एकत्र मिश्रण कर उसमे श्वेत जीरा चूर्ण ४ रत्ती मिला [यह १ मात्रा है] २-३ वार दिन मे सेवन करें। उक्त तीनो विकारो पर लाभ होता है। अर्श रोगी को इस प्रयोग के अनुपान मे थोडी देर वाद तक्र पिलावें।

२७ अपस्मार [मृगी रोग] पर—श्वेत कमल की जड और श्वेत अर्क [आक, मदार] की जड दोनो को कूट पीसकर कल्क वना अदरख के रस मे घृत मिलाकर पकावें। इस घृत की नस्य से मृगी रोग का नाश होता है। —वसव राजीय

२८ सूकर दष्ट्रोद्भूत ज्वर पर—सूकर के काटने से जो ज्वर होता है उस पर इसकी जड़ को पीस कर गोघृत के साथ सेवन कराते है।

२९. मस्तिष्क शान्तिकर तैल—इसकी जड को तैल निर्माण विधि से तिल तैल मे पकाकर छानकर उसमे थोडा खस का इतर मिला रक्खें। इसे सिर पर लगाने से सिर और नेत्रो मे तरावट होकर पित्त, दाहजन्य सिर दर्द दूर होता है।

३० अजीर्ण एव तज्जन्य अतिसार पर—इसकी जड के चूर्ण की काजी वना ५-७ दिन देने से पित्त प्रकोप जन्य अजीर्ण एव अतिसार आदि विकार दूर होते हैं। उदर के सव विकार दूर होते है।

मात्रा—जड का चूर्ण ६ माशे से १ तोला तक, जड़ का स्वरस १ से २ तोले।

कमाफरियंस (Teucrium Chamaedrys)

यह तुलस्यादि कुल [Labiatae] की एक प्रकार की घास है जो वर्षा के प्रारम्भ मे विशेपत पहाडी भूमि पर पैदा होती है।

इसका उक्त नाम अरवी भाषा का है। यूनानी मे इसे कमाजरियूष तथा लेटिन मे ट्यूक्रियम क्यामीड्रिस कहते हैं। अन्य भाषा के नाम अज्ञात है।

इसका विशेष वर्णन यूनानी ग्रन्थो मे मिलता है। यह एक फुट से कुछ कम ऊची, वहुत कड्वी और चरपरी है। इसके पत्ते बलूत [वञ्ज] के पत्र जैसे और बीज सौंफ के दाने जैसे छोटे होते हैं। जड का रस कुछ लाल होता है। फूल छोटे छोटे नीले और काले रङ्ग के होते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह कटुपौष्टिक, मूत्रल, उग्रस्वेदनीय [वहुत पसीना लाने वाली], रज प्रवर्तक, प्लीहाशोथहर तथा जीर्ण कास मे लाभकारी है।

प्लीहाशोथ [वढी हुई प्लीहा] पर इसे मद्य या सिरके के साथ देते हैं तथा ऊपर से इसे सिरके मे पका कर लेप करते हैं।

आखो के नासूर पर इसकी जड को मद्य मे घिस कर डालते हैं।

छाती तथा फुफ्फुस की शीतजन्य वेदना पर इसके काढे मे शहद मिला सेवन कराते हैं।

वृक्क या बस्ति की अश्मरी पर—इसके पचाग का चूर्ण १४ माशे को २८ तोले पानी मे पकाकर तृतीयाश शेप रहने पर छानकर उसमे १०॥ माशे जैतून का तैल मिला सेवन कराते हैं।

इसके द्वारा निम्न विधि से आसव [टिंचर] तैयार किया जाता है। २८ तोले मदिरा अथवा अगूर के रस मे इसका चूर्ण ७ से ६ माशे तक [इस प्रमाण से अधिक मात्रा मे] घोलकर कुछ दिन रखने के वाद छानकर वोतलो मे भर रक्खें। यह जितना पुराना हो उतना श्रेष्ठ होता है। उचित मात्रा मे सेवन आक्षेप, जलोदर आदि उग्र उदर विकार, पाण्डु रोग, गर्भाशय का आध्मान आदि विकारो पर किया जाता है।

वातरोगो पर—इसके पचाग का स्वरस अथवा शुष्क चूर्ण का क्वाथ वना उसमे तिल तैल सिद्ध कर मालिश करते हैं।

कमीला (Mallotus Phillippenensis)

यह हरीतक्यादि वर्ग की वनौषधि, नैसर्गिक वर्गीकरण के अनुसार एरण्डकुल (Euphorbiaceae) की है।

कोई कोई वायविडग के और कमीला के वृक्षो को एक ही मानकर वायविडग के रज को ही कमीला (कवीला) मानते हैं। वास्तव मे विडग के फल तोडने पर वीजो पर जो लाल रग का एक प्रकार का आवरण सा होता है, वह कमीला नही है, और विडग कमीला का फल है। ये दोनो एकदम भिन्न भिन्न हैं। कमीला का तो मध्यमाकार का वृक्ष होता है। और विडग के वृक्ष नही, गुल्म होते हैं। तथा इन दोनो का नैसर्गिक कुल भी भिन्न है। आगे वायविडग का प्रकरण देखिये।

यद्यपि कमीला के फल और विडग के फल और विडग के फल तथा वीज प्राय एक समान (कमीला के बीज वडे होते हैं) एव समान गुणधर्म वाले है। और कमीला के अभाव मे विडग लिया जाता है, तथापि ये दोनो भिन्न जाति के हैं।

कमीला का औषधि व्यवहार भारतवर्ष मे अतिप्राचीन काल से है। चरक के विरेचन तथा सुश्रुत के अधोभागहर और व्यामादि गणो मे इसकी गणना की गई है और यूरोप की ओर इसका प्रचार गत ६० वर्ष से हुआ है।

यह भारत के पहाडी उष्ण प्रदेशो मे तथा हिमालय के तटवर्ती स्थानो मे वगला, सिन्ध, ब्रह्मा, सिंगापुर,

सिलोन, मलाया, चीन, अफ्रीका आदि देशो मे भी वहुतायत से होता है।

इसके वृक्ष सदैव हरे भरे मध्यमाकृति के २० से ३० फीट तक ऊचे होते हैं। वृक्ष का तना ३ से ४ फीट गोल तथा शाखायें प्राय मूल से निकलती हैं। मूल साधारण मोटी होती है। वृक्ष की लकडी लाल, चिकनी एव मजवूत होती है। इसे दीमक नही लगती तथा वह दियासलाई वनाने के काम मे आती है। वृक्ष की छाल चौथाई इन्च मोटी, फीट सी, ऊपर से खाकी रग की तथा भीतर से लाल होती है।

पत्र—पत्ते गूलर के पत्ते जैसे किन्तु उनसे छोटे ३ से ५ इ च लम्वे, अण्डाकार अनीदार, विपमवर्ती होते हैं। पत्र के निम्न भाग पर लाल रग की तीन सिरायें तथा पत्र वृन्त (डठल) १ से २ इ च लम्वा और उसके समीप ही गोलाकार दो ग्रन्थियां होती है।

फूल—नन्हे नन्हे मकोय के फूल जैसे मजरियो मे कुछ सफेदी लिये पीले रग के शरद ऋतु मे आते है।

फल या डोडी—छोटी झडवेरिया या वडी मटर के आकार के तीन फाक (त्रिकोष्ठीय) वाले व्यास मे आधे इ च तक वसन्त ऋतु मे लगते है। फल के प्रत्येक कोष्ठ मे १-१ काले, चिकने, गोल वायविडग जैसे वीज होते हैं। इन वीजो को ही कई लोग भ्रमवश वायविडग मानते हैं।

इन फलो के पकते समय, उन पर लालिमायुक्त चमकदार, धूल सी जमी लुई सूक्ष्म ग्रन्थिया या फल पराग उत्पन्न होता है। इसी धूल को कमीला कहते है। फलो के पक जाने पर उन्हे मोटे वस्त्र मे डाल कर रगडते है। तथा इस निर्गन्ध, स्वादरहित रज को अलग निकाल लेते हैं। इस प्रकार फलो से निकाली हुई शुद्ध कमीला या कपीली नामक रज में उसी वृक्ष की शाखादि से झडी हुई प्राय उस रग की रज मिल जाती है या मिला दी जाती है। व्यापारी लोग इसमे ई ट का चूरा, धूल आदि भी मिला देते है। अत यह दूपित हो जाता है। जैसा चाहिये तैसा लाभ नही पहुँचाता। वाजारु कमीला को जल मे डाल कर उसमे मिश्रित मिट्टी आदि के नीचे वैठ कर जल पर जो वुकनी तैरती है, उसे धीरे से निकाल शुष्क कर काम मे लेना चाहिये।

शुद्ध कमीला हलका, वेस्वाद तथा निर्गन्ध होता है, तथा उसकी लालिमा मे कुछ पीलेपन की झलक होती है। ऊगली को जल मे गीलीकर कमीला पर रखने से जो रज ऊगली मे लगे, उसे सफेद कागज पर रगड देने पर यदि कागज पर सुचिक्कन उज्जवल पीले रग की रेखा या निशान पड जाय तो उसे शुद्ध मानना चाहिये।

ध्यान रहे शुद्ध कवीला शीतल जल मे नही घुलता, गर्म जल मे थोडा घुलता है। क्षार ईथर या सुरासार (कल्कोहल) मे शीघ्र पूर्णतया घुल जाता है। जलाने पर शीघ्र वारूद जैसा जल उठता है।

नाम—

सं.–कम्पिल्लक, रक्तांग, रेची, रक्तचूर्णक।
हि –कमीला, कवीला, कपीला, कमूद, रोहिनी, रोरी, सिन्दूरी, रैनी, सेरिया।
म.–कपिला, शेन्द्री। गु.–कपीलो।

कमीला
Mallotus philippinensis, (Muell)

पत्र
पुष्प
फल
पुष्प
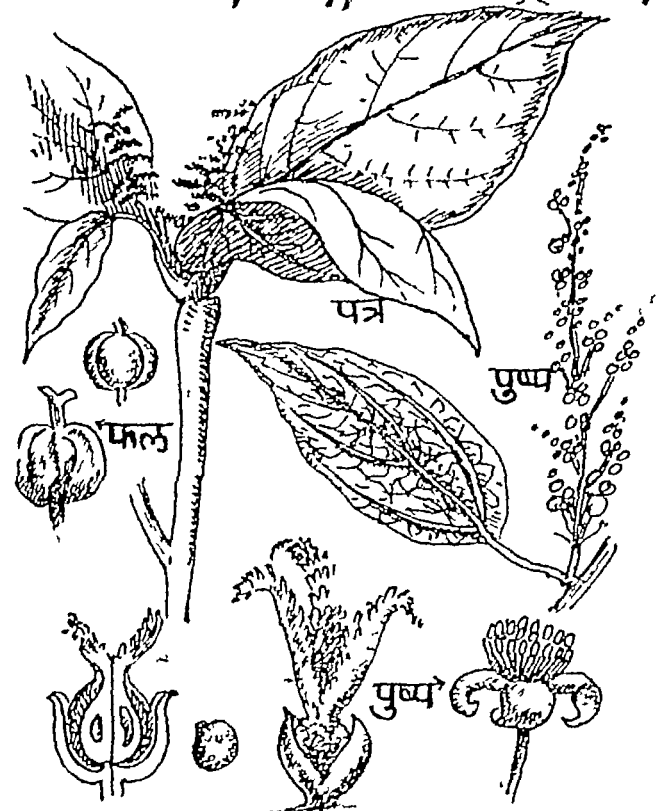
बं.--कमलागुंडी, कमिला, टुंगकेसर।
अं.--कमला डाई (Kemala dye), मंकी फेस ट्री (Monkey face tree) इसके फल को मुख में रखने से मुंह बन्दर जैसा हो जाता है।
ले.--मैलोटस फिलिप्यानेन्सिस, रोट्लेरा टिंक्टोरिया (Rottlera Tinctoria), क्रोटन फिलिप्यानेन्सिस (Croton Philippinensis), क्रोटन पंक्टेटस (Croton Punctatus) क्रोटन कोसिनियम (Croton Coccineum) ग्लेंडुली रोटलेरी (Glandulae Rottlerae)

रासायनिक संगठन--

इसमे रॉटलरीन (Rotllerin) नामक लालिमायुक्त पीले रग की राल ८० प्रतिशत होती है। इसके अतिरिक्त उडनशील तेल, निर्यास, रंजक द्रव्य, स्टार्च, अलब्युमिन आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, रस और विपाक मे कटु, उष्ण वीर्य, वात कफनाशक, अग्नि दीपक, पित्तकारक होते हुए भी पित्त सशोधनार्थ उपयोगी, अनुलोमन और तीव्र रेचन होने से आध्मान, उदर एव वातगुल्मादि पर हितकारक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, अश्मरीभेदक, कण्डु पामा कुष्ठादि चर्मरोग नाशक, व्रणरोपण, शूल शोथ रक्तपित्त और प्रमेह नाशक तथा कामोत्तेजक है। शरीर की चेष्टावह नाडियो तथा पेशियो पर इसकी अवसादक क्रिया और अन्नवह प्रणाली पर प्रक्षोभक क्रिया होती है।

इसके पत्ते—शीतवीर्य, कडुए, वातकारक, ग्राही और दीपन है। पत्तो की शाक बनाई जाती है।

कमीला को ८ गुने मीठे तेल मे या पानी मे पीसकर लगाने से शीतल और रूक्ष वायु का असर त्वचा पर नही होने पाता। दाद, छीप, झाई आदि पर लाभ होता है।

इसे शतधौत घृत मे मिला लगाने से सिर का गज या खालित्य रोग नष्ट होता है।

दाद, खाज, फुंसी आदि पर इसे गुलरोगन मे मिला कर लगाते हैं।

मात्रा—कमीला की सेवनीय मात्रा--बडो के लिये १ से ६ माशे। बालको को ५ रत्ती तक। अनुपान मे यवागू, दूध, दही, छाछ (तक्र), शहद, या गुड देते हैं।

पूर्ण मात्रा बडो को (८ से ८ माशे) तथा बालको को (८ रत्ती) देने से यह उग्र रेचन का कार्य करता है, किंतु साथ ही साथ उबकाई, जी मिचलाना, आंतो मे मरोड की पीडा सहन करनी पडती है। वमन नहीं होती। अत्यधिक मात्रा मे बेहोशी होती है। अत अधिक मात्रा मे इसे नही देना चाहिये। यदि उचित मात्रा मे देने पर लाभ न हो, तो दूसरे दिन या ४ दिन बाद उसका प्रयोग करें।

प्रयोग—

(१) कृमि पर—विशेषत गोल एव सूत जैसे उदर तथा आन्त्रस्थ कृमियो के नाशार्थ इसे ३ से ६ माशे की मात्रा मे गुड के साथ देने से वे मर कर विरेचन के साथ निकल जाते है। इसे गुड के साथ देकर ऊपर से उष्णोदक पिलाना चाहिये। एक वर्ष के भीतर के बालक को इसकी मात्रा—२ से ४ रत्ती माता के दूध के साथ देनी चाहिये। अथवा—

इसकी मात्रा १ से ३ माशे को—गोंद, कतीरा का लुआब १६ माशे, अदरख का शर्बत ४ माशे, व लौंग का अर्क ३ तोले मे एकत्र मिश्रण कर (यह बडो की १ मात्रा है) रात्रि के समय पिलावें। अथवा—

इसके समभाग—वायविडग, हरड, जवाखार और सेंधा नमक प्रत्येक का चूर्ण एकत्र खरल कर मात्रा—३ माशे तक तक्र के साथ सेवन करावें। अथवा—यह ५ भाग, वरना की छाल ४ भाग, गुलाब की कली ५ भाग तथा हरड और सेंधानमक ४-४ भाग-सबका एकत्र चूर्ण मात्रा २ से ३ मासे गुड के साथ देवें।

शास्त्रोक्त कृमिघातिनी वटिका और कृमिनाशक-त्रिफलादि घृत मे भी इसका योग रहता है।

नोट--इसके कृमिनाशक योग के सेवन के ४-५ घण्टे बाद भी यदि कोई इष्ट कार्य न हो तो थोड़े गरम दूध के साथ रेंडी तेल पिलावें।

कृमि पीड़ित रोगी के कृमि नष्ट हो जाने पर शरीर की विशेष शुद्धि एवं क्षुधा को प्रदीप्त करने के हेतु से और थोड़े दिनों तक अल्पमात्रा में इसी का प्रयोग शहद के साथ करना ठीक होता है।

(२) गुल्म (वायु गोला) पर—रोगी को प्रथम

दिन घृतपान या पतली मूग की दाल खिचडी मे ५ तोले तक घृत मिला खिलावें। दूसरे दिन प्रात इसकी मात्रा ६ माशा शहद ५ तोले मे अच्छी तरह घोलकर पिलावें। इससे पित्त का सशोधन भी हो जाता है। यह प्रयोग रोगी को ५-५ दिन वाद देते रहा चाहिये।

(३) व्रणो पर इसे समभाग या दुगने कडुवे तैल मे खरल कर उसमे फाहा भिगोकर वाधते रहने से व्रण का रोपण शीघ्र होता है।

इसे ५ तोले लेकर ४० तोले तिल तैल (पका कर ठडा किये हुए) मे मिलाकर लगाते रहने से कई कर्कट या क्यासर व्रण मे भी लाभ होता है।

इसे करज के तैल मे मिला लगाने से जलन कम हो जाती है, तथा व्रण का गीलापन कम होकर वह शीघ्र भर जाता है। यह प्रयोग अग्निदग्ध व्रण पर भी उत्तम लाभदायक है। पामा, उकौत तथा सिर पर होने वाले व्रणो पर भी यह लाभकारी है।

उपदश के व्रणो पर इसे शुष्क रूप मे ही बुरकें। अथवा—पारा गधक १-१ तोला की कज्जली में कमीला १० तोला, मुर्दासग २ तोला, कपूर ६ माशा, नीलाथोथा ३ माशा, नीम पत्र जले हुये और वावची २-२ तोला का महीन चूर्ण मिला खूव खरल कर लगभग ½ सेर शतधौत गौघृत मिला खूव फेंट कर मलहम वनालें। उपदशज व्रण के सभी सड़े गले घाव, नासूर, भगन्दर आदि पर लगाने से लाभ होता है। अथवा—

कमीला ५ तोला, शुद्ध मेहदी पत्र, नीम पत्र, वेर की जड १-१ माशे, गधक ६ माशा, नीला थोथा ३ माशा सवके महीन चूर्ण कर शतधौत गौघृत मे या सरसों तैल मे मिला रक्खे यह वर्षाती फोडे फुसिया, अरुपिका, खुजली, कर्णपाक आदि पर लगाने से उत्तम लाभकारी है—

—कविराज एच सी वर्मा, फलौदी क्वार्यस,
सवाई माधोपुर

(४) पार्श्वशूल पर—८ भाग कमीला मे १ भाग हीग मिला दही के तोड मे पीसकर चने जैसी गोलियां वना लें। १ या २ गोली सुखोष्ण जल के साथ सेवन करें। इस प्रयोग से उदर के कृमि भी नष्ट होते है।

करंज [Pongamia Glabra]

यह गुडूच्यादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक वर्गीकरणानुसार शिम्बीकुल (Leguminosae) की है। इस कुल का वर्णन तथा करज के अन्य भेदो का स्पष्टीकरण कटकरज के प्रकरण मे देखिये।

प्रस्तुत करज का ही एक छोटा उपभेद अरारी (करजी) होती है। इसका भी सक्षिप्त वर्णन आगे इसी प्रसग मे दिया गया है।

यद्यपि ग्रन्थो मे करंज के पर्यायवाची नामो मे 'चिरविल्व' नाम भी दिया गया है तथा इसके वृक्ष का आकार प्रकार और गुणधर्म भी वहुत कुछ करज से मिलता जुलता सा होने से इसे करजी भी कहते है। तथापि यह वटादि कुल (Urticaceae) की वनौषधि होने से इसका वर्णन चिलविल के स्वतन्त्र प्रकरण मे देखिये।

करज का पेड़ २० से ६० फुट ऊचा, सदा हरा-भरा होता है। पिंड का घेरा २ से ५ फुट श्वेत भूरे रंग का तथा इसी रग की वहुशाखाओ से सुशोभित रहता है। शाखायें नीचे को कुछ लटकी हुई सी होती हैं।

पत्र—सीक पर अन्तर से सयुक्त, गाढे हरे रङ्ग के स्निग्ध, चिकने, अण्डाकार, लम्वगोल, २ से ६ इञ्च लम्वे होते है। सीक के अग्रभाग पर एक वडा पत्ता लगभग ८ इञ्च का होता है। पत्ते स्वाद मे कडुवे होते हैं।

पुष्प—वसत ऋतु मे कही कही वसन्त के वाद, नील श्वेत तथा वेंगनी रङ्ग के गुच्छो मे (पत्रकोण से निकली हुई कलगी मे) उग्र, चरपरी गन्धयुक्त होते हैं।

फल या फली—लम्व गोल वक्राकार, मोटी, कडी, चिपटी, चिकनी, १॥ से २ इञ्च लम्वी, १ इञ्च चौडी तथा आध इञ्च मोटी, सिरे पर कुछ पतली और अनीदार होती है। प्रत्येक फली मे १ या २ वीज, चिपटा, वडी मटर जैसा पतले लाल रङ्ग के छिलके से युक्त होता है। ये वीज तैल पूर्ण होते हैं। उनमे ३० प्रतिशत तैल

होता है। यह तैल चरपरा, लाल भूरा एव गाढा, औषधि कर्म मे महान उपयोगी, मामूली खाज खुजली से लेकर कुष्ठ जैसे भयङ्कर चर्मरोगो को शमन करने वाला होता है। यह दीपक मे जलाने के भी काम आता है। इसका प्रकाश मन्द एव शान्त होता है। इसके धुए से मच्छर तथा छोटे कीटकादि भाग जाते हैं।

करजी (अरारी) के वृक्ष आदि का परिचय उक्त करज जैसा ही है। यह केवल आकृति मे छोटा होने से ही शायद इसे करजी कहते है। करज या करजी की जड साधारण मोटी सूतली जैसी होती है। मूल की छाल वाहर से धूसर और भीतर से पीली, गन्ध और स्वाद मे तीक्ष्ण, चरपरी होती है। (कोई कोई करजी को कटकरज का ही एक छोटा भेद मानते हैं।) करज के पेड भारत के प्राय सब प्रदेशो मे पाये जाते है। मध्य और दक्षिण मे तथा सीलोन मे यह प्रचुरता से होता है। समुद्र तट की आबहवा इसके लिये बहुत अनुकूल होती है। चरक और सुश्रुत के—कण्डूघ्न, विरेचन, कटुक स्कन्ध, तिक्तस्कन्ध एव आरग्वधादि, वरुणादि, अर्कादि, श्यामादि, शिरोविरेचन तथा कफ सशमन गणो मे इसकी गणना की गई है।

नाम—

संस्कृत—करज, नक्तमाल, घृतपूर, स्निग्धपत्र ।
हिन्दी—करंज, किरमाल, डिठौरी, करुअनी, सुखचेन ।
मरेठी—करंज, कीड़ामार, वाणेरा करंज ।
गुर्जर—करंज, कणभी । वगला—डहर करंज ।
अंग्रेजी—इडियन वीच (Indian Beech), पूंगा आयल ट्री (Poonga oil tree)
लेटिन—पोंगेमिया ग्लेब्रा, ग्यालेडुपा इण्डिका (Galedupa Indica)

रासायनिक सङ्गठन—

इसके बीजो मे २७ से ३६ ४ प्रतिशत एक कडुवा, भूरे रङ्ग का, विशिष्ट गन्ध का पोंगेमाल या होंगे (Pongmal or Hongay oil) नामक तैल पाया जाता है। इस तैल से करजीन (Kanjin) नामक एक रवेदार पदार्थ प्राप्त होता है। छाल मे एक तिक्त क्षार सत्व, राल, पिच्छिल द्रव्य तथा शर्करा होती है।

गुणधर्म—

यह लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, कसैला, विपाक मे कटु उष्णवीर्य होने से कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, रक्तप्रसादक, गर्भाशय विशोधक भेदन, मूत्रसग्राहक तथा शोथ कास ज्वरहर है। यह अपने प्रभाव से कृमिघ्न और दातो को दृढ करता है। तथा विबन्ध, उदावर्त्त, वातजगुल्म, आमवात, प्लीहा, अर्श, योनिरोग-नाशक एव चक्षुष्य (नेत्रो को हितकारी) है। अरुचि मे इसके कल्क का कवल धारण, इसीका धूम्रपान, इसके चूर्ण का मजन एव इसी की दतौन कराना श्रेयस्कर है।

चिकित्साकर्म मे इसके पत्र, फूल, वीज, तैल तथा छाल का व्यवहार किया जाता है।

मात्रा—पत्र चूर्ण–१ से २ या ३ माशे, पत्रस्वरस या छाल का रस १ से २ तोले; मूल की छाल ४ रत्ती से २ माशे तक, ताजे फूल ४ से ८ तोले, फूल का स्वरस ६ माशे से १ तोला, मूल स्वरस १ से ३ माशे, फल का
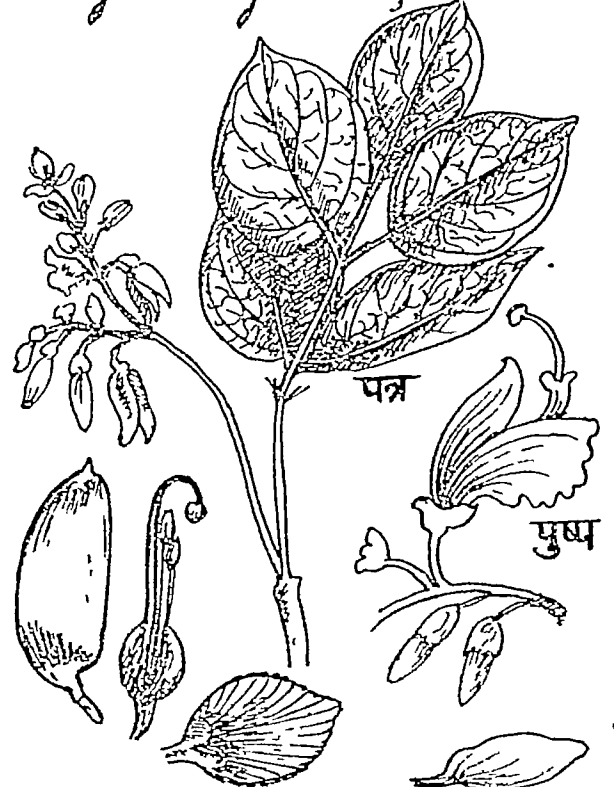
गिरी का कल्क १ से २ मासे; गिरी बीज का चूर्ण १ से २ मासे, शिशु या बालक के लिए ½ रत्ती से २॥ रत्ती तक।

नोट—इसके चूर्ण को कागज में नहीं लपेटना चाहिए। इसके गुणकारी तैलांश को कागज शोषित कर लेता है। चूर्ण प्रायः गुणहीन हो जाता है। जहां तक हो सके चूर्ण को सदैव ताजा ही तैयार कर काम में लाना चाहिए।

गुणधर्म और प्रयोग--

पत्र—लघु उष्ण, पाचक, विरेचक, उत्तेजक, पित्त-कर परमशोधन, परिवर्त्तक, तथा कफ वात, कृमि, कण्डू, अर्श, शोथ, उदरवात या आध्मानहर हैं।

(१) अर्श पर—रोगी को विशेष मलावरोध होता हो, तथा उदर में वायु का प्रकोप हो, तो इसके कोमल पत्तो की लुगदी को घृत और तिल तेल मे भूनकर सत्तू के साथ मिलाकर भोजन के पूर्व सेवन करावें।
—च० चि० अ० १४

इसके कोमल पत्तों को पीस कर प्रलेप करने से रक्तार्श मे लाभ होता है। इसकी केवल पत्ती को ही पीस छान पिलाने से भी कभी कभी लाभ हो जाता है।

(२) वमन पर—कोमल पत्र और सेंधानमक पीस छानकर अनार के रस या नीबू के रस या काजी मे मिला पिलाते हैं।

इस योग मे—इसके कोमल पत्र ३ या ५ लेकर उसमे सेंधानमक ३-४ रत्ती मिला और खूब पीसकर अनार रस या नीबू रस २॥ तोला तथा काजी ५ तोला मिलाकर पिलाते हैं। अथवा केवल उष्णोदक से ही पिलावें। कफ निकल कर वमन शांत होती है।

इसके पत्र रस मे समभाग नीबूरस मिला मिश्रण का अर्धभाग शहद मिला वार वार चटाने से कफ और वमन दोनो की शांति होती है।

(३) कुष्ठ पर—पत्र स्वरस मे चित्रकमूल, कालीमिर्च और सेंधानमक का चूर्ण यथोचित मात्रा मे मिला सबको दूने पतले दही मे मिलाकर दिन मे दो वार ३-४ महीने तक पिलाते रहने से गलित कुष्ठ भी शमन होता है। इससे पाचन की निर्बलता, अतिसार और आध्मान मे भी लाभ होता है।

कुष्ठ रोगी को इसके पत्र के साथ नीम, और खैर के पत्रो को गोमूत्र मे पीस लेप करावें, तथा उक्त तीनो के पत्तो को पानी मे उबाल कर स्नान करावें, और इसी पानी को पिलाते रहे। कृमि एवं दूषित कीटाणु नष्ट होकर परम लाभ होता है। क्षत पर इसके तैल को लगाते रहे।

(४) दूषित कृमियुक्त भगदरादि व्रणो पर—इसके पत्तो की पुल्टिस बना बाधते रहने से, अथवा इसके कोमल पत्र स्वरस के साथ निर्गुणी या नीम पत्र रस को मिला उसमे कपास का फाया तर कर व्रण पर बार बार रखते रहने से लाभ होता है।

इसके पत्र के साथ निर्गुण्डी या नीम पत्र को पीस पुल्टिस बनाकर बाधते है, अथवा इसके पत्तो को काजी मे पीस गर्म कर लेप करते है। इससे व्रण की शुद्धि होकर व्रण की सूजन आदि दूर हो जाती है।

(५) पामा, उकवत, एग्झीमा पर—इसके पत्र रस से या क्वाथ से प्रक्षालन कर इसके तैल मे गधक, कपूर और नीबू रस का मिश्रण कर लगाते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

(६) यकृत वृद्धि पर—पत्र रस में वायविडग और छोटी पीपर का चूर्ण १ से ८ रत्ती तक मिला प्रात साय भोजन के बाद ७-८ दिन सेवन करावें।

(७) गुल्म रोग और वातशूल पर—पत्तो को यवागू (जव डालकर पका हुआ जल) मे उबाल कर यथोचित मात्रा मे पिलाते रहने से लाभ होता है। वेदना कम होती है। तथा पाचन क्रिया ठीक हो जाती है।

वात शूल पर—कोमल पत्रो को तिल तैल मे भून कर सेवन कराते हैं।

(८) कास पर—पत्र रस मे कालीमिर्च चूर्ण २ से ४ रत्ती तक मिला ४ दिन प्रात साय चटायें।

(९) आमवात पर तथा वीर्य स्तम्भनार्थ—पत्र क्वाथ का बफारा तथा इसी क्वाथ से सिंचन करें, और ऊपर से इसके तैल की मालिश करें। गठिया आमवात की पीडा दूर होती है।

वीर्य के स्तभन के लिये—इसके पत्र रस को हथेली तथा पैरो के तलुओ पर मर्दन करते हैं।

फल या वीज—लघु, उष्ण, कडुवे, विष्टम्भ या विवन्धकारक, रक्तशोधक, तथा अर्श, कृमि, कुष्ठ, सिर के तथा मूत्र सम्बन्धी रोगनाशक और फूला आदि नेत्र विकार नाशक हैं। वीज का चूर्ण दुर्वलता की दशा मे उत्तम ज्वरघ्न और वल्य है। आभ्यन्तर सेवनार्थ इसका अकेला ही प्रयोग नही किया जाता। कुष्ठादि त्वग्रोगो मे इसे रक्तप्रसादनीय अन्य योगो के साथ दिया जाता है। फल या वीजो को इन्द्रयव के साथ पीस कर कुष्ठ पर प्रलेप करते हैं। रक्तपित्त मे बीजो को घृत और शहद के साथ सेवन कराते है। उरुस्तभ मे इसके बीज और सरसो को गोमूत्र मे पीस लेप करते हैं। दातो से रक्तस्राव हो, तो बीज चूर्ण के साथ समभाग मिश्री मिला सेवन करावें। चेहरे की काति बढाने के लिये वीज को दूध मे भिगोकर पीस कर चेहरे पर मर्दन करते हैं। अण्डवृद्धि पर बीजो को जल मे पीस कुछ गर्म कर प्रलेप करते हैं। कफज ज्वर की दशा मे वीज को जल मे पीस शरीर पर लगाते हैं। चूहे के विष पर वीज को इसकी ही छाल के साथ पीस कर लेप करते है।

(१०) कफप्रधान ऊर्ध्वरक्तपित्त अथवा वमन पर—वीज की गिरी का चूर्ण (ताजा वनाया हुआ) मात्रा २ या ३ माशे लेकर उसमे शक्कर और शहद मिलाकर (यह १ मात्रा है) प्रात साय चाटे। अथवा—

वीजो को भूनकर इसमे अर्धभाग शक्कर मिला कूट पीस कर चना जैसी गोलियाँ बना रोगी को १०-१० मिनट पर १–१ गोली सेवन करावें। शीघ्र वमन की शाति होती है। अथवा वीजो को आग पर सेंक कर टुकडे करले। १–२ टुकडा वार–बार खिलायें।

(११) अर्श और अश्मरी पर—प्रथम दिवस बीज गिरी का चूर्ण १ माशा को ३ माशा शहद के साथ चटावें। दूसरे दिन २ माशा, तीसरे दिन ३ माशा इस प्रकार १–१ माशा वढाते हुए ११ दिन तक वढाकर पुन उसी क्रम से १–१ माशा घटाते हुये ३ माशे की मात्रा पर आ जाय। इससे पथरी नष्ट होती है। (वि कोष० से०)

(१२) आधे सिर के दर्द पर—वीज को पानी मे पीस कर उसमे थोडा गुड मिला किंचित् उष्णकर जिस ओर दर्द हो उसके विरुद्ध वाजू के नासारन्ध्र मे १–२ बूद टपकावें (नस्य दें) फिर आध घन्टे वाद दूसरे रन्ध्र मे टपकावे। ऐसा कुछ दिन करने से पूर्ण लाभ होता है। फिर यह विकार नही होने पाता। (आ पत्रिका)

(१३) अन्तर्विद्रधि और वाह्य विद्रधि पर—इसकी छिलकेरहित गिरी को पीस कर उसमे थूहर के पत्तो का रस इतना मिलावें कि चूर्ण अधिक गीला न होने पावे। फिर अच्छी तरह मर्दन कर चीनी के पात्र मे भर उसको तिरछा कर धूप मे रख दें। जव धूप की गरमी से तैल वह कर चूर्ण से प्रथक हो जाय तो तैल को शीशी मे सुरक्षित रक्खें।

इसके पीने से अन्तर्विदधि और लगाने से वाह्य विद्रधि का शीघ्र नाश होता है। (भा भै रत्नाकर)

(१४) विस्फोटक पर—इसके वीज, तिल और सरसो समभाग पीसकर लेप करने से विस्फोटक एव दुष्ट पिटिका का नाश होता है। (ग० नि०)

(१५) वातज शूल पर—इसके वीज के साथ समभाग काला नमक, सौठ और हीग (भूनी हुई) मिलाकर चूर्ण करें। मात्रा—४ रत्ती से १ मासा सुखोष्ण जल के साथ सेवन करें। (यो० र०)

यदि पार्श्वशूल हो तो वीज की १ गिरी और १ रत्ती शुद्ध नीलाथोथा दोनो को पीस सरसो जैसी १२ गोलिया वना १-१ गोली नित्य सेवन करें।

(१६) श्वेत कुष्ठ, दद्रु, खुजली पर—वीज के साथ समभाग हल्दी, हरड और राई पीसकर लेप करें। ८-१० दिन मे पूर्ण लाभ होगा। अथवा—

बीजो के साथ श्वेत कनेर की जड़ पीस कर लेप करने से भी लाभ होता है।

(१७) उदरकृमि नाशार्थ—वीजो का अर्क ४–५ बूद और भुनी हीग १ रत्ती दोनो का मिश्रण (यह १ मात्रा है) सेवन करावें।

(१८) फूला और पिल्ल नामक नेत्र विकार पर—वीजो के चूर्ण को पलाश के फूलो के रस की २१ बार भावना देकर छोटी छोटी वर्तिया वनालें। इस वत्ती को शुद्ध मधु मे या पानी मे घिस कर आजते रहने से फूला कट जाता है।

पिल्ल अर्थात् पित्त और कफ के प्रकोप से पलक के सिरे फट जाते है तथा पलक लाल और रोमरहित हो जाता है। ऐसी दशा मे वीज की गिरी, तुलसी और चमेली की कलिया समभाग लेकर एकत्र कूटकर आठ गुने पानी मे पकावें। चतुर्थांश रहने पर छानकर पुन पका कर गाढा करलें। इसको पलको पर आजते रहने से यह विकार नष्ट हो जाता है तथा पलको के बाल निकल आते हैं। (वा भ उ अ १६)

(१६) कुकुर कास पर--(काली खांसी Whooping Cough) वीज चूर्ण ½ से २॥ रत्ती तक की मात्रा मे १ रत्ती सुहागे की खील मिला शहद के साथ दिन में ३-४ बार चटाते रहने से तथा वीजो को तागे मे पिरोकर गले मे बावने से ४-५ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(२०) शिरो रोग मे नस्य--वीजो की गिरी के साथ समभाग सहजने के वीज, तेजपात, वच और खाड मिला खरल कर महीन चूर्ण बना रक्खें। इसके नस्य से खूब छींकें और दूषित जल का स्राव होकर सिर के विकार दूर होते हैं। (वगसेन)

(२१) गर्भपात निवारणार्थ--कुसुम के रग से रगे हुए कपडे मे इसका एक वीज लाल तागे से वाध कर गर्भवती की कमर मे वाध रखने से गर्भपात नही होता।

नोट--इसके वीजों से कई शुष्क और द्रवरूप होमियोपैथिक औषधियां निर्माण की जाती हैं, जो मलेरिया ज्वर पर रामवाण सिद्ध हुई हैं। --नाडकर्णी

मूल और छाल--स्निग्ध, शीतल, पूयमेह, क्लिन्न-क्षत, भगदरक्षत, अस्थिव्रण, विसर्प आदि नाशक है। छाल कुछ ग्राही भी है। भगदर पर छाल के दूधिया रस की पिचकारी देते हैं। अस्थिव्रण पर छाल के रस मे समभाग तिलतैल और किंचित नीलथोथा मिला लेप करते हैं। अण्ड कोष वृद्धि और कठमाला पर जड की छाल को चावल के धोवन मे पीस कर प्रलेप करते है। विसर्प पर--जड़ की छाल को पीस कर और कुछ गरम कर लेप करें। इसे पीस कर प्रलेप करने से पका फोडा फूट जाता है। स्तम्भनार्थ--जड को दातो के नीचे चवाते है। इसकी ताजी लकडी की दतौन करने से दत रोग दूर होकर दात मजवूत होते हैं।

(२२) सुजाक या पूयमेह पर--इसकी जड की छाल के रस मे, ताजी छाल के अभाव मे छाल के क्वाथ मे--नारियल का जल और चूने का निथरा हुआ जल, प्राय समभाग मिला कर प्रात साय पिलाते रहने से मूत्र नलिका का शोथ, जलन आदि दूर होकर पूयस्राव होना वन्द हो जाता है।

(२३) रक्तार्श पर-मूल छाल के चूर्ण (दो माशे की मात्रा मे) को गोमूत्र मे पीसकर पिलावें। तथा पथ्य मे केवल तक्र (छाछ) ३ दिन तक लेते रहे। आगे देखे करंजादि चूर्ण प्र न २७।

फूल--उष्णवीर्य, त्रिदोषनाशक तथा मधुमेह, वहुमूत्र, तथा इन्द्रलुप्त (गज) आदि नाशक है।

मधुमेह या वहुमूत्र मे फूलो का फाट दिया जाता है, अथवा शुष्क फूलो के चूर्ण को रोगनाशक अन्यान्य द्रव्यो के साथ मिलाकर क्वाथ वनाकर देने से बहुमूत्र एव तज्जन्य पिपासा की शान्ति होती है।

अर्द्धावभेदक (आधे सिर के दर्द) पर--फूल के साथ थोडा गुड पीस कर गरम जल मे घोल और छानकर नाक मे टपकाते या नस्य देते है।

इन्द्रलुप्त (गज, खालित्य) पर--फूलो को पीस कर लेप करते हैं।

करज वीज तैल--उष्ण, तीक्ष्ण, पित्तकारक, उत्तेजक, शोधक (इसमे दाहक प्रभाव नही है, इसके लगाने से त्वचा लाल नही होती, जलन नही होती) वातरोग, सिर के रोग, मेद, कुष्ठ, कण्डु, कृमि, विचर्चिका, गुल्म, उदावर्त, योनिविकार, अर्श आदि नाशक है। इसमे कीटाणुनाशक, पूतिहर और व्रणरोपण गुणो की विशेषता है। लेप और मर्दन करने से यह अनेक चर्म रोगो को दूर करता है, मक्षिका एव अन्य कीटको के दशजन्य विष या पीडा को शमन करता हैं।

आमवात (गठिया) मे इसका अभ्यग लाभकारी है। वालो के जू नाशार्थ इसे लगाते है। गज या खालित्य मे यह सिर पर लगाया जाता है। इसके लगाते रहने से कण्डु, खुजली दूर होती है।

(२४) कुष्ठ, काकण कुष्ठ--साधारण कुष्ठ एव तज्जन्य क्षतो पर तो इसे सफाई और पथ्यपूर्वक रहते

हुए लगाते रहने से ही लाभ हो जाता है।

काकण नामक महाकुष्ठ (जो गुंजा या रत्तियों के जैसा वर्णवाला, पाकयुक्त, तीव्रपीडान्वित एवं त्रिदोषयुक्त होता है) पर इस तैल में चित्रक और सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। (वरावराजीय)

(२५) उपदंशजन्य या अन्य किसी विकार से हुए शरीर के चट्टों पर--तैल में समभाग नीबू का रस मिला खूब आलोडित करने से जो पीतवर्ण का सुन्दर अभ्यङ्गोपयोगी घोल प्रस्तुत होता है उसे लगाते रहने से उक्त चट्टे, कण्डू, झाई, व्यङ्ग, विचर्चिका आदि चर्म रोग दूर हो जाते है।

(२६) कण्डू, क्षत, पामादि रोगों पर २॥ तोले तैल मे ४ मासे तक यशद भस्म मिलाकर लगायें।

करंज के योग से विशिष्ट औषधि निर्माण—

(२७) रक्तार्श पर करंजादि चूर्ण--करंजमूल को चूर्ण के साथ चित्रक, सेंधानमक, सोंठ, इन्द्रजौ और अरलू (श्योनाक) की छाल का चूर्ण समभाग मिश्रित कर मात्रा १ से ३ मासे तक तक्र के अनुपान से सेवन करते रहने से अर्श तथा रक्तार्श नष्ट होते हैं। (भा भै र)

(२८) करंजाद्यघृत--इसके बीज के साथ अर्जुन छाल, साल वृक्ष की छाल, जामुन की छाल का कल्क और पचक्षीरी वृक्षों (वट, पीपल, पिलखन, गूलर और महुआ) की छाल के क्वाथ से सिद्ध घृत का सेवन दाह, पाक एवं स्रावयुक्त उपदंश का नाश करता है।
(भा भै र)

करंज के पत्तों तथा कच्चे फलों के योग से सिद्ध किये हुये करंजादि घृत का उत्कृष्ट प्रयोग देखें सुश्रुत चि अ १६ में। यह प्रयोग सर्व प्रकार के व्रणों पर विशेष हितकारी है।

इनके अतिरिक्त पृथिवी सार तैल, महानीलघृत, कुष्ठ नाशक अरिष्ट (सु चि), तिक्ताद्यघृत, करंजादि पुटपाक इत्यादि कई शास्त्रीय प्रयोग हैं। विस्तारभय से यहां नहीं दिये जा सकते हैं।

करली

इस बूटी का निम्न वर्णन शालिग्राम निघण्टु भूषण से दिया जाता है—इसे संस्कृत मे करली, दीर्घ पत्रा, मध्यदण्डा, प्रलम्बिका, हिन्दी मे करली, म कुली ची भाजी, गु करलीनी भाजी, ले फेलेजियम ट्यूबरोज कहते हैं।

यह एक प्रकार का शाक जातीय क्षुप वर्षाऋतु मे उत्पन्न होता है। पत्ते-लम्बे, पत्तो के बीच मे से एक बाल निकलती है। फूल-श्वेत, फल-नीले रंग का होता है। पत्तो की शाक होती है।

गुण—

करली शीतला स्वाद्वी वातला कफकृद् गुरु।

यह शीतल, मधुर, तिक्त, वातकारक, कफकारी, गुरु और सारक है।

कारियारिन (Mucuna Monosperma)

यह कोयल या अपराजितादि उपवर्ग (Papilionaceae) की लतारूप पर्वतीय वनौषधि पूर्वी हिमालय, खासिया, आसाम, चितागाग तथा दक्षिण में पश्चिम घाटी के पहाडो पर पाई जाती है।

इसकी लम्बी लतायें छोटे और बडे वृक्षो पर चढी हुई तथा कुछ जमीन पर फैली हुई होती हैं। फलियां सेम या कौंच की फली जैसे रुयेदार, मोटी, काली और गोल होती है। बीज—गोल, चिपटा और दलदार मोटा होता है। औषधिकर्म मे प्राय बीज का ही प्रयोग किया जाता है।

नाम—

सं—दधिपुष्पी, खट्वांगी, कृपा।

हिन्दी—करियासेम । गु अडदवेलि
म.—मोटी कुनाइल, गोड कुहिरी, सोनागारवी, खाट-
कुटली
ले.—मुकुना मॉनोस्पेरमा, कार्पोपोगान मॉनोस्पेरमम
(Carpopogan Monospermum)

गुणधर्म और प्रयोग—

इसके बीज कडवे, मधुर, स्फूर्तिदायक, पौष्टिक, आत्र सकोचक, त्रिदोपनाशक, रक्तशोधक, श्वास कास हर तथा शूल व जलन को दूर करने वाले हैं।

कास श्वास तथा मूत्र सम्बन्धी विकारो पर बीजो का क्वाथ दिया जाता है।

बीजो के फाट से कुल्ले कराने से गला, मसूढा तथा दातो के विकार दूर होते है।

फोडा, फुसी आदि रक्त के साधारण रोगों पर इसके बीजो की पुल्टिस और लेप का प्रयोग करते हैं।

करिवागेटी [Caramignya Monophylla]

यह निम्बूकादि कुल (Rataceae) की पहाडी बूटी भारत के दक्षिण मे पश्चिमी घाटी, गोवा कोकन सिलोन आदि तथा उत्तर मे भूटान, खसिया आदि पहाडो पर ६ हजार फीट की ऊंचाई तक पाई जाती है।

इसके छोटे और बडे क्षुप नीबू के पौधे जैसे होते हैं। बम्बई की ओर इसे कारी वाघेटी कहते हैं। इसी शब्द का अपभ्रंश करिवागेटी, करियागेटी आदि हैं। लेटिन मे पेरेमिगनिया मोनोफिला नाम है।

गुणधर्म मे यह मूत्रल और परिवर्तक (रासायनिक) है। इसकी जड अग्निवर्धक और पौष्टिक है। कोकण की ओर पशुओ के पेशाब मे रक्त आने पर इस जड़ को पानी मे पीस छान कर पिलाते है। कही कही इसके पत्तो को कुचल कर सर्पदश के क्षत पर लगाते हैं।

करील [Capparis Aphylla]

यह वटादि वर्ग की वनौपधि, नैसर्गिक क्रमानुसार वरुण कुल (Capparidaceae) की मानी गई है।

कई चिकित्सक कवर और करीर को एक ही मानते हैं। किन्तु करीर कबर से भिन्न ही वनौषधि है। पीछे कवर का प्रकरण देखिये।

करीर के तीक्ष्ण कटकयुक्त गुल्म, ऊसर या ककडीली भूमि मे होते है। इसमें गहरे हरित वर्ण की पतली पतली अनेको शाखायें फूटती हैं। ऊंचाई मे इसके गुल्म (या भाडिया) ४ से १० फुट तक, कही २० फुट तक भी पाये जाते है। बीच का तना प्राय सीधा, तथा इसकी छाल आधी इंच तक मोटी, धूसर वर्ण की खडी लम्बी दरारों से युक्त होती है। शाखा प्रशाखाओ मे भडबेरी के काटे जैसे दो-दो काटे एक साथ, प्रचुरता से होते हैं। पत्र नही होते। कोई कोई कहते हैं कि इसके पत्ते इतने सूक्ष्म होते हैं कि दिखाई नही देते। अस्तु, उक्त युग्म कटको के मध्यभाग से जो डठल सी निकलती है उस पर गुलाबी रग के नन्हे नन्हे फूलो के गुच्छे प्राय बसत ऋतु मे लगते हैं। इन पुष्पो मे मधु होता है अत भ्रमर या मधुमक्षिकायें इनकी ओर आकृष्ट होती है। पत्तो के न होने से डालियो मे ये सुहावने लगते है।

फल—फूलो के भड जाने पर गोल गोल छोटे छोटे बेर जैसे, हरे फल प्रकट होते हैं इनको टेंटी, ढालु, ढीढ या कचडा हिन्दी मे कहते है। ग्रीष्मकाल मे ये फल जैसे जैसे बढते हैं तैसे तैसे इनके स्वाद मे खटमीठापन और तीक्ष्णता बढती जाती है। फलो की पूर्ण बाढ हो जाने पर इनका रंग कुछ ऊदा या श्वेताभ हरितवर्ण का हो जाता है। पूर्ण परिपक्व हो जाने पर ये लाल और काले पड जाते हैं।

बीज—फलो के भीतर ज्वार के दाने जैसे बीज भरे रहते हैं। इनका स्वाद किंचित कड़ु और कसैला और मुख में चबाने पर कुछ जलन सी पैदा होती है।

जड—श्वेत धूसर वर्ण की, अन्दर सछिद्र, चरपरी और स्वाद कडुवा होता है ।

करील के तने की लकडी कडी होती है । इसे दीमक नही लगती । हरी डालिया जलाने पर मसाल की तरह जलती हैं। इसके फूलो का तथा कच्चे फलो का अचार और शाक बनाया जाता है ।

इसके गुल्म रुक्ष, उष्ण प्रदेशो मे तथा मथुरा मडल, मारवाड, गुजराथ, कच्छ, पजाव, सिन्ध आदि प्रदेशो मे विशेष पाये जाते हैं ।

औषधि व्यवहार मे इसके फल, फूल, बीज तथा पचाग का प्रयोग होता है। इसका उपयोग आयुर्वेद मे अति प्राचनीकाल से हो रहा है। ऐलोपैथिक औषधि सेनेगा (Senega) की यह उत्कृष्ट प्रतिनिधि है ।

नाम—

सस्कृत—करीर, तीक्ष्ण कंटक, निष्पत्रक, गूढपत्र, ग्रन्थिल, मरुभूरुह ।

हिन्दी—करील, कैर, करिया, टेंटी, कचड़ा, करु, पेंचू, सेत ।

मराठी—नेवती, करि, घटुभारंगी, कारवी ।

गुर्जर—केर, केरडो, केरडा । बंगाली—करील ।

अंग्रेजी—केपर प्लाट (Caper plant)

लेटिन—कैपरिस अफाइला । कै डेसिडुआ (Capparis decidua), केडवा अफाइला (Cadaba Aphylla)

रसायनिक संघठन—

इसकी छाल मे सेनेगिन के जैसा ही एक तिक्त पदार्थ होता है। पुष्प कलिकाओ मे कैप्रिक एसिड (Capric acid) तथा एक ग्लुकोसाइड पाया जाता है ।

गुण, धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, तिक्त, किंचित् कसैला, विपाक मे कटु और उष्णवीर्य है । कफवातशामक, रोचन, पाचन, भेदन, उत्तेजक, कटुपौष्टिक, स्वेदजनक, व्रणशोधन, वेदना स्थापन, मृदुरेचन, आध्माननाशक (अधिक सेवन से विबन्धकारक), अर्शोघ्न, कृमिघ्न, विषघ्न तथा श्वास, शोथ, उदरशूल, आमदोष, आमवात, हृदय दौर्बल्य, चर्मरोग आदि नाशक कार्य इसके द्वारा होते हैं । इसका प्रभाव यकृत् और आन्त्र पर विशेष रूप से होता है । पर्याप्त मात्रा मे पित्तस्राव कराते हुए यह अन्नपाचन तेजी के साथ कराता है । इसके गूदे मे घूने की मात्रा अधिक होने से इसमे रूक्षता एव दाहकता का प्रभाव है ।

फल—कडुवा, चरपरा, कसैला, उष्ण, विकासी, ग्राही, कफपित्तनाशक तथा मुख को साफ करने वाला होता है । चूर्ण बनाने के लिये शुद्ध फल लेने चाहिये । इन फलो को किंचित् घृत मे तलकर उसमे रुचि अनुसार मसाले लगाकर विशेष प्रकार का चर्वण मुख शुद्धि के लिये बनाया जाता है जिसे भोजन के बाद खाने से अपूर्व रोचकता एव मुखशुद्धि के साथ ही पाचन क्रिया मे भी सहायता प्राप्त होती है ।

(१) फलो का अचार—कच्चे फलो को लेकर मिट्टी के घडे मे तक्र, नमक और जल के साथ डालकर ३-४ दिन घडे को ढककर धूप मे रख दें। काजी जैसी अम्लता उत्पन्न हो जाने पर फलो को अलग निकाल कर तैल और मसाला मिला अथवा बगैर तैल के ही मसाले मिला अचार तैयार कर लिया जाता है । इस अचार को ईख के सिरके में भी बनाया जाता है । यह अचार अग्निप्रदीपक, वात, अर्शहर, कृमिघ्न, उत्तम पाचक और कण्डुनाशक होता है ।

(२) दृष्टि दूषित ज्वर पर—उक्त काजी (फलो के अलग निकाल लेने पर जो तक्र लवणयुक्त जल रहता है उसे) २॥ से ५ तोले की मात्रा मे ३-३ घण्टे के बाद पिलाने से, खाते पीते समय कुदृष्टि से जो ज्वर आदि शरीर मे विकार होता है वह दूर हो जाता है ।

नोट—उक्त टेंटी के अचार के सेवन से आमदोष का पाचन होकर जीर्ण आमातिसार तथा प्लीहा शोथ भी दूर हो जाता है । किन्तु इसका सेवन अत्यधिक प्रमाण में करने से उदर में वातवृद्धि होकर विबन्ध, आध्मान आदि विकार दूर होते हैं । फलों की शाक नेत्रदृष्टि के लिये हितकारी है ।

(३) उदर शूल पर—इसके शुष्क फलो का चूर्ण (उक्त अचार तैयार करते समय जो फल तक्र लवण जल युक्त हाडी मे रक्खे जाते हैं तथा उनमे अम्लता उत्पन्न होने पर निकाल कर शुष्क कर लिये जाते हैं, उन्ही सिद्ध एव शुद्ध फलो का चूर्ण लेना चाहिए) १ से ३ माशे तक की मात्रा मे थोडा काला नमक का चूर्ण मिला सुखोष्ण जल से सेवन कराने से पेट की पीडा नष्ट हो

जाती है ।

(४) फल और कोपल तथा काण्ड के योग से ताम्र भस्म—इसके फल और कोपल अथवा शाखाओ की (फल और कोपल आध आध पाव लेकर) लुगदी मे शुद्ध ताम्र को पतले १ तोले टुकडे को रखकर सराव सपुट कर २० सेर उपलो की आच मे फूक दें। श्वेत भस्म पूर्ण वजन की तैयार होती है। हकीम (मु० रियाजुल हसन) अथवा—

इसका १६ अगुल लम्बा तथा ६ अगुल मोटा, ताजा हरा काड लेकर उसमे ८ अगुल गहरा छेद कर भीतर शुद्ध किये हुये उक्त तावे के टुकडे को रख ऊपर इसकी ही लकड़ी का बुरादा भर तथा उसीका डाट लगा गजपुट मे फूक देने से भी श्वेत भस्म प्रस्तुत् होती है। यदि ठीक ठीक भस्म न हो तो १-२ वार पुन इसी प्रकार करने से ठीक हो जाती है।

यह भस्म नपुसकता, उदररोग, श्वास इत्यादि रोगो मे उपयुक्त अनुपान के साथ देने से वहुत लाभ पहुँचाती है। नपुसकता मे इसको (मात्रा चौथाई से आधी रत्ती तक) घृत के साथ चटाकर ऊपर से ५-१० तोले घृत और पिलावें। इससे प्यास अधिक लगती है, किन्तु ४ प्रहर तक पानी नही पिलावें। यदि न रहा जाय तो दूध मे घृत मिला पिलावें। इससे नपुसकता मे विशेष लाभ होता है। इसके सेवन काल मे तैल, खटाई, लाल मिर्च आदि वर्जित हैं। —जगली जडी बूटी

फूल—इसके फूल लघु, कसैले, रस और पाक में चरपरे, भेदी (दस्तावर), मल मूत्र उत्सर्जक, कफनाशक, पित्तकारक, रुचिकारक और अत्यन्त पथ्य हैं।

(५) विरेचनार्थ—इसके पुष्पो के साथ समभाग अमलतास का गूदा लेकर सेहुंड थूहर (स्नुही) के दूध मे मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलिया वना रक्खें। इसे उष्ण जल के साथ लेने से २-४ दस्त होकर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है।

(६) पुष्प योग से पारद भस्म—शुद्ध पारे को इसके पुष्प स्वरस मे दो दिन (८ प्रहर) खरल करें, गोला वन जावेगा। फिर इसके पुष्पो को पीसकर वनाई गई लगभग तीन छटांक लुगदी मे इस गोले को रख ऊपर से कपड मिट्टी कर २ सेर उपलो का आंच दें। लपट निकल जाने के वाद श्वेत भस्म प्रस्तुत् होगी। यदि इसके पीले रङ्ग के फूल मे खरल कर आच देवें तो पीतवर्ण की भस्म प्राप्त होगी। —आ विश्वकोप

मूल, छाल, कोपल आदि पर—आमवात, वातरक्त, कास, श्वास, जलोदर, अर्द्धाङ्गवात, दन्तशूल, प्लीहाशोथ आदि विकारो पर उत्तम लाभदायक है।

(७) श्वास, कास, रक्तार्श आदि विकारो पर अर्क करीर—इसकी ताजी जड़ें लेकर कूट पीसकर मिट्टी के पात्र मे भर पाताल यन्त्र या नलिका यन्त्र द्वारा अर्क खीच लेवें। मात्रा—१० से ३० वूद तक शक्कर के साथ सेवन कर थोड़ी देर वाद गरम पानी पीने से श्वास का प्रवल वेग भी शान्त हो जाता है। कुछ दिन वरावर नियमपूर्वक सेवन करने से श्वासरोग समूल नष्ट हो जाता है। इस अर्क की २० या ३० वूदें शक्कर के साथ १-१ घण्टे पर २-३ वार देने से ही श्वास का दौरा दूर होता है। ध्यान रहे अर्क देने के लगभग १० मिनट वाद सुखोष्ण जल केवल १ या २ घूट पिलावें। जीर्ण श्वासरोग पर दिन मे तीन वार केवल सुखोष्ण जल के ही साथ सेवन करावें।

अर्श के रोगी को उक्त अर्क की १०—२० वूदें दिन मे दो वार जल के साथ पिलाते रहने से तथा मस्सों पर लगाते रहने से थोडे दिन मे मस्से मुर्झा जाते हैं।

(८) रक्तार्श पर—इसकी जड़ १ तोले जौकुटकर तीन सेर जल मे पकावें। आधा शेप रहने पर छानकर दिन मे दो वार पिलावें। ६-८ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(९) स्थानिक शूल पर—इसकी कोमल शाखाओ को पीस कर वेदना वाले स्थान से सम्वन्धित प्रदेश पर लेप या पुल्टिस लगाने से वहा पर त्वचा लाल होकर पीडित स्थान से रक्त आकर्पित होकर वेदना दूर हो जाती है। इस प्रकार के प्रयोग को प्रत्युग्रतासाधक(Counter irritant) प्रयोग कहते हैं। १५—२० मिनट में दाह होने पर लेप उठा लेवें, तथा ठडे जल से धोकर थोडा घी लगादें। देर होने पर फफोला पड जाता है ।

(गावो मे औपधि रत्न)

करीर (कैर)

Capparis decidua Edgew.
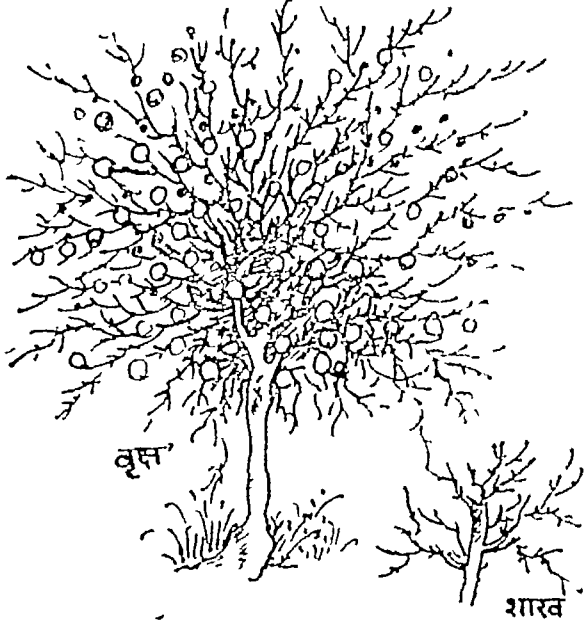
✓(१०) गर्भ निवारक योग—इसकी कोपल और हरमल (इस्वन्द) समभाग कूट छान कर रक्खें। ऋतु-स्नाता स्त्री को प्रतिदिन बासी पानी के साथ ६ माशे तक यह चूर्ण सेवन कराने से उसे गर्भधारण नही होता और न किसी प्रकार का कष्ट ही होता है।

(११) प्लीहा वृद्धि पर—कोपलो का चूर्ण १ तोला और कालीमिर्च चूर्ण ६ माशे दोनो को एकत्र खरल कर इसकी ४ मात्रायें बना प्रात साय १–१ मात्रा जल के साथ लेवें। दो दिन बाद पुन बनालें। इस प्रकार १॥ मास तक पथ्यपूर्वक सेवन करें। इसकी जड़ का अचार भी रोगी को सेवन करावें।

(१२) दद्रु, कच्छु, पामा, विचर्चिका आदि पर—इसकी कच्ची कोपलो को गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा इसकी लकडी को एक सिरे पर जलाने से दूसरे सिरे पर जो लाख जैसा रस निकलता है उसे लगाते रहने से उक्त त्वचा के विकार दूर होते हैं।

✓(१३) परवाल (आँखों की बरौनी में यह कष्टकर रोग होता है। इसमें बरौनी के बाल वक्रीभूत होकर आँख मे रगडते हैं) पर इसकी कोपल को खूब महीन चन्दन जैसी पीस कर सलाई से बरौनी में परवाल के स्थान पर ऐसी कुशलता से लगावें कि यह दवा आंख की पुतली पर न लगे। दो तीन बार प्रयोग करें।

(१४) जलोदर पर—इसकी जड का चूर्ण मात्रा ६ माशे तक प्रकृति के अनुसार उचित अनुपान के साथ सेवन करायें तथा पथ्यपूर्वक रहें।

(१५) दन्तगल, दन्तकृमि और दुष्टव्रण पर—इसकी कोपल को या छाल को चबाने से कीटाणु नष्ट होकर दन्तो की पीडा मे लाभ होता है।

दुष्ट व्रण पर—कोपल को काजी मे पीस कर लेप करते हैं। व्रण शुद्ध होकर ठीक हो जाता है। नासूर (नाडी व्रण) मे इसकी भस्म मीठे तैल मे मिला लगायें।

✓(१६) कटिशूल, सन्धिपीडा पर—इसके पचाङ्ग की भस्म की मात्रा दो माशे तक घृत के साथ दिन में दो बार चटाते हैं। तथा इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर उसका बफारा दें। इससे हाथ पैरो की पीडा दूर होती है।

(१७) कर्णकृमि, शूल तथा बाल उगाने के लिये—इसकी शाखा का तथा रस कान मे डालने से कानो के कृमि एव तज्जन्य शूल नष्ट होता है।

मूछ आदि के बाल नही उगते हो तो इसकी कोपल को बगैर पानी के पीस कर मलते रहने से बाल उग आते हैं ऐसा कहा जाता है।

(१८) उदर शार्दूल कल्प—आश्विन या चैत मास मे करील की मूल की छाल २॥ तोला को गोमूत्र मे खूब पीस, आक के पत्तो पर लगा, नाभि से २ अगुल नीचे या ४-५ अगुल ऊपर रख कपडे से बाध कर कम से कम ९० मिनट तक कष्ट को सहन कर १२ या १५ मिनट के बाद खोल कर अरने कण्डो की छनी हुई राख लगा लेप को पोंछ दें, तथा ऊपर से सूखी राख लगा दें। जिससे जलन शात हो जावे। उसी समय से कपडे की पट्टी दूसरे दिन तक अहोरात्रि व धी रहनी चाहिये। पेट को हवा न लगने पावे। इसी प्रकार प्रत्येक दिन ३ दिन तक सध्या के ४॥ या ५ बजे के समय

लेप कर १० मिनट तक बांध कर राख लगावें। तथा फिर ६ दिन तक अहोरात्रि पेट पर साधारण वस्त्र की पट्टी बंधी रखनी चाहिये। यह चिकित्सा निर्वात स्थान में करें। इस लेप से पेट पर जलन होती है, पसीना आ जाता है। घबराहट, बेचैनी कभी कभी चक्कर भी आते हैं। किन्तु वैद्य को घबराना नहीं चाहिये। इसमें कुछ भी बिगाड नहीं होता। लगभग ३ वर्ष के लिये उदर सम्बन्धी सब विकार दूर होकर पाचन शक्ति ठीक रहती है, दस्त साफ होता रहता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है। ध्यान रहे ८ दिन तक हवा मे घूमना, खटाई, मिर्च खाना, स्नान करना, परिश्रम करना बिल्कुल निषेध है। अनुभूत है। ८ वर्ष से कम आयु वालों को यह प्रयोग नहीं करना चाहिये। (स्व प भागीरथ स्वामी की आत्मसर्वस्व पुस्तक से साभार)

करेरुआ [Capparis Horrida]

यह शाकवर्ग की वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार वरुण कुल (Capparidaceae) की है। इसके मुख्य दो भेद हैं। एक मे तो व्याघ्रनखाकृति के युग्म काटे होते हैं। तथा फल की शाक बनाई जाती है। दूसरा भेद वह है। जिसकी बेल मे काटे तो व्याघ्रनखाकृति जैसे ही होते है। किन्तु वे प्राय युग्म नही होते, फल मे भी किंचित भेद होता है। इस दूसरे भेद को लेटिन मे कैपरिस जिलेनिका (Capparis Zeylanica) कहते हैं। गुणधर्म मे दोनो एक समान हैं। दोनो का वानस्पतिक वर्णन आगे दिये हुये वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा के लेखों मे देखिये।

इसके फल बहुत ही कडुवे होते हैं, तथा महाराष्ट्र मे इन्हे वाघाटी, गोविन्दी (गोविन्द फल) कहते हैं। और कहा जाता है कि इन फलो की शाक बनाकर खास कर वर्षा के प्रारम्भ काल मे (आर्द्रानक्षत्र मे) खा लेने से फिर वर्षा भर शरीर मे फोडे फुसी नही होते तथा सर्पादि कीटक दश की बाधा नही होती। इसीलिये प्राय आषाढ शुक्ल की एकादशी के दूसरे दिन द्वादशी को इसकी शाक महाराष्ट्र मे खाई जाती है।

भावप्रकाश आदि निघण्टु ग्रन्थो के शाक वर्ग मे जिसे डोडी, डोडिका आदि कहा गया है, उसे ही कई लोग करेरुआ मानते है। किन्तु वास्तव में वह इससे भिन्न अर्ककुल (Asclepiadaceae) की एक रुचिकर शाक श्रेष्ठ है। उसका वर्णन डोडी मे शाक देखिये।

नाम—

स०—व्याघ्रनखी, व्याघ्राक, गान्धारी, ग्रन्थिल
हि०—करेरुआ आरदन्दा, गिटोरन, गोविन्दफल,
म०—वाघाटी, गोविंदी,
व—कालुकेरा। गु०—करवी खरखोड़ो, वाघांटी
ले०—कैपरिस हारिडा, कैपरिस जिलेनिका

गुणधर्म और प्रयोग—

रुक्ष, लघु, कटु, तिक्त, विपाक मे कटु और उष्ण-वीर्य, रुचिवर्द्धक, दीपन, कफवातशामक, शोथहर, वेदनास्थापन, रक्तशोधक, हृदयोत्तेजक, ज्वरघ्न, तथा अग्निमाद्य, श्लीपद, आमवात, प्लीहावृद्धि, अर्श शोथ आदि मे लाभकारी है।

इसकी जड तथा छाल—वेदनाशामक, मूत्रल पाचक स्वेदावरोध, प्रत्युगतासाधक (Counter irritant) है। जड की छाल को पीस कर जहरवाद फोडे या अन्य प्रकार के फोडो पर लगाते हैं। श्लीपद, आमवात आदि मे जड को पीस गरम कर लेप करते हैं। उष्ण काल मे शरीर पर उठने वाली फुसियो पर तथा मुंहासो या कच्चे फोडो पर जड को शीत जल मे पीस कर लेप करते हैं। हैजा (कालरा) की हालत मे इसकी छाल के चूर्ण देशी को शराब मे घोलकर पिलाते हैं। बालको के लालास्राव पर इसकी जड को पत्थर पर घिस कर पिलाते है।

(१) नासूर, भगन्दरादि दूषितव्रणो पर—छाल-सहित इसकी जड को पानी में पीस लुगदी बनाकर उसे १६ गुने जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर इस अवशिष्ट क्वाथ जल का चतुर्थांश शुद्ध तिल तैल मिला पुन पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रखें। उक्त प्रकार के व्रणो पर इस तैल मे शुद्ध कपास को तर कर उसकी बत्ती बनाकर

करेरुआ (कालकेरा)

Capparis zeylanica Linn.

प्रयोग करने से शीघ्र रोपण होकर लाभ होता है।

(२) आमाशयिक प्रदाहजन्य वमन, उदर शूल आदि शमनार्थ, तथा क्षुधा वृद्धि और सूतिकाज्वर पर मूलत्वक का क्वाथ—जड की छाल का जौकुट चूर्ण १० तोले को लगभग १ सेर जल मे मदाग्नि पर पकावें। लगभग ५० तोला जल शेष रहने पर, तथा ठडा हो जाने पर छानकर रक्खें। मात्रा २॥ से ७॥ तोले तक २४ घटे मे ३-४ वार सेवन करावें।

इस क्वाथ के सेवन से प्रस्वेद पर लाभ होता है।

(३) प्लीहावृद्धि पर—विवर्द्धित प्लीहारोगी को सर्वप्रथम कहा जाता है कि औषध रविवार या मगलवार को वाधी जायगी और उससे पहले अर्थात् शनिवार या सोमवार की रात को उसे केवल सादी (पीठीरहित) घृत पक्व पूरी विना किसी अन्य वस्तु (दुग्ध, तरकारी आदि) के खानी चाहिये और दूसरे दिन प्रात शौचादि से निवृत्त होकर दातौन किये विना वैद्य के पास आना चाहिए। वैद्य को चाहिए कि पहले से ही उक्त बूटी की ताजी जड (अभाव मे नवीन सूखी जड) मगाकर छान निकाल १० दाने कालीमिर्च के साथ किसी कुमारी लडकी से थोडे पानी मे पिसवाकर वारीक लुगदी तैयार करावें। फिर प्लीहा के परिमाणानुसार एक मिट्टी की परई लेकर उसमे विनौला कस-कस कर भर दें और ऊपर उक्त लुगदी की आध अगुल मोटी तह चढा दें। फिर रोगी को चित्त लिटाकर उक्त परई को उलट कर ठीक प्लीहा स्थल पर रखें और किसी वस्त्र को चौपत कर पीठ के नीचे से लपेट कर खूब कसकर वाध दें। रोगी तैसे ही चित्त पडा रहे, इधर उधर न घूमे और न वधन को ढीला ही करे। वस इसी प्रकार उसे ३ घण्टे तक पडा रहना चाहिए। औषध वाधने के १०-१५ मिनट वाद उसका प्रभाव आरम्भ होता है। रोगी उक्त स्थल पर दाह का अनुभव करने लगता है। दो घण्टे तक यह आग की जलन जैसी दाह वनी रहती है। फिर जलन धीरे धीरे कम होती जाती है। वरावर ३ घण्टे वाद एकदम न्यून पड जाती है। फिर रोगी को किसी प्रकार का कष्ट नही होता। सदा के लिए यह दारुण रोग दूर हो जाता है। ध्यान रहे ३ घण्टे पूर्व कदापि वन्धन को नही खोलना चाहिए। अन्यथा जलन स्थायी रूप धारण कर लेगी और रोग दूर न होगा। ठीक समय के वाद वधन खोल दें और रोगी को दातौन आदि मुख शुद्धि के लिये कह दें। इसके उपरान्त रोगी की इच्छा हो तो खिचड़ी आदि खावे या केवल गरम दूध पीवे। प्लीहा के स्थान को पानी से या पसीना आदि से वचाना चाहिये अन्यथा फफोला पड़ने की आशका रहेगी। उसे एक मास पर्यन्त गुड, तैल, लाल मिर्च, भुने चने अथवा स्निग्ध, उष्ण, विष्टम्भी या गरिष्ट पदार्थ नही खाने चाहिए। इससे मास पर्यन्त कभी कभी काले रग का मलोत्सर्ग होता रहता है तथा प्लीहा क्रमश अपनी पूर्व स्वाभाविकावस्था पर आ जाती है।

यह उपचार रोगी की क्षमता का विचार पूर्णतया कर लेने के वाद ही करना चाहिए। इस उपचार के पश्चात एक मास पर्यन्त मदार क्षार (आक के पान और

सैंधव नमक को हाडी में भर यथाविधि गजपुट देकर बनाई हुई भस्म) मात्रा ६-६ माशे [प्रातःसाय' शहद के साथ चटावें तो फिर रोग की पूर्णतया जड़ ही काट जावे। —आ० विष्वकोष से साभार।

फल—कफ वाननाशक, शोथ घ्न, अजीर्ण, मलावरोध तथा सूतिकाज्वरनाशक है।

(४) सूतिकाज्वर पर—उक्त प्रयोग नं० २ मे कही गयी मूलत्वक् की क्वाथ विधि के अनुसार ही इसके फलो का क्वाथ सिद्ध कर दिन मे २-३ बार देने से प्रसूतावस्था मे विषप्रकोप या अपचन से होने वाला मन्द ज्वर दूर हो जाता है।

(५) अजीर्ण, मलावरोध आदि पर—इसके कच्चे फलो का—राई, कालीमिर्च, सैंधानमक और कड़ुवा तैल मिलाकर बनाया हुआ अचार परम पाचक होता है। इससे जीर्ण-अजीर्ण रोग एवं मलावरोध दूर होता है।

पत्र—पाचक, व्रण, शोथ, खुजली, जलोदर आदि नाशक हैं।

व्रणशोथ पर—पत्तो को पीसकर पुल्टिस बनाकर बाधते हैं। तैसे ही अर्श शोथ पर भी पत्तो की लुगदी अथवा पुल्टिस बनाकर बाधें। उकवत पर भी इसी प्रकार बाधने से लाभ होता है। उपदश पर पत्र क्वाथ पिलाते हैं।

(६) जलोदर पर—पत्तो का चूर्ण और मूलत्वक का चूर्ण एकत्र मिला। मात्रा—६ माशे तक नित्य प्रात सायम् शहद के साथ २१ दिन तक सेवन करावें।

करेरुआ (कालकेरा)

(लेखक वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा)

नैसर्गिक वर्ग—Capparidaceae

जाति—Capparis Linn

नाम—

नाम—बगला—कालकेरा। लेटिन—Capparis Zeylanica Linn

उत्पत्ति स्थान—

बगाल प्रदेश के दक्षिण, पश्चिमाश, कर्नाटक और मालावार क्षेत्र, हुगली के पश्चिम मे और मेदिनीपुर जिले मे होता है।

उपयोगी अंग—समग्र।

विवरण—

बहुत शाखा विशिष्ट और काटो से युक्त उद्भिद। पत्र १॥ से ३ इञ्च लम्बा, ½ से १॥ इञ्च विस्तृत, पत्र ऊपर की ओर से उज्ज्वल होता है। फूल २ इंच व्यास विशिष्ट, श्वेतवर्ण, १-१ अथवा कभी एक साथ २-३ सम्मिलित होते हैं। पुष्पदल नीचे की ओर से पीताभ, शेष में लाल वर्ण होता है। गर्भाशय लम्बा, फल २ इंची लम्बा और चिकना फल के बीज चक्राकार होते हैं। पत्र आकृति मे बहुत कर कदम के पत्तों के समान होते हैं। ग्रीष्मकाल में फूल और वर्षा मे फल लगते हैं।

औषधोपयोग—ज्वरनिवारक और त्रिदोषनाशक है।

करेरुआ नं. २ (आरदन्दा)

Capparis horrida Linn.
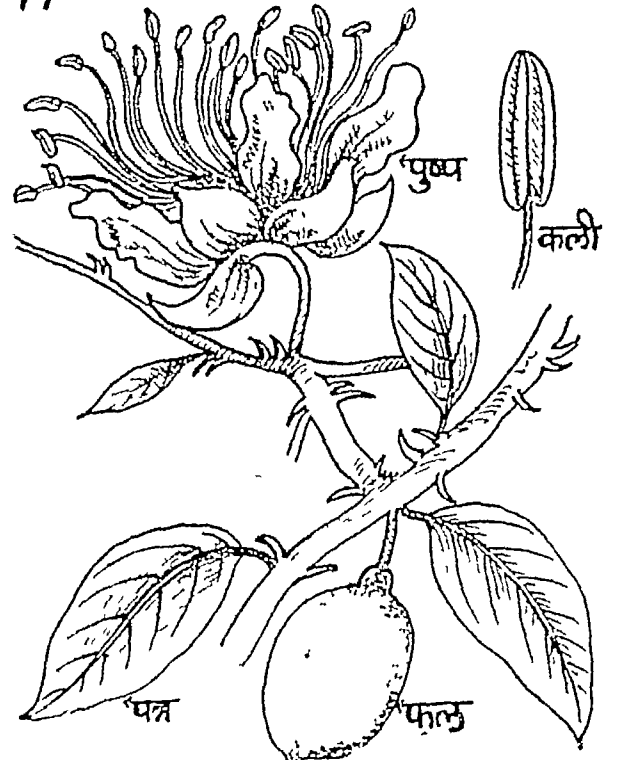
करेरुआ नं० २
[आरदन्दा]

नैसर्गिक वर्ग—Capparidaceaea

जाति—Capparis Linn

नाम—

संस्कृत—हुङ्कारु । हिन्दी—आरदन्दा, सथाली-वागनि, वागुचि । तेलगू—अरुभण्ड ।

उत्पत्तिस्थान—

बंगाल प्रदेश के जंगलो के किनारे और गगा नदी के पश्चिमी किनारे के स्थानो, चट्टगाव, सहारनपुरादि स्थानो मे होता है।

उपयोगी अङ्ग—पत्र, मूल और मूलत्वक् ।

विवरण—

छोटा गुल्म जातीय, वृक्षारोही, उद्भिद, शाखायें चारो ओर विस्तृत । पत्र डिम्बाकृति, अग्रभाग, लम्बा, मोटा और चिकना, पत्र दण्ड छोटा । दण्ड के काटे नीचे की ओर टेढे । फूल १॥ इ च के १-१ अथवा २-३ एक साथ होते हैं । पुष्पदण्ड ½ से ¾ इ च, फूल बडा और सफेद रग का होता है । पुकेश्वर, पुष्पदल की अपेक्षा लम्बा होता है । फल १। इ च मोटा, प्रत्येक फल मे अनेक वीज होते हैं । पुष्पदल श्वेतवर्ण, पु केश्वर लालवर्ण को होती है । ग्रीष्मकाल मे फूल और वर्षाकाल मे फल लगते है ।

पश्चिम भारत मे इसके पत्तो को विद्रधि, अर्श और किसी स्थान पर आम शोथ होने पर पुल्टिस वनाकर बाधते है । मद्रास मे इसके पत्तों का क्वाथ उपदश रोग मे दिया जाता है (वा०) । मूलत्वक् स्निग्धकर, पेट शूल निवारक और क्षुधावृद्धिकर है । यह घर्म्म निवारक है । इसके पत्र क्षुधावृद्धिकारक हैं (मूडीन शरीफ) । छोटे नागपुर के निवासी इसकी छाल शराव के साथ विशूचिका रोग मे प्रयोग करते हैं । (केम्पवेल)

करेला और करेली (Monordica Charantia)

यह सबका परिचित शाक नैसर्गिक क्रमानुसार कोशातकी (Cucurbitaceae) कुल का है ।

वडे और छोटे के भेद से यह दो प्रकार का होता है। ऊपर लेटिन नाम (मोमोर्टिका चेरंटिया) वडे का है । इसे करेला (कारवेल्लक) कहते हैं । छोटे का लेटिन नाम मोमोर्डिका मुरिकेटा (Momordica Muricata) है । इसे करेली (कारवेल्ली) करते हैं । इन दोनो के केवल आकार प्रकार मे ही अन्तर है, गुणधर्म मे विशेष अन्तर नही है ।

करेला का फल वडे से बड़ा १ या १॥ फीट तक लम्वा होता है, वैसे तो साधारण लम्वाई ३ इन्च की होती है, तथा इसकी वेल भी दीर्घ होती है । करेली १ से ३ इन्च या इससे छोटी क्षुद्र अण्डाकार होती है, तथा इसकी वेल भी उतनी लम्बी नही होती ।

रग मे करेला या करेली हरे ही होते है, किंतु करेला कही श्वेत रग का भी होता है, तथा यही प्राय वहुत लम्वा होता है । मालवा और मारवाड़ की ओर ऐसे सफेद करेले विशेष होते हैं । इनका छिलका पतला एव इनकी शाक उत्तम होती हैं। वडे करेलो मे एक करेला ऐसा भी होता है, जो लम्वा तो अधिक नही होता किन्तु वजन मे भारी लगभग १-१ पाव का होता है । यह वहुत ही कोमल किंतु अत्यधिक कडुवा होता है ।

करेला या करेली की लता वर्षायु, पत्र अनेक असमान भागो मे विभक्त, गोलाकार, रोमश तथा लगभग १ से ३ इ च व्यास के होते हैं । पुष्प पीतवर्ण एक लिंगी तथा फल मध्य भाग मे मोटे तथा दोनो छोर पर क्रमश नुकीले, पृष्ठ भाग पर त्रिकोणाकार उभारयुक्त होते हैं । पकने पर पीले पड जाते हैं तथा गूदा और बीज लाल होजाते हैं ।

करेले की उपज ग्रीष्म मे वैशाख से आषाढ तक खूब होती है । वर्षा मे वेल गल जाती है । पुन शीतकाल मे इसकी लता वढकर फलने फूलने लगती है । शीतकाल के फल उत्तम स्वादिष्ट होते हैं ।

जगली या वन-करेला भी होता है । इसके फल वहुत

ही छोटे तथा बहुत ही कडुवे होते हैं। यह ककोडा की ही एक जाति विशेष है। देखो ककोडा और कर्डोची के के प्रकरण मे। और एक वन करेला वह होता है, जिसकी वेल अत्यन्त पतली तथा बहुत दूर तक फैली हुई होती है। इसके फल बहुत छोटे एव अत्यन्त कडुवे होते हैं। यह प्राय करेली के फल से छोटा, बहुत बीजो वाला होता है। इसमें गूदा नाम मात्र को बहुत ही थोडा होता है। बगाल की ओर इसे काशीरउच्छे, तथा लेटिन मे मोमोर्डिका बालसामिना (Momordica-Balsamina) कहते हैं। विशेष देखिये मोरवा न. २ मे।

नाम—

सं.—कारवेल्लक, कांठिल्ल, सुपवी तथा कारवेल्ली, क्षुद्र-कारवेल्लक।

हि.—करेला, तथा करेली छोटा करेला।

व.—करला, उच्छे, कोरोला, छोटा करला, छोट उच्छे।

म.—कारलें, कार्ली, क्षुद्र कारली, लघुकारली।

गु —कारेलां. करेटी, कड़वावेला।

अं—विटर गोर्ड (Bitter gourd), हेअरी मोर्डिका (Hairy mordica)

ले —मोमोर्डिका चेरन्टिया, मो मुरिकेटा।

भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र करेला पाया जाता है। चरक के तिक्त स्कन्धगण में इसकी गणना की गई है। यह मलाया चीन और अफ्रीका मे भी होता है।

रसायनिक संगठन—

इसमे पानी प्रतिशत ९२४, छोटे मे कुछ अधिक, खनिज पदार्थ प्र श ०८ छोटे मे १४, प्रोटीन १६, छोटे मे २९, वसा–०२ छोटे मे १००; कार्बोहाइड्रेट ४२ छोटे में ९८, कैलशियम ००३, छोटे मे ००५; फासफोरस ००७, छोटे मे ०१४, लोहा प्र श २२ मिलीग्राम, छोटे मे ९४ मि, विटामिन ए प्रति सौ ग्राम इटर नेशनल यूनिट २१०, छोटे मे भी २१०, विटामिन बी प्र श ग्राम इ यू २४ इतना ही छोटे मे भी है, विटामिन सी दोनो मे ८८ मिली ग्राम पाया जाता है।[1]

यकृत और रक्त के लिये लोह तथा अस्थि, दात, मस्तिष्क एव अन्यान्य शारीरिक अवयवो के लिये फास्फोरस की जितनी कुछ आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ण पूर्ति करेला के द्वारा हो जाती है।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, विपाक मे कटु तथा उष्णवीर्य है। यह रोचन, दीपन, पाचन, पित्तसारक, कृमिघ्न, मूत्रल, उत्तेजक, ज्वरघ्न, मृदुसारक, त्रिदोषनाशक, रक्तशोधक, शोथहर, व्रणशोधन, रोपण, दाह प्रशमन, चक्षुष्य, वेदना स्थापन, आर्तवजनन, स्तन्यशोधन, तथा मेद, गुल्म, प्लीहा, शूल, पाडु प्रमेह, और कुष्ठनाशक है।

यह कफ प्रकृति मे विशेष गुणकारक है। करेली में भी ये ही सब गुण हैं। इसमे करेला की अपेक्षा अधिक लघुता और दीपकता है। यह पचने मे विशेष हलकी और जठराग्नि को तेज करने वाली व दस्तावर है। विषम ज्वर, ग्रहणी, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार आदि

करेला

Momordica charantia Linn.

[1] यह विश्लेषण भारतीय प्रयोगशाला कूनूर की सारिणी के आधार पर है।
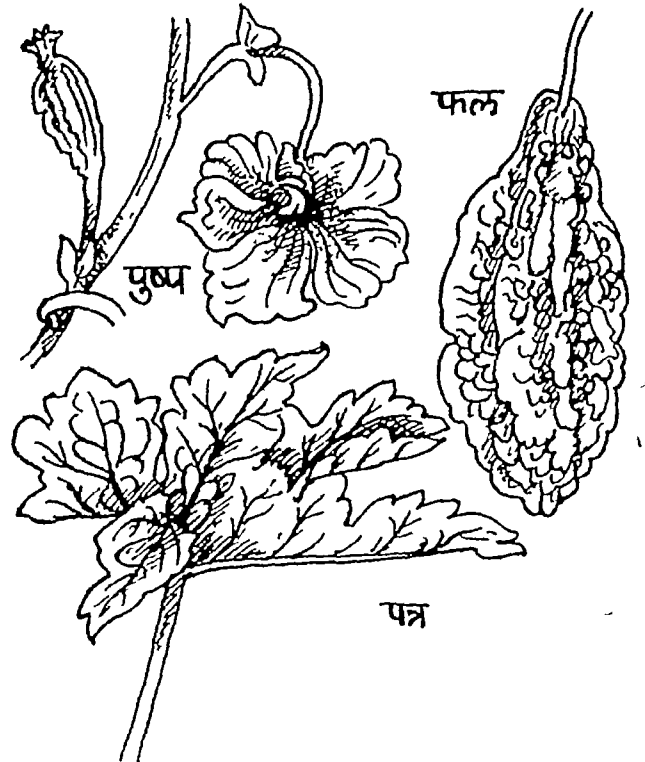
की दशा मे अग्निदीपनार्थ तथा वातानुलोमनार्थ इसका प्रयोग चित्रकमूल के साथ किया जाता है। हाथ पैरो की शोथ पर इसे पानी मे पीसकर प्रलेप करते है।

इसके फल, पत्र, मूल आदि सर्वाङ्ग ही औषधि कार्य मे लिये जाते हैं। मात्रा—पत्रस्वरस १-२ तोला, तथा वमन विरेचनार्थ १० तोला तक। इसके अतियोग से अत्यधिक वमन विरेचन या अन्य कोई उपद्रव होने पर, शमनार्थ चावल और घृत खिलाते हैं।

फल के गुण और प्रयोग—

ज्वर, शोथ, आमवात, वातरक्त, यकृत या प्लीहा वृद्धि तथा जीर्ण त्वग्रोगो मे इसका शाक सेवन कराते हैं, किंतु इसके प्रभावोत्पादक कडुवे रस को किसी प्रकार दूर नही करना चाहिये। चेचक या खसरे से बचने के लिये इसकी शाक का सेवन लगातार कई दिनो तक करते रहना चाहिये। इनके अतिरिक्त निम्न रोगो पर रोगी की प्रकृति, दोष आदि का विचार करते हुये इसका शाक पथ्यरूप मे देना हितकारी है—अजीर्ण, मधुमेह, अर्श, वात-रोग, उरुस्तम्भ, प्रमेह, शूल, श्लीपद, गलगण्ड, व्रणशोथ, नाडीव्रण, उपदश, विसर्प, मुखरोग, कर्णरोग, दृष्टिमांद्य, शिर रोग और कफरोग।

वर्षाकाल मे पाचन शक्ति मन्द पड जाती है, अत उसे तेज करने मे इसकी शाक सहायता देती है। शाक की विधि इस प्रकार है—

फलो के ऊपर का छिलका आदि न निकालते हुए उन्हे एक वस्त्र मे बाध ढीली पोटली सी बना किसी पात्र मे थोडा पानी भर उस पर यह पोटली लटका दें। पात्र को आग पर रखदें। पानी की भाप से पोटली मे बधे करेले जब अच्छी तरह उसीज जाय तब उन्हे निकाल टुकडे कर नमक, मसाला आदि मिला किंचित घृत या तैल मे छौंक कर शाक तैयार करलें।

फोडो की खुजली या उष्णता पर—फल को पीस कर लेप करते है। गठिया पर भी इसी प्रकार फलो का कल्क या रस गरम कर लेप करते हैं। अग्निदग्ध पर फल के रस का लेप करने से दाह की शांति होती है। कामला पर—ताजे करेला को पानी मे पीस छानकर पिलाने से २-४ दस्त होकर कुछ लाभ होता है।

(१) मुख के व्रण या ... —फल-रस १ छोटे चम्मच भर लेकर उसमें थोडी चाक मिट्टी और थोडी चीनी मिला लगाते हैं और थोडा थोडा पिलाते या चटाते है।

(२) संधिवात गठिया आदि पर—फल के ऊपरी छिलके को निकाल कर शेष भाग को आग पर १० मिनट रखकर भुर्त्ता बना लें। फिर उसमें थोडी शक्कर मिला रोगी को गरमागरम सुहाता हुआ खिलादें। इस प्रकार प्रात साय एकबार में ६ तोले तक यह करेला का भर्त्ता रोगी को १० दिन तक सेवन करावें। स्नायुगत वात, सधिवात आदि मे लाभ होता है। पीडा स्थान पर फलो के रस को गरम कर बार-बार प्रलेप करते रहे।

(३) मधुमेह और रक्तविकारो पर—फलो के टुकडों को छायाशुष्क कर महीन चूर्ण बना रखें। मात्रा—३ से ६ माशे तक शहद अथवा जल के साथ सेवन करते रहने से इन्सुलीन की विशेष आवश्यकता नही पडती। पेशाब की शर्करा शनै शनै बन्द हो जाती है।

यही प्रयोग रक्तशुद्धि के लिये भी दिया जाता है। इससे खाज, खुजली, विचर्चिका आदि रक्तविकार नष्ट हो जाते हैं।

मधुमेह मे ताजे फलो का रस १-२ तोले पीते रहने से भी लाभ होता है। रोगी को इसकी शाक भी नित्य खानी चाहिए।

पाडुरोग मे भी फलो के रस का सेवन कराते है।

(४) प्लीहावृद्धि, गलशोथ पर—फल के रस मे थोडी राई और नमक का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं।

गले की शोथ पर—शुष्क फल को सिरके मे पीस गरम कर लेप करते हैं।

(५) स्तम्भन शक्ति की वृद्धि के लिये फल के रस के साथ ही इसके पत्तो का रस मिला आग पर पकाकर जब गोली बनाने योग्य हो जाय तो ३-३ माशे की गोलिया बनालें। प्रथम थोडा गौदुग्ध पीकर ऊपर से १ गोली निगल जावें, थोडी देर बाद थोडा शहद चटा दें।

इसका अत्यन्त स्तम्भक एव वाजीकर प्रयोग देखिये नीचे पत्र प्रयोगों मे।

पत्र—डंठलसहित कोमल पत्र आमाशय पौष्टिक, वामक, मृदुविरेचक एव मूत्रल हैं। इसके प्रयोग से यदि वहुत ही वमन या विरेचन होने लगे तो घी भात खिलाते हैं। वमनार्थ—पत्र रस मे थोडा सिरका या सेंधानमक मिला या इसके रस मे सुगन्धित द्रव्यो का योग देकर पैत्तिक रोगो मे पिलाते है। इससे यथायोग्य वमन और रेचन होकर रोग की शान्ति होती है। वालको के उत्क्लेश मे पत्र स्वरस ६ माशे तक लेकर उसमें थोडा हरिद्रा चूर्ण मिला पिलाने से वमन होकर आमाशय शुद्ध होता है। वाल श्वसनक (निमोनिया) पर—पत्र रस को गुनगुना कर (थोडा गरम कर) उसमे थोड़ी असली केशर मिलाकर पिलावें, विशेष लाभप्रद है (प० रामस्वरूप आयुर्वेदाचार्य) कामला मे पत्र रस मे हरड को घिसकर पिलाते हैं।

पैर के तलुओ के दाह पर पत्र रस का लेप करते हैं। रतौंधी पर—इसके रस मे कालीमिर्च घिसकर नेत्रो के ऊपर चारो ओर लगाते है। पत्तो का क्वाथ पिलाने से प्रसूता स्त्री की रक्तशुद्धि एव स्तन्य की वृद्धि होती है। स्त्री के रजोरोध पर—पत्र रस मे सोठ, कालीमिर्च और पीपर का चूर्ण मिला पेडू पर लेप करते हैं। मसूरिका ज्वर विस्फोट आदि की दशा मे पत्र स्वरस के साथ हल्दी का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं। पत्र रस कुछ गरम कर ठडा करें और उसमे समभाग उत्तम मधु व सजीवनी वटी १ घोलकर देने से मसूरिका, मथर ज्वर, शीतला निरुपद्रव शान्त होते हैं। (वैद्य प राम-स्वरूप जी उखलाना अलीगढ) आन्त्रस्थ कृमि पर इसका रस पिलाते हैं तथा दद्रु पर लेप करते हैं।

(६) वृक्क एव वस्ति की अश्मरी पर—हरे पत्तो का रस ३ तोले या १॥ तोले दही के साथ मिलाकर खिलावें, ऊपर से ५-६ तोले छाछ पिला दें। ३ दिन तक ऐसा करें। पश्चात् ३ दिन तक उसी भाति पिलावें फिर ४ दिन वन्द कर ५ दिन तक पिलावें। इसी प्रकार १-१ दिन वढाकर उस समय तक करते रहे कि एक सप्ताह पर पहुँच जाय। सेवन काल मे खिचडी और चावल का आहार करें। —आ० वि० कोप

(७) अत्यन्त स्तम्भक तथा वाजीकरण प्रयोग—पत्र का १० तोले स्वरस निकाल कर रात्रि को ओस मे छत पर धरे। प्रात इसमे ढाई तोले कुलजन का चूर्ण मिला लें। शुष्क हो जाने पर सुरक्षित रक्खें। प्रसङ्ग से एक घण्टे पूर्व ३ माशे यह दवा भैंस के दूध १ पाव के साथ सेवन किया करे। अति कामोत्तेजक तथा स्तम्भक वहुमूल्य योगो मे यह मार्के का प्रयोग है।

—वैद्य श्री अमरनाथ शर्मा, चमरौआ (रामपुर) उ. प्र.

(८) अम्लपित्त पर—इस रोग के कारण भोजन करते ही तुरन्त वमन हो जाता हो तो उसकी शान्ति के लिये करेले के फूल या पत्तो को घी मे भूनकर खाना चाहिए। स्वाद के लिये सैंधानमक मिलाया जा सकता है। —आरोग्य लेखाजली, प श्रीकेदारनाथ पाठक

(९) नेत्ररोग पर—आख के फूले, जाले और रतौंधी आदि की शान्ति के लिये जग लगे हुए लोहे के पात्र पर इसके पत्तो का रस और एक कालीमिर्च का थोडा सा हिस्सा घिसकर आजना चाहिए। —आ लेखाजली

(१०) पशुओ का मुखरोग—पशुओ की जीभ मे यदि काटे निकल आवें तो उसकी शान्ति के लिये दिन मे कई वार इसके पत्तो को पीसकर जीभ पर लेप करना चाहिये। —आ लेखाजली

(११) जलोदर पर—जीर्ण विषम ज्वर मे यकृत्प्लीहावृद्धि के साथ उदर मे कुछ जलोत्पत्ति हुई हो तो पत्तो का स्वरस अति गुणावह है। इससे पेशाव वढ जाता है, १-२ वार शौच होता है, क्षुधा वढकर भोजन पचता है तथा रक्त की वृद्धि होती है। इस रोग मे प्रयोजक औषधो की गोलिया बनाने के लिये इसका स्वरस उपयोगी है। —गावो मे औषधि रत्न

करेले की जड, वेल और बीज—इसकी जड उष्ण, सग्राही, संकोचक, रक्तार्श, शीतज्वर, योनिरोग, खाज-खुजली आदि नाशक है।

अर्श मे—इसके कल्क का लेप करते हैं। वातजन्य अर्श के मस्सो पर इसे घिसकर लगाते है।

व्रणशोथ मे—इसके कल्क मे थोडा सैंधानमक मिला कर वाधते हैं। शीतज्वर (मलेरिया) मे—जड को रविवार के दिन रोगी की कमर मे वाधते हैं। खाज खुजली या महीन फुसियो पर जड का उवटन लगाते हैं। पारे के

विष पर जड पीसकर कुछ दिन लगातार पिलाते हैं।

(१२) योनिरोग पर—किसी कारणवश यदि योनि अन्त प्रविष्ट हो गई हो तो इसकी जड को पीसकर लेप करते रहने से वह पूर्ववत् बाहर निकल आती है।

बेल[1] के प्रयोग—वातरक्त रोग मे इसकी बेल के क्वाथ और कल्क द्वारा सिद्ध किये गये घृत का सेवन कराते हैं। इसके कल्क के साथ दालचीनी, पीपर और चावल के चूर्ण को तथा तुवरक तैल को मिलाकर बनाया हुआ अनुलेपन कण्डू, दुष्ट व्रण आदि चर्मरोगो को दूर करता है। विसूचिका मे बेल के क्वाथ मे तिल तैल मिलाकर पिलाने के लिये भावप्रकाश मे लिखा है।

[1] बेल अर्थात् मूल का ऊपरी मोटा, चिकना भाग।

रक्तार्श पर—इसके क्वाथ का शर्बत बनाकर १ तोले तक की मात्रा मे पिलाते हैं, इस कार्य के लिये विशेषत करेली की बेल लेनी चाहिए।

बीज का प्रयोग—बच्चा जब अधिक वमन करने लगता है तब इसके २-३ बीज के साथ समभाग काली-मिर्च लेकर सिल या पत्थर के खरल मे थोडे जल के साथ पीस छानकर थोडा थोडा पिलाये।

(१३) पित्तज मस्तिष्कशूल तथा कर्णशूल पर—इसके पत्र रस के साथ थोडा गोघृत और पित्तपापडे का रस मिलाकर सिर पर लेप करने से पैत्तिक सिर दर्द शीघ्र नष्ट हो जाता है।

कान के दर्द पर—इसके ताजे फल का अथवा पत्तो का रस गरम कर कान मे छोडने से लाभ होता है।

करोई [Strobilanthes Collosus]

यह वासादिकुल (Acanthaceae) की वनौषधि भारत के दक्षिण मे पर्वतीय घाटो की ऊची भूमि पर विशेष होती है। मध्य भारत के भी ऊचे स्थलो पर कही कही पाई जाती है।

इसके पौधे अडूसे के पौधे जैसे, किंतु एक प्रकार की तीव्र सुगधियुक्त होते हैं। इसके बीजो में कुचला सत्व जैसा ही किन्तु उससे कुछ कम प्रभावशाली ब्रूसाईन (Brucine) नामक सत्व होता है। अत यह जहरीला होता है। बम्बई की ओर इसे करोई, करवी, गुजराथ मे पन्ददी, मध्यभारत मे मरोदना तथा लेटिन मे—स्ट्रोबिलेन्थस केलोसस कहते है।

गुणधर्म—

यह विषैला होने से केवल बाह्य प्रयोगो मे काम आता है।

आतडियो मे मरोड या शूल हो तो इसकी छाल के साथ समभाग पुन्नाग (सुलतान चपा, सुर्पण) की छाल मिला जौकुटकर पानी मे उबाल बफारा देते हैं।

गलशोथ या कर्णमूल प्रदाह पर—इसकी छाल के रस मे समभाग भागरे का रस मिला पकावे। अर्द्धावशिष्ट रहने पर उसमे पुराना तिल तैल, थोड़ी काली मिर्च और सौंठ का चूर्ण मिला गरम-गरम प्रलेप करें।

चोट, खरोच या साधारण जखम पर—इसके फूल के रस के साथ समभाग मैनफल का चूर्ण मिला लेप करते हैं। यह व्रण पूरक भी है।

करौंदी, करौंदा [Carissa Carandus]

फल वर्ग की यह वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार कुटज कुल (Apocynaceae) की है। चरक के हृद्य गण में इसकी गणना की गई है।

बडे और छोटे के भेद मे दो जातिया हैं। बडे को करौंदा (करमर्द) और छोटे को करौंदी, जगली करौंदा, (करमर्दिका) लेटिन मे कैरिसा ओपेका या के स्पिनेरम (Carissa Opaca, C Spinarum) कहते है।

इसकी उपज विशेषत रूक्ष, वालुकामय एव शुष्क पहाडी प्रदेशो मे बहुत होती है। वैसे तो भारत मे यह कम या अधिक प्रमाण मे सर्वत्र पाया जाता है। किंतु

दक्षिण मे तथा बंगाल, पंजाब, गुजराथ, कागडा, कच्छ और उत्तर प्रदेश के कुछ स्थानो मे यह प्रचुरता से पाया जाता है।

इसके कटीले, सदैव हरे भरे रहने वाले छोटे छोटे गुल्माकार ६ से ८ फीट ऊचे वृक्ष होते है। पत्ते नीबू के पत्र जैसे, किंतु उनसे छोटे, चिकने और मोटे होते है। पत्तो की डठल के आसपास ही तेज और मजबूत काटे होते हैं।

पुष्प—टहनियो के अग्रभाग पर जुही के पुष्प जैसे श्वेत पुष्प गुच्छो मे वसतऋतु मे लगते हैं। इनमे भीनी सुगन्ध आती है। फल—वर्षाऋतु मे फल, झडबेरी या मौलसरी के फल जैसे, आधे से एक इच तक लम्बे, चिकने होते है। कच्ची दशा मे ये हरे कुछ श्वेत और लाल रग से युक्त होते हैं। वर्षा के अन्त मे ये परिपक्व होकर काले पड जाते हैं। कच्चे फल को काटने पर श्वेत दूध जैसा रस निकलता है। बीज—प्रत्येक फल मे प्राय ४ बीज त्रिकोणाकार होते है।

करौदी के कटीले झाडीदार क्षुप उक्त करौंदे के क्षुप जैसे ही किंतु उनसे छोटे होते हैं। पत्र और भी छोटे होते हैं। ये प्राय जगलो मे ही खूब होते है। इसीलिये इसे जगली करौदा कहते है।

नाम—

सं—करमर्द[1] (जिसके स्पर्श से या मसलने से हाथों में चिर्मचिमाहट हो), कृष्णपाकफल (जिसके फल पकने पर काले पड़ जांय), क्षीर फेना[2] (जिसमें दुग्ध फेन जैसा निकले), सुषेण(जिसमें सुन्दर फलों के गुच्छे लगे हों), करमर्दिका।

हि—करौंदा, कोरादा, करोना, गोथो, करौंदी।

बं.—करमचा, करचा, करेंजा।

म.—करवद, हरद्रुन्डी, करवंदी।

गु.—करमदा, करमदी।

अ.—बेंगाल करेंट्स (Bengal Currants), जसमाइन फ्लावर्ड केरिसा (Jasmine flowered Carrisa)।

ले.—केरिसा केरेंडस केपरिस कोरडस, (Capparis Corundas)

---

[1]करं मृदनाति स्पर्शात्, मृद् क्षोदे कर्मण्यण्।

[2]क्षीरफेना खासकर करौंदी।

रासायनिक संघठन—

इसमे एक क्षार तत्व और सैलिसिलिक एसिड पाया जाता है। इसकी मूल मे एक स्थिर तथा एक उड़नशील तल, कृष्णपीत राल जैसा पदार्थ तथा क्षारतत्व (Alkaloid) पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—फल, पत्र मौर मूलत्वक्। मात्रा—फल स्वरस ३० मे ६० बूद। पत्र रस १ से २ तोला तक। पत्र क्वाथ ५-१० तोला। फलो का शर्बत १ तोला तक।

गुणधर्म और प्रयोग—

(करौंदा, करौदी)—इसका कच्चा फल रस और विपाक में अम्ल तथा वीर्य मे उष्ण है। यह वातशामक, कफ पित्त वर्धक, दीपन, दाहक, भारी, आध्मानकारक, मलशोधक, रक्तदूषक और पित्तकारक है। इसकी अचार, चटनी, तरकारी आदि बनाई जाती है। चटनी और तरकारी खाने से मसूढे के विकार दूर होते हैं। अचार पाचक, क्षुधावर्धक तथा कासावसाथ कारक है। इसमे काटने पर भी दुग्ध फेन सा निकलता है (यह
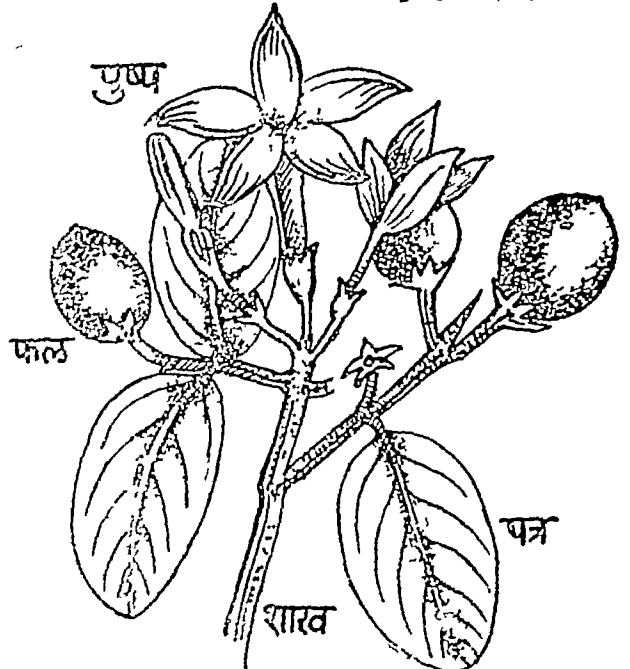
करौंदी से अधिक निकलता है) उसके लगाने से त्वचा मे चिमचिमाहट एव कभी कभी छाले से पड जाते हैं।

पका फल—मधुराम्ल, विपाक मे मधुर तथा शीत वीर्य है। यह लघु, वात पित्त एव [illegible], तृष्णानिवारक (यह गुण कच्चे फल मे नहीं है प्रत्युत् वह तृष्णा को और बढाता है)। पाचक, रुचिवर्धक, दीपन, ग्राही, त्वग्दोष निवारक, क्षुधावर्धक तथा पित्तातिसार आदि नाशक है।

उदरशूल मे इसके चूर्ण का सेवन कराते हैं। पैत्तिक प्रदाह की शांति के लिये इसके रस म शक्कर और इला-यची का चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं, अथवा इनके शर्बत को पिलावें। इसका मुरब्बा बनाया जाता है। यह हृदय के लिये हितकारी है किंतु रात्रि के समय इसे नही खाना चाहिये।

इसकी जड की छाल—तिक्त, विपाक मे कटु एव उष्णवीर्य है। यह कफ वात शामक ज्वरघ्न, कटु पौष्टिक, कृमिनाशक, कास श्वासनाशक, दस्तावर, सामान्य दुर्बलता नाशक तथा मूत्रल है। इन सब गुणो की विशेषता करौंदी, जगली करौंदे की जड मे है।

इसको घोडे के मूत्र, नीबू रस और कपूर के साथ पीसकर खाज खुजली पर लगाते हैं।

इसे पानी मे पीस कल्क बना तैल में पकाकर तैल सिद्ध करलें। इस तैल को लगाते रहने से खरजुवा(खरवा) दूर होता है। खरजुवा के कृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

सर्प विष पर—इसकी जड को पानी मे पीस छान कर पिलाते हैं। यदि वमन न हो तो समझा जाता है कि विष चढ गया है। फिर इसी का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं तथा पानी के साथ पीस कर हृदय के नीचे के भागो मे कमर तक चारो ओर मालिश करते हैं।

जड को पीस कर पानी में मिला सर्प के बिल में डालने से सर्प भाग जाते हैं। [illegible] करौंदे की बाड [illegible] लगाई जाती है वहां सर्प नहीं [illegible]।

[illegible] में [illegible] इसकी जड को पीस कर [illegible]। [illegible] से [illegible] हो जाता है।

नोट—उक्त सब प्रयोग जंगली करौंदा (करौंदी) के हैं। इसके अभाव में अन्य करौंदा की जड ले सकते हैं।

रक्त प्रदर पर—६ माशे से १ तोले तक जड को पीस कर दूध के साथ पिलाने से असाध्य रक्तप्रदर तथा मासिक धर्म मे अतिरक्तस्राव होना दोनों दूर होते हैं। ३ दिन में ही लाभ हो जाता है। यदि कुछ कसर रह जाय तो ३ दिन औषध बन्द रख कर फिर ३ दिन देने से पूर्ण आराम हो जाता है। —[illegible]

पत्र—कफ वात नाशक, पित्तवर्धक, अपस्मार आदि नाशक हैं।

पत्र रस में शहद मिला कोसा कोसा चाटने से शुष्क कास में लाभ होता है।

अपस्मार पर—पत्ते ६ माशे से १ तोला तक पीसकर दही के तोड में ३ दिन तक पिलाते हैं।

जलोदर पर—प्रथम दिन प्रातः पत्र रस १ तोला, दूसरे दिन २ तोला, इस प्रकार प्रतिदिन १-१ तोला बढाते हुये १० वें दिन १० तोला पिलावें। फिर प्रतिदिन १-१ तोला घटाते हुये २० वें दिन एक तोला पर लाकर प्रयोग बन्द करें। जलोदर दूर होता है।

शुष्क कास पर—पत्र रस मे शहद मिलाकर पिलाते हैं। ज्वर की दशा मे दाह की शांति के लिये तथा सतत ज्वर मे पत्तो का क्वाथ पिलाते हैं।

नोट—उक्त प्रयोगों के लिए जहा तक हो सके करौंदी या जंगली करौंदे के ही पत्र लेने चाहिये। इसके बीजों का तैल (बीजों को पीसकर तैल मे पकाया हुआ तैल) के मर्दन से हाथ पांव की बिवाई पाददारी आदि में लाभ होता है।

कर्टीला [Astragalus Gummifer]

इस शिम्बी कुल (Leguminosae) की वनौषधि को बगला मे कर्टीला, हिन्दी मे अगिरा, अग्रेजी मे गम ट्रागाकेंथ (Gum Tragacanth) तथा लेटिन मे अस्ट्रा-गेलस गमीफेर या अ० व्हीरस (A. Virus) कहते हैं।

इसका निर्यास ही विशेषत उपयोगी होता है। ग्रीष्मकाल मे इसकी तने की छाल मे से पतले तागे के रूप मे यह निर्यास या गोंद निकलता है जो धीरे धीरे जम कर कड़ा एव कीडे मकोडे के रूप मे टुकडे टुकडे

कर्तीला
Astragalus gummifer Labill.
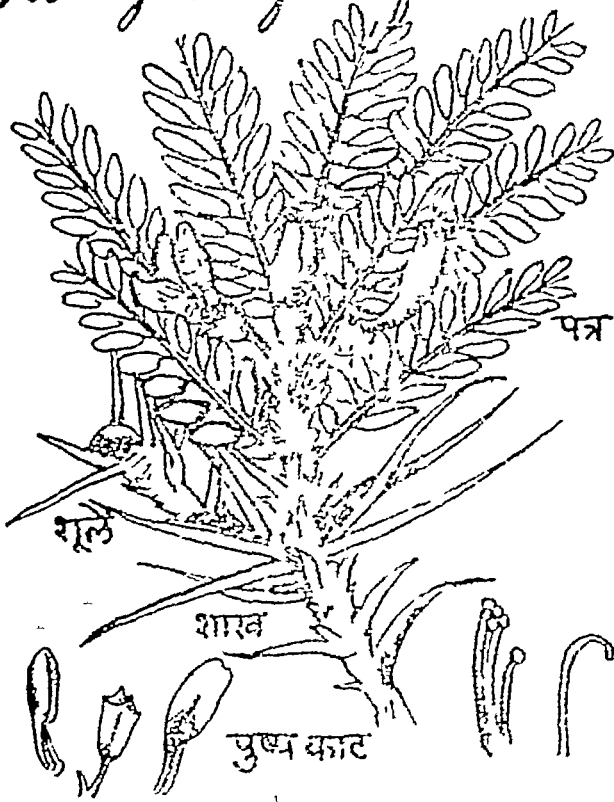
होकर रह जाता है। यह निर्यास मावर्द्दकर एव स्निग्ध गुण विशिष्ट होता है। फुफ्फुस से सम्बन्ध रखने वाली शिराओ एवं जननेन्द्रियो की श्लेष्मल त्वचाओ की प्रक्षुब्ध दशा मे यह विशेष लाभकारी होता है।

इसका विशेष विवरण वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा जी के आगे दिये हुये लेख मे देखिये—

जन्मस्थान—एशिया माइनर, आर्म्मिनिया, फारस, कुर्दिस्थान, सिरिया एव हिमालय प्रदेश आदि।

उपयोगी अङ्ग—दूध।

विवरण—

छोटा गुल्म जातीय उद्भिद, २ फीट ऊचा बहुत सी शाखाओ से युक्त गुल्म। शाखाओ पर लम्बे लम्बे तेज काटे होते हैं। छाल लाल आभायुक्त धूसर वर्ण, इसमे गोलाकार चिह्न होते हैं। छोटी शाखायें श्वैतवर्ण और रोमावृत। पत्र पक्षाकार सवा इंच लम्बा चारो ओर विक्षिप्त, पीतवर्ण, अग्रभाग अतिशय नोकीला और धार युक्त। पत्रिका का ४ से ७ जोडा होता है, इसके वृन्त छोटे होते हैं। फूल छोटे १-१ अथवा २-३ एक साथ मे, फीके पीतवर्ण के होते हैं। बीजकोष छोटा, गोलाकार एवं कुछ लम्बा, सफेद गहरे रोमो से आवृत्त। फलो मे एक बीज होता है। बीज फीके और धूसर वर्ण के चिकने होते हैं। इस दूध से गोद मिलता है। जुलाई, अगस्त मास में लोग वृक्ष की छाल को लम्बे रूप मे चीर देते हैं और यथासमय दूध निकलने लगता है।

औषधोपयोग —

इसका दूध औषधियो की गोलिया बनाने के लिये बहुत परिमाण मे प्रयोग होता है। यह मूत्र यन्त्र सम्बन्धी रोगो मे और दूसरे आन्त्र रोगो मे व्यवहृत होता है। यह प्रधानत औषधियो के अनुपान रूप मे ही काम आता है। यह गोद देखने मे मटर के समान कुछ धूसर वर्ण और पीताभ प्राय गोलाकार। इग्लैड के बाजार मे इसके गोद को "बसोरागाम्" कहते हैं। समय समय पर इसके गुल्म के गोद के साथ Steruculia Urens वृक्ष के गोद को मिला देते हैं। इसका गोद शान्तिकर हैं। Calomel के साथ इसको मिलाने से उसकी शक्ति बढ़ती है। विशेषत बच्चो को उसे खिलाने से कष्ट नही पाना पडता है। —वैद्याचार्य श्री उदयलाल महात्मा

कलबास
CRESCENTIA CUJETE

यह श्योनाकादि कुल (Bignoniaceae) की वनौषधि भारत मे बहुत ही कम होती है। अफ्रीका मे ही अधिक होती है। उक्त कलबाश यह नाम वही का है। इसे अग्रेजी मे कलबाश ट्री कहते हैं।

यह आनुलोमिक, भेदनी, कुछ शीतल तथा ज्वरघ्न होती है।

अफीम के विष पर—पत्ते और डण्डी का स्वरस २॥ तोले से १० तोले तक (यथावश्यक मात्रा) थोडी थोडी देर से पिलाते हैं और पत्तो का शाक रोटी के साथ खिलाते हैं।

अफीम की डली पर इसका रस डालने से वह प्रभावहीन, बेकार हो जाती है।

रक्तपित पर—इसके स्वरस मे मिश्री मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

व्रण को पकाने के लिये पानी की पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

कलम्बा (Jateorhisa Palmata)

इस गुडूची कुल (Menispermaceae) की वनौषधि की जड का प्रचार विशेषत यूरोपियनो के द्वारा भारतवर्ष मे हुआ है।

इसकी ऊ ची चढने वाली लतायें विशेषत गिलोय की लता जैसी किन्तु कुछ क्षुप रूप मे अफ्रीका के मोजाम्बिका और मैडागास्कर आदि प्रदेशो मे खूब होती हैं। इसका तना चिकना चतुष्कोणीय रोमयुक्त तथा पत्र वृन्त भी लोमश होता है।

पत्ते—६ से १५ इ च लम्बे तथा ७ से १६ इ च चौडे एव पांच कोणो मे विभक्त होते हैं। पुष्प—पीताभ श्वेत, वृन्तहीन होते हैं। फल—गोल, गूदेदार किन्तु कुछ कडा, १॥ इ च लम्बा एव १॥। इ च चौडा होता है। बीज—अर्धचन्द्रकार गिलोय के बीज सदृश होते हैं। जड—स्थूल, पीताभ एव अनेक रेखाओ से युक्त होती है। इसी जड के गोलाकार टुकडे काट काट कर तथा सुखा कर देश देशान्तर के बाजारो मे भेजे जाते हैं। इन टुकडो का मध्य भाग कुछ दबा हुआ सा होता है, भीतरी भाग झुर्रीदार भूरे रग का होता है। इसका चूर्ण आसानी से हो जाता है। स्वाद मे ये अत्यन्त तिक्त, तथा इनमे भीनी मधुर गध आती है। औषधि व्यवहार में यही जडें ली जाती हैं। ब्रिटिश औषधि सग्रह मे यह प्रमाण सिद्ध मानी गई है।

नाम—

कबूतर इसकी लता को बहुत पसंद करते हैं। तथा इस पर वे अधिकतर निवास करते हैं। अत. इसका संस्कृत नाम-कपोतपटी रक्खा गया है। और अरबी में साकुल हमास कहते हैं। यह अत्यन्त कडवी जड फिरगियों द्वारा यहां लाई गई है, अत. इसे फिरंगतिक्त भी नाम दिया गया है।

हिन्दी—कलम्बा जड। म०—कलबकाचरी। गु०—कलुम्बो अंग्रेजी—कलम्बोरूट (Calumbo root)
ले०—जेटिओरिझा पामेटा, जे० कोलबा (Jateorisa Columba), मेनिस्पर्मम कोलम्बा (Menispermum columba)

रासायनिक संघठन—

इसमे मुख्यत पीत वर्ण स्फटिकीय तीन प्रकार के क्षार तत्व (१) कोलम्बेमिन (Calumbemine) (२) पामेटिन (Palmatine) और (३) जेटिओराइज़िन (Jateorhizine) नामक पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त कोलम्बिक एसिड, स्टार्च तथा पिच्छिल द्रव्य भी होते हैं।

इसमे कषायाम्ल (Tannic Acid) के न होने से इसका औषधीय व्यवहार लोह के साथ होता है।

गुणधर्म और प्रयोग–

यह लघु, रुक्ष, तिक्त, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य होने से कफ पित्तशामक, दीपन, पाचक, अनुलोमन पित्तसारक कटुपौष्टिक, कृमिघ्न, रक्तशोधक और वर्धक ज्वरघ्न है। अग्निमान्द्य अजीर्ण, आध्मान, यकृद्विकार आदि नाशक है।

बालको के दतोद्भव काल मे होने वाली प्रवाहिका मे यह विशेष उपयोगी है। गर्भावस्था मे होने वाला वमन तथा किसी भी कारण से होने वाला वमन यदि शीघ्र बन्द करना हो तो इसका उपयोग किया जाता है। अपचन अग्निमाद्य, पाडु तथा आशुकारी रोगो से उत्पन्न आक्षेप एव अत्यधिक शारीरिक श्रम से उत्पन्न निर्बलता पर यह विशेष लाभदायक है। किन्तु ध्यान रहे आमाशय के शोथ, शूल, व्रण या कैंसर आदि की दशा मे इसका उपयोग हानिकारक होता है।

आमाशय की शिथिलता मे क्षुधा को प्रदीप्त करने के लिये भोजन के कुछ पूर्व इसके हिम या गोली का सेवन कराते है।

जीर्ण ज्वरो मे इसके हिम आदि के उपयोग से ज्वर दूर होता है। यकृत की क्रिया सुधरती तथा बल की वृद्धि होती है। ग्रहणी और ज्वर के पश्चात् की दुर्बलता मे भी यह विशेष लाभकारी है। किन्तु इसका प्रयोग खाली पेट नही करना चाहिये। /

इसके द्वारा सिद्ध साधित कुछ औषधि कल्प इस प्रकार के हैं–

(१) हिम कल्प—जड़ के चूर्ण ५ तोले को १। सेर तक शीत जल मे मिलाकर आध घन्टे तक बन्द रक्खें। फिर छान कर काम में लावें। मात्रा—२॥ तोला से ५ तोला तक दिन में ३ बार। दो दिन के बाद पुन तैयार करें।

(२) अर्क कलम्बा—इसके १० तोला चूर्ण को १० गुने मद्य (६० प्रतिशत) मे मिला ७ दिन तक बन्द रक्खें। बोतल को बार बार हिला दिया करें। फिर छानकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा ३० से ६० बूद दिन मे ३ बार।

ध्यान रहे, इसका प्राय: हिम ही दिया जाता है। उष्ण जल के द्वारा बनाया हुआ फाट नहीं। फाट या क्वाथ बनाने से इसका श्वेतसार या स्टार्च इसमें मिलाकर उसे प्रभावहीन बना देता है। इसके अभाव में गिलोय ली जाती है।

व्रण की शुद्धि के लिये इसका चूर्ण व्रण पर बुरकें।

उदर मे इसका प्रयोग अधिक मात्रा मे या दीर्घकाल तक करते रहने से पैत्तिक रसस्राव कम होकर पचन क्रिया विकृत हो जाती है। इसके चूर्ण की मात्रा—५ से १० या १५ रत्ती तक है।

अतिसार तथा सग्रहणी की अवस्था मे पाचन क्रिया की सुधार के लिये इसके चूर्ण की मात्रा मण्डूर भस्म या चादी की भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गर्भावस्था की वमन पर या आमाशय की उग्रता से उत्पन्न वमन पर इस हिम मे मेगनेशिया या सोडा-बाईकार्ब मिलाकर देते हैं।

बालको के गुदागत सूत्र कृमि (चुन्नो) नष्ट करने के लिये इसके क्वाथ की वस्ति दी जाती है।

कलिहारी (Gloriosa Superba)

यह गुडुच्यादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार रसोन या पलाण्डु कुल (Liliaceae) की है।

इस विषैली बूटी के तथा वछनाग (वत्सनाभ) के गुणधर्मो मे कुछ अश मे साम्य होने से कुछ वैद्यगण इन दोनो मे विशेष भेद नही मानते। और वछनाग के स्थान पर इसका, तथा इसके स्थान पर उसका प्रयोग करते हैं। किन्तु ऐसा करना ठीक नही है। इन दोनो के कुल (जाति) मे भेद तो है ही तथा गुणधर्म मे ये दोनो उष्णवीर्य तो हैं, किन्तु विपाक मे यह कटु है तो वह मधुर है यह रस मे कटु तिक्त है तो वह मधुर है। यह उसके जैसा व्यावायी, विकाशी और रूक्ष नही है। गर्भपातन का जो प्रभाव इसमे है, वह उसमे नही है। यह

उपविष है तो वह महाविष है। इत्यादि कई भेद दोनो मे होने से इसके स्थान मे उसका प्रयोग करना भय से खाली नही है। चाहे वह वछनाग ही क्यो न हो।

बगाल में जिस बूटी को ईशलागुली या कस्सचरा कहते हैं उसे भी सस्कृत मे लागली कहा जाता है। किंतु यह कलिहारी नही है। वह एक तो ईसरमूल या इसरौल की एक जाति विशेष है। अथवा कम्सचरा कुल (Hydrophyllaceae) की वनौषधि (यह इस कुल की एक मात्र वनौषधि) है, जिसे लेटिन म हायड्रोली झेलेनिका (Hydrolea zeylanica) कहते हैं। यह क्षुप जाति की बूटी प्राय आर्द्र भूमि मे एव बगला की ओर बहुत होती है। इसे ही कोई कोई भ्रम से असली कलिहारी या कलिहारी लकडी कहते हैं। इसकी डडी ६ से १८ इच तक ऊची, पत्ते १ से २॥ इच लम्बे, फूल चमकीले हलके नीले रग के गुच्छो मे आते हैं। यह शोधनीय एव शोथप्रशमनीय है। इसकी पत्ती पीसकर पुल्टिस बना दूषित व्रणोपर बाधने से शुद्धि होकर वे शीघ्र भर जाते हैं। चित्र देखो 'कलिहारी लकडी'।

कलिहारी का लता जातीय क्षुप या गुल्म वर्षाकाल मे वृक्षो के सहारे ८ से १० फीट तक ऊचा चढ जाता है। किसी सहारे के अभाव मे यह भूमि पर ही फैलता है। इसके प्रत्येक कन्द से प्राय एक ही हरी डडी, कलम जैसी सीधी और पोली सी निकल कर लगभग १० से २० फीट तक लम्बी बढती है। इस पर कोई शाखायें नही फूटती। यह वर्षाकाल के प्रारभ मे निकलती है, और शीतकाल में सूख जाती है।

पत्र—उक्त डडी पर इसके पत्ते बास या अदरख के पत्र जैसे प्राय वृन्तरहित, विषमवर्ती, ३ से ८ इच लम्बे १॥ इच तक चौडे अनीदार या नुकीले होते हैं। पत्तो का नुकीला अग्रभाग मुडा हुआ होता है, जिसके सहारे यह अन्य वृक्षादि पर चढती है।

पुष्प-उक्त डडी पर पत्र कोण से एक ४-६ इच लम्बी बाल निकलती है। जिस पर एक ही फूल अनेक रगयुक्त इन्द्रधनुष के रग जैसा बडा सुहावना होता है। इसी लिये लेटिन मे कलिहारी को ग्लोरियोसा (सुन्दर पुष्प युक्त) सुपर्बा (सुन्दर बेल) तथा सस्कृत मे इन्द्रपुष्पी कहते है। पुष्प काल जुलाई मास से अक्टूबर तक है। पुष्प मे प्राय ६ पखुडिया लहरदार, नीचे की ओर पीताभ, मध्य भाग मे नारगी लाल और ऊपर के भाग मे गहरे लाल रग की होने से आग की शिखा जैसी दिखाई देती हैं। अत सस्कृत मे अग्निशिखा कहते हैं।[1]

फल या फली—१॥ से ४ इच तक लम्बी, ऊपर से धारीयुक्त एव भीतर तीन विभाग वाली, नवम्बर या दिसम्बर मे लगती हैं। पकने पर भी इसका रग हरा ही रहता है। तथा भीतर के प्रत्येक विभाग मे लाल छिलको से लिपटे हुये, मटर जैसे किन्तु उनसे छोटे गोल, अरुण वर्ण के १०-१२ बीज कतार मे लगे हुये होते हैं। फलियो
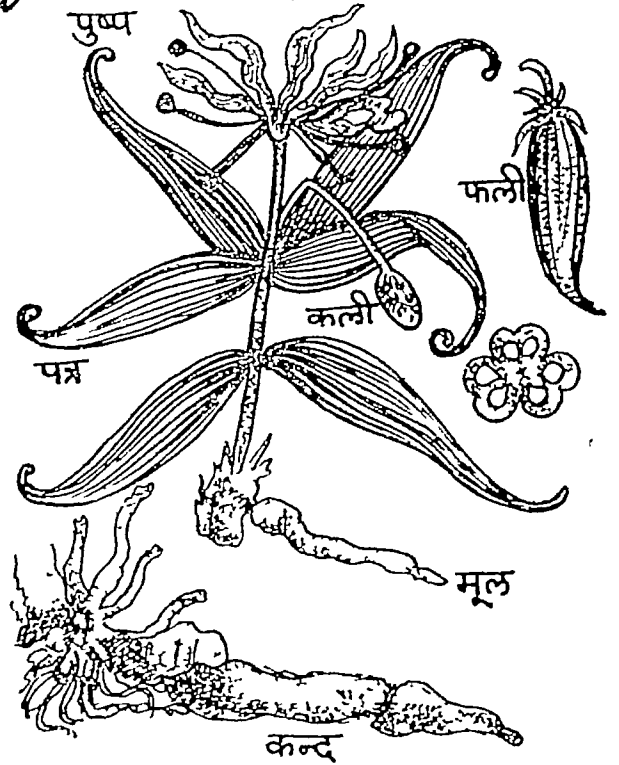
[1] एक श्वेतपुष्प वाली भी कलिकारी होती है, जिसे उत्तर प्रान्त में कहीं कहीं करुआरी, करियारी कहते हैं। तन्त्रशास्त्रों में गर्भपातनाथ प्राय इसी को विशेष महत्व दिया गया है —लेखक

के पत्र नर झड जाने पर धीरे धीरे इसकी लता सूख जाती है। वर्षाऋतु मे पुन उस कन्द से अंकुरित हो उठने लग जाती है। इसके पत्र फूल और फल से एक प्रकार की उग्र गन्ध कन्द मे आती है।

प्रत्येक लताकुर के नीचे भूमि मे प्राय एक ही कन्द होता है। यदि यह कन्द लम्बा, गोल होवे तथा उसमे दो लम्बे टुकडे समकोण मे जुडे हुए से होवें (दो भागो मे विभक्त सा होवे) तो उसे नर जाति का कन्द माना जाता है। तथा जो वह गोल, किंचित लम्बा हो, दो भागो मे विभक्त न हो, तो उसे स्त्री जाति का मानते है। लताकुर के फूलने के समय ही नरकन्द को, तथा उसके फूलने और फलने के पश्चात् ही मादा कन्द को खोदकर संग्रह कर लेना ठीक होता है।

यह कन्द श्वेत रग का हल के आकार का (अत संस्कृत मे लागली नामधारी) महेरावदार स्थान स्थान पर संकुचित, गूदेदार एव रसमय होता है। कद का

कलिहारी लकडी (लांगली)
Hydrolea zeylanica Vahl.
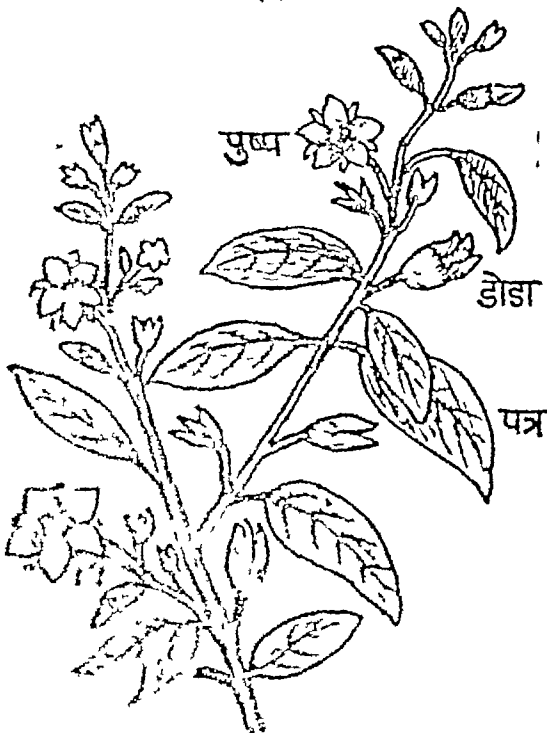
ऊपरी छिलका पतला, बादामी रग का तथा भीतरी भाग श्वेत होता है। यह कन्द काट कर धूप मे सुखाने पर भी लगभग दो मास मे सूखता है। एक सेर ताजा गीला कन्द सूखने पर वजन मे केवल १०–१५ तोले रह जाता है। एक वर्ष बाद घुनकर वेकार हो जाता है।

उत्पत्ति स्थान—

यह भारत के प्राय ऊंचे, उष्ण प्रदेशो मे बगाल दक्षिण भारत तथा सीलोन और वर्मा मे अधिक होता है। मलाया, चीन, कोचीन तथा अफ्रीका के उष्ण प्रदेशो मे भी विशेष पाया जाता है।

औषधि कार्य मे प्राय इसके कन्द का उपयोग होता है।

नाम—

संस्कृत—लागली, कलिहारी, केविका, हलिनी, इन्द्र या शुक्र पुष्पी, अग्निशिखा, गर्भनुत, विशल्या[1] (शल्य को निकालने वाली)

हिन्दी—कलिहारी, कालियारी, केनिका, कलहिस, कलेसर, राजाराड़, राजहरर।

मरेठी—कललावी, खड्यानाग, नागली, बागचवका।

बगला—ऊलट चण्डाल, विषलांगुलिया, विलांगुली।

अंग्रेजी—सुपर्व लिलि (Superb lily)

लेटिन—ग्लोरिओजा सुपर्वा।

रासायनिक संघठन—

इसमे दो प्रकार की राल, एक कषाय द्रव्य (Tannin), सुपर्विन (Superbine) नामक एक तिक्त एव विषैले द्रव्य, ग्लोरिओजिन (Gloriosine) नामक एक क्षार तत्व तथा स्टार्च पाया जाता है।

शोधन विधि—

कन्द के छोटे छोटे पतले टुकडे कर १२ या २४

---

[1] शरीर मे घुसे हुए कील, काच, कांटा आदि शल्यों को यह अपने प्रभाव से (केवल कद को पानी में पीसकर लेप करने से ही) बाहर निकाल देती है। क्लोरोफार्म सुंघाकर चीरफाड़ कुछ भी नहीं करना पड़ता। ऐसा जगलनी बूटी नामक ग्रन्थ लेखक का अनुभवयुक्त कथन है। इसलिये निघण्टुओं मे इसका विशल्या नाम पाया जाता है। यहा तक तो उक्त ग्रन्थकार का कथन अधिकांश मे ठीक है। किंतु रामायण काल में लक्ष्मण शक्ति के प्रसङ्ग पर जिस विशल्या बूटी का उल्लेख है, वही यह बूटी है [illegible] विचारणीय है। —लेखक

घण्टे तक गोमूत्र में डालकर फिर धूप मे शुष्क कर लें। अथवा उक्त टुकड़ों को नमक मिली हुई छाछ मे रात्रि के समय भिगोकर दिन में सुखा लें। इस प्रकार तीन बार करने से वह शुद्ध हो जाता है। आभ्यन्तर सेवनार्थ इसी शुद्ध कलिहारी का उपयोग करें। बाह्यप्रयोगार्थ अशुद्ध ही काम में लावें।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, विपाक में कटु, वीर्य मे उष्ण और प्रभाव में गर्भपात, शल्य निष्कासन, गर्भाशय सकोच तथा दस्तावर है।

यह यथोचित अल्पमात्रा मे—दीपन, पित्तसारक, कफ वातशामक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, विषम ज्वरघ्न, बल्य, रसायन एव वस्तिशूलनाशक है।

अधिक मात्रा मे—वामक, रेचक, आमाशय में तीव्र दाह, शूलयुक्त क्षोभकारक तथा अन्त मे हृदयावरोध से मृत्युकारक है।

शोथ, वातवेदना, शल्य, व्रण, कुष्ठ, अर्श, गर्भपातन आदि कार्यों मे इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—सत्व आधी रत्ती से ४ रत्ती तक, चूर्ण १ से ६ रत्ती तक।

कन्द को कूटकर जल मे बहुत देर तक धोने से जो पिष्टवत् पदार्थ नीचे जमता है वही इसका सत्व है। उसे शुष्क कर शीशी मे भर रक्खें। यह सत्व अनुपान भेद से पूयमेह (सुजाक), आन्त्र कृमि, अग्निमाद्य आदि कई रोगों पर सेवन कराते हैं। सुजाक मे—गोदुग्ध या शहद के साथ, आन्त्र कृमि पर—गुड के साथ, अग्निमाद्य या क्षुधावृद्धि के लिये सोंठ के चूर्ण के साथ, कुष्ठ पर—छोटी दुद्धी के रस के साथ, अर्श पर—मक्खन तथा शूल पर हींग के पानी के साथ देते हैं।

इसके सत्व या चूर्ण को बुरकने से क्षत या व्रण के कृमि नष्ट होते हैं। नारू पर—कन्द को पानी मे पीस लेप करते हैं। इसी प्रकार इसका लेप शोथ पका फोडा या बगल की गाठ पर भी किया है। कामला पर—इसके पत्तो को पीस कर छाछ के साथ सेवन कराते हैं। गज पर—कन्द को गोमूत्र मे घिसकर या पानी मे पीसकर लेप करें। बिच्छू या कनखजूरा के विष पर—कन्द चूर्ण को पीस कर लेप तथा सेक करते हैं। अगुली व्रण (विष गाठ) पर—कन्द को बकरी के दूध मे पीस मोटा लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(१) गर्भप्रसव एव मासिक धर्म सम्बन्धी स्त्री रोगो पर—यदि बच्चा उत्पन्न होने के समय अधिक विलम्ब हो रहा हो तो इसके कन्द को काजी मे या गरम पानी मे पीसकर पैरो के तलुवों पर, हाथ की हथेलियो, पेड़ पर, भगोष्ठो पर लेप करने से शीघ्र प्रसव होता है। प्रसव हो जाने पर लेप को शीघ्र ही गरम जल से धो डालना चाहिये।

यदि प्रसव के समय कोई कष्ट न हो तथा बच्चा पैदा हो गया हो, किन्तु अपरा या जेर शीघ्र न गिरे तो इसका प्रलेप उक्त प्रकार से करे। इससे भी लाभ न हो तो कन्द को महीन पीस बत्ती बना गर्भाशय मे प्रविष्ट करते हैं। सुखपूर्वक प्रसवार्थ उक्त प्रकार से लेप के साथ ही साथ कन्द के १ इंच टुकड़े को स्त्री की चोटी मे तथा उतना ही टुकड़ा उसकी कमर मे भी बाधते हैं। प्रसव होते ही इनको निकाल देते हैं।

मूढगर्भ पर—कन्द के साथ सखिया, दन्तमूल, बछनाग और पाषाणभेद को समभाग लेकर पानी मे पीस पेडू और पेट पर लेप करते है।

मासिक धर्म जारी करने के लिये कन्द को पानी मे पीसकर उसमे कपास तर कर योनिमार्ग मे रखें।

योनि शूल—गर्भाशय या योनिमार्ग मे शूल, वेदना हो तो कन्द को अच्छी तरह सुचिक्कन कर योनि मे धारण करावे अथवा कन्द के साथ अपामार्ग और इन्द्रायण मूल को पीस पोटली बना योनि मे रखें अथवा नीचे कण्ठमाला या अपची के प्रयोग मे कहे हुए तैल की पिचकारी लगावें।

(२) कण्ठमाला (गण्डमाला) या अपची पर—इसकी कन्द का कल्क २० तोले, निर्गुण्डी (सभालू) का स्वरस ४ सेर तथा तिल तैल (कोई सरसो तैल लेते हैं) २ सेर लेकर यथाविधि तैल सिद्ध कर लें। इस तैल का पट्टी लगाते एव सुघाते रहने से लाभ होता है। यदि अपची की गाठ बहुत ही कड़ी हो तो कन्द के चूर्ण को

शहद मे मिला लेप करते रहें। इससे कण्ठमाला, कडी गाठें शोथ सहित कुछ दिनो मे विलीन हो जाती हैं।

(३) वातपीडा, गठिया, वातजन्य शोथ और वात रक्त पर—इसका कन्द ५ तोले, धतूर फल, सौंठ, अजवायन ढाई-ढाई तोले तथा अफीम ३ माशे इनका कल्क वना आध सेर सरसो तैल के साथ विधिवत् तैल सिद्ध कर मालिश करें। अथवा—

इसके कन्द का और शतावरी का कल्क १-१ तोले, धतूर फल स्वरस और लहसुन का रस ४-४ तोले तथा सरसो तैल आध सेर लेकर यथाविधि तैल सिद्ध कर मालिश करने से वातपीडा तथा शोथयुक्त गठिया या सधिवात पर शीघ्र लाभ होता है।

वातरक्त पर—आगे सिद्ध साधित प्रयोगो मे लाङ्गल्यादि लौह देखिये।

(४) श्वेतकुष्ठ पर—इसके कन्द को चन्दन के समान घिसकर सफेद दागो पर रोजाना लगा दिया करें। इससे तीसरे दिन उस जगह छाला पड़ जायगा। तब उस पर ढाक (पलाश) का पत्ता बाध दें। इससे उन छालो मे से पीला पानी निकलने लगेगा, उस पानी को दूसरी जगह शरीर पर न लगने दें, उसे साफ कर दिया करें। जब सब पानी निकल जाय तब मक्खन लगा दिया जाय। श्वित्र कोढ के लिये उत्तम इलाज है।

—हकीम अहमद अलीशाह वैद्य विशारद, तबीब स० यू० डिस्पेन्सरी, टाड़ा (धन्वन्तरि भाग २४ अङ्क ७ से उद्धृत)

(५) अर्श पर—वेदनायुक्त अर्शांकुरो पर—इसके कन्द के साथ समभाग सिरस अथवा चित्रक की छाल लेकर गोमूत्र या काजी मे पीस लेप करते हैं। अथवा केवल इसे ही पानी मे पीसकर लेप करते हैं। मस्से सूख जाते हैं।

कफज अर्श पर—कन्द के साथ इन्द्रजौ, पीपल, चित्रक, अपामार्ग के चावल, चिरायता तथा सैंधानमक का चूर्ण समभाग एकत्र खरल कर उसमे दुगुना गुड मिला अच्छी तरह कूटकर १-१ तोला के लड्डू वना लें। दिन मे दो बार खाकर जलपान करें। इसे लागल्यादि मोदक कहते हैं। —वृ० नि० रत्नाकर

(६) कर्ण विकार पर—यदि कान मे उन्मथक अर्थात् कण्डुयुक्त कर्णपाली शोथ हो तो इसके कन्द के कल्क के साथ तुलसी कल्क एकत्र कर उसके द्वारा सिद्ध किये हुए तैल की नस्य देवें। —वाग्भट

कान से पूय स्राव हो तो इसे नीबू के रस मे पीस कान मे टपकाते हैं। कान मे कनखजूरा, जौंक, मक्खी आदि कोई कीट घुस गया हो तो कन्द को पीसकर उसका रस कान मे डालें अथवा कन्द के साथ हुरहुर पत्र और त्रिकटु को पीस कर उसका रस कपडे मे निचोड कर कान मे डालने से कीटक निकल जाता है। कान मे उत्पन्न हुए कृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

(७) विषैले कीटक दश से उत्पन्न विस्फोटक (फफोलो) पर—इसके कन्द के साथ समभाग अतीस, कड़वी तुम्बी के बीज, कड़वी तुरई के बीज और मूली बीज लेकर एकत्र पीस चूर्ण वना लें। इसे काजी में पीसकर लेप करने से जहरीले कीटो के काटने से उत्पन्न हुए विस्फोटक नष्ट हो जाते हैं। —शा. संहिता

(८) व्रणान्तर्गत् शल्य निर्हरणार्थ—इसके कन्द को पीसकर व्रण के मुख पर लेप करने से वहुत दिनो का भीतर रहा हुआ शल्य (काटा आदि) भी शीघ्र निकल जाता है। —भा भै रत्नाकर

(९) कृमियुक्त दात या डाढ के दर्द पर—जिस ओर के दात या डाढ मे पीडा होती हो उससे दूसरी ओर के हाथ या पैर के अ गूठे के नख पर इसकी कन्द का लेप करने से कृमि मर कर गिर पडते हैं।

—भा० भै० रत्नाकर

(१०) पशुरोग पर—गाय, बैल आदि के दस्त मे रुकावट हो तो इसके पत्ते कूट कर आटा या दाना पानी मे मिला खिलाते हैं।

यदि किसी पशु की काच निकल आवे, गुदा या योनि बाहर निकल आवे तो इसके पत्तो को हाथो मे मसलकर उस अङ्ग के पास दोनो हाथो को रखने से अथवा दोनो हाथो से उस अङ्ग को ठेल देने से तथा दोनो हाथों ने पत्ते मलकर पशु के मुख और नासिका के पास रखने से लाभ होता है। यदि पत्ते न प्राप्त हों

तो इसके अशुद्ध कन्द के रस को हाथो में लगाकर उक्त प्रयोग करें। —अ० तन्त्र

कलिहारी के सिद्ध साधित योग—

(१) लागली लोह रसायन—कलिहारी कन्द (शुद्ध) त्रिफला और लोहभस्म (कोई त्रिफला जारित लोहभस्म लेते हैं) इनका खूब महीन चूर्ण एकत्र २०० तोले लेकर भागरे के स्वरस मे घोट कर कुल ३६० गोलिया वना छाया शुष्क कर सुरक्षित रक्खें।

प्रथम दिवस आधी गोली, फिर क्रमश वढाते हुए एक गोली सेवन करें। इससे विरेचन होने पर क्रमश मड, पेया, विलेपी और मासरस (यूप) के साथ चावल का सेवन पथ्य रूप मे करें। इस प्रकार एक मास पर्यन्त संयमपूर्वक घृत सहित स्निग्धान्न का भोजन करें। इसके वाद इच्छानुसार खान पान करें, किन्तु अजीर्ण न होने पावे इसकी ओर सतर्क रहे। अजीर्णजनक द्रव्य या अजीर्ण भोजन से सदा परहेज रक्खें। इस प्रकार एक वर्ष तक इस योग के सेवन से असाध्य रोग-ग्रसित रोगी भी ठीक हो जाता है। वृद्ध भी प्रवल पौरुषयुक्त होकर सुदृढ शरीर वाला हो जाता है। तथा अत्यन्त दीर्घायु होता है। (अष्टाग हृदय, उत्तर स्थान अ ३६)

उक्त योग मे—कलिहारी, हरड, वहेडा, आमला और लोह भस्म प्रत्येक ४०—४० तोले लेना होगा।

नोट—कनकावती वटी, कनक सुन्दर, कालकूट, भैरव वटी आदि कई शास्त्रीय प्रयोगों में इसके कन्द की योजना है। हमारे यहां विस्तार भय से ऐसे ही प्रयोग दिये हैं। जिससे इसकी विशेष प्रधानता है।

(२) लागल्यादि लौह (वातरक्त पर)—शुद्ध कलहारी कन्द, सोठ, मिर्च, पीपल, हरड, वहेड, आमला, दाख (मुनक्का वीज रहित,) और शुद्ध गूगल १-१ भाग लोह भस्म सवके वरावर (६ भाग) लेकर विजौरा नीवू के रस तथा त्रिफला क्वाथ से पृथक पृथक मर्दन कर २ रत्ती से १ मासे तक की गोलिया वनावें। यथोचित मात्रानुसार शहदके साथ सेवन से घुटनो तक तथा सर्वाङ्ग फूटा हुआ साध्यासाध्य वातरक्त नष्ट हो जाता है। (रसेन्द्र सार सग्रह)

(३) लागल्यादि गुटिका (कुष्ठ पर)-शुद्ध कलिहारी कन्द निसोथ, और लौहभस्म समभाग महीन चूर्ण कर भागरे के रस मे १—२ दिन घोट कर १-१ माशे की गोलियां वनालें। (गदनिग्रह ग्र थ के प्रमाणानुसार एक एक गोली ४-४ तोले की होती है, जो कि आजकल के लिये अत्यधिक हैं। गोलियो को छाया में सुखाकर रक्खें। उचित मात्रा मे नित्य प्रात सेवन करें। पचने पर रूक्ष पदार्थों के रस से पेया वनाकर खावें। यह पथ्य भोजन औषध पचने के वाद लेवें। सयमपूर्वक ब्रह्मचर्य से रहें। औषध की मात्रा धीरे धीरे वढावे। सपूर्ण कुष्ठ नष्ट होकर बुद्धि, मेधा, स्मृति की वृद्धि होती है। (गद निग्रह)

कलिहारी की विषाक्तता (विष प्रभाव)-

इसका विष प्रभाव प्राय वछनाग के जैसा ही होता है। शुद्ध की हुई भी इसे अधिक मात्रा मे खाने से विष प्रभाव प्रकट होता है। उदर मे जोर की ऐंठन, मरोड़ होने लगती है, पतले दस्त होते हैं। वमन एव आक्षप आदि लक्षण होते हैं। वीच वीच मे उक्त लक्षण थोडे समय के लिये शमन हुये जान पडते हैं। किन्तु पुन तीव्र गति से प्रारंभ हो जाते हैं। यदि शीघ्र ही उचित उपाय न किया जाय तो पेट की पीडा और विरेचन के कारण वेहोशी वढकर मृत्यु हो सकती है।

उपचार—

मक्खन न निकला हुआ तथा पानी न मिलाया हुआ गाय के मठ्ठे मे मिश्री मिला वार वार पिलावें। अथवा-

दही को कपड मे वाध कर पानी निकाल दें। जो गाढ़ा गाढा दही रहे उसमे शहद और मिश्री मिलाकर खिलावें। अथवा केवल शुद्ध ताजा घृत पिलादें।

कलुरुकी (Pouzalzia Indica)

इस वटादि कुल (Urticaceae) की वनौपधि के पेड वरगद या पीपल जैसे वडे वडे होते है। पत्ते—एकान्तर, उपपत्रयुक्त तथा फूल छोटे होते हैं।

इसका कलुरुकी, काल्लुरुकी नाम मद्रासी भाषा का है

कही कही इसे तुईया कहते है। लेटिन मे—पौभालभिया इ डिका।

भारत के दक्षिण मे तथा सीलोन, मलाया द्वीप और चीन मे इसके पेड अधिक पाये जाते है।

यह उपदश, सूजाक और सर्पदश मे उपयोगी माना जाता है।

कलौंजी (Nigella Sativa)

यह हरीतक्यादि वर्ग की एव नैसर्गिक क्रम से वत्सनाभादि कुल (Ranunculaceae) की औषधि वास्तव मे भारतवर्ष की खास अतिप्राचीन उपज है। इसलिए प्रसिद्ध बनस्पति वैज्ञानिक डा० राक्सवर्ग तथा डा० एन्सली ने इसका वैज्ञानिक नाम नायगेला इ डिका (Nigella Indica) रक्खा है। किंतु अन्य कई लोगो ने इसका मूल वास स्थान दक्षिण यूरोप, इजिप्ट आदि मान कर इसे नायगेल सटिव्हा नाम दे रक्खा है।

श्वेत जीरा और काला या स्याहा जीरा ये दोनो सौंफ कुल (Umbelliferae) के हैं। तथापि इन दोनो जीरो के साथ अन्य उक्त कुल की कालीजीजी (कलौंजी) को मिलाकर आयुर्वेद ने जीरक त्रितय कहा है। यद्यपि गुणधर्म मे ये तीनो प्राय एक समान हैं, तथापि कलौंजी मे कुछ विपाक्त गुण की विशेपता है जो कि उक्त दोनो मे नही है। अत इसे श्वेत और काले जीरे से पृथक ही मानना योग्य है।

ध्यान रहे–काली जीरी (अरण्य जीरक) या कडु जीरा इससे एकदम भिन्न है। और जिसे विलायती जीरा (Darum Carni) कहते है, वह स्याह जीरे का ही विदेशी भेद है, कलौंजी नही है।

कलौजी प्राय नदी आदि जलाशयो के किनारे के खेतो मे वर्षा के अन्त मे बोई जाती है। पौधा सौफ के पौधे जैसा ही किन्तु उससे कुछ छोटा होता है। पत्ते सौफ के पत्र जैसे किंतु उनसे पतले एक साथ जोडे से लगते हैं।

फूल—शरद ऋतु मे श्वेताभ या नीलाभ पीतवर्ण के होते हैं। फूलो के झड जाने पर शीतकाल मे फलिया आधी इ च लम्बी होती हैं जिनमे काले तिल जैसे किंतु उनमे मोटे तिकोने अनेक बीज होते हैं। बीजो का भीतरी भाग पीताभ श्वेत या एकदम श्वेत होता है। स्वाद मे कुछ तिक्त, नीबू के गन्ध जैसी किंतु उससे कुछ तीव्र सुगन्ध आती है। ये ही बीज कलौजी कहाते है। विदेशी कुछ बीजो मे लहसुन जैसी भी गन्ध आती है। इन बीजो मे एक प्रभावकारी उडनशील तैल तथा कुछ स्थिर तैल भी होता है। जिनमे इस प्रकार का तैल पूर्ण मात्रा मे हो तथा जो वजन मे भारी, मोटे, तेज एव चरपरे हो वह उत्तम कलौंजी है।

यह दक्षिण भारत मे तथा बिहार, पजाब, नेपाल की तराई मे और ब गाल मे बोई जाती है। कई वर्षो से इसकी उपज कम होने से इसका अधिक भाग अफगानिस्थान, मिश्र आदि देशो से यहा आता है।

नाम—

सं—कालाजाजी, उपकु चिका, कालिका, पृथ्वीका, बृहज्जीरक आदि।

हि—कलौंजी, मंगरैल। म.—कलौंजी जीरें।

वं.—मुगरेला, मोटा कालाजीरो। गु—कलौंजी जीरं।

अं—स्माल फेन्नेल (Small fennel), नायगेला सीड्स (Nigella Seeds)

ले—नायगेला सटिवा, नायगेला इण्डिका।

रासायनिक संघठन—

बीजो मे इसका प्रभावशाली एक उडनशील पीताभ तैल प्र श १ ५ तथा एक स्थिर तैल ३७ ५ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त मेलान्थिन (Melanthin), अरेबिक एसिड (Arebic acid), अलव्युमिन, शर्करा आदि द्रव्य पाये जाते है।

औषधि व्यवहार मे इसके बीज ही लिये जाते हैं। इसका विपाक्त दाहक तत्व आग पर भूनने से उड जाता है अत मसालो मे इसे भून कर ही डालते है।

गुणधर्म—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त तथा विपाक मे कटु और उष्णवीर्य है। यह रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, ग्राही, उत्तेजक, वृष्य या बल्य, पित्तवर्धक, लेखन, शोथ-

हर, वेदनास्थापन, गर्भाशय संकोचक, स्तन्यजनन, कृमिघ्न, कफनिस्सारक, मूत्रल, स्वेदजनन, कफवातशामक, ज्वरघ्न, दुर्गन्धनाशक, गुल्म, चर्मरोग, शूल, आध्मान, कास, अतिसार, ग्रहणी, प्रसूतरोग तथा वात व्याधि आदि नाशक है।

इसके सेवन से घृत तैल आदि स्निग्ध पदार्थों का पाचन अच्छी तरह हो जाता है। अन्न पचकर क्षुधा प्रदीप्त होती है। उदर में वात-सञ्चय नहीं हो पाता। इसीलिये अग्निमांद्य, कुपचन, अजीर्ण, आध्मान आदि में अन्य औषधियों के साथ इसका व्यवहार किया जाता है।

गर्भाशय पर इसकी उत्तेजक क्रिया होकर उसमें यथोचित संकोच विकास की क्रिया होकर प्रसूतिजन्य व्याधियां दूर होती हैं। तथा मासिक धर्म की क्रिया में भी यथोचित सुधार होता है। किंतु गर्भिणी को इसका सेवन हानिकर है।

विरेचन द्रव्यों में ऐंठन, मरोड़ आदि की शांति के लिये इसकी योजना की जाती है।

इसमें मूत्रल गुण होने से सर्वाङ्ग शोथ और जलोदर में तन्नाशक औषधियों के साथ इसका उपयोग करें।

शीतप्रधान विषमज्वर तथा सूतिका ज्वर में बीजों को साधारण भूनकर चूर्णकर यथोचित मात्रा में पुराने गुड़ के साथ या शहद के साथ सेवन कराते हैं।

शिर शूल में इसके चूर्ण का नस्य देते हैं।

हिक्का में—इसके चूर्ण को तक्र (छाछ) के साथ देते हैं। अथवा शहद या मक्खन से बार बार चटावें।

वातप्रकोप या किसी जन्तु के दंश से उत्पन्न हुई हाथ पैरों की पीड़ायुक्त सूजन पर इसका लेप किया जाता है।

रक्तपित्त विकार की दशा में यदि रोगी के उद्गार और निश्वास में रक्त की गन्ध आने लगे तो इसके बीजों के चूर्ण में दोगुनी मिश्री मिला सेवन करावें। (चक्रदत्त)

वृक्क और वस्ति की अश्मरी पर—बीजों को पानी में पीस शहद मिलाकर पिलाते हैं।

शीतजन्य शिर शूल पर—इसके साथ स्याह जीरे का चूर्ण मिला प्रलेप करते हैं।

(१) स्त्री रोगों पर—प्रसूति सम्बन्धि विकारों पर इसका प्रयोग बिल्वमूल के साथ करने से क्षुधावृद्धि एवं पाचन क्रिया में सुधार होकर गर्भाशय की शुद्धि तथा स्तन्य (दूध) की वृद्धि होती है। दुग्ध शुद्धि के लिये स्त्री को इसे तरकारी या कढ़ी में (इसके योग से बनी हुई शाक या कढ़ी) देते हैं।

रजोरोध, कष्टार्तव में ५ रत्ती से १० रत्ती तक इसका चूर्ण शहद के साथ दिन में दो बार चटाते रहने से शीघ्र लाभ होता है। कष्टप्रसव तथा प्रसव के पश्चात् गर्भाशय संशोधनार्थ इसका प्रयोग करने से लाभ होता है तथा स्तन्य एवं स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

✓(२) जलसंत्रास (पागल कुत्ते के दंश) पर—बीजों को सिरके में भिगोकर तथा सुखाकर महीन चूर्ण कर मात्रा ७ से १०॥ माशे तक दिन में २-३ बार। जल के साथ देते रहते हैं, इसका हलुवा बनाकर खिलाते हैं।

(३) कुष्ठ आदि चर्म रोगों पर तथा खालित्य पर—स्युती (छाजन, एग्जिमा) पर इसका प्रयोग बिल्वपत्र के

कलौंजी
Nigella sativa Linn.

रस तथा हल्दी के रस के साथ कराते हैं। इससे पामा एवं शुष्क कण्डू आदि पर भी लाभ होता है। साथ ही साथ इसका लेप तथा इसके तेल की मालिस भी कराते हैं। इसका नियमपूर्वक उपयोग करने से कुष्ठ मे भी लाभ होता है।

यौवन पिडिका (मुहासो) पर—बीजो को सिरके मे पीस कर रात्रि के समय चेहरे पर लेप करें तथा प्रात धो डाले। इस प्रकार ४ ६ दिन करने से मुहासे मिट जाते हैं। शरीर पर अन्य स्थानो की पिटिकायें एव दाग भी इसके लेप से दूर हो जाते हैं। आगे कलौजा कल्प मे कलौंज्यादि तैल देखिये।

खालित्य (सिर के गज) पर—बीजा को जलाकर उसकी भस्म को मोम तैल या तिल तैल में मिला मर्दन करते रहने से लाभ होता है।

✓(४) नारू, नहरुवा पर—बीजो को पीस तथा छाछ (तक्र) मे औटाकर प्रलेप करते हैं। यदि नारू टूट गया हो तो इसके बीज, पत्ते शाखाओ को पीस कर बांधें।

(५) प्रतिश्याय पर—प्रतिश्याय का दशा मे छीकें अधिक आती हो, तथा नाक से पानी अति बहता हो, तो इसका चूर्ण जैतून के तैल मे मिला ३-४ बूंद नाक मे टपकावें (नस्य दें), तथा इसे भूनकर चूर्ण तथा नौसादर चूर्ण २-२ माशे और सोठ चूर्ण ३ माशे एकत्र मिला वस्त्र मे पोटली बना बार बार सूघते रहने से लाभ होता है। बीजो की धूनी भी देते हैं।

(६) कृमि और कामला पर—इसके चूर्ण को सिरके मे मिला पेट पर लेप करने से, तथा इसके चूर्ण मे एलुवा मिला और पीस कर वत्ती बना गुदा में धारण कराने से उदर कृमि एव कद्दूदाना या चूनने कृमि नष्ट होजाते हैं।

✓(७) वात व्याधि पर—कलौजी तैल का अभ्यङ्ग लाभप्रद होता है। इस तैल का अभ्यङ्ग तथा साथ ही इसे दूध मे मिला पान कराने से पक्षाघात (लकवा) अवसन्नता, कम्प, धनुपटकार आदि वात व्याधिया दूर होती हैं।

कलौजी तैल के अन्य प्रयोग—नपुंसक को इस तैल मे जैतून तैल मिलाकर पिलाने से कामशक्ति जाग्रत होती है। साथ ही साथ इस तैल को तिला रूप मे शिश्नेन्द्रिय पर और कमर पर धीरे धीरे मालिश भी करावें।

इस तैल के मर्दन से नाडी शैथिल्य, मासपेशियो का शिथिलता, एव शीतजन्यशूल दूर होता है।

कर्णशोथ तथा बाधिर्य मे इस तैल को कान मे डालते रहने से लाभ होता है। मृगी (अपस्मार) मे इसका नस्य देते हैं। इस तैल की सिर पर मालिश करने से मस्तिष्क का अवरोध दूर होकर बुद्धि शक्ति एव स्मरण शक्ति बढती है।

(८) केशवृद्धि के लिये बीजो को पानी मे पीस और छानकर बालों मे मलते रहने से उनका झडना बन्द होकर वे बढने लगते है।

ऊनी कपडो को दीमक आदि से सुरक्षित रखने के लिये बीजो के चूर्ण के साथ थोडा कपूर मिलाकर कपड़ो के अन्दर बुरकाते हैं।

मात्रा विचार—चूर्ण की मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक। अधिक से अधिक ३ या ४ माशे तक इसे दिया जा सकता है। इसकी अधिक मात्रा ७ मासे तक शीत प्रकृतिवाले को देते हैं।

✓ अत्यधिक मात्रा मे सेवन से शारीरिक उष्णता तथा नाडी का गति अत्यन्त तीव्र होकर मूर्च्छा आती है। गर्भावस्था की दशा मे गर्भाशय का अत्यधिक सकोच होकर गर्भपात हो जाता है। इसके अत्यधिक सेवन से उत्पन्न हुये उपद्रवो के प्रतिकारार्थ दुग्ध, घृतादि शीतल स्निग्ध पदार्थों का अधिक मात्रा मे सेवन करावें। गोद कतीरा को पानी मे भिगोकर मिश्री मिला पिलावें अथवा वमन करावें।

कलौंजी-कल्प—

✓(१) कलौंज्यादि तैल—कलौंजी चूर्ण, बावची, दारुहल्दी चूर्ण और गूगल ५-५ तोले तथा गन्धक २॥ तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण महीन घोट कर एक सेर नारियल तैल मे मिला बोतल मे भर रक्खें। दिन मे २-३ बार खूब हिला दिया करे। इस तैल के मर्दन करने से कुष्ठ आदि विविध चर्म रोगो पर लाभ होता है।

✓(२) कलौंजी-माजून या अवलेह—भुनी हुई कलौजी का चूर्ण १५ तोले लेकर उसके साथ सफेद तथा

काली मिर्च २॥-२॥ तोला, दालचीनी १॥ तोला और सताप (सद्दाव) के शुष्क पत्र ४॥ तोला, इनका चूर्ण मिलाकर उसमे मुरव्वा सौंठ १२ तोला मुरव्वा आमला १८ तोला, गुलकन्द तथा मिश्री या शक्कर ३०-३० तोले एकत्र मिलाकर और घोटकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—१॥ तोला दिन मे ३ वार सेवन से अतिसार, अजीर्ण, अग्निमाद्य, अम्लपित्त, मुख दौर्गन्ध्य आदि विकार दूर होते हैं। यूनानी ग्र थो मे यह प्रयोग 'जुवारिशे कमून' नाम से प्रसिद्ध है।

(३) कलौंजी-मसाला (गरम मसाला)—कलौंजी, धनिया, मैंथी, सौंफ, जीरा श्वेत, जीरा स्याह, ये सव भुने हुये ५-५ तोला तथा सेंधा नमक ५ तोला, काली मिर्च, दालचीनी, तेजपात, सोठ और अमचूर २॥-२॥ तोले, भुनी हीग व हल्दी १-१ तोले—इन सबको एकत्र कूटकर चूर्ण बना रखें।

इसमे से यथारुचि थोडा थोडा दाल, शाक मे मिला देने से वे स्वादिष्ट वनते हैं। अरुचि, अजीर्ण, आध्मान, अग्निमाद्य, आमवृद्धि, उदरशूल, अधिक डकार एव छोटे छोटे उदर कृमि नष्ट होते हैं।

(४) चटनी-कलौंजी—भुनी कलौंजी, भुना जीरा, कालीमिरच और इमली का गूदा समभाग तथा कालानमक (स्वाद आवे उतना), खट्टे अनार का रस (भिगोकर एक रस हो उतना), और शहद अथवा गुड मिलाकर अवलेह जैसा भोजन के साथ चटनी रूप से सेवन करने से अरुचि तथा अग्निमाद्य दूर होते हैं।

—गावो मे औपधरत्न

कल्पवृक्ष (Celestial tree)

इस पुराण प्रसिद्ध कल्पवृक्ष या कल्पतरु के विषय मे वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी ने सचित्र आयुर्वेद मे एक छोटा सा सचित्र लेख प्रकाशित कराया था। उसी का सार अश यहा साभार दिया जाता है—

अजमेर से १६ मील दूर "मगलियावास" नामक ग्राम के समीप दो वृक्ष हैं, जिनकी राजस्थान के लोग कल्पवृक्ष के नाम से पूजा करते हैं। वहा के लोगो मे विश्वास है कि जो सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है, उसकी मनोरथ सिद्धि अवश्य होती है। एक वृक्ष मे पत्ते वडे और दूसरे में छोटे होते हैं। वडे पत्ते वाले वृक्ष को मादा और छोटे पत्ते वाले को नर कहते हैं।

इसका तना ३४ फीट से अधिक मोटा और ऊंचाई ५७ फीट से भी अधिक होती है। पुष्प कमल के जैसा होता है। पत्ते सदासुहागिन के पत्ते जैसे होते हैं। पत्तों मे समानान्तर रेखायें होती हैं और रङ्ग गहरा हरा होता है। पत्ता वडा सुदृढ होता है। वहां के लोगो का विश्वास है कि इसमे १२ साल के वाद एक वार एक ही फल आता है जो आकार मे वेंगन से कुछ वडा होता है। उसके रङ्ग का पता नही लग सका। स्थानीय वैद्यो का मत है कि यह औषधि मे भी काम मे आता है। किन्तु औषधि का पूर्ण ज्ञान उन्हे नही है।

उक्त लेख का साराश चित्र सहित यहा दिया गया है। आशा है कोई जानकार सज्जन इसके विषय मे कुछ विशेष प्रकाश डालने की कृपा करेंगे। अगले सस्करण मे सधन्यवाद प्रकाशित किया जावेगा।
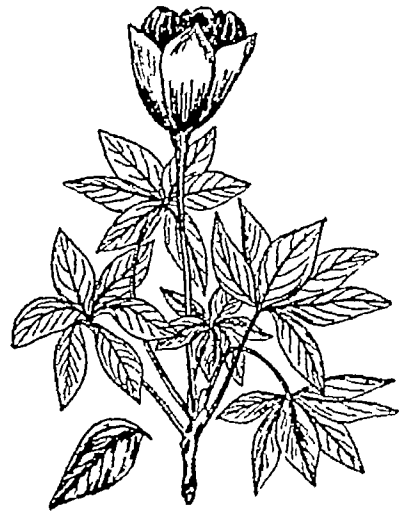
कल्पवृक्ष

हमारे ख्याल से यह गोरख इमली (Adansonia Digitata) की ही कोई जाति विशेष वृक्ष Malvaceae कुल का होना सम्भव है। कारण अजमेर की ओर गोरख इमली को ही कई लोग कल्पवृक्ष भी कहते हैं। आगे गोरख इमली का प्रकरण देखिये।

कसेरु [Scirpus Grossus]

यह मुस्तक (मोथा) कुल (Cyperaceae) का शाक वर्ग का एक कन्द शाक है। वडा कसेरु (राजकसेरुक) तथा छोटा कसेरु के भेद से यह दो प्रकार का होता है।

बडे का कन्द छोटे की अपेक्षा बडा और मोटा अखरोट जैसा होता है। औषधिकार्य मे तथा शाक के लिये यही प्रशस्त माना गया है। इसके नाम स्किर्पस ग्रासस तथा स्किर्पस टुब्ररोसस (S Tuberosus), स्किर्पस कैसूर (S Kysoor) हैं। यह भारत के उष्ण प्रदेशो मे तथा चीन मे अधिकता से होता है। सिंगापुर का कसेरु उत्तम माना जाता है।

छोटे का कन्द नागरमोथा जैसा, उससे कुछ वडा होता है। इसे भाषा मे 'चिचोड' भी कहते हैं। इसे चवाने से मोथा जैसी गन्ध आती है तथा दीखने मे भी यह मोथा जैसा होने से निघण्टुओ मे कही कही नागर मोथा (मुस्ता) के पर्यायवाची शब्दो मे कसेरुक नाम पाया जाता है। वैसे भी छोटे और वडे दोनो कसेरु मुस्ता कुल के ही हैं। छोटे का लेटिन नाम स्किर्पस आर्टिक्युलेटस (S Articulatus) या सायपरस एस्क्युलेन्टस (Cyperus Esculentus) है। यह वगाल आदि पूर्वीय भारत के प्रान्तो के जलाशयो मे या दलदल (प्रचुर जलपूर्ण स्थानो) मे विशेष पाया जाता है। वडा कसेरु भारत के दक्षिण मे विशेषत कोकण प्रान्त मे अधिक होता है। उसे उधर कचेरा कहते हैं। कसेरु की कई जातिया उस ओर दक्षिण मे पाई जाती हैं।

कसेरुका वर्षायु पौधा आर्द्र भूमि मे या ताल, झीलो मे उपजता है। इसका काण्ड २ से १० फीट तक ऊचा उगली जैसा स्थूल, ३ पहल का होता है।

पत्ते—तलवार जैसे लम्वे अल्प प्रमाण मे होते हैं। पुष्पमजरी वर्षाकाल मे लगती है। यह ३ फीट तक लम्वी वढ़ती है, इसी मे इसके फल और वीज होते हैं। फल वहुत छोटे धूसर या काले रग के होते हैं।

कन्द—छोटे का नागरमोथा जैसा किन्तु कुछ वडा होता है। वडे का अखरोट जैसा, किन्तु उससे वडा गोलाकार, ऊपर से काला, मोटे या स्थूल केशयुक्त, भीतर से सफेद, स्वाद मे मधुर, किंचित् फीका एव सुगन्धित होता है। ये कन्द मार्च से लेकर मई या जून मास तक प्राप्त होते हैं। इनका शाक वनाते हैं। कई लोग ऊपर का छिलका हटाकर कच्चा ही खाते हैं।

नाम—

सं०—कसेरुक, राजकसेरुक, गुण्ड, दीर्घकाण्ड, त्रिकोणक, असिपत्र।

हिन्दी—कसेरु, गोंदला, केउटी।

मराठी—कचेरा, कुरडया, कचरा। वगाली—केशुरधारा, ललुकेसुर। गुजराथी—कसेलान।

अंग्रेजी—वाटरचेस्टनट (Water Chestnut)

ले०—ऊपर देखिये।

रासायनिक सघठन—

कन्दो मे स्टार्च प्रतिशत ६३, प्रोटीन ७, गोंद ७, एव काष्ठ भाग ६ होता है।

कसेरु
Scirpus grossus Linn

गुणधर्म और प्रयोग--

गुरु, रुक्ष, मधुर, कषाय, विपाक मे मधुर तथा शीत वीर्य है। यह पित्तशामक, कफवातवर्धक, तृष्णा शामक, वमन निवारक, विष्टम्भी, ग्राही, स्तम्भन, हृद्य, रक्त-स्तम्भक, वृष्य, वल्य, प्रजास्थापन, स्तन्यजनन, चक्षुष्य दाह प्रशमन, व्रणशोथहर, प्रमेहघ्न और विषघ्न है।

इसके अधिक सेवन से उदर मे कृमि होने की सभावना है। छोटा कसेरु विशेषत सौम्य रेचक होता है। कसेरु का फूल--पित्तघ्न और कामलानाशक है। पित्तज और रक्त प्रकोपजन्य ज्वरों मे कन्द का पेय और प्रलेप लाभकारी होता है। शुष्क कास मे इसके कन्द के चूर्ण मे समभाग मिश्री का चूर्ण मिला थोड़ा थोड़ा मुख मे डालते रहने से लाभ होता है। औषधि भक्षण से हुई मुख की विरसता इसके चवाने से दूर होती है। वमन निवारणार्थ कन्द के चूर्ण मे शहद मिला कर चटाते हैं।

(१) विसूचिका आदि पर--इसे गुलावजल मे पीस छानकर पिलाने से तृष्णा, वमन, अतिसार की शान्ति तथा हृदय को शक्ति प्राप्त होती है।

कन्द को छिलकासहित पीसकर गुलावजल और मिश्री मिलाकर सेवन करने से यह शीतल दूषित वायु-जन्य विकारो को दूर करने वाला और पूयमेह नाशक है।

(२) नेत्र रोगो पर--कन्द के साथ मुलैठी को पीस कर लेप करने से, अथवा इसके चूर्ण के साथ मुलैठी का चूर्ण मिला वस्त्र मे पोटली वना आकाश के वर्षा जल मे भिगो कर आखो पर फेरते रहने से रक्ताभिष्यन्द (रक्त प्रकोप से आखो का आना) मे लाभ होता है, (सुश्रुत) [देखो प्रयोग ४] विस्फोट और व्रण शोथ मे भी मुलैठी के साथ इसके कन्द को पीस कर लेप किया जाता है।

(३) विसर्प पर--कन्द को महीन पीस गौघृत के साथ लेप करें। अथवा कसेर्वादि लेप देखो नीचे विशिष्ट योगो मे।

मात्रा--कन्द की ६ मासे से १ तोला तक। इसके अभाव मे कमलगट्टा का प्रयोग किया जाता है।

(४) पित्तज और रक्तज नेत्राभिष्यन्द पर--इसके कन्द के तथा मुलैठी के चूर्ण को एकत्र मिला कपड़े मे बाध कर पोटली वना बकरी के दूध और घी मे भिगो-कर आखो मे निचोड़ने से लाभ होता है। (वगसेन)

कसेरु के कुछ विशिष्ट योग--

(१) कसेर्वादि क्षीरम्--(गर्भशूल एव गर्भस्राव पर) कसेरु के साथ समभाग सिंघाडा, जीवनीयगण (इसमे अष्टवर्ग के साथ मुलैठी, जीवन्ती, मुद्गपर्णी और माषपर्णी लेते हैं) कमल, नीलोफर, एरण्डमूल तथा शतावर लेकर जौकुट कर किया हुआ चूर्ण मात्रा दो तोले, दूध ३२ तोले और जल १२८ तोले एकत्र मिला-कर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें खाड या मिश्री मिला सेवन करने से गर्भशूल नष्ट होता है। व गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है (वगसेन)।

कसेर्वादि क्वाथ--कसेरु के साथ समभाग सिंघाड़ा पद्माक, नीलोफर, मुद्गपर्णी और मुलैठी लेकर क्वाथ वनावें। (अथवा क्वाथ वनाकर केवल कल्क बना मात्रा ३ मासे) दूध और खाड मिला कर पीने और दूध भात खाने से भी वही लाभ होता है। (वगसेन)

(२) कसेरुकादि सर्पि (पित्तज हृद्रोग पर)--कसेरु, शैवाल, अदरख, मुलैठी, कमलनाल और पीपलामूल के कल्क से दूध के साथ घृत पाक सिद्ध करें। इसे ६ मासे से १ तोला की मात्रा मे लेकर शहद मिला सेवन करने से पित्तज हृद्रोग नष्ट होता है। (यो र)

(३) कसेर्वाद्यवलेह--(कास, ज्वर आदि नाशक) कसेरु २॥ सेर कूटकर २४॥ सेर जल मे पकावें। लग-भग ६॥ सेर जल शेष रहने पर छान लें। फिर उसमें ५ सेर गुड और १ पाव घृत मिला पुन पकावें। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर १६ तोला त्रिकुटा चूर्ण (समभाग सोठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण), १२ तोला त्रिजात (समभाग दालचीनी, इलायची, तेजपात का चूर्ण) तथा केसर का चूर्ण ८ तोला मिला दे।

मात्रा--१ से ४ तोला सेवन से खासी, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डु, विवर्णता, दुर्वलता और आध्मान नष्ट होता है। स्वर और पुष्टि की वृद्धि होती है। (ग० नि०)

(४) कसेर्वादि क्वाथ (तृषा पर)--कसेरु के साथ सिंघाड़ा, कमलगट्टा, कमलनाल और ईख मिला जौकुट

कर क्वाथ करें। इसी ठण्डा करके मिश्री मिला पीने से क्षतज और पित्तज तृषा की शांति होती है। [वृ नि र]

[५] कसेर्वादि लेप—कसेरु, सिंघाड़ा, कमल, शैवाल, नीलोफर, पद्माख, गिलोय इनको कमल की जड का कीचड निचोडकर निकाले हुए पानी के साथ पीस कर घृत के साथ वस्त्र पर लिप्त कर बांधने से दाह शांत होकर पित्तज विसर्प दूर होता है। [भै० र०]

[६] कसेरु पाक—[प्रदर और योनि रोग पर]—इसके कन्द को छीलकर [ऊपर के छिलके को दूर कर] पत्थर पर महीन पीस ले। यह पिसी हुई पिट्ठी यदि १६ तोले हो तो गोदुग्ध ६॥ सेर मे मिला पकावें। खोवा सा हो जाने पर ३८ तोला गोघृत में भून कर उसमें गोंद भुना हुआ १६ माशे, पाषाण भेद [नकछिद्रा], सोंठ, मिर्च, पीपल, लोध्र, जायफल, मखाना, मजीठ, धाय के फूल, नागकेशर, बेलगिरी और मोचरस का महीन चूर्ण २-२ तोले मिलाकर १२८ तोले शक्कर की चाशनी में मिला पाक जमा दें। इसे ४ तोले तक बलाबल देखकर सेवन कराने से स्त्री के प्रदर रोग एवं योनि रोग शीघ्र नष्ट होते हैं।

—वैद्यराज [स्त्री रोग चिकित्सा]

कसेरु पाक के और भी उत्तमोत्तम प्रयोग देखिये हमारे वृहत्पाक संग्रह में।

कसौंदी (Cussia Occidentalis)

शाकवर्ग और सुरसादि गण (सु) की यह वनौषधि नैसर्गिक क्रम से मुख्यत शिम्बी कुल (Leguminosae) एव उपकुल पूतिकरंज कुल (Caesalpiniaceae) की है।

इसके मुख्यत दो भेद हैं। एक अर्थात् साधारण कसौंदी का लेटिन नाम शीर्षोक्त (केसिया आक्सिडेंटालिस) है। और दूसरे भेद का काली कसौंदी (केसिया परपुरिया C Purpurea) या बास की कसौंदी (के. सेफेरा C. Sophera) नाम है। केसिया कोरोमेंडेलियाना (C. Coromendeliana) भी लेटिन नाम इसका है।

सर्वसाधारण कसौंदी का क्षुप चकवड के क्षुप जैसा वर्षारम्भ मे ही कूडाकर्कट वाले खाली स्थानो पर उपज आता है तथा पूर्ण वर्षाकाल तक यह अधिक से अधिक ५-६ फीट लम्बा सीधा बढ जाता है। यह बहुशाखायुक्त होता है।

पत्र—सयुक्त आमने सामने, प्रत्येक सीक मे प्राय ५-५, २ से ४ इच लम्बे तथा १। से ३ इच चौडे, गोल, नुकीले होते हैं। पत्र का ऊपरी भाग चिकना, अधोभाग कुछ खुरदरा सा होता है।

फूल—क्षुद्र, पीतवर्ण के, चकवड के पुष्प जैसे १ इच व्यास के होते हैं। यह क्षुप वर्षान्त मे या शीतकाल मे फूलता फलता है। हेमन्त मे फलिया परिपक्व होने पर यह सूखने लगता है।

फलिया—३ इच लम्बी तथा आधे इच से कुछ कम चौडी, लम्बी, पतली, चिकनी व चिपटी होती हैं।

बीज—प्रत्येक फली मे १० से ३० तक भूरे,
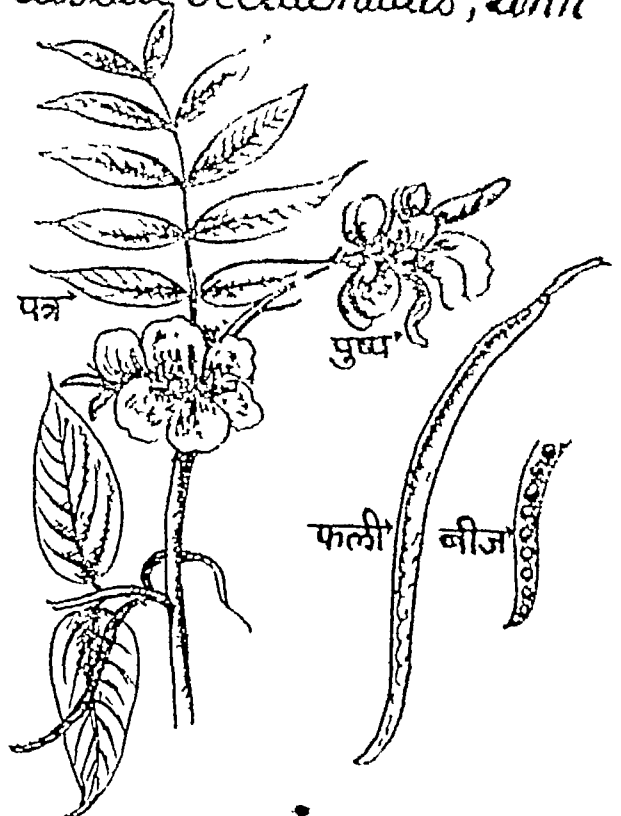
चक्रिकाकार या गोलाकार होते हैं।

कसौंदी और चकवड (चक्रमर्द) मे भेद यह है कि चकवड के क्षुप छोटे पत्ते गोल, फली पतली, गोल और वीज उर्द जैसे होते हैं।

ग्वालियर की ओर कसौंदी को ही सरफोका कहते हैं किन्तु वास्तव मे सरफोका (शरपुंखा) भिन्न है।

काली कसौंदी यह साधारण कसौंदी की ही एक उपजाति है तथा काली कसौंदी की ही एक दूसरी जाति वास की कसौंदी है। इन दोनो प्रकार की काली कसौंदी का पौधा या क्षुप उक्त साधारण कसौंदी जैसा ही सरल, शाखा बहुत, चिकना, किन्तु वर्ण मे काला या नीला श्याम होता है। इसका क्षुप कई वर्ष तक रहता है तथा काफी बड़ा हो जाता है। पत्तियां प्रत्येक सीक पर ६ से १२ तक जोडे से (सयुक्त), भालाकार एव नुकीले होते हैं। वृन्तमूल के समीप एक ग्रन्थि होती है। पुष्प साधारण कसौंदी के पुष्प जैसे ही पीले तथा फली दीर्घ, क्षाण और चिकनी और वीज मटर जैसे होते हैं। मूल तन्तुवहुल, कडी एव मूलत्वक् कुछ काले रग की कस्तूरी जैसे गंधयुक्त होती है।

काली कसौंदी का आदि उत्पत्तिस्थान भारतवर्ष ही है तथा साधारण कसौंदी बाहर से यहां लाई गई है और चारों ओर प्रचुरता से इसने अपना विस्तार कर लिया है। हिमालय से लेकर दक्षिण मे सीलोन पर्यन्त तथा पश्चिम वगाल आदि देशो मे प्राय सर्वत्र सुलभ है। किन्तु काली कसौंदी अब दुर्लभ होती जाती है। यह प्राय पर्वतीय प्रदेशो मे गावो के आसपास कही कही मिलती है। ब्रह्मदेश मे यह अधिक पायी जाती है।

हिन्दी शब्द सागर मे कसौंदी के एक लाल भेद का उल्लेख है। यह लाल कसौंदी सदा वहार, पत्तिया गहरे हरे रग की कुछ लालिमायुक्त होती है। फूल भी कुछ ललाई लिये हुये पीला होता है। इसकी पत्ती और वीज ववासीर (अर्श) की दवा के लिये काम आते है।

नाम—

साधारण और काली कसौंदी के—

संस्कृत—कासमर्द, अरिमर्द, कासारि, कर्कश।

हिन्दी—कसौंदी, कासिंदा, कसौंजी, गजरसाग तथा काली कसौंदी। गुर्जर—कासोंदरो, कसंदी, कूजी।

मरेठी—कासविंदा, हिकल तथा रान टाकला।

वंगला—केसेन्दा तथा कालकसुंदा, कालकाकसौंदा।

अंग्रेजी—निग्रो काफी प्लांटस् (Negro coffee plants) तथा सेना सोफेरा (Senna Sophera), सेना एस्कुलेंटा (S Esculenta)

लेटिन—Cassia Occidentalis

रासायनिक सङ्गठन—

इसकी पत्तियो मे सनाय के जैसा विरेचन तत्व कैथर्टिन (Cathartin), कुछ रजक द्रव्य और लवण होते हैं। वीजो मे प्रतिशत ३४ सेल्युलोज, गोद २८.८, एक्रोसीन (Achrosine) १३ ५८, वसा द्रव्य (Olein & Margarin) ४ ९, क्राइसोफेनिक एसिड, केल्शियम सल्फेट और फास्फेट ० ९ इत्यादि द्रव्य होते हैं। काली कसौंदी मे एमोडीन व एसिड क्राइसोफेनिक का विशेषता होती है।

गुणधर्म और प्रयोग—

रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, मधुर, विपाक मे कटु और उष्णवीर्य है। यह कफवातशामक, पित्तसारक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, रेचन, कफघ्न, कास श्वासहर, मूत्रल, आक्षेपशामक, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, कठशोधक और विषघ्न है।

पत्र—पाक मे कटु, कफवातनाशक, पाचक, उष्ण वीर्य, लघु, श्वास, कास, अरुचि एव रक्तविकारनाशक तथा कठशोधक हैं।

इसकी पत्र-शाक–अग्निदीपक, स्वादिष्ट, त्रिदोषनाशक, वात, कफ, श्वास, ज्वर, उदरकृमि, अर्श, सूखी गीली खासी और हिक्कानाशक है।

पत्र का रस नाक मे सुडकने से नथुनो का अवरोध दूर होता है। सिर के खालित्यजन्य विस्फोट पर पत्रो को पीसकर लेप करते हैं। कर्णशूल पर पत्र रस को दूध मे मिला कान मे टपकाते हैं। विसर्प और शोथ पर पत्रो को पीसकर लगाते हैं। मकडी के फिर जाने और वर्र के दश पर पत्ती को पीसकर मलते हैं। शरीर पर क्षत या जख्म के होते ही पत्ती को पीसकर लगाने से लाभ होता है। कठमाला पर पत्रो के साथ काली-

मिर्च को पीसकर लेप करते हैं। उक्त जख्म और कठमाला के प्रयोग के लिये काली कसौदी पत्र शीघ्र लाभकारी होते है।

कालीकसौंदी के पत्र बीज आदि विशेष शोधक रेचक एव कृमिघ्न गुणविशिष्ट हैं। पाण्डु, जलोदर, यकृत विकृति आदि मे, विशेषत शीत प्रकृति के रोगी को पत्तो का रस या फाट कालीमिर्च के चूर्ण के साथ सेवन कराते हैं। इसके पत्र रस को विच्छूदश की अवस्था मे कान में टपकाते हैं।

(१) हिक्का और श्वास पर—काली या साधारण कसौंदी पत्र १-२ तोले लेकर दो सेर पानी मे पकावें, १ सेर जल शेष रहने पर छानकर उसमे ४ तोले मू ग की दाल मिला यूप तैयार करें। इसके पीने से हिचकी और श्वास मे लाभ होता है। यूष को थोडा थोडा बार बार पीना चाहिये। (यो र) कुक्कुर कास मे भी इससे लाभ होता है।

(२) कफज कास पर—पत्र स्वरस के साथ घोडे की लीद का रस और शहद मिला सेवन करें अथवा केवल पत्र स्वरस के साथ ही शहद मिला थोडा थोड़ा बार बार चटाने से लाभ होता है। —च चि अ १८

(३) जलोदर, सन्धिशूल एव आमवात पर—पत्तो को गरम कर शैया पर विछा उस पर जलोदरी तथा सन्धिशूल ग्रस्त रोगी को लिटाने से लाभ होता है।

केवल सन्धिशूल या आमव त हो तो पत्तो की चाय वनाकर उसमे शहद तथा १ रत्ती रसकर्पूर मिला पिलाते हैं तथा पत्तो को पानी मे उवाल कर उस पानी मे स्नान कराते हैं।

जलोदर की दशा मे—पत्र १॥ तोला, ११ काली मिरच के साथ सोफ के अर्क मे पीस छानकर नित्य दो वार पिलाते रहने से ७ दिन मे लाभ होता है।

आमवातिक एव प्रादाहिक ज्वरो में पत्र का फाट दिया जाता है।

इसकी पत्ती के रस मे, आमलासार गधक को खूव महीन पीस कर तथा कपडे पर फैलाकर आमवातरोगी के विकारी सवियो एव अन्य स्थलो पर इसे चिपका देवें और ऊपर से १५ मिनिट तक स्वेदन करें। इससे विकारी द्रव्य विलीन होते हैं, पीडा कम होजाती है, एवं नाडियो को वल प्राप्त होता है, स्रोतों का उद्घाटन होकर सूजन उतर जाती है। (आ वि. कोप)

(४) सुजाक और फिरग रोग पर—सुजाक या पूयमेह की प्रथमावस्था मे तथा फिरङ्ग रोग मे भी इसके पत्ते १० माशे को कालीमिरच ३ माशे के साथ पानी मे पीस छानकर प्रतिदिन १ या २ वार पिलावें। ७ दिन मे लाभ होता है। किंतु लवणवर्जित आहार करें।

सुजाक की उग्रावस्था के उपरान्त की दशा मे इसकी (विशेषत काली कसौदी की) ताजी पत्तियो द्वारा निर्मित फाट की उत्तर वस्ति लाभकारी होती है।

फिरग रोग या उपदश के व्रणो को उक्त फाट से ही धोना श्रेयस्कर है।

(५) व्रणशोथ, नारु तथा दद्रु, कण्डु आदि पर—काली कसौंदी पत्तो को पीस टिकिया वना वाधने से व्रण पककर फूट जाता है। पश्चात् पत्तो के कल्क को गोघृत के साथ लगाते रहने से व्रण का सुधार होता है।

नारू पर—पत्तो को नमक और प्याज के साथ पीसकर बाँधते हैं। नारु शीघ्र वाहर निकल आता है।

दाद, खुजली आदि पर—पत्र रस मे चन्दन को पीस कर लगाने अथवा पत्र-स्वरस मे नीवू का रस मिला कर वनाया हुआ पलस्तर वाधने से लाभ होता है।

(६) नेत्राभिष्यन्द आदि नेत्र विकारो पर—नेत्राभिष्यन्द (आखें आने पर) मे पत्तो को दूध मे पीस गरम कर पुल्टिस जैसा बना आखो पर वाधने से वेदना और लाली दूर होती है।

नेत्र शूल पर—पत्र रस मे असली ताजा शहद मिलाकर आखो मे टपकावें।

रतौंधी पर—पत्र रस को आँजने से तथा इसके पत्तो के और बीज चूर्ण को गेहूँ के आटे मे मिला रोटा पकाकर तिल-तैल के साथ कुछ दिन खायें।

(७) कामला और कृमि रोग पर—इसके २-४ पत्र लेकर दो काली मिरच के दानो के साथ पीस छानकर प्रात साय पिलावें।

कृमि पर—पत्रो का क्वाथ पिलाते हैं, सूत्र कृमि, कद्दूदाना आदि उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं। फिर कोई

रेचन देकर कोष्ठ शुद्धि कर देते हैं।

(८) शेर की मूंछो का वाल पेट मे चले जाने से जो उपद्रव होते हैं, उनकी शांति के लिये पत्र रस तीन दिन तक पिलाते हैं।

वीज—इसके वीज विरेचक, कास, कुक्कुर-कास-निवारक ज्वरहर, तथा कुष्ठ आदि नाशक हैं।

इसकी अधपकी फली को भूनकर विच्छू दश पर खिलाते हैं। तथा इसे कृच्छ्रकास श्वास की दशा मे भी खिलाते हैं।

वीजो को भूनकर खाने से दस्त वन्द होते हैं। विना भुना वीज दस्तावर होता है। भुने वीजो के चूर्ण मे समभाग शहद मिला ३ माशे तक लेने से अतिसार और प्रवाहिका मे लाभ होता है।

वीजो को थोडा आग कर सेक कर काफी के स्थान पर उपयोग करने से मानसिक उत्तेजना वढती है। तथा ज्वर मे स्वेद लाने व कफ को दूर करने मे यह हितकर है। वीजो को उक्त प्रकार से भून लेने से उसका स्वाद काफी के जैसा ही हो जाता है। आगे विशिष्ट योगो मे कसौंदी-काफी का प्रयोग देखिये।

दाद, खुजली आदि चर्म रोगो पर इसके वीजो को कांजी के साथ पीसकर लगाते हैं। वीजो का क्वाथ पिलाने से पसीना आता है। मधुमेह वीज मे चूर्ण को शहद के साथ सेवन कराते हैं।

(९) श्वित्र, सिध्म कुष्ठ तथा व्यङ्ग एव विचर्चिका जन्य चकत्तो पर—वीजों के साथ मूली वीज और गधक एकत्र कर पानी के साथ पीस कर लेप लगाते है। इसके लिए काली कसौंदी के वीज विशेष लाभकारी है।

(१०) कृच्छ्रश्वास एव कफज कास पर—वीज का महीन चूर्ण १५ तोला, पीपल और काला नमक चूर्ण ३-३ माशे सवको पानी मे खरल कर चने जैसी गोलियां वना रक्खें। १-२ गोली मुख मे प्रात एव रात्रि मे धारण किया करें।

(११) रक्तार्श पर एव सौम्य विरेचनार्थ—रक्तार्श (खूनी ववासीर) पर—इसके वीज १५ नग तथा काली-मिरच दो नग दोनो को एकत्र पानी के साथ घोट पीस कर प्रात साय पिलाते हैं।

सौम्य रेचनार्थ—वीज का क्वाथ १ भाग, वीज चूर्ण १० भाग पानी मिलाकर पकाया हुआ, मात्रा—२॥ तोले से ५ तोले तक देने से कोष्ठवद्धता दूर होती है।

(१२) वालको के आक्षेप रोग पर—वीज चूर्ण २ रत्ती से ६ रत्ती तक गौ दुग्ध मे पीस छानकर थोडा गरम कर अथवा स्त्री दुग्ध के साथ दिन मे एक वार देते हैं। यदि वालक को न दिया जा सके तो उसकी माता या दूध पिलाने वाली धाय को इस चूर्ण की मात्रा अधिक से अधिक ६ माशे तक दूध के साथ सेवन कराते हैं। सनाय की भाति इसका भी विरेचनीय गुण भाग स्तन्य मे आ जाता है। (वि कोप)

मूल—विपमज्वर प्रतिपेधक, मूत्रल, आक्षेपहर, कुण्ठघ्न, वल्य, योपापस्मार, वृश्चिकदश तथा वातशूल (Neuralgia) आदि निवारक है।

वातज श्लीपद पर—मूल को पीस कर गोघृत के साथ पीवें (वगसेन)। दद्रु व किटिभकुष्ठ पर मूल को कांजी मे पीस लेप करें। (चक्रदत्त) अथवा दद्रु पर—ताजी जड को चदन के साथ या नीवू के रस के साथ पीस कर लगाते हैं। विच्छू के दश पर—मूल को चवाकर जिसे विच्छू ने दश किया हो उसके कान मे वार वार फूक मारते हैं। तथा इसकी छाल पीसकर दश स्थान पर प्रलिप्त करते हैं। ज्वर न आने के लिये मूल का क्वाथ प्रतिदिन प्रात पिलाते है। विर्चाचिका (तर खुजली) में मूल को जम्वीरी नीवू के रस मे पीस कर लेप करते है। अतिसारयुक्त जलोदर पर—काली कसौंदी के मूल को नीवू रस मे पीस पेट और पेड़ू पर प्रलेप करते हैं। व मूल चूर्ण को शहद से चटाते है। वहुमूत्र पर—इसकी छाल का फाट पिलाते हैं। तथा वीजो का चूर्ण शहद के साथ देते हैं। कामला पर मूल को नीवू रस मे घिस कर आखो मे आजते हैं।

(१३) वालको के मसान रोग पर—इसकी जड़ १ तोला तथा कालीमिर्च १३ दाने दोनो को पानी मे पीस कर ज्वार में दाना जैसी गोलिया वनावें। जिस स्त्री के वच्चे मसान रोग मे मर जाते हो उसे गर्भधारण के तीसरे मास १-१ गोली प्रात साय मक्खन के साथ देना आरंभ करें। प्रसवोत्तर शिशु को एक गोली दैनिक देते

रहे। बालक मसान रोग से सुरक्षित रहेगा। (आ. वि. कोष)

शोष (सूखा) रोग से पीड़ित शिशुओं को इसके या इसके पंचाङ्ग के काढ़े से नित्य स्नान कराते हैं।

(१४) वीर्य पुष्टि के लिये—मूल की छाल के महीन चूर्ण को १ से ४ माशे तक की मात्रा में शहद के साथ सेवन कर ऊपर से दुग्ध पान करने से वीर्य गाढ़ा होता है, शुक्र की वृद्धि होती है।

पुष्प—श्वास, कासनाशक, मूत्रगत दाह, पित्तशामक, मलावरोध, अपस्मार तथा नक्तान्धता निवारक हैं।

(१५) अपस्मार पर—फूलों को सुखाते हैं तथा शुष्क फूलों को महीन पीस कर नस्य देते हैं।

योषापस्मार पर—फूलों का क्वाथ सेवन करायें।

(१६) मलावरोध एवं उदर रोग पर (गुलकन्द)—ताजे फूलों को साफ कर उससे तिगुनी शक्कर मिला काँच की बरनी में भरकर ४० दिन तक सुरक्षित रखें। इस कसौंदी गुलकन्द की मात्रा ६-६ माशे सेवन करने से जीर्ण मलावरोध तथा उदर रोग नष्ट होता है।

(१७) रतौंधी पर—फूलों को पानी में पीस यथोचित मात्रा में नित्य ७ दिन तक पिलाते हैं।

पत्र—इसके पत्र रेचक, दद्रु, कण्डू, विचर्चिका, व्यङ्ग आदि चर्म रोग, दन्त रोग, योषापस्मार नाशक है। पत्राङ्गों को पानी में औटाकर गण्डूष (कुल्ले) करने से दांत सुदृढ़ होते हैं, रक्तस्राव बन्द होता एवं मसूड़े मजबूत होते हैं। इससे कण्ठ की भी सफाई होकर स्वर मधुर हो जाता है। पत्र-शाक के मिले जल से २-३ दिन तक स्नान करने से संक्रमणशील कण्डू, दद्रु आदि के जीवाणु नष्ट होकर लाभ होता है।

इसके क्षार का प्रयोग विशिष्ट योगों में देखिये।

मात्रा विचार—पत्र स्वरस १-२ तोला। मूल-कल्क दो से ४ माशे। बीज चूर्ण बालक को १ मासा तक।

नोट—कसौंदी का सेवन पित्त या उष्ण प्रकृति वालों को अहितकर होता है। इसके उपद्रवों की शान्ति के लिए कालीमिर्च और शहद का सेवन करावें।

विशिष्ट योग—

(१) कासमर्दासव—उपदंशादि-विष विकारों पर—इसकी जड़ ५ सेर तथा पत्र दो सेर जौकुट कर १२ सेर जल में पकावें। १३ सेर तक जल शेष रहने पर छान कर कुछ ठंडा हो जाने पर बरनी में भर उसमें शहद १० सेर, धाय के फूल ४० तोला, कालीमिर्च चूर्ण और श्वेत जीरा चूर्ण ४-४ तोला मिला ठीक प्रकार से सन्धान कर २१ दिन तक रखने के बाद छान कर बोतलों में भर रक्खें।

मात्रा—२ से ४ तोला जल के साथ सेवन से उपदंश और आमवात नष्ट होता है। यह शीघ्र प्रसूतिकारक है। पारे के विष को शरीर से निकाल देता है। अफीम के विष का भी यह निवारक तथा रक्तार्श पर लाभकारी है। (वृ० आ० संग्रह)

(२) कासमर्दादि घृत—कसौंदी के ४ सेर स्वरस में १ सेर घृत और १० तोला भारंगी का कल्क मिला मन्दाग्नि पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान लें।

मात्रा—६ से १ तोले तक पीने से वातज स्वरभंग तथा वातज कास पर भी लाभकारी है। (कृ० यो० त०)

पैत्तिक स्वरभंग पर—४ सेर स्वरस में १ सेर घृत तथा बिगन और भारंगी का कल्क मिला घृत सिद्ध कर लें। इसे दूध के साथ पीने से पैत्तिक स्वरभंग दूर होता है। (ग० नि०)

शोथ, ज्वर, प्लीहा तथा सर्व कासनाशक कासमर्दादि घृत का प्रयोग देखिये चरक चि० अ० १८ में।

आयुर्वेदिक काफी—इसके बीज १ सेर हलकी आंच पर घी में सेक लवें फिर उन्हें पीसकर उसमें छोटी इलायची बीज १ तोला, कंकोल व तज ६-६ मासे, जायफल जावित्री, सौंफ व खसखस ३-३ मासे और केशर १॥ मासा सबका चूर्ण कर मिला देवें। इसे (काफी) की तरह बना कर पीने से बालक, वृद्ध सबको बड़ा लाभ होता है, थकावट, सुस्ती दूर होती, मन में प्रसन्नता, कार्य करने में उमंग एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वीर्य स्थान शुद्ध होकर कामोद्दीपन की शक्ति बहुत बढ़ती है।

[जंगलनी जड़ी बूटी]

(३) रसकपूर योग—फिरंग रोग (और सन्धिवात) पर—इसके विशेषज्ञ काली कसौंदी के स्वरस में रसकपूर को एक मास तक खरल कर एवं महीन पीस कर इसलेक

कस्तूरी(लता) दाना
Hibiscus Abelmoschus Linn.

गु –कस्तूरी भींडी, लताकस्तूरी।
अ.—मस्क म्यालो (Musk mallow), मस्क सीड्स (Musk-Seeds)
ले —हिबिस्कस एवलमोस्कस, एवलमोस्कस मॉस्केटस (Abelmoschus-Moschatus)

रासायनिक सघठन–

इसमे निर्यास, अलब्युमिन, सुगन्धित तैल, स्फटकीय द्रव्य राल आदि पदार्थ पाये जाते है। इसमे जो हरिताभ पीतवर्ण का ६ प्रतिशत प्रभावशाली होता है वह हवा में खुला रहने पर जम जाता है। इसके पत्र, मूल और बीजो का औषधि मे व्यवहार होता है।

गुणधर्म और प्रयोग–

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, किंचित मधुर, कटु, विपाक मे कटु मधुर और शीतवीर्य है। कफ पित्त शामक वात हर, रोचन, दीपन, वातानुलोमक, ग्राही, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, वृष्य (बल्य), चक्षुष्य, उद्वेष्टन निरोधक तथा मुख दुर्गन्ध, तृषा, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, वस्ति विकार, पूतिमेह शुक्रदौर्वल्य आदि नाशक गुण इसमें हैं।

वातसस्थान की विकृति, निर्वलता तथा योपापस्मार मे यह कस्तूरी के स्थान पर दिया जाता है। नेत्र विकार पर—बीजो को महीन खरल कर लगाते हैं। शुक्रमेह मे इसका चूर्ण सेवन कराते हैं। इसके पचाग को जलाकर धूम्रपान कराने से कठ के समस्त विकार तथा स्वरभग, मुखशोष आदि दूर होते हैं। प्रमेह मे इसके मूल और पत्र का काढा पिलाते हैं। कुक्कुर कास या काली खासी मे बीज चूर्ण १ १ रत्ती शहद के साथ चटाते है। ज्वर पर ताजे पत्तो का रस देते हैं। बीजो को मुख मे धीरे धीरे चबाने से मुख स्वच्छ, सुगन्धित होता अरुचि दूर होती है।

✓(१) कफ विकार, तमक श्वास आदि पर—इसके बीजो का फाट २ से ४ तोले की मात्रा मे कफविकार तीव्र श्वास एव ज्वर मे दिया जाता है। इससे श्वास मार्ग की रूक्षता दूर होकर श्वास नलिका का उद्वेष्टा शान्त होता, एव यह अपने उत्तेजक गुण से हृदय को बल पहुँचाता है।

✓(२) अजीर्ण, वातविकार आदि पर (अर्क या टिंचर)—बीजो का मोटा चूर्ण ६। तोला को मद्यसार (रेक्टिफाइड स्प्रिट) ५० तोले मे भिगो देवें। बोतल मे भर अच्छी तरह डाट लगाकर ७ दिन रक्खें। नित्य बोतल को २-३ बार हिला फिर छानकर रखलें।

मात्रा—४ से ८ माशे तक (१-२ ड्राम) थोड़ा जल मिलाकर दिन मे २-३ बार सेवन करने से अजीर्ण, उदर वात, अपतन्त्रक आदि वातविकार, दुर्वलता तथा कफ प्रकोप एव हृदय विकार सहित श्वास आदि का निरोध होता है। ध्यान रहे इसकी मात्रा अधिक देने से सिरदर्द और चक्कर आने लगते हैं।

(३) पूयमेह [सुजाक] पर—इसके मूल और पत्तो को कूटकर पानी में भिगोकर खूब मसलते हुये छानने से जो लुआव निकले, उसमें मिश्री या खाड मिलाकर २ से ४ माशे से लेकर ढाई तोला तक की मात्रा मे दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से वस्ति का सशोधन होकर मूत्र साफ होता है, जलन दूर हो जाती है।

(४) खासी पर—पत्र स्वरस मे शहद मिलाकर पिलाते है तथा छाती पर इसके पञ्चाग का लेप करें।

(५) कण्डू या सूखी खुजली पर—बीजो को दूध के साथ पीसकर उवटन जैसा बना मर्दन करद।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ माशे, अनुपान जल या शहद। पत्र स्वरस दो से ढाई तोले तक।

कहरुवा (Vateria Indica)

यह कर्पूरादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक क्रम से शाल कुल (Dipterocarpeae) की है।

निघण्टुकारो के 'सर्जयुग्म' से शाल और सर्ज (जिससे राल निकलती है) दोनो का ग्रहण करने से तथा कहरुवा (या तृणकान्तमणि) नामक एक भिन्न भौम या पार्थिव द्रव्य होने से इसके विषय मे वहुत कुछ भ्रम फैला हुआ हैं। वहुमत से यह सिद्ध है कि प्रस्तुत् वनौषधि शाल की ही एक जाति विशेष है। इसका वृक्ष शाल वृक्ष जैसा ही वडा एव भव्याकार, सदा हराभरा रहता है। यह शाल कुल का सफेद डामर या अजकर्ण नामक वृक्ष विशेष है। इसके पत्ते ४ से १० इच लम्वे, साढे तीन इच चौडे कुछ अंडाकार से होते हैं।

फूल—आवे से पौन इच व्यास के गोल तथा फल दो-ढाई इंच लम्वे, गोल होते हैं।

इस वृक्ष के तने को गोद देने या कुछ छील देने से उसमे से जो स्वच्छ, चमकदार एव कुछ पीतवर्ण का, अम्वर जैसा निर्यास (गोद) निकलता है, उसे ही कहरुवा, चन्द्रस, सुन्दरस, सफेद डामर आदि कहते हैं। चरक के कषाय, स्कन्ध मे इसका उल्लेख है।

कहरुवा के वृक्ष भारत के दक्षिण मे पश्चिम घाटी की पहाड़ियो पर तथा ट्रावनकोर, मलाबार, कानरा एव पश्चिमी प्रायद्वीपो मे पाये जाते हैं।

नाम—

संस्कृत—सर्जक, अजकर्ण, शाल, मरिचपत्रक आदि।
हिन्दी—कहरुवा, चन्दरस, सफेद डामर, सन्द्रुस।
वंगला—कुन्दरो, चन्द्रस। गुर्जर—चन्दरस।
मरेठी—सलाडीक, चन्दरस।
अंग्रेजी—इण्डियन कोपल ट्री
लेटिन—वेटिरिया इण्डिका।

रासायनिक सङ्गठन—

इसके वीजो में ४६.२ प्रतिशत हरिताभ पीत रग का सुगन्धित एव गाढा एक तैल होता हैं। यह भी चन्दरस कहाता है। इसमे तथा उक्त निर्यास मे ओलिक एसिड (Oleic acid) तथा अन्य वसाम्ल (Fatty acid) होते हैं।

उक्त निर्यास या तैल को जलाने पर यह उज्ज्वल एव स्थिर प्रकाश और सुगन्ध देता है। इसमे धुआ वहुत कम निकलता है। हलकी आंच पर यह पिघल कर अन्य तैल या मोम आदि मे मिलकर उत्तम मलहम रूप हो जाता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

मधुर, कड़ुवा, उष्णवीर्य, पित्तजनक, स्नेहन, उत्तेजक, वेदनास्थापन तथा कफ, पाडु, प्रमेह, कुष्ठ, विष, व्रण, जीर्ण आमवात एव वात, मस्तक, नेत्र और कर्ण सम्वन्धी विकारो का निवारक है।

इसका मजन दात और डाढो को दृढ करता है। अर्श पर—इसकी धूनी देते हैं। इसके बीजों के तैल मे सफेदा मिलाकर सिर के गंज पर लगाते हैं। आमवात मे इस तैल का मर्दन करते है। नेत्र के जाला, फूली पर—इसे शहद के साथ मिलाकर लगाते हैं।

[१] सव प्रकार के व्रणो पर—इसका निर्यास या तैल और राल ५-५ तोला, मोम २ तोला तथा तिल तैल ८ तोला सवको गरम कर अच्छी तरह घोटकर मलहम जैसा वन जाने पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

[२] कर्णरोग पर—इसकी छाल के चूर्ण में कपास के कच्चे फलो का रस, शहद मिला कान मे टपकाते हैं।

[३] जुखाम और नजला पर—निर्यास को शक्कर के साथ मिला आग पर डालने से जो धुआ उठता है उसे मुख से तथा नाक से धीरे धीरे खीचते हैं।

कहरुवा [पार्थिव द्रव्य] (SUCCINUM)

इसे संस्कृत में तृणकान्त मणि, फारसी में कहरुवा [कह—सूखी घास, रुवा—खींचने वाली], अंग्रेजी में अम्बर [Amber] और लेटिन मे सक्सीनम् कहते है।

यह एक अश्मीभूत [पत्थर से पैदा हुआ] राल जैसा पदार्थ, पीताभ या रक्ताभ पीतवर्ण का होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व १-१ तथा काठिन्य २-२ है। इसे रगडने से [illegible] जैसी सुगन्ध आती है।

गुणधर्म—

यह रूक्ष, [illegible] स्तम्भन और हृद्य है। इसका प्रयोग हृद्रोग, रक्तपित्त और उर क्षत में विशेष होता है। क्षत पर भी इसे लगाते हैं।

मात्रा—पिष्टी की २ से ४ माशे तक।

कंकुष्ठ (उसारे रेवन्द) [Gambogia]

कंकुष्ठ के विषय में बहुत मतभेद है। कोई खनिज द्रव्य मुरदासंग विशेष जो सरल, चमकीला, सुनहरा पीले रंग का होता है, उसे ही कंकुष्ठ मानते है। कोई प्राणिज अर्थात् तत्काल के जन्मे हुये हाथी, घोडा या गदहे के बच्चे की विष्ठा को या उसके नाखून को ही कंकुष्ठ मानते हैं तथा आधुनिक वैज्ञानिकों के मत से यह वृक्षज [illegible] है। हमारे यहां के प्राचीन ऋषियों ने दो प्रकार का अर्थात् नलिकाख्य [नली के आकार वाला] और रेणुक [चूर्णवत् या पिण्डाकार] कंकुष्ठ कहा है। इसी के आधार पर आधुनिक विद्वानों का विचार है कि यह एक प्रकार के मध्यमाकृति वृक्ष का निर्यास या गोंद है। इस वृक्ष की कोमल टहनियों [शाखाओं], पत्रों या इसके तने की छाल को काटने या छेदने से जो चमकीला पीत-वर्ण का दूध निकलता है उसे यदि बांस की नलिका मे संग्रह करते हैं तो वह जमकर नलिकाकार हो जाता है, जिसे ही नलिकाख्य [Pipe gamboge] कहते है तथा उक्त निर्यास किसी अन्य पात्र में संग्रह करने से पिण्डाकार हो जाता है, उसे केक गेम्बोज [Cake gamboge] या रेणुक कहते हैं।

उक्त निर्यास को ही उसारे रेवन्द कहा जाता है तथा यही कंकुष्ठ है ऐसा बहुमान्य वैद्यवरो का कथन है।

ध्यान रहे, उसारे रेवन्द से यह नहीं समझना चाहिये कि यह रेवन्द [रेवन्दचीनी] का शीरा या सत है। रेवन्दचीनी के सत के समान ही इसका रूप रङ्ग एव गुणधर्म [इसमे वामक धर्म की विशेषता है, शेष गुण-धर्म प्राय समान ही है] होने से ही मालूम होता है कि इसका उसारे रेवन्द यह भ्रमोत्पादक नाम पड गया है।

इसके मध्यमाकार के वृक्ष जिन्हें फर्मारिन वृक्ष या विलायती तमाल तथा लेटिन में गारसीनिया हानबरी [Garcinia Hunburri] कहते हैं। श्याम देश के कम्बोडिया प्रान्त में विशेष पाये जाते हैं। इसीलिये इसके उक्त निर्यास का नाम अंग्रेजी में कंबोजिया [Cambogia] तथा लेटिन में गेम्बोजिया [Gambogia] है।

भारतवर्ष के दक्षिण में विशेषत मैसूर, मलावार आदि प्रान्तो मे भी एक इसी जाति का वृक्ष होता है, जिसे संस्कृत में—स्वर्ण क्षीरी (प्रसिद्ध सत्यानाशी नहीं), हिन्दी मे—गोट घानवा, मराठी मे—कोकुम, गुजराथी मे—पीलियो, अंग्रेजी में—इंडियन क्याम्बोज (Indian Camboge) और लेटिन मे—वृक्ष को गारसीनिया मोरेल्ला (Garcinia Morella) कहते हैं।

उक्त वृक्ष से भी उक्त नामधारी उसारे रेवन्द जैसा ही निर्यास प्राप्त होता है। इसके रूप रंग गुणधर्म आदि उसके जैसे ही है। तथा इसी को वास्तव में आयुर्वेदोक्त कंकुष्ठ मानना उचित है। किंतु इसकी प्राप्ति यहां अत्यल्प होने से इसकी आयात प्राय कम्बोडिया आदि देशों से ही होता है।

इसके लम्बे, गोल, चमकीले, ललिमायुक्त पीत वर्ण के शीघ्र ही टूटने वाले टुकडे होते हैं। जो [illegible] होता है वह हरिद्रा वर्ण का निर्गन्ध होता है। स्वाद में यह तीव्र चरपरा तथा आग पर शीघ्र जलने वाला होता है। यह २ वर्ष तक ही सवीर्य [illegible] होता है।

उक्त चीनाक कगनी का ही एक भेद और होता है, जिसे लेटिन मे पेनिकम मिलिएसियम (Panicum Milliaceum) या पे मिलियम (P Milium), अग्रेजी मे—कामन मिलेट (Common Millet) मरेठी मे—वेंगली, चिनो, वरी, राले आदि तथा गुजराथी मे—गाडियो, कुसी आदि कहते है। यह पश्चिम तथा मध्यभारत तथा गुजराथ और अफ्रीका मे बहुत होता है। इसमे कार्वोहायड्रेट उत्तम प्रमाण होने से यह मार्दवकर एव स्निग्ध है, प्रवाहिका, अतिसार आदि मे यह हितकर है। सधिवात मे इसका पुल्टिस बाधते हैं। श्वेत, पीत और लाल भेद से यह तीन प्रकार का होता है।

इस प्रकार कगनी के कई भेद हैं। सर्वसाधारण कगनी हलकी शुष्क भूमि मे अधिकता से होती है। वर्षा के आरम्भ मे ही ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के साथ ही कोई कोई किसान इसे भी बो देते हैं। इसका क्षुप ३-४ फुट ऊंचा, पत्ते लम्बे, पतले और कुछ खुरदरे होते है। क्षुप पर जो बालें निकलती हैं उनमे गोल, बारीक दाने निकलते हैं। इसे कागनी कहते हैं। ये दाने कच्ची दशा मे हरे, तथा पकने पर पीले पड जाते है। प्राय पीले दानो वाली कगनी अधिक देखने मे आती है। तथा गुणो मे भी यह अन्य वर्ण वाली कगनी से श्रेष्ठ मानी गई है। पुरानी कगनी का चावल रोगी को पथ्य मे देते है।

यह भारत के उष्ण प्रदेशो मे प्राय सर्वत्र होती है। दक्षिण महाराष्ट्र तथा गुजराथ, मध्यभारत और कुच-विहार मे प्रचुर मात्रा मे होती है। बर्मा, चीन, मध्य एसिया एव यूरोप मे भी यह होती है।

नाम—

सं—कंगनी, प्रियगु, कंगुक, सुकुमार, अस्थिसंवन्धन।
हि.—कंगनी, कांकुन, टांगुन। ब—काकनी, कानिधान, कांगनी दाना। म—काग, काऊन, राल।
गु.—कांग। अं—इटालियन मिलेट (Italian millet) डेक्कन ग्रास (Deccan grass)
ले—सिटेरिया इटेलिका।

रासायनिक सघठन—

इसमे एक विषाक्त ग्लुकोसाइड तथा स्निग्ध क्षारोद पाया जाता है। ७३ प्रतिशत स्टार्च एव ३ प्रतिशत स्निग्ध पदार्थ होते हैं। गरीबो का यह एक उत्तम पौष्टिक खाद्य है।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह मधुर, कसैला, रूक्ष, ग्राही (कब्ज करने वाला), रुचिकारक, पित्तदाहनाशक, वातजनक, पौष्टिक, कफ तथा आमवातनाशक है। यह टूटी हड्डी को जोडता है। घोडो के लिये विशेष हितकर है।

इसे दूध मे पकाकर खाने से यह विशेष पुष्टिप्रद और स्निग्धता उत्पादक हो जाता है। प्रसवकालीन वेदना की शान्ति के लिये इसका पतला भात या खीर बनाकर खिलाते हैं। यह गर्भवती के गर्भाशय को पुष्टि प्रदान करता है। गर्भपात मे भी यह हितकारी है।

पित्तातिसार मे इसका सत्तू बनाकर देते है। मूत्र साफ होने के लिये इसका क्वाथ पिलाते हैं। रक्तपित्त की दशा मे रोगी को पथ्यरूप मे इसका भात लाभकारी
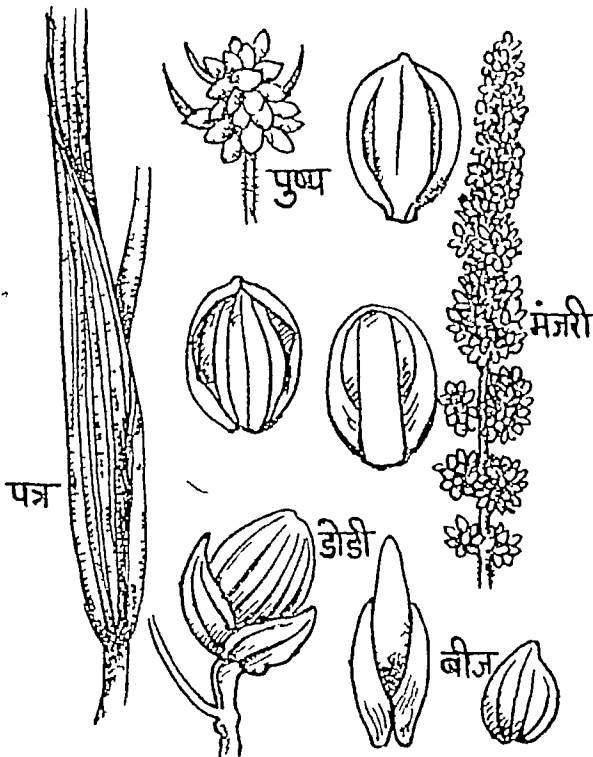
होता है। अन्नद्रवनामक शूल पर दूध के साथ इसकी खीर बनाकर सेवन करने से लाभ होता है। [वगसेन]

पुष्टि के लिये इसे कूट पीसकर चतुर्थ भाग गेहू का आटा मिला घृत मे भूनकर शक्कर मिला लड्डू बना कर ढाई तोले से ५ तोले तक की मात्रा मे प्रात साय सेवन करें। शीतकाल मे ये मोदक विशेष लाभदायक हैं।

नाड़ीव्रण [नासूर] पर—इसके मूल का चूर्ण ६ माशे से १ तोला तक लेकर भैंस का दही और कोदो के भात के साथ मिलाकर सेवन करते रहने से लाभ होता है [चक्रदत्त]। कर्णस्राव पर इसकी भुसी का महीन चूर्ण कान मे डालते है।

नोट—कंगनी के चावलों के अधिक सेवन से उदरावरोध, मलबद्धता, वस्ति एव वृक्क में अश्मरी, प्लीहावृद्धि आदि विकारों की सम्भावना है। इसके हानिकर परिणामों के निवारणार्थ दूध, घृत, शर्करा और शहद देवें। इसके सत्तू से यदि हानि हो तो बबूल का गों और मस्तगी का सेवन करावें।

वेदना स्थान पर या गठिया वात पर इसे गरम कर सेकने से तथा उसका गरम लेप लगाने से लाभ होता है।

कंगु [Lycium Barbarum]

इस कंटकार्यादि कुल [Solanaceae] की वनौषधि का वर्णन आयुर्वेदीय निघण्टुओ मे नही मिलता।

इसके बहुत उचे गुल्म होते हैं। शाखायें भूरी और कुछ श्वेत रग की काटो से युक्त होती हैं।

पत्र—बर्छी जैसे, फूल गुच्छो मे तथा फल लाल रग के चमकीले होते हैं। फलो मे जो बीज होते है उन पर नारङ्गी रंग की एक पतली झिल्ली होती है।

यह बूटी पजाब, बिलोचिस्तान, सिन्ध और काठियावाड मे पाई जाती है।

इसके फल कड़वे, कामोद्दीपक, ऋतुस्राव नियामक तथा रक्तवर्धक हैं। रक्तार्श, खुजली, जलोदर एव दतपीडा मे इसका व्यवहार होता है। पत्र रस नेत्रदृष्टिवर्द्धक हैं।

इस बूटी को पञ्जाब की ओर चिरचिट्ट, अंगन, गगेर, कागे, कगु, सिन्ध मे गगरो, गगेर तथा लेटिन मे लायसियम बारबेरम कहते हैं।

कंघी (अतिबला) [Abutilon Indicum]

यह गुडूच्यादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार बला या कार्पास कुल [Malvaceae] की है।

आयुर्वेदोक्त सुप्रसिद्ध बला चतुष्टय [बला, अतिबला, महाबला और नागबला] मे से बला का खरैंटी मे, महाबला का सहदेई मे, तथा नागबला का गगेरन मे वर्णन देखिये। यहा अतिबला का विवरण दिया है।

वैसे तो इस बूटी के कई भेद और उपभेद हैं। किन्तु मुख्य भेद दो है—एक छोटी कघी व दूसरी बडी। गुणधर्म की दृष्टि से दोनो मे एक समान गुणधर्म हैं। केवल इन दोनो के पौधो मे नाम मात्र का भेद है। बडी कङ्घी के पौधे छोटी की अपेक्षा कुछ विशेष ऊचे तथा पत्र, फल, फूल आदि भी कुछ बडे आकार प्रकार के होते हैं। रूप या रङ्ग मे कोई विशेष भेद नही है।

गुल्म रूप मे दोनो के पौधे सदैव हरे भरे रहते हैं। छोटी कङ्घी का गुल्म अधिक से अधिक ४ से ८ फुट तक ऊचा होता है।

पत्ते—एकान्तर, सहतूत या गिलोय पत्र जैसे, किन्तु अधिक नुकीले, शुभ्र रोमावली युक्त एव कगूरेदार भूरापन लिये हुये हलके रग के होते हैं। पत्रवृन्त दीर्घ होता है।

फूल—शरद ऋतु मे पीले नारगी वर्ण के पाच पंखुडीयुक्त प्राय सायकाल के समय खिलने वाले होते हैं, इनके वृन्त भी दीर्घ होते हैं।

फल—फूलो के झड जाने पर बाल काढने की कङ्घी [ककई] समान समानान्तर रेखायुक्त [इसीसे इस बूटी का नाम हिन्दी मे कङ्घी पडा है] चक्राकार गोल होते है। इसमे प्राय १८-२० फाके मडलाकार होती हैं। कच्ची दशा मे पीले हरे रग के पककर सूखने पर काले वर्ण

के हो जाते हैं।

बीज—शीतकाल मे परिपक्व हो जाने पर उक्त फलो की फाको के मध्य मे कई काले रग के बीज, बला या खरैंटी के बीज जैसे, किन्तु उनसे कुछ बडे होते हैं। ये बीज छोटे, चिपटे, अग्रभाग मे बारीक होते हैं। इन बीजो मे अत्यधिक लुआब होता है जो वीर्य को बांधने वाला [पुष्टिकारक] होने से ये तथा खरैंटी [बला] बीज भी व्यवहारिक भाषा मे बीजबन्द कहलाते है।

नोट—इस छोटी कंघी की और एक अत्यन्त छोटी जाति होती है, जो जमीन पर ही लता रूप में फैली रहती है। इसका सर्वाङ्ग उक्त कंघी जैसा ही किंतु अति छोटे आकार प्रकार का होता है। फूल नीले लाल रंग के और फल गोल होते हैं। इसके सर्वाङ्ग से दुद्धी बूटी जैसा दूध निकलता है। बाल शोष पर यह विशेष लाभकारी है। खरैंटी प्रकरण में भूमि बला देखें।[1]

नाम—

सं.—अतिबला, कंकतिका, ऋष्यप्रोक्ता, भारद्वाजी, वृष्यगन्धा।

हि.—कंघी, कघई, ककही, पीली बूटी, डाबी।

म'—मुद्रिका, पेटारी, चिकणाथोरडा, कांसुली, करंडी।

बं.—झांपी, झुमका गाछ, पोटारी।

गु.—खपाट, डावली, कासकी।

अं.—कंट्री या इंडियनमेलो (Country or Indian mallow)

ले.—एब्युटिलन इंडिकम, ए एशियाटिकम (A Asiaticum), सिडा एशियाटिका (Sida Asiatica)। बडी कंघी को एब्युटिलन हिरटम (A Hirtum)।

---

[1]कंघी की ही एक जाति की वनौषधि होती है, जिसके क्षुप कंघी के क्षुप से बहुत छोटे छोटे होते हैं, इसके काण्ड, पत्र आदि पर हरिताभ पीत वर्ण के बहुत कोमल रोंए (रोम) मखमल जैसे होते हैं। इसीसे प्राय. इसे मखमली खपाट गुजराथी मे तथा अंग्रेजी मे—Indian button mallw, लेटिन में एब्युटिलान म्युटिकम (Abtulon Muticum) कहते हैं। इसके गुणधर्म सब कंघी के जैसे ही हैं।

और एक इसी की जाति विशेष का लेटिन नाम Abutilon Avicennae, तथा गुजराथी-नहानी खपाट, भोयखपाट नाम है, सस्कृत नाम जया, जयन्ती है। इसके पौधे १-२ हाथ ऊंचे, पत्र कंघी पत्र जैसे किंतु कोमल व सुहावने होते हैं। इसके भी गुणधर्म प्रायः कंघी के जैसे ही हैं।

(अतिबला) कंघी

Abutilon indicum G. Don.

फल

पुष्प

कटा पुष्प

शाख

पत्र
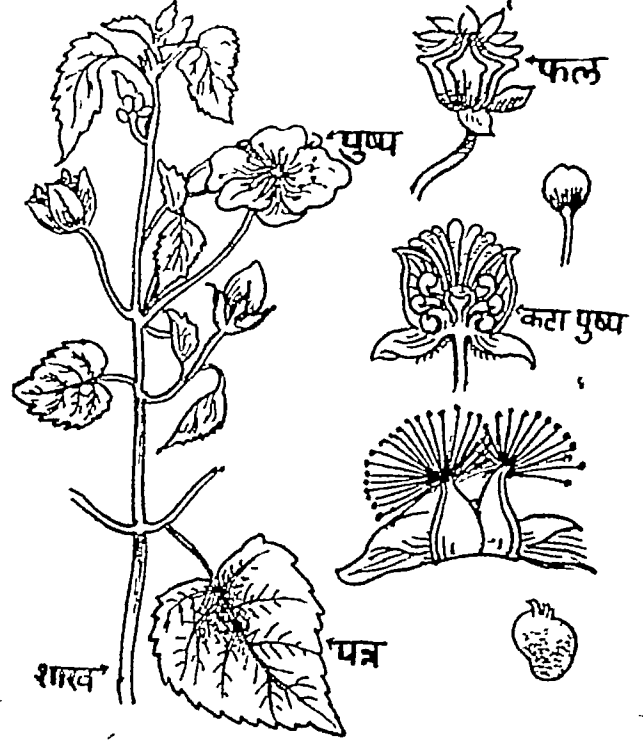
चरक और सुश्रुत के बल्य, बृंहणीय, मधुरस्कन्ध और वात सशमन गणो मे इसकी गणना की गई है।

औषधि प्रयोग मे मूल, पत्र, बीज, छाल आदि इसका सर्वाङ्ग ही लिया जाता है।

रासायनिक संघठन—

पत्र और बीज मे प्रचुर पिच्छिल द्रव्य, टेनिन, सेन्द्रिय अम्ल, कुछ, एस्पैरिगन (Asparagin) तथा क्षारीय सल्फेट, क्लोराइड, मेगनीसियम फास्फेट एवं केल्शियम पाये जाते हैं। मूल मे पिच्छिल द्रव्य छोड़कर शेष प्राय सब उक्त द्रव्य होते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

मधुर, कुछ अ श मे कटुतिक्त, विपाक मे कटु और उष्णवीर्य है। यह स्निग्ध, ग्राही, वृष्य, बल्य तथा दाह, तृषा, वमन, कृमि, वातरक्त, रक्तपित्त, ज्वर, मूत्रविकार, दूषित कफ एव वातपित्तादिनाशक और कान्तिकारक है। खरैंटी के जैसे ही इसके प्राय सब गुणधर्म हैं।

पत्र स्नेहन मृदुताकारक एव वेदनाहर तथा अर्श, फिरंग रोग, कास, कामला, व्रण, उन्माद, बालशोष, शिर शूल आदि पर उपयोगी हैं।

पत्तो को पानी मे भिगोकर मलने से जो लुआव निकलता है वह ज्वर मे शांतिकर, मूत्रनिस्सारक, छाती की पीडा पर तथा सुजाक और मूत्रनली की सूजन पर लाभकारी होता है। पत्तो का क्वाथ सुजाक पर तथा फांट पुरानी खासी पर देते हैं। वेदनायुक्त स्थान पर पत्र-क्वाथ का सेंक करते है। पित्तातिसार मे—पत्र-स्वरस १ तोला मे समभाग घृत मिला पिलाते हैं। पत्र स्वरस दत पीडा, मसूढो के विकार एव सुजाक पर लगाते हैं। कामला पर पत्र चूर्ण ७ माशे तक शहद के साथ सेवन कराते हैं। दंत शूल पर पत्र क्वाथ का गण्डूष (कुल्ले) कराते हैं। तथा इसकी टहनी की दतून कराते हैं। पत्र क्वाथ पित्तजन्य विकारो को भी दूर करता है।

(१) अर्श पर—पत्र २१ नग तथा काली मिरच १ दाना दोनो को पीसकर ७ गोली बना १-१ गोली नित्य प्रात जल के साथ लेने से वातार्श पर लाभ होता है। यदि रक्तार्श हो तो मन्द आंच पर औटाते हुए दूध को इसकी कोमल टहनी से चलाते रहने से जब दूध जम जाय तो उसे कपडे मे बाधकर लटका दें। जो पानी (दूध का तोड़) नियरे उसे बार बार पिलाने से लाभ होता है। रक्तार्श पर इसके पत्तो की शाक पकाकर खिलाते हैं।

रक्त मूत्र—पेशाब में रक्त आता हो तथा मूत्राशय मे शोथ हो तो पत्तियो का हिम मिश्री मिलाकर पिलावें।

(२) वृक्क शूल पर सिकता (मूत्र में लाल रग की तलछट जमना) के कारण वृक्क मे शूल हो तो इसके ५ तोले पत्तो को पीसकर छोटी छोटी टिकिया बनाकर ५ तोले गौघृत मे आग पर उन्हे पकावें। जब टिकिया जल जावें तब उन्हें निकाल कर फेंक दें, तथा घृत को छानकर थोड़ा थोड़ा यह घृत सुखोष्ण ही रोगी को पिला दें। इससे शीघ्र वेदना शात होती है। सिकता बाहर निकल जाती है। —आ वि कोष

(३) विद्रधि आदि व्रणो पर—विशेषत अपक्व व्रण एव शोथयुक्त ग्रथियो पर इसकी कोमल पत्तियो को महीन पीस लुगदी की टिकिया व्रण या ग्रथि पर रखकर उस पर कपडे की एक मोटी पट्टी रख शीत जल से सीचते रहने से वेदना, जलन आदि दूर होकर वह शीघ्र ही पक कर फूट जाते हैं। यह प्रयोग दिन रात मे ३-४ बार करें। प्रत्येक बार लुगदी और पट्टी बदल दें।

फूटे हुए व्रणो पर केवल कोमल पत्तो को रखकर बांधते रहने से वे शीघ्र पूरित हो जाते हैं।

(४) पित्तोन्माद और उपदश पर पत्ते ७ नग लेकर जल के साथ पीस छानकर मिश्री मिला दिन मे २ बार पिलाते हैं। कुछ दिन मे लाभ होता है।

✓(५) बच्चो के सूखा रोग पर—इसकी ताजी पत्तियो को पीसकर छोटी सी एक गोल टिकिया बालक के सिर पर तालु स्थान या ब्रह्मरध्र पर वहा के बाल निकलवा कर प्रथम गुड़ की एक छोटी टिकिया रख उस पर उक्त टिकिया को रखते हैं। फिर उस पर शुद्ध रुई का फाहा रख कपडे की पट्टी बाध देते हैं। यह क्रिया प्राय रात्रि को बालक के सोते समय की जाती है। प्रात पट्टी खोल कर देखने से मालूम होता है कि वहां गुड बिल्कुल नही है। जब तक गुड के गायब होने की क्रिया जारी रहे तब तक प्रतिदिन रात्रि मे उक्त प्रयोग किया जाता है। जब गुड उसमे दिखाई देने लगे तब भी इस प्रयोग २-३ दिन और कर फिर बन्द कर देते है। बालक का रोग दूर होकर वह हृष्ट पुष्ट होने लग जाता है। यदि इस प्रयोग को प्रारम्भ करने पर गुड उसमे जैसा का तैसा ही रहे तो समझ लें कि यह सूखा रोग न होकर कोई अन्य ही विकार है। ध्यान रहे कि बालक को प्राय धूप मे लिटाकर उसके शरीर पर धीरे धीरे 'काड लिव्हर आइल' की मालिश करते रहने से और भी अधिक लाभ होता है। (धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगांक मे श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र' विद्या वाचस्पति के प्रयोग से)।

✓(६) फिरङ्ग रोग मे—बडी कघी के पत्र दो तोले, जल मे पीस छानकर २१ तक पिलाते हैं।

✓(७) पागल कुत्ते के विष पर—पत्र स्वरस लगभग ७-८ तोले तक कुछ दिन पिलाते हैं।

फल और बीज—इसका कच्चा फल वातकारक और पका फल प्रतिश्यायनाशक है।

बीज—स्निग्ध, मूत्रल, मृदुरेचक, वाजीकरण, सुजाक, वस्तिप्रदाह तथा शुक्रप्रमेह मे लाभकारी, अर्श वेदना निवारक और अधिक मात्रा मे लेने से मलावरोधक है।

अर्श की वेदना तथा रक्तस्राव निवारणार्थ बीजो के चूर्ण को विना चवाये जल के साथ निगल जाना चाहिये। शुष्क कास पर—वीज और अडूसा पत्र का क्वाथ सेवन कराते है। वाजीकरणार्थ—बीज चूर्ण का हलुवा या पाक वनाकर सेवन करने से कामोद्दीपन होता है। शोथ पर—बीजो को पानी मे पीस गरम कर लेप करते हैं। खासी मे—बीज पीसकर शहद के साथ चटाते हैं, इससे कफ सरलता से निकल जाता है। बीजो का चूर्ण कोष्ठ को मृदु करने के लिये तथा कफ निस्सारणार्थ देते है। शुक्र की निर्बलता पर—बीज चूर्ण दूध के साथ प्रात साय लेते रहने से लाभ होता है। बच्चो की गुदा मे होने वाले चुन्ने (कृमि) पर बीजो की धुनी गुदा मे दी जाती हैं।

√मूल और छाल—वातहर, रसायन, मूत्रल, शोथ, कुष्ठ ज्वरोष्मा, रक्तप्रदर आदि पर लाभकारी है।

छाल—कुछ कडवी, सकोचक, ग्राही, मूत्रल, शैत्यजनक, मलावरोध, पूयमेह (सुजाक), मूत्रकृच्छ्र आदि नाशक है।

√प्रमेह मे मूत्र साफ होने के लिये छाल चूर्ण दूध व मिश्री के साथ देते हैं। इसकी जड का फाट ज्वर की ऊष्णता को, मूत्रावरोध तथा रक्तमूत्रता को दूर करता है। कुष्ठ पर भी यह फाट लाभकारी है। मूत्रकृच्छ्र या जलन सहित वार वार पेशाव होती हो तो जड के चूर्ण का हिम वनाकर ३-३ घण्टे वाद पिलावें। अतिसार पर—छाल का क्वाथ सेवन कराते है। दन्तमूल तथा मसूढो के शैथिल्य पर छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। कर्ण शोथ तथा स्तन शोथ पर—जड को पानी मे पीस कर गर्मकर प्रलेप करते हैं। रक्तप्रदर पर—मूल का चूर्ण शर्करा व मधु के साथ सेवन कराते हैं। गरमी के चट्टो पर—छाल के साथ इसके पुराने पत्तो को पीसकर अष्टमाश क्वाथ तैयार कर उससे चट्टो को वार वार धोते रहने से लाभ होता है। ज्वर पर—जड़ के साथ थोड़ी सोठ मिला क्वाथ सिद्ध कर पिलाने से शीत, कम्प एव दाहयुक्त ज्वर २-३ दिनो मे दूर हो जाता है। गर्भस्राव के निवारणार्थ—कन्या के हाथ मे काते हुये सूत से इसकी जड को गर्भवती के कमर मे वाधते हैं।

मात्रा—क्वाथ—४ से ६ तोले तक, मूल का चूर्ण ६ मासे से १ तोला तक, बीज ४ से ८ माशे तक।

(१) क्षार योग—फलो के परिपक्व हो जाने पर इसके समग्र क्षुप को मूलसहित उखाड कर छाया शुष्क कर जला डाले। राख को पानी मे घोलकर ३ दिन तक रख दें। प्रतिदिन लकडी से उसे कई वार हिला दिया करें। पश्चात् ऊपर का निथरा हुआ पानी लेकर पकावें। पानी के जल जाने पर क्षार को एकत्र कर पीसकर सुरक्षित रक्खें।

यह क्षार मूत्रकर और अश्मरीनाशक है। श्वेत जीरा, कुलथी ३-३ माशे तथा सोफ ६ माशे, इनको जल मे पीस छानकर इसके साथ क्षार की मात्रा ४ रत्ती प्रात साय इसी प्रकार सेवन करने से कुछ दिन मे शीघ्र ही
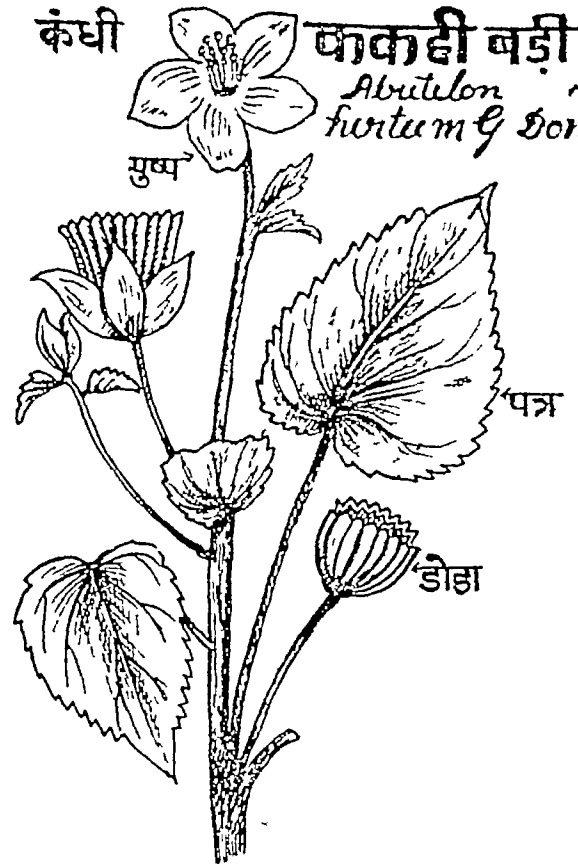
अश्मरी खंड खंड होकर निकल जाती है। सिकता तो शीघ्र ही नष्ट होती है। कफज कास एव श्वास पर क्षार ४ रत्ती की मात्रा मे शहद से चटावें। रक्तार्श पर यह क्षार १ भाग और शुद्ध रसांजन २ भाग एकत्र खरल कर चना जैसी गोली बना २-२ गोली प्रात साय खिलावे। अर्श का खून बन्द हो जाता है तथा इसे दीर्घ-काल तक सेवन करते रहने से धीरे धीरे अर्शांकुर विलीन हो जाते हैं। —आ वि कोष

(२) रजत भस्म—शुद्ध चादी के महीन पत्रों को एक पाद कड्डी पत्र की लुगदी मे रख ऊपर से कपरौटी कर कई वार उपलो की आच मे फूंक देने से जो भस्म होगी, उसके सेवन से हृदय एव यकृत की दुर्बलता दूर होती है, ऊष्मा की शान्ति होती है। मात्रा—अर्ध रत्ती सेव के मुरब्बे के साथ हृदय की दुर्बलता पर तथा उतनी ही मात्रा आमले के मुरब्बे के साथ यकृत दौर्बल्य पर दी जाती है। —आ वि कोष

(३) सीसक भस्म—२ तोले सीसा को कढ़ाई मे गलाकर उसमे कड्डी की लकडी फिराते रहने से सीसा धीरे धीरे राख हो जायगा। इसे कड्डी पत्र स्वरस से ४ प्रहर खरल कर टिकिया बना २ सेर उपलो की अग्नि देवें। दो तीन आच मे सुनहल रङ्ग की सुन्दर भस्म होगी। पीसकर रखलें।

मात्रा—१ रत्ती उपर्युक्त अनुपान से बहुमूत्र, मधु-मेह तथा मूत्र प्रणाली के अन्य रोगो मे ,एव राजयक्ष्मा में भी लाभकारी है। —आ. वि. कोष

(४) सगयहूद भस्म—इसके पत्र अर्द्ध सेर लेकर ४ सेर जल क्वाथ करें, आध सेर जल शेष रहने पर उसे खूब मलकर छान लें। फिर सगयहूद २ तोला लेकर थोडा थोडा यह क्वाथ डालते हुये खरल करें। क्वाथ समाप्त हो जाने पर टिकिया बना छायाशुष्क कर इसके १ पाव पत्तो की लुगदी मे रख ऊपर से कपड मिट्टी कर ५ सेर उपलो की आग देवें। टिकिया भस्म होकर खिल पडेगी।

मूत्र सग अश्मरी एव सिकता के लिये परमोपकारी है। मात्रा—२ रत्ती भस्म खाकर उपर से २ तोला गोघृत और ३ तोला मिश्री मिला १ पाव गरम गरम दूध पीने मे तत्काल लाभ होता है। —आ. वि. कोष

कंजुरा [*COMMELINA OBLIQUA*]

इस मूसली कुल (Commelinaceae) की वनौ-षधि के क्षुप ऊचे तथा पिंड भाग मोटा होता है। पत्ते बर्च्छी जैसे लम्बे, तीक्ष्ण नोक वाले, फूल नीले रंग के, फलिया लम्बी तथा बीज चिकने, कुछ चमकीले, श्याम वर्ण के होते हैं। यह भारत की अपेक्षा सीलोन, मलाया द्वीप मे विशेष पैदा होता है।

इसे हिन्दी मे—कजुरा, कना, जटाकचूर, काना, कोनी आदि; बगला मे—जात कचुरा, जात कशीरा और लेटिन मे—कामेलिना आब्लिका कहते हैं।

यह सिर मे चक्कर आना, पित्तविकार तथा ज्वर आदि मे उपयोगी है।

कंभल [*ACERPITUM*]

इस अरिष्टादि कुल (Sapindaceae) की वनौषधि के वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं। इसकी छाल हलके भूरे रग की, चिकनी, पत्र कगूरेदार किनारे कटे हुए एव नुकीले, फूल हरे नीले वर्ण के, और फल लम्बे तथा खूब चिकने होते हैं। यह हिमालय की पहाडी पर विशेष पायी जाती है।

इसे हिन्दी में—कभल, कांचली, काकरु, कभर, गदापापरी, पोटली आदि तथा लेटिन मे—एकर पिक्टम कहते हैं।

इसकी छाल—संकोचक है। तथा पत्ते प्रदाहजनक हैं। शरीर मे पत्तो के लग जाने से जलन पडती और फफोले उठ आते हैं।

कंटकचू (*LASIA SPINOSA*)

इस सूरणादि कुल (Aracecc) की बूटी की जडें जमीन के भीतर बहुत दूर तक फैलने वाली; पत्ते बर्च्छी के आकार के फूल-हलके गुलाबी रग के फल मोटे और लम्बे होते है।

भारत के हिमालय तटवर्ती प्रदेशो मे तथा वगाल, वर्मा, आसाम और दक्षिण मे सीलोन, मलाया, एव चीन मे यह अधिक पायी जाती है।

इसे वगला व हिन्दी मे—कटकचू, तथा लेटिन मे लेसिया स्पिनोसा, नेसिया हेटरोफैला (Lasia Heterophylla) कहते हैं।

इसके मूल, कन्द और पत्ते गले के रोगो पर तथा अर्श पर उपयोगी माने जाते हैं।

कंदमूल (KANDMOOL)

एक लता जिसकी जड मे से कन्द निकलता है और खाया जाता है। इसकी वेल वर्षा के प्रारभ में पुराने कन्द से विन्ध्यादि पर्वतो पर निकलती है। प्रारभ मे निकलने वाला तना पत्रशून्य सूक्ष्म रोमावृत्त तावडे रग का होता है। इसे वहा के लोग कन्द मूल ही कहते है। इसका विशेष विवरण अन्य ग्रन्थो मे नही मिलता। यहा आयुर्वेदीय विश्वकोष से ही इसका सक्षिप्त वर्णन दिया है।

इसके तने पर नन्हे नन्हे कोमल काटे होते हैं। इसकी पत्तियों का प्रारभिक भाग सकुचित व आगे क्रमश चौडा, अडाकार, छोर पर नुकीला, स्वाद मे फीकी किंचित् लुआबदार होती हैं। ये पत्तिया सेमल या सप्तपर्ण से मिलती जुलती होती हैं। कन्द ऊपर से श्याम वर्ण का भूरा होता है। इसे उवाल कर छिलका उतार कर आलू की तरह तरकारी वनाकर खाते हैं। आश्विन मास मे इसके पत्रमूल मे गोल छोटे छोटे फल लगते हैं। ये भी उवालकर खाये जाते हैं।

इसी तरह एक कन्द मूल और होता है। माला लोग वागो मे इसकी डालियो के टुकडे, जमीन में गाड़ देते हैं जिनसे पौधे तैयार हो जाते हैं। ये दीखने मे सेमल के नूतन वृक्ष की तरह जान पड़ते हैं। लगाने से २-३ वर्ष के वाद खोदने से इसकी जड मे से वड़े लम्बे कन्द निकलते हैं जिन्हे भून या उवालकर शकरकद की तरह खाते हैं। स्वाद मे मीठे होते हैं। इसके प्रत्येक दड मे प्राय ७ पत्तिया लगती हैं।

गुण प्रयोग—यह पुष्टि एव शुक्रजनक, वृंहण एवं शरीर पोषणकर्त्ता है। ऊपर के पर्वतीय कन्दमूल से यह गुणो में न्यून होता है।

काई (Vallisneria Spiralis)

यह शैवाल कुल (Algae) की क्षुद्र क्षुपरूप वूटी पुराने स्थिर जलाशयों (तल्लियों, पोखर, बावडी आदि) मे जल के ऊपर छाई हुई प्राय सर्वत्र पायी जाती है। यह सघन हरे रग की पानी के ऊपर छा जाने से पानी एकदम ढ़क जाता है तथा वह नीलाभ हरित वर्ण का हो जाता है। अत इसे 'जल नीली' कहते हैं। यह काई भारत मे देशी खांड, चीनी के साफ करने के काम मे वहुत आती है।

कोई जलकुंभी (वारिपर्णी) को, जो काई जैसे ही पानी पर फैली हुई होती है, काई मानते हैं। किन्तु यह जलकुभी से कुछ भिन्न है। जलकुभी का प्रकरण देखिये। हा, काई के अभाव मे जलकुभी ली जाती है।

काई कई प्रकार की होती है। एक तो वही सर्वसाधारण पुराने सग्रहीत मामूली जलाशयो मे होने वाली जिसका वर्णन यहा किया जा रहा है। दूसरी वह होती है जिसके ततु परस्पर मिले हुए डोरी की तरह नदी या नहरो के किनारे फैली हुए होती है। इसे लेटिन मे सेराटोफायलम सवमर्सम (Serratophylum Submersum) कहते हैं। तीसरी वह होती है जिसके तन्तु हरित पीत वर्ण के आपस मे दृढता से गठे हुए प्राय सरवरो या वृहत् जलाशयो के किनारे पाये जाते हैं। इसे वम्वई की ओर चिनाई घास, दर्यायी घास या पाची तथा लेटिन मे—ग्रैसिलेरिया लिचिनायडेस (Gracilaria Lichenoides) कहते हैं। इसका विशेष विवरण 'चिनाई घास' के प्रकरण में देखिये। एक वह काई होती है जो आर्द्र पत्थर या चट्टानो पर पैदा होती है। गुणधर्म प्राय.

सबके एक ही समान हैं।

नाम—

सं०—शैवाल, शैवल, जलनीली
हिन्दी—काई, सेवार, सिंवार, कांजी,
बंगाली—रोफोश्राला, रोहल। म०—शैवाल,
गु०—शेवाल, लील, शोबाल। अंग्रेजी—मास (Moss)
ले०—हेलिस्नेरिया स्पिरालिस, सेरॉटोफायलम सब-
मर्सम

गुणधर्म और प्रयोग—

यह लघु, स्निग्ध, कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक मे कटु और शीतवीर्य है। तथा पित्ताशामक, दाहशमन, रक्त-स्तभन, ग्राही (कब्ज करने वाली) तृष्णाहर एव ज्वरघ्न है। तृष्णाविकार, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, पित्त ज्वर और दाह पर इसका प्रयोग किया जाता है।

मात्रा—स्वरस १-२ तोले, चूर्ण ५-७ मासे पित्तज शोथ विसर्प आदि में दाहप्रशमनार्थ इसका प्रलेप करते हैं।

(१) चोट आदि से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने के लिये विशेषत आर्द्र पत्थर या चट्टानो पर जमी हुई काई को पीस कर पतला लेप लगाते हैं। इसके अभाव में साधारण काई को पीस कर उसके कल्क मे जौ का आटे मिला प्लास्टर जैसा गाढा लेप लगायें।

(२) वीर्यस्राव और प्रमेह पर—इसे मिट्टी के सरा-वले मे भर कर आग पर चढ़ाकर अथवा सरावसपुट कर गजपुट मे भस्म करलें। फिर इस भस्म के समभाग मिश्री मिला महीन चूर्ण कर रक्खें। मात्रा—३-८ मासे तक सुखोष्ण गोदुग्ध के साथ सेवन करावें।

(३) गले मे जौंक चिपट जाने पर इसे पीस कर जैतुन तैल मे गरम कर पिलाते हैं, तथा ऊपर गरम पानी पिलाकर वमन कराते हैं।

(४) अतिसार पर या बच्चो के हरे पीले दस्तो पर—इसे सुखाकर चूर्ण बना सेवन कराते हैं।

(५) सुजाक पर व्रण पूर्णार्थ—गीली काई को वस्त्र मे निचोड़कर उसका स्वरस मूत्रेन्द्रिय मे टपकाते हैं।

नोट—कहा जाता है कि इसके चूर्ण को नित्य ३-३ माशे कई दिनों तक लेते रहने से स्त्री बन्ध्या हो जाती है, उसे फिर सन्तान नहीं होती।

कफ प्रकृति वालों के लिये यह अहितकर है। इसके अहितकर परिणामों के निवारणार्थ जौ के आटे में काली-मिर्च मिला रोटी पकाकर खिलावें।

एक इसी शेवाल जाति की वनस्पति होती है जो समुद्र में भारतवर्ष के खारे पानी की झीलों में पाई जाती हैं, इसे हिन्दी में गलपार या गिलूर का पत्ता, अंग्रेजी में Sweet Tangle तथा लेटिन में Laminaria Sacchrrine, L Digitata आदि कहते हैं। धूप में सुखाने से इसमें से श्वेत शर्करा सार निकलता है। गलगण्ड, कण्ठमाला, उपदंश आदि पर इसका शीत निर्यास दिया जाता है या इसके शर्बत को बिहीदाना के क्वाथ में मिलाकर देते हैं।

चीन देश की नदियों में पैदा होने वाली यह काई पंजाब और सिंधु के बाजारों में बहुत मिलती है।

काकजंघा नं. १ (Peristrophe Bicalyculata)

यह गुडूच्यादि वर्ग की बनौषधि नैसर्गिक वर्गानुसार वासादि कुल (Acanthaceae) की है।

इस बनौषधि के विषय मे बहुत कुछ गडबडी पाई जाती है। आयुर्वेदीय ग्रन्थ के टीकाकारो ने काक शब्द से प्रारम्भ होने वाले विशेषत काकजङ्घा, काकनासा, और काकमाची इन नामो की टीका मे बहुत सदिग्धता कर दी है। कई स्थानो पर एक को दूसरे का पर्याय-वाची बतलाया है। वस्तुत ये तीनो भिन्न भिन्न हैं।

काकजङ्घा नाम से अभिहित होने वाली बूटिया भी मुख्यत दो प्रकार की हैं। प्रस्तुत् प्रकरण में तो जिसे वास्तव मे काकजङ्घा कहना चाहिये, उसीका वर्णन किया जाता है। आगे काकजघा न २ का वर्णन होगा। और एक बूटी जिसे हिन्दी में चिरईगोडा, मिजुर गोरवा आदि कहते हैं, उसे भी कई लोग काकजङ्घा ही मानते हैं। इसका लेटिन नाम Vitex Peduncularis है। इसका वर्णन चिरईगोडा के प्रकरण मे देखिये।

प्रस्तुत् प्रसग की काकजङ्घा के वर्षायु क्षुप ३ से ६ फीट तक ऊचे होते है। इनकी शाखायें एव काण्ड प्रस-रणशील, षटकोणयुक्त, खुरदरे, रोमश, सुतली से अधिक मोटी तथा गाठोंदार होती है। काण्ड या डन्डियो की

सधियां फूली हुई सी (गाठदार) अर्थात् डण्डी जोड पर मोटी तथा आगे को पतली होती है। थोडी थोडी दूर पर काक की जङ्घा के सदृश ये गाठें तिरछी होती हैं। इसलिये यह बूटी काकजघा कहाती है। डडियो का रग हरा, स्वाद कड्वा तथा गन्ध उग्र होता है। डडिया पुरानी हो जाने पर उनकी गाठो मे छोटे छोटे कीडे पड़ जाते हैं। ये कीडे भी औषधि कार्य मे (विशेपत बच्चो के डिब्बा रोग पर) काम आते हैं।

पत्र—अपामार्ग के पत्तो जैसे लम्ब गोल, समवर्त्ती १ से ४ इच लम्वे, २ इच तक चौडे, निम्न भाग मे विशेप चौडे, पतले, गहरे हरे रग के एव कुछ रोमश होते हैं।

पुष्प—छोटे छोटे जामुनी या गुलावी रग के निर्गन्ध हैं। पुष्प धारक् शाखा मे अनेक शाखाएँ फूटती हैं। अन्तिम छोटी छोटी शाखाओ पर केवल २-२ पुष्प होते हैं, जिनमे प्राय एक पुष्प अर्द्धविकसित होता है। पुष्प के डठल के नीचे १-१ सूक्ष्म हरित वर्ण के पुष्प पत्र होते हैं।

फली—बेंगनी रग की, नोकदार, मध्य मे चिपटी तथा नीचे सकरी सूक्ष्म रोमावली द्वारा आवेष्ठित होती है। प्रत्येक फली मे प्राय चार वीज चपटे गोल कत्थई रङ्ग के अन्दर से श्वेत होते हैं।

मूल—कडी, भूरे रङ्ग की, सुतली से कुछ मोटी, प्राय. १० इच तक लम्वी होती है।

छाल—पतली, उग्रगन्धवाली तथा स्वाद मे कड्वी होती है। इसका क्षुप सूखने पर काला पड जाता है। इसके क्षुप वहुत कम पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, राजपूताना तथा गुजराथ की ओर इसे ही काकजघा माना जाता है।

नोट—चरक मे काकजघा का उल्लेख नहीं मिलता, सुश्रुत के केवल चिकित्सा स्थान १९ में श्लीपद रोग के पानीय क्षार योग में इसका नाम आया है।

ध्यान रहे, इस बूटी के हिंदी नामों में आतरीलाल या इत्रेलाल भ्रमपूर्ण है। वास्तव मे यह आन्तरीलाल नहीं है। देखिये वनौषधि विशेपाक भाग १ में पृष्ठ २३९। इस काकजङ्घा को घाटी पित्तपापडा कहा जा सकता है।

नाम—

संस्कृत—काकजङ्घा, लोमशा, मसी।

हिन्दी—काकजङ्घा, मसी, चकणोनी, काला अन्धीझाड़ा। बगला—नसभांगा, नागाकागा।

मराठी—कांग, घाटीपित्तपापड़ा, रान किरायत।

गुजराथी—अधेडी, काठि, काली या लाम्बी अधेड़ी।

लेटिन—पेरिस्ट्रोफी बायकली कुलाटा।

गुणधर्म और प्रयोग—

कटु, कपाय, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, ज्वरघ्न, विपहर, कीटाणुनाशक, व्रणरोपण, रक्तविकार, काम, कुष्ठ, कडू, अजीर्ण, रक्तपित्त एव वाशिर्य आदि नाशक है।

कर्णकृमि पर इसके पत्र रस को तैल मे पकाकर डालते है। दाद, खुजली पर—इसके पचाग की भस्म कड्वे तैल मे मिलाकर लगाते हैं। श्वेतप्रदर मे इसकी जड़ के स्वरस में लोध्र चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन कराते हैं। शरीर पुष्टि के लिये पुष्य नक्षत्र मे जड सहित
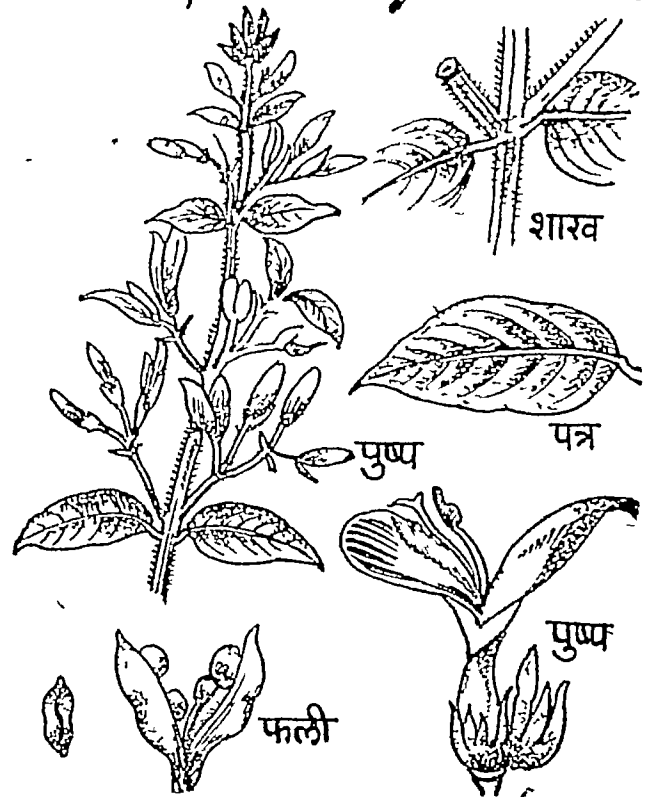
उखाड़ी हुई काकजघा को शुष्क करके चूर्ण कर उसमे असगध चूर्ण, मिश्री और घृत मिला डेढ़ तोला की मात्रा मे सेवन कराते हैं।

(१) कर्णनाद और बाधिर्य (बहिरापन) पर—इसके पत्र रस को कुछ दिन तक कान मे दिन में दो बार डालते रहें। उग्र औषधियो के सेवन से या किसी विष प्रकोप से होने वाला कर्णनाद तथा बधिरता एव कान मे किसी जन्तु के दश से होने वाली जलन दूर हो जाती है।

(२) व्रण तथा जख्म पर—इसके पचाग की राख को धोये हुये घी, तैल या वेसलीन मे मिलाकर लगाते रहने से व्रण का शोधन होकर रोपण भी हो जाता है। इस मलहम की पट्टी घोड़े और वैल के कन्धे पर भी व्रण होने पर लगायी जाती है। अथवा—

इसके पचाग का रस १ सेर तथा तिल तैल २० तोले मिला मदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर नीचे उतार कर छान लेवें। फिर उसमे मोम और सफेदा ५-५ तोला मिलाकर मलहम बना लें। इसकी पट्टी लगाते रहने से व्रण शीघ्र भर जाता है। चाकू आदि लगाने से हुई जख्म पर इस मलहम के लगाने या इसके पत्तो की पुल्टिस बाधने से घाव भर जाता है। गहरा घाव भी ३ दिन मे भर जाता है।

—गावो मे औषधरत्न

(३) कण्ठप्रदाह तथा प्रसवकष्ट पर—इसकी मूल ६ माशे चबाकर रस निगल लेवें। इस प्रकार प्रात साय करने पर उष्णताजन्य कण्ठप्रद ह तथा अधिक बोलने से या गरम गरम पित्त की वान्ति से उत्पन्न कण्ठ की कर्कशता दूर हो जाती है।

प्रसव कष्ट पर—प्रसव के समय स्त्री को कष्ट हो रहा हो, शीघ्र प्रसव न हो तो इसकी मूल को विधिवत् ला उसकी कमर मे बाधने से तुरन्त प्रसव होजाता है।

—गावो मे औषधरत्न

(४) बच्चो के डिब्बारोग तथा कुत्ते के विष पर—डिब्बा रोग पर—इसकी गाठ गाठ में जो छोटा कीडा होता है उसे गुड मे मिलाकर डब्बा से बीमार बच्चे को देने से रोग दूर होता है। (इस कीडे को दूध मे घिसकर भी पिलाते हैं)

—लेखक

कुत्ते के विष पर—कुत्ते के काटे पर भी यह अति लाभकारी है। यदि उसी समय इस बूटी के ताजे पत्ते मिलें तो काम लावें। यदि पत्ते छाया मे सुखाकर रक्खे हो तो वे भी काम देंगे। चूर्ण कर खिलाना चाहिये।

मात्रा—शुष्क पत्र चूर्ण ६ माशे तथा ताजा १ तोला है। गुड मे मिलाकर खिलाते जावें। कडुवा नही है। धीरे धीरे जितनी देर मे समाप्त हो जावे समाप्त करें। ३ दिन ऐसा करने से उसका विष दूर हो जावेगा। यदि ८-१० दिन या महीना भर भी निकल गया हो तो ७ दिन खिलाना चहिये। यदि समय ज्यादा हो गया है और विष के लक्षण दिखाई पड़ते हो तो फिर दोनो समय औषधि कम से कम महीने भर सेवन करानी चाहिये।

—श्री ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य, देहरादून।

काकजंघा नं. २ (Leea Hirta)

यह द्राक्षादि कुल (Vitaceae) की है। इसे बगाल की ओर काकजघा कहते हैं।

इसके लम्बे लम्बे क्षुप ४ से १० फीट ऊचे होते हैं। इस सदा हरित पत्रयुक्त क्षुप का नूतन कोमल भाग कुछ रोमश एव खुरदरा होता है। इसकी शाखाऐ भी ठीक काकजघा न १ के सदृश ग्रन्थियुक्त ऐंठी हुई कर्कश एव काक की जघा के समान होने से इसका भी वही नामकरण हो गया है।

पत्ते—कगूरेदार किनारीयुक्त, अग्रभाग मे नुकीले, ४-१२ इच लम्बे तथा २-४ इच चौडे, ऊपरी भाग खुरदरा एव निम्न भाग मृदुरोमशयुक्त होते हैं।

पुष्प—श्वेत, कुछ बडे आकार के, छोटी छोटी रोमयुक्त मजरियो मे लगते हैं। पुष्प वृन्त बहुत छोटा होता है।

फल—कुछ दबा हुआ सा, गोल मटर जैसा ३-४ इच व्यास का २ से ६ खड वाला कच्ची दशा मे लाल

काकजंघा नं. २
Leea aequata Wall.
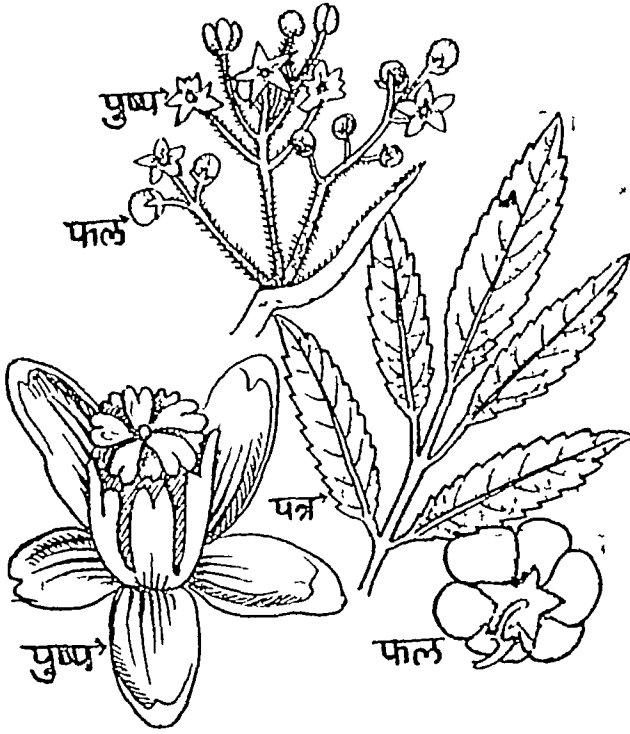
तथा पकने पर काला पड जाता है।

यह बूटी मध्य व पूर्व बगाल, हिमालय के तटवर्ती प्रदेश, सिक्किम, सिलहट, आसाम, ओरिसा तथा बिहार आदि प्रदेशो के जङ्गलो एव विशेषत आर्द्र या जल समीपवर्ती भूमि मे पाई जाती है। अत इसे सस्कृत मे नदीकान्ता कहते हैं।

नाम—

सं —काकजघा, नदीकाता, लोमशा, पारावतवदी (इसके पत्र रोमिल या दो भागो मे विभक्त से होते हैं, अत कबूतर जैसे पद वाली यह नाम दिया गया है)।

हि.—काकजंघा, मसी, चकगोनी।

ब.—केडया टुंटी, काढपाठेंगा, काटागुरकादर्ली।

गु.—अघाड़ी, थोड़ी। म.—कांग।

ले.—लीआ हिर्टा, लीआ एक्वेटा (Leea Acquata)

गुण धर्म—

यह स्नेहन और मग्राहक है। वातनाडिकाओ के प्रदाह मे तथा त्वचा शून्यता, अग्निमाद्य, क्षय जन्य व्रण पित्तजज्वर, खुजली और कुष्ठ पर यह प्रयुक्त होती है।

मात्रा—मूल तथा पत्रादि चूर्ण १-२ माशे, क्वाथ ५ से १० तोले।

पारद और रस कपूर के विषय पर—इसके रस मे कालीमिरच चूर्ण मिला पिलाते हैं। श्वेत प्रदर पर इसकी जड को चावलो के पानी के साथ पीसकर पिलावें।

गठिया (आमवात) पर इसके पचाङ्ग के रस को मदाग्नि पर पका कर गाढा हो जाने पर धूप मे रखकर कुछ शुष्क होने पर गोलिया बना रक्खें। इसे पानी मे घोल कर गठिया पर प्रलेप करें।

ताम्र कुष्ठ पर—जिसमे समस्त शरीर तावे जैसा लाल हो जाता है। इसका स्वरस ३ तोले से प्रारम्भ कर १ पाव तक पिलावें, तथा शरीर पर कटु तुम्बी के बीजो के कल्क की मालिश करें। (यूनानी चिकित्सा)

व्रणादि पर—पत्तो को जलाकर घृत या तैल मे मिला तैल मिला लेप करते हैं। अनिद्रा पर इसकी जड मस्तिष्क पर बाधते हैं। प्लीहा पर—इसके क्वाथ मे सेंधा नमक और इमली का गूदा मिला पिलाते हैं।

काकड़ासिंगी नं. १ [Pistacia Integerrima]

यह हरितक्यादिवर्ग की वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार आम्र या बाताम कुल (Anacardiaceae) की है।

इस काकड नामक वृक्ष के पत्र, पत्रडठल तथा टहनियो पर एक प्रकार के लम्बे आडे टेढे सीग, जैसे शृङ्गाकार कोष (Galls) पाये जाते है। ये एक प्रकार के कृमियो (Aphis) के घर हैं। इन्ही कृमिगृह या कोषो को काकडासिगी कहते हैं। ये विभिन्न शृगाकार ३-६ इच लम्बे, १ इच चौडे एव पोले होते हैं। इनका पृष्ठ भाग बादामी, धूसर रग का पतला, झालरदार दिखाई देता है। भीतरी भाग लाल रग का एवं सूक्ष्म रज कणो से आच्छादित या श्वेत जाले के समान होता है। ये जाले या कण उन कीडो का मल या मृतदेह माना जाता है। इसका

चूर्ण स्वाद मे कुछ कड्वा, अधिक कसैला तथा तारपीन तैल जैसा गधवाला होता है।

उक्त प्रकार के शृ गवत् कृमिगृह समाक या होलारा नामक (Rhus Succ^r^dena) वृक्ष पर भी देखे जाते हैं। इन्हे भी काकडासिगी ही कहते हैं। गुणधर्म एव आकार प्रकार मे दोनो प्राय एक समान हैं। इसका वर्णन आगे काकडासिगी न २ के प्रकरण मे देखिये।

इन वृक्षो के अतिरिक्त हरीतकी आदि के वृक्षो पर भी ये कृमि-कोप पाये जाते हैं, तथा काकडासिगी के नाम से वाजारो मे विकते हैं।

आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इस प्रकार के कृमि कोषो का कोई उल्लेख नही मिलता। किंतु खासी आदि कफजन्य विकारो पर उसके प्रचुर प्रयोग दिये गये हैं। चरक और सुश्रुत के कासहर, हिक्का तथा काकोल्यादि गणो मे इसकी गणना की गई है।

प्रस्तुत प्रसग की काकडासिगी के वृक्ष २५ से ४० फीट या इससे भी ऊ चे-मध्यमाकार के होते हैं। छाल धूसर वर्ण की, पत्र इसके छोटे पत्र सयुक्त, छोटे वृन्तयुक्त, भालाकार, लम्वी नोक वाले, सरल धार युक्त एव वडे पत्ते ६ से १० इ च तक लम्वे, युग्म या अयुग्म पक्षाकार प्राय शाखाओ के अग्रभाग पर होते है। नवीन पत्र (या कोपल) लाल रग के होते है। पुष्प, छोटे छोटे पीत हरित वर्ण के पखुडिया रहित होते हैं। फल छोटे गोल, चपटे पतले, सूखे, झुर्रीदार, चिकने, पकने पर धूसर वर्ण के होजाते हैं।

ये वृक्ष हिमालय के निम्न तटवर्ती उत्तर पश्चिम पहाडियो पर तथा पजाव, सीमाप्रात, कुमायू, नेपाल आसाम और वगाल मे भी पाये जाते हैं।

नाम–

सं – शृंगी, कर्कटशृंगी, कर्कटाख्या, कुलीर विषाणिक (केकडे क शृंग की तरह), अजशृंगी।
हि.–काकडासिंगी, काकडा, कक्कर।
म.–काकाडाशिंगी, काकडा।
वं –कांकरा शृंगी, काकढ। गु –काकडा।
अं –गाल्स (Galls), क्रयाव्सक्लां (Crabsclaw)।
ले,–पिस्टासिया इ टेजेरिमा।

काकडाशृंगी नं. १

Pistacia integerrima Stewart.
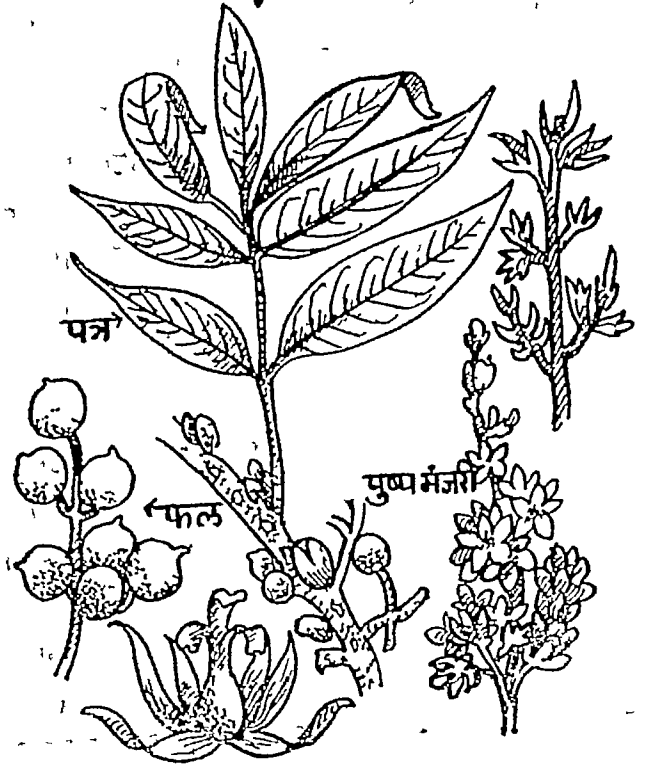
रासायनिक संघठन–

इसमे टेनिन ६० प्रतिशत, एक पीताभ हरिद्रावर्ण, तारपीन सदृश गन्धयुक्त उडनशील तैल ३ २१ प्रतिशत, गोद ५ प्रतिशत तथा स्फटिक सदृश हायड्रोकार्बन (Crystalline hydro-carbon) ३-४ प्रतिशत इत्यादि द्रव्य पाये जाते है।

औषधि प्रयोगार्थ–इसके शृङ्गाकार कोषो का ही उपयोग होता है। मात्रा–चूर्ण ६ रत्ती से २ माशे तक।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, विपाक मे कटु, उष्ण-वीर्य, कफवातशामक, कटुपौष्टिक, शोथहर, ग्राही, कफघ्न हिक्का निग्रहण, कफनि सारक, वातानुलोमन, दीपन, रक्त शोधक तथा ऊर्ध्ववात, तृष्णा, अरुचि, वमन नाशक है।

इसके उडनशील तैल के कारण यह तमक श्वास कास, श्वानलिका शोथ एव राजयक्ष्मा पर उत्तम कार्य

करता है। तथा इसमे टेनिन (कषायाम्ल) की अधिकता होने से यह आमाशय प्रकोपजन्य वमन, हिक्का, आमातिसार, जीर्णातिसार एव उपजिह्विकावृद्धि से उत्पन्न कास आदि मे उत्तम लाभदायक है। यह श्वासनलिका की नवीन या पुरानी सूजन को एव तज्जन्य खासी को भी दूर करती है। इन सब अवस्थाओ मे इसे तदनुरूप औषधियो के साथ दिया जाता है। यह वातकफ ज्वर का तथा गर्भाशय के शोथ और गर्भस्राव का भी निवारण करती, बालको के दन्तोद्भवजन्य उपद्रवो पर हितकारी है। इसके प्रयोग से सचित कफ निकल जाता है, तथा नूतन की उत्पत्ति नही हो पाती। श्लेष्मल कला को बल प्राप्त होता है। गलशोथ तथा काकलक वृद्धि या टासिल मे भी यह उत्तम लाभकारी है।

शोथ पर इसका लेप किया जाता है। मसूढ़ो से रक्तस्राव होने पर इसके क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। व्रणो या क्षतो पर इसका चूर्ण बुरका जाता है। सग्रहणी मे इसके चूर्ण को घृत मे भूनकर तथा मिश्री मिलाकर सेवन कराते हैं। कफज वमन पर—इसके चूर्ण में नागरमोथा चूर्ण मिला शहद के साथ देते हैं। जिस चर्म रोग मे त्वचा पर श्वेताभ लाल लाल धब्बे उठते हैं, एक प्रकार का पुंडरीक कुष्ठ-सोरियेसिस (Psoriasis) उस पर इसका बाह्य-प्रयोग प्रलेप रूप मे किया जाता है। अतिसार पर—इसके चूर्ण को बेलगिरी के साथ देते हैं।

(१) बालको के तथा बड़ो के आक्षेपजनक कास श्वास रोग पर—इसके चूर्ण मे समभाग मूली के बीजो का चूर्ण मिला शहद और घृत के साथ चटायें।

अथवा इसके चूर्ण को कटेरी के क्वाथ के साथ देते हैं।

श्वास पर इसके चूर्ण के साथ कायफल का चूर्ण मिला शहद से देते हैं।

(२) शुष्क कास एव श्वसन-सस्थान के अन्य विकारो पर—इसके चूर्ण के साथ भारगीमूल, सोठ, छोटी पीपल तथा कचूर चूर्ण को मिला मुनक्का के साथ खरल कर मात्रा—१ से २ माशे तक शहद के साथ सेवन करायें।

(३) बाल रोगों पर—दन्तोद्भव के समय होने वाले ज्वर, अतिसार, कास एव पाचन सम्बन्धी विकारो पर इसके चूर्ण के साथ समभाग अतीस, छोटी पीपल और नागरमोथा का चूर्ण मिला २ से ८ रत्ती तक की मात्रा मे शहद के साथ, ३-३ घटे से चटायें। यह योग 'बालचातुर्भद्रिका' नाम से शास्त्रो में प्रसिद्ध है।

अथवा—उक्त प्रयोग में नागरमोथा न मिलाते हुये शेष तीनो का ही चूर्ण सेवन कराने मे भी बालकों के ज्वर, खासी और वमन मे लाभ होता है।

शेष शृ गयादि चूर्ण, क्वाथ के प्रयोग शास्त्रों मे देखिये।

नोट—काकड़ासिंगी का अधिक मात्रा में प्रयोग यकृत और आमाशय के लिए हानिप्रद होता है। कतीरा, या बबूल का गोंद इसके हानिनिवारक हैं। काकड़ासिंगी के अभाव मे मुलैठी ली जाती है।

काकड़ासिंगी नं. २

(RHUS SUCCEDANEA)

इस तिन्तिडिक (Rhus) जाति की, किन्तु आम्रादिकुल (Anacardiaceae) की ही वनौषधि के वृक्ष
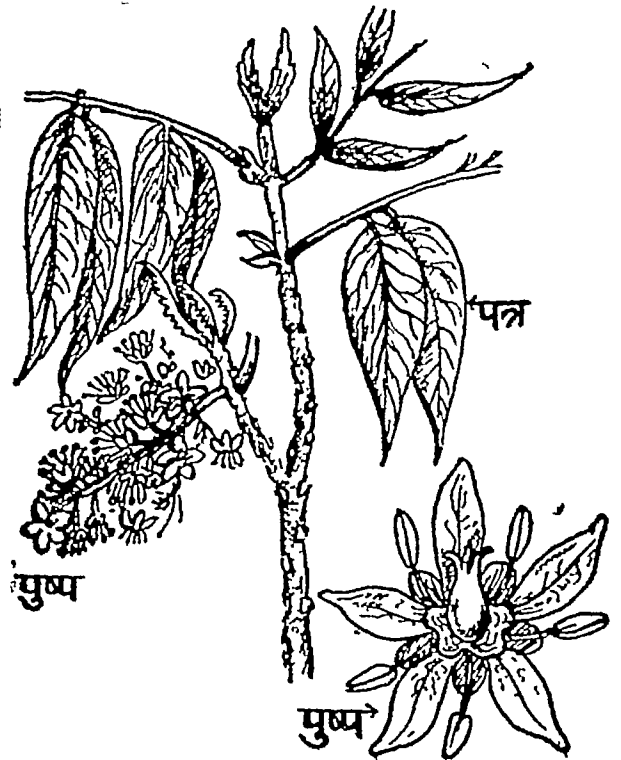
प्राय न १ की काकडासिंगी के वृक्षो से कुछ ही कम ऊचे होते हैं। इसकी छाल भी तैसे ही धूसर वर्ण की होती है। इसके वृक्ष से एक प्रकार का श्वेत निर्यास निकलता है जो बहुत दाहक होता है। इस निर्यास के लगजाने से शरीर पर फफोले उठ आते हैं। इसके पत्र टहनियो आदि पर भी शृग जैसे कृमि कोष पाये जाते हैं जिन्हे काकडासिगी कहते हैं।

इसके पत्ते—कुछ बरछी के आकार के ४ इंच लम्बे होते है। फल—कुछ दबे हुये से चमकीले तथा धूसर वर्ण के होते हैं।

ये वृक्ष काश्मीर से लेकर सिक्किम तक के समशीतोष्ण प्रान्तों मे तथा भूटान और खासिया के पहाडो पर विशेष पाये जाते हैं।

हिन्दी और वगला मे—काकडासिगी, कर्कटसिगी, होलारि, होलसिग, अरखोल आदि तथा लेटिन मे—रस सक्सेडेनिया या रस काकरासिगी (Rhus Kakarasingi) कहते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

इसके कृमिकोष या काकडासिगी के गणधर्म उपर्युक्त न० १ के अनुसार ही हैं। इसमे सकोचक धर्म का विशेषता है। इसके फल क्षय रोग मे दिये जाते हैं। जापान मे इसके फलो के रस से एक प्रकार का मोम तैयार करते हैं जिससे मोमबत्तिया बनाई जाती हैं।

काकतुंडी नं. १ (Asclepias Curassavica)

गुडूच्यादिवर्ग की यह वनौषधि नैसर्गिक क्रमानुसार अर्क कुल (Asclepiadaceae) की है।

इस बूटी के विषय मे बहुत मतभेद हैं। काकतु डी और काकनासा इन दोनो नामो मे बहुत गडबडी हो गई है। इसकी फली काक (कौवे) की चोच जैसी होने से ही इसे कोई काकतु डी और कोई काकनासा कहते हैं। काकतुण्ड सदृश दिखलाई देने वाली कई बूटियो का नाम काकनासा रख दिया गया है। यद्यपि काकनासा बूटी अति प्राचीन काल से आयुर्वेद में प्रचलित है। (चरक के मधुरस्कध मे इसका उल्लेख है, च्यवनप्राश के प्रयोग मे यह ली जाती हैं, कास-चिकित्सा के भी कई प्रयोगो में इनका नाम हैं) तथापि अभी तक यह सदिग्ध ही है। इसी मतभेद के कारण हम यहा प्रथम काकतु डी न० १ का वर्णन कर फिर न० २ मे काकतु डी उर्फ काकनासा का वर्णन करते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग की काकतु डी के बहुवर्षायु दुग्धयुक्त क्षुप दो या तीन फुट ऊचे होते हैं। पत्र—आमने सामने कनेर या मिर्ची के पत्र जैसे २-३ इंच लम्बे, पुष्प—नारगी रंग के गुच्छो मे लगते हैं, तथा फली—चिकनी दो दो एक साथ, लगभग ३ इंच लम्बी, नवीन अवस्था मे काक की चोंच जैसी बीज बहुल होती हैं।

बीज—गोल, गहरे बादामी रग के तथा मूल—बहुत पतली कुछ गुच्छेदार, हलके पीले रग का भीतर से श्वेत स्वाद मे कड़वी, तीक्ष्ण होती हैं।

पश्चिम भारतीय द्वीप समूह की यह बूटी भारत के अनेक प्रदेशो मे विशेषत देहरादून, बगाल आदि मे नदी तलो के किनारे पाई जाती है।

नाम—

सं०—काकतुण्डी, रक्तपुष्पा, दुग्धक्षुप
हि०—काकतुंडी, कौवाठोड़ी, कुरकी, कारकी
बं०—काकतुंडी, वनकापास। म०—करकी
अं०—ब्लड फ्लॉवर (Blood Flower)

रासायनिक संघठन—

इसकी मूल मे विन्स टॉक्सिन (Vince Toxin) होती है। इसकी क्रिया इमेटीन (Emetine) या इपिकाक के समान होती है। तथा इसके पचाङ्ग मे एस्किलपिन (Asclepine) नामक सक्रिय तत्व (पीत वर्ण का ग्लुकोसाईड) पाया जाता है।

चिकित्सा कार्यार्थ—मूल, पत्र और पुष्प लें।

गुण, धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कपाय, विपाक में कटु और उष्णवीर्य है। कफपित्तहर, वातवर्धक, दौर्बल्य एव अवसादकारक, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, कटुपौष्टिक, मूत्रल, आर्तवजनन, स्वेदजनक, ज्वरघ्न आदि है। प्रथम इसमें रेचन और फिर ग्राही क्रिया होती है।

अल्पमात्रा (चौथाई रत्ती से आधी रत्ती) में यह दीपन और कटुपौष्टिक है। इससे आमाशय की रक्तसंवहन कार्य की वृद्धि होती है। अधिक मात्रा (१ से ३ मासे) में यह वामक और रेचक है।

इसका पत्र स्वरस कृमिघ्न, तथा पुष्प—स्वरस रक्तशोधक है। रक्तस्राव निरोधार्थ इसके पत्र और पुष्पों का लेप करते है। सुजाक मे इसका क्वाथ देते है। इसकी जड की क्रिया प्राय आक की जड जैसी ही होती है। श्वासनलिका की शोथ पर इसकी जड के प्रयोग से कफ पतला हो निकलता तथा सूजन कम हो जाती है।

यह शोथ, अर्श, कामला तथा प्रवाहिका में विशेष लाभकारी है। प्रवाहिका मे इसके प्रयोग से शीघ्र ही प्रवाहण की शाति होती है, मल मे श्लेष्मा और रक्त आना बन्द हो जाता है। कास, कुक्कुरकास, पैत्तिक विकार (अम्ल पित्तादि) तथा ज्वरादि मे वमनार्थ प्रयोग करें।

मात्रा—मूल चूर्ण १/४ से १/२ रत्ती, वमनार्थ १ से ३ मासे तक। पत्र स्वरस ३ से ६ मासे, पुष्प स्वरस १/२ से १ तोला तक।

काकनासा (काकतुंडी नं. २)

[*PENTATROPIS MICROPHYLLA OR HYGROPHILA SULICIFOLIA*]

नोट—विदेशी होने के कारण, उक्त बूटी (काकतुंडी नं १) की फली के आकार को ही देखकर उसे प्राचीन काल की आयुर्वेदोक्त काकनासा मानने में संदेह होने से आधुनिक अन्वेषकों में से कई (१) उक्त बूटी के ही कुल की Pentatropis microphylla को (२) कोई कोषातकी कुल (Cucurbitaceae) की Trichosanthus Cucumerina अर्थात् जगली चर्चीडा (इसका वर्णन चर्चीडा में देखिये) को (३) कोई कटकारी कुल (Solanaceae) की Solanum Indicum अर्थात् मकोय या काकमाची को, (४) कोई तिलकुल (Pedaliaclae) की Martynil Dianbra अर्थात् विच्छू या विछुआ बूटी को तो (५) कोई वासाकुल (Acanthaceae) की Thumbergia Alata जो देहरादून के वैज्ञानिक उद्यान में लगाई हुई है, तथा जिसके पत्ते कटवाकार, लम्बाग्र एवं पुष्प बड़े नीले बेंगनी रंग के और फल काकतुण्ड सदृश होते हैं, उसे ही काकनासा मानने का आग्रह करते हैं।

हम उक्त नोट के न० १ की बूटी को काकनासा मानने के पक्ष मे हैं। इसके क्षुप, गुणधर्मादि सब उक्त काकतुडी न १ सदृश ही होते हैं। तथा जिस बूटी के विषय मे वनस्पति अन्वेषक श्री वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा ने भारतीय वनौषधि (बगला) से अनुवाद कर निम्न उद्धरण भेजा है उसे भी काकनासा मानना सगत ही है।

काकनासा (काकतुण्डी नं २)

Hygrophila salicifolia Nees.

नेसर्गिक वर्ग—Acanthaceae

जाति—Hygrophila R Br

नाम—

सं —वं. काकनास । हि.—कोग्राडोडी ।

अ.—Indian perry ।

ले.—Hygrophila Salicifolia Nees ।

• उत्पत्तिस्थान—सारा भारत और लंका में साधारणत पैदा होता है। बंगाल मे सर्वत्र दिखाई देता है। उपयोगी अङ्ग—पत्र ।

इसका काड १ से ३ फीट ऊचा होता है।-पत्र २॥ इच लम्वा, १/३ से २/३ इच चौडा, दोनो तरफ से क्रमश नोकीला, लम्वाकृति, दण्ड क्षुद्र होता है। । वहिर्व्यास १/३ से १/२ इच। फल का मूल विभक्त होता है। पापडी गुच्छा १/२ से २/३ इच लम्वा देखने मे फीका वेंगनी रग युक्त । पु केसर ४ । वीज कोष १/२ से २/३ इच लम्वा, इसमे २० से २८ वीज होते हैं।

इसकी कई उपजातिया हैं, यथा-H Asaurgens, H Dimidiata, H Obovata- इत्यादि । शीत के प्रारम्भ मे फूल तथा शीत के समय फल हो जाते हैं।

औपधोपयोग—यह आम के पक्ष मे (आमातिसार मे) वहुत हितकर औपधि है।

नोट—उक्त वूटी की जो उपजाति हायग्रोफीला ओवोव्हाटा (Ayprophila Obovata) है, इसे भी हिन्दी में कोवाडोड़ी, कोवाढोड़ी तथा वगला में काकनासा कहते हैं। यह भारत के उष्ण प्रदेशों में तथा ईस्ट इंडीज में विशेष पाई जाती है।

इसके पत्तों का प्रयोग जलोदर सम्वन्धी शोथ पर किया जाता है। —लेखक विशेषांक ।

काकनासा के विषय में वनस्पति विशेषज्ञ श्री रूपलाल जी वैश्य का जो निम्नलिखित वक्तव्य है, वह भी विचारणीय है—

काकनासा लता जाति की वनौषधि नेपाल के जंगल झाडियों में आप ही आप उत्पन्न होती है। प्राय वाग वगीचों और खेतों की मेडों पर पसरी हुई देखने में आती है। इसकी लता शाखा प्रशाखाएं करके झाडदार होती हैं और दूसरे वृक्षादि का आश्रय ले उस पर लिपटती हुई वढ़ती हैं। पुरानी जड़ की मुटाई १॥-२ इ च तक होजाती है। पत्ते हिरनखुरी के पत्र जैसे त्रिकोणाकार और शाखाओं पर समवर्ती आते हैं। पत्रवृन्त से पुष्प दण्ड निकलता है, तथा फूल घण्टाकार नीले रंग के, फलिया ठीक काक के चोंचयुक्त शिर समान किंतु आकार में छोटी होती हैं। फलियों के सूखकर पक जाने पर दोनों चोंच फटकर पृथक हो जाते है, व वीज भूमि पर गिर जाते हैं। पकी हुई फलियों का रग काला सा होता है। जो वीज भूमि पर गिरते हैं वे प्रायः वर्षा में अंकुरित हो लता रूप में वढ़ते हैं, तथा पुरानी लता भी हरी हो जाती है। आश्विन से मार्गशीर्ष तक फूल फल आते रहते हैं, तथा पौष माघ तक फलियां पक जाती हैं। गर्मी के दिनों में प्राय पत्ते सूख कर गिर जाते है, तथा लता सूखी सी दीख पडती है।

—अ. वू. दर्पण से साभार

काकनज़ [Physalis Alkakenji]

यह गुडुच्यादि वर्ग की वनौषधि नैसर्गिक वर्गानुसार कटकारी कुल (Solanaceae) की एक प्रकार की विदेशी मकोय (काकमाची) है।

मकोय के जैसे ही इसके छोटे छोटे क्षुप होते हैं। फल साधारण मकोय के फल से कुछ बडा लाल रग का चमकदार, चिकना तथा बाहर से झुर्रीदार होता है। फल को ही काकनज कहते हैं। इसके भीतर चिपटे, वृक्काकार, हलके भूरे रग के बहुत बीज होते है।

इसके पौधे फारस, दक्षिण यूरोप और अमेरिका मे विशेष होते हैं। भारत मे इसके फल प्राय ईरान से आते हैं। यूनानी वैद्यक मे इसका विशेष प्रचार है।

भारतवर्ष मे इसकी जाति की जो वनौषधि पजाब मे सतलज तटवर्त्ती प्रदेशो मे तथा सिन्ध आदि प्रान्तो में पैदा होती है, उसे देशी काकनज, पनीर, आकरी, विनपुतका, खमजीरा आदि तथा लेटिन मे वियानिया कोगुलान्स (Withania Coagulans) कहते हैं।

उक्त देशी या भारतीय काकनज को अग्रेजी मे विजिटेबल रेनेट (Vegetable Rennet) कहते हैं। इसके दो भेद और भी हैं—

(१) एक को अग्रेजी मे विंटर चेरी (Winter cherry) तथा लेटिन मे फायसेलिस इडिका (Physalis Indica) कहते हैं। इसके फल वृक्क (गुर्दे) की सूजन, मूत्रकृच्छ्र आदि पर उपयोगी हैं। पत्र रस बच्चो के कृमिजन्य शूल पर देते हैं।

(२) दूसरे को हिन्दी मे टिपारी, तुलातिपाती, काकनज, मरेठी मे टागमारी, टेपारी, बगला मे बाटेपारी, अग्रेजी मे केप गूजबेरी (Cape gooseberry) तथा लेटिन मे फायासेलिस मिनिमा (Physalis Minima) कहते हैं।

यह पजाब, सिन्ध आदि के अतिरिक्त और भी भारत के कई स्थानो पर पाया जाता है। इसके क्षुप आदि सब मकोय के जैसे ही होते हैं। गुणधर्म मे यह धातु परिवर्त्तक (रसायन), मूत्रल, पौष्टिक, सग्राही है। जलोदर, मूत्रविकार, आमवात आदि पर उपयोगी है। यह शारीरिक शैथिल्य को शीघ्र दूर करता है। प्लीहा वृद्धि पर इसके फलो के साथ अर्ध प्रमाण मे कूठ, हींग, गजपीपल, कालानमक, सैधानमक, जवाखार और सोंठ मिलाकर कल्क कर दोगुने घृत मे पकाकर छानकर रखते हैं तथा इस घृत की मालिश करते हैं।

उक्त प्रथम देशी काकनज (जिसके दो उपभेदो का संक्षिप्त वर्णन ऊपर दिया है) के गुणधर्म इस प्रकार हैं—यह भी धातुपरिवर्त्तक, यकृद्विकारनाशक, मूत्रल, व्रणपूरक तथा श्वास, पित्त, अश्मरीनाशक और रक्तशोधक है। अल्पमात्रा मे यह पाचक, वेदनाशामक एव मूत्रल है। अधिक मात्रा मे वामक है।

वातज उदरशूल मे भी इसका प्रयोग होता है तथा इसके बीज दुग्धवर्धक, मूत्रल हैं। कटिवात, नेत्ररोग और अर्श पर लाभकारी है। इसके फलों मे दूध को जमा देने का विशेष गुण है। फलो के चूर्ण को थोडे पानी में घोलकर एक छोटे चम्मच मे यह घोल लेकर लगभग ५ सेर गरम दूध मे डाल देने से वह आधे घण्टे के अदर ही जम जाता है, उत्तम दही मे परिणत हो जाता है।

विदेशी काकनज के नाम—

संस्कृत—राजपुत्रिका।

हिन्दी—काकनज, काकंज, पपूटन, कचूमन (काकनज, काकज, कचूमन ये इसके अरबी, फारसी नाम हैं)।

अंग्रेजी—स्ट्राबेरी टोमाटो (Strawberry tomato)

लेटिन—फायसेलिस अल्केकेंजी (Physalis Alkakenji)

रासायनिक सङ्घठन—

फल मे पेक्टिन, मालिक, सायट्रिक एसिड (Malic and Citric acids) शर्करा, श्लेष्मल पदार्थ (Mucilage), फायसेलिन नामक (Physaline) एक तिक्त तत्व आदि पाये जाते हैं। इसमे अल्केलाइन (Alkaline), चूना तथा साथ ही साथ लोह और मेगनीज का भी उत्तम योग होने से यह पाडु, सधिवातनाशक और उत्तम रक्तशोधक है।

गुणधर्म और प्रयोग—

फल—आनुलोमिक, वेदनाशामक, निद्राजनक, मूत्रल, पित्तरेचक, यकृद्विकार, वस्तिविकार, अश्मरी, पित्तज

कामला और कृमिनाशक है।

शोथ और ग्रन्थि पर—ताजे या शुष्क फलो का या इसके पत्तो का लेप किया जाता है। मधुमेह, वस्तिशोथ, सुजाक तथा मूत्र प्रणाली के अन्य विकारो पर फलो के प्रयोग से अधिक पेशाव होकर शान्ति प्राप्त होती है। चर्मरोग तथा जीर्ण आमज्वर मे यह लाभकारी है। इसकी जड वात पर इसके पत्तो का लेप लाभकारी है। इसकी जड संग्राही होने से अतिसार मे दी जाती है। अतिसार मे इसके पत्तो का फाट भी लाभप्रद है।

इसकी मात्रा ५-७ माशे है, अधिक मात्रा मे यह शरीर को शिथिल, सुस्त वना देती है। ऐसी अवस्था मे गुलकन्द का सेवन करे। इसके अभाव मे मकोय लेवें।

नोट—यूनानी ग्रन्थों में इसके तीन भेद वतलाये हैं—

(१) गांवों या वस्ती में होने वाली मूत्रल, कृमिनाशक, जलोदर पर लाभकारी है। कर्ण पिटिका पर इसके रस को कान में डालते हैं। नासूर पर इसकी जड़ के कल्क को कपड़े मिला वत्ती वना अन्दर डालते हैं या ऊपर से ही इसे पुल्टिस जैसे लगाते हैं।

(२) पहाडों पर होने वाली यह शरीर को शीघ्र ही शिथिल कर देती है। इसकी ४ माशे की मात्रा नशा लाने वाली एवं निद्राजनक है। अधिक मात्रा मे यह उन्मादक है। इसके वीज विशेष मूत्रल एवं मूत्रप्रणाली को विशुद्ध करते हैं। अत्यधिक मात्रा में यह विषकारक है।

(३) जंगलों में होने वाली यह अत्यधिक विषैली है। इसकी १॥ तोला की मात्रा मारक है। इसके जहर पर शहद पिलाते हैं या दूध में शहद और सौंफ चूर्ण मिला कर खूब पिलाते हैं तथा वमन कराते हैं।

विदेशी काकनज के अभाव मे मकोय, तिलगोजा या खुरासानी अजवायन लेते हैं।

काकमारी (Anamirta Coculus)

इस गुडूच्यादि वर्ग एव उसी कुल (Menispermaceae) की वनौषधि की वडी वेल गिलोय की वेल जैसी ही वृक्षो पर चढने वाली होती है। छाल खुरदरी व जाडी, पत्ते गिलोय पत्र जैसे ३ से ६ इच लम्वे, विस्तृत, नोकदार, पत्रवृन्त लम्बा, चिकना, पुष्प ग्रीष्मकाल मे डेढ इच व्यास के गिलोय पुष्प से कुछ वडे, पीताभ हरितवर्ण के कुछ सुगन्धित, तुर्रेदार गुच्छो मे लगते हैं। फल अण्डाकार, ताजी अवस्था मे वडी दाख या अगूर जैसे, वैंजनी या जामुनी रग के, गुच्छो मे लगते है। सूखने पर ये फल कालीमिर्च जैसे किन्तु अफरा मे वडे सिकुडन युक्त, काले धूसर वर्ण के हो जाते हैं। ये अत्यन्त कडुवे, जीर्ण तैल जैसी गधयुक्त होते हैं।

काकमारी
Anamirta Cocculus W. & A.
पत्र
पुष्पयुक्त शाख
शाख
पुष्प

यह काकघ्नी भारतवर्ष की प्राचीन वूटी है, किन्तु, इसका कोई विशेष उल्लेख आयुर्वेदीय निघट्ट ग्रन्थो मे नही मिलता। इसकी उत्पत्ति कोकण, मलावार तथा दक्षिण के पश्चिमी घाटो पर, पूर्व वगाल, उडीसा, आसाम, वर्मा आदि के पहाडी जङ्गलो मे विशेष होती है।

नाम—

सं—काकघ्नि, काकारि, गोविष।
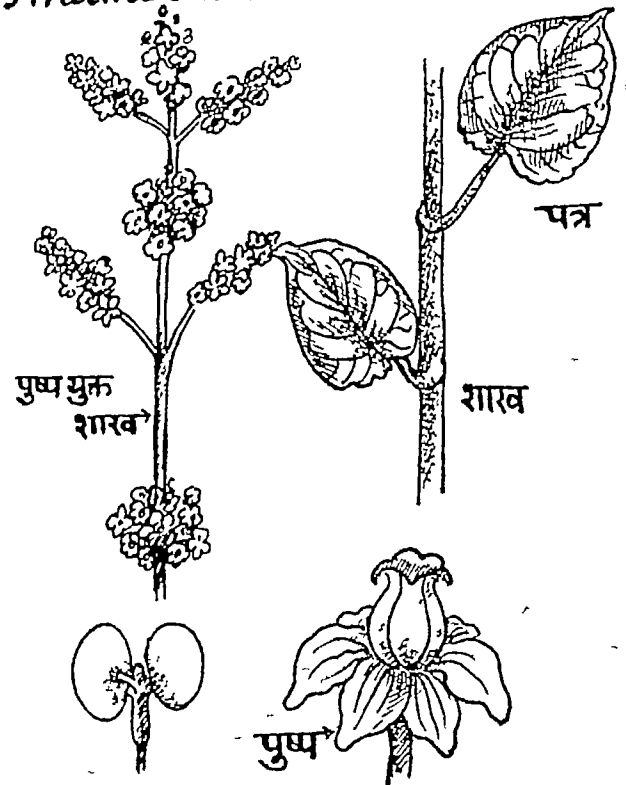
हि०--काकमारी, जरमेह, नेत्रमल, हयुबेर
म०--काकमारी, कार्वी, वाटोली, गरुड़फल
गु०----काकफल । बं०--काकमारी
फा०--माहीजहरज (मत्स्यविष, इसके चूर्ण को पानी में डालने से मछलियां मर जाती हैं।
अं०--फिशबेरी (Fish berry)
ले०---एनमिर्टा कॉक्युलस, ए पानिक्युलाटा (A Paniculata) कॉक्युलस सबेरोसस् (Cocculus Suberosus) का० इंडिका (C Indica)

रासायनिक संगठन---

इसके फल मे पायक्रोटाक्सिन (Picrotoxin) नामक जो चमकीला अत्यन्त कटु तत्व होता है वह विशेष जहरीला होता है। इसकी ३ से ५ रत्ती की मात्रा कुत्ते को खिलाने से वह तत्काल मर जाता है। इसके अतिरिक्त काक्युलिन (Coculin) और एनामिर्टिन (Anamirtin) नामक तत्वांश भी पाये जाते हैं।

औषधिकार्य मे फल, छाल और पत्ते लिये जाते हैं। पिछडे लोग मछली, पक्षी और अन्य जानवरो को मारने मे इसके फलो का बहुत उपयोग करते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह उष्ण वीर्य, तीव्र विरेचन, कफ निस्सारक तथा जलोदर, कृमि, चर्मरोग, गृध्रसी अपस्मार, आमवात आदि नाशक है। अल्प मात्रा मे यह दीपन, पाचन, कफ और प्रस्वेद निवारक तथा अधिक मात्रा मे वामक एवं विषाक्त है। अधिक मात्रा मे लगभग १ से ४ रत्ती सेवन करने से नाभि के नीचे पेट मे पीडा, उबकाई, वमन, ऐंठन, प्रलाप, बेहोशी आदि लक्षण होकर मृत्यु होती हैं। इसकी क्रिया अफीम की क्रिया से विपरीत होने से अफीम के विष पर इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी विषाक्त क्रिया के निवारणार्थ गोद कतीरा, निशास्ता और सोफ का प्रयोग किया जाता है।

जुओ को मारने के लिये इसके चूर्ण का घोल सिर पर लगाते हैं। किन्तु सिर मे व्रण आदि हो तो इसका लगाना हानिकर है। इसके रस के साथ कलिहारी का रस मिला पशु के शरीर पर लगाने से बाह्य कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(१) राजयक्ष्मा की अवस्था मे रोगी को रात्रि के समय पसीना अत्यधिक आता हो, तो काकमारी का सत्व एक रत्ती के शतांश या उससे भी आधी मात्रा मे दिन में तीन बार दिया जाता है। इसकी मात्रा १ चावल के चतुर्थांश तक बढ़ाई जा सकती है। इसे गोली के रूप मे या इसमे किंचित असेटिक एसिड (Acetic acid) अथवा १ माशे तक यशदभस्म और शुद्ध जल मिलाकर पिलाते है। अथवा इसका इञ्जेक्शन त्वचा मे ५० रत्ती तक की मात्रा मे दिया जाता है।

(२) खाज, दाद आदि कृमिजन्य त्वग्रोगो पर—इसके ताजे फलो का रस लगाते है अथवा सूखे फलो को जल के साथ पीसकर, अथवा इसका मलहम बना कर लगाते है। फलो के २० रत्ती चूर्ण को घृत या व्हेसलीन ४ तोले मे अच्छी तरह मिलाकर रखते है। इस मलहम के लगाने मे जू, चिल्लर, बाह्य कृमि नष्ट हो जाते हैं।

ध्यान रहे, यदि त्वचा मे कही व्रण या जख्म हो तो इसके उक्त प्रयोगो से इसका विषैला सत्व अन्दर रक्त मे मिलकर अनिष्ट परिणामकारी हो जाता है।

(३) नहरुआ पर—इसके पत्तो को पीस कर जहा नहरुआ का छिद्र हो तहा लेप कर दें।

(४) अपस्मार (मृगी पर)—जिस मृगी का प्राबल्य प्राय रात्रि मे अधिक होता हो, उसमे भी इसका प्रयोग अति सूक्ष्म मात्रा मे करने से लाभ होता है।

[५] अफीम, मार्फिन या क्लोरल के विष पर—शरीर मे, इस बूटी के विष की क्रिया रक्त सचार पर अफीम की क्रिया के विरुद्ध होती है। अतएव जितने प्रमाण मे अफीम आदि का विष शरीर मे क्रिया कर रहा हो उसकी जाच कर इसकी मात्रा निर्धारित कर सेवन कराने से तत्काल विष बाधा शात हो जाती है।

काकोली (और क्षीरकाकोली) [*LUVUNGA SCANDENS*]

ये आयुर्वेदोक्त जीवनीयगण के प्रसिद्ध अष्टवर्ग [1] की दो वनौषधिया नैसर्गिक वर्गीकरणानुसार जम्बीर कुल

[1] जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके। अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभि ॥ (भा० प्र०)

[Rutaceac] की मानी गई है।

अभी तक अष्टवर्ग की किसी भी वनौषधि का ठीक ठीक निश्चयात्मक निर्णय नही हो पाया है। अष्टवर्ग मे से ऋद्धि, वृद्धि तथा ऋषभक और जीवक इन ४ औषधियो के विषय मे विशेपाक के प्रथम भाग मे लिखा जा चुका है। मेदा महामेदा के विषय मे आगे यथास्थान देखियेगा। यहा प्रसगानुसार काकोली और क्षीरकाकोली के विषय मे लिखा जाता है।

भावप्रकाशादि निघण्टु ग्रन्थो मे कहा गया है कि ये दोनो बूटिया हिमालय पर प्राय एक ही स्थान पर, [मोरगादि प्रदेशो मे जहा मेदा महामेदा उत्पन्न होती हैं] पैदा होती हैं। इनका कन्द शतावरी जैसा, किन्तु उससे कुछ स्थूल होता है। इस मूल या कन्द को काटने पर उसमे से प्रियगन्धयुक्त दुग्ध निकलता है। काकोली व क्षीर काकोली दोनो रूप रग मे प्राय एक समान होने पर भी ककोली का वर्ण कुछ श्यामता लिये हुये होता है। तथा क्षीरकाकोली का दुग्ध जैसा श्वेत होता है तथा इसमें उक्त दूधिया रस की भी अधिकता होती है।

आधुनिक वनौषधि अन्वेषको ने जिसे काकोली या क्षीर काकोली माना है, उसका तदनुरूप लेटिन नाम 'लवगा स्केडन्स' रख दिया है। तथा इसी नामानुसार हिन्दी और वगला में इसे लवगलता भी कहते हैं।

इसकी वर्षायु झाडीनुमा काटेदार वेल होती है। पत्र वर्छी के आकार के लगभग ६ से १० इच तक लम्बे होते हैं। तथा पत्रवृन्त दीर्घ और मुलायम होता है। पुष्प—श्वेत, फल—गोल कुछ लम्बाकार तथा उसमें १ से ३ तक बीज होते हैं।

यह पूर्वी बगाल, आसाम, खासिया पहाड, चटगाव तथा मसूरी की ओर के हिमालय पर होती है।

नाम—

सं०—काकोली वायसोली वीरा वयस्था लवगलता
हि०—काकोली क्षीरकाकोली काककोला
बं—काकल ले—लवेगा स्केडन्स

गुणधर्म—

प्राचीन काकोली या क्षीरकाकोली शीतल, मधुर, गुरु, बृहण [धातुवर्धक] कफकारक, वात, दाह, रक्तपित्त [या रक्तदोष और पित्त] क्षय, शोथ, और ज्वर नाशक है। इसके अभाव में असगध अथवा काली मूसली और श्वेत मूसली लें।

अर्वाचीन काकोली के फलों से एक प्रकार का सुगन्धित तैल वगाल की ओर निर्माण किया जाता है। इसे 'कावकोलका' कहते हैं। यह औषधि के भी काम मे आता है। बिच्छू के दश पर इसके कन्द को पीस कर लेप करते हैं।

काजू [*ANACARDIUM OCCIDENTALE*]

आम्रकुल (Anacardiaceae) के फलादि वर्ग का काजू वृक्ष मध्यमाकार का आम्रवृक्ष जैसा ही सदा हराभरा रहने वाला ३०-४० फीट तक ऊचा होता है। शाखाऐं मुलायम होती हैं। इसके वृक्ष की छाल से पीत वर्ण का निर्यास (गोद) निकलता है।

पत्ते—४-८ इच लम्बे, ३-५ इच चौडे, कटहल के पत्र जैसे, किन्तु सुगन्धित होते हैं। पुष्प पीतवर्ण लाल दागो से युक्त तीक्ष्ण सुगन्धित होते हैं। फल धूसर वर्ण के चिपटे, वृक्काकृति होते हैं जिनमें श्वेत गिरी होती है। इसे ही काजू कहते हैं। वसन्त और ग्रीष्म मे यह पेड़ फूलता और फलता है।

इसके ताजे फलो के रस से एक प्रकार का मद्य तथा फलो के छिलको से काला, कड़ुवा अलकतरे जैसा तैल निकाला जाता है।

काजू पेड़ की खास जन्मभूमि दक्षिण अमेरिका है। पोर्चिगीजो (पुर्तगाल निवासियो) ने इसे भारत मे ला कर प्रथम गोवा मे बीजारोपण किया है। अत प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही है। अब तो गोवा के अतिरिक्त इसके पेड़ दक्षिण भारत मे समुद्र तटवर्ती बम्बई, मद्रास, केरल आदि कई प्रान्तो मे, तैसे ही बगाल, उडीसा आदि मे खूब प्रचुरता से होने लगे हैं। प्रतिवर्ष १ लाख टन काजू यहा पैदा होता है,

काजू

Anacardium occidentale Linn.
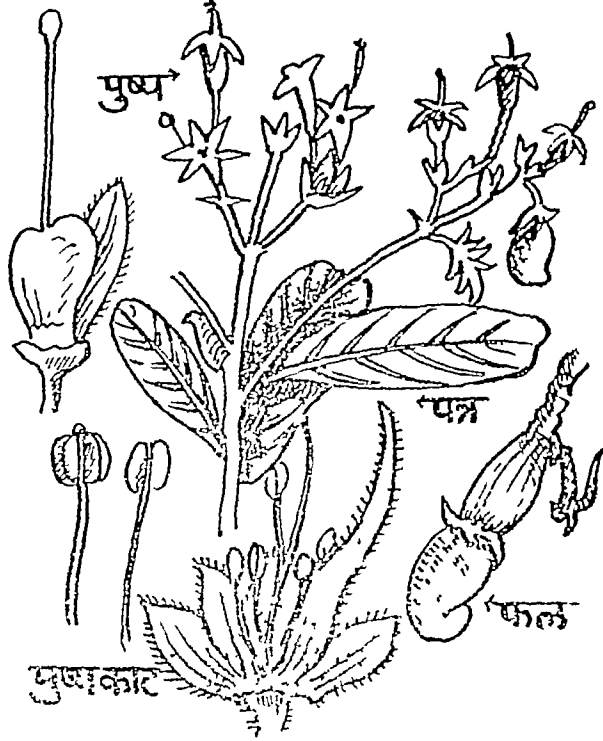
जिसके निर्यात से भारत सरकार को आठ करोड रुपयो का लाभ होता है।

नाम—

संस्कृत–काजूतक, काजूत, वृत्तारुष्कर।
हिन्दी गु –काजू, काजूवली। बंगला–हिजली बादाम।
अंग्रेजी–केश्यूनट (Cashew nut)
लेटिन–एनाकार्डियम आक्सिडेंटेल।

रासायनिक सङ्गठन—

इसके छिलके से जो अलकतरा जैसा तैल निकलता है, उसमे प्र श ६० एनाकार्डिक एसिड (Anacardic acid) तथा १० प्र. श. एक दाहक तैल कार्डोल (Cardol) होता है। यह तैल त्वचा पर लगने से फफोले उठते हैं। १०० तोले छिलको से ३० तोले यह तैल निकलता है। काजू की गिरी जो खाई जाती है उससे जो पीताभ तैल निकलता है वह उत्तम पौष्टिक जैतून तैल की अपेक्षा गुणो मे श्रेष्ठ है। शुद्ध घृत के अभाव मे इसका तेल उत्तम लाभदायक है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, विपाक मे मधुर तथा उष्ण वीर्य है। यह वातशामक, दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, हृद्य, वृष्य, वाजीकरण, वृंहण, रक्तशोधक, मूत्रल तथा अग्निमाद्य, विबन्ध, रक्तविकार, वातविकार, मूत्रकृच्छ्र, कृशता, अर्बुद, व्रण, अर्श, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ आदि चर्म रोग, रक्तातिसार और स्मृति हृदय एव नाडी दौर्बल्य नाशक है। इसका तैल कृमिघ्न, विषघ्न, कुष्ठघ्न, केश्य और वेदनास्थापन है। इसकी गिरी और तैल मे विटामिन 'बी' की प्रचुर मात्रा होने से यह पौष्टिक एव प्रोटीन प्रधान खाद्य द्रव्यो मे सर्वश्रेष्ठ खाद्य द्रव्य है। मास का अपेक्षा इसका प्रोटीन शीघ्र ही शरीर मे उतम प्रकार से पच जाता है तथा इससे यूरिक एसिड नही पैदा होता, जैसाकि मास के खाने से होता है।

इसकी छाल सकोचक, ग्राही, धातुपरिवर्तक है। ग्रहणी रोग में इसका क्वाथ दिया जाता है। इसकी जड विरेचक है।

प्रयोज्य अग—मुख्यत गिरी और तैल हैं।

मात्रा—गिरी की आधे तोले से २ तोले, तैल की ३ माशे से ६ माशे है।

(१) स्मृतिनाश या मस्तिष्क दौर्बल्य पर—इसे प्रात खाली पेट खाकर ऊपर से थोडा शहद सेवन करते रहने से लाभ होता है। यदि कोष्ठबद्धता हो तो इसे मुनक्का के साथ खाना चाहिये।

(२) चर्मरोग पर—शरीर पर छोटे छोटे काले मस्से हो तो इसके छिलके का तैल लगाते है। बिवाई या पाददारी पर भी इस तैल के लगाने से लाभ होता है। कुष्ठजन्यत्वक् शून्यता तथा उपदशजन्य व्रण या लालचट्टो पर भी इसे लगाते हैं।

कुष्ठ रोगी यदि केवल काजू के ही आहार पर रहे तो उसका कुष्ठ दूर हो जाता है ऐसा अनुभव सीलोन के एक वैद्यराज का है। —नाडकर्णी

नोट—यह पित्तकारक होने से उष्ण प्रकृतिवालों को अहितकर है। इसके अहितकर परिणामों के निवारणार्थ खट्टा अनार या सिकंजबीन (सिरका में शहद या शक्कर मिलाकर बनाया गया शर्बत) देना चाहिए।

काजू से दूध और दही भी बनाया जाता है। काजू को ४ घण्टे पानी भिगोकर पीसकर छान लेने से दूध तैयार हो जाता है। यह स्वादिष्ट, पाचक, पचने में हलका होता है। इसी दूध को जामन देकर जमा देने से दही बन सकता है। यह दूध और दही शारीरिक अशक्ति, दुर्बलता पर विशेष उपयोगी है। —वैद्य कल्पतरु

कादिकपान [*POLYPODIUM QUERCIFOLIUM*]

इस हंसराजादि कुल (Polypodiaceae) की बनौषधि की छोटी छोटी बेल सुदृढ और रोमश होती है। यह भारत की पहाडी भूमि के नीचे के मैदानो पर, चट्टानो पर तथा पुराने पेडो पर भी देखी जाती हैं। इसके पत्ते गोल, लम्बे, कगूरेदार कुछ नुकीले से होते हैं। इसकी बेलें आपस मे मिलकर क्षुप रूप हो जाती हैं। इसकी प्राय जडें ही औषधि कार्य मे ली जाती हैं।

इसे बम्बई की ओर कादिकपान, वादर बाशिंग, अश्वकातरी आदि तथा लेटिन में पोलीपोडियम क्वेर्सीफोलियम और ड्रायनेरिया क्वेर्सीफोलियम (Drynaria Quercifolium) कहते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग--

यह कड़वी, पौष्टिक, आन्त्रसकोचक तथा राजयक्ष्मा, अग्निमाद्य, कफ, कास, जीर्ण विषम ज्वर तथा आन्त्रज्वर (टायफाइड) मे लाभकारी है। जीर्णविषम ज्वर मे इसकी जड के साथ चिरायता और गोखरू मूल को कूट पीसकर क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं।

कानछिड़े [*COMMELINA BENGALENSIS*]

यह एक प्रकार के मूसली कुल (Commelinaceae) की बनौषधि विशेषकर दक्षिण भारतवर्ष मे और बगाल मे प्राय आर्द्र भूमि मे होती है।

इसे सस्कृत में—काञ्चटा, हिन्दी और बगला मे—कानछरा, कनछिडे, जटाकाशिरा, धोलापाता, तथा लेटिन मे—कॉमेलिना बेंगालेंसिस कहते है। गुणधर्म मे यह मार्दवकर, स्निग्ध, दाहशामक और मृदुरेचक है।

इस बूटी का विशेष विवरण निम्न प्रकार से श्री वैद्यराज उदयलाल जी महात्मा ने भारतीय बनौषधि (बगाल) से अनूदित कर भेजने की कृपा की है—

यह बूटी बगाल मे सर्वत्र छायायुक्त स्थानो मे तथा जल के किनारे देखी जाती है। इसका सर्वाङ्ग उपयोगी है।

इसका काण्ड लताकार, पत्र १ से ३ इंच लम्बे तथा १/२ से १॥ इंच चौडे, वृन्तहीन अथवा दण्ड छोटा, पत्र का अग्रभाग गोलाकार या सकुचित होता है। काण्ड में कोमल या सख्त लोम होते हैं, तथा वह गाठो से युक्त होता है। पत्रावरण १/३ से १/२ इंची काण्ड मे लगा हुआ होता है। तथा इस पर कोमल रोयें होते हैं

पुष्प गुच्छ की ऊपरी शाखायें २ से ३ भागो मे विभक्त, नीचे की शाखा १ से २ भाग मे विभक्त, फूल-नीलवर्ण, बीजकोष झिल्लीयुक्त, उज्जवल, वीज घन सन्निवद्ध। वर्षान्त से शीत के प्रारभ तक पर्याप्त फूल व फल का समय है।

इसको तथा इसी जाति की अनेक लताओ का सस्कृत मे कानचटा कहते हैं। इसके काण्ड और मूल मे वीर्य को गाढा करने की शक्ति है। इसका दूध शाति-कर है। इसकी शाक बनाकर खाते हैं।

इसकी दूसरी जाति C Communis अथवा C. Obliqua को जटा कानछिडे (जटाकाचुरा और हिन्दी मे कांजुरा) कहते हैं। इसे कोष्ठवद्धता मे देते हैं। इसकी जड सिरदर्द, ज्वर, पित्त ज्वर और सर्प विष नाशक है। (भ्रम मूर्च्छा मे भी इसका प्रयोग होता है)।

इसकी दूसरी जाति–C Salicifolia का व गली नाम पानि, कानछिडे या धोलापाता है। इसका तथा उक्त बूटी का गुण समान है। इसके पत्तो का रस पिलाने से शूक कृमि के बाल गल जाते हैं। (यह अतिसार और उन्माद मे भी दी जाती है।)

काफी [*COFFEA ARABICA*]

मजिष्ठादि कुल (Rubiaceae) के म्लेच्छफल[1] नामक इस आधुनिक चाय के प्रतिद्वन्द्वी प्रसिद्ध काफी के पौधो का जन्म स्थान अरब देश है। किन्तु अब तो दक्षिण भारत के मैसूर, मद्रास, ट्रावनकोर, नीलगिरी तथा कुर्ग कोचीन मे यह खूब बोयी जाती है। आसाम, नेपाल व खासिया की पहाडी भूमि पर भी प्रचुरता से पैदा होती है।

इसका पौधा ३-४ हाथ ऊंचा सदैव हरे पत्तो से लदा हुआ होता है। इसका तना भूरे रग की छाल युक्त सीधा होता है। पत्ते आमने सामने दो दो होते हैं। पुष्प–पत्र-मूल स्थान से इसके श्वेत चमेली जैसे हलकी ग ध युक्त पुष्प गुच्छो मे लगते हैं। फल—फूलो के झड़जाने पर इसके फल मकोय जैसे गुच्छो मे ही लगते हैं। पकने पर ये लाल रग के हो जाते हैं। फिर उन्हे तोड़ कर अन्दर के बीज अलग किये जाते है। बीज गोल, चिपटे, बडे पीताभ श्वेत वर्ण के मीठी गन्ध युक्त, स्वाद मे मधुर कुछ कषाययुक्त तिक्त होते हैं। इन बीजो को ही काफी कहते हैं। प्रत्येक फल मे प्राय दो बीज होते हैं। एक पौधे से प्राय एक सेर तक बीज प्राप्त होते हैं। इन बीजो को सुखाकर घृत मे या घृत लगाकर आग पर सेंककर कूटकर चूर्ण बना कर डिब्बो मे भर कर बेचते हैं। चाय की तरह इसका फाण्ट बनाकर दूध व शक्कर मिला पेय रूप से व्यवहार मे लाते हैं।

इसी काफी की ही जाति कुल की एक अन्य जगली

[1] नाड़कर्णी तथा आयुर्वेदीय विश्वकोषकार ने भी इसका संस्कृत नाम 'मलेच्छफल' लिखा है।

काफी होती है। इसे लेटिन मे काफी बेंगालेन्सिस (Coffea Bengalensis) कहते हैं। इसके पौधे छोटे छोटे क्षुप मे देहरादून के छायादार नालो मे तथा बाहरी हिमालय के निम्न भाग मे तथा सिलहट और नेपाल के पहाडी प्रदेशो मे प्रचुरता से पाये जाते हैं। इसकी पत्तिया भी उक्त काफी के पौधो जैसी ही प्राय ५ इच लम्बी चौडी किन्तु अण्डाकार लम्बी नोक एव छोटे वृन्त युक्त होती हैं। फूल मासल आधे इच व्यास के तथा काले होते हैं। बीज एक ओर उन्नतोदर तथा दूसरी ओर नालीदार होते है। बाजारो मे प्राय ये ही काफी के बीज दिखाई देते है। तथा असली काफी के स्थान मे प्राय ये ही प्रयुक्त होते हैं। इसके गुणधर्म भी प्राय असली काफी के ही समान हैं। इसके अतिरिक्त असली काफी मे कई प्रकार की मिलावटें की जाती हैं।

नाम—

सं –मलेच्छफल, अतंत्री। हि.–काफी, कह्वा।
म.–काफी, बून्ददाणा। बं.–कापि, काफि।
गु.–काफी, कप्पि, बुन्द। अं. काफी (Coffee)
ले.–काफिया अरेबिका।

रासायनिक संघठन–

बीजो मे एक उडनशील तैल, एक वर्ण, गन्ध रहित, स्फटिकाभ, कैफीन (Caffeine) तिक्त सत्व सामान्यत प्रतिशत १ से ३ तक होता है।

इस कैफीन के द्वारा कई एलोपैथिक पेटेण्ट औषधिया निर्माण की गई हैं, जैसे केफिन साइट्रस, यह कंफिन और साइट्रिक एसिड के योग से बनाया जाता है। इसकी मात्रा अर्ध रत्ती से ५ रत्ती तक। केफिन सोडियम बेनजोयेट मात्रा—ढाई रत्ती से साढे सात रत्ती तक। इजेक्शन मे एक से ढाई रत्ती तक दिया जाता है। ये दोनो योग तथा केफिन भी हृदयोत्तेजक तथा मूत्रल है।

नोट—उक्त केफीन तथा चाय की पत्तियों का सत्व थीइन (Theine) और कोको (Cocoa) का सत्व ग्वारेनीन (Guaranine) ये तीनों रासायनिक दृष्टि से वस्तुत एक ही वस्तु हैं, किन्तु भिन्न भिन्न वस्तुओं से प्राप्त होने के कारण इसके उक्त तीन नाम रक्खे गये है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, मधुर, कषाय, तिक्त, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य तथा प्रभाव मे हृद्य एव मूत्रल है। यह कफ वातशामक, पित्तवर्धक, ज्वरघ्न, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, अग्निमाद्य, अतिसार, प्रवाहिका, मानसिक-शैथिल्य, शिर शूल, प्रलाप, अपतन्त्रक, आक्षेपक, सधिवात, आमवात, निद्रा, तन्द्रा, शारीरिक जडता आदि नाशक है। जलोदर, सर्वांग शोथ तथा फुफ्फुसावरण शोथ पर भी यह लाभकारी है। यह विषघ्न भी है, अफीम, मद्यसार, वच्छनाग के विपाक्त परिणामो के निवारणार्थ भी इसका प्रयोग किया जाता है। विष के निवारणार्थ इसका गाढा क्वाथ पिलाया जाता है।

अल्पमात्रा मे यह दीपन, वातानुलोमन, ग्राही तथा श्वास, कास आदि नाशक होता है। यह अपने सत्व केफिन द्वारा मुख्य तीन क्रियाओ को करता है—१ मूत्रल, २. मस्तिष्कोत्तेजक और ३ हृदयोत्तेजक, इसके प्रभाव से हार्दिक रक्तवाहिनिया विफारित होती है।

इसके सत्व का प्रयोग हृदयविकार (Cardiac dropsy) मे विशेष उपयोगी होता है। वैसे ही उग्र वृक्क शोथ (Acute Nephritis) मे भी इसका प्रयोग विशेष लाभकारी है। किन्तु इसके निरन्तर सेवन से ७-८ दिन बाद रोगी को आदत सी हो जाती है, फिर इसका कोई प्रभाव लक्षित नही होता।

इसके मस्तिष्कोत्तेजक या केन्द्रिय नाडी सस्थान पर उत्तेजक प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने को प्रसन्न एव अधिक चैतन्य होने का अनुभव करता है। थकान तथा तन्द्रा दूर होती है। इन्ही प्रलोभनो तथा सस्ता होने से चाय या काफी पीने का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। किन्तु ध्यान रहे अधिक मात्रा मे इनके सेवन से निद्रानाश, बेचैनी, कानो मे झनझनाहट तथा कभी कभी प्रलाप (Delirium) एव अत्यधिक हृत्स्पदन, शिरोभ्रम (Vertigo), उत्क्लेश, वमन आदि अनिष्टकर उपद्रव होने लगते हैं। अत विशेषत जिन रोगो में रोगी को निद्रा एव मानसिक विश्राम की अत्यावश्यकता हो इसका प्रयोग नही करना चाहिये अथवा बडी सावधानी से करना चाहिये। उक्त उपद्रवो की सभावना अन्त-

स्तरीय वृक्कशोथ की दशा मे अधिक होती है ।

एस्प्रिन, फिनासेटिन आदि वेदनाहर औषधियो के साथ सहायक उपादान एव दोषहर्त्ता के रूप मे केफिन मिलाया जाता है । इसके मिलाने से एक तो उनकी क्रिया शीघ्रता से होती है तथा उनके हृदयावसादक आदि दोषो का निवारण भी हो जाता है । तथापि इसके उक्त कुप्रभावो की ओर दुर्लक्ष्य नही होना चाहिये ।

यद्यपि इसके मात्रातियोग से घातक प्रभाव बहुत कम होता है । तथापि गले मे जलन, तृष्णाधिक्य, आमाशय और आन्त्र मे पीडा, सिर मे चक्कर, वमन आदि उपद्रव तो होते ही हैं, ऐसी दशा मे मस्तिष्कावसादक एव निद्रल वातपित्तशामक, स्निग्ध चिकित्सा करनी चाहिये तथा शर्बत अनार, दूध, घृत, मक्खन आदि दें।

काफी को पेय रूप मे सेवन करने से चाय के समान शारीरिक क्षय अधिक नही होता है तथा मूत्र मे यूरिक एसिड कम निकलता है। जिन्हे अम्लपित्त या अन्य कारणो से भोजन के बाद वमन होती है उन्हे इसका सेवन लाभदायक है ।

गरम पानी मे चाय के समान ही इसे २ से ५ मिनट तक रखकर छानकर दूध व शक्कर मिला पीने से शरीर मे स्फूर्ति तथा कुछ अश मे पुष्टि भी आती है । किन्तु अधिक समय तक एव अधिक मात्रा मे इसे पकाकर लेने से यह हानि करती है । इसे सतत अधिक मात्रा मे लेते रहने से आमाशय या आन्त्र मे व्रण या केन्सर होने की भी सम्भावना है, सन्तानोत्पादन शक्ति का ह्रास भी हो जाया करता है तथा हमेशा शरीर मे पीडा और बेचैनी बनी रहती है । ध्यान रहे शारीरिक दाह, शोथ और अर्शरोग से पीडित व्यक्ति इसका सेवन नही करे ।

छोटे बच्चो को काफी पिलाना ठीक नही । कारण इससे निद्रानाश होकर उसकी बाढ़मारी जाती है, उसका शरीर अच्छी तरह विकसित नही हो पाता । तरुणो को भी इसके व्यसन से वृद्धावस्था शीघ्र घेर लेती है ।

यद्यपि आमाशय की पाचन क्रिया को मद करने मे चाय की अपेक्षा काफी का परिणाम कम होता है । तथापि पक्वाशय या आन्त्र की पाचन क्रिया पर तो इसका दुष्परिणाम चाय के समान ही होता है ।

मात्रा—पेय के लिये काफी के चूर्ण की मात्रा १० रत्ती से ३० रत्ती तक तथा इसके सत्व या केफीन की मात्रा अर्ध रत्ती से ढाई रत्ती तक, इसके पत्र-क्वाथ की मात्रा २ से ४ तोले ।

(१) पाचनक्रिया तथा जीवन विनिमय क्रिया मे विकृति होने से शारीरिक सन्धिस्थानों एव मूत्रपिण्डों मे एक प्रकार का क्षार सचित होकर पैरो के नसो को विकृत कर देता है, पांव फटते हैं और वातरक्त जैसे लक्षण होते हैं । ऐसी दशा मे भोजन के बाद इसका पेय रूप मे सेवन लाभकारी होता है ।

(२) आन्त्रवृद्धि (हर्निया) पर—यूनानी मतानुसार आधा पौड काफी को पीसकर खौलते हुये पानी मे डालकर १-१ प्याला प्रति १५ मिनिट से पिलाते रहने से (ऐसे ४-६ प्याले पिलाने पर) आन्त्र ऊपर को यथास्थान आ जाती है ।

कहवा (काफी)

Coffea arabica

पुष्प

कलिया

पौधा

फल

पत्र
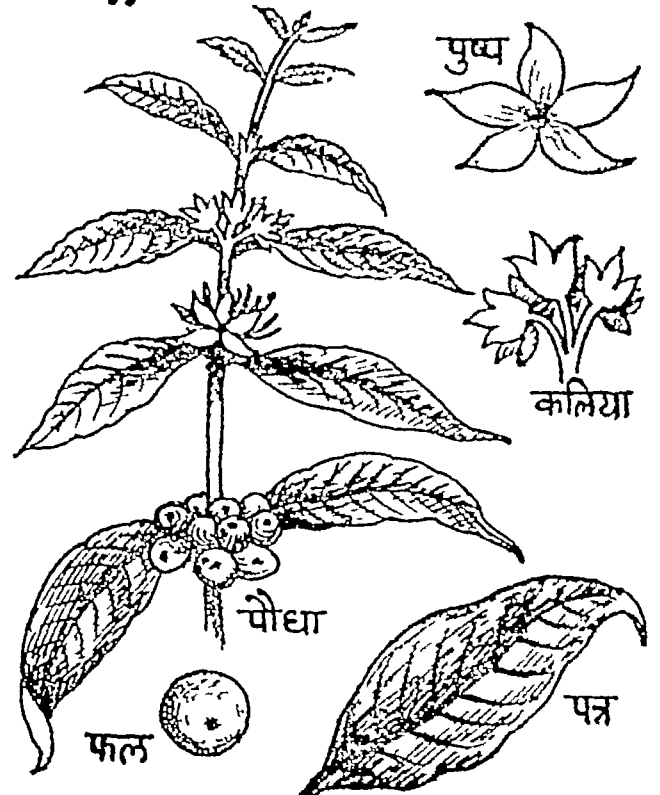
(३) सूर्यावर्त्त या आधाशीशी पर—इसे एस्प्रिन के साथ पिलाते हैं।

(४) श्वास, कास पर—कुचला सत्व के साथ इसके प्रयोग से श्वास के वेग की शान्ति होती है।

खासी पर—इसे पीसकर शहद मिला बार बार चटाने से शुष्क और आर्द्र कास दूर होती है।

(५) मलेरिया आदि विषमज्वरो पर—इसका प्रयोग कुनैन, मेगसल्फ आदि तिक्त औषधियो के साथ करते हैं। अथवा—

इसके पत्ते ३ से ६ माशे तक लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर एव तज्जन्य शैथिल्य निवृत्त होता है।

ज्वर के कारण हृदय शैथिल्य हो तो इसके साथ कुचला या डिजीटेलिस का प्रयोग करते हैं।

(६) दन्तकृमि और मुख दुर्गन्ध पर इसके क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

कामरूप (Ficus Retusa)

इस वटकुल (Urticaceae) की वनस्पति के पीपल जैसे वडे वडे वृक्ष हिमालय के पूर्व भाग मे कुमायू मे वगाल और आसाम तक तथा दक्षिण भारत में भी पाये जाते हैं। पत्ते—पीपल के पत्र जैसे ही किन्तु छोटे होते हैं। इन वृक्षो की वहुत सघन छाया होती है। अत ये सडको के दोनो किनारों पर लगाये जाते हैं।

नाम—

सं.—कामरूप, नंदीवृक्ष आदि।
हि.—कामरूप, पिनखन, अंजन, जिर।
वं—कामरूप। म—नादरूख, तुनिवृक्ष।
ले.—फायकस रेटुसा (Ficus Ratusa)।

गुणधर्म और प्रयोग

लघु ग्राही, तिक्त, कटु, शीत वीर्य है तथा पुष्टिकर, वीर्यप्रद, वृष्य, त्रिदोष, व्रण, कुष्ठ, रक्तपित्त, सिरदर्द, खुजली, रक्तदोष, यकृत विकार, योनिकन्द, अण्डवृद्धि आदि नाशक है।

(१) योनिकन्द पर—(स्त्री के योनि-मुख पर वडहल के फल जैसी मासवृद्धि रोग—Vaginal polypus) पर इसकी छाल के साथ लोध को कूट पीस कर इमली के पानी मे घोलकर पका गाढा होने पर लेप करें।

(२) वातज सिर दर्द पर—इसके पत्तो व अन्तरछाल को पीस कर जल मे पकाकर बफारा देने तथा इसके कल्क की पुल्टिस जैसी बना सिर पर वांधने या गरम (सुखोष्ण) लेप करने से लाभ होता है।

(३) अण्डवृद्धि पर—इसके पत्र रस मे समभाग काली तुलसी के पत्तो का रस मिला जितना रस हो उतना ही घृत मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर पुन उक्त रस को मिला पकावें। इस प्रकार २१ बार करने पर जो घृत सिद्ध हो, उसे दिन मे ४-५ बार अण्डकोष पर धीरे धीरे मालिश कर पुरानी ईट से सेकतें रहे।

(४) अर्श पर—पत्र रस पिलावें। (व गुणादर्श)

(५) व्रण पर—जड की छाल और पत्तो को तिल तैल मे पका कर तैल को लगाते हैं।

कायफल (Myrica Nagi)

यह हरीतक्यादि वर्ग की तथा नैसर्गिक क्रमानुसार अपने कट्फल-कुल [Myrticaceae] की प्रमुख वनौषधि है। चरक और सुश्रुत के सधानीय, शुक्रशोधनीय, वेदना स्थापनीय एव लोध्रादि तथा सुरसादि गणो मे इसकी गणना की गई है।

इसके वृक्ष मध्यमाकार के मोटे सदा हरे भरे छाया-युक्त एव अति सुगंधित होते हैं। इसकी छाल-वादामी धूसर या कृष्णाभ बर्ण की जाडी १/४ से १/२ इंच तक मोटी, खुरदरी तथा छोटे छोटे लम्वे धब्बो से युक्त होती है। इसी छाल को सर्वसाधारण कायफल कहते हैं। यह एक रूढी संज्ञा है। वगला मे तो इसकी ठीक सज्ञा कायछाल ही है। औषधि कर्म मे प्राय यही छाल ली जाती है। इस वृक्ष के पत्ते एकांतर, भालाकार, ४ से ८ इंच तक लम्बे, १॥ से २ इंच चौडे, गुच्छेदार तथा सुगंधित होते

हैं। इसके पत्रवृन्त, पुष्प दण्ड एवं नूतन शाखाओ पर बादामी वर्ण का रोमावरण होता है। पुष्प शीतकाल के प्रारम्भ मे पीताभलाल वर्ण के लगते हैं। ये सुगधित होते हैं। फल $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इच लम्बे, खिरनी के फल या जायफल जैसे किंतु कुछ चिपटे, रक्ताभ या पीताभलाल वर्ण के पकने पर हो जाते हैं। ये ग्रीष्म काल मे पकते हैं। इन्हे पहाड़ी लोग तथा चीन, जापानी और यूरोप मे भी पका कर या वैसे ही शौक से खाते हैं। खाने मे ये स्वादिष्ट होते हैं। इन फलो मे मोम के समान गाढा तैल होता है।

इसके वृक्ष उत्तर पजाब, गढवाल, शिमला, कुमायू, खासिया पहाड़, सिंगापुर आदि मे खूब होते हैं। चीन और जापान मे इसकी बहुत उपज होती है।

नोट—कई लोग कुम्भी वृक्ष (Careya Arborea को ही कायफल वृक्ष मानते हैं। क्योंकि इसकी छाल भी प्रायः कायफल जैसी ही होती है, तथा गुणधर्म मे भी कुछ साम्य है। किंतु यह असली कायफल नहीं है। आगे कुंभी का प्रकरण देखिये।

कुछ लोग जंगली जायफल, रामपत्री [Myristica Malabarica] को ही कायफल मानते हैं। किंतु ध्यान रहे इस जंगली जायफल के ऊपर जावित्री जैसा जो छिलका होता है, जिसे रामपत्री कहते हैं। वैसा कायफल का फल नहीं होता। जंगली जायफल का प्रकरण देखिये।

नाम—

सं.—कट्फल, कुंभी [कुंभाकार फल होने से] श्रीपर्णिका [सुन्दरपत्रयुक्त], महावल्कल, रोहिणी [रक्तवर्णयुक्त], कैटर्य भद्रा आदि।

हि.—कायफल, कफर, कायफल।

बं.—कायछाल, कटफल। म.—कायफल।

गु.—करिफल, कायफल।

अं.—बॉक्स मिर्टल (Box Myrtle), बे बेरी (Bay berry)

ले.—मायरिका नेगी, मायरिका सेपीडा (M Sapida)

रासायनिक संघठन—

छाल मे एक कषायद्रव्य (टेनिन), शर्करा (सेकरीन), लवण तथा मायरिसेटिन [Myricetin] नामक एव रजक द्रव्य पाया जाता है। छाल को पीसकर पानी मे डालने से वह लाल होजाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

तीक्ष्ण, कटु तिक्त कषाय, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, ग्राही, उत्तेजक, शूल प्रशमन, सधानीय, शोथहर, स्वेदजनक, तथा वातकफ शामक, पित्तवर्द्धक, कफनि:सारक, श्वासहर, मूत्र सग्रहणीय, शुक्रशोधन, वाजीकर, आर्त्तवजनन, कण्डूघ्न एव ज्वरहर है।

मूर्च्छा, प्रतिश्याय एव शिर शूल मे शिरोविरेचनार्थ इसका नस्य देते हैं। यह कृमिघ्न एव कषाय रस युक्त होने से इसके चूर्ण को बुरकने से व्रण का शीघ्र शोधन और रोपण होता है। यह उष्णवीर्य एव उत्तेजक होने से हैजा, सन्निपात आदि की अवसाद अवस्था मे हाथ पैर ठडे पड जाने पर इसके चूर्ण का उद्घर्षण करने से लाभ होता है, इसमे सोंठ चूर्ण भी मिला लेते हैं। यह वातनाडियो के लिये बलप्रद होने से इसे तैल मे पकाकर पक्षाघात, अर्दित आदि वातविकारो पर अभ्यग करने से लाभ होता है। मुखपाक और दन्तशूल की

अवस्था मे इसके क्वाथ का गंडूष मुख में धारण करने से अथवा मंजन करने से यह अपने कोथ प्रशमन गुणो से लाभ पहुँचाता है। इसके चूर्ण की पोटली योनि मे रखने से यह अपने गर्भाशय सकोचक गुण द्वारा कष्टार्तव को निवृत्त करता है। यह कटु, उष्ण और ग्राही होने से इसका प्रयोग अरुचि अग्निमाद्य, अतिसार, उदरशूल और अर्श पर किया जाता है। हृद्य और सधानीय होने से यह हृदय शैथिल्य, रक्तष्ठीवन और शोथ मे लाभकारी है। स्वेदजनन व शीतप्रशमन होने से ज्वर विशेषत शीत ज्वर में इसका प्रयोग होता है।

(१) गल रोग पर (कंठामृत)—छाल को स्वच्छ कर जौकुट चूर्ण (मोटा चूर्ण) कर स्वच्छ कलईदार पात्र मे ४० तोले चूर्ण को ८ सेर पानी मे डाल रात भर पड़ा रहने दें, दूसरे दिन पकावें। जब १ सेर क्वाथ शेष रहे तब वस्त्र से छानकर पुन पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर ठडा करें। फिर उसमे मधु या ग्लिसरीन १० तोला डालकर अच्छी तरह मिला दें। बोतल मे भर उसमे मद्यसार (स्प्रिट रेक्टिफाईड) २ तोला और सत पोदीना २ माशा घोल दें। जब सब घुल मिलकर एक हो जाय तब शीशियो में भर रक्खें।

यथाविधि गले के भीतर दिन मे ३-४ बार लगाने से कठशालूक, उपजिह्विका, कण्ठशोथ, पीडा आदि समस्त गल रोग शान्त होते हैं। उक्त रोगो से पीडित आबाल-वृद्ध सबको खाने के लिये इसे दे सकते हैं। ४-२० बूंद तक मदोष्ण जल मे मिला दिन में ३-४ बार दिया जाता है। इच्छित लाभ होता है। यह भयकर कासवेग व श्वास वेग को दूर करता है। यक्ष्मा के रोगियो को कास द्वारा झागदार श्लेष्मस्राव होने पर इसके प्रयोग से आश्चर्य-कर लाभ होता है।—कवि श्री हरदयाल, गुप्तसिद्ध प्रयोग

(२) गृध्रसी (रीगन वायु Sciatica) पर—आध सेर छाल-चूर्ण तार की चलनी में छना हुआ लेकर १ सेर कडुवा तैल प्रथम मंदाग्नि पर पकाकर उसमें १-१ तोला चूर्ण डालते जावें। धीरे धीरे सब चूर्ण के जल जाने पर तैल को कपडे में अच्छी तरह निचोडते हुये छान लें। कपडे की कीट को चिकनी हांडी मे रक्खें और तैल को अन्य चिकनी हाडी मे भर रक्खें। जब तैल का मल हाडी के तल भाग मे बैठ जाय तब निथरे हुए तैल को बोतल में भरें तथा हाडी की गाद को भी उक्त कीट मे मिला दें। शरीर के पीडा स्थान पर दो घटे तक उक्त तैल की मालिश करवावें। मालिश कराते समय हथेली को आग पर गरम कर उसी हथेली से मालिश कराते जावें। पश्चात् कीट को कपडे की पोटली मे रख गरम कर धीरे धीरे सेक करें। फिर उसी पोटली के कीट को गरम गरम ही उस स्थान पर बाध दें। इस प्रकार कुछ दिन करने से अवश्य लाभ होता है। इस कायफल के तैल मे थोड़ी अफीम जला ली जाय तो और भी अच्छा है। साथ ही साथ निम्न घृत का सेवन करें। आध सेर इसके मोटे चूर्ण मे ४ सेर पानी मिला क्वाथ करें। २ सेर शेष रहने पर छानकर २ सेर घृत के साथ घृत सिद्ध कर लें। इस घी का स्वाद खराब नही होता। मात्रा—२-३ तोला नित्य सेवन करें। इसके साथ योगराज गूगल भी लें तो और अच्छा। ३-४ दिन मे ही रोग दूर हो जाता है।

—रसायनाचार्य स्व वैद्य श्यामसुन्दराचार्य

(३) अतिसार पर—इसके चूर्ण के साथ अतीस, नागरमोथा, कुडा छाल और सोठ समभाग मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिलाकर पीने से पित्तातिसार नष्ट होता है। वातकफज अतिसार हो तो इसके चूर्ण के साथ मुलैठी, लोध्र और अनारफल के छिलको का चूर्ण मिला चावलों के पानी के साथ सेवन करें। (भा प्र) अथवा—

किसी प्रकार का भी अतिसार हो इसके साथ बेल गिरि मिला क्वाथ बनाकर सेवन करे।

(४) व्रण, चोट, मोच, शोथ और शूल पर—इसके चूर्ण के साथ अनार छाल, हल्दी, फूल प्रियगु, त्रिफला और धाय के फूल के चूर्ण समभाग अच्छी तरह खरल कर तथा आमले के रस में पीसकर लेप करने से कुष्ठ व्रण भी भर जाते हैं। (वगसेन) अथवा—

व्रण को इसके क्वाथ से प्रक्षालन कर इसके महीन चूर्ण को ऊपर से बुरकते रहने से या इसे तैल मे पका-कर उस तैल को लगाते रहने से भी लाभ होता है।

अथवा—इसके फलो को उबालने से जो मोम जैसा पदार्थ निकलता है उसका उपयोग व्रण पूरणार्थ करें।

चोट, मोच, सूजन आदि पर इसके चूर्ण को पीडित स्थान पर घिसते हैं या इसे पानी मे पीस गरम कर प्रलेप करने से भी रक्त विखर कर शोथ मे लाभ होना है। इससे ग्रन्थि पर भी लाभ होता है।

✓ सधिशूल पर—इसके तैल की मालिश करते है। दन्तशूल पर—इसके चूर्ण को सिरके मे मिलाकर मसूढे पर लगाते हैं। कर्णशूल पर—इसके तैल को कान मे डालते हैं।

✓ कर्णमूल शोथ पर—सन्निपात ज्वर के शान्त होने पर जो कर्णमूल मे शोथ होता है, प्रथम उससे रक्त निकलवावें फिर इसके चूर्ण के साथ काला जीरा, सोठ और कुलथी समभाग सवका महीन चूर्ण पानी मे पीस बार बार लेप लगावें। —भा भै र

✓ (५) कष्टार्त्तव पर—इसके साथ काले तिल, केशर और सनई के बीजो का एकत्र चूर्ण कर गुड के अनुपान से देते हैं। इस प्रयोग के कुछ समय बाद ही भोजन देना चाहिये। अन्यथा जी मिचलाने लगता है। इसके चूर्ण का पिचु या वत्ती वना योनि मे धारण कराते है।

(६) अर्श, उदरशूल और नपुंसकता पर—इसके चूर्ण के साथ कत्था, हीग, कपूर का चूर्ण मिला घृत के साथ इसका लेप करते रहने से अर्शांकुर नष्ट होते हैं। अथवा इसके चूर्ण को ही घृत में मिला कर लेप करे।

वातज उदर शूल पर—इसके ४ माशे चूर्ण को पानी मे थोडा जोश देकर या फांट वनाकर, छानकर उसमे थोडी मिश्री मिला पिलावें।

नपुसकता पर—इसके चूर्ण को भैंस के दूध मे पीस कर रात्रि के समय शिश्न पर लेप कर प्रात धो डालें। ऐसा करते रहने से कुछ दिनो मे लाभ हो जाता है।

(७) अपस्मार या मूर्च्छा पर—इसका चूर्ण, नकछिकनी चूर्ण और कटेरी के शुष्क फलो का चूर्ण २-२ माशे लेकर उसमे तमाखू चर्ण ४ तोला मिला खूब खरल कर कपडछन कर नस्य वना रक्खें। इसके नस्य से शीघ्र रोगी होश मे आता है। किन्तु यह नस्य उग्र होने से सावधानी के साथ इसका प्रयोग करें अथवा केवल इसके ही चूर्ण के नस्य से लाभ होता है। प्रतिश्याय, शिर शूल, चक्कर तथा अपस्मार मे भी इसे देते हैं।

(८) शीतपित्त पर—इसके ६ तोले चूर्ण को जल मे पीसकर कल्क वनावें, फिर ३० तोले शुद्ध तिल तैल के साथ मद आच पर तैल सिद्ध करलें। ठडा होने पर छान रक्खें। आवश्यकतानुसार रोगी के शरीर पर लगायें —अ गुप्तसिद्ध प्रयोग धन्वन्तरि

(९) प्रतिश्याय, कास, श्वास, ज्वर, यकृत् विकार, स्वरभग, श्वासनलिका शोथ, अग्निमाद्य, अरुचि, अतिसार, आध्मान, मूत्रातिसार, गडमाला आदि पर इसके चूर्ण के हाथ सोठ और दालचीनी का चूर्ण मिलाकर क्वाथ वना कर सेवन करते हैं।

यदि कफज ज्वर मे कास और श्वास का प्रकोप हो तो इसके चूर्ण के साथ पोखरमूल, काकडासिंगी और पीपल चूर्ण मिला उचित मात्रा में शहद के साथ चटावें।

यदि कफज हृद्रोग हो तो इसके साथ अदरख, दारु हल्दी, हरड और अतीस का चूर्ण मिला गोमूत्र मे पकाकर सेवन करने से लाभ होता है (च चि अ २६)। यहां अदरख के स्थान मे सोठ तथा दारुहल्दी के अभाव मे देवदारु ले सकते हैं। यदि गोमूत्र मे रोगी को सहन न हो तो जल मे क्वाथ कर देवें।

विशिष्ट योग—

✓ (१०) कट्फलारिष्ट—इसकी नवीन छाल ५ सेर लेकर जवकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावें। १३ सेर जल शेप रहने पर छानकर उसमे मिश्री १२ सेर, शहद साढे छ सेर, धायफूल १३ छटाक, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची और लौग का चूर्ण ४-४ तोला मिला ठीक ठीक सन्धान कर २१ दिन तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर शीशियो मे भर लें।

मात्रा—एक से ढाई तोला जल के साथ जिस स्त्री को गर्भधारण न होता हो उसे मासिक धर्म के उपरान्त तीन दिन दोनो समय सेवन कराने के बाद मैथुन से गर्भ स्थापना होती हैं। पथ्य मे केवल दूध भात देवें।

कफदोष, पाचन दोष या वातदोष के कारण होने वाला सिरदर्द, पाचन दोष से होने वाला धातुपात, मूत्र मे सफेदी का आना, अतिसार, आध्मान आदि विकार

इसके सेवन से शीघ्र दूर होते है। तिजारी आदि विषम ज्वरो मे भी यह लाभकारी है।

मात्राविचार—इसके चूर्ण की मात्रा १ से २ माशे तक बच्चो को १-२ रत्ती अनुपान मे अदरख रस और शहद। क्वाथ ३ माशे से १ तोला तक। अत्यधिक मात्रा मे देने से वमन और थकावट होती है।

यह यकृत् और प्लीहा के लिये अधिक मात्रा मे हानिकर है। इसकी हानि निवारणार्थ मस्तगी या कतीरा और बबूल का गोद देते हैं।

नासिका मे पत्थर, लकडी, दाना आदि घुस जाने या कफ सूखकर श्वासोच्छ्वास बन्द हो जाने पर इसका चूर्ण आध रत्ती तक सु घाने से छीकें आकर नासिका मार्ग साफ हो जाता है। आधाशीशी पर भी इसे सु घाते हैं। किन्तु चूर्ण को अधिक सु घाने से छीक आकर नाक से रक्तस्राव यदि होने लगे तो घृत या तिल तैल की नस्य देवें।

कायापुटी (Melaleuca Leucadendron)

इस लवगादि कुल (Myrtaceae) के सदा हरे भरे वृक्ष की ऊंचाई ४० से ५० फुट तक होती है। छाल कागज जैसी श्वेताभ, मुलायम १ इच तक मोटी पत्र—कुछ लाल रग के नुकीले खडी नसो वाले, १॥ से ५ इच लम्बे तथा ½ से ¾ इच चौडे छोटे छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प-मजरी २—६ इच लम्बी, जिसमे पीताभ श्वेत पुष्प, कोमल रोमयुक्त तथा सघन चक्राकार लगते हैं। फल—नलिकाकार ⅙ इञ्च व्यास का काष्ठमय एव वृन्तरहित होता है।

यह आस्ट्रेलिया, कम्बोडिया, मलाया आदि देशो का वृक्ष है। किन्तु भारत के पजाब, बगाल, बबई, मद्रास, बिहार आदि प्रान्तो मे बाग बगीचो मे लगाते हैं।

आयुर्वेदीय या यूनानी ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही है। किन्तु आधुनिक चिकित्सा मे इसके तैल (Oil Cajuput) का विशेष महत्व है। यह उडनशील तैल इस वृक्ष की ताजी पत्तियो एव कोमल टहनियो से भवके द्वारा खीचा जाता है। प्रथम बार खीचने से भवका यत्र के ताम्राश के आ जाने से यह तैल नीलाभ हरित वर्ण का होता है। अत इसे विशुद्ध करने के लिले इसे पानी मे मिलाकर पुन. परिस्रवण (भवके द्वारा) किया जाता है। तब यह रगहीन या कुछ पीताभ हो जाता है। इसकी गध कपूर, लवेंडर या इलायची मिश्रित सुगन्ध जैसी रुचिकारक तथा स्वाद में तिक्त एव कपूर के समान होता है।

नाम—

हि०—कायापुटी, कजापुटी। बं०—काजुपुटी

म०—कायाकुटी, काजुपुट गु०—काजुपुटी

अं०—काजुपुट आईल ट्री (Cajuput Oil Tree)

ले०—मेलाल्युका ल्युकाडेन्ड्रां।

रासायनिक संगठन—

इसमें मुख्यत सिनिओल (Cineole) ५० से ६० प्रतिशत, तथा टर्पिनिओल (Turpeneole) होता है।

चोट, मोच, सूजन आदि पर इसके चूर्ण को पीडित स्थान पर घिसते हैं या इसे पानी में पीस गरम कर प्रलेप करने से भी रक्त बिखर कर शोथ में लाभ होता है। इससे ग्रन्थि पर भी लाभ होता है।

✓ सर्विशूल पर—इसके तैल की मालिश करते हैं। दन्तशूल पर—इसके चूर्ण को सिरके में मिलाकर मसूडे पर लगाते हैं। कर्णशूल पर—इसके तैल को कान में डालते हैं।

✓ कर्णमूल शोथ पर—सन्निपात ज्वर के शान्त होने पर जो कर्णमूल में शोथ होता है, प्रथम उससे रक्त निकलवावें फिर इसके चूर्ण के साथ काला जीरा, सोंठ और कुलथी समभाग सबका महीन चूर्ण पानी में पीस बार बार लेप लगावें। —भा भै. र

✓(५) कष्टार्तव पर—इसके साथ काले तिल, केशर और सनई के बीजों का एकत्र चूर्ण कर गुड के अनुपान से देते हैं। इस प्रयोग के कुछ समय बाद ही भोजन देना चाहिये। अन्यथा जी मिचलाने लगता है। इसके चूर्ण का पिचु या वत्ती बना योनि में धारण कराते हैं।

(६) अर्श, उदरशूल और नपुंसकता पर—इसके चूर्ण के साथ कत्था, हींग, कपूर का चूर्ण मिला घृत के साथ इसका लेप करते रहने से अर्शांकुर नष्ट होते हैं। अथवा इसके चूर्ण को ही घृत में मिला कर लेप करें।

वातज उदर शूल पर—इसके ४ माशे चूर्ण को पानी में थोडा जोश देकर या फांट बनाकर छानकर उसमें थोडी मिश्री मिला पिलावें।

नपुंसकता पर—इसके चूर्ण को भैंस के दूध में पीस कर रात्रि के समय शिश्न पर लेप कर प्रातः धो डालें। ऐसा करते रहने से कुछ दिनों में लाभ हो जाता है।

(७) अपस्मार या मूर्च्छा पर—इसका चूर्ण, नकछिकनी चूर्ण और कटेरी के शुष्क फलों का चूर्ण २-२ माशे लेकर उसमें तमाखू चूर्ण ४ तोला मिला खूब खरल कर कपडछन कर नस्य बना रक्खें। इसके नस्य से शीघ्र रोगी होश में आता है। किन्तु यह नस्य उग्र होने से सावधानी के साथ इसका प्रयोग करें अथवा केवल इसके ही चूर्ण के नस्य से लाभ होता है। प्रतिश्याय, शिर शूल, चक्कर तथा अपस्मार में भी इसे देते हैं।

(८) शीतपित्त पर—इसके ६ तोले चूर्ण को जल में पीसकर कल्क बनावें, फिर ३० तोले शुद्ध तिल तैल के साथ मंद आंच पर तैल सिद्ध करलें। ठंडा होने पर छान रक्खें। आवश्यकतानुसार रोगी के शरीर पर लगावें —अ गुप्तसिद्ध प्रयोग धन्वन्तरि

(९) प्रतिश्याय, कास, श्वास, ज्वर, यकृत् विकार, स्वरभंग, श्वासनलिका शोथ, अग्निमांद्य, अरुचि, अतिसार, आध्मान, मूत्रातिसार, गंडमाला आदि पर इसके चूर्ण के साथ सोंठ और दालचीनी का चूर्ण मिलाकर क्वाथ बना कर सेवन करते हैं।

यदि कफज ज्वर में कास और श्वास का प्रकोप हो तो इसके चूर्ण के साथ पोखरमूल, काकड़ासिंगी और पीपल चूर्ण मिला उचित मात्रा में शहद के साथ चटावें।

यदि कफज हृद्रोग हो तो इसके साथ अदरख, दारु हल्दी, हरड और अतीस का चूर्ण मिला गोमूत्र में पकाकर सेवन करने से लाभ होता है (च चि. अ. २६)। यहा अदरख के स्थान में सोंठ तथा दारुहल्दी के अभाव में देवदारु ले सकते है। यदि गोमूत्र में रोगी को सहन न हो तो जल में क्वाथ कर देवें।

विशिष्ट योग—

✓(१०) कट्फलारिष्ट—इसकी नवीन छाल ५ सेर लेकर जवकुट कर १ मन १२ सेर जल में पकावें। १३ सेर जल शेष रहने पर छानकर उसमें मिश्री १२ सेर, शहद साढे छ सेर, धायफूल १३ छटांक, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर छोटी इलायची और लौंग का चूर्ण ४-४ तोला मिला ठीक ठीक सन्धान कर २१ दिन तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर शीशियों में भर लें।

मात्रा—एक से ढाई तोला जल के साथ जिस स्त्री को गर्भधारण न होता हो उसे मासिक धर्म के उपरान्त तीन दिन दोनों समय सेवन कराने के बाद मैथुन से गर्भ स्थापना होती है। पथ्य में केवल दूध भात देवें।

कफदोष, पाचन दोष या वातदोष के कारण होने वाला सिरदर्द, पाचन दोष से होने वाला धातुपात, मूत्र में सफेदी का आना, अतिसार, आध्मान आदि विकार

इसके सेवन से शीघ्र दूर होते है। तिजारी आदि विषम ज्वरों मे भी यह लाभकारी है।

मात्राविचार—इसके चूर्ण की मात्रा १ से २ माशे तक बच्चो को १-२ रत्ती अनुपान मे अदरख रस और शहद। क्वाथ ३ माशे से १ तोला तक। अत्यधिक मात्रा मे देने से वमन और थकावट होती है।

यह यकृत् और प्लीहा के लिये अधिक मात्रा मे हानिकर है। इसकी हानि निवारणार्थ मस्तगी या कतीरा और बबूल का गोद देते हैं।

नासिका मे पत्थर, लकडी, दाना आदि घुस जाने या कफ सूखकर श्वासोच्छ्वास वन्द हो जाने पर इसका चूर्ण आध रत्ती तक सुघाने से छीकें आकर नासिका मार्ग साफ हो जाता है। आधाशीशी पर भी इसे सुंघाते हैं। किन्तु चूर्ण को अधिक सुंघाने से छीक आकर नाक से रक्तस्राव यदि होने लगे तो घृत या तिल तैल की नस्य देवें।

कायापुटी (Melaleuca Leucadendron)

इस लवगादि कुल (Myrtaceae) के सदा हरे भरे वृक्ष की ऊचाई ४० से ५० फुट तक होती है। छाल कागज जैसी श्वेताभ, मुलायम १ इच तक मोटी पत्र—कुछ लाल रग के नुकीले खडी नसो वाले, १॥ से ५ इंच लम्बे तथा ½ से ¾ इच चौडे छोटे छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प-मजरी २–६ इंच लम्बी, जिसमे पीताभ श्वेत पुष्प, कोमल रोमयुक्त तथा सघन चक्राकार लगते हैं। फल—नलिकाकार ⅙ इन्च व्यास का काष्ठमय एव वृन्तरहित होता है।

यह आस्ट्रेलिया, कम्बोडिया, मलाया आदि देशो का वृक्ष है। किन्तु भारत के पजाब, बगाल, बबई, मद्रास, बिहार आदि प्रान्तो मे बाग बगीचो मे लगाते हैं।

आयुर्वेदीय या यूनानी ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही है। किन्तु आधुनिक चिकित्सा मे इसके तैल (Oil Cajuput) का विशेष महत्व है। यह उडनशील तैल इस वृक्ष की ताजी पतियो एव कोमल टहनियो से भवके द्वारा खीचा जाता है। प्रथम बार खीचने से भवका यत्र के ताम्रांश के आ जाने से यह तैल नीलाभ हरित वर्ण का होता है। अत इसे विशुद्ध करने के लिले इसे पानी मे मिलाकर पुन परिस्रवण (भवके द्वारा) किया जाता है। तब यह रगहीन या कुछ पीताभ हो जाता है। इसकी गध कपूर, लवेंडर या इलायची मिश्रित सुगन्ध जैसी रुचिकारक तथा स्वाद मे तिक्त एव कपूर के समान होता है।

कायापुटी
Melaleuca leucadendron Linn.
पुष्प
पत्र
फल

नाम—

हि०—कायाउटी, कजापुटी। बं०—काजुपुटी
म०—कायाकुटी, काजुपुट गु०—काजुपुटी
अं०—काजुपुट आईल ट्री (Cajuput Oil Tree)
ले०—मेलाल्युका ल्युकाडेन्ड्रॉ।

रासायनिक संगठन—

इसमें मुख्यत सिनिओल (Cineole) ५० से ६० प्रतिशत, तथा टर्पिनिओल (Turpeneole) होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह तैल उत्तेजक, मूत्रल, स्वेदल, वातनाशक, ज्वरघ्न, कफघ्न, हृदयशूलहर, कीटाणुनाशक एव पीडा-हर है। आमवात, सिरपीडा, आध्मान, दन्तरोग, पूय-प्रधान कफयुक्त कास, श्वास, मूत्रनलिका प्रदाह, श्वास-नलिका प्रदाह आदि पर उपयुक्त है। इसकी क्रिया प्राय' लौंग के तैल जैसी होती है।

वाह्यत त्वचा पर लगाने से यह रक्तिमोत्पादक या प्रमाथी एव प्रतिक्षोभक होता है। इस कार्य के लिये शोथ एव पीडायुक्त स्थानो पर विशेषत वेदना प्रधान सधि-प्रदाह, फुफ्फुस प्रदाह, श्वासनलिका प्रदाह आदि की अवस्था मे इसे सरसो तैल या अन्य वेदनाहर तैलो (लिनिमेट कॅफर या लिनिमेंट टरपेंटाइन) मे मिलाकर मालिश के लिये प्रयुक्त करते हैं। कर्णरोग, व्रण, जख्म, प्रदर आदि मे भी इसका वाह्योपचार होता है।

आध्मानसहित उदरशूल, उदरवात, एवं आक्षेप आदि पर वातानुलोमनार्थ इस तैल की १ से २–३ बूंद की मात्रा शक्कर या वताशे में डाल कर खिलाई जाती हैं। इससे दीपन कार्य भी होता है। इसे मद्यसार में भी मिलाकर देते हैं। कर्ण पीडा और वधिरता पर—इस तैल को जैतून तैल (Olive oil) मे मिलाकर कान मे डालते हैं।

मात्रा—१ से ३ बूंद, मद्यसार या शक्कर के साथ दिन मे ३ वार। इस तैल के साथ ९ गुना मद्यसार मिलाकर स्पिरिट काजुपुटी बनाते हैं। इसकी मात्रा ५ से ३० बूंद है।

गठिया आदि वात व्याधियो पर मालिश के लिये यह तैल २ मासा, शुद्ध रेंडी तैल ४ मासा और जैतून १॥ तोला एकत्र मिला काम मे लाते हैं।

कालमेघ (Andrographis Peniculata)

हरीतक्यादि वर्ग के चिरायता के ही जैसी स्वरूप किंतु हीन गुणधर्मवाली यह वनौषधि वासा कुल (Acanthacae) की मानी जाती है। यह एक हलके दर्जे का चिरायता ही है। वाजारू चिरायते मे इसका भी मिश्रण पाया जाता है। किंतु इसमें और चिरायते मे जाति या कुल की विभिन्नता है। तथा चिरायता के स्थान मे केवल इसके ही प्रयोग से उतना लाभ नही होता है।

प्राचीन चरकादि ग्रन्थो मे या निघण्टुओ मे इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है[1]। इसकी एक गौण जाति और होती है, जिसे जगली चिरायता, मरेठी मे शन-चिमनी, किरायत आदि तथा लेटिन मे Andrographis Echioides कहते हैं। इसका क्षुप भी प्राय काल-मेघ के क्षुप जैसा ही होता है। इसकी फली कुछ अधिक लम्बी एव नलिकाकर होती है। गुणधर्म मे यह कालमेघ जैसा है। यह दक्षिण भारत मे बहुत पाया जाता है।

दक्षिण भारत मे करपनाथ, फलपनाथ नामक और एक कालमेघ होता है। यह लता रूप मे होती है वृक्षो पर लिपट जाती है। फूल अच्छे सुन्दर मनुष्य की आंखों की तरह श्वेत वा काले होते हैं। यह उष्ण और रूक्ष है। शीत ज्वर मे इसके पत्ते ९ माशे और काली मिर्च ५ नग पानी मे पीस कर पीते हैं। अथवा इसके पत्तो के साथ ताजी गिलोय, नौसादर और काली मिर्च समभाग सबको पानी के साथ उड़द जैसी गोलिया बना जूड़ी के वेग से पूर्व दो गोलिया देने से लाभ होता है। (यूनानी)

प्रस्तुत प्रसग के कालमेघ के एक वर्षायु क्षुप

---

[1] प्राचीन ग्रन्थों में यवतिक्ता, शंखिनी आदि पर्याय-वाची नाम जिस बूटी के लिये हैं, उसे ही कालमेघ मानना अनिश्चित है। सुश्रुत सू. अ. ४५ में यवतिक्ता तैल के जो गुण (सर्वदोषप्रशमन, अग्निदीपक, लेखन, मेधा के लिए हितकर, पथ्य, रसायन) दिये हैं, उससे कालमेघ के गुणों की कुछ साम्यता पाई जाती है। किंतु डल्हण ने जो इसका परिचय दिया है—"यवतिक्ता यवक्षेत्रेषु जायते तिक्त सप्ताष्टपत्रा यवतिक्तेति प्रसिद्धा" इस परिचय से आधु-निक प्रचलित कालमेघ का पूर्ण साम्य नहीं बैठता। तथापि इस प्रकार कालमेघ को यवतिक्ता मान लेने में कोई विशेष हानि नहीं। तथा इसी दृष्टि से शंखिनी को भी हम कालमेघ का पर्याय मान लेते हैं।

वर्षाकाल मे पैदा होते है। आर्द्र भूमि पर बारहो मास हरे बने रहते हैं। क्षुप १-२ फुट ऊ चा, बहुशाखाय, काड (तना) चतुष्कोण, निम्न भाग मे चिकना, ऊपर रोमश होता है। पत्र—हरे मिर्च के पत्र जैसे, कोमल, भालाकार, अभिमुख, रेखाकार, २-३ इ च लम्बे, १ इ च चौड़े, ऊपरी भाग गहरा हरा एव चमकीला, तल भाग पाताभ श्वेत दाने होते हैं। पुष्प—कुछ गुच्छो मे नन्हे नन्हे श्वेत, नील वर्ण के दूर से देखने पर मच्छर जैसे मालूम होते हैं। ये पुष्प वासा कुल के विशिष्ट लक्षणानुसार द्विओष्ठी होने से ही यह बूटी वासा कुल का माना गई है। पुष्प का ऊर्ध्वोष्ठ दो खण्डो वाला तथा अधरोष्ठ तीन खण्डो वाला होता है। फल—यवाकार और तिक्त होने से इसे यवतिक्ता संस्कृत मे कहते हैं। यह फली भूरे वर्ण की ३/४ इ च लम्बी, दोनों सिरो पर जव जैसा नोंकदार होती है। बीज—प्रत्येक फली मे पीले या भूरे रग के ७-८ वीज होते हैं। मूल—बहुत छोटी, किंतु

कालमेघ

Andrographis paniculata, Nees.

पुष्प

पत्र

शाख

कही कही एक से तीन फुट तक लम्बी भा होती है। यह कुछ सुगधित तथा स्वाद मे अति कडुवी होती है।

यह बूटी भारत मे प्राय सर्वत्र विशेषत जल भूयिष्ठों स्थानो मे (जहा मलेरिया विशेष होता है) तथा बगाल, असाम आदि मे खूब होती हैं।

नाम—

सं०—यवतिक्ता, किरात तिक्त, कालमेघ।
हि०—कालमेघ, महातीता, महाभांग, कल्पनाथ।
म०—ओले किराइत, पाले किराइत।
बं०—काममेघ, महातीता, अलुई। गु०—लीलूं, किरायतुं।
अं०—दि क्रीट (The creeet), Kalmegh
ले०—एण्डोग्रफिस पेनिकुलेटा,
जस्टिसिया पेनिकुलेटा (Justicia Paniculata)

रासायनिक संगठन—

इसके समस्त क्षुप मे कालमेघिन (Kalmeghin) नामक तिक्त रालदार सत्व एव अधिक परिणाम मे पूर्ण हरित (Chlorophyll), पत्र मे किंचित सुगधित तैल व दो तिक्त पदार्थ पाये जाते हैं। पचाङ्ग के भस्म मे सोडियम क्लोराइड व पोटासियम लवण होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटुविपाक व उष्ण वीर्य है। तथा कफपित्तहर, दीपन, पाचन, आम दोषहर, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, रेचक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, स्वेदजनक, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, नियतकालिक ज्वर प्रतिवन्धक, कटुपौष्टिक, वालको के लिये विशेष लाभकारी है। इसमे रक्तशोधन गुण होने से उपदशज रक्तविकार आदि मे अन्य रक्तशोधक द्रव्यों के साथ मिलाकर इसे देते हैं। ज्वर पर इसका प्रभाव क्विनाईन जैसा, किंतु उससे कुछ कम होता है। कुनाईन के दुष्परिणाम इससे नही होते। कुनाईन के प्रचार के पूर्व ब्रिटिश औषधि सग्रह मे इसका एक विशेष स्थान था। इसका प्रवाही घनसत्व (Liquid extract-Kalmegh) एक ऑफिशियल योग था। इसकी मात्रा ८ से १५ बूद दी जाती थी। इसे मल्लभस्म के साथ देने से कुनाईन से भी बढकर यह कार्य करती है।

वच्चो की यकृत्विकृतियो मे, विशेपत यकृत शैथि-

त्यजन्य अग्निमाद्य व क्षुधानाश मे यह बहुत लाभकारी है। नवसादर के साथ देने से यह यकृत्विकारो को शीघ्र दूर करती है।

(१) ज्वर पर—मलेरिया ज्वर पर इसके घनसत्व मे समभाग कालीमिर्च का महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना ज्वर के पूर्व देते रहने से लाभ होता है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके ११ पत्ते और ५ दाने कालीमिर्च एकत्र जल के साथ पीस छानकर दिन मे २ बार पिलाते रहने से ६-१० दिन मे ज्वर छूट जाता है। यदि ज्वर के साथ खासी भी हो तो उक्त योग में पीपल १ रत्ती, दालचीनी ३ रत्ती मिला सोठ के क्वाथ से पिलायें।

कामला सहित जीर्ण ज्वर पर—इसकी ७ पत्ती लेकर छिलकारहित भुने चने ११ दाने तथा भाग पत्ती ५ के साथ घोट पीस कर गुड में गोली बना सेवन कराने से लाभ होता है। [आ बू दर्पण]

विषम ज्वर पर और भी उत्तम योग—इसकी जड २॥ तोला, कालीमिर्च १। तोला तथा शुद्ध बच्छनाग ३ माशा इनके महीन चूर्ण को इसीके पत्र रस में या जड के क्वाथ से ६ घण्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना रक्खें। मात्रा—२ से ४ गोली सुखोष्ण जल से दिन में ३ बार देवे। अथवा—

इसके पचाङ्ग को कूटकर स्वरस निचोड कर अलग रक्खें। निचोडने पर जो चोथा रहता है उसमे ४ गुना जल मिला चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध कर छानलें। फिर इस क्वाथ मे उक्त स्वरस मिला धीमी आच पर पकावें। गाढा होने पर उसमे ½ भाग कालीमिर्च चूर्ण मिला चने जैसी गोलिया बनावें। मात्रा—१-२ गोली जल से ज्वर के पूर्व २-२ घंटे से देवें।

आगे विशिष्ट योगो मे कालमेघासव देखें।

(२) बाल रोगो पर— यदि यकृद्वृद्धि हो तो इसकी जड का चूर्ण का फाट २॥ तोला की मात्रा मे या इसका पत्र रस ५-५ बूंद दिन में ३ बार देते हैं। पथ्य मे केवल दूध या दूध को फाड कर छान कर निकाला हुआ जल पिलाते हैं। बालको के अजीर्ण पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण २ से ४ रत्ती या १५ से ६० बूंद तक या फाट ½ से १ तोला या कालमेघवटी (विशिष्ट यो मे देखें) १-१ गोली की मात्रा मे दिन मे २-६ बार जल के साथ देते रहने से पचन क्रिया का शीघ्र ही सुधार होकर शरीर पुष्ट होता है। अथवा इसके पत्र रस मे इलायची व लौंग का चूर्ण मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना जल के साथ देते रहने से आत्र पीडा, अतिसार तथा क्षुधामांद्य दूर हो जाता है।

प्रवाहिका पर—इस अर्क या चूर्ण के सेवन से उदर पीड़ासहित प्रवाहिका दूर होती है। यह बडो के लिये भी उपयोगी है।

(३) रक्त विकार पर—इसके ३ मासे स्वरस मे शहद दो तोले मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे दो बार पिलाते हैं। नमक से परहेज, केवल दूध, चावल या रोटी खाने को देते हैं।

मात्रा—चूर्ण ५ से १० रत्ती, स्वरस २ से ४ मासे बालको को १०-२० बूंद, क्वाथ २-४ तोले।

विशिष्ट योग—

(१) कालमेघासव—इसके पचाङ्ग को शुष्क कर कूट कर एक पाव (२० तोला) चूर्ण को ४ सेर पानी मे भिगो देवें। दूसरे दिन प्रातः मन्दाग्नि पर पकाने पर आध सेर क्वाथ शेष रहे तब उतार कर ठडा कर वस्त्र मे छानलें। शुद्ध चिकनी मटकी मे भर उसमे ३ पाव असली शहद मिला बन्द कर रक्खें। १५ दिन बाद छानकर काम मे लावें। मात्रा—१० से ३० बूंद तक जल ६ तोले मे मिला दिन मे दो बार सेवन करने से विषम या शीत ज्वर शीघ्र दूर होता है। यह दीपन, बलवर्धक, ज्वरातिसारनाशक एव बालको के लिये सदैव कल्याणकारी है। यकृत, प्लीहा विकार युक्त कामला पाण्डुरोग एव विशेषत बालको के कामला रोग पर विशेष लाभकारी है।

इसके पचाङ्ग के साथ सतौने (सप्तवर्ण) की छाल और सुदर्शनचूर्ण समभाग लेकर अष्टगुण जल मे अष्ट माश क्वाथ सिद्ध कर ठडा होने पर छानकर समभाग उत्तम शहद मिला १५ दिन तक सन्धान कर रक्खे। फिर छानकर काम मे लावें। मात्रा—१० से ३० बूंद ४ तोले जल के साथ ज्वर के पूर्व ४-४ घंटे बाद दिन मे

५ वार सेवन करने से हरप्रकार के विपमज्वर, यकृत प्लीहायुक्त पर यह कुनाईन से भी अधिक लाभकारी है।

(२) कालमेघवटी—इसका पत्र रस ४ तोले मे वडी इलायचीके दाने, दालचीनी, जायफल तथा श्वेत जीरा भूना हुआ ६-६ मासे और भुनी हीग ३ मासे इनका महीन चूर्ण मिला खूव खरल कर मटर जैसी गोलिया वना रक्खें। १-१ गोली वालको को देते रहने से दुर्वलता, अग्निमाद्य मरोड, अतिसार मे लाभ होता है।

अथवा—छोटी इलायची के दाने, लौंग, दालचीनी, जायफल, जावित्री तथा आम की गुठली की गिरी सम-भाग एकत्र कूट पीसकर कपडछन चूर्ण कर इसके पत्र रस मे घोटकर आध आध रत्ती की गोलिया वनालें। १-१ गोली दिन मे ३-३ बार वच्चो को देते रहने से उदरपीडा, अग्निमाद्य, ज्वर, अतिसार आदि दूर होते हैं।

काला डामर (*CANARIUM STRICTUM*)

इस गुग्गुलु कुल (Burseraceae) की वनौषधि के पौधे लगभग ४ से १० फीट तक ऊचे, पत्र नीमपत्र जैसे सयुक्त दल वाले, पुष्प कुछ लाल वर्ण के तथा फल गूदे-दार, लम्बगोल होते हैं।

इन पौधो से डामर जैसा काला गोद कुछ सुगन्धित निकलता है। औषधि में यही गोद लिया जाता है।

नाम—

हिन्दी, वंगला, गुर्जर—कालाडामर। मराठी—धूप, कालाडामर। अंग्रेजी—ब्लाक डामर (Black damer) लेटिन—केनेरियम स्ट्रिक्टम।

इसके वृक्ष भारत के दक्षिण कोकण, तिनेवली, ट्रावनकोर, कर्नाटक, मलावार आदि में पाये जाते हैं।

इसके गोद मे एक प्रभावशाली, उडनशील तैल होता है। यह गोद त्वचा के लिये उत्तेजक है।

विशेषत चर्मरोग पर तथा सन्धिवात आदि पर वांधने व लगाने के लिये पलस्तर और मलहम बनाने के काम आता है। सन्धिवात पर इस गोद मे तिल तैल मे मिलाकर मर्दन करते हैं व सेकते है।

कालादाना [Ipomoea Hederacea]

इस त्रिवृत्त कुल (Convolvulaceae) की बूटी की आरोही लता भारत मे प्राय सर्वत्र वाग वगीचो मे, ग्रामो मे तथा समीपवर्त्ती जङ्गलों मे पाई जाती है।

किन्तु आश्चर्य है कि आयुर्वेद मे इसका उल्लेख नही मिलता। सम्भव है प्राचीनकाल मे यह यहा न हो। मालूम होता है यह यहा फारस या अरव से लाया गया है। क्योकि पुराने यूनानी ग्रन्थो मे इसके रेचनगुण का विस्तार से वर्णन है। इसे हब्बुनील नाम दिया गया है तथा अपराजिता (कोयल) को इसका एक भेद या पर्यायवाची माना गया है। यह एक भूल सी मालूम देती है। इस भूल या भ्रम का उल्लेख तथा इन दोनो का भेद अपराजिता के प्रकरण (भाग १) मे देखिये।

कालादाना की लता का काड पतला, हरा एव सघन लम्वे रोमो से व्याप्त होता है।

पत्ते—व्यास मे २-५ इच के कपास के पत्र जैसे त्रिखड, रोमश पीताभ, हरितवर्ण के प्रवादार होते हैं। पत्रवृन्त १-४ इच लम्बा होता है।

पुष्प—गुलाबी लिये हुये नीले, अग्रभाग फनेल के आकार का, अधोभाग नलिकाकार प्राय १ से ५ की सख्या मे एक साथ रहते है। ये पुष्प प्राय पत्रो के बीच बीच मे लगते हैं।

फल—लगभग ½ इच के मुलायम, नोकदार, त्रिकोष-युक्त एव गोल होते हैं। प्रत्येक कोष मे १ या २ वीज होते हैं। वीज काले, त्रिकोणाकार होते हैं। भीतर की गिरी श्वेतवर्ण की होती है। शरदऋतु मे फलो के पकने पर ये वीज स्वय नीचे गिर जाते हैं। इन्ही वीजो को कालादाना या कृष्ण वीज कहते हैं।

छोटी और वडी की भेद से इसकी लता दो प्रकार की होती हैं। ऊपर का वर्णन छोटी का ही है। वडी के वीज कुछ वडे तथा पत्ते नागरपान (खाने के बगला

कालादाना
Ipomoea Nil Roth
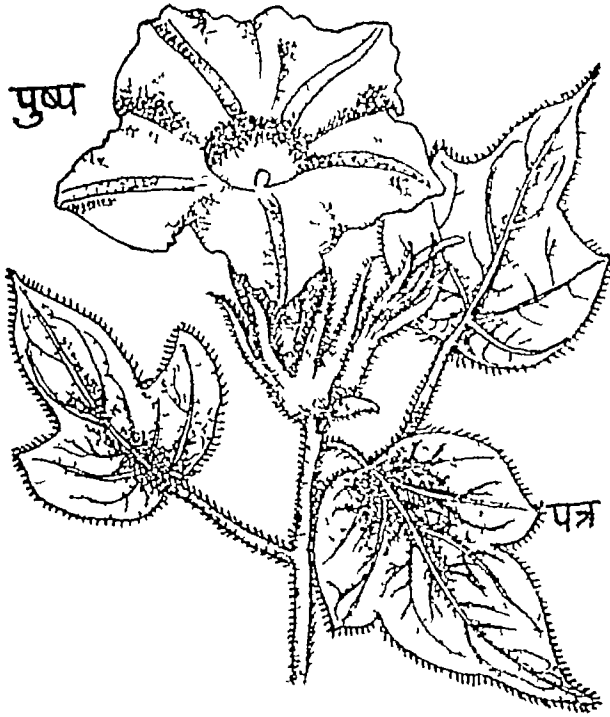
पान) जैसे और फूलो का रग कुछ बैंगनी होता है। दोनो के गुणधर्म मे कोई अन्तर नही है। बडी की लता भी बहुत बडी एव काड भी मोटा होता है।

नाम—

सं०—कृष्णबीज, श्यामबीज।

हिन्दी—कालादाना, झारमरिच, कावडोरी, काहलिया, बनुर, बिल्दी।

बगला—नीलकलमी, कालादाना। मरेठी—नीलबेल, कालादाना। गु.—काली कुंपी, भमरबेल, कालादाना।

अंग्रेजी—फार्ब्वायटिस सीड्स (Pharbitis seeds), इण्डियन जेलप (Indian Jalap)

लेटिन—आयपोमिया हेडेरेसिया, आयपोमिया निल (Ipomoea Nil), फारवायटिस निल (Pharbitis Nil), कानह्वोलह्वलस निल (Convolvulus Nil)

रासायनिक संघठन—

इसमे फार्विटिसिन (Pharbitisin) नामक प्रभावशाली तत्व ८ प्रतिशत होता है जो स्वरूप व गुणधर्म में जलापा के मुख्य तत्व (Convolvulin) के सदृश है तथा एक गाढा तैल १४.४ प्रतिशत, कुछ पिच्छिल द्रव्य, ग्लुकोसाइड, अल्ब्युमिन और टेनिन होते हैं।

नोट—बंगाल के बाजारो में कालादाना के साथ मिरचाई (Ipomoea Muricata) लता के बीज मिला दिये जाते है। इन बीजों का गुणधर्म भी कालादाना जैसा ही है, प्रत्युत बढिया है। देखिये मिरचाई।

गुणधर्म और प्रयोग

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, मधुर, विपाक मे कटु एव उष्णवीर्य है तथा कफ पित्तहर, लेखन, जलापा या निसोथ के जैसा रेचन [अधिक मात्रा मे देने से पानी के समान रेचक तथा हृल्लास एव आन्त्र में मरोडकारी] रेचन मे इसकी क्रिया जैपाल या अग्रेजी जलापा [Jalap] जैसी होती है, किन्तु उनके विपाक्त दोष इसमे नही है। कृमिघ्न, रक्तशोधक, शोथहर, मूत्रल, आर्त्तवजनन है।

इसका प्रयोग उदररोग, जलोदर, उदावर्त्त, विबन्ध, मूत्रावरोध आदि विकारो मे रेचनार्थ किया जाता है। अर्थात् जिन व्याधियो मे तीव्र विरेचन के साथ शरीर से दूषित द्रवापरण करना अभीष्ट हो तो इसका प्रयोग करना ठीक होता है। ऐसी अवस्था में भी रोग बल, देशकाल, वय आदि का विचार कर इसका प्रयोग करना चाहिये। वैसे ही वातरक्त, आमवात, रजोरोध या कष्टार्तव मे भी इसका उपयोग होता है।

इसे तप्त रेती मे सेककर चूर्णकर शक्कर के साथ या वैसे ही उचित मात्रा मे उष्ण जल के साथ देते हैं। हृल्लास और मरोड की शान्ति के लिये इसके साथ गुलकन्द, घृत मे भुनी हुई हरड, सौंफ, सोठ, बादाम तैल आदि मिलाते हैं।

मात्रा—चूर्ण की १ से ३ माशे तक, इसके घनसत्व की मात्रा ढाई से ४ रत्ती तक।

[१] बद्धकोष्ठ पर—भुने बीजो का चूर्ण तथा सैंधानमक ढाई-ढाई तोला तथा सोठ चूर्ण ३ माशे एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा ३ से ५ माशे तक थोडे गरम जल से लेवें। अथवा—

इसका भुना चूर्ण पौने आठ तोला समभाग इमली का सत्व और ६ माशे सोठ चूर्ण एकत्र खरल कर मात्रा

५ माशे तक जल के साथ दें । अथवा—

इसके चूर्ण को बादाम तैल मे भूनकर मात्रा ३ माशे में १ माशा सोंठ चूर्ण मिला सेवन करें। यकृत्, प्लीहा शोथ पर भी लाभ होता है।

यदि अत्यधिक दस्त हो तो शीत जल मे गोद कतीरा मिला पिलावें या दही और मूंग की खिचडी दें।

जिनके आंत्र वहुत कमजोर हो या जिन्हे हृदय या यकृत् के विशेष विकार हो, उन्हे यह नही देना चाहिये।

[२] आमवात (गठिया), खुजली तथा घाव पर— इसे कडुवे तैल मे जलाकर मालिश करते हैं।

[३] इसकी जड विरेचक, प्रदाहकारक एवं भ्रूण नाशक है। यकृत् और प्लीहा पर लाभदायक है। शरीर के काले या सफेद दागो [छीप] पर इसे पीसकर या अकरकरा के साथ पीसकर लेप करते है।

नोट—बीजों का वीर्य या प्रभाव तीन वर्ष तक कम नहीं होता। निसोथ या जल पा का उत्तम प्रतिनिधि है।

[४] पाक कालादाना—इसके २० तोले चूर्ण को आध सेर मिश्री की चाशनी मे मिला वर्फी जैसा पाक सिद्ध कर १-१ तोला टुकड़ा काटकर रक्खे। रात्रि मे सोते समय १ टुकडा गरम जल या दूध से सेवन करे। प्रात दस्त साफ होता है। बिवन्ध दूर होती है।

[५] ज्वर पर—इसका भुना चूर्ण १० रत्ती, काली मिर्च ढाई रत्ती तथा अतीस चूर्ण साढे सात रत्ती एकत्र मिश्रण [यह १ मात्र है] कर दिन मे २ बार उष्ण जल से या शहद से देते हैं। ज्वर की शान्ति होती है।

[६] खुजली आदि चर्म रोगों पर—इसके क्वाथ के स्नान से लाभ होता है। सिर के जुएं नष्ट होकर सिर स्वच्छ तथा केश मुलायम होते है।

[७] मुखपाक पर—इसके क्वाथ से कुल्ले करावें।

कालीजीरी[1] (*VERNONIA ANTHELMINTICA*)

इस भृंगराज कुल (Compositae) की बनौषधि का एक वर्षायु क्षुप २ से ५ फुट ऊंचा, तना-सीधा गोल वेलनाकार शाखा प्रशाखायुक्त एव साधारण रोमश होता है। पत्ते—३-६ इंच लम्बे, १-२ इंच चौडे, भालाकार, कंगूरेदार एव लम्बी नोकदार तथा स्वाद मे कडुवे होते हैं। पुष्प वर्षाकाल मे जामुनी रंग के बौर मे लगते है, पुष्प स्तवक सूर्यमुखी के स्तवक जैसा ½ से ⅔ इंच व्यास का होता है। इसी पुष्पस्तवक मे इसके बीज भूरे काले रंग के ³⁄₁₆ इंच लम्बे, तथा पृष्ठभाग पर लगभग १० लम्बी उभरी हुई रेखाओ से युक्त होते हैं। इन्हे ही कालीजीरी कहते है। ये बीज तीक्ष्ण गंधयुक्त एव अत्यंत कडुवे होते हैं। इस क्षुप की जडें पतली रेखा जैसी होती हैं, वे भी कडुवी होती हैं। इसके क्षुप भारतवर्ष मे प्राय ऊसर या उजाड भूमि मे पाये जाते हैं।

नाम—

सं०—अरण्यजीरक, कटुजीरक, बृहत्पाली।

---

[1] आधुनिक टीकाकारो ने सोमराजी जोकि प्राचीन (चरकादि) काल से वाकुची (बावची) के ही लिये पर्याय रूप से प्रयुक्त एवं सर्वप्रसिद्ध है, उसे कालीजीरी (जोकि आधुनिक काल में प्रसिद्धि में आया हुआ) के लिये पर्याय मानने एवं मनवाने का दुराग्रह किया है। वस्तुत. श्वित्र कुष्ठादि चर्म रोग निवारणार्थ एवं शरीर को सोमवत् कांतिमान बनाने में वावची ही पूर्ण समर्थ है, न कि काली जीरी। तथा सोम (चन्द्र) या अर्द्ध चन्द्रवत् गोल या चक्राकार रेखा वाकुची में ही परिलक्षित होती है, काली-जीरी में तो दीर्घ रेखाएं होती हैं। अत सोमराजी यह अन्वर्थक शब्द वाकुची के ही लिये ठीक ठीक घटता है। कालीजीरी में नहीं घटता। आगे वावची का प्रकरण यथा स्थान देखिये। यूनानियों ने कालीजीरी के लिये सोहराई (शायद यह सोमराजी का अपभ्रंश है) शब्द की योजना की है। शायद इसीलिये इसे सोमराजी मानने का निष्फल प्रयत्न किया जारहा है। अस्तु।

कालाजीरा और कालीजीरी इन दो शब्दों में भी वड़ी गड़वड़ी की जाती है। स्याहजीरा का एक भेद काला जीरा या विष जीरा है, जो कि विशेष उग्र एवं विपाक्त होता है। उसे ही कालीजीरी मानना भूल है। स्याहजीरा का प्रकरण देखिये। कोई कोई भ्रम से आतरीलाल मानते हैं। देखो आतरीलाल प्रथम भाग मे।

मिला महीन चूर्ण करें। फिर उसमे १ भाग सोंठ, आधा भाग काला नमक तथा ½ भाग भंग भस्म मिला खूब खरल कर रखें। मात्रा १ से २ माशे, प्रात साय भोजन के पश्चात् सुखोष्ण जल मे लेने से अपान वायु की शुद्धि होती है, ऐंठन युक्त पतले दस्त होना बन्द होता, क्षुधा खूब लगती है। किन्तु प्रवाहिका की दशा मे कोष्ठशुद्धि के पश्चात् ही इसका सेवन गुणकारी होता है। (आ. वि कोष)

(३) कुष्ठादि चर्म रोगो पर—इसके साथ काले तिल सम भाग पीस कर ४ माशे की मात्रा मे प्रातः व्यायाम करने के बाद सुखोष्ण जल से दीर्घ काल तक सेवन करते रहने से लाभ होता है। साथ ही इसके चूर्ण में चौथा भाग हरताल मिला गोमूत्र मे पीसकर लेप नित्य नियमपूर्वक करते रहने से श्वित्र या धवल आदि के चकत्ते दूर हो जाते हैं। (चक्रदत्त व वाग्भट)

(४) नलाश्रित वात या आध्मान पर—इसका और काली मिरच का मोटा चूर्ण १-१ तोला लेकर काच पात्र जल में रात को भिगो दें, प्रात. जल छानकर उसमे एक ठीकरा तपाकर बुझाकर पिलाने मे लाभ होता है।

(५) जीर्ण ज्वर पर—इसके साथ श्रीकमासी, कुटकी, चिरायता, दुधवच और विडनमक समभाग लेकर चूर्णकर प्रात साय १ से ३ माशे तक सुखोष्णजल से लेते रहे। अथवा—इसके दाने २ माशे किसी मृत्पात्र मे आग पर भूनें, जब बीज फूटने लगें तब उसमे १४ तोले जल डालकर पकने दें। चौथाई शेष रहने पर उतार छान शहद मिला पिलावें। अथवा—

इसका मोटा चूर्ण ६ माशे और नीम पत्र एक मुट्ठी दोनो को मृत्पात्र मे भिगोकर प्रात मल छान कर पिलावें। अनियतकालीन जीर्ण ज्वर दूर होता है।

✓(६) अर्श पर—इसके बीज १०॥ माशे लेकर आधे भून लें, फिर सबको एकत्र मिला पीसकर ३ मात्रा करें। रोज एक मात्रा प्रात जल से सेवन करें। पथ्य मे साठी चावलों का भात और दही देना चाहिये। अथवा इसके चूर्ण (१ से ३ माशा) मे ४ रत्ती सुहागा का खील मिला दूध के साथ लेवें।

✓(७) कंठमाला तथा कर्णमूल शोथ पर—इसके साथ धतूरे के बीज और अफीम घोट पीसकर जल मे गरम कर गाढा गाढा लेप करते रहने से कंठमाला की पीडा शान्त होकर वह बैठ जाती है।

कर्णमूल शोथ पर—इसका चूर्ण २ तोला, कपूर ३ माशा, कुलजा और सिंगीमोहरा भी १-१ माशा सबको जल मे पीस गरम कर मंदोष्ण लेप करें। यह लेप सर्व प्रकार की विषैली सूजन पर लाभकारी है। अग्निविसर्प या शरीर की जलन पर इसे आग पर जलाकर तैल मे खरल कर लगाते है।

नोट—चूर्ण की मात्रा १ माशे से ६ माशे तक बच्चों को ½ से १० रत्ती तक।

इसके अधिक सेवन से आमाशय को हानि पहुँचती है। दाह होता है। ऐसी अवस्था में गोदुग्ध या ताजे आंवलों का रस, ताजे आमलों के अभाव में सूखों का फांट पिलावें, या आमलों का मुरब्बा खिलावें।

इसका प्रयोग प्राय पशु रोगों पर बहुत किया जाता है। जैसे यदि घोड़े का पेट किसी कारण अधिक फूल जाय तो इसके साथ नमक और गृहधूम समान भाग तथा दो नग पीपल लेकर जल में घोट पीस कर पिलाते हैं।

इसकी कडवाहट को दूर करने के लिये इसे सेमलकंद [छोटे पौधे का ताजा कंद] के साथ [१ भाग में ½ कंद] पानी मिला खूब पकाते हैं। पकाते समय पात्र का मुख खुला रखते है।

कालीमिर्च (Piper Nigrum)

यह सर्वप्रसिद्ध द्रव्य हरीतक्यादि वर्ग की नैसर्गिक वर्गानुसार पिप्पली कुल (Piperaceae) की वृक्षारोही द्राक्ष की बेल जैसी बेल या लता का फल है। इसका मूल स्थान भारतवर्ष ही है। भारत के दक्षिण के पश्चिमी घाटो पर तथा मद्रास, त्रिचनापल्ली, मलाबार, कोकण आदि प्रान्तो मे तथा पूर्व मे आसाम, कुचविहार मे तथा दक्षिण पूर्व के सिंगापुर आदि प्रायद्वीपो मे प्रचुरता से होता है।

इसके शोधार्थ सन १५७७ के लगभग यूरोपियो ने भारी प्रयत्न किया था। कहा जाता है कि इसके प्राप्त्यर्थ ही इधर उधर भटकते हुए कोम्लंबस तथा व्हा-

स्कोडिगामा ने भारत को खोज निकाला। उस काल मे यह एक महामूल्य द्रव्य था, तथा इसे काला सोना (Black Gold) कहा जाता था। यूरोप मे इसका खाद्य द्रव्यो मे तथा माँसादि खाद्य द्रव्यो को सुरक्षित रखने मे अधिक उपयोग किया जाता है।

इस लता के छोटे छोटे टुकडे कर चौमासे मे बडे बडे वृक्षो की जडो के समीपवर्त्ती स्थानो मे लगा दिये जाते हैं। जिनमे शाखायें फूटती हैं तथा शाखाओ की ग्रंथियो से जो सूक्ष्म जटायें निकलती हैं उनके द्वारा यह लता वृक्षो पर चढती हैं। पत्र—ताम्बूल (खाने के पान) जैसे ५-७ इंच लम्बे २-५ इंच चौडे पृष्ठभाग पर पाच सिराओ से युक्त होते हैं। पुष्प—ग्रीष्मकाल मे छोटे छोटे श्वेत, धूसर वर्ण के विशेष सुन्दर नही होते। फल—वर्षाकाल मे गोल गोल गुच्छो मे लगते हैं। कच्ची दशा मे ये हरे, पकने पर लाल और सूखने पर काले पड जाते हैं। यह अर्ध पक्व दशा मे ही तोड कर सुखा लिये जाते हैं, ये ही कालीमिर्च कहाते हैं।

श्वेतमिर्च—कुछ निघण्टुकार श्वेतमिर्च को उक्त लता की एक जाति विशेष मानते हैं। कोई शिग्रु [सहिजना] के वीजो को ही श्वेतमिर्च कहते है। वस्तुत यह न कोई जाति विशेष और न ये शिग्रु बीज ही हैं। ये तो उक्त कालीमिर्च का ही रूपान्तर है। उक्त अर्द्ध-पक्व फलो की तो कालीमिर्च बनती हैं। तथा पूर्ण पक्व फलो को पानी मे भिगो ऊपर का छिलका उतार लेने पर श्वेतमिर्च ऊपर का छिलका हट जाने से इसमें तीक्ष्णता कम हो जाती है तथा गुणों में भी कुछ सौम्यता आती है।

कालीमिर्च की लता लगाने के बाद तीन वर्ष में फल देने लगती है। एक वर्ष में एक वेल पर फलो के लगभग १००० गुच्छे लगते हैं। जिनसे लगभग ४ पौंड सूखी कालीमिर्च प्राप्त होती हैं। बाजार मे दूकानदार इसमें वायविडङ्ग या पपई आदि के वीजो को मिलाकर भ्रष्टाचार करते हैं।

दक्षिणी और पूर्वी भेद से इसके दो प्रकार हैं। दक्षिणी कालीमिर्च विशेष गुणकारी होती है। कई तो श्वेतमिर्चों को ही दक्षिणी मानते हे। दक्षिणी कालीमिर्च ऊपर से भूरी भीतर हरिताभ श्वेत एव अधिक तीक्ष्ण होती है। पूर्वी मिर्च ऊपर विशेष काली, तथा भीतर श्वेत होती है।

कोई कोई कालीमिर्च की लता विशेष से जो गोल लम्बी वेलनाकार फली सी निकलती है उसे 'गजपीपल' मानते हैं। तथा इसकी जड को ही चवक [चव्य] कहते हैं किन्तु अभी तक इसका ठीक निर्णय नहीं हुआ है। गजपीपल का वर्णन आगे यथास्थान देखिये।

एक जगली-कालीमिर्च होती है जिसे कंज भी कहते हैं। यह इस कालीमिर्च से भिन्न कुल (Rutacae) की है। देखिये 'जगली कालीमिर्च' का प्रकरण।

नाम—

संस्कृत—मरिच, वेल्लज, कृष्णा, ऊष्ण।
हिन्दी—कालीमिर्च, गोलमिर्च, मिरिच।
मरेठी—मिरीं, मिरवेल। बगला—गोल मोरिच।
गु —मरी, कालांमरी, काठितीखा।
अंग्रेजी—ब्लैक पेपर (Black Pepper)
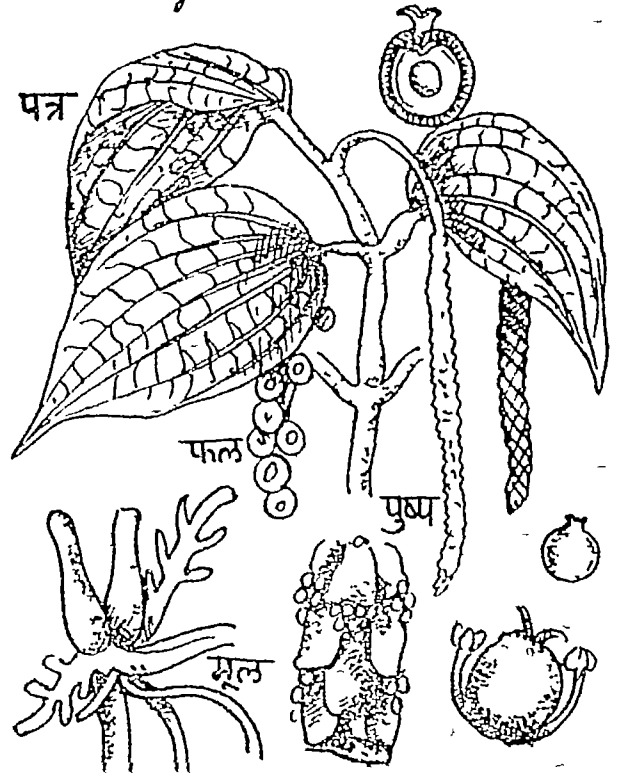
लेटिन—पाइपर नायग्रम (Piper Nigrum)

रासायनिक सङ्गठन—

फलत्वक मे पाइपरिन (Piperine) नामक एक उडनशील क्षार सत्व ५ ६ प्र. श. तथा पाइपरडीन (Piperdine) ५ प्र श, एक उड़नशील सुगन्धित तैल १ या २ प्र श, वसा ७ प्र. श आदि, और फल मज्जा मे चविकिन (Chavicine) नामक कटु राल, उडनशील तैल १ प्र श, प्रोटीन ७ प्र श एव क्षार ५ प्र. श पाये जाते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य है। किन्तु इसका हरा ताजा फल गुरु, मधुर विपाकी किंचित् उष्ण होता है।

यह कफ वातनाशक, पित्तवर्धक, लालास्रावजनक, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक, वातानुलोमन, कृमिघ्न, उत्तेजक, हृद्रोगनाशक, कफनिस्सारक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्वेदल, ज्वरघ्न (नियतकालिक ज्वर प्रतिवन्धक), प्रमाथी द्रव्यो मे प्रधान तथा नाड़ी दौर्वल्य, अग्निमांद्य, अजीर्ण, प्रमेह, आध्मान, शूल, प्रतिश्याय, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र एव नेत्रविकारनाशक है।

यह घृत युक्त सिद्ध पदार्थों को शीघ्र पचाती है। पित्त प्रकृति वाले उदर रोगियो को इसके साथ खाड मिला दूध के साथ लस्सी बनाकर पीने से लाभ होता है। सर्व प्रकार की खासी पर इसके चूर्ण मे घृत, शहद और खाड मिलाकर सेवन करने से तथा इसके साथ कटेरी फल मिला आग पर जला धूम्र को सास द्वारा अन्दर लेने से लाभ और हिक्का एव श्वास मे इसके साथ जवाखार को मिला गरम पानी से लेने से लाभ होता है। —च चि अ १७

श्वित्र, किलास, पामा आदि चर्मरोगो मे तथा पक्षाघात, अर्श, गलशोथ मे इसका लेप या इसे तैल या घृत मे मिला मर्दन एव शोथ वेदनायुक्त विकारो, फुसी आदि पर भी लेप करते हैं। गले के रोगो पर इसके क्वाथ का गडूष (कुल्ले) या मुख मे धारण कर चूसते हैं। दन्तशूल, दन्तकृमि पर भी इसके क्वाथ का गडूष या मजन कराते हैं। नक्तान्ध, अर्म (नाखून), शुक्ल (फूला) आदि नेत्रविकारो पर इसे शहद मे घिसकर अजन करते है। नेत्रविकारो पर श्वेत मिर्च का विशेष उपयोग होता है। उदर तथा यकृत् के वातविकारो पर जल और शहद के साथ सेवन कराते है। उदर शूल मे इसे अदरख रस व नीबू रस के साथ देते हैं। दन्तशूल मे इसका पोस्त दाने (खसखस) के साथ फाट वना कुल्ले कराते है।

गुदभ्रश पर इसके फाट से गुद प्रक्षालन कर माजूफल व फिटकडी चूर्ण छिडकने से, आधाशीशी पर—इसे घृत मे पीस नाक मे टपकाने से या इसे चावल के पानी मे या भृङ्गराज के रस मे पीसकर लेप करने से, नकसीर (नासिका से रक्तस्राव) पर इसे दही और पुराने गुड के साथ सेवन कराने से; व्रण शोथ या कीटकदशजन्य शोथ पर—इसे जल में पीस गरम कर लेप करने से, अथवा इसे सिरके मे पीस लेप करने से, सिरके बाल यदि दाद, खुजली आदि से झड जाते हो तो इसे प्याज व नमक के साथ पीसकर लगाते रहने से, नेत्रपीडा पर इसे थूक के साथ घिस कर लगाने, मूत्र की रुकावट मे इसके साथ खीरा, ककडी के बीजो को जल मे पीस छान कर पिलाते रहने से, उदर मे मरोडयुक्त पीडा हो तो इसके १२ दाने सिरस के पत्र रस मे पीसछानकर पिलाने से, निद्रा, तन्द्रा या अति निद्रानिवारणार्थ इसे घोडे के मुख के फेंस के साथ थोडा शहद मिला पीसकर आजने से, निद्रानाश पर—निद्रा लाने के लिये इसे घोड़े की या अपने मुख की लार के साथ किंचित् कस्तूरी मिला घिसकर आजने से, शारीरिक कृशता निवारणार्थ इसके १० दाने ताम्बूल पत्र के रस के साथ चबाकर ऊपर से शीतल जलपान नित्य दो मास तक करते रहने से, भूतबाधा निवारणार्थ[1]—इसे पीपल, सैंधानमक तथा गोरोचन के साथ शहद मे पीस आंखो मे आजने से; अथवा इसके आठ दाने, तुलसी के ८ पत्र तथा सहदेई मूल इनको पवित्रतापूर्वक रविवार के दिन गले मे बाध देने से, पिपासा, खासी और अरुचि निवारणार्थ इसे सोठ, हरड और गुड मिला धीरे धीरे लड्डू बना सेवन करने से, वातकफज विकारो पर—इसे गंधक और घृत

१ श्वेत मिर्च लेना सुलभ होता है।

मिला सेवन करने से, आमवात पर इसे सौंफ, वायविडङ्ग और सैंधानमक के साथ उष्ण जल से सेवन करने से, उपदश पर—इसका चूर्ण ८ माशे, अर्कमूल चूर्ण १२ माशे एकत्र गुड के साथ पीसकर ४-४ माशे की गोलिया बना दिन मे दो बार देते रहने से, शूलयुक्त वातार्श एव शैथिल्य पर—इसके चूर्ण को घृत मे मिला अर्शांकुरो पर लेप करते रहने से, पीनस पर—इसके चूर्ण को गुड और दही के साथ सेवन करने एव पथ्य मे घृत व रोटी का भोजन तथा रात्रि मे शयनपूर्व शीतल जलपान करने से, सग्रहणी, अर्श, उदररोग, कामला, प्लीहावृद्धि, मदाग्नि एव गुल्म पर—इसके चूर्ण के साथ चित्रक और काला नमक मिला तक्र के साथ दिन मे दो बार सेवन करते रहने से, साधारण ज्वर पर—इसके ३ से ६ माशे तक चूर्ण मे आध सेर पानी और २ तोले मिश्री मिला अष्ट-माश क्वाथ सिद्ध कर पिलाने से, शीतपित्त पर—इसे घृत के साथ खिलाने तथा घृत के साथ शरीर पर मर्दन करने से, खाज, खुजली पर—इसे आमलासार गधक के साथ पीस घृत मिला लगाने और धूप मे तापने से, मदाग्नि पर—इसके साथ सोठ, पीपल, जीरा और सैंधा-नमक समभाग चूर्ण कर १-२ माशे की मात्रा मे भोजन के बाद देते रहने से अथवा इसके चूर्ण मे हीग व कपूर को घोट पीस कर १-१ माशे की गोली बना सेवन करते रहने से, विषमज्वर पर—इसे तुलसी पत्र रस और शहद के साथ देते रहने से, सिर दर्द पर—इसे पीसकर करज तैल मे मिला लगाने से या इसे प्याज व नमक के साथ पीसकर लगाने से, स्वर भग पर—इसे घृत के साथ भोजन के बाद थोडा थोडा पिलाने से, अजीर्ण और आध्मान पर—इसे सोठ, पीपल तथा हरड चूर्ण मिला शहद के साथ देने से अथवा इसके फाट को पिलाने से, प्रवाहिका पर—इसे हीग और अफीम के योग से सेवन से, हिस्टीरिया पर—प्रात खाली पेट इसके चूर्ण को वच के चूर्ण के साथ मिला खट्टे दही के साथ सेवन कराते रहने से, प्रतिश्याय (जुखाम) पर—इसे गर्म दूध तथा मिश्री मिला पिलाने से अथवा इसके ७ दाने निगलने से, अर्दित (मुख के लकवा) पर—यदि जिह्वा मे खिचावट या जकडन हो तो इसके चूर्ण को जीभ पर घिसने से, सखिया के विष पर इसके ६ माशे चूर्ण को १० तोला मक्खन के साथ कई बार देते रहने से; और हरताल के विष पर—इसके चूर्ण को पानी मे खूब मसलने पर जो झाग उठते है उसे शरीर पर मर्दन करने से लाभ होता है।

कुछ मुख्य प्रयोग—

(१) विशूचिका (हैजा) पर—प्रारम्भिक अवस्था मे इसका चूर्ण और भुनी हीग १-१ भाग एकत्र अच्छी तरह खरल कर उसमे २ भाग शुद्ध देशी कपूर मिला और खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना रक्खें। आध आध घटे से १-१ गोली देने से लाभ होता है। अथवा इसका चूर्ण और भुनी हीग १०-१० रत्ती अच्छी तरह खरल कर उसमे ६ रत्ती अफीम मिला शहद से घोटकर १२ गोलियां बनावें १-१ गोली घटे घटे मे देवें। किन्तु अधिक काल तक न देवें, क्योंकि इसमे अफीम है।

यदि केवल अतिसार हो तो इसका चूर्ण १ रत्ती, हीग आधी रत्ती और अफीम चौथाई रत्ती का मिश्रण (यह एक मात्रा है) जल के साथ या शहद से देवें।

(१) अर्श और गुदभ्रंश पर—इसका चूर्ण ढाई तोला, भुना जीरा चूर्ण सवा तीन तोला और शुद्ध शहद पौने अठारह तोले एकत्र मिला अवलेह बना रक्खें। ३ से ६ माशे तक दिन मे २-३ बार चटावें। अथवा—इसका चूर्ण २ माशा, जीरा स्याह भुना हुआ १ माशा, और शक्कर १॥ तोला का मिश्रण (१ मात्रा है) गर्म जल से दिन मे दो बार देवें। इसे तक्र के साथ दें।

इसके और जीरे के मिश्रण मे सैंधा नमक मिला दिन मे दो बार तक्र के साथ ३-४ मास तक सेवन करते रहने से विविध रोगजन्य निर्बलता से या वृद्धावस्था से हुई अर्श तथा गुदभ्रंश व्याधिया दूर हो जाती हैं। साथ ही साथ गुदभ्रंश पर इसके फाट से गुदप्रक्षालन तथा माजूफल और फिटकरी चूर्ण उद्धूलन करते रहना चाहिए।

(३) श्वास कास पर—इसका चूर्ण २-३ माशे तक लेकर शक्कर (या मिश्री), शहद और घृत (विषमभाग) एकत्र मिला चटाते रहने से सर्दी एव विशेषतरी से होने वाला छाती के दर्द सहित श्वास कास मे लाभ हो फेफडो का दूषित कफ निकल जाता है। अथवा इसके चूर्ण को गौ

दुग्ध मे पकाकर पिलाने से भी लाभ होता है। यदि तालू की शिथिलता से वार वार खासी आती हो, जल पीने या भोजन के निगलने मे कष्ट होता हो तो इसके फाट से कुल्ले दिन मे २-३ वार कराने से लाभ होता है।

यदि खासी बहुत ही कष्टदायक हो तो इसके दो तोले चूर्ण के साथ पीपल १ तोला, अनारछाल ४ तोला जवाखार १ तोला इनका चूर्ण मिला ८ तोले गुड मे १-१ माशे की गोलिया वना सेवन करें।

(४) हिक्का और सिर पीडा पर—इसके १ दाने को सुई की नोक पर वीध कर जलाने से जो धुआ निकले उसे नासिका से ऊपर को खीचने से हिक्का मे लाभ होता है। यदि इतने से लाभ न हो तो निर्धूम कडे की आच पर इसके १०-२० दाने डालकर ऊपर कोई सछिद्र ढक्कन रख कर नासिका द्वारा धूम्रपान करें। इससे वातजन्य सिर दर्द भी दूर हो जाता है।

(५) शरीर मे वातज पीडा या जकडन पर—इसे जल मे महीन पीस कर मोटा लेप चढा दे, तथा केले के पत्ते को ऊपर से वाघ दें शीघ्र लाभ होता है। यदि इसके साथ लहसन को महीन पीस चटनी वना भोजन के समय घृत और चावल के भात के प्रथम ग्रास मे मिला खा लिया करें तो इस प्रकार के वात विकार नही होने पाते।

(६) जलमत्रास (पागल कुत्ते के दश) पर—इसके ५ दाने और सत्यानासी के वीज ६ माशे, दोनो को पीस तीन दिन खिलाते हैं तथा खटाई व तैल से परहेज करें।

(७) थकावट, आलस्य, उदासीनता आदि निवारणार्थ इसके साथ सोठ, दालचीनी, लौंग और इलायची मिलाकर चाय बनावें तथा उसमे दूध शक्कर मिला पीयें।

(८) मलेरिया ज्वर पर—इसके ५ दाने, अजवायन १ माशा और हरी गिलोय १ तोला सवको १० तो पानी मे पीस छानकर पिलाने से लाभ होता है। ध्यान रहे इसका सत्व पेपेराईन ज्वर के निवारणार्थ कुनाईन से भी वढिया सिद्ध हुआ है। यह सत्व १॥ रत्ती की मात्रा मे घ टे-घ टे से मलेरिया ज्वर पर देते हैं। यह प्रस्वेद लाकर ज्वर को दूर कर देता है। इसे कुनाईन के साथ मिलाकर देने से और भी उत्तम लाभ होता है।

श्वेत मिरच—मे चरपराहट कम होने से रूक्षता कम है। रुचिकर, दीपन, पाचन, सारक, उष्ण वीर्य एवं त्रिदोपनाशक है। यह विशेपत नेत्र विकार नाशक, रसायन, मूत्राघात, श्लीपदजन्य ज्वर, मूर्च्छा, भूतवाधा, अतिनिन्द्रा आदि निवारक है।

(१) नेत्र विकारो पर—इसके महीन चूर्ण के साथ पीपल, व समुद्र-फेन समभाग १-१ तोला, सैंधा नमक ६ मासा लेकर उसमे काला सुर्मा ६ तोला मिला खूब खरल कर कपडछन कर रखें। इसको सलाई से लगाने से नेत्र-कण्डू, फूला, नेत्रो मे मल आना आदि कफज विकार दूर होते हैं। यदि नेत्रो मे केवल खुजली की विशेपता हो तो इसे इमली के जल मे घिस कर थोड़ा घृत मिला रात्रि के समय आजना हितकर होता है।

यदि इसका सेवन प्रात नित्य घृत और मिश्री के साथ किया जाय तो मस्तिष्क शात रहता है तथा दृष्टि वलवान होती है। कोई कोई इसे वादाम और सौफ के साथ जल मे पीस छानकर नित्य सेवन करते हैं।

नेत्रो के पलको पर कष्टदायक फुसी होने पर इसे जल मे पीस लेप करने से वह पककर फूट जाती है या दब जाती है।

रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर—इसे दही मे घिसकर प्रात साय आजते रहने से लाभ होता हैं। (वाग्भट)

अर्म (नेत्रकोण मे श्वेतभाग पर एक त्रिकोणाकार या अर्धचन्द्राकार प्रवर्द्धन रक्त या शुक्ल वर्ण का होता है। इसे नाखूना या Pterygium कहते हैं) पर—इसके व बहेडे के समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को हल्दी के क्वाथ मे पीसकर लेप करने से लाभ होता है। (यो र)

नेत्रस्राव (ढलका, पानी बहना) पर—इसका चूर्ण २ भाग व शुद्ध मैनसिल १ भाग एकत्र खरल कर लगावें। (सा निग्रह)

(१०) अतिनिन्द्रा, तन्द्रा या सन्निपात की वेहोशी पर—इसको शहद तथा घोडे के मुख के फेंस (घोडा जव खूब दौडने के वाद खडा होता है तव फेंस आता है) के साथ या अपनी लार के साथ घिसकर नेत्रो मे आजने से तत्काल लाभ होता है। सर्पविप की वेहोशी या निद्रा मे भी यह प्रयोग किया जाता हैं।

(११) श्लीपद (हाथी पाव) की दशा मे यदि ज्वर का बार बार आक्रमण होता हो तो यह १५ भाग तथा बछनाग १ भाग लेकर दोनो को दूध मे ३ दिन भिगो रक्खें। दूध प्रतिदिन बदल दिया करे। फिर दोनो को अद्रक रस मे पीसकर १-१ रत्ती को गोलिया बना दिन मे ३ बार १-१ गोली देने से लाभ होता है।

(१२) मूत्राघात पर—इसके ५ या १० दाने लेकर खूब महीन चूर्ण कर अर्ध रत्ती के प्रमाण मे इस चूर्ण को पतले किये हुए किंचित घृत मे मिला शिश्न के मुख को ऊपर की ओर कर मुख द्वार मे इसके १-२ बू द टपका देने से शीघ्र ही मूत्रस्राव होने लगता है। कभी कभी यह क्रिया २-४ बार भी करनी पडती है। मूत्र के साफ होने पर यदि इ द्रिय मे जलन हो तो केवल घृत को ही बार बार उसमे टपकावे। यह प्रयोग उष्णप्रकृति के पुरुष पर न करें। यह केवल पुरुषो के लिये है। (व गुणादर्श)

कुछ विशिष्ट शास्त्रीय सरल प्रयोग—

(१) मरिच्यादि गुटिका (रक्तार्श पर)—इसके चूर्ण के साथ कत्था, गेरू और रसौत समभाग महीन चूर्ण कर तथा ३ दिन कुकरोंदे के रस मे घोटकर ३-३ माशे की गोलिया बना लें। १-१ गोली दिन मे दो बार जल के साथ देने से रक्तार्श मे लाभ होता है। (वृ नि र)

(२) मरिचादि नस्य (शिरोविरेचनार्थ)— इसके साथ समभाग सहँजना बीज, बायविडग और बन-तुलसी (सब्जा) के पत्र लेकर महीन चूर्णकर नस्य देने से सिर के दोप दूर होते हैं। यह नस्य अपतत्र (वात-व्याधि मृगी या हिस्टीरिया के सदृश है) की बेहोशी दूर करने के लिये भी प्रयुक्त होता है। (ब से)

मरिचादि नस्य न० २–(कर्णक सन्निपात कर) इसके चूर्ण के साथ पीपल, जीरा और सेंधा नमक समभाग चूर्ण को उष्ण जल मे पीस नस्य देवें। (भा प्र)

(३) अजीर्ण कटक रस—इसके ३ भाग चूर्ण के साथ शुद्ध पारा, गधक और विप (बछनाग) १-१ भाग मिला कटेरी फल के रस की २१ भावनायें देकर ३-३ रत्ती की गोलिया बना लें। १-१ गोली सेवन करने से कैसी भी बदहजमी हो दूर होजाती है। अग्नि की वृद्धि होती है। हैजे में भी यह लाभकारी है। [भै र]

भावप्रकाश के इसी नाम के रस मे—पारा और गधक के स्थान पर सुहागा, पीपल और शुद्ध हिंगुल लेकर नीबू के रस मे खरल कर मटर जैसी गोलिया बनावें।

(३) बालको के शोथ पर—इसके चूर्ण को मक्खन मे मिला बारबार चटाने से शोथ नष्ट होता है। [व. से]

(४) मरिच्यादि घृत और तैल के कई लम्बे लम्बे प्रयोग शास्त्रो मे देखिये। उनमे से एक सरल प्रयोग तैल का यहा दिया जाता है—

इसका चूर्ण ३ तोले, केशर ६ तोले के साथ पीस कर कल्क करें। फिर ७२ तोले तिल तैल और ३ सेर पानी मिला मदाग्नि पर पकावे। तैल मात्र शेप रहने पर छान कर रक्खें। इस तैल की शिर पर मालिश करने से दारुणक व्याधि[१] दूर होती है [भा भै र]

चूर्ण ३ से १० रत्ती तक क्वाथ १ से ४ तोले तक उचित मात्रा मे इसके प्रयोग से हृदय, मूत्राशय, मूत्रमार्ग, एव लघ्वान्त्र की श्लैष्मिक कला को यथायोग्य उत्तेजना प्राप्त होती है तथा वह मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है। अति मात्रा मे सेवन से उदर वेदना, वमन, मूत्राशय व मूत्रनलिका मे असह्य उत्तेजना तथा त्वचा-पर शीतपित्त (Urticaria) के समान धब्बे प्रकट होते हैं। अथवा कोष्ठान्वित ज्वर होता है। कालीमिर्चों को ३ घडी तक खट्टे तक्र मे भिगोकर छील लेने से वे शुद्ध हो जाती हैं। कोई विकार नही करती। लालमिर्च के स्थान मे रोगी को पथ्य मे इसे देना हितकर है।

नोट—गुदनलिका, गर्भाशय एवं जननेन्द्रिय पर इसकी क्रिया विशेष उत्तेजक होती है। अत आशुकारी गुदनलिका एवं आन्त्र प्रदाह में इसका प्रयोग करना ठीक नहीं है।

रात्रि के समय दूध मे पका कर दूध का सेवन करते रहने से शरीर में रस धातु की वृद्धि होकर शेष सब धातु पुष्ट होते हैं। तथा शरीर का धारण पोषण ठीक प्रकार से होता है।

कालीमिर्च का सेवन शहद के साथ करने से वह अन्त्र

---

[१] क्षुद्र रोग की इस व्याधि मे सिर की त्वचा कड़ी-कण्डू युक्त एवं रूक्ष होकर भुसी सी निकलती है। कभी कभी सिर की त्वचा विदीर्ण हो जाती है। इसे अंग्रेजी में सेबोर्हो क्यापिटिस (Seborrhooe Capitis) कहते हैं।

मे संगृहीत होता है। अत. बीच बीच मे सारक औषधि का सेवन करना ऐसी दशा मे आवश्यक है । किन्तु तक्र मे शुद्ध की हुई यह संगृहीत नहीं होती । या तक्र का सेवन करना चाहिये ।

कच्ची, हरी या ताजी कालीमिर्च विपाक में मधुर, किंचित् ही उष्ण, कुछ भारी तथा कफ निस्सारक है । डिब्बों में भरी हुई ऐसी ताजी कालीमिर्च दक्षिण की ओर से आती हैं। इन्हें वे लोग समुद्र के जल में डुबोकर रखते हैं। उन्हें बाजार से लाकर नीबू के रस में रखने से वे तैसी ही ताजी बनी रहती है। ये स्वादिष्ट भी होती हैं। आचार, रायता आदि में इसका उपयोग विशेष होता है।

कास (Saccharum Spontaneum)

इस गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक वर्गानुसार यवकुल (Graminae) की वनौषधि की गणना चरक और सुश्रुत के मूत्रविरेचनीय, स्तन्यजनन तथा तृण पचमूल के गणो मे की गई है ।

इसके क्षुप मूज के क्षुप जैसे ५ से ७ फुट, कही कही इससे भी अधिक १५-२० फुट तक लम्बे विशेषत निम्नस्तर की आर्द्र भूमि मे पाये जाते हैं। इसके क्षुप जहा होते हैं तहा अन्य फसलें नही होने पाती। ये अपनी लम्बी जड़ो से रस को खीच लेते हैं। इसीलिये इनको तथा कुश के विनाश के लिये बडे वडे ट्रेक्टरो की योजना की जाती है। देहाती लोग इसका अधिक उपयोग घरो के छप्पर छाने के कार्य मे करते हैं । इसके पत्ते पतले, बहुत कम चौडे एव किनारो मे मुडे हुये होते हैं। काण्ड ठोस होता है। पुष्पदण्ड १-२ फुट लम्बा, जिस पर श्वेत, मृदु पुष्पो के गुच्छे लगते हैं। यह शरद ऋतु मे फूल कर वर्षा की वृद्धावस्था को प्रगट करता है। तुलसीदास जी ने क्या उत्तम ढग से कहा है- "फूले कास सकल महि छाई। जनु वर्षाऋतु प्रकट वुढाई ॥" शीत-ऋतु मे यह फलता है। बीज कुसुम के बीज जैसे श्वेत व कडे होते हैं।

इसकी और एक बडी जाती होती है, जिसे खागड, अंग्रेजी मे रीड (Reed) और लेटिन मे सैकरम फसकम (Sachharum Fuscum) कहते हैं । इसके काण्ड की कलमे बनती हैं।

कुश यह कास का ही एक निकटतम जाति भाई है। गुणधर्म मे भी बहुत साम्य है। औषधि कर्मो मे भी कुश और कास का प्राय एक साथ प्रयोग देखा जाता है। आगे कुश (दाभ) का प्रकरण देखिये ।

नाम—

सं०—कास, कासेक्षु, इक्षुगंधा। हि०—कास, कांस, किलक। म०—कसई, कासेगवत, कसाड। व०—केशोघास, केशोर, केशे गु०—कांसडों। अंग्रेजी-थ्याच ग्रास [Thatch Grass] ले०—सैकरम स्पान्टेनियम ।

कास भारत के बगाल आदि प्रान्तो मे प्राय सर्वत्र तथा लका, दक्षिण युरोप और आस्ट्रेलिया मे भी अधिक होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, विपाक मे मधुर एव शीत वीर्य है। यह वात पित्तशामक, दाहप्रशमन, स्तन्यजनन, मूत्र विरेचनीय, सारक, वल्य तथा रक्तपित्त, अश्मरी, उरःक्षत, पैत्तिक अजीर्ण, (विशेषत कपोत, पारावत आदि के मासभक्षणजन्य अजीर्ण), रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, क्षतक्षय आदि नाशक है।

औषधि कार्य मे मूल ही ली जाती है।

मात्रा—चूर्ण—३ से ६ मासा, मूल कल्क १-४ मासे, क्वाथ ५ मे १० तोले तक।

मूत्रकृच्छ तथा मूत्राश्मरी पर—मूल के क्वाथ मे शहद मिलाकर देते हैं, अथवा इसकी जड के साथ गोखरु मूल मिला जल मे औटा कर वार वार पिलाते हैं।

पित्तातिसार पर—इसकी जड के साथ कुश मूल, ईख की जड, शालीधान की जड और खस मिला क्वाथ बना कर सेवन करते हैं।

नोट—इसके प्रायः कई प्रयोग कुश के साथ ही किये जाते हैं।

कासनी (CICHORIUM INTYBUS)

इस भृङ्गराज कुल (Compositae) की वनौषधि के दो भेद हैं—वन्य और ग्राम्य।

इसके वहुवर्षायु क्षुप होते हैं। वन्य या स्वय उत्पन्न होने वाले जगली कासनी के क्षुप ३-६ फीट ऊचे, तना धारी एव झुर्रीदार अनेक कडी चीकट शाखाओ से युक्त, पत्ते खुरदरे ३ से ६ इच लम्बे, विभक्त दानेदार, खडयुक्त हरित वर्ण के तथा स्वाद मे ग्राम्य कासनी पत्र से अधिक तिक्त होते हैं।

पुष्प—नीलवर्ण के चमकीले, प्रियदर्शन तथा ग्राम्य कासनी पुष्प से काफी छोटे होते है।

वीज—छोटे श्वेत धूसर, चिकने, लगभग पाच धारी वाले, वजन मे हलके तथा स्वाद मे कुछ तिक्त होते हैं।

मूल—गोपुच्छाकार, गुदार, वाहर से धूसर, भीतर श्वेत, पिच्छिल एव तिक्त होती है।

ग्राम्य या वागो मे लगाई जाने वाली कासनी के क्षुप १-३ फीट ऊचे, शाखायें कोमल, पत्ते वन्य कासनी पत्र जैसे ही किन्तु उनसे लम्बे तथा स्वाद मे कम तिक्त होते हैं। पुष्प नीलवर्ण का आकार मे वडा होता है। वीज और मूल उक्त जैसे ही। अग्रेजी मे इसे The garden endive तथा लेटिन मे C Endivia सायकोरियम एन्डिविया कहते हैं।

ग्राम्य कासनी का और एक दूसरा भेद होता है, जिसका आकार और स्वाद वन्य तथा उक्त ग्राम्य के वीच का होता है।

वन्य कासनी पश्चिमोत्तर भारत मे ६००० फीट की ऊचाई पर कुमाऊ, विलोचिस्तान, काश्मीर तथा पजाव, विहार, उत्तर प्रदेश, दक्षिण भारत मे भी कई स्थानो पर वन्य और ग्राम्य दोनो प्रकार की पाई जाती

कासनी
Cichorium Intybus Linn.

पत्र
पुष्प
शाख
मूल
पुष्पकाट
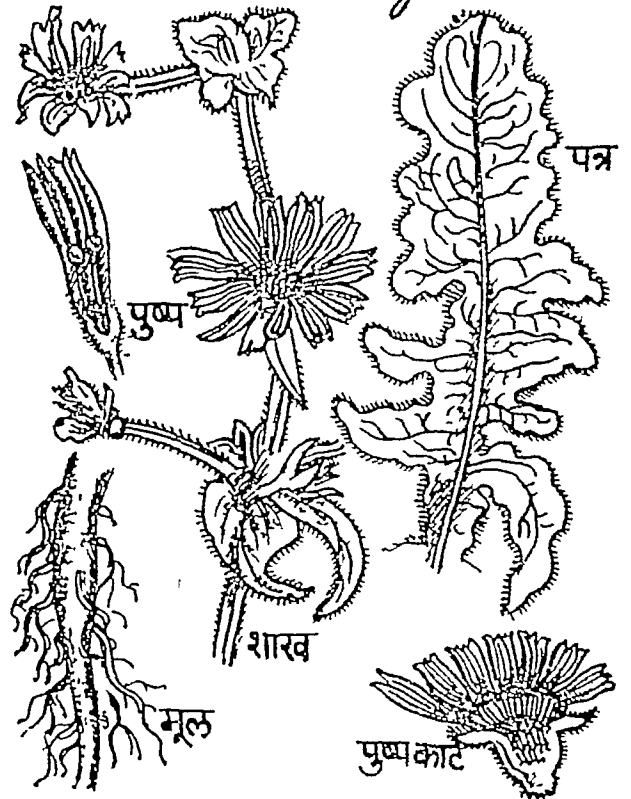
है। ईरान और यूरोप मे भी यह होती है।

यूनानी औषधि विक्रेताओं के यहा इसके बीज और जड़ें मिलती है। इसका मूल उत्पत्तिस्थान कासान (समरकन्द के समीपस्थ एक नगर) मे हुआ है। अत इसे कासनी कहते हैं। मुगल शासन काल मे यूनानी हकीमो द्वारा इसका प्रचार भारत मे हुआ। आयुर्वेद मे इसका उल्लेख नही है।

उक्त वन्य कासनी के ही कुल-की एक अन्य जगली कासनी होती है जिसे लेटिन मे टरेक्सोकम आफिशिनेल (Taraxacum officinale) कहते हैं। यह दूधल (कासनी दूधल) नाम से प्रसिद्ध है। उचित होते हुए भी हम यहां स्थल सकोचवश इसका वर्णन नही दे रहे हैं। इस कासनी के प्राय सर्वाङ्ग मे दूधिया रस की प्रचुरता होती है। इसका वर्णन यथास्थान 'दूधल' मे देखिये।

भारत मे उत्तम कासनी उत्तरी पजाब और काश्मीर मे होती है। वहा तो इसकी खेती की जाती है।

नाम—

हिन्दी व गुजराथी—कासनी (यह फारसी नाम है), गूचल, गुलहन्द, हिन्दुवा।

अंग्रेजी—चिकोरी (Chicory), एण्डिव (Endive)

लेटिन—सायकोरियम इन्टिबस।

रासायनिक सङ्घठन—

बीज मे एक मृदुतैल (Bland oil), पुष्प मे एक वर्णहीन स्फटकीय ग्लूकोसाइड, सायकोरिक (Cichorin), लेक्टयुसिन (Lectusin) और इन्टिबिन (Intybin) ये तत्व होते हैं। जड में पोटास सल्फेट, नायट्रेट, एक पिच्छिल तिक्त द्रव्य एन्युलिन नामक ६६ प्र श है।

औषधि कार्य में पत्ते, पचाग और फूल, जड व बीज लिये जाते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, तिक्त, विपाक मे कटु एव शीतवीर्य है तथा कफपित्तहर, शामक, दाह शामक, शोथहर, निद्रा जनन, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, तृष्णाशामक, हृद्य, रक्तशोधक, मूत्रल, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक और सग्राही है। अग्निमाद्य, यकृद्विकार, कामला, वमन, अतिसार, कृमि, पित्तोदर, जीर्ण ज्वर, पित्तज्वर और सामान्य दौर्वल्यनाशक है। वन्य या जगली की अपेक्षा ग्राम्य या बागी कासनी अधिक शीत एव तरी पहुँचाने वाली है।

पत्ती—इसके पत्तो पर चने के पत्तो के समान सूक्ष्म क्षाराश होता है, वही विशेष गुणकारी होता है। धोने से यह छूट जाता है। अत इसके पत्तो को बिना धोये ही प्रयोग में लाते है।

यह प्राय सर्वप्रकार की पित्तविकृतियो पर लाभकारी है। पित्तज्वर, तृष्णा, उष्णवात, मूत्रकृच्छ्र और शोथ आदि में विशेष गुणकारी है। यकृत् की वृद्धि या विकृति से उत्पन्न श्वास, कास, कामला और पाडु में इसका उत्तम प्रभाव होता है। पत्तो के लेप का प्रयोग अकेले या किसी अन्य योगवाही द्रव्यो के साथ पैत्तिक शोथ, शिर शूल, यकृच्छोथ, शीतपित्त, वातरक्त, दाह, हृत्स्पन्द, नेत्राभिष्यन्द आदि उष्णप्रकृतिविकारो पर किया जाता है। पत्ती का ताजा रस यकृद्दाल्युदर (प्लीहावृद्धि के साथ साथ हुई यकृत्वृद्धि), जलोदर, कामला, हृल्लास (मिचली), तृष्णा तथा आमाशय व प्लीहाशोथ में अतिलाभकारी है। यह मूत्रमार्ग शोधक एव उत्तम मूत्रल है।

[१] हृदय की तेज धडकन, तथा उष्ण आमवात, वातरक्त और पैत्तिक उन्माद पर—इसके पत्र या पचाग के स्वरस में सत्तू मिलाकर अथवा ताजे पत्तो के साथ जौ के आटे को पीसकर हृदयस्थान पर लेप करते हैं। इसी प्रकार का लेप पैत्तिक उन्माद, वातरक्त एव उष्ण आमवात पर भी किया जाता है।

[२] शीतपित्त पर—इसके पत्तो को लाल चन्दन, अर्क गुलाव और सिरके के साथ पीसकर लेप करते हैं।

[३] पित्तज नेत्राभिष्यन्द पर—अर्थात् गरमी से आखें आई हो तो पत्रो को पीस कर रोगन बनफशा में मिला आखों के चारो ओर तथा पलको पर लेप करें।

[४] गरमी या पैत्तिक सिर पीड़ा पर—केवल पत्र रस अथवा उसके साथ चदन मिलाकर लेप करते हैं।

[५] पित्त ज्वर पर—इसके साथ पित्तपापड़ा, गिलोय, नागरमोथा और खस मिला और क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से तृषा, वेचैनी, अतिस्वेद, निद्रानाश, मूत्र मे दाह, ज्वराग का १०४ तक बढ़ जाना आदि

लक्षण दूर होते हैं। इससे आन्त्रशोधन, पित्त प्रकोप शमन एव रक्तप्रसादन होकर ज्वर शात हो जाता है।

✓[६] कामला पर—पत्र स्वरस या पचाग का क्वाथ दिन मे दो बार देते रहने से लाभ होता है। कितु रोगी को भोजन मे तक्र और चावल या दूध भात देने से शीघ्र लाभ होता है। घी, शक्कर नही देना चाहिये।

बीज—इसके बीजो का गुण भी अधिकाश मे पत्तियों के समान ही है। प्राय सभी पित्तज, रक्तज तथा यकृत् विकृतिजन्य विकारो पर इसका प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है। बीजो मे अवरोधनाशक शक्ति की अधिकता है। ये मूत्रल तथा अधिक शामक होने से मूत्रकृच्छ्र मे बीजो का क्वाथ दिया जाता है। तथा मस्तिष्कोद्वेग, अनिद्रा, रजोरोध एव पित्तजन्य वमन पर इसका पानक या फाट दिया जाता है।

मसूढो की पीडा पर—बीज के क्वाथ का गण्डूप (कुल्ले) कराते हैं।

निद्रा के लिये—बीज-चूर्ण शर्बत बनफ्सा के साथ देते हैं।

[७] रजोरोध या मासिकधर्म के अवरोध पर—बीज १ तोला जौकुट कर ४० तोले जल मे अष्टमाश या चतुर्थाश क्वाथ सिद्धकर दिन मे २-३ बार गुड मिला कर पिलाते रहने से ३-४ दिन मे यथेष्ट लाभ होता है।

इस विकार पर इसके मूल का भी क्वाथ उक्त प्रकार से पिलावें।

पुष्प—इसके फूलो का शर्बत यकृत के विकारो पर दिया जाता है।

मूल—आर्तवजनन, मूत्रल, दोषपाचक, प्रमाथी, कामशक्तिवर्धक है। इसका प्रयोग रजोरोध या रुद्ध आर्त्तव के प्रवर्त्तनार्थ या अनियमित आर्त्तव के नियमनार्थ अधिक किया जाता है। शोथ, कफज्वर, रक्त दुष्टि तथा मूत्रकृच्छ्र मे भी यह उपयोगी है। सचित दोषो को मूत्र के द्वारा निकाल देने के लिये इसका उपयोग आमवात, वातरक्त एव सधिशोथ पर किया जाता है, किन्तु अधिक समय तक सेवन करने पर स्थायी लाभ होता है।

[८] योनिमार्ग के शोथ तथा श्वेत प्रदर पर—जड़ को खूब महीन पीसकर कल्क की पोटली बना योनि मे धारण करने से पीडारहित शोथ शमन होता है। तथा श्वेत प्रदर मे भी लाभ होता है।

[९] मूत्र-शर्करा या छोटी अश्मरी पर—जड ५ भाग, गोखरू ६ भाग, तरबूज बीज ७ भाग और सोया बीज ८ भाग एकत्र महीन चूर्ण करें। मात्रा—२ से ३ माशे तक, जल के साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

इस मूल को ही अंग्रेजी मे चिकोरी (Chicory) कहते है। अच्छी मोटी, गूदेदार जडो को भूनकर मोटा चूर्ण बना काफी के स्थान पर या काफी मे मिलाकर पेय रूप मे पीने का पहले बहुत प्रचार था। अब भी विषयी लोग इसका खूब पानकर कामान्ध हो जाते है। बाजार की चूर्ण रूप काफी मे यह चिकोरी ९० प्रतिशत मिश्रित की हुई पाई गई है। इससे काफी के स्वाद में वृद्धि हो जाती है। पीने मे बहुत अच्छी लगती है, किन्तु इसके अधिक सेवन से उदर मे भारीपन, वातनाडियो की निर्बलता, शैथिल्य, तन्द्रा तथा सिर दर्द आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

मात्रा—मूल चूर्ण ३-६ मासे तक। बीज चूर्ण ३ से ६ मासे तक। बीज या मूल का क्वाथ २॥ से ५ तोले। पत्र स्वरस १ से २ तोले तक। यह पत्र स्वरस प्राय फाड कर सेवन कराते हैं। पचाङ्ग का अर्क ५ से १० तोले तक।

नोट—कफज कास, श्वास, अग्निमांद्यसहप्लीहावृद्धि तथा आमातिसार पर कासनी का सेवन हानिप्रद है। इसकी हानि निवारणार्थ शर्बत बनफशा, सिकंजबीन, अनीसून आदि दिया जाता है। कासनी के अभाव में पित्त पापडा या सौंफ की जड़ ली जाती है।

काहू (Lactuca Scariola)

इस भृगराजकुल (Compositae) की वनौषधि दूध के सदृश रस युक्त (Lectuca) वर्षायु या द्विवर्षायु क्षुप २-३ फीट ऊचे होते है। ये वन्य और ग्राम्य (बागी या खेती) भेद से दो प्रकार के होते हैं।

वन्य काहू के क्षुप अधिक पत्र वाले, शाखाऐं पतली, पत्ते कुछ लम्बे गोल, अनीदार भिन्न भाग मे कोरदार, वृन्तरहित, बाहर की ओर लाल, धूसर, रोमयुक्त, नीचे की ओर हरे, पुष्प पीताभ श्वेत, बीज छोटे छोटे श्वेत चमकीले, कुछ लम्बे, खण्डयुक्त, अग्रभाग पर चोच जैसे कुछ नुकीले होते हैं। बाजार मे ये बीज मिलते हैं, इनमे एक प्रकार की गन्ध आती है, ठडाई मे ये बीज डाले जाते हैं तथा औषधि कार्य में भी आते है।

इस क्षुप के फूलदार शाखाओं, तनो एव डोडियो के काटने या उनमे चीरा देने पर जो दूध जैसा श्वेत निर्यास निकलता है, वह हवा लगने पर गाढा, कडा, भूरा या कृष्णाभ लालवर्ण का अफीम जैसा ही हो जाता है। इसे काहू की अफीम कहते हैं।

ग्राम्य या बागी काहू के कई उपभेद है। इनके पत्ते चिकने तथा वन्य काहू पत्र की अपेक्षा कम लम्बे, कम पतले तथा कम तिक्त होते हैं। किन्तु इनके तने मे उक्त दुग्ध सदृश निर्यास की अधिकता होती है। इनके क्षुप के अग्रभाग को थोडा थोडा नित्य काटकर यह निर्यास एकत्र किया जाता है। पंजाब और सिन्ध प्रदेश मे इसी कार्य के लिये इनकी खेती की जाती है, खेतों मे बोये जाते हैं। इस काहू की अफीम को खीआओ पजाबी में, लेट्टुसी ओपियम (Lettuce opium) अग्रेजी मे कहते है। इनके पत्तो का शाक बनाया जाता है। बागी काहू को लेटिन मे लक्टुका सटाइब्हा (Lactuca sativa) तथा अंग्रेजी मे दी गार्डन लेटिस (The garden lettuce) कहते हैं।

वन्य काहू के क्षुपो के निर्यास से जो अफीम प्राप्त होती है, वह बागी की अपेक्षा प्रमाण मे कुछ अधिक तथा अधिक गुणकारी होती है। वन्य काहू का ही एक भेद और होता है जिसे लेटिन मे लक्टुका विरोसा (Lactuca Virosa) कहते है। प्राय इसीकी अफीम अधिकतर पाश्चात्य वैद्यक मे प्रयुक्त होती है।

वन्य या जगली काहू पश्चिमी हिमालय पर ६ से १२ हजार फीट की ऊचाई पर तथा सिन्ध प्रदेश मे भी बहुत होता है। बागी काहू पजाब, सिन्ध तथा बम्बई की
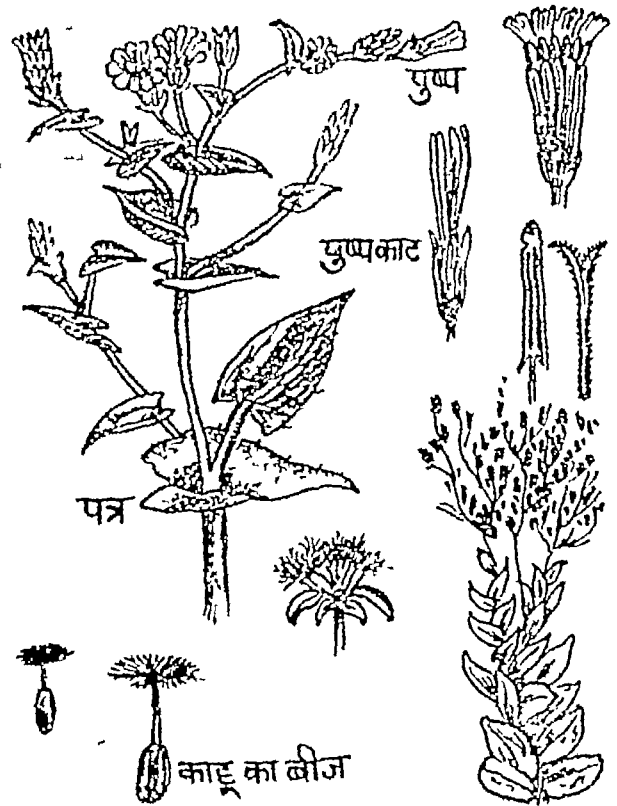
ओर बागो में खूब बोया जाता है।

नोट—'काहू' यह नाम फारसी भाषा का है। यह भी एक यूनानियों की देन है। मुगलकाल मे इस द्रव्य का प्रसार यहा हुआ है। ध्यान रहे कहू, कोहू या काहू 'अर्जुन वृक्ष' को भी कहते है। अत. भ्रमनिवारणार्थ यहा यह संकेत कर दिया है।

नाम—

हिन्दी व बंगला—काहू, खस, सलाद।
मरेठी—सालीट, बनकाहू।
अंग्रेजी—वाईल्ड लेट्यस (Wild Lettuce)
लेटिन—लेक्टुमा स्कारियोला,
ले क्यापिटेटा (L Capitata)

रासायनिक सङ्गठन—

इसके निर्यास मे एक तिक्त सत्व टेरेक्सेसीन (Taraxacin) नामक तथा पोटासियम एव कैल्शियम आदि पदार्थ होते है। जड मे इन्सुलीन (Insulin) २५ प्रति-

शत और पेक्टिन, लीव्यूलीन (Levulin), शर्करा आदि पाये जाते हैं।

औषधि प्रयोग मे—इसके पत्ते, बीज, निर्यास (अफीम) तथा जड लेते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह रस और विपाक मे कटु, मधुर, उष्णवीर्य, प्रभाव मे निद्राकारक, पित्तशामक, प्रमाथी, रक्तप्रसादन, सर, मूत्रल, वातहर, स्तन्यजनन तथा कण्डु, उन्माद, उदरशूल, कामला, स्तनशूल आदि वेदनाहर है।

पत्र—रस व विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, ओजक्षयकारक, विस्मृति तथा शुष्क कासजनक हैं। इसकी हानि निवारक पोदीना और अजमोद है। इन पत्तो के प्रतिनिधि रूप मे कुलफा लिया जाता है। काहू पत्र का विशेष उपयोग शाक के रूप मे किया जाता है। तृष्णा, रक्तोद्वेग तथा जलवायु परिवर्तनजन्य विकारो मे लाभकारी है। उन्माद, रक्तपित्त, कामला और उपदश मे विशेष उपयोगी है। अग्निमाद्य तथा शूल में इसे ईख के सिरके के साथ देते हैं। निद्रानाश मे इसके स्वरस या क्वाथ का सेवन करने से उत्तम स्वस्थ निद्रा आती है। यह सन्निपातिक तीव्रज्वर के प्रलाप मे भी लाभकारी है। पित्तप्रकृति वालो को यह बहुत सात्म्य है। पत्र स्वरस की मात्रा २ से ४ तोले तक दी जाती है। जिसके स्तनो मे दूध नही आता ऐसी स्त्री को इसका साग खिलाया जाता है। मलावष्टम्भ से उत्पन्न निद्रानाश, कण्डु आदि त्वचा के रोग, नाडी की कठिनता आदि विकारो पर पत्तो को स्वच्छ धोकर कच्चा ही या पकाकर खाने से मल साफ होकर निद्रा आती है, रक्त शुद्ध होता है। अधिक मास खाने वाले को यह पत्र शाक उत्तम है, कोई विकार उत्पन्न नही होने पाता है।

बीज—स्वाद मे फीके, वीर्य को शुष्क या गाढा करने वाले, कफ, पित्तशामक, रक्तप्रसादन, निद्राप्रद, वेदनाहर तथा केशो के लिये हितकर हैं। पत्तियो के समान ही ये पित्त एव रक्त के उद्वेग को शान्त करते हैं। शिर शूल और उष्णवात मे उपयोगी हैं। निद्रानाश तथा पित्तजन्य सिर की पीडा पर इसका लेप किया जाता है। इसका पतला लेप करने से बालो का झडना बन्द होता है तथा उन्हे शक्ति प्राप्त होती है। पित्तज ज्वरो पर तथा उन्माद जैसे विकारो पर बीजो का या बीज के साथ अन्य उपयुक्त द्रव्यो को मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ सेवन कराते है। भाग आदि ठडाई मे इन्हे मिलाकर भी पीते हैं। बीजो के अधिक या दीर्घकाल तक सेवन करने से कामवासना की कमी, स्मृतिनाश आदि विकार होते हैं। मस्तगी और मधु इसके हानि निवारक हैं। बीजो की मात्रा ३ से ५ माशे तक है। इसके अभाव मे खसखस लेते है।

निद्रानाश या विकृत निद्रा, निद्राभ्रमण आदि पर इसके बीज १ भाग के साथ २ भाग खसखस को पीस कर उचित मात्रा मे शक्कर मिला पाक बना सेवन करे।

निर्यास या अफीम—अफीम जैसी ही इस काहू का अफीम आती है। यह वेदनाशामक, कासहर और निद्राप्रद है। पोस्त की अफीम से निद्रा तो अवश्य आती है, किन्तु उससे तीव्र विबन्ध (कब्जी) होती है, वैसी ही कब्जी इसकी अफीम से नही होती, पचन क्रिया मे कोई हानि नही होती और न बेचैनी, आलस्य, कमजोरी आदि विकार होते हैं। पोस्त की अफीम की अपेक्षा कास मे भी यह अधिक गुणकारी है। इसके प्रयोग से कफोत्सर्ग मे कोई बाधा नही होती। तीव्र पीडा या शूल की शान्ति इस अफीम से जसी चाहिये वैसी नही होती। तीव्र वेदना की स्थिति मे इसका प्रयोग उतना (पोस्त अफीम जैसा) लाभदायक नही होता। इस अफीम के प्रयोग से तीव्रज्वर के प्रलाप में उत्तम लाभ होता है। इससे तीव्रज्वरजन्य उपद्रव शान्त होकर दस्त साफ होता है, क्षुधा की वृद्धि होती है।

वन्य या जङ्गली काहू के गुणधर्म बागी काहू की अपेक्षा अधिक उत्तम है। इसके निर्यास का प्रयोग आख की फूली तथा नाडी रोग में अधिक लाभकारी होता है।

यह अफीम शुक्र और मस्तिष्क के लिये हानिकारक है। मस्तगी और बादाम इसके हानिनिवारक हैं। इसकी मात्रा—१ से ३ रत्ती तक दी जाती है।

तैल-काहू—काहू के बीजो को जल के साथ खूब महीन पीस छानकर जितना यह द्रव भाग हो उसका

अर्ध भाग उसमें तिल तैल मिला मन्द आच पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी में रक्खें। यह तैल मस्तिष्क पोषक, शामक, निद्राप्रद, पित्तजन्य सिर दर्द और वालो की कमजोरी को दूर करता है। उष्ण प्रकृति वालो के लिये यह विशेष उपयोगी है। उक्त विकारो पर इसकी सिर पर मालिश की जाती है और नस्य दी जाती है। तिल तैल के स्थान में वादाम का तैल मिलाकर सिद्ध किया हुआ यह तैल ३ माशे से २ तोले तक की मात्रा मे दुग्ध के साथ सेवन कराया जाता है। इससे मद्यपान की मादकता तथा वातपैत्तिक अपस्मार में भी लाभ होता है।

यह तैल शीतप्रकृति वालो को अहितकर है। विस्मृति एव दृष्टिमाद्य को पैदा करता है। वादाम का तैल हानिनिवारक है।

कीड़ामार [Aristolochia Bracteata]

इस ईश्वरी (ईसर मूल) कुल (Aristolociaceae) की वनौषधि की बहुवर्षायु भूमि पर फैलने वाली लता १ से ३ या ४ फीट लम्बी बहुशाखा युक्त एव अत्यन्त तिक्त तथा उग्र गन्ध युक्त होती है। पत्ते १ से ३ इच लम्बे, उतने ही चौडे, धूसर वर्ण के एव अग्रभाग मे कुछ मोटे होते हैं। पुष्प—गुच्छों मे गुण्डीदार बैंगनी रंग के कुछ लम्बे, तथा फल—१ इच के लम्बगोल ६ धार वाले, वीज—त्रिकोणाकार चपटे और काले होते है। वर्षा के वाद यह लता फूलती व फलती है।

गगा युमना के मध्यवर्त्ती प्रदेश पश्चिम विहार, बुन्देलखड, गुजराथ, सिंध, काठियावाड तथा दक्षिण भारत मे यह खूब होती है।

नाम—

सं०—कीटमारी, धूम्रपत्रा, कृमिघ्नी
हि०—कीड़ामार, गंदन, गदाली, गंधेली,
म०—कीड़ामारी, गिधान, गंधारी
व०—पाटुवेरा। गु०—कीडामारी, गुढारी
अं०—वर्थ वर्ट (Birth wort)
ले०—एरिस्टोलोचिया ब्रेक्टिएटा।

रासायनिक सङ्घठन—

इसमे दुर्गन्धयुक्त एक उडनशील तैल, एक क्षारतत्व तथा पोटाशियम आदि लवण पाये जाते हैं।

औषधि कार्यार्थ इसका पचाङ्ग लिया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, विपाक मे कटु एवं उष्ण वीर्य है। शुष्क की अपेक्षा यह ताजी हरी बूटी विशेष लाभकारी है। कफ-वात शामक, रोचन, दीपन, रेचन, शोथ, कास, त्वग्दोष, कृमि, कफ और विष नाशक है। स्वेदजनन, व्रणशोधन, नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक अल्पमात्रा मे कटुपौष्टिक एव गर्भाशयोत्तेजक आदि गुणो की इसमे विशेषता है। गर्भवती को अधिक मात्रा मे देने से गर्भपात होता है। जीर्ण व्रणो मे इसका स्वरस लगाते हैं। रजोरोध, कष्टार्त्तव मे सेवन कराते हैं।

✓दाद पर—पत्तो के कल्क को रेडी तैल मे मिलाकर लगाते हैं। उपद श मे इसके रस को दूध के साथ देते हैं। सुजाक मे इसे अफीम के साथ सधियो की सूजन एव आमवात में इसे सोंठ के साथ देते और लेप करते है। शीत ज्वर और सततज्वर पर इसके स्वरस को शरीर पर मर्दन करते है। शोथ पर—इसके साथ समुद्रफल कालीमिर्च और मालकागनी पीस लेप करें।

✓(१) ऋतुस्राव (मासिक धर्म) के नियमनार्थ—पचाङ्ग के मोटे चूर्ण १। तोले को २५ तोले पानी में फाट या हिम बनाकर २।। तोले से ५ तोले तक की मात्रा में पिलाते हैं। इससे उदर कृमि भी नष्ट हो जाते हैं। पाण्डु रोग व मलावरोध भी दूर होता है।

(२) प्रसव वेदना पर—इसके शुष्क मूल का चूर्ण ३ से ६ मासे तक लेकर फाट बनाकर पिलाने से या इसके स्वरस को पिलाने से शीघ्र ही गर्भाशय का संकोच होकर सरलतापूर्वक गर्भ निकल आता है। प्रसव के पश्चात् गर्भाशय को सकुचित एव यथास्थित करने मे भी यही प्रयोग अर्गट के समान क्रिया करता है।

(३) विषमज्वर तथा आमवातिक ज्वर पर-इसके ताजे पत्तो के रस को मन्द आंच पर गाढा कर उसमे समभाग कालीमिर्च का चूर्ण मिला १-१ रत्ती की गोलिया बना लें। मात्रा—२ से ४ गोली सुखोष्ण जल के साथ ३-३ घटे पर देने से पसीना आकर ज्वर दूर हो जाता है। विषमज्वर की अवस्था मे यदि हाथ पैरो मे ऐंठन या फूटनवत् वेदना हो तो इसके चूर्ण मे या उक्त घन क्वाथ मे कालीमिर्च, समुद्रफल और मालकागनी के महीन चूर्ण को समभाग मिला शराब मे पीस मर्दन एव लेप करें।

यदि सधि मे शोथयुक्त वेदना या आमवातिक ज्वर हो तो उक्त गोलियो की मात्रा सोठ के क्वाथ के साथ अथवा इसके ३ मासे चूर्ण को समभाग सोठ चूर्ण मे मिला सुखोष्ण जल के साथ दिन मे २-३ बार दें।

ध्यान रहे इसमें रेचकगुण है, अत यदि ज्वर मे अतिसार हो, तो इसका प्रयोग नही करना चाहिये। ऐसी स्थिति मे ईसरमूल का प्रयोग करना ठीक होता है।

(४) उदरशूल—इसके ताजे दो पत्तों का रस रेंडी तैल मे मिलाकर देते हैं। यदि अपचन के कारण उदर शूल हो तो इसके २-३ पत्तो को ५ तोले जल मे पीस छानकर पिला देने से मल शुद्धि होकर शूल सहित बार बार थोडा थोडा दस्त होने की शिकायत दूर होती है, एव क्षुधा प्रदीप्त होती है। ताजे पत्र के अभाव मे उक्त प्रयोग नं० ३ की गोलिया सुखोष्ण जल के साथ देवें।

बालको के उदर शूल के साथ मलावरोध हो तो इसके पत्तो के कल्क को गरम कर नाभि के चारो ओर लेप करते हैं। तथा पत्तो को नाभि पर बांधते हैं।

(५) उदर कृमि पर—पत्र रस अथवा बीजो का फाट अथवा इसकी जड का क्वाथ बनाकर पिलाने से उदर के छोटे छोटे गोल कृमि निकल जाते हैं। इस प्रयोग पर दूसरे दिन रेंडी तेल पिलाना आवश्यक है। इससे सब सूक्ष्म कृमि शीघ्र मर कर दस्त के साथ झड जाते हैं। तथा उनकी नयी उत्पत्ति नही होने पाती।

(६) कृमि दूषित व्रणो पर—व्रण या घाव जिसमे कीडे पड गये हो या फिरग उपदश के घावो पर इसके रस के घन क्वाथ को गरम दूध के साथ मिलाकर लगाते हैं। अथवा इसके पत्तो के स्वरस को लगाने से भी कीडे मर कर घाव धीरे धीरे ठीक हो जाता है। अथवा इसके ताजे पत्रो को पीस कर पुल्टिस बनाकर बाधने से भी लाभ होता है। पशुओ के घावो पर भी यही उपचार किया जाता है।

✓विर्चाचका जिसमे हाथ पैर आदि गात्रो पर अत्यन्त खुजली एव पीड़ायुक्त रूखी रखाऐ उभर आती हैं इसके चूर्ण को रेंडी तैल मे मिलाकर लगाते हैं।

✓(७) अस्थिवेदना या हडफूटन पर—इसके चूर्ण साथ रास्ना और त्रिकटु [सोठ, मिर्च, पीपल], मिला फा बनाकर पिलाते हैं। तथा इनको जल मे पीस गरमक मर्दन भी कराते हैं। खट्टे पदार्थ एव शीतोत्पादक आहा विहार से परहेज कराते है।

मात्रा—पचाङ्ग का शुष्क चूर्ण १ से ३ माशे तक। स्वरस—आधे से दो तोले तक। हिम या फाट २।। से ५ तोले तक। घन सत्व २ से ४ रत्ती तक।

कुंभी[1] [Careya Arborea]

इसका वर्णन कटभी के प्रकरण मे आचुका है। शेषांश यहा दिया जाता है—

इसकी छाल को कोई कोई कायफल मानते है। देखिये कायफल प्रकरण। इसमे कायफल जैसे गुणधर्म भी पाये जाते हैं।

यह छाल एक उत्तम स्तंभक औषधि है। दन्तशूल पर—छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। इससे दात मजबूत भी होते हैं तथा खासी में भी लाभ होता है। शुष्क खासी मे छाल के चूर्ण की गोलिया बना मुख मे धारण कराते हैं। सुजाक या शुक्र प्रमेह पर—छाल के रस मे या क्वाथ मे नरियल का पानी मिलाकर पिलाते हैं। ७ दिन मे लाभ होता है अतिसार मे छाल का क्वाथ दें।

प्रसव के पश्चात् इसके फूलो का शर्बत या फाट का सेवन कराने से योनिमार्ग की खरोच, पीडा या जखम दूर होती है।

इसके फलो का क्वाथ सेवन कराने से अजीर्ण दूर होकर क्षुधावृद्धि होती हैं। फलो का मुरब्बा या अचार भी बनाया जाता है।

[1] यद्यपि हमारे मत से कटभी और कुम्भी में कोई फरक नहीं है। तथापि जो इसे कटभी की एक जाति विशेष मानते हैं, उनके संतोषार्थ यह यह संक्षिप्त प्रकरण अलग से दे दिया गया है। अन्यथा हम कटभी के ही प्रकरण में इसे लिखते। —सम्पादक।
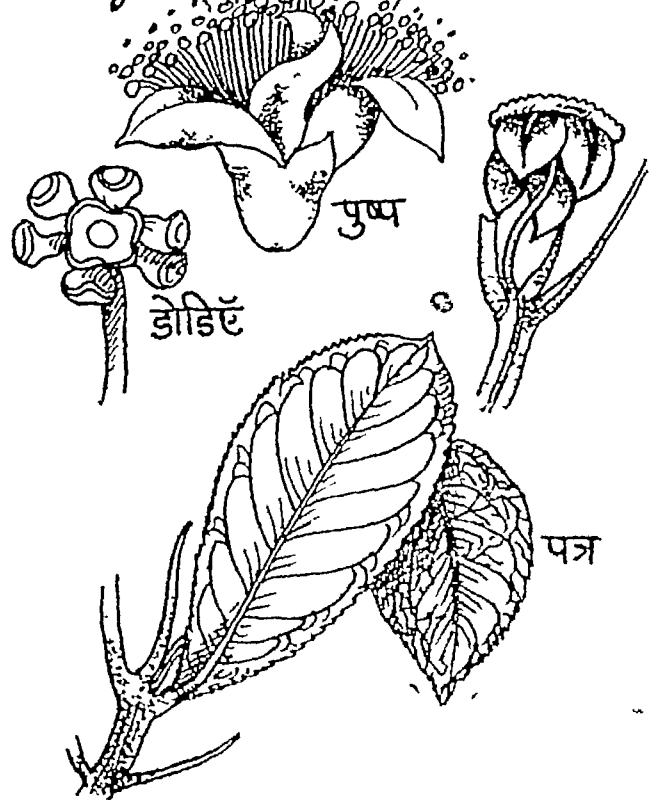
कुकरौंदा [Blumea Lacera]

इस गुडूच्यादि वर्ग एवं नैसर्गिक क्रमानुसार भृंगराज कुल (Compositae) की बूटी के क्षुप के प्रथमारम्भ ...न ही मूली पत्र जैसे लगभग ८ इंच लम्बे व ४ ... चौडे निकल कर भूमि पर बिखरे हुये से होते हैं।

ज्यो ज्यो क्षुप बढ़ता है त्यो त्यो इसके मध्य भाग एक डंडी सी निकलती है तथा आगे को पत्र छोटे लग- ग ३ इंच लम्बे व १।। इंच चौडे होते हैं और उक्त ...डी की प्रत्येक टहनियो मे पुष्प गुच्छीनुमा, रोमश, पीले ... श्वेत रङ्ग के लगते है। क्षुप जब अपनी पूर्णावस्था को पहुँचता है तब वह १ से ३ फीट ऊंचा, राख जैसे रंग वाला, सघन रोमयुक्त होता है तथा पत्ते लगभग १ इंच लम्बे व अर्ध या पाव इंच चौडे निकलते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे इसके पत्र छोटे होने जाते हैं। अत इसे सूक्ष्म पत्ता कहते हैं तथा क्षुप का ऊपरी कोमल भाग ताम्रवर्ण का होने से इसे 'ताम्रचूड' कहते हैं। यह बूटी कुकर या कुत्ते के विष को रोधती या नष्ट करती है अत शायद यह भाषा में कुकरौंधा कहलाती है।

इसके बीज छोटे काले रंग के कोनेदार होते हैं।

कुकरौंधा
Blumea lacera Dc
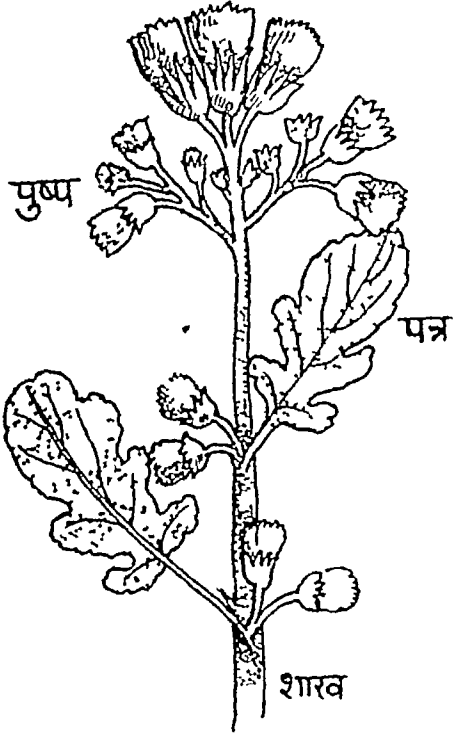
यह बूटी वर्षा मे उत्पन्न होकर शीतकाल के अन्त मे फूलती व फलती है तथा ग्रीष्म मे सूख जाती है। यह कपूर जैसी कुछ उग्रगन्धयुक्त होती है।

कुकरोधा की कई जातिया हैं। किसी के क्षुप बडे किसी के छोटे। किसी के पत्ते खण्डित, किसी के केवल दन्तुर पत्र होते हैं। किसी के पीले, किसी श्वेत, किसी के पत्ते बहुत ही छोटे, पुष्प गु डीदार एव अत्यन्त पीले होते हैं। गुणधर्म मे ये सब प्राय समान हैं।

यह बूटी भारत में प्राय सर्वत्र आर्द्र और ऊ ची भूमि पर पाई जाती है। तथा बर्मा, सीलोन, मलाया, आस्ट्रेलिया अफ्रीका आदि उष्ण प्रदेशो मे खूब होती है।

नाम—

सं.—कुकुन्दर, ताम्रचूड़, मृदुच्छद, गंगापत्री।
हि—कुकरौंधा, कूकरभंगरा, जंगली मूली, कुकरवन्दा, गंधीली, काललली।
म.—कुकुरवन्दा, निमुर्डी, भामुर्डा।
बं—कुकसिम, कुकुरशोंगा।
गु.—कोकरोंदा, कपुरियो, कलार, चांचदमारी।
ले.—ब्लुमिया लेसरा, ब्लु. आरिटा [B Aurita], ब्लू. बालसेमिफेरा [B Balsamifera], ब्लू. एरिएन्था [B Eriantha]

रासायनिक संघठन—

इसमे एक उड़नशील तैल और कर्पूर होता है। इसे अंग्रेजी मे ब्लुमिया कैम्फर (Blumea Camphor) कहते हैं। यही भारतीय या देशी कपूर है जिसे नागी या पत्री कपूर कहते हैं। यह वर्मा मे विशेष निर्माण किया जाता है। इसके लिये कपूर का प्रकरण देखिये।

औषधि कार्यार्थ इसके पत्ते और जड का प्रयोग होता है। आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका विशेष वर्णन या प्रयोग नही पाया जाता। तथापि प्राचीन काल से परम्परा से ग्रामो मे इसका कई प्रयोगो पर उपयोग किया जाता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य है। इसमे प्राय कपूर के ही सब गुणधर्म पाये जाते हैं। कफ पित्त शामक, दीपन, अनुलोमन, पाचन, यकृदुत्तेजक, स्वेदल, कफघ्न कृमिघ्न, ज्वरघ्न, दाहशामक, शिरोविरेचन, व्रणरोपण, मूत्रल, ग्राही, वेदनास्थापन, तथा वात, आध्मान, तृषा, अर्श, शोथ, विषनाशक एव शोणितस्थापन है।

इसकी ताजी जड़ मुखशोषनाशार्थ मुख मे धारण करते है। जड़ को अतिमात्रा मे देने से वामक है। पागल कुत्तो के विष पर—जड १ तोला की मात्रा मे दूध के साथ पीस कर पिलाने से आमाशय का विष वमन द्वारा निकल जाता है। अकस्मात हुए जख्म या घाव पर–इसके स्वरस मे वस्त्र भिगोकर बांधने तथा ऊपर से वार बार रस के डालते रहने से या पत्तो को मसलकर बाधने से रक्तस्राव वन्द होकर जख्म शीघ्र ही अच्छी होती है। नासूर या नाडी व्रण पर भी यह लाभकारी है, इसके रस को मधु के साथ पिलाते है। रक्त के जमाव या रक्तग्रंथि पर इसके पत्तों पर घृत चुपड़कर तथा थोड़ा गरम कर

बाध देने से रक्त बिखर जाता है, तथा गाठ बैठ जाती है। अतिसार पर—इसके स्वरस मे काली मिरच को को पीसकर सेवन कराते हैं। जूडी बुखार पर–पत्र रस की २-२ बू दें दोनो कानो मे टपकाते है। रक्तार्श पर–इसे मिश्री के साथ घोट पीसकर पिलाते है। सर्व प्रकार के अर्श पर—इसके तथा गेंदे के पत्ते ६-६ माशे और काली मिरच ३ माशा इनको १० तोला पानी मे पीस छानकर पिलाते हैं। अथवा–इसके १ पाव स्वरस मे १ तोला कालीमिरच चूर्ण मिला मद आच पर घन क्वाथ बना १-१॥ माशा की गोलिया बना प्रात. साय १-१ गोली ताजे जल से १ घू ट के साथ खिलाने से लाभ होता है।

[वैद्य रामस्वरूप]

रक्तस्तम्भनार्थ--प्रतिदिन २ या ३ बार इसके १ तो. रस में आध तोला मधु पिलाने से रक्त पित्त, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि मे शीघ्र ही लाभ होता है। अति रज स्राव पर—स्वरस १ तोला में फुलाई हुई फिटकरी ३ माशा और मधु १ तोला, इस प्रकार का मिश्रण दिन मे ३ बार देते हैं। गर्भस्राव की दशा मे स्वरस २ तोला में मिश्री मिला कर २-२ घटे से पिलाते हैं। बालक के शैयामूत्र पर—स्वरस आधे तोले मे थोडा कपूर मिला कर पिलाते है। शोथ पर–पत्तो को गरम गरम वांधते हैं। सविवात—इसका लेप करते हैं। स्तनशोथ पर स्वरस को जौ के मे आटे मिला गरम कर लगाते है या ठडा ही लगाते हैं। जलोदर पर–स्वरस को उसारे रेवन्दचूर्ण के साथ सेवन कराते हैं प्रतिदिन स्वरस की मात्रा बढ़ाते हुए १० तोला तक वढाते हैं।

उदर कृमि पर—स्वरस उचित मात्रा मे पिलाने से बालको के उदर मे हुये सूक्ष्म कृमि नष्ट हो जाते हैं। स्वरस को बालक की गुदा पर लगाने से चुन्ना कृमि नष्ट हो जाते हैं। फोडा फु सियो पर स्वरस मे श्वेत कत्था पीस कर लगाते हैं। बालक की गज या पलित रोग पर—१ भाग स्वरस मे ४ भाग पानी मिला क्वाथ कर सिर को धोते हैं। फोडा फूटने के लिये—इसकी पुल्टिस बना गरम गरम वाधते हैं। अर्श के मस्सो पर–इसके पचाङ्ग को पीस कर या पत्तो को ही पीसकर वाधते हैं। ग्रहणी पर–इसके चूर्ण को ३ माशे तक दोनो समय तक्र के साथ सेवन कराते हैं। नेत्र के जाला फूली पर—स्वरस मे फिटकडी घिसकर आजते हैं। इससे परवाल मे भी लाभ होता है। स्वरस को सुखाकर महीन चूर्ण कर १-१ रत्ती की मात्रा मे अदरख के रस के साथ चटाने से कफ की शुष्कता दूर होती हैं, कफ शीघ्र निकल जाता है, कंठ की घुरघुराट दूर होती है। शून्यबहरी कोढ–जिस कुष्ठ मे त्वचा स्पर्श ज्ञान रहित हो जाय उस पर इसके स्वरस के साथ मूली के बीज और हरताल तवकी को पीस कर लेप करते हैं। प्लीहा, यकृत तथा वात गुल्म विकारों पर—इसका पचाङ्ग १ भाग तथा सरफोका मूल और कालीमिर्च अर्ध अर्ध भाग लेकर पानी से महीन खरल कर चना जैसी गोलिया बना प्रात साय १-१ गोली ग्वारपाठा स्वरस से सेवन कराते हैं। रक्तार्श पर–इसके स्वरस मे शुद्ध रसौत और शक्कर समभाग मिला, मन्द आच पर अवलेह जैसा तैयार कर प्रात साय ६ माशे तक की मात्रा मे चटाते हैं।

अथवा—इसके स्वरस १ तोला मे गोघृत १ तोला मिला पिलाने से रक्तस्राव चाहे रक्तार्श का हो या रक्तातिसार, रक्तप्रदर, अत्यार्त्तव, रक्तपित्त या मूत्रेन्द्रिय से हो बन्द हो जाता है।

अथवा–स्वरस मे रसौत ८ तोला वडी हरड ८ तोला तथा सोनागेरु, गिलोयसत व कालीमिर्च २-२ तोला इनका महीन चूर्ण खरल करें। शुष्क होने पर पुन स्वरस मिला खरल करें। इस प्रकार रस की ७ भावनाये देकर २-२ रत्ती की गोलिया बना प्रतिदिन २ या ३ बार जल मे पीस कर पिलावें। रक्तार्श का रक्तस्राव गुदा की जलन तथा मलावरोध दूर होता है। १-२ मास सेवन कर लेने से सब प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। (रस तंत्र सार) यही प्रयोग जगलनी जडी बूटी नामक गुजराथी पुस्तक मे हैं। किन्तु उसमे हरड ४ तोला, कालीमिर्च १ तोला लिया है। गिलोय सत नही है। तथा रोगी को केवल मू ग का यूष, गेहू की रोटी और घृत का पथ्य आवश्यक बताया गया है।

आधा शीशी पर—इसके रस को धूप मे बैठकर कपाल पर मसलने से शीघ्र ही सिर दर्द दूर होता है, रस का नस्य भी दिया जाता है।

नेत्राभिष्यन्द पर—पत्ररस की २-२ बूंदें प्रात सायं डालने मे आखो का आना, लाल हो जाना, पाडा आदि मे लाभ होता है। नासिका रोग–जिसमे सिर भारी, तथा गरदन मसाने व कमर में दर्द रहा करता है (इसे बगाल में आहू कहते हैं) इसका स्वरस नाक में टपकाने से बडा लाभ होता है। प्रौढ स्त्री का मासिकधर्म बन्द करने के लिये मासिक धर्म के दिनो में प्रात साय इसका स्वरस ५ तोले में २॥ तोले शक्कर तथा गोपी चदन ३ रत्ती मिलाकर पिलाते हैं। कभी कभी यह प्रयोग २-३ माह तक मासिक धर्म के दिनो में सेवन करना पडता है।

बालको के सूखा रोग पर—इसका तथा सहदेई का स्वरस समभाग लेकर खरल करते हैं। जब गोली बनाने योग्य हो जाता है तब चने जैसी गोलिया बनाकर प्रात साय १-१ गोला माता के दूध या जल के साथ घिस कर ७ दिन पिलाते है। साथ ही निम्न तैल की मालिश बालक की पीठ पर करते है। इसके एक पाव स्वरस में आध सेर तक काले तिल का तैल तथा ३ पाव बकरी का दूध मन्द आच पर पका कर तैल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी में रखते हैं।

मस्तिष्क के कृमि दूर करने के लिये इसके पत्तो के महीन चूर्ण की नस्य ४-५ दिन देते हैं। पत्तो को छाया शुष्क कर यह नस्य बनाया जाता है।

मात्रा—स्वरस की ½ से १ तोला, शुष्क पत्र चूर्ण सेवनार्थ ५ से १५ रत्ती, नस्य के लिये १ या २ रत्ती, क्वाथ ५ तोले।

कुकरोंधा के योग से भस्में—

अभ्रक भस्म—शुद्ध किये हुये अभ्रक चूर्ण को इसके रस की १० भावनायें देकर आच मे फूक देने से सुन्दर लाल रग की मुलायम भस्म बन जाती है।

पारद भस्म–शुद्ध पारद को ८ पहर तक इसके रस मे घोट कर शराब सम्पुट कर गजपुट मे फूक देने से उत्तम भस्म तैयार होती है।

गौदन्ती हरताल भस्म—गौदन्ती ३० तोला को इसकी लुगदी मे रख कर १० कण्डो मे फूक देने से अथवा–हरताल को इसके रस मे २ दिन खरल कर टिकियां बना सुखाकर मटकी मे रख १० सेर कण्डो की आच मे फूक देने से सर्व ज्वर नाशक भस्म बन जाती है। मात्रा २ रत्ती अनुपान शहद। श्वास पर इसे २ रत्ती मलाई मक्खन या रबडी ५ तोले के साथ प्रात देवें।

साबर शृग भस्म—१० तोला सींग का चूर्ण या छोटे छोटे टुकडे कर इसकी लुगदी मे धर कर गजपुट देवें। यह भस्म श्वास कास, ज्वर, मन्दाग्नि दूर करती है। मात्रा—२ रत्ती, शहद व अदरख के साथ देते हैं।

लोहा, सुवर्ण तथा चादी भस्म बनाने के लिये भी इसके रस और लुगदी का उपयोग किया जाता है।

बगभस्म–इसके आध सेर पत्तो को पीस दो टिकिया बना लें, तथा शुद्ध बग १ तोला के पतरे बना उनके बीच मे रख दो उपलो मे रख आग लगा दें। श्वेत भस्म होगी। धान की खील जैसी १ रत्ती भस्म को ५ तोला मलाई मक्खन या रबडी मे लपेट कर सेवन करें। यह प्रमेह नाशक, धातुपौष्टिक एव बल्य है।

—श्री श्रीराम शर्मा एल. ए एम एस, दिल्ली।

कुकुर जिव्हा [*LEEA SAMBUCINA*]

इस द्राक्षा कुल (Vitaceae) की वनौषधि के क्षुप १० फीट तक ऊचे, शाखायें सीधी सदैव हरी रहती हैं।

पत्ते—३॥-४ इंच लम्बे, प्रान्त भाग किनारे या कगूरेदार, डंठल मे दो और मध्य मे एक त्रिदल होते हैं।

फूल—कुछ नीलाभ श्वेत वर्ण के गुच्छो मे लगते हैं।

फल—बेंगनी रग का चमकीला, मुलायम लगभग १॥ इच लम्बा होता है।

यह भारत के उष्ण प्रदेशो मे पूर्वी बगाल, दक्षिण मे कोकण, सीलोन आदि मे बहुतायत से होता है। इसकी एक जाति जिसे नैपाल मे गलैनी, गुबुई व लेटिन मे लीआ रोबस्टा (Leea Robuta) कहते हैं, सिक्किम

तथा पश्चिम हिमालय के प्रान्त भागो मे अधिक पाई जाती है। इसके गुणधर्म कुकुरजिह्वा के ही समान हैं।

कुकुर जिह्वा

Leea sambucina Willd.

नाम—

संस्कृत, हिन्दी व बंगला–कुकुरजिन्हा। म०–कर्कर्णी।

लेटिन—लीश्रा सेंबुसिना, लीश्रा स्टायफेलिया (L Styphylca)

श्रौषधि कार्यार्थ–इसकी जड की छाल और पत्ते लिये जाते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग–

यह शीतल, तृष्णाशामक, स्वेदन तथा पाचक है।

इसकी जड का क्वाथ तृष्णारोग, दाह, उदरशूल तथा आन्त्र के विकारो पर दिया जाता है।

कोमल पत्तो का रस पाचक है, आमातिसार तथा रक्तातिसार पर दिया जाता है। सधिवात पर इसका प्रलेप करते हैं। पत्तो को भूनकर व पीसकर सिर पर मर्दन करने से सिर के चक्कर, घुमरी आदि विकार दूर होते हैं।
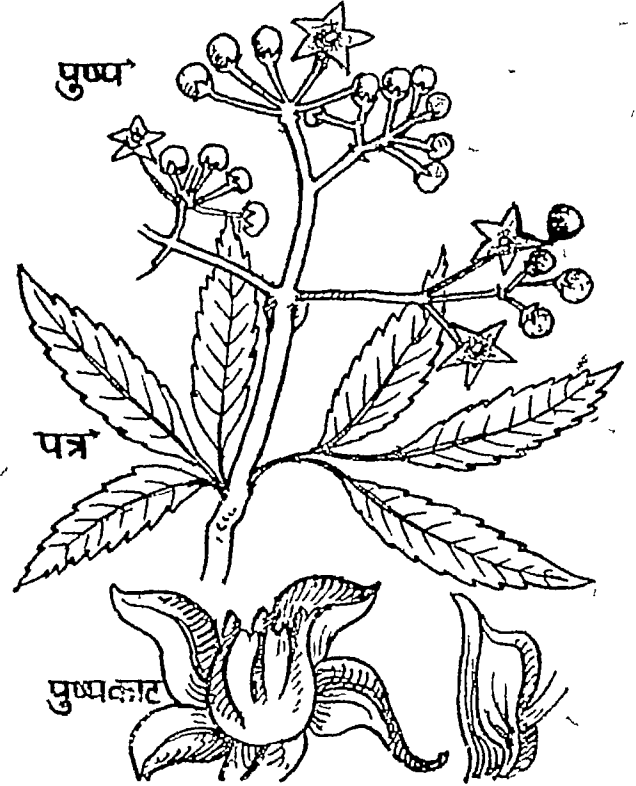
कुकुर विचा [*GREWIA POLYGAMA*]

इस परुपक, फालसा कुल (Tiliaceae) की बूटी के क्षुप छोटे छोटे पौधो के रूप मे भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशो मे तथा हिमालय मे नेपाल तक दक्षिण मे कोकण नीलगिरी घाट एव पूर्वी सिन्ध प्रदेश मे विशेष पाये जाते है। इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक, पत्ते–शल्याकृति, कगूरेदार, फूल–छोटे छोटे श्वेत, फल–बादामी रग के रोमश एव चमकीले होते है।

नाम—

हिन्दी—कुकुरविचा, ककरून्दे रूसी।
मरेठी—गोवाली। लेटिन—ग्रेविया पोलिगेमा।

गुण धर्म और प्रयोग–

कडुवी और बेस्वाद भेद से इसकी दो जातिया हैं। कडुवी जाति के पत्ते कृमिनाशक, दाहशान्तिकर तथा नासिका और नेत्रो के विकारो मे उपयोगी है। इसकी जड आन्त्रसकोचक है तथा विसूचिका, अर्श, मूत्राशय विकृति एव कुत्ते के विष पर उपयोगी है। इसके पत्तो का क्वाथ या फाट आमातिसार पर ढाई तोले की मात्रा मे दिया जाता है। इसके फल भी अतिसार, आमातिसार या रक्तातिसार मे उपयोगी हैं। जड की छाल को पानी के साथ पीसकर व्रणो पर प्रलेप करने से वे शीघ्र ठीक हो जाते हैं। यह प्रलेप शुष्क होकर व्रणो की बाह्यदूषित वायु से रक्षा करता है।

बेस्वाद जाति के पत्ते रेचक, कफनिस्सारक, आध्माननाशक, ऋतुस्राव नियामक, स्तन्य (दुग्धवर्धक) और व्रणरोपण हैं। जड की छाल मे भी ये ही गुण है। अर्श, गठिया, सन्धिपीडा, नेत्ररोग और प्लीहा पर इसका प्रयोग किया जाता है।

कुचला (Strychnos Nuxvomica)

इस फलवर्ग की एव नैसर्गिक क्रम मे स्वकुल[१] (Loganiaceae) की वनौपधि के वृक्ष ४०-५० फीट ऊचे, सदैव हरे भरे, तना—मोटा और सीधा, शाखाऐ पतली किंतु दृढ (सहज मे न टूटने वाली) छाल—पतली, कोमल, धूसरवर्ण की होती है। इसका काण्डसार काटने पर श्वेत किंतु कुछ देर बाद पीताभ धूसर वर्ण का हो जाता है। पत्र—गोल, मुलायम, अभिमुख, चमकीले, चिकने, २ से ३॥ इच लम्बे, २ इच चौडे, विपैले, पत्तो को मसलने पर पीतवर्ण का दुर्गन्धित रस निकलता है। पत्र-वृन्त स्थूल और ह्रस्व, पुष्प-शाखा के अग्रभाग मे प्राय गुच्छो मे छोटे छोटे हरिताभ पीत या श्वेत, कोमल हल्दी जैसे गन्ध वाले, शरद और बसन्त मे दो बार आते हैं। फल—१॥ इच व्यास के, नारगी जैसे गोल, पकने पर रक्ताभपीत वर्ण के फलावरण अतिकडा, ये हेमन्तऋतु मे पकते हैं। फल-मज्जा, कोमल, श्वेत, अति-तिक्त होती है। बीज—$\frac{१}{२}$ इच चौडा $\frac{१}{८}$ इच मोटा, चपटा, बटन जैसा गोल, बहुत कडा, एक ओर को उभरा हुआ, दूसरी ओर कुछ दबा सा कुछ लोम युक्त होता है। इन बीजो को ही कुचला कहते है। प्रत्येक फल मे २ से ५ तक ये श्वेत धूसर वर्ण के बीज होते है। बीज के भीतर दो दलो के मध्य मे एक छोटा पर्दा होता है, जिसे इसकी जीभी कहते है। यह महा विपैली होने से प्राय शुद्धीकरण के समय निकाल दी जाती है।

भारत के उष्ण प्रदेशीय जगलो मे, विशेषत सह्यादी एव विंध्याचल के जगलो मे तथा मद्रास, ट्रावनकोर, कोकण, मलाबार, उडीसा मे प्रचुरता से पाया जाता है। बगाल एव उत्तर प्रदेश, बिहार आदि मे कहीं कम और कहीं अधिक होता है।

नोट—आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थों में आधुनिक कुचले का यथायोग्य उल्लेख नहीं मिलता। सुश्रुत के सुरसादि-गण में जो विषमुष्टि नाम आया है उसका अर्थ डल्हणाचार्य ने राजनिम्ब किया है। कोई इसे गुमडूलम्बुषा और कोई कर्कोटक कहते हैं। भावप्रकाश में जो विषमुष्टि के गुणधर्म शीतवीर्य, वातकारक आदि कहे गये हैं कुचले के वास्तविक गुणधर्म से नहीं मिलते। शार्ङ्गधर में इसका कुछ यथास्थित वर्णन मिलता है।

ध्यान रहे तिन्दुक या तेन्दु (जो इससे भिन्न कुल Ebenaceae का है) के फल की बाह्य आकृति जैसा ही कुचला फल की आकृति होने से, किन्तु यह विषैला होने से इसे विषतिन्दुक, काकतिन्दुक आदि संस्कृत नाम दिये

कुचला
Strychnos Nux vomica Linn.

---

[१] इस कारस्कर या कुचला कुल की वनौपधियां उष्णकटिबन्ध में वृक्ष या वेलि के रूप में होती हैं। इसके पत्र अभिमुख [आमने सामने], अखण्ड, उपपत्ररहित, चमकदार, चिकने होते हैं। पुष्प—हरिताभ शाखा के अग्रभाग पर लगते है। ऊपर दो खोल का बीज कोष होता है। फल—गूदेदार, सुन्दर, सन्तरे या नारगी जैसा होत है। इस कुल के वृक्षों में तीक्ष्ण विप होता है। प्रस्तुत प्रसग का कुचला, तथा पपीता [विषैला] और निर्मली, प्राय इन तीन ही वृक्षों की गणना इस कुल मे की गई है।
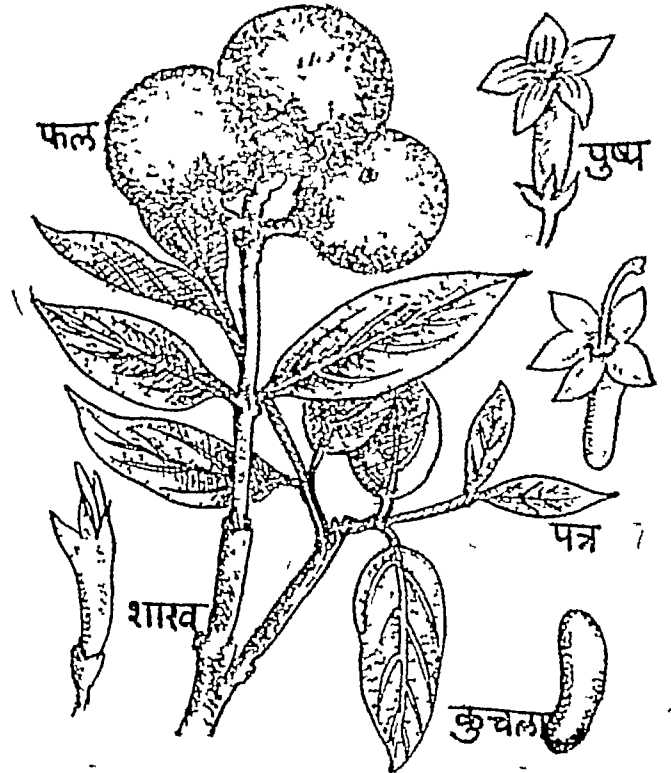
गये है। किन्तु इसमे भी काकतिन्दुक यह वास्तव मे भिन्न उक्त तिन्दुक का ही एक भेद विशेष है। इसे लेटिन मे डायोस्पायरास टोमेन्टोसा (Diospyros Tomentosa) कहते है, तथा एक भेद और होता है जिसे डा मोन्टाना (D Montana) कहते हैं। ये दोनो विषैले हैं। इन दोनो मे से ही कोई एक विषतिन्दुक या विषमुष्टि, कुपीलु हो सकता है, जिसका सक्षिप्त वर्णन भावप्रकाश, शारगधर आदि मे पाया जाता है।

काकतेन्दू या मकरतेन्दू नामक और एक उक्त तेन्दू की ही जाति विशेष है, जिसे लेटिन मे डा. मेलानोक्सिलान (D Milanoxylon) कहते हैं। तेन्दू के प्रकरण मे देखें।

कुचला की ही एक जाति विशेष पपीता (Strychnos Ignatti) है। इसके बीज लम्बे गोल होते हैं। इसमे भी कुचला-सत्व स्ट्रिकनिया और ब्रूसाईन विशेष प्रमाण मे पाया जाता है। पपीता का प्रकरण देखें।

एक वन्दाकादि कुल (Loranthaceae) की कुचला के वृक्षो पर चढने वाली पराश्रयी लता होती है। इसे कुचीले का-वान्दा या मलगा कहते हैं। इसके गुणधर्म साधारणतया कुचले के समान है। कुचले का मलगा देखें।

कुचले के ही कुल की एक बडी जाति की बेल होती है, जिसे हिन्दी और बगला मे कुचला-लता तथा लेटिन मे स्ट्रिकनस कालुब्राइन (Strychnos Colubrine) कहते है। इसके भी गुणधर्म कुचला के ही समान हैं। आगे देखो कुचला-लता।

१६ वी शताब्दी मे कुचला के कुछ गुणधर्म शायद फारसी ग्रन्थो मे यूरोप वालो को ज्ञात हुये। इसका खास कर कुत्ते, चूहे आदि जानवरो को मारने के लिये वे प्रयोग करने लगे। फिर लगभग सन १६५० से इसके रासायनिक विश्लेषण होने लगे तथा धीरे धीरे इसका वास्तविक औषधि रूप से प्रचार बढ़ने लगा। अब तो यह देशी एव विलायती चिकित्सा का एक विशेष अग बन गया है।

नाम—

स —कुपीलु (कुत्सित पीलु-पीलु जैसे फल किंतु विषाक्त) विष तिन्दुक, कारस्कर, रम्यफल।
हि.—कुचला कोचिला, कुलक, कागफल।
बं. -कुचिला। म --काजरा, कारस्कर।
गु.—भेर कोचला। अं.—पायझन नट (Poison nut), नक्स-व्होमिका (Nuxvomica)।
ले.—स्ट्रिकनस नक्सवोमिका।

रासायनिक संगठन--

इसमे क्षारतत्व २ ६ से ३ प्र. श. जिसमे १ २५ से २ तक स्ट्रिकनीन (Strychnine) तथा मंदे के रूप मे ब्रूसीन (Brucine) १ ७ प्र श., प्रोटीड ११ प्र श, शर्करा ६ प्र श इत्यादि द्रव्य पाये जाते है। स्ट्रिकनीन बीज मे अधिक होता है तथा ब्रूसीन पत्तो एव ताजी छाल मे अधिक होता है। इसके पत्तो को खाने से पशुओ की मृत्यु होती है। औषधि कार्यार्थ--इसके बीज, मज्जा, छाल और पत्ते लिये जाते हैं। बीजो का शुद्धिकरण आगे देखें।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, विपाक मे कटु और उष्ण वीर्य है। (कच्चा फल कुछ शीतवीर्य, वातकारक माना गया है।)

यह कफ वातशामक, दीपन, पाचन, ग्राही, शूल-प्रशमन, स्वेदापनयन, वाजीकरण, कटुपौष्टिक, हृदयोत्तेजक, रक्तभारवर्धक, शोथहर, तथा कास, बस्तिशैथिल्य, कुष्ठ, कण्डू, विषमज्वर, अर्दित, पक्षाघात, अनिद्रा, अग्निमाद्य, आमाशय शोथ, आमदोष, ग्रहणी, अर्श, कृमि एव उदर तथा नाड़ीशूल आदि नाशक है।

पाचन नलिका पर इसकी उत्तम क्रिया होती है। आमाशय की शक्ति बढाते हुए यह पाचन क्रिया को सुधारता, आन्त्र-शैथिल्य को तथा कब्जी को दूर करता है। आमाशय एव आन्त्रप्रणाली के विकारो पर अत्यल्प मात्रा मे इसका चूर्ण ही विशेषत दिया जाता है।

इसका विशिष्ट प्रभाव मज्जा तन्तुओ पर सर्व प्रथम होता है। आन्त्र या आन्त्र की मासपेशियो पर यह अपनी क्रिया मज्जा तन्तुओ के द्वारा ही सम्पन्न करता है। इसकी इस क्रिया से पक्वाशय की श्लैष्मिक कला मे रक्त का वेग बढकर पाक रस का अधिक निस्सरण होने लगता, उसकी सचलन क्रिया एव पचन क्रिया उन्नत होती है। मज्जा तन्तु के विकार, पक्षाघात, गठिया, अपस्मार, धनुर्वात, गतिभ्रश आदि इसके प्रयोग से दूर होते है। किन्तु यदि मज्जा तन्तुओ का ही ह्रास हो गया

हो तो इसका कुछ भी असर नही होता।

अग्निमाद्य मे इसकी क्रिया व्याधिप्रत्यनीक होता है। यह एक चिरकारी विकार है। इसमे शारीरिक उत्साह का ह्रास, ग्लानि, आन्त्र शिथिल एव रुक्ष होकर कई व्याधिया हो जाती हैं। ऐसी अवस्था मे इसका प्रयोग क्रमवद्ध पद्धति से घृत के साथ भोजनोत्तर करना ठीक होता है। आहार हलका एव नियमित करें।

मज्जा तन्तुओ की वेदना या कम्परोग पर इसका प्रयोग सखिया या मल्लसिन्दूर के साथ करते हैं। सधिवात, आमवातादि मे वीजो का लेप करते हैं। अग्नि-दग्ध व्रणो पर इसके क्वाथ मे शुद्ध घृत मिला लगाते है। बद की गाठ पर इसे कालामिर्च के साथ घिसकर लेप करते है। प्लेग की गाठ पर इसके साथ समभाग एलुवा व थोडी अफीम मिला जल मे पीस गरम कर कई बार लेप करते हैं। केशनिरोधार्थ इसे सर्प का केंचुली के साथ थोडा पानी मिला पीसकर लेप करते रहने से वाल नही उगते, केशो को प्रथम निकाल कर फिर यह लेप किया जाता है। उकौत या छाजन पर इसके साथ समभाग फिटकरी लेकर दोनो का घृत मे घोटकर लेप करते है। कर्णनाद और वाधिर्य पर इसे तैल मे पकाकर नित्य दोनो समय कान मे डालते है। गुद-भ्रंश पर इसके वृक्ष की कोपलो का या नरम पत्तो का क्वाथ कर शौच के वाद इसीसे गुदप्रक्षालन करते हैं तथा थोडी मात्रा मे इस क्वाथ को पिलाते भी हैं। मूत्राशय की कमजोरी पर वीजो के चूर्ण को शिलाजीत व असगन्ध के चूर्ण के साथ देते है। वाजीकरणार्थ इसके चूर्ण को विदारीकन्द के स्वरस या चूर्ण के साथ अथवा बगभस्म, लोहभस्म, स्वर्णवग और काली मिर्च के साथ सेवन कराते हैं। गर्भवती स्त्री के अम्लपित्त पर भोजन के पूर्व २-३ बूदें इसका अरिष्ट जल मे मिला पिलाते हैं। यदि रक्तस्राव हो या हिस्टीरिया हो तो इसे नही देते। ज्वर छूटने के वाद के उदर विकार पर इसकी मात्रा २ चावल, रेवन्दचीनी या अफीम या लोहासव के साथ देते हैं। आमवात पर इसे तैल मे जलाकर छानकर मर्दन करते है। अतिसार पर इसके अर्क की कुछ बूदें हरड के मुरब्बे के साथ देते है। व्रण के कृमिनाशार्थ इसके पत्तों को पीसकर लेप करते हैं। शीतवात जिसमें उदरशूल, पार्श्वशूल तथा श्वासोच्छ्वास मे विकृति हो तो इसके चूर्ण के साथ समभाग भुनी हींग मिला नीबू के रस मे ७ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना जल के साथ सेवन कराते हैं। निर्बलता, पैरो मे तनाव या ऐंठन तथा रक्तातिसार पर इसे गोमूत्र मे शुद्ध कर चूर्ण बना गोमूत्र की ही २१ भावनाएँ देकर गोली या चूर्ण रूप में सेवन कराते हैं। जिह्वा मूल की पीडा-पर जीभ के पिछले हिस्से मे असह्य पीडा हो तो प्रथम जीभ पर शहद लगाने से जब खूब लार बह जाती है तब इसका चूर्ण १ रत्ती शहद और मलाई मे कुछ दिन सेवन कराते हैं तथा नमक से परहेज। अर्श की पीडा पर इसकी धूनी देते हैं। कर्णमूल शोथ और विद्रधि पर इसे गोमूत्र मे पीसकर लेप करते हैं। पुष्टि तथा वाजीकरणार्थ—शुद्ध वीजो का चूर्ण २ भाग, त्रिफला ३ भाग और कालीमिर्च २ भाग इनको ग्वारपाठा की गिरी या लुआब मिला खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना १ या २ गोली प्रात साय मिश्री मिले हुये गोदुग्ध से सेवन कराते हैं। फोडा विद्रधि आदि को पकाने के लिये इसको और समुद्रफल को जल मे पीस गरम कर लेप करते रहने से वे शीघ्र पककर फूट जाते हैं, पीडा दूर होती है। निद्रानाश पर इसके चूर्ण की मात्रा पिप्पली-मूल चूर्ण या खुरासानी अजवायन चूर्ण या सर्पगन्धा चूर्ण के साथ देकर ऊपर से भैंस का औटाया हुआ दूध पिलाते हैं। पाडुरोग या अन्य रोगो मे धमनियों की शिथिलता के कारण निद्रानाश हो तो इसकी मात्रा लोहभस्म के साथ दी जाती है। राजयक्ष्मा के रात्रिस्वेद पर यक्ष्माग्रस्त रोगी को रात्रि मे अत्यधिक पसीना आता है, अशक्ति वढती हो तो इसके चूर्ण को कायफल चूर्ण और मधु के साथ देते हैं।

(१) पक्षाघात पर—इसके चूर्ण या घनसत्व की मात्रा एकांगवीर रस या पक्षाघातारि गुग्गुल के साथ सेवन कराते हैं। नीचे के अर्द्धाङ्गवात मे यह विशेष लाभकारी है। मस्तिष्क व कशेरु की मज्जा की क्रिया विकृति हो जाने से यदि पक्षाघात हो तो इसका प्रयोग अश्वगन्धा-रिष्ट या सारस्वतारिष्ट के साथ कराना ठीक होता है,

किन्तु यदि मस्तिष्क के कशेरुका मे प्रदाह हो या नाडी-फटकर रक्तस्राव हो तो इसका प्रयोग अहितकर होताहै।

पक्षाघात पर अन्य प्रयोग—कुचला के ३५ बीज लेकर लगभग आध सेर पानी में भिगोकर ३-३ दिन मे जल बदल दें। इस प्रकार १५ दिन भिगोकर छिलका दूर कर शुष्क कर जला लें। जितनी भस्म हो उतने ही वजन की कालीमिर्च चूर्ण उसमे मिला २-२ रत्ती की गोलियां बना प्रात साय १ या २ गोली शहद से चटावें। इससे गठिया मे भी लाभ होता है।

कुचले को घी मे भूनकर महीन चूर्ण कर उसमें शुद्ध वच्छनाग का महीन चूर्ण समभाग मिलाकर अद्रक स्वरस मे ४ दिन खरल कर २-२ ग्रेन की गोली बना लें। १-२ गोली गरम घृत के साथ प्रात साय सेवन करने से लकवा शीघ्र दूर होता है।

—श्री वैद्य मोहरसिंह आर्य हितैषी, महेन्द्रगढ पू प

(२) आन्त्र शैथिल्य पर—आंतो की पेशियो की क्रिया मे शिथिलता आई हो एव कोष्ठवद्धता हो तो इसका प्रयोग एलुवा या मुसब्बर के साथ या इन्द्रायण के साथ कराते हैं अथवा इसके अरिष्ट की १-२ बूदें दिन मे २-३ बार देते हैं। किन्तु यदि पित्त की न्यूनता से कोष्ठबद्धता हो तो इससे लाभ नही होता। आगे प्रयोग न ६ देखें।

(३) नहरुआ (नारू) पर—जिस स्थान पर नारू हो चाहे भीतर हो या बाहर, इसके अशुद्ध बीज को जल के साथ पत्थर पर घिसकर खूब गाढा लेप कर तथा ऊपर से थोडा सुहागा और सिन्दूर बुरक कर रेंडी पत्र बाध देते हैं। इस प्रकार २-३ वार के प्रयोग से नारू नष्ट हो जाता है। यदि नारू टूट भी गया हो तो भी इससे लाभ होता है। रोगी को साथ ही साथ इसके शुद्ध चूर्ण की मात्रा १ रत्ती को सीप की भस्म ४-४ रत्ती के साथ मिला थोड़ा घृत और मधु के साथ दिन मे दो बार चटाते हैं अथवा नौसादर ४ रत्ती को तक्र मे घोलकर दो बार ५-७ दिन पिलाते हैं।

(४) शूल पर—इसका शुद्ध चूर्ण ३ भाग और लौंग १ भाग दोनो को अदरख रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया बना मधु से चटाते हैं। शीतज्वर, आम की मरोड और सग्रहणी पर भी यह प्रयोग लाभकारी है। सग्रहणी पर—कुचला शुद्ध ३ भाग, लौंग १ भाग दोनो चूर्ण अद्रक स्वरस में खरल कर चना जैसी गोलिया बनावें। १ गोली मधु से प्रात साय दे।—वै मोहरसिंह

अथवा—पाताल यन्त्र द्वारा निकाला हुआ इसका तैल एक सीक से पान के बीडे मे लगाकर खिलाते हैं। शूल तत्काल शमन होता है। अथवा एरण्ड तैल मे शोधित इसका चूर्ण मात्रा १ या २ रत्ती तक जल के साथ देने से शूल, आध्मान, अजीर्ण के पतले दस्त, अरुचि, आमप्रकोप आदि विकार दूर होते है।

(५) सतत ज्वर और विषमज्वर पर—सततज्वर मे प्राय पित्त कफ के उद्रेक से तन्द्रा मूर्च्छा आदि उपद्रव होने पर इसकी मात्रा अर्ध रत्ती से १ रत्ती तक, सुवर्ण सूतशेखर १ या २ रत्ती मे मिला दिन मे ३ या ४ वार शहद से चटाते हैं (यह एक मात्रा है)। इससे तन्द्रा-मूर्च्छा दूर होती है। आमदोप का पाचन होता है। यदि इस ज्वर मे गंडूपद कृमि (Round worms) जन्य भी विकार हो तो इसकी मात्रा को सर्पगन्धा चूर्ण २ रत्ती मे मिलाकर सेवन कराने से कृमिजन्य भ्रमादि लक्षण दूर होते हैं तथा कृमि नष्ट होते है। ऐसी अवस्था मे कृमिमुद्गर रस भी उत्तम कार्य करता है।

यदि इस प्रकार के विपमज्वर मे दोपाधिक्य के कारण मूत्रजठर (मूत्रावरोध से बस्ति का परिमाण वढना—Distended bladder) हो गया हो, नित्य शलाका द्वारा मूत्र निकालना पडता हो तो इसकी मात्रा को गोखरू और कटेरी मूल के फाट के साथ देते रहने से २-३ दिन मे यह मूत्राघात रूपी उपद्रव दूर हो जाता है। यदि विषमज्वर जीर्ण हो गया हो तो इसकी मात्रा अर्ध रत्ती को समभाग मल्लसिन्दूर तथा २ रत्ती मडूरभस्म के साथ (१ मात्रा है) दिन मे दो वार शहद से देते हैं। इस मिश्रण से तज्जन्य पाडु रोग मे भी लाभ होता है।

(६) आंतो की शक्ति शिथिल पड गयी हो तो इसे अर्क गुलाव के साथ देने से भी लाभ होता है। यदि कोष्ठबद्धता (कब्जी) अधिक हो तो इसके अर्क की ५

बूंदे १० तोले ताजे जल मे मिला दिन मे दो बार पिलावें। किन्तु यदि पचन नलिका मे विकार हो तो इसके चूर्ण की मात्रा पान के बीडे के साथ दी जाती है। ऐसी अवस्था मे अर्क से विशेष लाभ नही होता।

(७) हृदय शैथिल्य आदि हृद्विकारो पर—किसी भी रोग मे हृदयावसाद हो, नाडी मन्द हो, तो इसके चूर्ण की मात्रा मृगशृंग भस्म के साथ शहद या घृत मिला कर दी जाती है। यदि बहुत ही मन्द हो, तो अभ्रक भस्म या मकरध्वज या वृहत्कस्तूरी भैरव रस के साथ इसकी योजना करते हैं।

हृत्पटल के पुराने विकार मे उक्त हृदय शैथिल्य के साथ ही साथ शोथ पैदा होता है। उदर मे पानी उतरने लगता है, यकृत बढ जाता है। मूत्र और मल मे रुकावट होती है, पेट फूल जाता है, बेचैनी बढती है। ऐसी स्थिति में इसकी मात्रा ½ रत्ती के साथ लाल कनेर की मूल का चूर्ण समभाग तथा चौसठ प्रहरी पीपल चूर्ण व मृगशृंग भस्म २-२ रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा) दिन मे २-३ बार शहद से देते हैं। रोगी विरेचन योग्य हो तो उचित विरेचन की योजना की जाती है। उक्त मात्रा को अवस्थानुसार दुगुनी भी करते हैं। रोगी को केवल दुग्धाहार पर रक्खा जाता है।

उक्त अवस्था में इसकी योजना पुनर्नवामंडूर के साथ या शिलाजीत या जलकुंभी भस्म के साथ भी की जाती है। ऐसी अवस्था मे यदि कफ विकार हो तो इसे किसी कफघ्न औषधि तथा हीग और कपूर के साथ दें।

यदि यकृत के साथ ही प्लीहा की भी विशेष वृद्धि हो तथा रक्तार्श का भी उपद्रव हो, तो इसकी मात्रा अर्ध रत्ती के साथ समभाग शुद्ध अफीम तथा चन्द्रपुटी प्रवाल भस्म २ रत्ती (यह मिश्रण की १ मात्रा है) की योजना करें। अफीम का कोई विकृत परिणाम कुचला के योग से नही हो सकता।

(८) नपुंसकता पर—हस्तमैथुन या अतिमैथुन के कारण शीघ्र वीर्यपात एव नपुंसकता या ध्वजभग होने पर इसका चूर्ण १ तोला, हिंगुल ६ माशे, जायफल, जावित्री, अकरकरा ३-३ माशा, केशर १॥ मासा और कस्तूरी ६ रत्ती लेकर सबको बगला पान मे ६ घटे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना १ या २ गोली दिन मे दो बार या एक बार दूध के साथ देते हैं। यह उक्त कारणो से आई हुई नपुंसकता के अतिरिक्त अफीम के व्यसन से हुई नपुंसकता, स्वप्नदोष, शारीरिक निर्बलता तथा जीर्णवात रोगों पर भी दी जाती है।

साधारण नपुंसकता पर—इसके चूर्ण को असगंध या अकरकरा चूर्ण के साथ मधु या घृत मिलाकर देते है। ढलती उमर में मैथुन शक्ति के कम हो जाने या शीघ्रपतन होने पर वाजीकरणार्थ इसके चूर्ण को वाराही-कन्द के चूर्ण या स्वरस के साथ अथवा वंगभस्म, स्वर्ण-वंगेश्वर, लोहभस्म और कालीमिर्च के साथ इसकी योजना करते है। अथवा—पारद गंधक की कज्जली १ भाग मे २० भाग इसका चूर्ण मिला पान के रस मे घोट कर या वैसे ही चूर्ण रूप मे १ से ४ रत्ती तक दें।

वीर्य दौर्बल्य पर—आजकल कुचला मिश्रित योगो का व्यापार खूब गरम है। अंग्रेजी दवा बेचने वालो के यहा निम्न गोलियो की खूब बिक्री होती है—एक्स्ट्राक्ट नक्स व्होमिका (कुचले का सत), डेमियाना और फास-फोरस इन तीनो के मिश्रण की यह गोलिया बनाई जाती है।

(९) बालको के शैय्या मूत्र पर—कई बालको को तथा प्रौढों को भी वृक्क और मूत्राशय की निर्बलता के कारण निद्रा मे ही पेशाब हो जाया करता है। ऐसी अवस्था में इसके चूर्ण की योजना बबूल के क्वाथ के साथ, या शिलाजीत अथवा कुन्दरूपत्र रस के साथ की जाती है। प्रौढ़ो को ऊपर प्रयोग नं० ८ मे कही गई हिंगुलादि मिश्रित गोलियों के सेवन से ही लाभ हो जाता है।

ध्यान रहे यदि मूत्रावरोध के कारण दिन मे पेशाब न होकर रात्रि मे हो जाता हो तो कुचला योग की औषधि देना ठीक नही। ऐसी दशा मे पेशाब साफ लाने वाली चन्द्रप्रभा वटी आदि योगो की योजना करें।

(१०) कुत्ते के विष पर—इसका चूर्ण पीली सरसो और पुराना गुड समभाग खूब घोट पीस कर चना जैसी गोलिया बना, प्रात साय १-१ गोली गरम पानी से १०-१५ दिन तक देते हैं। पथ्य मे मूंग की दाल, गहूँ की

रोटी और दूध । दंशस्थान पर दूषित रक्त निकाल कर इसे पीस कर लगाते हैं ।

अथवा—रेंडी तैल में शुद्ध किये गये इसके चूर्ण को २-२ रत्ती की मात्रा में प्रथम १० दिन तक दिन मे दो वार फिर १ वार दूध से २ मास तक सेवन करायें। अथवा

इसे घृत में तल कर चूर्ण कर प्रथम कुछ दिन आधी से एक रत्ती तक घृत के साथ देते है ।

(११) दृष्टिमाद्य पर—अति तमाखू गाजा के सेवन से दृष्टि मद पड़ गई हो, रात्रि मे न दीखता हो तो इसके चूर्ण की मात्रा १ या २ रत्ती दिन मे दो वार समभाग सोड़ावाईकार्व मिला कर पानी के साथ देते हैं। या इसका अर्क सज्जीखार के साथ देते हैं। तमाखू गाजा का व्यसन उसे छोड़ देना आवश्यक है ।

(१२) विशूचिका (हैजा) और अतिसार पर—इसके वृक्ष की हरी ताजी कुछ मोटी लकडी लेकर नीचे और ऊपर केवल दोनो ओर मोटा कपडा वाध कर (तार से कस कर) कपडे पर थोडा मिट्टी तैल डालकर आग लगा देने से दोनो ओर से जो रस निकले, उसे शीशी मे भर रक्खें। उक्त लकडी के नीचे एक कलईदार परात या थाल रखना चाहिये, उसी मे यह रस रहेगा। इस रस की मात्रा–१० से १५ वूंद शक्कर के साथ हैजा पर देते हैं। शीघ्र लाभ होता है। इसकी जड की छाल को नीबू रस मे पीस गोली वना सेवन करने से भी साध्य विपूचिका एव प्रवल अतिसार मे लाभ होता है। (डीमक) —अथवा

इसके वृक्ष की हरी छाल को कूट कर उसके ऊपर गभारी के पत्ते लपेट कर कपड़मिट्टी कर पुटपाक कर जो रस निकले उसे १ या१। मासे की मात्रा मे १ तोला मधु मिला चटाने से सर्व अतिसार मे लाभ होता हैं।

(१३) श्वास पर—शुद्ध वीजो के चूर्ण के साथ समभाग कालीमिरच चूर्ण मिला सेहुड के दूध मे १२ घटे खरल कर चना जैसी गोलिया वना प्रात. साय १-१ गोली गोघृत २॥ तोले के साथ सेवन कराते है। तैल, खटाई से परहेज आवश्यक है। -विशिष्ट योगो मे–कुचलाघृत देखें।

(१४) वालामृत—बीजो का शुद्ध चूर्ण और अनार के फूल ५-५ तोला, शुद्ध चौकिया सुहागा, केशर, श्वेत चदन बुरादा २-२ तोला, सौंफ और गुलाब फूल १०-१० तोला सबको १० सेर पानी मे पकावें। दो सेर शेष रहने पर छान कर २ सेर मिश्री मिला चासनी शर्वत की तैयार कर छोटे वच्चो को १ या २ चम्मच दोनो समय माता या वकरी के दूध से देने से वात रोग, कास, श्वास, सूखा रोग, पसली चलना, निर्वलता आदि नष्ट होकर वालक पुष्ट होता है।

(१५) सर्प विष पर–दोलायन्त्र मे पानी मे एक प्रहर तक स्वेदन किया हुआ कुचला, चावल जैसे टुकडे कर धूप मे सुखा, लोह खरल मे कूट कपड़छन कर रक्खें। सर्पदष्ट व्यक्ति को दो रत्ती इसका चूर्ण पानी मे घोलकर पिलावें। साथ ही १ तोला चूर्ण दो तोले पानी मे फेंटकर सारे शरीर मे लेप कर दें तो सर्प विष से मूर्छित मनुष्य आधी घडी के भीतर होश मे आजायगा। यदि वह इतना वेहोश हो कि मृत्यु के समीप हो तो ५-६ रत्ती यह चूर्ण नीवू के रस मे घोट कर वूद वूद उसके गले में टपकावें तथा शरीर पर पारे का मर्दन करें। इससे विष मुक्त हो रोगी सचेत होजाता है। (अगदतत्र)

(१६) अफीम का व्यसन छुडाना—जितनी मात्रा में तथा जिस-जिस समय अफीम सेवन करते हो, उतनी ही मात्रा मे अधिक निर्वल मन वाले को दूनी मात्रा मे विष तिन्दुकादि वटी (विशिष्ट योगो मे आगे देखें) का सेवन करावें। ५-७ दिन मे स्वयमेव अफीम की इच्छा शमन हो जाती है और सदा के लिये अफीम छूट जाती है। व्यसन छूट जाने पर पाचन क्रिया एव वात नाड़िया वलवान होकर दो मास के भीतर चेहरे पर से श्यामता दूर होकर लाली आजाती है।

उक्त वटी से भी उग्र औषधि देनी हो तो एरड तैल मे शुद्ध किये हुये कुचले का चूर्ण अफीम के समान वजन में दिया जाता है अथवा कुचले को घी मे भूनकर सम वजन मे देते रहें (गावो मे औषधि रत्न)। नीचे शुद्धी प्रकरण मे इस विषय का और एक प्रयोग देखिये।

शुद्धिकरण—

एलोपैथिक चिकित्सक कुचले का शुद्धिकरण आवश्यक

नही समझते हैं। किंतु वस्तुत इसके शरीररक्षक गुणधर्म उसके शुद्ध करने पर ही उचित रीति से प्राप्त होते हैं। उसके स्ट्रिकनीन सत्व की भयकर उग्रता सौम्यता मे परिणत होकर वह वास्तविक हितावह होता है। अत इसके शुद्धीकरण की परमावश्यकता है। इससे वह एकदम नि सत्व नही हो जाता, जैसाकि वे लोग मानते हैं।

शोधन विधि—निम्नप्रकार से इसका शोधन करने से शीघ्र ही आसानी से उसका चूर्ण हो जाता है। गोमूत्र मे बीजो को डालकर रखें। नित्य गोमूत्र बदलते रहे। जब वे खूब फूल जाय, सुई से छेदने पर वह आरपार निकल जाय, तब अन्दर की जीभी निकाल डालें और शेष छिलको के छोटे छोटे टुकडे कर पुन उन्हे शीघ्र ही गौमूत्र मे भिगो दें,फिर धोकर लोह-खरल मे कूटने से शीघ्र ही चूर्ण हो जाता है। पश्चात् इस चूर्ण को घृत में सेक कर रख लें।

अथवा उक्त प्रकार से छोटे छोटे टुकडे कर लेने के बाद इन्हे १६ गुने दुग्ध मे दोलायन्त्र से उबालें। दूध रबड़ी जैसा हो जाने पर उतार कर धो लें तथा शीघ्र ही उन्हे कूटकर चूर्ण कर घृत मे भून लें। रसतन्त्रसार के लेखक लिखते हैं कि "उक्त दुग्ध का मावा बनाकर अफीम का व्यसन छुडाने के लिये वे इस मावा की मात्रा अफीम के बराबर देते हैं। अथवा कुचले का उक्त शेष घृत (जो कि भूनने से बचा हो) अफीम के आधे परिमाण मे देते हैं। इन दोनो प्रयोगो से अफीम का व्यसन ५-७ दिन मे ही छूट जाता है।"

✓ एरण्ड तैल द्वारा शोधन विधि—१ सेर कुचला को कडाही मे डाल २॥ से ५ तोले तक रेंडी तैल मिला मसल कर मदाग्नि से भूनते हैं। जब वे फूल जावें तथा शीघ्र ही आसानी से तोडने पर टूट सकें तब उन्हें शुद्ध मानकर तुरन्त निकाल कर चूर्ण कर रक्खें। भूनते समय कोई दाना कच्चा रह जाय तो उसे निकाल डालना चाहिये। इस प्रकार रेंडी तैल से शुद्ध किये गये कुचले की मात्रा बहुत ही कम देनी चाहिये क्योकि यह विशेष उग्र है।

✓ मुलतानी मिट्टी द्वारा शोधन विधि—हाडी मे मुलतानी मिट्टी आध सेर को २ सेर पानी मे घोलकर उसमे १ पाव कुचला डालकर मदाग्नि से ४ घन्टे पकावें। फिर कुचला निकाल कर गरम पानी मे धोकर चाकू से दो दल अलग कर भीतर की जीभ निकाल कर महीन पतरे जैसे टुकडे बना ले या चूर्ण कर ले। इस विधि से कुचले की कडुवाहट निकल जाती है। इसे गौघृत मे भून लेना और भी उत्तम होता है।

कुचले की कडुवाहट को दूर करने की और एक सरल विधि वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा जी ने दी है। बबूल की छाल के टुकडे टुकडे करके एक वर्तन मे डालकर उसमे पानी देवें। उसमे शुद्ध कुचला डालकर आग पर १-२ उबाल दे दें। बस ऐसा करने से उसका कडुवापन एकदम दूर हो जाता है।

विशिष्ट योग—

वैसे तो कुचला मिश्रित अग्नितुंडी वटी, लक्ष्मीविलास आदि अनेको प्रसिद्ध योग हैं। उनमे से यहा ऐसे योग दिये जाते हैं जिनमे इसकी ही विशेष प्रधानता है। इन योगो को या ऊपर दिये गये किसी भी योग को देते समय अन्त मे दी गयी सूचना को ध्यान मे रखें।

✓(१) नवजीवन रस—इसके चूर्ण के समभाग लोह भस्म, रससिंदूर तथा त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपर) लेकर अद्रक रस मे घोट १-१ रत्ती की गोलिया बनाइए। इसे एक बार मे ६ गोलियो से अधिक नही देना चाहिये।

इसी प्रकार एक प्रयोग रसयोग सागर का है जिसमे अभ्रक भस्म और चित्रकमूल भी डाला गया है तथा अद्रक रस, चित्रकमूल क्वाथ और नागरवेल पत्र रस इन तीनो के साथ क्रमश १२-१२ घन्टे खरल कर अर्ध रत्ती की गोलिया बनाले हैं।

मात्रा—१ से २ गोली नागरवेल के पान में या चविकासव या गौदुग्ध के साथ दिन मे २ बार देते हैं। वात या कफ प्रकृति वालो को हितकर है। यह नवजीवन प्रदायक, दीपन,पाचन व बलकारक है। आन्त्रशूल, आध्मान, मलबद्धता, अतिसार, आधाशीशी, मानसिक श्रम, अवसाद को दूर कर रक्तवृद्धि एव रतिशक्ति की वृद्धि करता है। अम्लपित्त, वृक्कविकार तथा पित्त प्रधान व्यक्ति को इसका सेवन नही करना चाहिये।

(२) शूल निर्मूलन रस—इसका चूर्ण ५ तोले तथा सोठ, मिर्च, पीपर, शुद्ध गन्धक, श्वेतमिर्च, शङ्खभस्म, रससिंदूर, सेंधानमक, जीरा और अम्लबेत १-१ तोला सबको अदरख रस मे घोट १-१ रत्ती की गोली बनावें।

इसी प्रकार का एक शूलगजकेशरी रस है जिसमे इसके चूर्ण ८ तोले के साथ पीपल, पीपलामूल, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, शुद्ध गन्धक १-१ तोला, भुनी हीग, सुहागा फूला और अजवायन २-२ तोला मिला अदरख रस मे ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनाते हैं। १ या २ गोली सुखोष्ण जल से देते हैं। इससे सर्व प्रकार के शूल दूर होते हैं। हृदय व वातनाडिया सशक्त होती हैं। उक्त दोनो प्रयोग दीपन, पाचन, अग्निमाद्य, अतिसार, ग्रहणी मे लाभकारी है।

(३) विषमुष्टिका वटी न १—इसके चूर्ण १० तोले के साथ शुद्ध पारा, गन्धक, शुद्ध बछनाग, अजवायन, जीरा, कालानमक, बायविडङ्ग, सोठ, मिर्च, पीपर १-१ तोला लेकर सबके चूर्ण को नीबू रस मे घोलकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बनाले। अग्निमाद्य, अजीर्ण, आमविकार, जीर्णज्वर तथा अन्य वातरोगो मे यथोचित अनुपान से दिया करें।

विषतिंदुकादि वटी न २—इसके चूर्ण १० तोले के साथ सुपारी १ तोला, कालीमिर्च ६ माशे तथा इमली बीज ८ नग लेकर सबके चूर्ण को जल मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना १ या २ गोली दिन मे दो बार जल से देते है। अतिसार, जुखाम, अजीर्ण, मदाग्नि, हृदय की निर्बलता, जीर्ण वातरोग, धातुक्षीणता, उदरशूल आदि दूर होते है।

इस बूटी का उपयोग अफीम का व्यसन छुटाने मे उत्तम होता है। उपर देखिये प्रयोग नम्बर १६।

वटी न ३—इसके चूर्ण के साथ समभाग कालीमिर्च चूर्ण एकत्र इन्द्रायण फल के रस मे १२ घन्टे खरल कर आध रत्ती की गोलिया बना १ से २ गोली दिन मे ३ बार जल के साथ नवीनज्वर, विषमज्वर, मदाग्नि, अजीर्ण, उदरवात, शूल, पुराना वातरोग, पागल कुत्ते के विष आदि पर देते हैं। वातरोगो मे इसे बगलापान के रस के साथ देते है। इस प्रयोग के लिये एरंड तैल मे भुना हुआ कुचले का चूर्ण लेना चाहिये। —र सा सग्रह

वटी न ४—इसके चूर्ण ३ तोले के साथ सोठ, मिर्च व पीपल १-१ तोला मिला सोंठ क्वाथ मे १२ घन्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना १ या २ गोली दिन मे दो बार जल के साथ उक्त विकारो पर देते हैं।

वटी न ५—स्वप्नदोष आदि नाशक—इसका चूर्ण २ तोले, लोह भस्म १ तोला तथा स्वर्णमकरध्वज ६ माशे एकत्र दशमूल क्वाथ मे खरल कर मूग जैसी गोलिया बना १ या २ गोली प्रात साय दूध के साथ स्वप्नदोष, कमर दर्द, सिरपीडा आदि निर्बलताजन्य उपद्रवो पर देते हैं।

वटी न ६—हिस्टीरियानाशक—चूर्ण २ तोले के साथ भीमसेनी कपूर और उत्तम हीग १-१ तोला एकत्र ब्राह्मी क्वाथ मे खरल कर चने जैसी गोलिया बना प्रात साय १-१ तोला जल के साथ योपापस्मार पर सेवन करते हैं।

वटी न ७—समीरगज केशरी—इसके चूर्ण के साथ सम भाग शुद्ध अफीम तथा कालीमिर्च चूर्ण एकत्र कर अदरख रस मे १२ घन्टे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना प्रात साय १-१ गोली जल के साथ लेकर ऊपर से पान का बीडा खाने से अर्दित, गृध्रसी, कम्पवात, वातशूल आदि जीर्णवात रोग (विशेषत कफप्रधान वातरोग) शीघ्र ही दूर होते हैं। जीर्णातिसार तथा जीर्ण सग्रहणी पर भी इसे देते हैं।

वटी न ८—मेहान्तक—इसके चूर्ण के साथ समभाग शुद्ध शिलाजीत, वगभस्म और लोहभस्म एकत्रकर गुडमार बूटी के क्वाथ से खरल कर मूग जैसी गोलिया बना १ से ४ गोली दूध से प्रात साय मधुमेह, बहुमूत्र, प्रमेहादि पर देते हैं।

रसोन तिन्दुक वटी—शुद्ध कुचला चूर्ण १ भाग, सौठ अर्ध भाग दोनो को लहसुन के रस मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। भोजनोपरान्त २ से ४ वटी के सेवन से प्रमेह, बहुमूत्र, गैसट्रिक अलसर, कब्जी मे लाभकारी हैं। —शेख फैयाज खाँ आयु० शास्त्री

वटी न ९—प्रमेह, वीर्यविकार नाशक—इसके चूर्ण के साथ उत्तम मकरध्वज, हरड का छिलका, बहेडा छिलका, आवला, शिलाजीत और भाग यथायोग्य कूट

पीस कर एकत्र कर पान के रस मे खूब घोटकर उत्तम दीखने के लिये हिंगुल या रससिंदूर के घोल मे इन गोलियो को लाल कर प्रमेह, स्वप्नदोष, वीर्य का पतला-पन, हृदय दौर्बल्य आदि पर देते है।

बटी न १०--शूलादिनाशक—इसका चूर्ण ३ भाग, लौग चूर्ण १ भाग एकत्र अदरख रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया बना मधु के साथ शूल, शीतज्वर, आम की मरोड और सग्रहणी पर तथा अजीर्ण, मदाग्नि व सूतिका रोग मे भी देते है।

बटी नं ११–गठियान्तक—५ तोला कुचला भैंसे के १ सेर गोबर मे पानी मिला घोलकर धूप मे रखें, शाम को मटकी मे चूल्हे पर चढा २ घन्टे मद आच दें, लकड़ी से चलाते रहे। प्रात कुचलो को साफकर बीच की बीजी निकाल दें, प्रत्येक के ४-४ टुकडे कर पोटली मे बाध १ सेर दूध मे पकाकर कूटकर चूर्ण बना लें, इसमे त्रिकटु, जायफल, जावित्री १-१ तोला चूर्ण कर मिला अदरख रस या पान के रस या ग्वारपाठा के रस मे खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया बना लें। प्रात-साय १-१ गोली दूध, घृत या मधु के साथ लेवें। सेवन काल मे दूध व घृत का सेवन अधिक करें। —स्वास्थ्य

(४) विषतिन्दुक तैल न १—इसके ८ तोले चूर्ण को बछनाग चूर्ण ४ तोले के साथ ३ पाव मेथिलेटिड स्प्रिट मे घोलकर बोतल मे १५ दिन वन्द कर रक्खे। बोतल को रोज एकबार हिलादिया करें। फिर छानकर छूछे को फेक दें। पश्चात् २॥ तोला अफीम को ६ तोले स्प्रिट मे घोलकर उक्त बोतल मे मिला दे। फिर कारबोलिक एसिड २ तोले और कपूर देशी ८ तोला दोनो को अलग एक शीशी मे वन्द कर दें, दोनो घुलकर एक हो जाय तब इस घोल को भी उक्त बोतल मे डाल कर सब मिश्रण को ३ पाव तिल तैल मे मिला थोडी देर मे रखकर काम मे लावें। स्प्रिट मेथिलेट तथा कारवोलिक एसिड़ लिक्विड लेवें। इस तैल की थोडी देर की ही मालिश से चाहे जैसा वात का दर्द हो तत्काल दूर होता है। निमोनिया की पीडा पर भी इसे लगाते हैं। चोट की पीडा तथा विषैले जन्तुओ के दश पर भी लगाऐ।

तैल नं २—इसके २५ बीजो को आध सेर गोमूत्र में भिगोकर दूसरे दिन बीजो को लोह खरल में कुचल कर पुन उक्त गोमूत्र में मिला कलईदार कढ़ाई में १ सेर तिल तैल के साथ धीमी आच पर पकावें। गोमूत्र के जल जाने पर आग को धीरे धीरे इतनी तेज करो कि सब कुचला जल जाय। फिर नीचे उतार कर घोट छान कर बोतल में भर रक्खें।

इसकी मालिश से भी वात की समस्त पीडा शीघ्र ही दूर होती है। विशेष दर्द हो तो इसे मलकर ऊपर से गरम रुई से सेक कर रेंडी पत्र पर इस तैल को चुपड कर वाध देवें।

तैल न० ३—इसके मोटे मोटे टुकडे १। सेर लेकर २॥ सेर जल मे ७ दिन भिगो दें। दिन मे धूप मे रक्खें फिर कलईदार पीतल की कढाई मे १० सेर तिल तैल के साथ मिला मन्द आच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर नीचे उतार कर तुरन्त ही छान रक्खें। यह सुन्दर लाल रग का तैल रम्य तैल कहाता है। इसका उपयोग अर्दित आदि वातरोग, शूल और पक्षाघात आदि रोगो मे मर्दनार्थ किया जाता है। (र त सार)

नोट- पाताल यंत्र द्वारा कुचलों का द्रव रूप जो तैल निकाला जाता है वह प्रमाण मे बहुत ही कम निकलता है। इसका अत्यल्प मात्रा मे सेवन भी कराते हैं। पक्षाघात शीघ्र ही दूर होता है। इसे सरसों तैल मे मिला कर गठिया आदि वात रोगों पर मर्दन करते हैं। चूहे के विष पर लेप करते हैं, विष शीघ्र ही दूर होता है।

(५) कुचला-सुरासार, अर्क (टिंचर) तथा आसव-कुचलो को वाष्प देकर जल मे भिगोकर नरम हो जाने पर छोटे छोटे टुकडे कर इनको या इसके चूर्ण को १० गुना उत्तम देशी शराब की बोतल मे डालकर १० दिन रख छोडें। फिर अच्छी तरह मसलते हुए वस्त्र मे निचोड ले। यह अर्क सजीवनी सुरा के द्वारा भी बना सकते है।

मात्रा—वयस्क के लिये ५ से १० या १५ बूद, थोडे जल मे मिला, दिन मे दो बार भोजनोपरान्त सेवन करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यकृत विकृति, कब्जी, ज्वराश आदि नष्ट हो तथा शरीर मे स्फूर्ति, पुष्टि, बलवीर्य की वृद्धि होती है। यह कामोद्दीपक भी

है। शूल, अजीर्ण मलेरिया आदि कई रोगो पर यह उपयोगी है। कुचला चूर्ण से इसका असर शीघ्र ही होता है।

नोट—यदि कुचले का तरलसार बनाना हो तो ३॥ ड्राम (२२० बूंद) उत्तम मद्य में १ रत्ती कुचला सत्व [स्ट्रिकनीन] मिला कर तैयार किया जाता है। इसकी मात्रा १ ३ बूंदें हैं। इसका प्रभाव और भी शीघ्र होता है।

यदि आध पाव खौलते हुए पानी मे १ रत्ती स्ट्रिकनीन मिला दें, तथा ७ दिन रख छोड़ें तो इसका उपयोग अरिष्ट के समान किया जा सकता है। (अ० तत्र)

उपर्युक्त कुचला सुरासार या आसव ऋतुकाल मे कष्ट, रज की कमी, जरायु के दोष, अधिक रक्तस्राव आदि स्त्री रोगो की तथा प्रमेह मधुमेह को भी दूर करता है। अग्निमाद्य, अजीर्ण, बद्धकोष्ठ एव रोगजन्य दुर्बलता पर इसे कटुकासव और चित्रकाद्यासव के साथ देना ठीक होता है। अर्धाङ्ग वात मे तो इसके सेवन से लाभ होता है, किन्तु नवीन एव शोथसहित अर्द्धाङ्ग मे इसे कभी सेवन नहीं करना चाहिये। उत्तेजक होने के कारण नपुसकत्व मे भी लाभ होता है, किन्तु अति मैथुनजन्य नपुसकता मे इससे हानि की ही सभावना है। ऐसी अवस्था में निम्न 'विषमुष्ट्यासव' उत्तम लाभकारी होता है।

इसका चूर्ण २ तोला तथा चिरायता, गिलोय व नागरमोथा चूर्ण १-१ तोला, मुनक्का ४ तोला, गुड ३० तोला और जल दो सेर सबको एकत्र मिला काच के पात्र मे भर अच्छी तरह मुख मुद्रा कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर काम मे लावें।

मात्रा—२० से ४० बूद तक १ तोला जल मे मिला दिन मे दो बार देवे। यह हृदयशक्ति, क्षुधावर्धक व बलवर्धक, प्रतिश्याय तथा त्रिदोपनाशक है। किसी भी रोग के पश्चात् प्राप्त हुई दुर्बलता एव मदाग्नि को शीघ्र नष्ट करता है। —वृ० आ० सग्रह

(६) कुचला काफी—काफी बनाने की विधि से पानी गर्म कर उसमे १ से २ रत्ती तक इसका चूर्ण डालकर काफी तैयार करें। इसके सेवन से क्षुधावृद्धि, अजीर्णजन्य वान्ति, अरुचि, पेट मे मरोड देकर होने वाली पेचिश, वात प्रकृति वालो के वातविकार, अफीम के व्यसनी को अफीम न मिलने से होने वाली पिंडलियो की पीडा दूर होती है। दिन रात में ६ रत्ती से अधिक कुचले की काफी नही लेनी चाहिये।

(७) कुचला सत्व के इजेक्शन—इसके अधस्त्वक (Hypodermic) इजेक्शन प्राय पक्वाशय शूल एव छाती दर्द के विकारो मे १ रत्ती के २४० वें भाग स्ट्रिकनिया के प्रमाण मे दिये जाते हैं। वैसे ही ये हैजा की पतनावस्था (कोलेप्स) मे तथा सर्पदश पर दिये जाते हैं।

(८) कुचला-शर्करा प्रयोग—शुद्ध कुचला चूर्ण १ भाग व शर्करा १०० भाग दोनो को खूब खरल कर रक्खें। जितनी खरल में घुटाई होगी उतना ही यह प्रयोग प्रभावशाली होगा।

मात्रा—१ से ४ रत्ती दूध या जल के साथ नित्य केवल एक बार लेते रहने से अशक्ति दूर होती है, पाचन क्रिया मे सुधार एव क्षुधावृद्धि होती है। उम्र के ४० वर्ष बाद की अवस्था वालो के लिये यह प्रयोग बहुत ही उत्तम है। इससे उदरशूल, सिरदर्द, अफरा, गैस, कफ ज्वर, वातज्वर मे भी उत्तम लाभ होता है। यह एक स्वल्प रसायन रूप प्रयोग है। —सु० गुर्जर मासिक पत्र से

(९) कुचला घृत (श्वास पर)—कुचला १५ नग ५ दिन अर्क दुग्ध मे भिगोवें। फिर गोदुग्ध ५ किलो मे उबाले। ४ किलो शेष रहने पर उतार जमा दें। दूसरे दिन मथकर घृत निकालें।

मात्रा—१ से २ ग्राम रोटी के साथ दिन मे १ बार खावें। शीघ्र लाभ होता है।

—श्री वैद्य मोहरसिंह जी आर्य "हितैषी" महेन्द्रगढ

सूचनायें—

(१) मात्रा—चूर्ण ½ से १½ रत्ती तक, सत ⅛ से ½ रत्ती तक, अर्क या टिंचर ५ से १० बूद तक देवें।

(२) कुचला वृक्ष की छाल ज्वरघ्न व कटुपौष्टिक है। ताजी छाल का रस कुछ बूदों की मात्रा मे हैजा एव तीव्रातिसार मे देते हैं। जड की छाल को नीबू रस मे घोटकर गोली बना हैजा मे देते है। व्रणो और क्षतो पर इसके पत्तो की पुल्टिस लगाते हैं।

(३) जिन रोगो मे विशेषत सवेदना नाडियो के विकारो मे जबकि देह मे शून्यता आ गई हो, किसी प्रकार का स्पर्श ज्ञान न हो ऐसे रोगियो पर इसका प्रयोग लाभकारी नही होता।

आम प्रधान रोगो मे यदि उदर मे आम का सग्रह हो तथा नवीन तीव्र वातप्रकोप हो, आक्षेप आते हो या अधिक ज्वर हो तो इसका प्रयोग करना ठीक नही है।

(४) जिन्हे कोष्ठवद्धता या कब्जी विशेप रहती हो उन्हे प्रात एक वार ही इसे देकर ऊपर दूध पिलावें।

वातव्याधियो मे इसका उपयोग घृत के अनुपान से ही करे। घृत के प्रमाण के साथ ही साथ इसकी मात्रा की भी वृद्धि लगभग १ माशा तक की जा सकती है। साधारणत अर्ध रत्ती या १ रत्ती इसकी मात्रा के साथ १ तोला घृत देते हुये धीरे धीरे इसकी और घृत की वृद्धि करे। यदि इसका उपयोग शोपक की दृष्टि से करना हो तो केवल शहद के साथ इसे देवें।

(५) कुचला या कुचला प्रधान औषधि का उपयोग सर्वदा कम मात्रा मे ही करना चाहिये। रोग जितना पुराना हो तथा शारीरिक शक्ति जितनी कम हो उतनी ही मात्रा कम देवें। इसका प्रयोग लम्बे समय तक करना आवश्यक हो तो वीच बीच मे ७–७ दिन के लिये वन्द रखते हुये सेवन करावें। निरन्तर सेवन कराने से इसका विष देह के भीतर विशेषत स्नायु मडल मे संग्रहीत होकर आक्षेपक रोगो की उत्पत्ति होना सभव है।

(६) किसी प्रकार की भी वात या वातकफ प्रधान सान्निपातिक दशा मे इसकी यथोचित मात्रा के साथ अभ्रक और रसंसिदूर की मात्रा का मिश्रण कर सेवन कराने से अवश्य लाभ होता है। शरीर के किसी भी भाग में पीडा हो तथा अजीर्ण भी हो तो केवल इसकी उचित मात्रा घृत के साथ देने से लाभ होता है। नवीन की अपेक्षा जीर्ण या जूनी वात व्याधियो मे इसका प्रभाव उत्तम होता है। जहा तक हो सके इसका सेवन वातज प्रकृति तथा जूनी वात व्याधियो पर ही करना चाहिये। इसके सेवनीय प्रयोग के साथ अनुपान मे घृत या दूध अवश्य देना चाहिये।

विष प्रभाव और उपाय—

अति मात्रा मे तथा अशोधित इसके चूर्ण को मात्रा २ रत्ती से १½ माशे या इससे भी अधिक देने से इसके विष के प्रभावात्मक धनुर्वात, हनुस्तम्भ जैसे निम्न लक्षण १० मिनट से लेकर १ या २ घटे के भीतर ही प्रगट होने लगते हैं। गला पीडन (Choking) सदृश ज्ञात होना, हनुस्तम्भ तथा सम्पूर्ण मासपेशियो मे एक साथ आक्षेप होना, मुखमडल नीला हो जाना, नेत्र गोलक बाहर निकल आना, मुख से झाग निकलना, शरीर पीछे की ओर तथा आगे या पार्श्व मे झुककर धनुषाकार हो जाना (धनुर्वात), हृदय के नीचे वेदना होना, महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) सकुचित होना, परावर्तित क्रिया या आक्षेपक की क्रिया अति तीव्र होना, श्वासावरोध होना, कभी कभी वमन स्थायी रूप से होना आदि लक्षण होते हैं। धनुर्वात एव हनुस्तम्भ तथा इसके विष के लक्षणो की भेद-दर्शक तालिका इस प्रकार है—

धनुर्वात एवं हनुस्तम्भ	कुचला विष
१—इसके लक्षण प्रथम अस्पष्ट रह कर धीरे धीरे बढते हैं।	१—आरम्भ से ही स्पष्ट दिखलाई देते हैं।
२—सर्वप्रथम ग्रीवा तथा अवोहनु की मासपेशियां प्रभावित होती हैं।	२—एक साथ ही सम्पूर्ण माशपेशियां प्रभावित होती हैं।
३—वाह्यायाम धीरे धीरे उक्त-लक्षणो के वाद होता है तथा अवकाश के समय मासपेशिया दृढ हो जाती हैं। रोगी की हालत ठीक नही रहती।	३—वाह्यायाम या धनुर्वात के लक्षण प्रारम्भ से ही होते है तथा अवकाश के समय मासपेशिया ढीली हो जाती हैं और रोगी अच्छी स्थिति मे मालूम देता है।
४—२४ घटे से लेकर कई दिन तक मृत्यु की सभावना रहती है।	४—मृत्यु कुछ घटो मे या मिनटो मे हो जाती है। यदि ६ घटे के अन्दर मृत्यु न हो तो वचने की सभावना है।

कुचले का बीज निगल जाने पर इसका छिलका कड़ा होने से तथा इसके विष का प्रभाव भीतरी क्षार भाग मे होने से वह पाखाने के रास्ते निकल जाता है। प्रायः कोई विष प्रभाव नही होता। यदि यह बीज ३-४ दिन पेट मे पड़ा रहा तो विष प्रभाव हो सकता है।

उपचार—प्रथमावस्था मे जबकि धनुर्वात और आक्षेप के साथ कडी मुट्ठी बन जाय तथा हाथ-पैरो मे तनाव हो, कुछ मुंह खोलकर दवा ले सकता हो तो उसी समय शीघ्र ही घृत पिलाकर या १० से २० रत्ती माजूफल चूर्ण २ माशा और नमक का गरम पानी मे बनाया हुआ घोल पिलाकर वमन करावे, अथवा स्टमक पम्प द्वारा आमाशय की शुद्धि करें। यदि आक्षेप तीव्र हो तो स्टमक पप का प्रयोग नही करना चाहिये। रोगी को क्लोरोफार्म सुंघाकर आक्षेप बन्द करें तथा कोयले का चूर्ण, टेनिक एसिड या परमेगनेट पोटाश देकर विष की क्रिया को नष्ट करें। दूध मे घृत मिश्री मिला कर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। इसके विष के प्रभाव को तमाखू का सत शीघ्र ही नष्ट कर देता है। यदि सत न मिले तो सवा तोला तमाखू को ३-४ तोले पानी मे जोश देकर उसके चार भाग कर उसमे से एक भाग पिला दें। यदि आवश्यकता हो तो थोडे समय बाद दूसरी मात्रा पिलावें।

यदि हृदय की गति नियमित न हो तो अर्क कपूर या उत्तम कर्पूरासव दें या कपूर का इंजेक्शन देवें। इससे भी शीघ्र लाभ होता है, कारण कर्पूर का प्रभाव कुचले से उल्टा होता है। डाक्टर लोग निन्द्रा लाने के लिये क्लोरल हाइड्रेट देते है, तथा श्वासावरोध की रुकावट के लिये कृत्रिम रूप से आक्सिजन पहुँचाते हैं। रोगी को अंधेरे तथा शांत कमरे मे रखना आवश्यक है।

कुचले का मलंगा (Viscum Monoicum)

यह वन्दकादि कुल (Loranthaceae) की कुचले के वृक्षो पर चढने वाली पराश्रयी लता विशेष है। जैसे आम, महुवा आदि के पेडो पर एक बादा जाति की वनस्पति उग आती है, वैसे ही यह लता रूप बादा कुचला पेड पर उगता है।

यह दक्षिण भारत तथा बिहार, अवध, छोटा-नागपुर, सिक्किम एवं खासिया पहाडी के कुचला वृक्षो पर अधिक पाया जाता है।

इसे हिन्दी मे कुचले का मलगा, मरेठी मे—काजयाने बाडगल, लेटिन मे व्हिस्कम मोनोइकम कहते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

कुचला जैसे ही हैं। कुचला के अभाव मे इसका प्रयोग होता है। इसके शुष्क पत्तो का चूर्ण स्ट्रिकनियां व ब्रुसाईन के प्रतिनिधि रूप काम मे लिया जाता है। मात्रा—अर्ध रत्ती से २ रत्ती तक दिन मे २-३ बार देते हैं। विषम ज्वर और आमवात मे इसे हीग के साथ देते है। पत्तो को पीसकर इसका लेप आमवात पर किया जाता है। इसे पानी मे पीसकर मलने से शरीर की खुजली दूर होती है।

अधिक मात्रा मे इसका सेवन करने से शरीर मे चुनचुनी, जकड़न आदि विषैला प्रभाव लक्षित होता है।

कुचला लता (Strychinos Colubrina)

यह कुचले के ही कुल (Loganiaceae) की एक बड़ी लता है। इसका तना मोटा, छाल धूसर वर्ण की, पत्ते-तमाल पत्र जैसे, फूल छोटे, फल बडे बेर के फल जैसे, लकडी कडी होती है। इसका सर्वाङ्ग कडवा होता है।

यह लता दक्षिण भारत मे कोकण से लेकर कोचिन तक विशेष पाई जाती है। औषधि कार्य मे इसकी जड, लकडी, पत्ते और फल लिये जाते हैं।

नाम—

सं —कटुवल्ली, विदारलता।
हिं. व बं.—कुचला लता।

म.—गोवाचे लाकुड, देवकाडी, काजर वेल।
गु.—गोगाटी लकड़ी। अं.—स्नेक वुड (Snake wood)।
ले.—स्ट्रिक्नोस कोलूब्रियाना, स्ट्री. रीडी (S. Rheedi), लिगनम-कोलुब्रियम (Lignum Colubrinum)।

इसमे स्ट्रिकनीन और ब्रुसीन का प्रमाण कुचला की अपेक्षा कुछ अधिक ही पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह कटुपौष्टिक, कृमिनाशक, चर्मरोग नाशक तथा ज्वरघ्न है। तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरो मे यह विशेष लाभकारी है। जीर्ण ज्वरो मे इसका क्वाथ दिया जाता है। चेचक एव मसूरिका मे पीडा और शोथ को कम करने के लिये इसका प्रयोग होता है।

सधिवात मे—इसकी जड और काली मिर्च को तैल मे पकाकर तैल की मालिश करते हैं।

अतिसार मे—जड को काली मिर्च के साथ छानकर पिलाते है।

विद्रधि जैसे दुष्ट व्रणो पर—पत्तो को काजू के साथ पीसकर लेप करते हैं।

उन्माद की तीव्र दशा मे—इसके फलो का लेप सिर पर लगाते हैं।

इसके शेष प्रयोग कुचला के प्रयोग जैसे ही हैं।

कुटकी (सफेद या देशी) [*PICRORRHIZA KURROOA*]

इस तिक्ता कुल[1] (Scrophulariaceae) की प्रमुख वनौषधि के कन्दयुक्त गुल्म मूली के समान, लगभग दो फीट लम्बे, काड-कडा, पत्र-लगभग मूलोद्भव, जड़ की ओर सकुचित, आगे की ओर चौडे, किंचित् चिकने, कटे हुए झालरदार या दन्तुरकिनारे वाले होते है। पुष्पदण्ड—गुल्म के मध्यभाग से निकला हुआ, कडा, ऊपर को उठा हुआ, जिसके अग्रभाग पर पुष्पमजरी २-४ इच लम्बी, नीले या श्वेत अनेक छोटे छोटे पुष्पो से युक्त होती है। फल—जौ के सदृश, इसके मूल भाग पर तम्बाकू के वीज जैसे छोटे छोटे वीज होते हैं। मूल या कन्द—अगुष्ठ जैसे मोटा, ६ से १० इच लम्बा, अनेको ग्रथियुक्त होने से शतपर्वा, लम्बी मछली के आकार का होने से मत्स्यशकला, इसके ऊपर चक्राकार चिन्ह होने से चक्रांगी तथा अत्यन्त तिक्त होने से कटुका, तिक्ता आदि कहाता है। इसकी मूल को ही कुटकी कहते हैं। बाजार में इसके भूरे रग के १-२ इच लम्बे कुछ मुडे हुए से टुकडे मिलते हैं। ये साधारण वजनदार, तोडने पर भीतर श्वेताभ भूरे रग के एक प्रकार के हलके गधयुक्त होते हैं। तोडने पर इसकी गाठो मे मछली के चोहटे की तरह एक परत लगा रहता है, इस लिये भी यह मत्स्यशकला कहाती है।

ध्यान रहे, बाजारू कुटकी मे निम्न तीन अन्य जाति एव कुल की कुटकियो का मिश्रण हुआ करता है—[१] एक मिश्रण, काली या खुरासानी विदेशी कुटकी का होता है, जो वत्सनाभादि कुल (Ranunculaceae) की एवं विषाक्त होती है। इसे लेटिन मे हेली वोरस नाइगर (Helleborus Niger) कहते हैं। आगे 'कुटकी काली' प्रकरण देखिये। [२] दूसरा मिश्रण करू नामक कुटकी का होता है जो भूनिवादि या चिरायता कुल (Gentiacae) की लेटिन मे जेंशियाना कुर्रो (Gentiana Kurrooa) नामवाली है। इसके गुणधर्म प्राय प्रस्तुत प्रसग की देशी या सफेद कुटकी के समान ही हैं। यह सुप्रतिष्ठित वैद्यो द्वारा त्रायमाणा बूटी मानी गई है। आगे त्रायमाणा का प्रकरण देखिये। (३) तीसरा मिश्रण नकली कुटकी (Wolfenia Sp.) का होता है। प्राय ३-४ पत्तियो से युक्त एक वनस्पति है, जिसके मूल रस तथा आकार मे प्रस्तुत प्रसग की देशी कुटकी के सदृश ही होते हैं। किन्तु देशी कुटकी हिमालय में अधिक ऊचाई पर ही पाई जाती है और यह नकली कुटकी अन्यत्र भी वनो में होती है।
(व. दर्शिका)

ऊपर जो देशी या सफेद प्रस्तुत प्रसग की कुटकी का वर्णन दिया गया है तदनुसार ही अच्छी तरह देख कर इसे लेनी चाहिये। हा इसमे उक्त दूसरे एवं तीसरे नबर का मिश्रण कोई हानिकर नही होता। पहले नम्बर का

[1] इस कुल की वनौषधि के पत्र एकान्तर या अभिमुख उपपत्र रहित पुष्पाभ्यन्तर दल संयुक्त, पुंकेशर ४ (दो बड़े और दो छोटे) होते हैं।

कुटकी
Picrorhiza Kurroa, Benth.

मिश्रण हानिकर है।

इस प्रसग की देशी या सफेद कुटकी हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से नेपाल या सिक्किम तक ७ से १४ हजार फीट की ऊचाई पर बर्फ के पिघल जाने पर अप्रेल, मई मे पैदा होकर जून जुलाई तक इसकी पूर्ण वृद्धि हो जाती है। प्राय वर्षा मे यह प्राप्त होती है। गिलोय के समान इसकी हरी शाखा के टुकडे बो देने से यह उग आती है। अत इसे 'काण्डरुहा' भी कहते हैं। ग्रीष्मऋतु मे ही यह फूलती व फलती है।

चरक और सुश्रुत के भेदनीय, लेखनीय, स्तन्य शोधन, तिक्तस्कन्ध, पटोलादि एव मुस्तादि गणो मे इसकी गणना की गई है। इसका उपयोग घरेलू औषधि तथा आयुर्वेदिक प्रयोग रूप से भारत मे अति प्राचीन काल से हो रहा है। बालको के लिये यह उत्तम औषधि है।

नाम—

स०—कटुका, कटूवी, तिक्ता, कटुरोहिणी, काण्डरुहा, मत्स्यशकला, चक्रांगी।

हिन्दी—कुटकी, केदारी, कडवी कौडा। बंगला—कटकी। मराठी—कुटकी, बालकडू, केदारकडू। गुजराथी—कडू। अंग्रेजी—हेलबोर (Hello Bore)

लेटिन—पिक्रोराइजा कुरो

रासायनिक संघठन—

इसकी जड़ या कन्द मे प्रिक्रोराइजिन (Picrorrhizin) नामक एक तिक्त सत्व १५ प्रतिशत तथा रेचनाम्ल (Cathartic acid) लगभग १० प्रतिशत एव कुछ ग्लुकोज, मोम आदि पाये जाते हैं।

गुण, धर्म और प्रयोग—

रुक्ष, लघु, तिक्त, विपाक मे कटु व शीतवीर्य है। यह रेचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, हृद्य, पित्तसारक, कृमिघ्न, रक्त व स्तन्य शोधक, कफनिस्सारक, शोथहर तथा प्रमेह, शीतपित्त, कामला, पाडु, कुष्ठ, दाह, श्वास, कास आदि नाशक है। यह डिजिटेलिस के समान किन्तु काली कुटकी से कम हृदय शक्तिवर्धक, शातिकर एव रक्तभार साम्यकर है। आत्र निर्बलता एव मलावरोधजन्य शीतप्रधान नियतकालिक ज्वर प्रतिबन्धक है। अल्पमात्रा मे यह पौष्टिक, तथा अतिमात्रा मे लेखन एव रेचन हैं, पानी के समान पतले दस्तो को यह निकाल कर जलोदर, शोथ, विबन्ध, आनाह, मेदोरोग, आमाशय की वातज वेदना, हिक्का एव उदर रोगो मे लाभकारी है।

पित्त की उग्रता से उबाकें आती हो, वमन हो, मुख मे कडवापन बना रहता हो, तो इसके चूर्ण मे समभाग गुड मिलाकर १-१ रत्ती की गोलिया बना दिन मे ३ बार ४-४ गोली देते हैं। इससे पचनक्रिया मे यथोचित सुधार होकर रस रक्तादि की क्रिया बलवान होती है। पित्त की शाति होती, कृशता निर्बलता दूर होती है।

हृदय विकारजन्य शोथ रोग एव कुष्ठादि त्वग्रोग नाशक जो प्रसिद्ध 'आरोग्यवर्द्धिनी'[1] है उसमे रक्तशोधक

[1] इसमें २२ तोला कुटकी चूर्ण के साथ शुद्ध पारा, गंधक, लोहभस्म, अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म १-१ तोला, त्रिफला ६ तोला, शुद्ध शिलाजीत ३ तोला, शुद्ध गुग्गुल ४ तोला तथा चित्रक ४ तोला का मिश्रण कर नीम पत्र रस में ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की गोलियां बनाई जाती हैं।

एवं शोथहर कुटकी ही मुख्य कार्यकारिणी है। कुष्ठ एवं शोथ रोगों में प्रायः दीपन, पाचन व उदर शोधन के आवश्यक कार्य की पूर्ति या सिद्धि इसके सम्मिश्रण से ही होती है। साधारण हृद्रोगों में इसके समभाग मुलैठी लेकर मिश्री के साथ सेवन कराते हैं।

सर्वाङ्ग शोथ तथा जलोदर में मूत्र विरेचनार्थ इसकी योजना पुनर्नवा के साथ की जाती है। इसके लिए आरोग्यवर्धिनी के साथ शार्ङ्गधरोक्त कुटकी मिश्रित पुनर्नवाष्टक[1] कषाय का अनुपान रूप में उपयोग उत्तम होता है। (गावों में औषधि रत्न)

पित्त प्रकोप जन्य ज्वर (Bilious Fever) में जब कि शारीरिक उत्ताप की परिवृद्धि एवं उबकाई और वमन होते हैं तब इसकी योजना खस, नागरमोथा, धनिया आदि सुगंधित द्रव्य तथा नीम का अन्तरछाल के साथ लाभकारी होता है।

आमाशय की पचनक्रिया की विकृति से रस, रक्त दूषित होकर होने वाला श्वास, कास पर—इसकी उक्त गुडमिश्रित गोलियों का सेवन कराते हैं। अजीर्ण रोगोत्पन्न श्वास में इसके चूर्ण को मिश्री के साथ देवें। पाण्डु कामला में—इसकी ३ माशे चूर्ण की मात्रा मिश्री के साथ कुछ दिनों तक दिन में दो बार सेवन कराते हैं। जलोदर पर इसका तेज काढा दिन में ३-४ बार ७ दिन तक देने से बहुत लाभ होता है। उदर का दूषित पानी दस्तों द्वारा निकल जाता है।

साधारण विरेचनार्थ—इसके ३ से ७॥ माशे तक चूर्ण में समभाग शक्कर मिला गरम जल से, प्लीहा पर—इसे जल से, उदरशूल में—इसे कालीमिर्च व आग पर फुलाये हुये सहजने के गोंद के साथ, मंदाग्नि में—इसे सोंठ व सौंफ समभाग चूर्ण के साथ, हिक्का व वमन पर—इसे शहद में, श्वास, कास पर—इसके क्वाथ को पीपल चूर्ण के साथ, उदर कृमिनाशार्थ—इसे समभाग वायविडङ्ग चूर्ण व शहद के साथ, उरुस्तम्भ पर—इसे समभाग त्रिफला चूर्ण व शहद के साथ, रक्तविकार एवं कुष्ठ पर—इसके साथ [illegible] व [illegible] मिला क्वाथ बनाकर, [illegible] (लिवर) पर—इसके साथ पित्तपापडा व [illegible] मिला क्वाथ बनाकर, पित्त ज्वर में—इसके साथ मुलैठी, मुनक्का व [illegible] समभाग ६-६ माशे एकत्र कर ३२ तोले पानी में चतुर्थांश क्वाथ कर, जीर्णज्वर, रक्तपित्त व हृद्रोग पर—इसे मुलैठी चूर्ण के साथ गर्म जल से सेवन कराते हैं तथा स्नायु पीडा पर—इसे तैल में पकाकर आमाशय और [illegible] पर मालिश करते हैं।

(१) ज्वरों पर—रोज आने वाले या एक दिन छोडकर आने वाले विषम ज्वर में यदि मलावरोध हो तो इसके १० तोले मोटे चूर्ण को [illegible] ४० तोला बोतल में मिला ७ दिन सुरक्षित रखें, फिर छानकर मात्रा—३० से ६० बूंद दिन में ३ बार सेवन करावें। अथवा इसके स्थान में पीपल का चूर्ण मिला प्रातः सायं देवें। अथवा—

इसके ६ माशे चूर्ण को ५ तोले उबलते हुये जल में मिला २० मिनट बाद छानकर उसमें ६ माशा शक्कर मिला पिलावें। इस प्रकार दिन में दो बार देते रहने से ३-४ दिन में उदर विकार सहित विषम ज्वर का निवृत्ति होती है।

पित्तज्वर पर—इसके चूर्ण के साथ गिलोय, नीम छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, पटोल पत्र और लाल चन्दन का चूर्ण समभाग मिला ३ तोला का क्वाथ कर दिन में २ या ३ बार पिलावें। यह कफ सहित पित्तज्वर की उत्तम औषधि 'अमृताष्टक क्वाथ' वमन, अरुचि, दाह, तृषा और मलावरोध सहित ज्वर को दूर करता है।

अथवा—इसके ६ माशा चूर्ण में समभाग मिश्री मिलाकर चौगुने गर्म जल में पीवें। अथवा—

इसके साथ पित्तपापडा, चिरायता, नागरमोथा और गिलोय मिला चतुर्थांश क्वाथ प्रतिदिन प्रातः सायं सेवन करने से कुछ दिन में ही भयंकर ज्वर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

—वंगसेन

कासयुक्त कफज्वर में—इसके साथ नीम छाल, अतीस, त्रिकटु, इन्द्रजौ मिला क्वाथ कर सेवन करावें।

विशेष दाहयुक्त ज्वर में—ताजी हरी कुटकी को

[1] रक्तपुनर्नवा मूल, कुटकी, हरड, नीम छाल, दारुहल्दी, कडुपटोल पत्र, गिलोय और सोंठ समभाग लेकर ४ तोला का क्वाथ बनाकर दो विभाग कर दिन में दो बार देते हैं।

पीसकर मिट्टी के शुद्ध नवीन पात्र मे रखकर स्वेदित करें (ताजी शुष्क कुटकी के चूर्ण को भी जल मे पीसकर कल्क को इसी प्रकार स्वेदित किया जा सकता है) और फिर निचोड कर रस १ तोला तक निकाल उसमे शुद्ध घृत मिला पीने से उत्तम लाभ होता है। —वाग्भट

चातुर्थिक तथा तृतीयक विषम ज्वर पर—इसके चूर्ण को १२ घटे दूध मे खरल कर २-२ रत्ती की गोली बना लें। १ या २ गोली ज्वर के २-३ घन्टे पूर्व दें।

प्लीहावृद्धिसहित ज्वर नाशक योग—कुटकी, गिलोय व श्वेत पुनर्नवा ४-४ ग्राम, दारुहल्दी १२ ग्राम आधा किलो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर शीतल होने पर ६ ग्राम मधु मिला दोनो समय पिलावे। बहुत बढी हुई तिल्ली, हाथ पैरो मे सूजन, शरीर पीला, क्षुधा नाश, कोष्ठबद्धता हो एव सूक्ष्म ज्वर सदैव बना रहता हो या उतर चढ जाता हो, क्विनीन बेकार हो चुकी हो ऐसी दशा मे इस योग से सैकडो को लाभ पहुँचता है।

—श्री वैद्य मोहरसिंह जी आर्य हितैषी, महेन्द्रगढ यू पी.

नोट—विषम ज्वरों पर इसकी क्रिया बहुत उत्तम एवं स्पष्ट होती है, किन्तु दोष यह है कि अधिक मात्रा मे देनी पड़ती है, जिससे कभी कभी रोगी को बहुत दस्त होने लग जाते है। अत जिस ज्वर में मलावरोध हो उसी पर इसका प्रयोग उत्तम होता है।

(२) सर्वाङ्गशोथ पर—इसके चूर्ण को या चूर्ण का हिम बनाकर उतने ही प्रमाण मे देवें, जिससे कोष्ठ शुद्धि हो जावे। पश्चात् दूध भात का भोजन दुपहर मे तथा रात्रि मे खिचडी या दूध भात देवें। इस प्रकार ५-७ दिन के प्रयोग से मूत्र एव मलमार्ग से दूषित रस या जल का स्राव हो जावेगा, कुछ जल रक्त मे शोषित होकर फिर बाहर निकल जावेगा। इस प्रकार शोथ के लिये यह उत्तम कार्य करती है। —गावो मे औषधरत्न

(३) कामला पर—इसके ६ माशे चूर्ण को १० तोले जल मे पका ५ तोले जल शेष रहने पर छानकर ६ माशा शहद मिला पिलाते है। इससे पित्ताशयनलिका एव पित्ताशय की विकृति तथा पित्तमार्गावरोध दूर होकर कामला शमन होती है।

(४) बाल रोगो पर—इसके छोटे छोटे टुकडे कर तवे पर मदाग्नि से भून लें। कलछी से बराबर चलाते रहे। अच्छी तरह लाल हो जाने पर नीचे उतार कर शीतल हो जाने पर चूर्ण कर लें।

इसे बालको को २ से ४ रत्ती तक बडो को २ से ४ माशे सुखोष्ण जल से सेवन कराने से मलावरोध, ज्वर, शोथ, यकृत्वृद्धि, उदर विकार, उदर कृमि एव अरुचि दूर होती है। बालको को इससे एक दो दस्त होकर अपचन, आलस्य, उदर मे वायु भरा रहना तथा यकृद्विकार सह-ज्वर दूर हो जाता है। इस चूर्ण का प्रयोग दिन मे ३ बार कराने से १-२ दिन मे उदर शुद्धि होकर ज्वर शात होजाता है, तथा यकृत मे भी लाभ होता है। यदि यकृत वृद्धि अत्यधिक हो गई हो, तो बालको को उबले हुए दूध मे नीबू रस मिलाकर फट जाने पर उसका जल छानकर पिलाते रहना चाहिये। दूध, अन्न आदि कोई आहार नही देवें। अथवा—

उक्त भूने हुए चूर्ण १० तोला मे कालानमक ५ तोले, कालीमिरच २॥ तोला और भाग १। तोला का चूर्ण मिला कर इस मिश्रण मे से बच्चो को १ माशा और बडो को ३ से ६ माशा तक देवें। यह चूर्ण विशेष कड़वा नही होता, तथा गुण मे अधिक लाभ करता है। विषम ज्वर मे सोडाबाई कार्ब १-१॥ माशा तक मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। अपचन या उदर मे अफरा हो तो इसमे नौसादर भी २ रत्ती मिला देते हैं, जिससे यकृत के विकार मे भी लाभ होता है।

बालको के कास पर—कुटकी को उक्त प्रकार से भूनते भूनते जलाकर कोयला सा कर डाले। फिर इसका चूर्ण २-३ रत्ती दिन मे २-३ बार शहद से चटावें। इससे बालको को वमन होकर कफ सरलता से निकल कर कास की शाति होती है। [रस तत्र सार]

विशिष्ट योग—

कटुकाद्य लोह, कटुकादि घृत, तिक्तादि क्वाथ आदि कई लम्बे लम्बे प्रयोग है, जिन्हे अन्य आयुर्वेदिक चिकित्सा ग्रन्थो मे देखिये। यहा केवल एक प्रयोग बगसेन का तिक्तादिघृत का देते है—

कुटकी, काला नमक, हरड, त्रिकटु, हीग और बेल
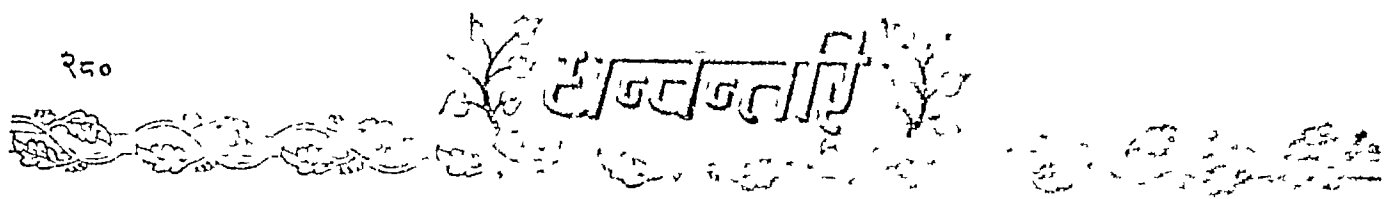
की छाल ४-४ तोले लेकर कल्क करें, फिर घृत २। सेर और दूध १ सेर एकत्र मिला घृत सिद्ध करलें। इसके सेवन से कास श्वास, गुल्म, आध्मान अर्श नष्ट होते हैं।

मात्रा—कुटकी चूर्ण ५ से १० रत्ती तक, उदर में २ से ४ माशे तक, रेचनार्थ—३ से ६ माशे तक पाचन तथा आमाशय पौष्टिक गुणार्थ ४ से ८ रत्ती तक दिन में २-३ बार देते हैं।

कुटकी काली (Helleborus Niger)

यह वत्सनाभादि कुल [Rananculaceae] की कुटकी कुछ विशेष काली न होते हुये भी इसे अग्रेजी के ब्लेक हेलेबोर [Black Hellebore] नामानुसार अन्य कुटकी से भेद दर्शाने के लिये काली कुटकी कहा जाता है।

इसके वडे मूल वाले, बहुवर्षायु क्षुप दक्षिण और पूर्व यूरोप, लाल समुद्र के तटवर्ती प्रदेश, अरब आदि मे अधिक पाये जाते है। वैसे तो भारत के दक्षिणी घाटो पर तथा नेपाल और हिमालय के शीत प्रधान देशो मे भी यह होती है किंतु अधिकाश मे विदेश से ही इसकी जडें यहा आती हैं। इसके टुकडे १ से ३ इंच लम्बे, चौथाई इंच से भी कम मोटे होते हैं। बाह्य भाग चिकना, टूटे, हुये मूल के चिन्हो से युक्त, वजन मे बहुत हलके तथा उंगलियो के नखो से दवाने पर दब जाने वाली होते हैं। ये रग मे भूरे राख जैसे तथा तोडने पर भीतर से भी भूरे दिखाई देते हैं।

नाम —

स.—कृष्णभेदी, कटुरोहिणी, वक्राग्र।
हि —काली कुटकी, खुरासानी कुटकी।
म. व गु.—कडू, बालकड। ब.—काला कटकी।
अ.—ब्लेक हेलीबोर (Black Hellebore)
ले.–हेलीबोरस नाइगर, हे आफिसिनलिस (H Officinalis), हे व्हिरिडिस (H Viridis)

रासायनिक सगठन—

इसमे हेलेबोरिन [Helleborin] तथा हेलेबोरेइन [Helleborein] नामक स्फटिकाभ दो विषैले सत्व होते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

विरेचन, हृद्य, वेदनाहर, मूत्रल, रज शोधक, आर्तव वृद्धिकर, ज्वरघ्न और कृमिघ्न है।

देशी कुटकी मे ज्वरघ्न गुण की तथा इसमे हृद्य गुण की अधिक विशेषता है। अल्प मात्रा मे यह डिजिटेलिस के समान हृदय को विशेष बल प्रदान करती है। हृदय शैथिल्य से उत्पन्न जलोदर मे इसके साथ पुनर्नवा, अपामार्ग, चिरायता व सोठ मिलाकर क्वाथ की योजना निम्न प्रकार करने से बहुत लाभ होता है।

इसके साथ सोठ समभाग १॥-१॥ माशे तथा पुनर्नवा, अपामार्ग व चिरायता ३-३ माशे लेकर एकत्र मिला कुल १ तोला चूर्ण मे २० तोला जल मिलाकर पकावें। १० या १२ तोला जल शेष रहने पर एक ग्लास में सारिवा चूर्ण २ माशे रख उस पर यह गरम क्वाथ डाल ढक दें। शीतल होने पर छानकर उसमें ३ माशे मिश्री या शहद मिला पिलावें। यह १ मात्रा है। इसके सेवन से मूत्र की मात्रा बहुत बढ जाती है। जिस रोगी का हृदय-स्पन्दन बहुत ही मन्द हो, स्टेथिस्कोप से भी सुनने मे न आता हो, रक्त मे मूत्र विष सग्रहीत हो, वृक्को की क्रिया शिथिल या रुद्ध हो गई हो उसे इसके सेवन से रक्त मे बढा हुआ दूषित-विष ५-७ दिन मे निकलकर उदर शोथ दूर होता है, हृदय की क्रिया ठीक हो जाती है। यह 'रोहिण्यादि कषाय' नामक प्रयोग की योजना गावो मे औषधरत्न से ली गई है, तथा हमारी अनुभूत है।

फुफ्फुस, प्रदाह एव तीव्र सधिशोथजन्य ज्वर तथा आगतुक या प्रसूतिजन्य वेदनायुक्त ज्वरो मे इस कुटकी की क्रिया वत्सनाभ के समान ही लाभकारी होती है, ज्वर को उतारती तथा पीडा को दूर करती है।

सूतिका ज्वर मे उक्त कषाय की योजना विशेष लाभप्रद है। इससे प्रसूता की उदर शुद्धि होती है, उदर दाह दूर होता है, मूत्र साफ आता है, हृदय सबल होता तथा गर्भाशय का उचित सकोच भी होता है।

उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार आदि पर भी यह लाभप्रद है। कष्टार्तव मे उक्त कषाय का सेवन आर्तव की शुद्धि करता, गर्भाशय को शुद्ध एवं बलवान बनाता है। इसके चूर्ण की बत्ती बनाकर योनिमार्ग मे रखने से भी आर्तव खुलकर हो जाता है।

स्थानीय वेदना व दाहशामक प्रबल गुण इसमे होने से इसके क्वाथ से दिन मे २-३ बार धोते रहने से या इसके चूर्ण को बुरकने से व्रणो की वेदना व दाह शीघ्र ही शमन होती है। खुजली भी दूर होती है। इस कार्य के लिए इसका सत्व हेलेनोरिन कोकीन से भी अधिक शक्तिशाली है। मर्मस्थानो के व्रणो की पीडाहरण कर या स्थान को सज्ञाशून्य कर शस्त्रक्रिया करने के लिये इसकी ३-४ बू दो का घोल १ सी सी. की मात्रा मे इ जेक्ट करते है। जिससे आध घण्टे तक कुछ भी वेदना अनुभव नही होती है।

मात्रा विचार—इसके चूर्ण की मात्रा २॥ से ५ रत्ती तक, मन्दाग्नि तथा जलोदरादि मे ५ से १० रत्ती तक सुगन्धित द्रव्यो के साथ देते हैं। टिंचर ३ या ४ माशे तक, द्रवरूप अर्क ५ से २० बू दें तथा घन सत्व की मात्रा ½ से २ रत्ती तक दी जाती है।

अधिक मात्रा मे देने से इसके विषैले परिणाम वमन, विरेचन बार बार होकर नाडी का मद होना आदि होते हैं। अन्त मे हृदय निपात होकर मृत्यु भी होना सभव है।

इसका विषैला प्रभाव इसे बकरी के दूध मे दोला-यन्त्र से उबाल लेने पर बहुत कुछ न्यून हो जाता है। फिर यह विशेष हानिकर नही होती है।

कुड़ा (*HOLARRHENA ANTIDYSENTERICA*)

दोनो (सित असित) कुडा (कुटज) एक ही कुटज कुल (Apocynaceae) की प्रमुख वनौषधियां सभवत वे ही हैं जिन्हे चरकाचार्य जी ने पु कुटज और स्त्री कुटज नाम से पुकारा है। दोनो का विभेदात्मक विवरण इस प्रकार है—रेखाङ्कित शब्द या वाक्य विभेददर्शक हैं।

कुड़ा (सित, पुंकुटज, कड़वा)

अनेक शाखायुक्त क्षुप रूपी वृक्ष, दुग्ध सदृश रसयुक्त ४से १०फीट ऊचा, काण्ड की छाल पाडु, धूसर वर्ण की, चौथाई इच तक मोटी, खुरदरी, भीतर से कुछ लाल, हलकी और कडुवी

पत्र—लम्बगोल चिकने, ५ से १० इ च लम्बे १॥ से ५ इ च चौडे, मृदुरोमश, कदम्ब पत्र सदृश होते हैं। कोमल शाखा का अग्रभाग या पत्राग्र तोडने से श्वेत वर्ण का रस निकलता है। पत्ते—सूखने पर भी पाण्डुवर्ण के ही रहते हैं।

पुष्प—श्वेत, छोटे चमेली पुष्प जैसे पत्रकोण से निकली हुई सलाका पर गुच्छो मे किंचित गधयुक्त होते है। पुष्प वृन्त छोटा ४-५ पखुडियो युक्त होता है।

फलियां—सहजने की फली जैसी ८-१६ इ च लम्बी, ½ इ च मोटी कुछ टेढी दो दो एक साथ, वृन्त की ओर

जुडी हुई किन्तु अग्रभाग पर पृथक, कुछ श्वेत दागो से युक्त होती हैं। बीज—यव के सदृश होने से इन्हे इन्द्रयव कहते हैं। ये ½ इच लम्बे, रेखाकार धूसर वर्ण के अन्त के सिरे पर प्राय हलके भूरे रग के रोम गुच्छ से युक्त, तथा स्वाद मे अति कडुवे होते है। चबाने से जीभ पर सक्षोभ सा प्रतीत होता है। ये बीज कच्ची दशा मे हरे, पकने पर कुछ लालवर्ण के तथा सूखने पर धूसर या मटमैले एव भीतर से पीताभ श्वेत होते हैं।

इसके क्षुप हिमालय की चोटियो (कुट) पर एव उष्ण प्रदेशो मे बगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, उडीसा आसाम आदि स्थानो मे विशेष पाये जाते है। कही कही ये लगाये भी जाते हैं।

नाम—

हिन्दी—कुटज, सितकुटज, पुंकुटज, गिरिमल्लिका, कालिग (कलिंगदेश उडीसा में अधिक होने वाला) पाण्डुरद्रम

हिन्दी—कुड़ा, कडुवा कुडा, कुरैया, कर्ची

बगाली—कुरची। मराठी—पाढ़रा, कुडा

गुजराथी—कडो, इन्द्रजवनी झाड़

अग्रेजी—कुरची (Kurchi), कोनेसी (Conessi), टेलीचेरी (Tellicherry)

लेटिन—होलेरीना ऐन्टीडिसेंटरिका,

हो० पुबेस्नीन (H Pubescens)

चेनोमोर्हा ऐ० (Chenomorha Antidysenterica)

कुड़ा (असित)

(*WRIGHTIA TINCTORIA*)

इसके क्षुप उक्त कुटज के क्षुप जैसे ही किन्तु १०-१५ फीट ऊचे, छाल लालिमायुक्त भूरे रग की, चिकनी विशेष कडुवी नही होती, मूल की छाल गहरे भूरे रग की या काली सी एव कम कडुवी होती है।

पत्र—अपेक्षाकृत छोटे ३-६ इच लम्बे, १-२ इच चौडे, भालाकार नोकदार सूखने पर काले पड जाते हैं।

पुष्प—कुछ अरुणाभ श्वेत, चमेली पुष्प जैसे अधिक सुगधित, फलिया—३-१२ इच लम्बी, दो-दो एक साथ अग्रभाग पर परस्पर जुडी हुई (पक कर फटने के समय दोनो पृथक) पृष्ठ भाग पर श्वेत दागो से युक्त होती हैं।

बीज—½ से ⅔ इच लम्बे, जव के आकार के, अन्त में नुकीले, आधार के निम्न भाग पर श्वेत रेशमी गुच्छो
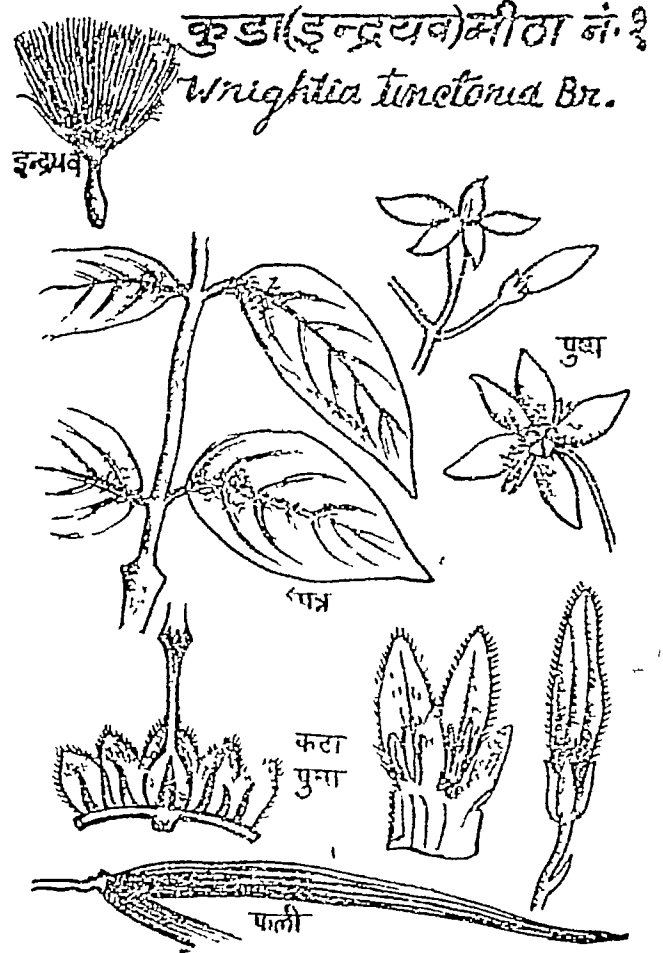
से युक्त, स्वाद मे विशेष कडुवे नही होते। इन्हे मीठा इन्द्रजव कहते हैं।

इसके क्षुप—मध्य भारत, दक्षिण भारत मे कोकण, कारोमडल किनारा, कोइम्बटूर तथा गोदावरी प्रान्त मे पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, पीलीभीत, बरेली आदि जागल प्रदेशो मे भी अधिक होते हैं। बगाल मे बहुत ही कम देखे जाते हैं।

नाम—

स०—असितकुटज, स्त्री कुटज

हि० गु०—मीठा इन्द्रजव

म०—गोडे इन्द्रजव, कालाकुडा, कालाकड़ू

अं०—स्वीट इन्द्रजव (Sweet Indrojao)

ले०—राइटिया टिंक्टोरिया, रा० रोठाया (Wrightia Rothii) रा टोमेंटोजा (Wrightia Tomentosa)

नोट—उक्त दोनों कुटजो में सित (कडुवे बीज वाला) कुटज अधिक गुणकारी होता है। बाजार मे

कुड़ा (इन्द्रयव) मीठा नं. २

Wrightia tomentosa R & S.
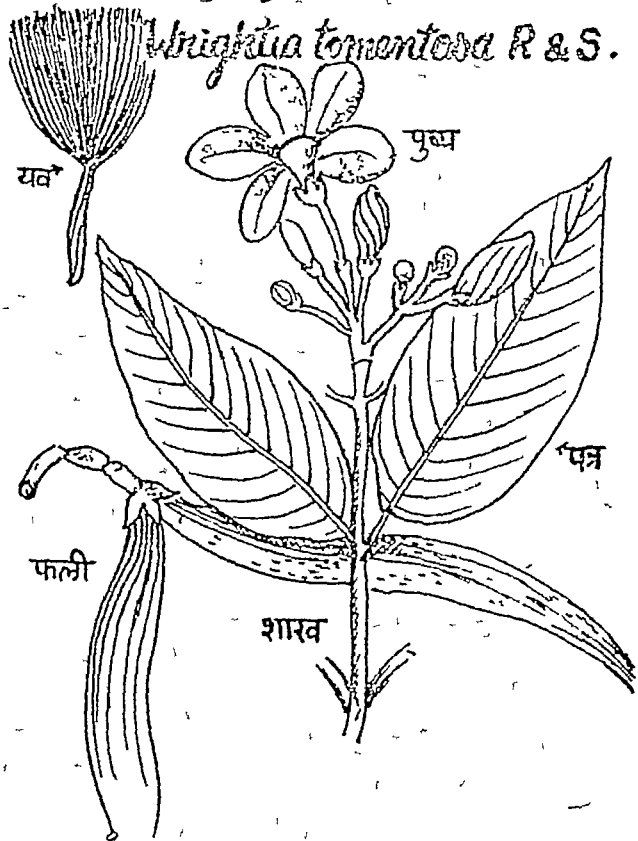
प्राय. इन दोनों के बीजों (इन्द्रजव) का छालों का मिश्रण पाया जाता है। इस मिश्रण में भी असित (मीठे बीज वाला) कुटज का प्रमाण अधिक होता है। अत. औषधि-कार्यार्थ सित कुटज के बीजों एव छाल को ही चुनकर ग्रहण करना ठीक होता है। छाल में भी उपर के कांड की छाल की अपेक्षा मूल की छाल ताजी विशेष गुणकारी हैं। असित या मीठे कुटज की छाल या बीज रक्तातिसार में विशेष उपयोगी नहीं होते। शेष गुण धर्म दोनों के प्रायः मिलते जुलते से हैं।[1]

[1] यह छाल औषधिकार्यार्थ जब ८ से १२ वर्ष के पुराने वृक्षों से निकालकर उसके काष्ठीय भाग को पृथक् कर तथा छोटे छोटे टुकड़े कर अच्छी तरह डाट बन्द पात्रों में संग्रहीत की जाती हैं, तब इसमें लगभग २ प्रतिशत इसके सम्पूर्ण क्षाराभ (Totat alkaloids) होते हैं और उत्तम गुणदायक होती हैं।

ध्यान रहे असित (मीठे) कुडे की जो दो मुख्य जातियां रायटिया टोमेंटोसा (Wrightia tomentosa) व रा० टिंक्टोरिया (W Tinctoria) है, उनमें उक्त क्षाराभ नहीं या अत्यल्प मात्रा में होने से रक्तप्रवाहिका, रक्तातिसार, रक्तपित्तादि में बेकार है। यह कार्य तो सित (कडुवे) कुडे की छाल ही उत्तम प्रकार से करती है। असित के बीजों का प्रयोग पौष्टिक कार्यार्थ ठीक होता है।

चरक और सुश्रुत के अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, आस्थापनोपग, वमन, आरग्वधादि, पिप्पल्यादि, हरिद्रादि, लाक्षादि एव ऊर्ध्वभागहर गणों में इसकी गणना की गई है। तथा ज्वर, रक्तपित्तादि अनेक रोगों की चिकित्सा में इसकी योजना पाई जाती है।

रासायनिक संघठन—

सित कडुवे कुडा की छाल और बीजो मे—चूर्ण रूप कुर्चिसिन (Kurchicine), कषाय गुणप्रधान सत्व कुर्चीन (Kurchine) तथा एक विषैला सत्व होलर्हेनिन (Holarrhenine), ऐसे तीन क्षारीय द्रव्य मुख्यत पाये जाते हैं। बीजो मे एक विशेष प्रकार की गधयुक्त हरिताभ पीतवर्ण के तैल की प्रधानता रहती है। असित या मीठे कुटज मे उक्त क्षारीय द्रव्य कम मात्रा मे होते हैं। औषधि कार्यार्थ इसकी छाल, बीज और पत्ते लिये जाते है।

गुणधर्म—

इसकी छाल लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय (ग्राही), विपाक मे कटु एव शीतवीर्य है। यह कफपित्तशामक, वामक, दीपन, स्तम्भन, रक्तशोधक, धातुशोषण, व्रणरोपण तथा अतिसार, रक्तपित्त, अर्श, ज्वर, कुष्ठ, कृमि, अग्निमाद्य, ज्वरातिसार, प्रवाहिका, उदरशूल एव दाह नाशक है। असित (मीठे) कुडा की छाल अपेक्षाकृत उष्ण है। सूखी तथा पुरानी छाल की अपेक्षा ताजी छाल इपिकाकुहाना जैसी[2] विशेष कडुवी, अग्निदीपक, ग्राही, पाचक, अतिसार हर, ज्वरहर, बल्य तथा रक्त संग्राहक

[2] इपीकेक्वाना का छोटा पौधा ब्राजील देश (दक्षिणी अमेरिका) में अधिक पाया जाता है। यह एक प्रकार का विदेशी अन्तमूल है। इसकी सूखी जडें बेलनाकार, छोटे छोटे टुकड़ों के रूप में उसी देश से आती हैं। छाल लाल या भूरे रंग की मोटी, स्वाद में कडुवी, खरारादार होती है। मुख्य प्रभावात्मक सार इसी छाल में होता है। इसे लेटिन में साइकोट्रिया इपीकेक्वाना (Psychotria Ipecacuanha) कहते हैं। इसके अभाव में देशी अन्तमूल काम में लिया जा सकता है। देखो 'अन्तमूल'।

होती है। इपीकेक्वाना के दोप इसमे नही है।

इसे पुटपाक, अवलेह, क्वाथ, फाट, चूर्ण या अरिष्ट के रूप मे प्रयोग करते हैं। तथा सुगन्धित, सग्राही एव अतिसारनाशक अन्य द्रव्यो के साथ इसके क्वाथ या चूर्ण का प्रयोग विशेष लाभदायक होता है। यह बच्चो या गर्भिणी को बिना किसी भय के दी जा सकती है।

रक्तातिसार तथा जीर्ण आमातिसार मे इसके प्रवाही सत्व (Liquid extract) का प्रयोग ईसबगोल या एरड तैल के साथ विशेप लाभकारी है। इसके क्वाथ या फाट के साथ अतीस, घोडबच या मोचरस मिलाकर देते हैं। रक्तातिसार या रक्तप्रवाहिका मे इसके समान अन्य औपधि नही है। ताजे मूल की छाल को खट्टे मट्ठे (तक्र) मे पीस उसे ५ तोले की मात्रा मे ४-४ घटे पर देते रहने से ज्वर सहित पेचिश, बार बार दस्त जाना और रक्त गिरना ये सब कम हो जाते है। ध्यान रहे नवीन तीव्र प्रकोपयुक्त अतिसार मे इसकी छाल से विशेष लाभ नही होता, किन्तु जीर्ण प्रवाहिका मे निश्चित लाभ होता है। यदि ताजी छाल न मिले तो इसका घनसत्व बनाकर कार्य मे लाना ठीक होता है। इस घनसत्व के साथ अतीस, वच व शहद मिला कर दिया जाता है। सग्रहणी मे इसकी छाल के साथ नागरमोथा, माजूफल, वच, आम की गुठली आदि सुगन्धित, सग्राही एव बल्य द्रव्यो को मिला क्वाथ कर सेवन कराते हैं तथा कडुवे इन्द्रयव (भुने या सेके हुये) का चूर्ण भी देते हैं। इसके नियमित सेवन से क्षुधा प्रदीप्त होती है, उदर मे वातोत्पत्ति नही होने पाती एव उदर कृमि हो तो मरकर निकल जाते है।

असित (मीठा) कुडा अल्प प्रमाण मे सेवन कराने पर आमाशय व यकृत की क्रिया मे सुधार होता है, किन्तु मात्रा अधिक देने से वमन और विरेचन होता है।

—डा० वा ग देसाई

कडुवे (सित) कुडा की छाल और बीजो मे स्तम्भन गुण के साथ ही साथ पाचन गुण की विशेषता होने से इनके प्रयोग से अतिसार मे दस्तो की रुकावट व पाचन मे सुधार, ये दोनो कार्य सम्पन्न होते हैं। ये दोनो गुण अन्य ग्राही औपधियो मे प्राय नही पाये जाते। जड की छाल विशेप लाभकारी है।

विषम ज्वर मे जब केवल कुनाईन से लाभ नही होता, तब उसके साथ इसकी छाल का घनसत्व मिला कर देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। प्रमेह तथा कामला मे—छाल का पुटपाक विधि से निकाला हुआ स्वरस शहद मिला कर सेवन कराते है। प्रदर मे इसकी छाल के चूर्ण मे लोहभस्म मिला चावल के धोवन से देते हैं। यदि रक्त प्रदर प्रबल हो तो कुटज लौह (देखो आगे विशिष्ट योग) मात्रा २-२ माशे चावलो के धोवन के साथ दिन मे दो बार देते रहने से कुछ दिनो मे लाभ हो जाता है। प्रमेह मे इसकी छाल के साथ असन वृक्ष की छाल, दारुहल्दी, नागरमोथा तथा त्रिफला समभाग मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें। —वृ. मा

रक्तपित्त मे—कुटजादि घृत (देखो विशिष्ट योग) आधे से एक तोला तक दिन मे दो बार देते रहने से सर्व प्रकार के रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर, रक्तातिसार आदि रक्तस्राव युक्त रोगो मे लाभ होता है। उदर कृमि पर इसकी छाल ३ माशे को २॥ या ३ तोले मट्ठे मे पीस छानकर उसमे भुनी हीग आधी रत्ती तथा डीकामाली २ रत्ती मिला दिन मे दो बार पिलाते रहने से बालको के सर्वप्रकार के कृमि नष्ट होते हैं।

अश्मरी और शर्करा पर—इसका छाल २ तोला को गाय के दही के तोड मे पीसकर चटाते रहने से अश्मरी निकल जाती है (यो० र०)। पथ्यपूर्वक इस प्रयोग से लिंग शर्करा या रेत मे भी अवश्य लाभ होता है। पूयमय व्रणो को प्रतिदिन छाल के क्वाथ से धोते रहने तथा जात्यादि मलहम के लगाते रहने से शीघ्र सुधार होता है। दात के रोगो पर छाल चूर्ण का मजन तथा क्वाथ से कुल्ले कराते है।

प्रयोग—

(१) प्रवाहिका (डिसेन्टरी) पर—जबकि आम सहित थोडा थोडा मल पेट मे मरोड देते हुये उतरता हो साथ मे रक्त भी गिरता हो या न भी गिरे तो इस प्रकार की पेचिश पर इसकी ताजी छाल को थोडे जल के साथ पीस छानकर गर्म की गई लोहे की कडछी मे

डालकर पिलाते हैं। दिन मे ३-४ बार इस प्रकार पिलाने से लाभ होता है। अथवा—कुटजादि घन (देखो विशिष्ट योग) को १ से २ माशे की मात्रा मे मठ्ठे के साथ देते है, इससे नवीन पेचिश में तथा दुर्गन्ध सहित अतिसार मे भी लाभ होता है।

रक्त प्रवाहिका मे जबकि उक्त पेचिश मे रक्तस्राव अधिक हो तो इसकी छाल का मोटा चूर्ण २ तोले, जल ३२ तोला तथा बकरी का दूध १६ तोला एकत्र मिला मदाग्नि पर पकावें, दुग्धावशेष क्वाथ को छानकर उसमें शहद ६ माशे मिला (यह १ मात्रा है) पिलावें। इस प्रकार दिन में २-३ बार पिलाने से लाभ होता है। रक्तातिसार में भी इसे देते हैं।

(२) अतिसार पर—छाल के साथ इसके बीज (इन्द्रजव), नागरमोथा समभाग लेकर अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर उसमें शहद व खाड मिला सेवन करे।—भै र.

यदि रक्तातिसार हो तो छाल के साथ पाठा, मोठ, वेलगिरी तथा धाय के फूल समभाग महीन चूर्ण कर मात्रा ३ माशे तक दही के साथ सेवन करे। —हा स

यदि ज्वरातिसार हो तो कुटजादि घन वटी (देखिये विशिष्ट योग) १ से ४ गोली दिन में ३ बार बकरी के दूध या जल के साथ देवें।

रक्तातिसार पर—निम्न योग भी अति लाभकारी हैं—कुटजदाडिम क्वाथ—इसकी छाल के साथ अनार के कच्चे फलो के छिलके समभाग २-२ तोले लेकर जौकुट कर ४० तोले जल में पकावें। ४ तोला जल शेष रहने पर छानकर ठडा होने पर शहद मिला पिलावें। भा प्र

जीर्ण अतिसार पर—इसकी छाल के चूर्ण के साथ समभाग अतीस का चूर्ण मिला शहद के साथ सेवन कराते है। इससे रक्तपित्त में भी लाभ होता है। अथवा छाल चूर्ण २ तोला को ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ पकाकर उसमे सोठ चूर्ण १ माशा मिला पिलावें। इस क्वाथ मे ४ रत्ती अतीस चूर्ण मिला सेवन कराने से पित्तातिसार मे विशेष लाभ होता है।

(३) सग्रहणी पर—छाल के साथ समभाग अतीस, सोठ, मुलैठी, धाय के फूल, मोचरस, पीपल और नागरमोथा सबका महीन चूर्ण करें। मात्रा १॥ से ३ माशे तक शहद के साथ सेवन करने से आम और रक्तयुक्त पित्तज ग्रहणी रोग शीघ्र नष्ट होता है।—रा० नि०

(४) रक्तार्श पर—छाल के साथ समभाग नागकेशर, कमल, खैरसार और धाय की जड़ लेकर चूर्ण करें। २ तोले चूर्ण, १६ तोले दूध तथा ६४ तोले जल पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर छानकर इसमे मक्खन मिला पिलावें। शीघ्र ही लाभ होता है। (हा स.)

(५) मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी ताजी मूल की छाल को गौ दुग्ध मे पीस छानकर पिलाने से उष्ण आहार विहार से होने वाले दाहयुक्त मूत्र मे लाभ होता है। लू लगने पर भी इस प्रयोग से उत्तम लाभ होता है।

नोट—सित कुड़े के अभाव में असित की छाल या दोनों का मिश्रण लिया जाता है, किंतु वह उतना प्रभाव शाली नहीं होता। ऊपर का तथा नीचे के विशिष्ट योगों के प्रयोग को सित कुड़े की छाल से ही निर्माण करना ठीक होता है।

कामला में—असित कुड़े के कोमल पत्तों का स्वरस आधे चम्मच के प्रमाण में देने से लाभ होता है। दन्त-शूल में इसके पत्तों को चबाने से तथा सड़े हुए दांत के गढ़े में इन पत्तो की लुगदी रखने से लाभ होता है। किंतु ऐसा करने से मसूढ़ों और गालों में जो दाह या जलन हो तो अन्दर मक्खन लगाने से शांति होती है। शोथ पर असित कुड़े की छाल के साथ आक, सिरस छाल, एरण्ड मूल और नीम पत्र लेकर पानी में पकाकर बफारा देते हैं।

सित या असित दोनों कुड़ों के फूल कफपित्तहर और कुष्ठघ्न हैं। इनकी कोमल फली और पत्तों की साग बच्चों के कृमि रोग पर दी जाती है।

विशिष्ट योग—

(१) कुटज पुटपाक—शुद्ध ताजी कुड़े की छाल खूब कूट कर उसमे थोडा चावलो का पानी मिला गोला सा बना जामुन या ढाक के पत्तो से लपेट कुशा से बाध तथा ऊपर मिट्टी का गाढा लेप कर अग्नि में दबा दें। जब वह गोला बाहर से लाल हो जाय तो निकालकर अन्दर की लुगदी को निचोड कर रस निकालें। यह रस ४ तोले की मात्रा मे शहद मिला सेवन से सम्पूर्ण अतिसार (विशेषत रक्तपित्तज) शीघ्र नष्ट होते हैं। यदि उक्त पुटपाक की क्रिया में रस बहुत गाढा निकले तो उसकी मात्रा १ या २ तोले की है। (भै र)

(२) कुटजावलेह—इसके कई प्रयोग शास्त्रों मे देखने योग्य हैं। विस्तारभय से यहा केवल दो प्रयोग दिये जाते हैं—इसकी जड की छाल १० सेर कूटकर १ मन ११ सेर ३ छटाक जल मे पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर पुन पकावें। गाढा होने पर उसमे काला नमक, जवाखार, विड नमक, सेंधानमक, पीपल, धाय फूल, इन्द्रजौ, तथा कालाजीरा इनका मिलित चूर्ण १६ तोला मिला दें। इसे ६ माशे की मात्रा मे शहद मिला सेवन से आमातिसार, पक्वातिसार एव वेदना सहित नानावर्ण के अतिसार ग्रहणी और प्रवाहिका का नाश होता है। (भै र)

इसके ५ तोले छाल चूर्ण को एक सेर जल मे पका अष्टमाश जल (१० तोले) शेष रहने पर छानकर उसमे समभाग अनार का रस मिला पुन पकावें। अवलेह जैसा गाढा हो जाने पर उतार कर सुरक्षित रखें। मात्रा—७॥ माशे तक तक्र के साथ सेवन से रक्तातिसार का मरणासन्न रोगी अवश्य स्वस्थ हो जाता है। (यो र)

(३) कुटज रसक्रिया—इसकी ताजी गीली छाल ५ सेर जौकुट कर २५॥ सेर वर्षा जल मे (अभाव मे परिश्रुत जल लेवें) पकावें। जब छाल का सारा रस जल मे निकल आवे (अर्थात् चतुर्थांश जल शेष रहने पर) छान कर उसमे मोचरस, मजीठ और फूल प्रियगु का चूर्ण ४-४ तोला तथा इन्द्रजौ चूर्ण १२ तोला मिला पुन मन्दाग्नि पर पकावें। कुछ गाढा हो जाने पर उतार लें। इसे काल और अग्नि बलानुसार उचित मात्रा मे (लगभग १ माशा तक) बकरी के दूध या पेया या मड के अनुपान से प्रयुक्त कराने से रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, ऊर्ध्व तथा अधोग बलवान रक्तपित्त को भी यह रसक्रिया नष्ट करती है। औषधि के पच जाने पर बकरी के दूध के साथ साथ शाली चावलो का भात रोगी को खिलावे। (च स चि अ १४)

(४) कुटजारिष्ट—इसके जड की ताजी छाल ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुये के फूल तथा गभारा फल (अभाव मे गभारी की छाल) आध आध सेर लेकर जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर तक जल शेष रहने पर छानकर उसमे धाय फूल १ सेर व गुड ५ सेर मिला सन्धान कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर बोतलो मे भर रखें। मात्रा—१ से २॥ तोला जल के साथ सेवन से सर्व प्रकार के ज्वर, रक्तातिसार, सग्रहणी मे लाभ होता है। यह अग्निप्रदीपक है। इसकी तथा अन्यान्य कुटजारिष्टो की योजना हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह ग्रन्थ मे देखिये।

(५) कुटजघन—इसकी ताजी छाल ५ सेर जौकुटकर लगभग १० गुने जल मे पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर मसल कर छान लें। इसे वाष्प पर उबाल कर गाढ़ा होजाने से घन बन जाता है। मात्रा—१ से २ माशा।

कुटजादि घन वटी—उक्त कुटजघन ४० तोले और क्विनाइन सल्फास १० तोला मिलाकर १-१ रत्ती की गोलिया बना लें। १ से ४ गोली तक सेवन कराने से सतत, एकाहिक, तृतीयक आदि विषमज्वर शीघ्र दूर होते हैं। केवल कुनाईन की अपेक्षा यह अधिक हितकारी सिद्ध हुई है। पित्त प्रकृति वालो को भी यह वटी लाभ पहुँचाती है। सगर्भा को भी यह वटी दे सकते है। किन्तु जिसे पहले गर्भपात मे वेदना बहुत रही हो, उसे यह न दें। केवल उक्त कुटज-घन का ही सेवन करावें। (गां औ रत्न)

(६) कुटजादि घृत—इसकी छाल के साथ इन्द्रजौ, नागकेशर, नीलोफर, लोध्र और धाय के कल्क से यथाविधि घृत सिद्धकर सेवन से रक्तार्श की पीडा नष्ट होती है। (च० स०) अथवा—

इसकी छाल, नागकेशर, नीलोफर, रक्तचदन, व गिलोय इनका कल्क १। सेर, तथा इन पाचो द्रव्यो का क्वाथ २० सेर और गौघृत ५ सेर एकत्र मिला मदाग्नि पर घृत सिद्ध करलें। मात्रा—६ मासे से २ तोला तक रक्तपित्त, रक्तार्श आदि पर लाभकारी है।

(७) कुटज लोह—इन्द्रजौ (सेंके हुये) का चूर्ण, जावित्री, शीतलमिर्च, इलायची छोटी के दाने तथा जटामासी का चूर्ण १-१ तोला के साथ १ तोला लोह भस्म मिला कर खूब खरल कर रक्खें। मात्रा—१ से २ मासा तक रक्तप्रदर, अतिरक्तस्राव, रक्त प्रमेह आदि पर चावलो के धोवन के साथ देवें।

एलोपैथी के मुख्य प्रयोग—

(१) सपूर्ण क्षाराभ (Total alkaloids) $\frac{1}{2}$ रत्ती

(१ ग्रेन) की मात्रा मे प्रतिदिन पेश्यन्तर्य इ जेक्ट करने से नूतन आमातिसार (Acute Amebic dysentery) मे एमेटिन (Emetine) की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। गर्भाशय पर भी इसके इन्जेक्शन से कोई विषैला प्रभाव (एमेटीन जैसा) नही होता। केवल इंजेक्ट के स्थान पर कुछ पीडा व सूजन होती है जो १-२ दिन मे दूर हो जाती है।

(२) कुरची विस्मथ आयोडाइड (Kurchi Bismuth Iodide)– इसमे २७ प्र श उक्त सपूर्ण क्षाराभ, २२.८५ प्र०श० विस्मथ, तथा आयोडीन (Iodine) ५० प्र० श० रहता है। यह मिश्रण नारगी लाल रग का होता है। पुराने आमातिसार मे इसे ५ रत्ती की मात्रा में पानी के साथ दिन मे २ बार १० या २० दिन तक पिलाते हैं। हृदय के विकारो मे इसे देते हैं। ऐमेटिन जैसे वमन, अवसाद, प्रक्षोभ आदि उपद्रव इसके प्रयोग से नही होते।

(३) कोनेसाइन (Conessine) इस क्षाराभ को भी इ जेक्शन द्वारा आमातिसार आदि मे देते हैं। किन्तु इसकी अपेक्षा उक्त सपूर्ण क्षाराभ का प्रयोग विशेष हितकारी होता है।

नोट—कुडा के योगों का सेवन भोजन के दो घटे बाद करना अधिक अच्छा होता है जिससे पचन क्रिया में कोई बाधा न हो। क्योंकि इसका प्रभाव पाचक रसो की क्रिया को कम करता हुआ प्रकट होता है।

इसके बड़ी मात्रा मे अति सेवन से श्वास प्रश्वास की क्रिया मन्द होती है। तथा मूर्च्छा, भ्रम, मुखशोष, स्वर-भेद, हृच्छूल, आध्मान, नपु सकता, मलावरोध, ग्लानि, अर्दित, पक्षाघात आदि उपद्रव होना संभव है।

कुड़ा बीज (इन्द्रजव)

इसके आकार प्रकार का वर्णन ऊपर प्रारभ मे ही कर आये है।

सस्कृत मे इसे—कुटजबीज, इन्द्रयव, यव, कालिंग इन्द्रयव आदि तथा हिन्दी व और गु मे इ द्रजो मराठी में—कुडयाचे बीज कहते हैं।

सित कुडा बीज को कड़वा तथा असित कुडाबीज को मीठा इन्द्रजो कहा जाता है। औषधि कर्म के लिये अच्छी तरह सूखे हुए बीज लिए जाते है।

गुण धर्म और प्रयोग—

कड़ुवा, चरपरा, उष्णवीर्य, दीपन, सग्रहणी, ज्वरहर कृमिघ्न, वातानुलोमक एव अतिसार, आध्मान, शूल, अर्श, वातरक्त, कुष्ठ, विसर्प, रक्तविकार, भ्रम, श्रम आदि नाशक है।

शीतज्वर एव विषमज्वरो मे कड़ुवे इन्द्रजौ को गिलोय के साथ क्वाथ बनाकर देते है। इसके चूर्ण को नित्य खाते रहने से शीतज्वर नही आता। बच्चो के रक्तातिसार मे–इसके साथ नागरमोथा मिला क्वाथ बना मधु मिला कर देते है।

रक्तार्श मे—सोंठ के साथ इसके क्वाथ का सेवन कराते हैं। इसे दूध के साथ क्वाथ करके देने से भी इसमे बहुत लाभ होता है। वमन मे इसको भूनकर या फाट अथवा क्वाथ बनाकर देते है।

उदर शूल, अग्निमाद्य, कुपचन आदि मे अल्प मात्रा मे इसके चूर्ण को नित्य लेते रहने से लाभ होता है। उदर कृमि पर—सेंके हुये इन्द्रजौ और करजबीज तथा बच इन तीनो का चूर्ण शहद या उष्ण जल से देते रहने से लाभ होता है। उदरवात, शूल, अतिसार, अग्निमांद्य आदि बालको के रोग मे यह मिश्रण हितकारी है। क्षय रोग के अतिसार पर–सेंके हुए इसके चूर्ण मे सोठ चूर्ण मिला, चावल के धोवन से दिन मे २-३ बार देते हैं। यदि मल मे दुर्गन्ध विशेष हो तो इस प्रयोग मे सुहागे का फूला २-२ रत्ती मिला कर सेवन कराते हैं। जीर्ण प्रवाहिका पर—सेंके हुये इसके चूर्ण के साथ नागरमोथा, अतीस, बच और गिलोयसत्व समभाग मिला मात्रा—२ से ३ मासे दिन मे ३ बार। ४-६ मासा तक सेवन कराने से पूर्ण लाभ होता है। बातज उदरशूल पर इसके क्वाथ मे २ रत्ती भुनी हीग मिला दिन मे २-३ बार देते है। विषम ज्वर पर–इसके साथ पटोलपत्र, तथा कुटकी मिला क्वाथ बना २-४ तोले तक प्रात साय सेवन कराने से सतत आदि सर्व विषम ज्वरो पर लाभ होता है। कुष्ठ के श्वेत दागो पर—इसे पीसकर लेप करते हैं। तथा इसके चूर्ण की मालिश करते हैं। पूयदन्त (पायोरिया) पर इसके महीन चूर्ण को मसूढो

पर मलने से रक्तस्राव बन्द होकर पूय एव दुर्गन्ध दूर हो जाती है। अश्मरी या मूत्र शर्करा पर—इसके चूर्ण के साथ निशोथ का चूर्ण मिला दूध की लस्सी या चावलो के धोवन से देते हैं।

मात्रा—भुने या सेके हुये इन्द्रजौ का चूर्ण १ से ४ माशे तक, क्वाथ के लिये ३ से ६ माशे तक।

मीठा इन्द्रजव—शीतवीर्य व बलवर्धक है तथा धातुपौष्टिक के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है। शुक्रक्षयजन्य दौर्बल्य को दूर करता है। गर्भस्थापन होने से इसके चूर्ण को मधु और केशर के साथ पीसकर योनिवर्त्ति बना ऋतुस्नान के बाद योनि मे धारण कराते है। सेवनार्थ इसके चूर्ण की मात्रा २ से ३ माशे तक है। अधिक मात्रा मे यह आमाशय के लिये अहितकर है। इसकी हानिनिवारणार्थ गर्म मसाला और नमक देवें। नकसीर बन्द करने के लिये इसे महीन पीसकर नाक मे फूकते तथा मस्तक पर लेप करते हैं।

कुत्रा [Limnophila Gratissima]

यह ब्राह्मी कुल (Scrophulariaceae) की चिकनी रोमयुक्त बूटी जल मे या जलाशयो के प्रान्त भागो मे होती है। इसका काड मोटा, मुलायम, सीधा १ से २ फीट ऊचा, प्राय शाखारहित, पत्र १॥ से २॥ इच लम्बे काड के दोनो ओर युग्म रूप मे कोरदार होते है।

फूल—धूमर श्वेत वर्ण के पत्रकोण में १-१ लगते हैं।

फल—कोष मे ३ या ४ सयुक्त फलो की डोडिया सी होती है। वर्षाकाल मे फूल और शीत मे फल लगते हैं।

यह छोटा नागपुर, उत्तर बगाल तथा सुन्दर बन के आसपास बहुत होता है।

हिन्दी मे—कुत्रा, कुट्रा, बगला मे—कर्पूर तथा लेटिन मे—लिम्नोफिला ग्रेटिसीमा कहते है।

गुणधर्म—

यह प्रबल स्तन्यजनन एव शोधन और कृमिघ्न है। इसके रस के प्रयोग से स्त्री के स्तनो मे शुद्ध दुग्ध की प्रवृत्ति होती है। ज्वर मे इसका रस शान्ति प्रदान करता है।

नोट—इसी बूटी का एक भेद आम्रगन्धा है। देखिये प्रथम खंड में आम्रगन्धा।

कुन्द (Jasminum Pubescens)

इस पारिजाति कुल[1] (Oleaceae) के रोमयुक्त लता रूप क्षुप १० फीट तक ऊचे होते है। काड व शाखायें गोल, भगुर, छाल धूसर वर्ण की, पत्र अभिमुख, लम्बगोल १॥ से ३ इन्च लम्बे, ¾ से १½ इन्च चौडे, नोकदार, चिकने, नीलाभ हरितवर्ण के, दोनो ओर कोमल

[1] इस कुल की कई जाति, उपजाति हैं। प्रस्तुत 'कुंद' यह बेला (मोगरा) का ही एक भेद है। इसे बेला कुंद भी नाम दिया गया है।

कुन्द
Jasminum pubescens Willd
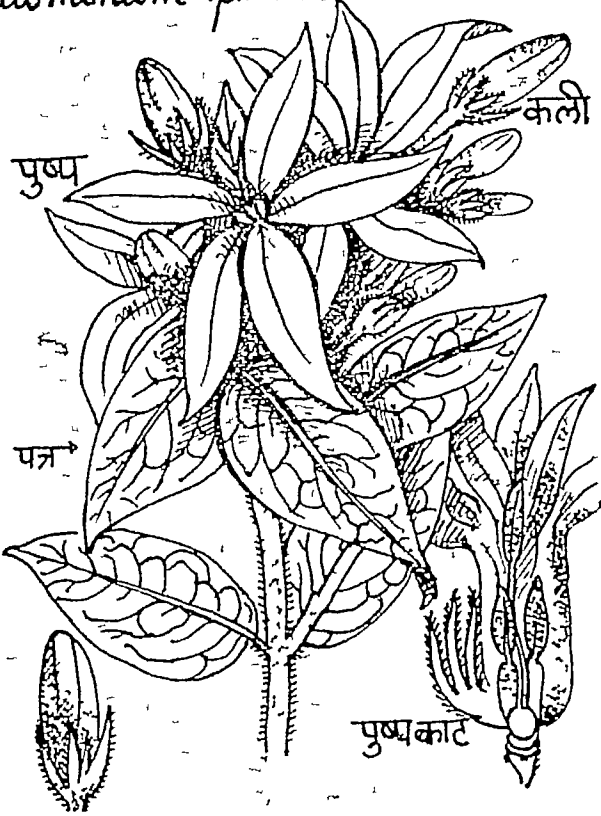
एव रोमश होते है। पत्रवृन्त-आध इञ्च से कुछ छोटा, सघन रोमश, पुष्प-मजरी मे वेला के फूल जैसे किन्तु उससे कुछ लम्वे सुगन्धयुक्त किन्तु बेला से सुगन्ध मे कम, प्राय सदैव यह पुष्पित रहने से कुन्द को 'सदापुष्पी' कहते हैं। विशेषत शीतारम्भ से बसन्त तक इसमे पुष्पो की खूब बहार रहती है। किसी किसी क्षुप मे फल भी ग्रीष्मकाल मे आते हैं जो ¼ इञ्च व्यास के तथा पकने पर काले पड जाते है।

यह भारत के अनेक प्रान्तो मे विशेषत बगाल तथा दक्षिण के पूर्वीय व पश्चिमी घाटियो पर तथा ब्रह्म देश से चीन तक यह बागो मे बोया जाता है।

नाम—

सं०—कुन्द, माघ्य, सदापुष्प।
हि. बं.—कुंद। म.—मोगरा, कस्तूरी मलिगे।
गु.—डोलर, कु द कागडो, मोगरो।
अं.—मस्क जसमाईन (Musk Jasmine)
ले —जेसमीनम प्युब्रेसेंस।

गुण धर्म और प्रयोग–

शीतवीर्य, लघु, शिरोरोग, कफ तथा पित्तप्रकोप निवारक, विषनाशक, पाचन, हृद्य, वातशामक तथा रक्त विकार नाशक है।

पुष्प—कटु, सारक एव स्तन्यनाशक है।

मूल—विशेषत इसकी जङ्गली जाति बनमल्लिका की मूल आर्त्तवजनन, सर्पदश, प्रतिबन्धक तथा दृष्टिमाद्य निवारक है।

दूषित व्रणो पर—इसके सूखे पत्ते पानी मे भिगोकर पुल्टिस बनाकर बाधने से या इसके कोमल पत्तो का स्वरस लगाते रहने से व्रणो का शोधन और रोपण शीघ्र होता है।

इसके अन्यान्य प्रयोग वेला (मोगरा) जैसे ही है। वेला का प्रकरण देखिये।

कुप्पी (Acalypha Indica)

इस एरडादि कुल (Euphorbiaceae) की वूटी के वर्षायु छोटे छोटे क्षुप १ से ३ फीट तक ऊचे रेंडी जैसी अप्रिय गन्धयुक्त होते है।

पत्र—१ से २ इञ्च लम्वे, आध इञ्च चौडे, गोलाकार, किनारेदार एव नोकदार, चिकने मृदुरोमयुक्त।

पुष्प—पीताभ हरे रग के गुच्छो मे लगते हैं।

फल–रेंडी फल जैसे ३ खाप वाले, बीज गोल, चिकने, बादामी रग के, तथा मूल ३ से १० इच लम्बी होती हैं। इसके पौधे शीतकाल मे फूलते फलते हैं।

भारत के उष्ण प्रदेशो में, विशेपत वगाल तथा विहार से आसाम तक और दक्षिण मे कोकण से त्रावणकोर तक एवं गुजराथ व काठियावाड मे कूड़ा कचरे की जमीन मे यह वहुत पाया जाता है।

नोट—इसकी एक जाति जिसे लेटिन में एक्लीफा

सिलिएट (A Ciliata) कहते हैं, ऊ चाई उक्त कुप्पी से कम होती है। यह जुलाई से सितम्बर तक फूलता फलता है। विहार, गुजराथ तथा महाराष्ट्र में अधिक होता है।

मरेठी के वनौषधि गुणादर्श मे—खोकली (यही नाम कुप्पी का भी हिन्दी में है) नाम से जिस बूटी का वर्णन है वह कुप्पी से भिन्न है। उसके वडे वृक्ष दक्षिण मे सह्याद्रि पर्वत पर वहुत पाये जाते हैं। इस वृक्ष पर शाल्मली जैसे काटे होते है। छाल मोटी पीतवर्ण की, पत्ते हरड के पत्र जैसे वड़े तथा फल चना जैसे छोटे छोटे लगते हैं। इसकी छाल और फल वहुत चरपरे होते हैं। इसकी थोडी छाल को या इसके आधे फल को पीसकर शहद के साथ सेवन कराने से अथवा छाल का क्वाथ देने से शीघ्र ही कास, श्वास तथा वातविकार दूर होता है। (व गु)

कुप्पी

Acalypha indica Linn

नाम—

सं०—हरितमजरी। हि०—कुप्पी, कुप्पु, खोकली।
वं०—मुक्ताफुरी, श्वेतवसंत, मुरकट।
म०—खोकली, खाजोटी, कुप्पी।
गु०—दादरो, वींछी कांटो।
अ०—इंडियन एकलीफा (Indian Acalypha)
ले०—एक्लीफा इंडिका, ए सिलीएटा, ए स्पिकेटा (A Spicata)

गुणधर्म और प्रयोग—

यह कफघ्न, वामक, विरेचक, कृमिघ्न, चर्मरोगादि नाशक है। वालको के डव्वारोग (पसली चलना), कृमि, क्षय, काली खासी पर इसका विशेष प्रयोग किया जाता है। इसकी क्रिया एपिकाक्वाना और सिनेगा की क्रिया के समान किंतु उनसे श्रेष्ठ एव निर्दोष होती है। बालको के श्वास नलिका शोथ मे विशेष उपयोगी है। पसली चलना आदि वालको के कफ विकारो पर वमनार्थ इसका पत्र स्वरस चाय के छोटे चम्मच भर दिया जाता है। इससे शीघ्र वमन होकर कफ निकल जाता है, अथवा इसकी ताजी छाल या पत्र रस के साथ नीम पत्र रस मिलाकर देते हैं। बडो के कफ विकार पर इसके रस की कुछ अधिक मात्रा देने से वमन के साथ ही साथ विरेचन भी होकर दोनो ओर से दूषित कफ निकल कर शाति प्राप्त होती है।
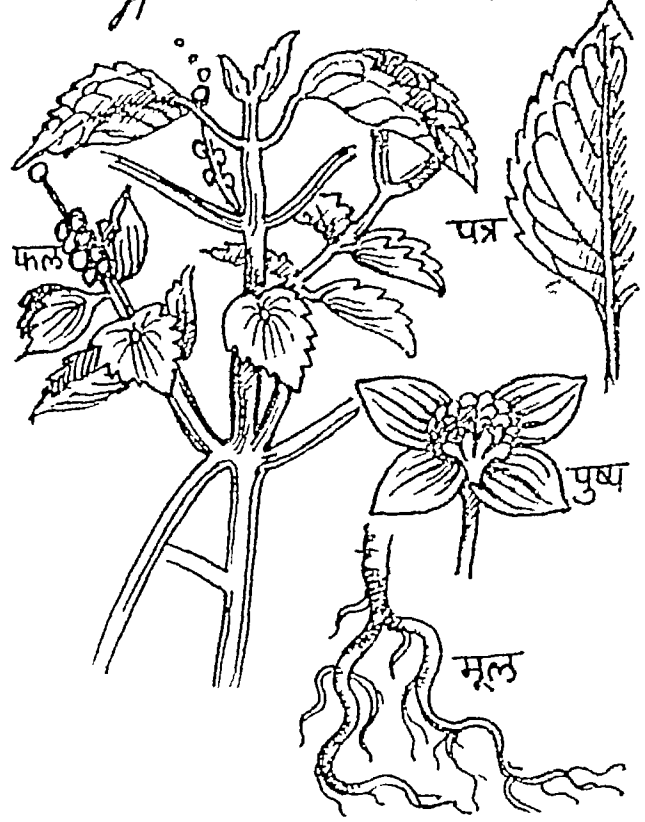
इसके शुष्क पत्तो का क्वाथ सेंधानमक के साथ देने से दस्त साफ होकर श्वासोच्छ्वास का कष्ट दूर होता है, तथा श्वासनलिका के प्रदाहयुक्त शोथ मे भी लाभ होता है। अत्यधिक श्वासावरोध मे उक्त शुष्क पत्र क्वाथ के साथ थोडा लहसुन का रस मिलाकर देते है, इससे वालको के उदर कृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

वालको के जीर्ण ज्वर पर—इसके पचाग का स्वरस दिन मे दो वार कुछ दिन देते रहने से लाभ होता है। इससे शुष्क कास मे भी लाभ होता है।

श्वास पर—इसके ७॥ तोला पञ्चाग के चूर्ण को २॥ पाव तेज शराब मे मिला वन्द बोतल मे ७ दिन रक्खे। दिन मे २-३ बार हिला दिया करें। फिर मलते हुए छानकर शीशियो मे सुरक्षित रक्खे। मात्रा—२० से ६० बूद तक शहद के साथ दिन मे २-३ बार चटायें।

मात्रा—पत्र या छाल के रस या क्वाथ की मात्रा—

१ से २ चम्मच भर। शुष्क चूर्ण ५ से १५ रत्ती तक।

बाह्य प्रयोग—

चिरकारी सिर दर्द पर—इसके पत्र-स्वरस की २-४ बूंदें नासिका मे डालकर नस्य देने से दूपित कफ और रक्त का स्राव होकर सिर की पीडा और भारीपन शीघ्र दूर होता है।

नूतन उन्माद पर—इसके ताजे पत्र स्वरस २।। तो मे ३ रत्ती नमक मिलाकर प्रात साय ६-६ घटे से नस्य देते हैं। तथा फिर लगातार ३ दिन तक प्रात ठडे जल का फव्वारा-स्नान या मस्तिष्क पर शीतल जल का खूब सिंचन कराते है। इससे नासिका द्वारा दूषित श्लेष्मा आदि मल निकल कर लाभ होता है।

बालको के मलावरोध पर—पत्तो को पीसकर बत्ती बना गुदामार्ग मे रखने से मल की गाठ निकल जाती है। तथा इसकी मूल को गरम जल मे पीस कर पिलावे।

व्रणो पर—पत्रो की पुल्टिस बाधते हैं। गरमी से हुए व्रणो पर पत्तो को पीसकर लेप करते है। शैय्या व्रणो पर—शुष्क पत्तो का चूर्ण धीरे धीरे मर्दन करें।

वेदनायुक्त कर्ण शोथ पर—पत्र रस या क्वाथ को कान मे डालते है, तथा क्वाथ का बफारा देते हैं।

सन्धिशोथ या गठिया वात पर—पत्र-रस मे चूना और प्याज का रस मिला प्रलेप करते है।

आमवात और चर्म रोगो पर—पत्र रस मे रेंडी तैल मिलाकर मालिश करने से अथवा इसके रस मे नीम बीजो का तैल मिला मर्दन करने से आमवात तथा चर्म-रोगो मे लाभ होता है।

पामा, खुजली दाह पर—पत्र-रस मे नीबू रस मिला मर्दन करते हैं। इससे चीटा आदि क्षुद्र जन्तु के दश जन्य वेदनायुक्त दाह एव शोथ पर भी लाभ होता है।

कुमुद (Nymphae Lotus)

इस कमल कुल (Nymphaeaceae) की चन्द्रविकासी कुमुद या कुमुदिनी का साधारण स्वरूप कमल जैसा ही होता है। इसके विपय मे सक्षिप्त रूप से कमल के प्रकरण मे कहा जा चुका है। यहाँ विशेष वर्णन दिया जाता है।

कमल जैसे ही मुख्यत श्वेत, रक्त और नील पुष्प भेद से इसकी तीन जातिया हैं। इनके कन्द से एक दो या अधिक नलाकार काण्ड निकल कर जल के ऊपर पत्र युक्त हो जाते हैं। पत्र—कमल पत्र से छोटे गोल किंचित् म्लान तथा वृन्त के मिलन स्थान मे पीछे की ओर कडे, पत्रोदर कुछ चिकना एव हरिताभ पीतवर्ण का होता है। कुछ दिनो बाद उक्त कन्द के मध्यभाग से एक और पुष्पवाली नली निकलती है। पुष्प—कमल पुष्प जैसा ही किन्तु छोटा होता है। विशेपत वर्षाकाल मे ही ये पुष्प निकलते हैं। पुष्प की पखुडियो के बीच मे पीतवर्ण के केसर से युक्त मध्यभाग मे कुछ दिनो बाद एक गोल अनार जैसा फल या डोड़ा निकल आता है, जिसके कोषो मे सरसो के समान लालिमायुक्त श्वेत बीज होते है। पकने पर ये बीज काले पड जाते है। इन्हे कही कही भेंट, बेरा आदि कहते हैं। भूनने पर इनका रामदाने के लावा जैसा हलका, श्वेतवर्ण का लावा होता है, जो पथ्यरूप मे ज्वर आदि की अवस्था मे रोगी को दिया जाता है। इस लावा के लड्डू भी बनाये जाते हैं जो बहुत हलके एव शीघ्रपाकी होते हैं।

यह भारत मे प्राय उष्ण प्रदेशो के ताल, तलैया आदि जलाशयो मे बहुत होता है।

नोट—कुमुद के मूल, नाल पत्रादि युक्त संपूर्णांग को कुमुदिनी कहते हैं [१]।

इसकी अनेक उपजातिया पायी जाती हैं। जिनमे निम्न मुख्य है—

(1) Nymphaea Alba, N Versicolor, Castalia Alba आदि लेटिन नाम के श्वेत

[१] "सातु मृणालादि सर्वाङ्गै रक्त. समुदिता बुधै।"
—भा० प्र०

कुमुद यूरोप से काश्मीर मे प्रथम लाये गये है। ये श्वेत या गुलाबी रग के पुष्प युक्त कुमुद बगाल की छोटी तलैयो मे विशेषत शरदऋतु मे अधिक पाये जाते हैं। इसका गुणधर्म मार्दवकर एव स्निग्ध है । इनमे न्यूफेरिन (Nupharine) नामक तत्व पाया जाता है । इसका प्रयोग अतिसार मे किया जाता है। शेष इसके गुणधर्म प्रस्तुत प्रसग के कुमुद जैसे ही हैं।

(2) N Pubescens नामक कुमुद् उक्त कुमुद की ही एक जाति विशेष है। इसे बगाल मे शालूक या रक्त कम्वल कहते हैं। यह बगाल, ईस्ट इ डीज और जावा मे पाया जाता है। इसके कन्द के क्वाथ का सेवन मूत्र-कृच्छ्र तथा रक्तस्रावयुक्त विकारो मे किया जाता है। तथा पत्रो के कल्क का लेप नेत्राभिष्यन्द पर किया जाता है। इसकी एक उपजाति N. Rubra नामक कुमुद है। इसके पुष्प सकोचक और हृद्य हैं । कन्द का चूर्ण अर्श की पीडा शाति के लिये तथा आमातिसार व मन्दाग्नि पर भी दिया जाता है।

(3) N Stellata नामक नील कुमुद के पुष्प ९ से १० इ च व्यास के सुगंधयुक्त होते हैं। इसे (Euryale Ferox) भी लेटिन मे कहते हैं। इसके वीजो को ही मखाना कहते हैं। मखाना के प्रकरण मे इसका विशेष वर्णन देखिये।

(4) N Esculenta या N Edulis नामक कुमुद-इसे बगाल मे सोटा सु डी कहते हैं। यह वगाल और ईस्ट इ डीज मे वहुत होता है।

(5) N Cyanea नामक कुमुद को अ ग्रेजी मे East Indian Water Lily कहते हैं। यह भी वगाल मे अधिक होता है । इसके पुष्प ग्राही एव उत्साह-वर्धक हैं।

(6) N Pygmaea नामक लघु श्वेत कुमुद है । इसके पुष्प श्वेत वर्ग के वहुत ही छोटे १।-२ इ च व्यास के होते हैं।

(7) N Malabarica यह मलावार के जलाशयो मे पाया जाता है। इसके फूलो का प्रयोग कफ के विकारो पर किया जाता है।

नाम—

सं०—कुमुद,कुमुदनी, चन्द्रेष्टा, कुवलय, कैरव
हि०—कुमुद, कुई, नीलोफर, ताला की अनार
बगला—कुमुद, शालूक, हलाफूल, संधि
गुजराती—पोयणु, नालोपल। मराठी—कमोद
अंग्रेजी—वाटर लिली (Water Lily)
लेटिन—निंफिया लोटस (Nymphea Lotus)

रासायनिक सघठन—

इसकी मूल मे गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, स्टार्च, निर्यास आदि पाये जाते है। मूल या कन्द को शालूक कहते हैं। यह ऊपर से काला, भीतर श्वेत एव मृदु होता है। शुष्क पुष्पो को नीलोफर कहते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग —

शीतल, मधुर, विपाक मे कटु है, तथा पित्त विकार, रक्तदोष, श्रम, कफ, कास, तृषा, वमन आदि नाशक है ।

इसका कन्द—मधुर, गुरु, पित्तनाशक, मासवर्द्धक, रक्तप्रदर हर, तृप्तिकर तथा गर्भस्थापक है। इसके वीज
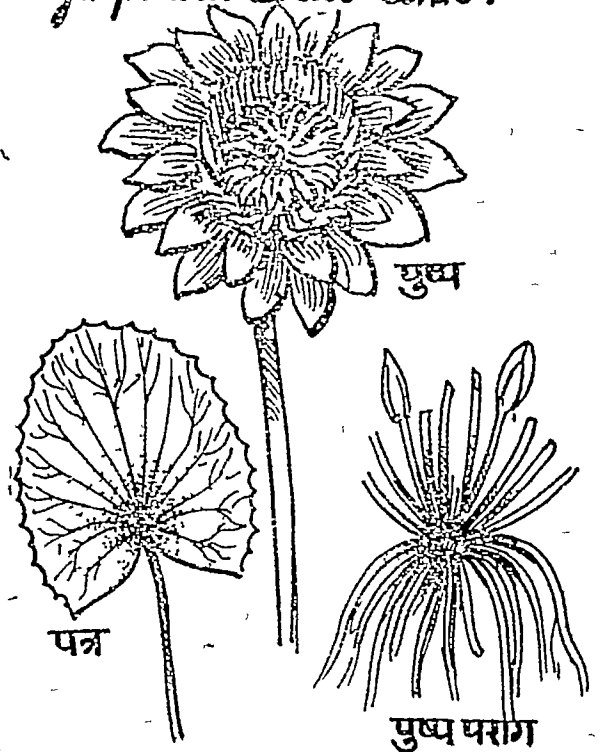
वातकारक, रक्तपित्तहर एवं अतिसारनाशक हैं। बीजो को या बीजो के लावा को दूध मे डाल मिश्री मिला कर बनाई हुई काजी या पेया शीतल, पौष्टिक, रक्तपित्त, प्रदर, तथा गर्भाशय की विकृति मे हितकर हैं।

पुष्प—इसके ताजे फूलो को सू घने से पित्त प्रकृति वाले के दिल व दिमाग को शाति मिलती है, नीद आती है। तथा पित्तज सिर दर्द दूर होते हैं। गले मे होने वाले जहर बाद तथा आतो के क्षत मे यह लाभदायक है। शुष्क पुष्पो का क्वाथ अतिसार पर देते है। फूलो का चूर्ण १० माशे तक की मात्रा मे गोदुग्ध के साथ देने से रक्तपित्त मे लाभ होता है। शुक्र प्रमेह, स्वप्नदोष या वीर्य स्राव पर–पुष्पो का स्वरस, फाट या हिम बनाकर दिया जाता हैं। यह प्रदर और अतिसार पर भी दिया जाता है, किन्तु ध्यान रहे अधिक मात्रा मे तथा अतिकाल तक इसके सेवन से पु स्त्वशक्ति नष्ट होती है, नपु सकता आती है। इस अहितकर परिणाम के निवारणार्थ गाजर का मुरब्बा और शहद का सेवन कराते हैं।

त्वचा के विकारो पर–पुष्पो का स्वरस लगाते हैं। इससे विसर्प, चर्मदाह तथा अग्निदग्ध स्थान की वेदना शान्त होती है। इसके कोमल पत्तो को पीसकर भी विसर्प एव चर्मदाह पर लगाते हैं। रक्तार्श पर–पुष्पो की केशर को मक्खन, मिश्री और शहद मे मिलाकर सेवन कराते है। इससे अर्श का तथा अन्त्र मे से होने वाला रक्तस्राव शीघ्र वन्द होता है। बालो की सफेदी दूर करने के लिये फूलो को दूध मे मिला मजबूत मृत्पात्र या चीनी मिट्टी के पात्र में भर कर मुख वन्द कर जमीन मे गाड दें। ३० दिन वाद निकाल कर उस दूध को मथकर मक्खन निकाल तथा घृत बना बालो मे लगाने से वाल काले हो जाते हैं। —व० च०

(१) शर्वत नीलोफर—ताजे पुष्प हो तो १ पाव, शुष्क हो तो १० तोला, शक्कर १५ तोला और जल ६५ तोले ले एकत्र मद आच पर पका शर्वत तैयार करलें।

मात्रा—आधा तोला। गरमी के सिरदर्द, पित्तज्वर, निमोनिया, रक्तार्श, पार्श्वशोथ आदि मे लाभदायक है।

(२) अर्क नीलोफर—पुष्पो का भवके से खीचा हुआ अर्क। मात्रा–१ तोला तक, सिर पीड़ा, पित्तज्वर, मसूरिका, क्षय, निमोनियां, पैत्तिक कास, फुफ्फुस शोथ तथा उन्माद मे लाभकारी है।

(३) उत्पलादि शृतम्—श्वेत, नील और लालकुमुद पुष्पो की केशर तथा मुलैठी की जड सब समभाग लेकर जौकुट करें। २ तोला चूर्ण का चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर सेवन से तृष्णा, शरीर दाह, मूर्च्छा, वमन, रक्तस्राव, गर्भवती के रक्तस्राव मे लाभ होता है। —भा. प्र.

(४) नीलोत्पलादि हिम—नीलोफर के साथ खरैंटी मूल, मुनक्का, मुलैठी, महुवा, खस, पद्माक, खम्भारी और फालसे के फल समभाग मिश्रित २ तोला लेकर रात को १२ तोला जल मे भिगोकर प्रात मल छान कर पिलाने से वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा व तृष्णा मे लाभ होता है। —शा. स.

(५) नीलोत्पलादि क्वाथ—नीलोफर के साथ खस, हर्र, आंवला और नागरमोथा समभाग मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला पिलाने से पित्तप्रमेह नष्ट होता है। —हा. सं

(६) रक्तपित्त पर—शुष्क पुष्प (नीलोफर) के साथ खाड, पद्ममाक और कमल केशर समभाग मिश्रित चूर्ण को ३-४ माशे की मात्रा मे चावल के धोवन के साथ पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। —ग नि.

(७) तृष्णाघ्नी वटी—इसके पुष्प, मोथा, धान की खील और वट के अकुर समभाग महीन पीसकर शहद मिला वेर जैसी गोलिया वनालें। इसे मुख मे रखने से प्रवल तृष्णा भी तुरन्त शान्त होती है। —यो र.

(८) खालित्य (गज) पर—पुष्पो के साथ वहेडे की गुठली की गिरी, तिल, अजमोद, फूल प्रियगु और सुपारी के छिलके समभाग पानी के साथ पीसकर वार वार लेप करने से लाभ होता है। —भा भे र.

(९) दिवान्धता और रतौंधी पर—पुष्पो की केशर को गाय के गोवर के रस मे घोटकर गोलिया वना लें। इसे आखो मे आजने से लाभ होता है। —ग. नि

(१०) तिमिर (नेत्र दृष्टिगत द्वितीय पटल की विकृति से उत्पन्न दृष्टिमाद्य–Amaurosis) पर—पुष्प के साथ वायविडङ्ग, पीपल, लालचन्दन, सुरमा और

सैंधानमक समभाग महीन चूर्ण कर आखो मे सलाई से लगाने से शीघ्र लाभ होता है। —च द

मूल या कन्द—शीतल, गाही, मूत्रल, रक्तनिरोधक है। अतिसार, प्रवाहिका, रक्तार्श, मूत्र मे रक्तस्राव, नकसीर, अत्यार्त्तव आदि विकारो पर उपयोगी है। प्रवाहिका या पेचिश पर मूल का चूर्ण तक्र के साथ देते हैं। स्वरभग या कठ की ग्रथियो के वढ जाने या कठ के अन्य विकारो पर इसका स्वरस पिलाते है। हैजा मे मूत्र के रुक जाने पर कन्द का या इसके काड का क्वाथ या फाट पिलावें।

(११) प्रदर पर—मूल के साथ लाल चावल, अजवायन, गेरू और जवासा इनका समभाग चूर्ण ३ माशे की मात्रा मे दिन मे २-३ वार शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। —वग सेन

नोट—यूरोप में इस कंद से वीर नामक शराव निर्माण करते हैं। कहीं कहीं इन्हें उवाल कर भोजन के काम में लाते है। कंदों को शुष्क कर पीस छानकर अरारूट (तवाखीर) भी वनाते हैं। इसमें टेनिन एवं रंजक द्रव्यो की विशेषता होने से चमडा रंगने के काम में यह लाया जाता है।

(१२) शरीर की झुरिया (वली) दूर करने के लिये—इसके मूल सहित पचाग को समभाग पारद के साथ ७ दिन तक आवले के स्वरस मे खरल कर शरीर पर मर्दन करने से झुरिया नष्ट होती हैं तथा वालो पर लगाने से श्वेत वाल काले हो जाते है। —भा. भै र.

(१३) पैत्तिक चर्मरोग पर—इसके बीजो को पीस कर शहद के साथ सेवन कराते हैं।

(१४) इसके पत्र रस मे थोड़ा तिल तैल मिलाकर सेवन कराते रहने से स्त्रियो का अस्थिस्राव और सोम रोग दूर होता है। —भा भै र.

नोट—मात्रा–पुष्प चूर्ण १०॥ तक, क्वाथ मे २ तोला तक, कन्द ३॥ मासे और वीज १०॥ मासे तक लेवें।

वातविकार वालों को इसका सेवन अधिक मात्रा मे या अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिए। मूर्च्छा, अपस्मार आदि पर देखिये कुमुदासव। —हमारे वृहदासवारिष्ट संग्रह में।

कुशल [Bauhania Retusa]

इस शिम्बि कुल मे (Leguminosae) की बूटी के मध्यम आकार के छोटे छोटे क्षुप होते है। छाल गहरे वादामी रग की, पत्ते ७.५ से १५ सेंटीमीटर लम्बे, फूल श्वेत तथा बीज वादामी रग के एव मुलायम होते हैं।

नाम—

हि —कुराल, कुरल, कंदला, कोटला।
ले.—वोहिनिया रेटुसा।

यह ऋतुस्राव नियामक और मूत्रल है। इसका गोद फोडा, व्रण एव छालो पर लगाते है।

कुलथी (Dolichos Biflorus)

यह शिम्वी कुल (Leguminosae) का खेतो मे तथा जगलो मे भी होने वाला एक धान्य विशेष है।

इसके वर्षायु क्षुप लगभग १॥ से २ फीट ऊचे होते हैं। खेतो मे यह खरीफ की फसल मे बोया जाता है।

पत्र—१ २ इच लम्वे, ३-३ पत्र एक साथ जुडे हुये मसूर या उडद के पत्र जैसे, पुष्प ½ से १॥ लम्वे, १-३ एक साथ पीत वर्ण के वर्षाकाल मे लगते है। शिम्वी या फली—शरदकाल मे १-२ इच लम्वी, टेढी, चिपटी और रोमश होती है जिसमे ५-६ चिपटे गोलाकार धूसर वर्ण के वीज मसूर जैसे होते है। कही कही काले और श्वेत बीज भी होते हैं। इन बीजो को ही कुलथी कहते हैं जो आहार मे दाल के रूप में व्यवहृत होती है।

हिमालय के तटवर्त्ती प्रदेशो मे इसके पौधे कुछ वडे, फलिया भी वड़ी व चौड़ी तथा बीज श्वेताभ होते हैं। जैसे तृणधान्य मे कोदो, तैसे ही द्विदल धान्यो मे यह कुलथी गरीवो का अन्न है। राजस्थान की ओर इसका आहार मे वहुत प्रचलन है।

यह वैसे तो समस्त भारत मे अल्प प्रमाण मे होती है किन्तु राजस्थान, वम्बई, मद्रास की ओर तथा वर्मा व लका मे ३ हजार फीट की ऊचाई तक विशेष प्रमाण

कुलथी

Dolichos biflorus Linn.

पुष्प

फलिएँ

फली

पत्र
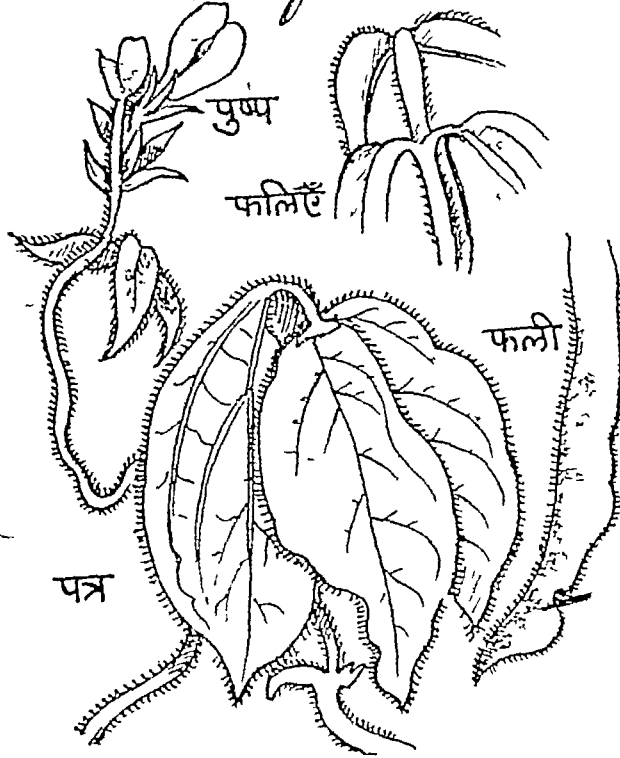
मे पैदा होती है। जगलो मे होने वाली कुलथी को चाकसू कहते है। देखो यथास्थान चाकसू का प्रकरण।

नाम—

स०—कुलत्थ, कुलत्थिका।
हि०—कुलथी, खुरथी, कुलट, गराहट।
म०—कुलीथ, हुलगा। गु०—कुलथी।
अं०—हार्स ग्राम (Horse gram)
ले०—डोलीकोस बाइफ्लोरस।

रासायनिक संगठन—

बीजो में प्रोटीन, स्टार्च, तैल, फास्फोरिक एसिड तथा युरिएज (Urease) आदि पाये जाते है।

औषधि कार्यार्थ प्राय बीज ही लिये जाते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह कफ वात शामक, पित्त तथा रक्तविकार कारक, विदाही, अनुलोमन, भेदन, लेखन, शुक्रनाशन, कफघ्न, कृमिघ्न, स्वेदापनयन (पसीना रोकने वाली), गर्भाशयो-रोजक, अश्मरी भेदन मूत्रल, शोथहर, क्षुधावर्धक, तथा आनाह यकृत्प्लीहा के विकार, शूल, गुल्म, अर्श, पीनस, कास, श्वास, हिक्का, मेदो रोग आदि नाशक है।

अवसाद की अवस्था में अतिस्वेद (पसीना) रोकने के लिए भुने हुए बीजो का महीन चूर्ण शरीर पर मर्दन करते हैं। श्वेत प्रदर, मासिकधर्म की विकृति पर, तैसे ही अश्मरी शूल वालो को तथा प्रसूता स्त्री जिसे मृतशिशु हो या गर्भपात हो और प्रसव के पश्चात् गर्भाशय शोधनार्थ इसके क्वाथ का सेवन कराया जाता है। श्वेतप्रदर पर इसकी जड का क्वाथ भी देते है। स्थूलता या मेदोवृद्धि पर—भोजन मे इसकी दाल का नियमित सेवन कराते रहने से धीरे धीरे मोटापन दूर हो जाता है।

अश्मरी (वृक्कस्थ)—बीज २ तोला ३ माशे और समभाग शलगम के बीज लेकर २० तोला पानी मे पकावे। ६ तोला शेष रहने पर छानकर प्रात साय ४।।-४।। तोला ५-६ दिन पिलावें। अथवा—

इसके क्वाथ मे सरफोका मूल का चूर्ण और सेधानमक २-२ माशा मिलाकर सेवन करावें। इससे मधुमेह में भी लाभ होता है।

यदि अश्मरी कण वृक्क या मूत्रप्रणाली में अटक जाने से भयकर वृक्कशूल हो जिमसे बार बार वमन होती हो, देह स्वेद से भीग जाती हो, निर्वलता बढती जाती हो तो शीघ्र ही इसके क्वाथ मे भुनी हीग १ से ५ रत्ती तथा सोठ चूर्ण और काला नमक १-१ माशा मिलाकर ४-४ घन्टे बाद देने से तुरन्त ही लाभ होता है। अथवा—

कुलथी चूर्ण २ माशा, शिलाजीत १ रत्ती दोनो को एकत्र मिला गरम जल से दिन मे दो बार लेते रहने से वृक्कशूल (दर्दगुर्दा), पेशाब की जलन, तथा अश्मरी भी दूर होती है। गुड, तैल, खटाई से परहेज रक्खें।

उक्त प्रयोगो से अश्मरी मे बिना शस्त्र क्रिया के उत्तम और शीघ्र लाभ होता है। पथरी गल कर निकल जाती है। इसके लिये इसके चूर्ण का भी इस प्रकार प्रयोग किया जाता है—कुलथी चूर्ण ४ माशे मूली के पत्र स्वरस २ तोले में मिला दिन मे २ या ३ बार पिलाते हैं।

इससे मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभ होता है। चूर्णका हिम भी पिलाया जाता है। आगे विशिष्ट योग मे 'कुलत्थ्यादि घृत' देखिये ।

(२) आन्त्र या उदर से होने वाले रक्तस्राव पर—चोट के लगने से या किसी प्रकार रक्तवाहिनी के फट जाने से या अन्य किसी कारणवश उदर या आन्त्र मे रक्त सग्रहीत होकर धीरे धीरे वेदना के साथ उसका स्राव होता हो तो रोगी को केवल चावल के भात के साथ इसकी पतली दाल या क्वाथ का सेवन दोनो बार करावें और भोजन मे कुछ भी न देवें। अन्दर का सग्रहीत दूपित रक्त शीघ्र ही प्रवाहित होकर निकल जाता है। महाराष्ट्र की ओर रोगी को इसके क्वाथ के साथ भात के सेवन के साथ शुद्ध किया हुआ भल्लातक (भिलावा) एक लेकर टुकडे कर खाने के पान के साथ खिलाते हैं। किन्तु ध्यान रहे भिलावा देना हो तो उसके देने के पूर्व और पश्चात् भी शुद्ध घृत १-२ तोले रोगी को अवश्य पिलायें। इससे शीघ्र लाभ होता है।

(३) श्वास पर—कुलथी को पानी मे पकने के लिये रख दें, उसीमे थोडा नमक, थोडी हल्दी गठान वाली और डाल दें। पक जाने पर उतार कर छान लें। इस छाने हुए पानी को ठडा हो जाने पर रोगी को पिलावें तथा थोडी थोडी देर मे पकी हुई कुलथी को भी खिलादें। भूख लगने पर उसी कुलथी को खिलावें। दूसरा भोजन न दें। इस प्रयोग से श्वास रोगी ठीक हो जाता है। —धन्वन्तरि वर्ष ३५, अक १०

ध्यान रहे, यद्यपि श्वास, कास एव कफ प्रकोप मे कुलथी के प्रयोग लाभकारी होते हैं, तथापि प्रतमक श्वास की अवस्था मे कफ शुष्क हो गया हो तो लाभ नही होता। कभी कभी हानि भी होने की सभावना है। तथा वातस्थान (नर्वस सिस्टम) के लिये भी हानिकर है। किन्तु वातविकारो के प्रतिवन्धक रूप मे इसका क्वाथ या इसकी पकाई हुई दाल का पानी नित्य पीते रहने से शरीर मे कोई भी वात विकार नही होने पाते।

(४) कास, श्वास और हिक्का पर—इसके साथ कटेरी, भारङ्गी, सोठ और तुलसी मिलाकर क्वाथ सिद्ध कर सेवन करने से कास, श्वास और ज्वर भी दूर होता है। —वृ नि. र.

इसके साथ सोठ, कटेरी और अडूसा मिलाकर क्वाथ बना उसमे पोखरमूल का चूर्ण मिला सेवन से हिचकी और श्वास मे भी लाभ होता है। —वृ. नि. र.

आगे विशिष्ट योगो मे 'कुलत्थ गुड' व 'कुलित्थ-पट्फल घृत' देखें। हिक्का मे इसका धूम्रपान भी कराते हैं।

(५) सन्निपात मे कर्णमूल शोथ होने पर—इसके साथ कायफल, सोठ, कलौजी समभाग लेकर जल के साथ महीन पीसकर मन्दोष्ण कर बार बार प्रलेप करने से कर्णमूलशोथ नष्ट होता है। —यो र.

(१) कुलत्थ्यादि घृत—इसके साथ सेधानमक, बायबिडग, खाड(शर्करा), शीतलचीनी, यवक्षार, पेठाबीज और गोखरू बीज सब मिलाकर १ सेर का कल्क करें।

क्वाथार्थ—वरुण की छाल ८ सेर, जल ६४ सेर, अवशिष्ट क्वाथ १६ सेर और घृत ४ सेर लेकर यथाविधि घृत पाककर, मात्रा—आधा तोला सेवन कराने से कष्टसाध्य अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एव मूत्रविवन्ध शीघ्र ही नष्ट होता है। —भै र.

(२) कुलित्थ षट्पल घृत—(कास, श्वास, हिक्कादि पर)—इसके साथ दशमूल और भारङ्गी (तीनो १-१ सेर) लेकर एकत्र जौकुटकर ३२ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ (८ सेर) सिद्धकर इसमे २ सेर घृत, ४ सेर दूध तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोठ, व जवाखार ४-४ तोले का एकत्र पानी मे पीसकर किया हुआ कल्क मिला घृत सिद्ध करलें। मात्रा—१ से २ तोला सेवन कराने से कास, श्वास, हिक्का, विपमज्वर, अर्श, हृद्रोग, ग्रहणी, अरुचि, पीनस, गुल्म व प्लीहा विकार दूर होकर वल, वर्ण एवं अग्नि की वृद्धि होती है। (बगसेन)

इसके क्वाथ और पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोठ) के कल्क से सिद्ध किया हुआ घृत कफज कास, श्वास और हिक्का का नाश करता है। (च. स)

(३) कुलत्थ गुड—इसके साथ दशमूल और भारगी (तीनो आध-आध सेर) लेकर प्रत्येक को ४-४ सेर जल मे पका कर चतुर्थांश शेप रहने पर छानकर एकत्र करें। इसमे १ सेर गुड मिला पुन पकाकर गाढा करे। ठडा होने पर उसमे ८ तोला शहद, वसलोचन ३ तोला तथा पीपल, दालचीनी, तेजपात और बड़ी इलायची का चूर्ण

१-१ तोला मिला रक्खें। मात्रा १ तोला तक सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, हिक्का, एव तमक श्वास मे लाभ होता है। (भै० र०)

(४) कुलत्थयूष (वातज शूल पर)—इसके साथ लाव पक्षी का मास दोनो मिलित ८ तोला, पाकार्थ जल १॥ सेर। ३२ तोला जल शेष रहने पर छानकर उसमे हीग और घी से छोक कर सेधानमक, कालानमक, सोठ, कालीमिर्च व पीपल २-२ मासे मिला, अनार का रस सबका चतुर्थांश मिला दें। मात्रा १ तोला तक सेवन से वातज शूल शीघ्र ही दूर होता है। (भै० र०)

नोट—(१) गठिया या आमवात की व्याधि यदि शुद्ध आमवातज ही हो या आमवातजन्य कोई वातरोग हो, तो कुलथी का प्रयोग अवश्य लाभकारी होता है। यदि सुजाक या वातरक्त से गठिया हुआ हो, तो इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता।

(२) गंडमाला की प्रारंभिक अवस्था में इसके क्वाथ के साथ कालीमिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन कराते रहने से १-२ मास में लाभ होता है।

(३) यकृत और प्लीहा के विकारों पर इसका फांट देते हैं। शुष्कार्श पर पथ्य रूप में इसकी दाल का सेवन कराने से अर्श की पीडा दूर होती है। शोथ पर इसका स्वेदन कराते हैं।

(४) अतिसार में इसके कोमल पौधों का ताजा रस १ तोला में ३ मासे कत्था मिला (यह १ मात्रा है) दिन में ३ बार देते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

(५) नेत्र रोग—विशेषतः रक्तज नेत्राभिष्यन्द पर वन कुलथी (चाकसू) का अंजन लाभकारी है। बनकुलथी को कपडे की पोटली में बांध कर दोलायंत्र विधि से बकरी के मूत्र मे पका, उसके छिलके अलग कर महीन पीस उसमें सेंधानमक, बोल और हल्दी चूर्ण (प्रत्येक उसके बराबर) मिलाकर अच्छी तरह खरल कर सुरमा सा बारीक बना लें। इसे रात को आंख में आंजने से ३ दिन मे रक्त प्रकोप से आई हुए आंखों का विकार अच्छा हो जाता है। (भा. भै. र.)

वनकुलथी के अन्य प्रयोग 'चाकसू' के प्रकरण में देखिए।

(६) जानवरों में दुग्ध वृद्धि के लिये कुलथी के साथ कच्चे बेल फल का गूदा मिला पकाकर खिलाते हैं।

घोडों को तथा बैलों में शक्ति एवं पुष्टि के लिये इसे पानी में उबाल कर खिलाते हैं।

(७) अधिक मात्रा में विशेषत फुफ्फुस विकार तथा अम्लपित्त ग्रस्त व्यक्ति के लिये इसका सेवन अहितकर होता है। इसके निवारणार्थ शहद या नारियल का पानी या मूली का रस दिया जाता है।

कुलथी सेवन करने वालों को मास तथा तिल नहीं खाना चाहिए

कुलफा [Portulaca Oleracea]

यह अपने लोणिका कुल (Portulaceae) की एक प्रधान शाक है। इस कुल मे इसीकी बडी और छोटी जातियो की गणना है। बडी जाति वाली को हिन्दी मे कुलफा तथा लेटिन मे पोर्टुलेका ओलिरेसिया कहते हैं। छोटी को लोनिया तथा पोर्टुलेका क्वैड्रिफिडा (P Quadrifida) कहते हैं।

बड़ी जाति के कुलफे का वर्षायु क्षुप हरा या रक्ताभ रग का, रस पूर्ण ६-१२ इच लम्बा, बिल्कुल चिकना होता है। छोटी जाति की लोनिया के क्षुप रक्ताभ हरित वर्ण के, प्राय जमीन पर फैलने वाली शाखाये पतली, लाल, चिकनी, चमकीली होती है। तथा शाखा की प्रत्येक ग्रन्थि से मूल निकल जमीन के भीतर जाती हैं।

पत्र—बडी के वृन्तरहित ½ से १½ इच लम्बे, गोलाकार, मासल, रक्ताभ किनारेयुक्त होते हैं। छोटी के पत्र ¼ से ½ इच लम्बे अण्डाकार एव कुछ नुकीले, रक्ताभ हरितवर्ण के कम मासल होते है। दोनो के पत्तो का स्वाद नमकीन और अम्ल होता है। किन्तु छोटी के पत्र अधिक नमकीन होते हैं।

पुष्प—प्राय दोनो के वर्षाकाल मे पीतवर्ण के वृन्तरहित शाखाओ के अग्रिम भाग पर निकलते है। कही कही ये पुष्प वसन्त और ग्रीष्म मे प्रस्फुटित होते हैं।

फल या डोडी—दोनो की अण्डाकार या शुण्डाकार प्राय शीतकाल मे निकलती है।

बीज—उक्त डोडी मे अनेक बीज दाने जैसे होते हैं। डोडी की कच्ची हालत मे ये बीज प्राय श्वेत, तथा पकने पर गहरे भूरे रग के या काले होते हैं।

कुल्फा बड़ा
Portulaca oleracea Linn.
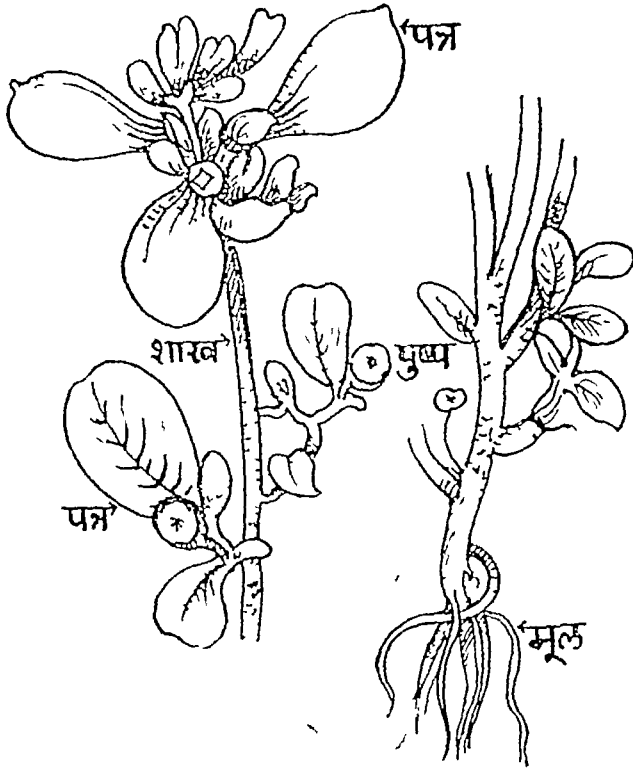
मूल—वडी की ४ इ च से १ फुट लम्बी, पेंसिल जैसी मोटी, उपमूल युक्त, एव स्वाद मे अप्रिय होती है । छोटी की मूल पतली डोरी जैसी श्वेत, भूरे रग की तथा स्वाद मे फीकी होती है ।

वडी के क्षुप भारत के उष्ण प्रदेशो मे प्राय खादर या आर्द्र भूमि पर बहुत उपजते हैं । तथा बागो मे यह बोई जाती है । सीलोन मे यह अधिक पाई जाती है ।

छोटी के क्षुप प्राय सर्वत्र वर्षाकाल मे घरो के आस पास कूडे कचरे मे पैदा हो जाते हैं ।

नाम—

स.—लोणा, लोणी, घोटिका तथा क्षुद्र घोलिका ।
हि.—कुलफा, खुर्फा, नोना, लुनक तथा नोनी, नोनिया ।
म.—मोठी घोल, तथा रानघोल । व.—वड नूनिया, बन-गुनी । गु —मोटी लुणी, भीणी लूणी ।
अ.—गार्डन पर्सलेन (Garden Purslane, Common Indian Parselane)

ले.—ऊपर देखिये—पुराना नाम पोर्टुलेका मेरिडायना (P meridiana), तथा पो टुबेरोजा (P Tuberosa)

रासायनिक संघठन—

पत्तियो मे पोटाशियम आग्जलेट (Potassium oxalate) नामक अम्लक्षार तथा श्लक्ष्ण द्रव्य (Mucilage) पाया जाता है ।

चरक और सुश्रुत मे इसका उल्लेख अर्श और अतिसार मे रोगी के पथ्य प्रसङ्ग मे साग रूप से आया है । तथा भारत मे इसका घरेलू उपचार प्राचीन काल से होता आया है ।

गुणधर्म और प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, मधुर, लवण, विपाक मे मधुर एव शीतवीर्य है तथा कफपित्तशामक, वातवर्धक, रोचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, विष्टम्भी, भेदन, मूत्रल, एव रक्तपित्त, शोथ, अर्श, अग्निमांद्य, ज्वर, विष और शुक्रनाशक है ।

वडा कुलफा—विशेषत सर, उष्णवीर्य, वातकारक,

कुल्फा छोटा
Portulaca quadrifida Linn.
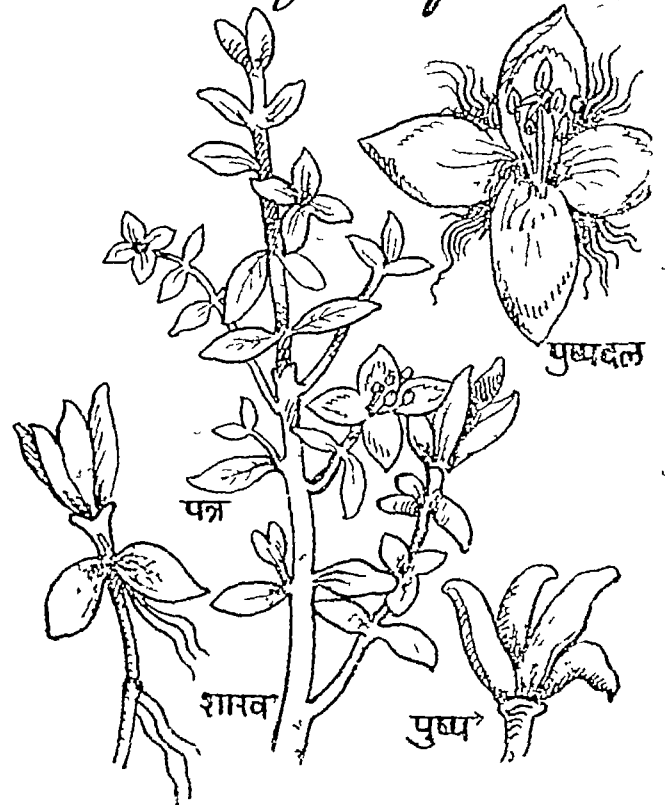
कफ पित्तहर, बोलने मे हकलाना आदि वाक् दोष, व्रण, गुल्म, कास, श्वास और प्रमेहनाशक है। शोथ और नेत्र-रोगो पर हितकारी है।

छोटा कुल्फा—विशेषत- उष्ण, अम्ल, सारक, पित्त-कारक, वातनाशक है। शेष गुणो मे दोनो समान हैं।

बीज दोनो के प्राय पिच्छिल, स्नेहन, मूत्रल, कृमिघ्न एव प्रवाहिका, आमातिसार आदि नाशक हैं।

औषधि कर्म मे—इसका पचाग, पत्र और बीज लेते हैं।

पंचाङ्ग के क्वाथ का प्रयोग कृमि रोग, आमाशय-विकार और सुजाक आदि पर किया जाता है। इसका या केवल पत्तो का रस पित्त प्रकोपज ज्वर, सिर दर्द, तृषावृद्धि, दाह, वमन, प्लीहावृद्धि, वृक्कविकार आदि मे पिलाया जाता है। उक्त क्वाथ के लिये छोटे कुल्फे का पचाग लेना ठीक होता है। पचांग का शीत कषाय (अर्थात् दो तोले पंचाङ्ग कुटा हुआ लेकर ६ गुने पानी मे डालकर मिट्टी या काच के या कलईदार पात्र मे ढक कर रात भर भीगता रहने दें। प्रात उसे मलकर छान लें। इसकी मात्रा ४-६ तोले तक दिन मे ३ बार देवें। घृत, शहद, गुड आदि मिलाना हो तो क्वाथ के परिमाण से मिलावें) मूत्राशय दाह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र मे रक्तस्राव, रुधिर की वमन आदि पर लाभकारी है।

पत्र—इसमें नैसर्गिक लवण होने से दीपन, पाचन, यकृद्रोग एव गुल्म आदि नाशक हैं।

इसकी शाक रक्तपित्त, पैत्तिक ज्वर, अर्श, प्रमेह, यकृद्विकृति, पित्तातिसार, उरःक्षत, यक्ष्मा, रक्तनिष्ठीवन, एव गर्भाशय, आमाशय, यकृत् की उष्णता आदि मे पथ्य रूप से हितकारी है। शाक बनाते समय उबालकर उसका थोडा रस निचोडकर निकाल दें, तथा कुछ अधिक घृत या शुद्ध तिल तैल मिलाकर पकाना चाहिये। वैसे ही छोक कर (रस निचोडे विना) खाने से अतिसार आदि उपद्रवो की सभावना है।

दात या मसूढो से थूक मे रक्त जाने पर या मूत्र मे रक्तस्राव मे इसका साग या पत्तो का स्वरस १। से २॥ तोला तक थोडी मिश्री मिला दिन मे २-३ बार पिलाने से१-२ दिन मे शीघ्र ही लाभ होता है। इससे रक्तार्श, मूत्रदाह, छाती की दाह, थूक आदि मे रक्त जाना (Scurvy) आदि बन्द होता है।

पैत्तिक ज्वर के तीव्र वेग में पत्तो का हिम (शीत-कषाय) पिलाते हैं, तथा बरफ के अभाव मे पत्तो को पीसकर सिर पर लेप करते हैं।

विसर्प पर—ताजे पत्तो को पीसकर लेप करते तथा पत्तो की लुगदी को बाधते हैं। इससे आगन्तुक-चोट, दाह, पित्त शोथ, खुजली आदि मे लाभ होता है।

सिर दर्द पर— उष्णता से होने वाले सिर दर्द पर उक्त प्रकार से पत्तो का लेप कपाल और कनपटी पर करें।

आग से या गरम वस्तु से जलने पर— छाले पर पत्तो का लेप या पुल्टिस बाधते हैं।

हाथ पैरो की दाह शमनार्थ—पत्रो के साथ मेंहदी के पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

बालको के मुखपाक पर—पत्तो के महीन चूर्ण को बुरकते या छिडकते हैं।

व्रणो पर—पत्तो को पीसकर तैल मे मिलाकर बाधते हैं।

मूत्राशय की प्रदाह पर—इसके पत्तो का या बीजो का फाण्ट सेवन कराने से वृक्क एव मूत्राशय प्रदाह शात होकर मूत्र के परिमाण मे वृद्धि होती है।

बीज—पिच्छिल, स्नेहन, मूत्रल और कृमिघ्न हैं। बीजो के चूर्ण के सेवन से अन्तडियो की ऐंठन मिटकर बार बार दस्त की शका (प्रवाहिका) दूर होती है। पैत्तिक अतिसार मे बीजो का फाण्ट पिलाते हैं। पैत्तिक-ज्वरो मे आन्त्रिक सन्निपात ज्वर (टायफायड) मे भी इसका फाण्ट या क्वाथ उपयोगी है। बीजो को भूनकर चूर्ण कर उष्ण प्रकृति वालो को तथा मधुमेह के रोगी को भी सेवन कराते हैं। मात्रा—३ से ७ मासे तक।

ध्यान रहे—बीजो का अधिक सेवन आमाशय के लिये अहितकर तथा नपुसकताकारक है।

जो शीत व्याधि से पीडित हैं उन्हे कुल्फा का उपयोग नही करना चाहिये। प्लीहा और नेत्र दृष्टि के लिए हानिकारक है। हानि निवारणार्थ पुदीने का सेवन करें।

मात्रा—कुल्फे के स्वरस की १ से ५ तोला तथा चूर्ण की १ से ३ माशे, बीज—१ से ७ माशे तक।

कुलाहल (Celsia Coromandeliana)

इस कटुका (कुटकी) कुल (Scrophularineae) की वर्षायु वनस्पति के छोटे छोटे क्षुप तीव्र गन्धयुक्त, भारत के दक्षिण के प्रदेशो मे तथा समग्र बगाल, पजाब आदि मे भी नदी किनारे वर्षाकाल मे पैदा होते हैं। क्षुप के काड कही कही २ से ३ फुट तक ऊचे, मोटे और मुलायम होते हैं।

पत्र—२ से ४ इच लम्बे रोमश, कटे-फटे हुये किनारो युक्त, भूमि पर फैले हुये होते हैं।
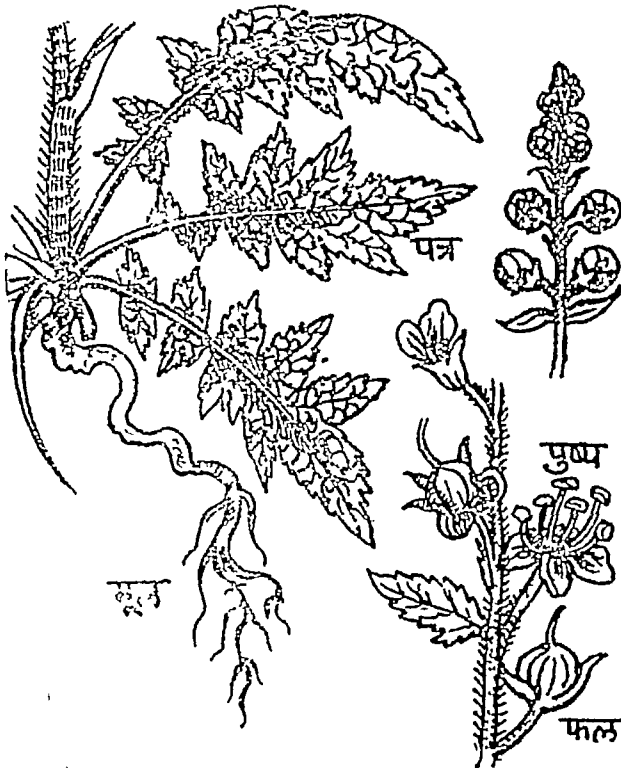
फूल—पीले वर्ण के, फली लम्बी, गोल तथा बीज भी कुछ लम्बे होते है।

यह गीदड तम्बाकू (अरण्य तमाखू) का ही एक जात भाई है। गीदड तम्बाकू का प्रकरण देखें।

नाम—

सं.—कुलाहल, सुन्दिका, भूतकेशी।
हि.—कुलाहल, गदर या गीदड़ तमाखू।
बं.—छोट कुकसिम, कोशिमा। म.—कोलहल, कुटकी।
गु.—कलहर, कुलहल। ले.—सेलेसिया कोरोमेंडेलियाना

औषधि कर्म मे—इसके पत्र, पचाङ्ग लिये जाते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह पित्तप्रकोप और वामक है। प्रभाव मे यह संकोचक एव शान्तिदायक है। वात तथा रक्त के विकारों पर तथा बहुमूत्र, मधुमेह पर यह लाभकारी है।

तीव्र एव जीर्ण अतिसार मे—इसका रस या क्वाथ दें।

उपदश या गर्मी के फोडे फुंसियो पर—इसके पचाग का रस २॥ तोला दिन मे दो बार देते हैं।

हाथ पैरो की जलन पर—पत्र रस को राई के तैल मे मिला कर लगाते हैं।

ज्वरजन्य तीव्र तृष्णा की शान्ति के लिये इसकी जड मुख मे रख धीरे धीरे चबाते है।

रक्तार्श पर—पत्र रस मे शक्कर मिला सेवन कराते हैं। कास पर—जड़ के क्वाथ मे शहद मिलाकर पिलावें।

मात्रा—पत्र रस १ से २ तोला तक, मूल चूर्ण २ से ६ माशे तक, क्वाथ ५ तोले कभी इससे अधिक १० तोले तक भी देते हैं।

कुलिंजन (Alpinia Galanga)

हरीतकी वर्ग एव हरिद्रा कुल (Scitamineae) की इस वनस्पति के क्षुप आमाहल्दी के क्षुप जैसे ६-७ फुट ऊचे, काड-पत्रमय (वचा के सदृश), पत्ते—१-२ फुट लम्बे, ४ इच चौडे, नोकदार, ऊपर पृष्ठ भाग स्निग्ध, हरा, निम्न भाग हल्के रग का रोमश होता हैं।

पुष्प—ग्रीष्मकाल मे छोटे, वक्र, हरिताभ श्वेत, सघन, पुष्पनलिका आध इच लम्बी।

फल—नीबू जैसे गोल ½ इच व्यास के, आध इच लम्बे, पीताभ लाल वर्ण के होते हैं। फलो को अग्रेजी

मे गलङ्गा कार्डेमम (Galanga cardamom) कहतेहै।

बीज–छोटे, त्रिकोणाकार, चपटे, चिकने एव सुगन्धित होते हैं।

मूल—आलू जैसी गाठदार, बहुवर्षायु एव सुगन्धित होती है। इसी मूल या कन्द को सुखाकर १-२ इच लम्बे २॥ इच तक अगूठे जैसे मोटे टुकडे कर बाजार मे कुलिजन नाम से बेचते हैं। ये टुकडे बाहर से लाल या बादामी रग के, अन्दर से हलके नारगी बादामी रग के तथा स्वाद मे चरपरे होते हैं।

इसका मूल उत्पत्तिस्थान चीन तथा मलाया, जावा, सुमात्रा है। सम्प्रति यह बगाल तथा दक्षिण मे मलाबार, गोवा, सीलोन आदि स्थानो मे बागो मे पैदा की जाती है तथा जङ्गलो मे भी पाई जाती है।

नोट—(१) चीन में इसकी एक जाति, जिसे लेटिन में एल्पीनिया चिनेंसिस (Alpinia Chinensis) तथा एम. शेरिफ ने जिसका नाम अल्पीनिया खुलञ्जान (A Khulanjan) रक्खा है, अंग्रेजी में लेसर गलंगाल (Lesser Galangal) जिसे कहते हैं। उसकी मूल भी कुलिंजन नाम से ली जाती है तथा उसका भी व्यवहार कुलिंजन के स्थान पर होता है। किंतु यह एक प्रकार की रास्ना विशेष है। इसीका एक भेद विशेष अल्पीनिया आफिसिनेरिम (A Officinarum) है, जिसे खुलञ्जन तथा बंगला में सुगंध बच कहते हैं।

(२) भावप्रकाशकार कुलिञ्जन को वच का ही एक भेद मानते हुये इसे महाभरी वचा कहते हैं। किंतु वास्तव में यह नरकचूर है। नरकचूर का प्रकरण देखिये।

(३) कुलिञ्जन यह शब्द अरबी खुलिञ्जान का अपभ्रंश है। तथा खुलिञ्जान यह चीनी भाषा के 'काओन लियांग' का अपभ्रंश होना चाहिये।

(४) कई लोग भ्रमवश पान (नागरबेल) की मूल को ही कुलिञ्जन ही कहते हैं। ध्यान रहे कुलिञ्जन की लता या बेल नहीं होती। क्षुप होता है।

बाजारू कुलिञ्जन में हीन श्रेणी की सोंठ या घुड़बच का मिश्रण होता है। अतः देखकर लेना चाहिये।

(५) आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। शायद इसे बच का ही एक भेद या विशेष प्रकार की वच मानकर ही उपयोग किया जाता हो या उस काल में यह भारत में न होता हो। इसका तो चीन देश से यहां प्रसार हुआ है। इसलिये भावप्रकाशकार के समय से इसका यहां विशेष प्रचार हुआ है। तथ जितना इसका प्रयोग दक्षिण में महाराष्ट्र, मैसूर तथा गुजराथ के ग्रामों में किया जाता है उतना अन्यत्र नहीं होता।

नाम–

सं.—सुगंध, मलयबचा (मलय प्रदेश में होने के कारण), कुलञ्जन।

हि.—कुलिञ्जन, महाभरी।

म. बं. गु.—कोलिञ्जन, कुलञ्जन।

अं.—ग्रेटर गेलंगाल (Greater Galanffal)

जावा गे. (Java Galangal)

ले—एल्पिनिया गलंगा।

रासायनिक संघठन—

इसमे कैम्फराइड [Campheride], गलङ्गिन [Galangin] और अल्पनिन [Alpinin] नामक तीन द्रव्य तथा एक मुख्य प्रभावशाली पीताभ, सुगन्धित उडनशील तैल होता है, जिसमे ४८ प्रतिशत मेथिल सिनैमेट [Methyl cinnamate] और २०-३० प्रतिशत सिनकोल [Cincole], कपूर एव डी पाइनिन [D Pinine] होता है। मूल ही इसका प्रयोज्य अग है।

गुण धर्म और प्रयोग--

यह लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, विपाक मे कटु एवं उष्णवीर्य है। कफवात शामक, मुखशोधक, लालाप्रसेकजनन, रोचन, दीपन, लेखन, अनुलोमन, हृदयावसादघ्न, बाजीकरण, उत्तेजक, शीतप्रशमन, मूत्रल, नाडियो को बलप्रद, कफ, कास, आध्मान, शिर शूल, कटिवात, सधिवात, कठविकार, मूत्ररोग, क्षय आदि नाशक है।

यह तीक्ष्ण होने से अतिमात्रा में, आमाशय मे क्षोभ तथा पित्त की वृद्धि करता है, जिससे लालास्राव की भी वृद्धि होती है।

इसके प्रयोग से विशेषत इसके सत्व का इन्जेक्शन देने से महास्रोत मे रक्त अधिक आने लगता है और अन्य अवयवो का रक्तभार कम हो जाता है। साथ ही मे हृदय का संकोच भी कुछ कम हो जाता है। इस प्रकार यह हृदय के लिये अवसादक माना जाता है।

थोडी मात्रा मे इसका प्रयोग या इन्जेक्शन श्वास नलिकाओ को प्रसारित करता एव उत्तेजित करता है। अत यह श्वासहर है। स्वरयन्त्र की शक्ति को भी बढाता है। किन्तु अधिक मात्रा मे इसका दूषित असर होता

है। मूत्र मे रुकावट होती है।

इसके गुणधर्म प्राय वच के जैसे ही है। अति स्वेद (पसाना) के कारण या अवसाद की अवस्था मे शरीर ठडा पड रहा हो तो इसका चूर्ण त्वचा पर रगडते है। झाई आदि त्वचा के रोगो पर भी इसका मर्दन करते है। हैजा मे हाथ पैर ठडे पड जाने पर तथा मास-पेशियो मे आक्षेप भी हो तो इसके चूर्ण के साथ सोठ, सेंधानमक, थोडा कोकम या रेंडी या सरसो तैल मिला गरम कर मर्दन करते हैं। इसमे हाथ पैर, कधा एव बिटप की सधि स्थानो का शूल भी दूर होता है।

ज्वर मे अन्य ज्वरहर द्रव्यो के साथ इसे मिलाकर क्वाथ बना पिलाते है। कास श्वास मे—इसका चूर्ण अदरख रस और शहद के साथ चटाते हैं। उदर शूल मे—इसे अजवायन और काले नमक के साथ, मदाग्नि पर—सोठ व सैंधानमक के साथ, मूत्रावरोध मे—पानी के साथ पीस छानकर, मधुमेह या बहुमूत्र मे—इसका अष्टमाश क्वाथ, बालको के अतिसार पर—इसकी गाठ को पत्थर पर तक्र के साथ घिसकर किंचित हीग मिला गरम कर पिलाते हैं। बालको के कुक्कुर कास मे चूर्ण को शहद से चटावें। बालकों के गू गेपन या तुतलाने पर इसे मधु मे घिस, कर जीभ पर लगाते रहने से लाभ होता है।

मूत्रावरोध पर—चूर्ण १ से १॥ माशे तक नारियल जल के साथ प्रात देने से मूत्र साफ हो जाता है। बहु-मूत्र मे—चूर्ण के साथ सोठ चूर्ण मिला शहद के साथ दिन मे ३ बार देते रहने से भी लाभ होता है।

सिर दर्द पर—चूर्ण की नस्य देने से छीके आकर लाभ होता है।

दत पीडा पर—चूर्ण का मजन दिन मे २-३ बार करने तथा मिष्टान्न का त्याग करने से लाभ होता है।

(१) आध्मान पर—इसका महीन चूर्ण १॥ या २ माशे लेकर गुड या शहद के साथ दिन मे २-४ बार २-२ घटे मे लेने से वातानुलोमन होकर पेट का अफारा दूर होता है, उदर शुद्धि एव क्षुधा वृद्धि होती है।

(२) अजीर्ण पर—इसके साथ भूनी हीग, सैंधा-नमक, किशमिस, धनियां, जीरा मिला नीबू रस मे पीस चटनी बना थोडा थोडा चाटते रहने से शूल सहित अजीर्ण का नाश होता है।

(३) कामोत्तेजनार्थ—इसका चूर्ण ६ माशा दूध और पानी आध-आध सेर एकत्र मिला पकावें। दूध मात्र शेप रहने पर छानकर प्रात तथा इसी प्रकार साय पीने से काफी उत्तेजना एव शक्ति की वृद्धि होती है।

(४) शीत के असर पर—चूर्ण का सेवन चाय के पेय के साथ करने से शीत बाधा दूर होकर फुफ्फुस की विकृति मे भी लाभ होता है। शीतजन्य पीडा पर चूर्ण की मालिश करते है।

(५) स्वरभेद तथा मुख दौर्गन्ध्य पर—इसका टुकडा मुख मे रख धीरे धीरे रस निगलते रहे, इस प्रकार दिन मे २ से ४ माशे तक सेवन करते रहने से ३-४ दिन मे लाभ हो जाता है। मुख की दुर्गन्धता दूर होती है। तथा इससे बाजीकरण एव कामोत्तेजना भी होती है।

(६) मुख दूपिका या यौवन पिटिका और कर्ण पिटिका पर—इसके द्वारा सिद्ध किये हुए तैल का प्रयोग करते है।

(७) खल्ली शूल (हाथ, पैर, जांघो की पिंडलियो मे दर्द) हो तो इसके और सैंधा नमक के चूर्ण को कम तैल मे मिला मन्दोष्ण कर मर्दन करने से लाभ होता है।

(८) वमन पर—इसके काण्ड या पत्र का रस, नीबू और अदरख रस सम भाग १-१ तोला लेकर उसमे १॥ तोला मिश्री मिला आग पर थोडा पका कर दिन मे दो बार ६-६ माशे की मात्रा मे चटाने से २-३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

नोट—चूर्ण की मात्रा १ से ३ माशे तक, टिंचर की मात्रा आधा से १ ड्राम है।

अधिक मात्रा में देने से मूत्रावरोध होता है। इसके दुष्परिणाम के निवारणार्थ कतीरा, चन्दन, सौंफ और वंशलोचन दें। इसका प्रतिनिधि दालचीनी या बच है।

कुश [Eragrostis Cynosuroides]

यह गुडुच्यादि वर्ग एव यवकुल [Graminae] के तृण विशेष के दृढ बहुवर्षायु क्षुप कास या मूज जैसे किन्तु कुछ छोटे। १ से ३ फीट ऊचे होते हैं। इसका मूलस्तम्भ दृढ, सीधा, जमीन मे खूब गहरा जाता है।

पत्र—कास पत्र जैसे लगभग १७ इच लम्बे व २ इच चौडे, अग्र भाग पर सूई जैसा तीक्ष्ण एव पत्रधार पर सूक्ष्म दृढ रोम होने से ये तेजधार वाले होते हैं।

पुष्पदड—६ से १८ इच लम्बा सीधा होता है।

बीज—चौथाई इच लम्बे, चपटे, अ डाकार होते हैं। वर्षा मे पुष्प व शीतकाल मे फल लगते हैं।

भारत मे यह प्राय सर्वत्र खुले मैदानो मे मिलता है।

नोट—इसकी ही एक बड़ी जाति को दर्भ या दाभ कहते हैं। इसके पत्र कुछ विशेष लम्बे एवं खर होने से संस्कृत में इसे क्षुरपत्र कहते है। यज्ञ योगादि धार्मिक कृत्यों मे यह उपयोगी है। ग्रहण के समय घर की वस्तुओं पर पवित्रता की दृष्टि से यह रख दिया जाता है।

चरक, सुश्रुत के मूत्रविरेचनीय, स्तन्यजनन, मधुर स्कंध एव तृण मूल पचक में इसकी गणना की गई है।

नाम —

सं.—कुश, सूच्यग्र, दर्भ, यज्ञभूषण।
हि.—कुश, डाभ, दबोलि। बं—कुश।
म.—दर्भ, दाभ। गु—दाभडो, दरभ, कुश।
ले.—एराग्रोस्टिस साइनोसुरायडिस,
डिसमो स्ट चिया साइनो (Desmostachya Cyno)

औषधि कार्य मे इसकी मूल ही ली जाती है।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, विपाक मे मधुर एव शीतवीर्य है। यह त्रिदोषघ्न, स्तम्भन, तृष्णाहर, स्तन्यजनन, मूत्रल, कुष्ठघ्न और रक्तातिसार, प्रवाहिका, वस्तिविकार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह और विसर्प आदि चर्मविकारो पर लाभप्रद है। यह गर्भवती के गर्भाशय को क्षतिकारक है। मूत्रावरोध पर इसकी मूल का फाट पिलाते हैं।

[१] रक्तप्रदर पर—मूल के क्वाथ मे रसौत मिलाकर छानकर सेवन कराने से अथवा मूल के साथ खरैटी [बला] मूल समभाग मिला चावलो के धोवन के साथ पीस छान कर मात्रा ६ माशे पिलाते रहने से अथवा मूल को ही चावल के धोवन मे पीस छान कर उसमे जीरा चूर्ण और मिश्री मिला सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है।

[२] पित्तातिसार, आमातिसार पर—इसके मूल के साथ समभाग कास की, ईख की, शाली चावलो की, खस की तथा बेत की जड लेकर क्वाथ बना सेवन कराने से पित्तातिसार नष्ट होता है [हा स]। आमातिसार पर केवल इसकी जड के क्वाथ से लाभ होता है।

[३] अश्मरी पर—इसकी जड के साथ कास की, गोखरू की जडें तथा हरड, अमलतास, पाषाणभेद और धमासा समभाग लेकर क्वाथ बना शहद मिलाकर पीने से दुस्साध्य अश्मरी भी शीघ्र नष्ट होती है [भा. भै र]

[४] मूत्रकृच्छ्र और वस्ति विकारो पर—तृण पच-

मूलादि क्वाथ--कुश, कास, शर, दाभ और ईख की जड इन सबके योग का नाम तृणपचमूल है। इन पाचो तृणो की जड से सिद्ध किया हुआ क्वाथ बस्तिविकार एव वस्ति के शोधनार्थ तथा पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र मे विशेष हितकारीहै।

उक्त तृण पचमूल के साथ दूध पकाकर सेवन करने से मूत्रेन्द्रिय से होने वाली रक्त प्रवृत्ति दूर होती है। [भै. र]

[५] रक्तपित्त और शूल पर—कुशादि क्षीर योग--उक्त कुशादि तृणपचमूल और मुलैठी इनका समभाग मिश्रित चूर्ण २ तोला, गोदुग्ध १६ तोला तथा पानी ८ तोले एकत्र मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर छान कर सेवन करने से लाभ होता है। [वगसेन]

[६] गर्भिणी के शूल पर—इसकी जड के साथ कास, एरड और गोखरू की जड समभाग का चूर्ण २ तोले, दूध १६ तोले और जल ६४ तोले एकत्र मिला पकावें। दुग्ध शेष रहने पर छानकर इसमे मिश्री मिला पीने लाभ होता है। [वृ. मा.]

[७] कास [खासी] पर—उक्त तृणपंचमूल के साथ छोटी पीपल और मुनक्का मिला जौकुट कर चूर्ण २ तोले, दूध १६ तोले और पानी ६४ तोला मिला दुग्ध-पाक करें। इसमे शहद और खाड मिला सेवन करने से कास विशेषत पित्तज कास नष्ट होती है। [वृ मा]

[८] वातज्वर पर—इसकी जड़ के साथ खिरैटा मूल और गोखरू का क्वाथ सिद्धकर खाड और शहद मिला पिलावें।

[९] हिक्का पर—इसकी जड के चूर्ण मे थोडा घृत मिला आग पर डालने से जो धूम्र उठे उसे नासिका तथा मुख के द्वारा खीचने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-क्वाथ की ५-१० तोले, चूर्ण की ३-६ माशे

इसके विशिष्ट योग—कुशावलेह, कुशाद्य घृत या कुशाद्य तैल देखिये भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थों में।

कुसुम (Carthamus Tinctorius)

हरीतक्यादि वर्ग एव भृङ्गराज कुल [Compositae) की इस बूटी के कटीले तथा बिना काटे वाले ऐसे दो प्रकार के क्षुप होते है। इनके कटकयुक्त कुसुम के वीजो का तैल विशेष उपयोगी होता है। कटकरहित के पुष्पो का उपयोग उत्तम केसरिया कुसम्भा रग के लिये होता है। इसके क्षुप ३–४ फीट ऊचे, डडिया श्वेत वर्ण की पतली होती हैं।

पत्र–लम्बे, किनारे कटे हुये एव काटेदार होते हैं।

फल–शीतकाल मे डडी या शाखा के अग्रभाग पर डडियो मे पीताभ लाल रग के तथा छोटे छोटे काटो से युक्त कुछ सुगन्धित होते हैं। इन फूलो का वर्ण कु कुम (केशर) जैसा होने से इसे ग्राम्य केशर (Wild saffron) कहते हैं। किन्तु कटकरहित कुसुम पुष्पो का रग और भी उत्तम होता है। ये फूल स्वाद मे कुछ कडुवे होते हैं। इन फूलो के तन्तु केशर जैसे ही होने से प्राय केशर मे इनकी मिलावट की जाती है। इन पुष्पो के कारण ही इसके क्षुपों को कुसुम फूल कहते हैं। रग के लिये इन पुष्पो को छाया मे शुष्क कर कूट साफकर डिब्बो मे भर कर बाजार मे वेचते हैं। इनका रग अत्यन्त पक्का और सुन्दर केसरिया होता है। भारत मे पहले प्राय फूलो के लिये ही इसकी खूब खेती की जाती थी। विदेशी रगो के प्रचार से अब इसका उपयोग बहुत ही कम होने लगा है।

कटकयुक्त कुसुम की खेती खासकर वीजो के तैल के लिये रवी की फसल के साथ शरत्काल मे दक्षिण की ओर खूब होती है। उत्तर प्रदेश तथा पजाब की ओर भी कहीं कही यह वोया जाता है। इसके हरे हरे पौधो को काटकर कुट्टी कर भैंस, गाय आदि दूध देने वाले जानवरो को खिलाया जाता है। इससे उनमे उत्तम दूध की वृद्धि होती है।

इसमे जो डौंडी वडी सुपारी जैसी नोकदार तथा काटो से युक्त होती है, उन्ही मे उक्त केसरिया फूल तथा छोटे छोटे शङ्ख जैसे चिकने श्वेत बीज होते हैं। ये बीज स्वाद मे कुछ तिक्त तथा तैल से युक्त होते हैं। इन्हे भाषा में 'वर्रे' कहते हैं।

कुसुम्भ फूल
Carthamus tinctorius Linn

नाम—
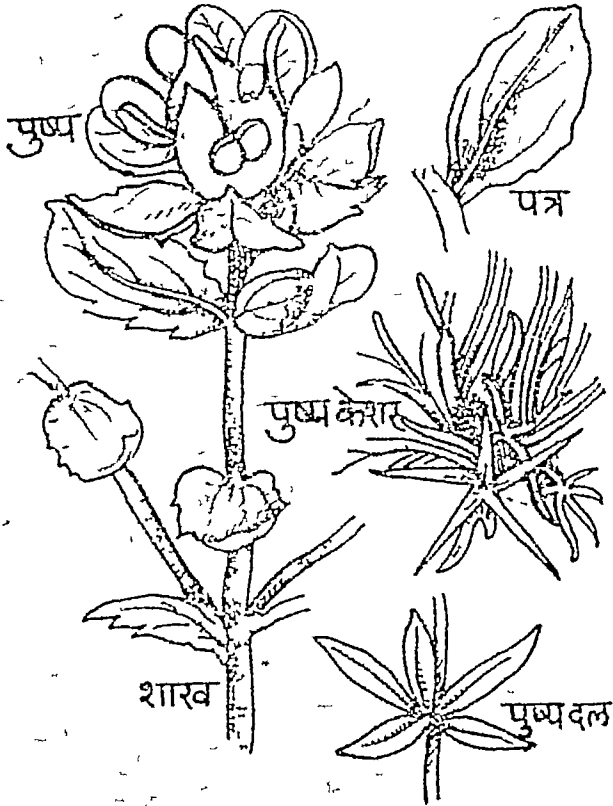
सं.—कुसुम्भ, वह्निशिखा, वस्त्ररंजक।
हि.—कुसुम, कसूम्बा, बर्रे। बं.—कुसुम फूल।
म.—करडई। गु.—कसुंबो।
अं.—वाईल्ड सेफ्रान (Wild saffron, Safflower)
ले.—कार्थेमस टिंक्टोरिया।

औपधिकर्म के लिये इसके फूल, पत्र और वीज तथा बीजो का तैल लिया जाता है। इसके ४० तोला बीजो मे से लगभग ७-८ तोला उत्तम तैल निकलता है। औषधि के लिये वीज उत्तम श्वेत, भारी एव मोटे लें।

रासायनिक सङ्घठन—

पुष्पों मे कार्थामिन (Carthamin) नामक जल मे न घुलने वाला एक लाल रग होता हैं, तथा घुलनशील अन्य पीतरग, सेल्युलोज (Cellulose), अलब्युमिन, मगनीज एवं लोह आदि पाये जाते है। वीजो मे एक स्थिर तैल २८ ५ से ३४.७ प्र० श० तक होता है।

नोट—इसका तैल खाने के काम में आता है। बाजारू मीठे तैल तथा घृत में इसकी मिलावट भी की जाती है। सुगन्धि के काम के लिये विदेशों में इसका निर्यात किया जाता है। तैल की खली टिकाऊ होती है, वर्षों नहीं विगडती तथा जानवरों के खाने के काम में ईख आदि की खेती में खाद के रूप मे काम आती है। इसका उपयोग साबुन एवं तैलीय रंगों के निर्माण में किया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

पुष्प—लघु, उष्ण, रुक्ष, कफनाशक, पित्तवर्धक, निद्राकारक, भेदक, केशरजक, स्वरशोधक, स्वेदल, आर्त्तवजनन, उर शोधक, मूत्रनिस्सारक एव कास,श्वास, जलोदर, पाण्डु,कामला, शोथ,शूल, मूत्रकृच्छ्र,कुष्ठ नाशक हैं।

कास श्वास मे शहद के साथ देने से कफ का उत्सर्ग होकर वक्षस्थल शुद्ध होता है।

पाडु, कामला पर—पुष्प चूर्ण ४ से ६ माशे तक जल के साथ देते हैं। अर्श पर—इसका चूर्ण दही के साथ सेवन कराते हैं। अश्मरी मे फलो को १ तोला लेकर पानी मे पीस छानकर मिश्री मिला दिन मे दो बार पीने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

पुष्पो का फाण्ट स्वेदल होने से प्रतिश्याय, मासपेशिय आमवात (Muscular Rheumatism) तथा कष्टार्त्तव मे उपयोगी है। तथा इसका हिम या शीतकषाय मृदुरेचक एव बलप्रद है। इसे मसूरिका,रोमान्तिका या विस्फोटक ज्वर विशेष (Scarlatina) मे देने से शीघ्र ही सरलता से अन्दर का विकार त्वचा पर निकल आता है।

मसूरिका (चेचक) पर—फूलो को मेहदी पत्र के साथ पीसकर तलुवो और हथेलियो पर लगाने से चेचक का जोर कम हो जाता है।

वात रोग पर—पुष्पो के स्वरस को तिल तैल मे पकाकर मर्दन करने से शोथयुक्त सधि पीडा, पक्षाघात आदि पर लाभ होता है।

भयानक व्रणो पर—उक्त पुष्प स्वरस तैल का फाया दिन मे २-३ बार रखने से शीघ्र लाभ होता है।

पत्ते—कोमल पत्तो का शाक मधुर, उष्ण, तिक्त, रुक्ष, अग्निदीपक, रुचिकारक, रेचक, क्षुधावर्धक, मूत्रल

नेत्रहितकर, मेद, कफनाशक, किन्तु पित्तजनन और गुदरोगजनक है।

पत्ते मे जामन या रेनेट (Rennet) जैसे दूध को जमा देने की शक्ति होती है।

कुसुम की जड मूत्रल होती है।

वीज–मधुर, कषाय, स्निग्ध, शीतल, बल्य, किञ्चित वीर्यवर्धक, रेचक, मूत्रल, तथा कफ, वात और रक्तपित्त नाशक हैं। अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र मे ये वीज द्राक्षारस के साथ लाभकारी है। उदरशूल एव आमवात मे वीजो की माड देते हैं। यह मृदु विरेचक है। प्रसूता को गर्भाशय मे पीडा हो, तो वीजो को पीस कर पुल्टिस वना पेडू पर बाँध जाता है।

उन्माद पर—वीज चूर्ण ३ तोला को कपडे की पोटली मे वाध कर २८ तोला दूध मे कुछ देर तक भिगो कर उसी दूध मे उसे खूब मसलें, जब मसलते मसलते पोटली का समस्त सूक्ष्म चूर्ण रसमय होकर दूध मे मिल जाय तव उस दूध मे कोई उत्तम खस आदि का शर्वत मिला पिलावें। इस प्रकार कुछ दिन पिलाने से लाभ होता है। इससे दिल की घवराहट मे तथा कुष्ठ, खुजली, और वात विकारो मे लाभ होता है।

केशवर्धनार्थ—इसके वीज और बबूल छाल समभाग जलाकर भस्म को चमेली के तैल मे मिला बालो की जडो पर मलते रहने से वाल नरम तथा लम्वे होते हैं।

यकृत शोथ पर—वीजो को सिरके के साथ पीस कर लेप करते हैं।

तैल—उष्ण, तीक्ष्ण, विपाक मे कटु, पचने मे कुछ भारी, वलवर्धक, दाहकर रक्तपित्तकारक, कामोद्दीपक, यकृत् और संधिशूल मे लाभकर, विरेचक, व्रण रोपक, त्रिदीपकर तथा कृमि वात, आध्मान, कडुनाशक एवं नेत्रो को अहितकर होता है।

प्रमेह मे—इसके तैल के सेवन करने से लाभ होता है। कडू या खाज, खुजली पर इसके ५-६ वार लगाने से ही बहुत लाभ होता है।

आमवात एव सधिशोथ पर—इसकी मालिश की जाती है, कुसुम के पचाङ्ग से सिद्ध तिल तैल का व्यवहार भी लाभकारी है।

व्रणो पर—तैल के लगाने से वे शीघ्र भर जाते हैं।

नोट–(१) मात्रा–पत्र स्वरस १-२ तोला, पुष्पों का क्वाथ ५-१० तोले, शुष्क पुष्प चूर्ण २-४ माशा, वीजों का कल्क या चूर्ण २-४ माशा।

अधिक मात्रा में यह आमाशय के रोगों मे अहितकर है। इसके निवारणार्थ सौंफ देते हैं। इसके फूल प्लीहा आमाशय तथा त्वचा के लिये अहितकर हैं। फूलों का दर्पनाशक शहद है।

(२) ध्यान रहे कुसुम या कोसुम यह नाम भाषा में कोशाम्र या श्लीकेरा ट्रायजुगा (Schleichera Trijuga) का भी है। यह अरिष्टादि कुल की वनौषधि प्रस्तुत प्रसंग के कुसुम से एकदम भिन्न है। आगे कोशाम्र (कोसुम) का प्रकरण देखिये।

कुस्लुन्ट [Flemingia Strobifera]

इस शिम्वी कुल (Leguminosae) की बूटी के पौधे सीधे, वहुशाखी, झाडीनुमा होते हैं। ये पौधे हिमालय के निम्नतटवर्त्ती प्रदेशो मे शिमला और कुमायू से लेकर आसाम, खासिया पहाड़ी तथा दार्जिलिङ्ग तक बहुत पाये जाते हैं। ये सिंध, राजपुताना, वगाल एव दक्षिण भारत मे भी कही कही होते हैं।

नाम—

हिन्दी—कुस्लुन्ट, कुसरन्ट, कुसरोल
मराठी—तुन्दार, कनफुटी।
ले०—फ्लेमिंगिया स्ट्राविलिफेरा।

गुण धर्म—

इसकी जड निद्राजनक है। यह मृगी (अपस्मार), योषापस्मार, निद्रानाश एव उन्माद रोग मे दी जाती है। चाहे कैसी भी शारीरिक पीडा हो, इसके प्रयोग से उत्तम निद्रा आती है।

कूठ (Sassurea Lappa)

हरीतक्यादि वर्ग एवं भृंगराज कुल (Compositae) की इस बूटी के रुएदार क्षुप जलीय स्थानो मे विशेषत काश्मीर की वापियो मे प्रचुरता से तथा पजाब मे चेनाव व झेलम नदियो के आस-पास पाये जाते है।

इसके क्षुप का काण्ड ६-७ फीट ऊचा, सीधा एव जड की ओर प्राय कनिष्ठिका ऊगली के प्रमाण मे मोटा होता है। पत्रदण्ड २-३ फीट लम्बा, तथा पत्र नीचे की ओर के लम्बे और चौडे छत्री के आकार के विषम दन्तुर, त्रिकोणाकार, बीच बीच मे कटे हुये छोटे बड़े विभाग युक्त, उर्ध्वपृष्ठ मे खुरदरे, निम्नपृष्ठ कुछ स्निग्ध, तीक्ष्ण नोकदार,७ इंच लम्बे और ८ इंच चौडे होते हैं। पुष्प—गेंदा पुष्प जैसे गोल, १-२ इंच व्यास के, वृन्तरहित, बेंगनी या गहरे नीले रग के, फल—चौकोने, छोटे, दातेदार, तथा चोटी पर धूसर रग के वालो के झुब्बको से युक्त होते हैं। बीज—छोटे चपटे, वक्र होते हैं।

मूल—बहुवर्षायु, स्थूल होती है, तथा इसी मूल से प्रतिवर्ष नवीन पौधे उगते हैं। मूल स्वाद मे अकरकरा जैसी चरपरी, तथा आकार मे हिरन के सीग जैसी होती है। औषधिकर्म मे इसी मूल का प्रयोग होता है, तथा उसे ही कूठ या कुष्ठ कहते है। शरदऋतु मे जब पौधे पुष्पित एव फलित होते हैं, तब इसके मूल का सग्रह किया जाता है। ये सग्रहीत मूल ३-६ इंच लम्बे, तथा ½ से १½ इंच मोटे, गाजर जैसे किन्तु एक ओर कुछ फटे हुये से, हलके, दृढ़, बाह्य पृष्ठ भाग धूसर वर्ण का एव लम्बे उभारो या रेखाओ से युक्त भीतर से श्वेत, तीक्ष्ण सुगन्धियुक्त होता है। कई स्थानो पर धूप की तरह यह जलाया जाता है। इसमे जो बादामी रग का कुछ गाढा सा तैल मिलता है, उसका उपयोग किया जाता है। पहले इसका निर्यात् काश्मीर से चीन देश को अत्यधिक परिमाण मे किया जाता था। वहा इसकी धूप जलाई जाती तथा अफीम के स्थान पर इसका व्यवहार धूम्रपान रूप मे होता था। ऊनी वस्त्रो की कृमियो से रक्षा इसके टुकड़ो को उनमें रखकर की जाती है।

नोट--(१) आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में मधुर या मीठे कूठ का उल्लेख नहीं है। मीठे और कडुवे कूठ के भेद तथा और भी भेद यूनानियों ने किये हैं। तथा मीठे कूठ के नाम पर पोहकर मूल (Oris Root) या ईरसामूल (Iris versicolor) या प्रस्तुत प्रसग की कटु कूठ की ही अपक्व मूल ली जाती है। वस्तुत कूठ कटु ही होता है मधुर नहीं।

(२) चरक और सुश्रुत के शुक्रशोधक, लेखनीय, आस्थापनोपग, तथा एलादिगणों में इसकी गणना की गई है। वैसे तो इसका उपयोग यहा वेदकाल से प्रचलित है। अथर्व वेद (कां० १६, सू ३६) में तथा का० ५ में पूरा अध्याय ही इसके (यक्ष्म तथा कुष्ठ नाशनः) गुणगान में समाप्त कर दिया है। उसमें इसे 'हिमवतस्परि' नाम से उल्लेख किया है, तथा इसे शिरोरोग, तृतीयकज्वर, कुष्ठ एव कृमि रोगों के लिये विशेष उपयोगी माना है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान इसे मलेरिया ज्वर, आन्त्रिक

कूठ

Saussurea lappa, Clarke
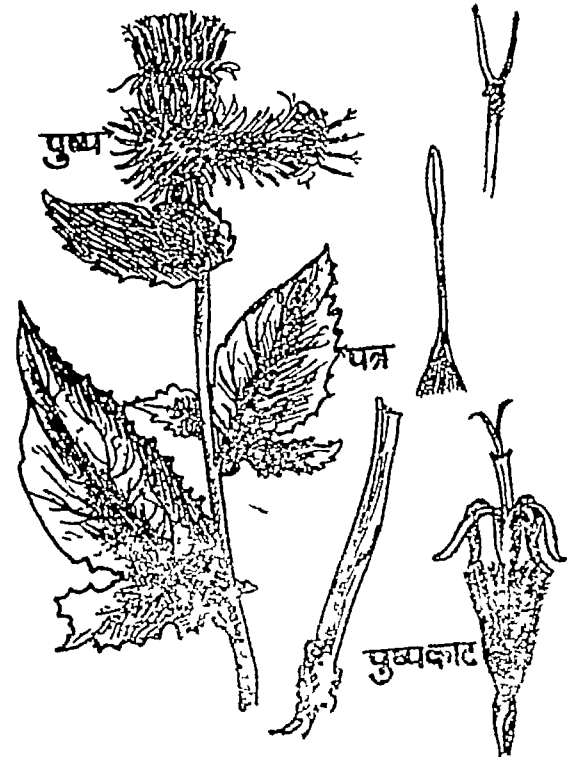
कृमि, महत्कुष्ठ एवं आमवातादि में अनुपयोगी बतलाते हैं।

चरक ने—ज्वर में (धूप रूप से) तथा कुष्ठ, अर्श, अपस्मार, उन्माद (कल्याण घृत मे) वातज शोथ (शैलेयादि तैल मे) उदर रोग (नारायण चूर्ण में) एवं पाण्डु आदि रोगों पर और वस्ति कार्य में भी इसकी योजना की है।

(३) औषधि कर्म के लिये कूठ ऐसा लेवें, जिसमे तोड़ने पर कण या रज जैसा कुछ भी न निकले, मृगशृंग जैसा दृढ़ और चिकना हो, जिस पर चित्तियां न पड़ी हों जो चबाते ही जीभ पर चुनचुनाहट पैदा करे, तथा कीट दुष्ट न हो।

(४) 'कोष्ट' नामक एक भिन्न बूटी है। उससे और कुष्ठ (कुठ) से कोई सम्बन्ध नहीं है। आगे कोष्ट का प्रकरण देखिये।

नाम—

संo—कुष्ठ, वाप्य, पारिभाव्य, उत्पल, काश्मीर
हिन्दी—कूठ, कूट, कुष्ट। बंगला—कुड़, पाचक।
मराठी—कोष्ठ, कोठ, उपलेट। गुo—कठ, उपलेट।
अंग्रेजी—कोस्टस रूट (Costus Root)
लेटिन—सासुरिया लैप्पा। एप्लोटेक्सिस आरिकुलेटा (Aplotexis Auriculata)

रासायनिक सङ्घठन—

मूल मे एक उडनशील सुगधित तैल १५ प्र श तथा सास्युरिन (Saussurine) नामक एक क्षार तत्व ० ०५ प्रतिशत, ग्लुकोसाइड, किंचित् तिक्त पदार्थ, कुछ टेनिन, इन्स्युलिन (Insulin) १८ प्र श, एक स्थिर तैल, पोटाशियम नाइट्रेट, शर्करा आदि पाये जाते हैं। इसके इन्स्युलिन को मधुमेह के रोगियो को इ जेक्शन दिये जाते हैं।

इसकी राख मे मेगनीज की मात्रा विशेष होती है। पत्तियों मे किंचित् उक्त क्षार तत्व होता है, किन्तु सुगधित तैल नही होता। केला फल के छिलके में विशेषत सेल्युलोज होता है। इसीलिये वह अपायकारक होने के कारण उतार कर फेंक दिया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, मधुर एव विपाक मे कटु और उष्ण वीर्य है।

यह कफ वातशामक, दीपन, पाचन, ग्राही, अनुलोमन, शुक्रशोधन, मूत्रल, स्वेदजनन, रक्तशोधक, शोथहर, उत्तेजक वृष्य, कफ निस्सारक, श्वासहर, आक्षेपशामक, वातहर, दुर्गन्धनाशक, जतुघ्न, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, व्रणशोधक रोपक ज्वरघ्न और रसायन है। यह गर्भाशयोत्तेजक, आर्त्तवजनन एव स्तन्यजनन भी है।

अग्निमाद्य, अजीर्ण, विष्टभ, उदररोग, शूल, अतिसार, शिर शूल, विसूचिका, सधिशोथ, वातरक्त, हृद्दौर्बल्य, कास, श्वास, हिक्का, रजोरोध, कष्टार्त्तव, मूत्रकृच्छ्र, विसर्पादि चर्म रोग, जीर्णव्रण, दतशूल, तथा अपस्मार, पार्श्वशूल आदि वातरोगनाशक है।

इसका धूम्रपान केन्द्रिय वातनाडी सस्थान मे अवसाद पैदा करता है, शायद इसीलिये अफीम के स्थान पर इसका धूम्रपान किया जाता है। इसका प्रवाही सत्व अधिक मात्रा (१०-२० सी. सी) मे देने से उदर मे कुछ प्रक्षोभ, व बेचैनी सी होती है। एव तन्द्रा उत्पन्न होती है।

ज्वर मे—पसीना लाने एव उत्तेजना के लिये इसे देते है। अन्य स्वेदजन्य द्रव्यो से प्राय थकावट आती है, किन्तु इससे नही आती। ज्वर मे इसके सेवन से पेशाब साफ आता है। मसूढो की शिथिलता से दात हिलते हों दुखते हो, तो इसके चूर्ण को मसूढो पर मलने से लाभ होता है।

व्रणो पर—इसके लेप करने से व्रण शुद्ध होकर शीघ्र भर जाते है। दुष्ट व्रणो पर इसकी धूनी भी दी जाती है। हिक्का मे इसके चूर्ण के साथ राल मिलाकर धूम्रपान या नस्य करते हैं।

वमन मे—इसका चूर्ण ४-४ रत्ती शहद या शक्कर से २-२ घन्टे से २-३ वार देने से लाभ होता है। तन्द्रा या आलस्य निवारणार्थ इसके छोटे छोटे टुकडे पान मे रखकर खिलाते है।

सिर दर्द पर—इसके साथ सोठ व एरण्डमूल को कांजी मे तक्र पीसकर लेप करते हैं। हाथ पैर या उदर के शोथ एव मोच आदि पर इसे गुलाबजल मे पीस कर लेप करें। इससे सिर के विकारो पर भी लाभ होता है।

शीतपित्त पर—इसके चूर्ण मे समभाग सेंधानमक मिला, घृत के साथ मिश्रण कर मर्दन और लेप करें।

अर्श की पीडा पर—इसके साथ हरड, नीमपत्र, व

मनसिल समभाग एकत्र कूटकर घृत और शहद मिला निर्धूम अंगारो पर डाल मस्सो पर धूनी दें। (हा स)

चूहे के विष पर—इसके साथ बच, मैनफल और कडवी तोरई का फल समभाग चूर्ण कर गोमूत्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है। (यो. र)

अतिसार पर—इसके साथ पाठा, वच, नागरमोथा, चित्रक और कुटकी समभाग चूर्ण। मात्रा—२-३ माशा उष्ण जल के साथ लेवें (वगसेन)। वात रोग पर—इसके साथ इन्द्रजौ, पाठा, चित्रक, अतीस और हल्दी इनके चूर्ण को उष्ण जल से सेवन कराते हैं। तृष्णा पर—इसके साथ कास की जड़ और मुलैठी तीनो का चूर्ण एकत्र खूब खरल कर, मात्रा—४ माशे तक जल के साथ सेवन करने से पुराना तृष्णा रोग शीघ्र दूर होता है। (वृ नि र) आमवात पर—इसका चूर्ण रेंडी तैल के साथ सेवन कराते तथा पीडित सन्धि स्थानो पर इसकी मालिश करते हैं। आर्त्तव प्रवर्त्तनार्थ—इसका क्वाथ पिलाते हैं। जरायुशूल निवारणार्थ—इसके क्वाथ मे रुग्णा को विठाते है। योनि शुद्धि के लिये इसके साथ पीपल, आक की कोंपल और सैंधानमक को वकरे के मूत्र मे पीसकर वत्ती बना योनि मे धारण करने से वह शुद्ध होती है। (च चि अ ३०) इस वत्ती मे घृत चुपड लेना ठीक होता है।

नपुसक—के लिये वाजीकर औषधियो मे इसकी योजना कर वाह्यान्तरिक रूप से उपयोग मे लाते हैं।

(१) श्वास, कास और हिक्का पर—यह उत्तेजक एव कफ निसारक होने से अधिक कफस्राव की अवस्था मे इसका विशेष उपयोग होता है। खासने की शक्ति बढती, कफ गिरने लगता एव कास, श्वास का वेग निर्बल हो जाता है। ज्वर हो तो वह भी दूर होता है। यह अपने सकोच विकास के गुणो से श्वास तथा कुकुर कास मे भी महान उपयोगी है।

श्वास के दौरे मे इसका चूर्ण १ माशा, शहद २ माशे व घृत ३-४ माशे एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) ३-४ वार देने से तीव्र वेग की शान्ति होती है। अथवा इसके १५ रत्ती चूर्ण को निम्न क्वाथ में डाल कर दिन मे २-३ वार पिलावें—

कुलथी, सोठ, छोटी कटेरी की जड़, अडूसा पत्र इन चारो को १-१ तोला जौकुट कर ६४ तोला जल मे पकावें। ४ तोला शेष रहने पर छानकर उक्त चूर्ण मिला पिलावें। इससे श्वास, कास व हिक्का मे भी लाभ होता है। अथवा—

इसका मद्यसारीय प्रवाही सत्व ½ से २ ड्राम की मात्रा में या इसका चूर्ण १ से ३ माशे की मात्रा मे शहद के साथ दिन मे ३-४ वार देवें। श्वासवेग की संभावना होते ही इसकी मात्रा देने से आवेग नही आता और न इससे एड्रेनलीन (Adrenaline) के इजेक्शन या दमे की सिगरेट के धूम्रपान आदि की भाति निद्रानाश आदि दुष्परिणाम ही होते हैं। क्योंकि यह उद्वेष्टन निरोधि प्रभाव के साथ ही साथ केन्द्रिय वातनाडी सस्थान पर अपना अवसादक प्रभाव डालता है। इसके प्रयोग की योजना लगातार १०-१५ दिन कर बीच मे कुछ दिन रुककर इसके असर की जाच करें। यदि पुन दौरा हो तो फिर प्रयोग प्रारम्भ कर दें। इससे किसी भी प्रकार का दुष्परिणाम नही होता और न प्रति बार मात्रा मे वृद्धि करनी पडती है। किन्तु जिन कारणो से श्वासोत्पत्ति हुई हो उन्हे दूर करने का अवश्य प्रयत्न करते रहना चाहिये। जब तक कारण दूर न होगे स्थायी लाभ न हो सकेगा। इसके प्रवाही सत्व को पोटाशियम आयोडाइड के साथ देने से बहुत लाभ होता है। इसका अल्प मात्रा मे धूम्रपान भी लाभदायक होता है। इसके थोडे से चूर्ण को चिलम में डाल धूम्रपान कराने से गाजा के समान कुछ मादकता तो आती है किन्तु बेचैनी या घबराहट हो जाती है।

(२) अग्निमांद्य, अजीर्ण, शूल, आध्मान, अतिसार, आदि पाचन के विकारो पर—इसके चूर्ण ८ भाग के साथ चित्रक ७ भाग, हरड़ ६ भाग, अजवायन ५ भाग, सोठ ४ भाग, पीपल ३ भाग, वच २ भाग और हीग १ भाग इन सबका चूर्ण एकत्र कर खरल कर १० से २० रत्ती तक की मात्रा मे मद्य या मृतसजीवनी सुरा या मस्तु या उष्ण जल के साथ सेवन करने से प्राय समस्त उदर रोगो का नाश होता है। यह अग्निमुख चूर्ण दीपक तथा प्लीहा, गुल्म, कास, श्वास, क्षय, अर्श और विषदोष नाशक है। —यो. र.

(३) विसूचिका पर—इसके चूर्ण ४ माशे मे छोटी इलायची का चूर्ण १ माशे मिला १० तोला उबलते हुये पानी मे डालकर ढक देवें। शीतल होने पर इस फाट को १-१ चम्मच १५-१५ मिनट पर पिलाते रहने से हैजे की वमन दूर होती है। उत्तेजना मिलती है तथा नाडी की गति सुधरती है। आगे देखो प्रयोग न १२ मे।

(४) बलवर्धनार्थ रसायन—इसका चूर्ण १। तोला तक की मात्रा में घृत और शहद के साथ प्रतिदिन (विशेषत शीतकाल मे) प्रात सेवन करते रहने से कफज एव वातज रोग नष्ट होकर शरीर तेजस्वी बनता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है।[१]

(५) अपस्मार पर—इसके चूर्ण के साथ वच का चूर्ण समभाग एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा १-३ माशा दिन मे २ बार शहद के साथ ४-६ मास तक लेते रहने से जीर्ण अपस्मार भी दूर हो जाता है। यदि १४ दिन शङ्ख के कीडे का नस्य देकर यह प्रयोग कराया जाय तो लाभ होने की आशा रहती है। —गावो मे औ. र

(६) मासिक धर्म की विकृति पर—इस के चूर्ण १॥ माशा के साथ कपूर ४ रत्ती खरल कर शहद ४ माशे मे मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे २-३ बार देने से मासिक धर्म विना कष्ट, पीडा के समय पर आने लगता है तथा नष्टार्त्तव एव पीडितार्तव रोग भी दूर होता है। यह प्रयोग मासिक धर्म आने के ७ दिन पहले शुरू कर देना चाहिये। तीव्र पीडा की शान्ति हो जाने पर यह प्रयोग प्रात साय ७ दिन तक लेवें। इस प्रकार ४-६ मास तक करना चाहिये। —गाव मे औ र

(७) तालु कटक—इसके साथ हरड और वच को माता के दूध मे घिसकर शहद मिलाकर देते रहने से शिशु के तालु प्रदेश पर गड्ढा पड जाना रोग दूर होता है। इस रोग मे शिशु सुखपूर्वक स्तनपान नही करता तथा वमन, तृषा, अतिसार, नेत्ररोग, मस्तिष्क सीधा न रहना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। —गांव औ. र.

(८) मुख दौर्गन्ध्य पर—इसके साथ श्वेत कमल, जावित्री, जायफल और दालचीनी समभाग जल मे या गोद के पानी मे घोटकर गोलिया बनालें। १-१ गोली मुह मे रखें। —भा भै. र

(९) क्षवथु (छीकें आना) पर—इसके साथ बेल की छाल, पीपल, सोठ और मुनक्का समभाग ४-४ तोला लेकर पानी के साथ महीन पीस कल्क करें। फिर इस कल्क को निम्न क्वाथ मे पकावें—

उक्त कल्क की चीजें समभाग मिलित ४ सेर लेकर ३२ सेर पानी पका ८ सेर शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ मे उक्त कल्क तथा २ सेर तैल या घृत मिला पुन पकावें। तैल या घृत मात्र के शेष रहने पर छानकर इसकी नस्य से इस रोग का नाश होता है। —शा स.

(१०) वातरक्त—इसे पानी मे पीस १६ तोले कल्क मे एरड तैल या तिल तैल ६४ तोला तथा काजी २५६ तोला मिला मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध कर उदर सेवन, मर्दन और वस्तिकार्य मे उपयोग करते रहने से यह रोग दूर होता है। सन्धिवात पर भी इसकी मालिश की जाती है। —गाव मे औ. र

(११) पूतिकर्ण पर—इसके साथ हीग, वच, देवदारु, सोठ व सैंधानमक समभाग मिलित १ पाव के कल्क मे १ सेर तैल और भेड का मूत्र ४ सेर मिला यथाविधि तैल सिद्ध करें। इसे कान में डालते रहने से दुर्गन्धित स्राव का होना दूर होता है। —भै. र.

(१२) कुष्ठ, छाजन, अरुंषिका, व्रणादि चर्म रोगो पर—इसका प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसके साथ कनेर, भागरा, आक की जड (या दूध), गोमूत्र, स्नुही थूहर (सेहुड) का दूध तथा सेंधा नमक, इसका कल्क चार गुना पानी व १ भाग तैल मिला तैल सिद्ध करें। इसमे बछनाग का चूर्ण मिला मालिश करने से कुष्ठ का नाश होता है। (वा भ)

मण्डल कुष्ठ पर—बालको को होने वाला मण्डलकुष्ठ (Lupus Vulgaris) जिसमे मृदु गाठें उत्पन्न होती हैं, ऐसे नये रोग पर इसके साथ धनिया को पीसकर दिन मे २-३ बार लेप करते रहने से लाभ होता है। इस लेप

---

[१] य कुष्ठ चूर्णं रजनीविरामे
मध्वाज्यसंमिश्रितमत्ति नित्यम्।
स मत्तमातङ्गबलः सुगंधिर्वामी
चिरायुश्च भवेन्मनुष्यः॥
—रा० मा०

तथा औषधि के रूप मे काम मे भी लाते हैं ।

यह मूत्रवर्धक होने से इसके सेवन से पेशाव साफ आता है । श्री शकरदा जी शास्त्री पदे ने इसे मधुर, उष्ण और गुरु लिखा है ।

नाभिपाक रोग मे इसे पीसकर लगाते हैं । अर्श के मस्से फूलकर कष्ट दे तो इसकी धूनी दें । (अगद तन्त्र)

केला (Musa Sapientum)

यह हरिद्रा कुल (Scitaminaceae) का शाखा रहित, पत्रयुक्त, स्तम्भाकार सर्व सुप्रसिद्ध फलवर्ग का पेड है । इसकी जड मे से ही अकुर निकल कर पेड ४ से १२ या २० फीट तक ऊचे हो जाते हैं ।

पत्र—४-८ फीट लम्वे, १-२ फीट चौडे, ऊपरी पृष्ठ भाग चमकीला हरा तथा निम्न पृष्ठ भाग फीके हरे रग का होता है ।

पुष्प मजरी—शीतकाल मे गुम्वुदाकार, रक्ताभ, पत्रो के मध्य भाग से निकलती है । पुष्प मे कई आवर्त्त होते हैं, आवर्त्तो के नीचे नन्ही नन्ही फलिया निकल आती हैं जो वढ़कर केले (फल) का स्वरूप धारण कर लेती हैं । एक गुम्वद या गहर मे सैंकड़ो फल लगते हैं । वर्पाकाल मे अधिक फलता है ।

फलो के काफी वडे हो जाने पर गहरें काट ला जाती हैं तथा उन्हें दवाकर रख देते है । जब उसके छिलको पर कुछ कलौंछ सी आती है तव समझ लिया जाता है कि केले पक गये है । एक-एक पेड मे उक्त गहरें (फलो के गुच्छे) ६ से १५ तक लगती हैं तथा एक-एक गहर ५० से ७० पौंड वजन की होती है । गहरो के तोड़ लेने पर पेड प्राय नष्ट हो जाता है ।

सर्व साधारण केले के फलो मे वीज नही होता है । जगली या अन्य केले जो वागो मे नही वोये जाते उनके फलो मे वीज होते है ।[1] जङ्गली केलो का वर्णन आगे देखिये ।

केले के वृक्ष प्राय समस्त भारत मे तथा विशेपत वगाल, दक्षिण भारत, समुद्रतटवर्त्ती मलयद्वीप पुज, वर्मा आदि मे प्रचुरता से होते है ।

नाम—

सं०—कदली (जल से पुष्ट होने वाला), वारणा (हस्तिजंघा सदृश होने से), मोचा (कांड साररहित होने

---

[1] केले की कई जातिया हैं—

'माणिक्यमर्त्यामृत चम्पकाद्या
भेदा कदल्या वहवऽपिसन्ति ॥'—भा० प्र०

अर्थात—माणिक्य, मर्त्य, अमृत, चम्पकादि केले की अनेक जातिया है । कदली, काष्ठ कदली, गिरि कदली और सुवर्ण मोचा नाम की ४ जातियों का उल्लेख अन्य निघण्टुओं में पाया जाता है । आजकल तो विभिन्न स्थानों मे अनेक प्रकार के केले पाये जाते हैं । आसाम में आठिया, भीमकला आदि १५ प्रकार का केला प्रचलित है।

वगाल में—रामरंभा, मालभोग तथा उक्त भाव प्रकाश के मर्त्य, चम्पकादि कई जाति के केले होते हैं। इसके अतिरिक्त इसी वग प्रदेश में वीजू केले होते हैं। इसमें वीज होते हुये भी मिठास अच्छा होता है । जंगली बीजदार केलों में मिठास नहीं होती ।

उक्त मर्त्य या मर्त्यवान जाति के केले का गूदा मक्खन जैसा और सुस्वादु होता है । चम्पक केला कुछ अम्ल रस युक्त, सुगधित एव ऊपर कुछ पीतवर्ण होता है । वम्वई की ओर वसरई तावड़ी, सोनकेली, कोकनी आदि ६ या १० केले होते हैं । तावड़ी केला लाल होता है । कोकनी केला बड़ा सुस्वादु होता है, इसके गूदे को सुखाकर भी वेचते हैं । ब्रह्मप्रदेश में स्वर्ण वर्ण के अनेक प्रकार के केले होते हैं । यवद्वीप में विचित्र प्रकार के केले होते हैं । एक 'पिस्यांटण्डक' नामक केला २ फुट लम्बा होता है, एक केला ऐसा होता है जिसके एक ही फूल होता है, वह भी वाहर नहीं, कांड के भीतर ही होता है और पकता है । पूरा पकने जाने पर काड फट जाता है, यह इतना वड़ा होता है कि एक ही फल से चार मनुष्यों का पेट भर जाता है । पश्चिमी भारतीय द्वीप में एक प्रकार का क्षुद्राकार वेंगनी रंग का केला होता है । चीन देश में एक खर्वाकार (वौना) केला होता है । अमेरिका मे 'ओटंको' केला अत्युत्तम होता है, डाल का पका होने पर इसकी सुगन्ध सबको उन्मत्त सा वना देती है । इनके अतिरिक्त अन्यान्य प्रदेशों मे कई प्रकार के केले होते हैं ।

एव शीतवीर्य है। वातपित्तशामक, ग्राही, रोचन, विष्टभी, कफकारक, वेदनास्थापन, मेध्य, कफनिस्सारक, वृष्य, वल्य, वृहण, विपघ्न, योनिस्रावरोधक एव तृष्णा, दाह, रक्तपित्त, शुष्ककास, मूत्रकृच्छ्र, गलक्षत, अश्मरी, योनि दोष, वस्ति के उत्तेजनाजन्य रोगादि नाशक है।

परिपक्व केला—

गहर को काटकर पकाये हुए केलो की अपेक्षा वृक्ष पर ही पके हुये केले विशेष गुणकारी एव पौष्टिक होते हैं। वैसे तो कोई भी उत्तम पका हुआ केला ऊपर के गुणो से युक्त, शुक्र वृद्धिकर्त्ता, क्लम (थकान) हारक, कान्ति-दायक, सतर्पण, प्रदीप्त जठराग्नि मे सुखकारक, किन्तु मन्दाग्नि मे दुर्जर, अहितकारी एव कफरोगकारक होता है।

मध्यम या अध पका केला कुछ कसैला, रूक्ष एव रक्तपित्तादि रोग और प्रमेह का नाशक तथा सग्राहिक, रक्तातिसार व ज्वर शान्तिकारक, मन्दाग्निकारक है।

तृष्णा, रक्तपित्त, दाह और जीर्ण कास मे पके केले का शर्वत या पानक दिया जाता है।

शर्वत विधि—

(१) फल के वारीक टुकडे कर समभाग चीनी (शक्कर) मिला कलईदार पात्र में रख मुख अच्छी तरह वन्द कर दें जिसमें पानी अन्दर न जा सके। इस पात्र को किसी ऐसे शीतल जल से पूर्ण पात्र मे रक्खें, जिससे यह पात्र ठीक निमज्जित हो जाय। फिर चूल्हे पर चढाकर मन्दाग्नि से यहा तक पकावे कि जल खौलने लगे। फिर शीघ्र ही उतार कर ठडा होने पर खोल कर पात्र स्थित शर्वत का प्रयोग करें। मात्रा—चाय के चम्मच से १-१ चम्मच घन्टे घन्टे पर देवें।

—डीमक फार्माकोग्राफिया इण्डिका

यदि केले के रस का प्रयोग करना हो तो निम्न विधि से रस निकालें—

पके हुये जो गलने पर हो, ऐसे केले लेकर छिलका उतार कर हाथो से मलकर नरम हलुआ जैसा कर लें और उसमें ½ भाग चावल की भुसी मिलाकर २-३ दिन गर्म जगह मे रख दें। चौडे पात्र मे टेढा करके रख दें। रस अलग हो जायगा। या वारीक कपडे मे बाधकर उलटा लटका दे तथा धीरे धीरे दबाते जाय।

—श्री प ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य, देहरादून

शोथ पर—इसके गूदे को गेहू के आटे मे मिला थोडा पानी डालकर गू ध कर गरम कर वाधते (दिन मे २-३ वार) रहने से, कामला पर—इसे शहद मे अच्छी तरह मिला सेवन करने से, अग्निदग्ध पर—जलन की शान्ति के लिये इसकी पुल्टिस वना वाधने से; भस्मक रोग पर—इसमे घृत और दूध मिला खिलाने से, सग्रहणी पर—इसके साथ इमली का गूदा और नमक मिला सेवन से, प्रमेह पर—इसे भोजनोपरान्त शहद के साथ खाने से (इससे कोष्ठवद्धता भी दूर होती है), नकसीर पर—एक पके केले के गूदे के साथ पीपल वृक्षो के पके फलो का चूर्ण अर्ध भाग तथा १ तोला मिश्री मिलाकर खाने से, तथा रक्तपित्त पर—अध पके केले को भूभल मे भूनकर शहद के साथ प्रात कुछ दिन सेवन कराने से लाभ होता है। यह प्रयोग क्षतक्षय पर भी उत्तम है।

(२) वहुमूत्र पर—एक केले के साथ विदारीकद और शतावरी चूर्ण १।-१। माशा मिलाकर दूध के साथ दे। इससे स्त्रियो के सोमरोग मे भी लाभ होता है।

(३) वालको के मिट्टी खाने पर—इसे शहद के साथ खिलाते हैं, मिट्टी वाहर निकल जाती है तथा कुछ दिन इसी प्रकार खिलाने से उसकी मिट्टी खाने की आदत छूट जाती है।

(४) मधुमेह पर—जबकि पानी की तृष्णा अधिक हो, वार वार पेशाब आता हो तो केले मे उत्तम नाग भस्म ½ रत्ती मिला खिलावें। ७ दिन मे लाभ होता है।

(५) पौष्टिकता के लिये—इसके गूदे को मथकर लेही जैसा वना उसमे वडी इलायची चूर्ण, २ वर्क चादी के, १ वर्क सुवर्ण का, थोडा दालचीनी का चूर्ण और शहद मिला सेवन करने से वीर्य दोप दूर होता है।

(६) श्वास, कास पर—वगैर छिलका निकाले १ केले मे अन्दर के भाग में कुछ गड्ढा सा वना उसमे कालीमिर्च चूर्ण रात्रि के समय भरकर प्रात उसे मदाग्नि पर भूनकर खिलाते है। अथवा—

श्वास के दौरे के समय जव रोगी वेचैन हो रहा हो

एक केला दीपक की ज्योति पर गरम कर छीलकर उसमे थोडी कालीमिर्च चूर्ण बुरक कर गर्म गर्म खाने से वेग रुक जाता है ।

(७) एक भाग इसके गूदे के साथ अर्ध भाग कालीमिर्च मिला खाने से शीघ्र ही कुछ दिनो मे पुराना श्लेष्म विकार एव श्वास कास मे लाभ होता है। (वसवराजीय) शुष्क कास और पित्त की खासी हो तो १ केला लेकर छिलका हटाकर उसमे ५ कालीमिर्च अथवा १ पीपल खोसकर रात्रि के समय ओस मे रख प्रात नित्य कर्म कर प्रथम कालीमिर्च या पीपर खाकर ऊपर से केला खाने से लाभ होता है ।

(८) अधपकी केले की फली को गोमूत्र मे पकाकर या अगारो या भाड मे भूनकर सेवन करने से भी श्वास रोग नष्ट होता है। —भा० भै० र०

(९) प्रवाहिका (मरोडयुक्त पेचिश) पर—इसके २॥ तोले गूदे के साथ पकी इमली का गूदा १। तोला तथा नमक ६ माशे तक एकत्र कर अच्छी तरह मिलाकर सेवन करें। दिन मे २-३ बार देते रहने से उग्र एव चिरकारी प्रवाहिका दूर होती है। छोटे बालको को भी निरापद इसे दे सकते है, उन्हे कुछ कम मात्रा मे देवे। साधारण दशा मे इसकी केवल १ मात्रा से ही लाभ हो जाता है। ३-४ मास मे पूर्ण लाभ होता है। रोगी को विश्राम एव हलका पथ्य देना चाहिये ।

—आर० ए० पारकर एम० बी०

साधारण पेचिश पर—गूदे मे गुड या मिश्री अथवा नमक मिलाकर खिलाते हैं।

(१०) पाडु, कामला पर—एक केले पर भीगा हुआ चूना लगाकर रात्रि के समय बाहर ओस में रख प्रात छीलकर खिलाते हैं। इस प्रकार २१ दिन मे २१ केले खा लेने से पाडु रोग दूर होता है। कामला तो ६ दिन मे ही शान्त हो जाती है।

(११) सोमरोग व स्वप्नदोष पर—१ या २ केलो का गूदा कासे या चादी की तश्तरी मे रखकर अच्छी तरह फेटकर उसकी नसें निकाल दें। फिर उसमे हरे आवलो का रस १ तोला, शहद १ तोला व मिश्री २ तोला मिला चटावें। दिन मे १ या २ बार देते रहने से शीघ्र लाभ होता है। किन्तु रुग्णा को सयम से रहना चाहिये, उत्तेजक पदार्थो से बचना चाहिये। अथवा—

एक केले के साथ मुक्ताशुक्ति भस्म डेढ रत्ती प्रात. साय सेवन कराते रहने से भी अच्छा लाभ होता है। अथवा विदारीकन्द व शतावरी चूर्ण मिलाकर भी देते है।

स्वप्नदोष पर—१ केला, वग भस्म १ रत्ती तथा रौप्य (चादी) भस्म आधी रती के साथ सेवन करावे ।

(१२) प्रदर पर—१-१ केला प्रात साय ६-६ माशे उत्तम घृत के साथ खाने से ८ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। यदि किसी को इससे सर्दी या जुकाम होने का भय हो तो इसमे ४-५ बूद शहद मिला लिया करें। यह प्रयोग पैत्तिक विकार, प्रमेह और अन्य वीर्यविकारों का भी नाशक है।

अथवा—इसके १ पाव गूदे मे समभाग गोघृत और मिश्री मिलाकर खूब मथकर उसमे दालचीनी, लोध १-१ तोला, धाय के फूल, बडी इलायची ६ माशे, सोठ ८ माशे तथा माजूफल ३ माशा सबका महीन चूर्ण मिला कर रक्खें। मात्रा—२-२ तोला। प्रात साय सेवन से रक्त और श्वेत दोनो प्रकार के प्रदर दूर होते हैं। (विशिष्ट योगो मे कदली पाक देखें)

(१३) रक्तार्श और वातार्श पर—एक केले के गूदे के अन्दर ३-४ खटमलो को रख रविवार या मगलवार के दिन चुपचाप रोगी को खिला देने से एक ही बार मे लाभ हो जाता है। किन्तु उस रोगी को फिर आयु भर केला नही खाना चाहिये। अन्यथा पुन रोग हो जाता है। —रसायन के फलाक से

(१४) शोथ और अग्निदग्ध पर—इसके गूदे को गेहू के आटे मे मिला थोडा पानी मिला गूथकर आग पर गरम कर बाधने से शोथ विलीन हो जाता है।

आग से जले हुये स्थान पर इसके गूदे को फेंटकर कपडे पर बिछाकर चिपका देने से तुरन्त शान्ति होती है। गलते हुये व्रणो पर भी इसी प्रकार प्रयोग करे।

नोट—(१) केलों को शीघ्र पकाने के लिये पेड़ का वह दीर्घ डाडा जिसमें केलों की गहरें लगी हुई होती हैं, उस डाडे को काट कर केवल ४-५ अगुल रस कुरेदकर छिद्र कर इलायची चूर्ण भर देने से उस डाडे के सब केले शीघ्र ही पक उठते हैं।

(२) पूर्ण पक्व केला ही सेवन करें, सड़े या कच्चे केले खाने से अतिसार, प्रवाहिका आदि रोग हो जाते हैं। केला भोजन के पूर्व खाना ठीक नहीं। भोजन के साथ या पश्चात् खाना ठीक होता है।

(३) डाक्टर लोग प्राय: प्रत्येक को केला खाने का परामर्श दिया करते हैं। इससे लाभ के स्थान पर हानियां होती है। मन्दाग्नि एवं वातविकृति (गैस ट्रबल्स) से ग्रस्त होना पड़ता है। अत इसके खाने के पूर्व पाचन-शक्ति का परीक्षण कर लेना अत्यावश्यक है। क्योंकि इसमें देर से पचने एवं कब्ज करने का अवगुण है।

(४) केले का छिलका हटाने के बाद शीघ्र ही उसका उपयोग करें अन्यथा वह विकृत हो जाता है। इसे धीरे धीरे चबाते हुये खाना चाहिये, जिससे मुख की लार उसमें अच्छी तरह मिल जावे। ऐसे ही निगल जाने से अहितकारी होता है। इसके खाने पर यदि अजीर्ण हो तो इलायची खानी चाहिये।

(५) केले की रोटिया—इसके गूदे के साथ आटे को सानकर (पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं) छोटी छोटी रोटिया बिस्कुट जैसी बना आग पर सेक लेते हैं। ये मीठी रोटिया स्वादिष्ट एव बच्चों को बहुत प्रिय हैं।

(६) अति मात्रा में केला खाने से आमाशय निर्बल होकर आध्मान, कुलंज, अतिसार आदि विकार होते हैं। विशेषत शीतल प्रकृति वालो के अङ्गों एवं अण्डकोष में पानी उतर आता है, खासकर उस समय जब इसके ऊपर पानी पिया जाय। वैसे भी केला खाकर पानी कदापि नहीं पीना चाहिये।

इसके हानिनिवारक—इलायची, नमक, शहद, सोंठ का मुरब्बा, कालीमिर्च एव उष्णजल हैं।

(७) आयुर्वेद में सुश्रुत ने इसके साथ दूध या ताल-फल या दही या तक्र को सयोग विरोधी कहा है। इसमें तालफल, दही और तक्र तो केले के साथ संयोग विरोध सर्वमान्य है किंतु दूध नहीं। वाग्भट ने इसका संशोधन कर दिया है।

'दध्ना, तक्रेण तालफलेन वा।' —अ. सं.

इतना कहकर दूध को इसके साथ सयोग विरोधी नहीं माना है।

कच्चा केला—

स्वादु, शीतल, भारी, स्निग्ध, विष्टम्भी, कफकारक (अन्य मत से कफ नाशक) तथा रक्तपित्त, तृषा, दाह, क्षत क्षय एवं वातनाशक है।

इसका शाक (नीचे प्रयोग न० २ देखें) अतिसार, ग्रहणी, मधुमेह आदि मे पथ्य रूप है। धूप मे सुखाए हुए कच्चे फलो का आटा अग्निमाद्य, स्थौल्य एव अम्ल-पित्तादि विकारो मे तथा जीर्ण रोगो से कमजोर व्यक्ति व छोटे बच्चो को हितकारी है। यह आटा उत्तम पौष्टिक एव उदरामय पीड़ित व्यक्तियो के लिये प्रशस्त पथ्य है।

सुजाक पर—इस आटे मे शक्कर मिला दूध की लस्सी के साथ सेवन कराते हैं। कच्चे केले को आग मे भूनकर आटे के साथ गूंथ नमक मिला नमकीन रोटिया बनावें।

(१५) प्रमेह पर—उक्त आटा या चूर्ण ६ माशे, प्रतिदिन दूध के साथ देते है। इससे पुष्टि भी होती है। शिशु की वृद्धि के लिये यह हितकर है।

(१६) अतिसार, सग्रहणी आदि पर—कच्चे केलो को उबाल कर छील ले। फिर २-४ लवगो की छौंक देकर इन्हे दही, धनिया, हल्दी, सेंधानमक और कालीमिर्च मिला पकाकर खावें। यह शाक बहुत स्वा-दिष्ट होता है। यदि कोई रोग न हो तो इसमें थोड़ी अमचूर लालमिरच मिला देने से और भी बढिया स्वाद आता है।

असाध्य शोथ सहित सग्रहणी, अतिसार, उदररोगादि पर कच्चे केले २० नग उबाल कर छील व मसलकर तवे पर छोटी छोटी रोटिया बना मक्खनदार दही आध सेर के साथ जब भूख लगे तब खिलावें। केला व दही की मात्रा अवस्थानुसार न्यूनाधिक की जा सकती है। इस पथ्याहार के अतिरिक्त रोगी को नमकीन या मधु कोई पदार्थ नही देना चाहिये। जब कोई भी दवा काम नही देती तब केवल इसी फलाहार से रोगी सुधर जाता है।

(१७) क्षय रोग पर—इन्हे दाल मे डालकर उबाल लें, जब उनका छिलका कुछ काला सा हो जाय तब भरता बना उसमे दालचीनी, लौग आदि मसाला मिला उचित मात्रा मे पथ्य रूप मे देते हैं। किन्तु अग्निमाद्य की दशा मे सभाल कर प्रयोग करें।

(१८) रक्त-प्रदर पर—इसके चूर्ण मे थोडा गुड मिलाकर कफ पित्त जन्य रक्तप्रदर पर देवें (चक्रदत्त)। अथवा इसके चूर्ण के साथ समभाग कच्चे गूलर का चूर्ण मिला प्रात साय १-१ तोला सेवन कराने से

दोनो प्रकार के (रक्त और श्वेत) प्रदर दूर होने हैं।

(१९) वन्ध्यत्व निवारणार्थ—केले के पेड से जो कोमल बांझ फलिया प्राय नीचे गिर जाती हैं। उन्हे सग्रह कर ५-७ इन फलियो को ५-७ शिवलिंगी बीजो के साथ पीस कर रजोधर्म के तीसरे दिन खिलाने से १ या २ मास में बांझपन निकल जाता है। प्रत्येक मास मे ५-६ दिन यह प्रयोग करें। (धन्वन्तरि)

कदली पुष्प—

स्निग्ध, मधुर, गुरु,ग्राही, शीतल (किंचित उष्ण वीर्य) तथा रक्तपित्त, क्षय, कृमि, पित्त कफनाशक एव वातशामक है। पुष्पो का शाक—अतिसार, ग्रहणी, रक्तपित्त, प्रदर और क्षय मे पथ्य है।

(२०) बालको के दतोद्भव विकारो पर—पुष्प के अन्दर से जो नन्ही नन्ही केलो की फलिया निकलती हैं उन्हे पीसकर रस निचोड़ लेवें। उस रस मे जीरा चूर्ण, मिश्री मिला बालक की शक्ति के अनुसार ३ से ६ माशे ७ दिन तक पिलावे, तथा मुख मे हड्डियो पर केवल उक्त रस को ही धीरे धीरे लगाते रहे।

(२१) सुजाक पर—पुष्पो का चूर्ण १ तोला के समभाग कलमी सोरा तथा दो सेर पानी एकत्र मिला सबको एक कोरे मटके मे शाम को भर दें। दूसरे दिन प्रात उसे छानकर उसमे कच्चा गोदुग्ध २ सेर मिला रोगी को १-१ गिलास दिन भर पिलावें। अन्य भोजन कुछ न दें। दूसरे दिन केवल दूध पिलावें। (धन्वन्तरि)

(२२) श्वास पर—इसके पुष्प के साथ कुन्द और सिरस के पुष्प, तथा थोडी छोटी पीपल एकत्र मिला चावलो के पानी के साथ पीस छान पिलावे। (भा प्र)

(२३) रक्तप्रदर एव मूत्र मार्ग से रक्तस्राव होने पर पुष्पो के रस को दही के साथ मिलाकर पिलावे।

पुष्पो का यूष अतिसार के बाद होने वाली अशक्ति एव पूर्ण स्वास्थ्य के लिये सेवन कराते हैं।

कदली कन्द या जड़—

रूक्ष, तीक्ष्ण, कसैला, गुरु, शीत, बल्य, मधुर वातकारी, अग्निमांद्यकर, कृमिघ्न, कर्ण शूल, अम्लपित्त, दाह, रक्तदोष, सोमरोग, रजोदोष, कुष्ठ आदि नाशक है।

(२४) मूत्रकृच्छ्र मे बस्ति प्रदेश पर इसका लेप करते हैं। तथा इसके स्वरस को गोमूत्र मे मिला सेवन करें।

(२५) कृमि रोग पर—शुष्क जड का चूर्ण २ माशे उष्ण जल के साथ पिलाते है। अथवा कन्द को घृत और गुड के साथ पकाकर खिलाते हैं। इस प्रयोग से उदर, कुक्षि एव दात की तीव्र पीडा भी नष्ट होती है। (ग नि)

(२६) वमन और कास पर—इसका रस शहद के साथ देने से वमन लाभ में होता है।

शुष्क कास पर—इसका चूर्ण १-२ माशे तक शहद से चटाते हैं।

(२७) रक्तप्रदर या योनि मार्ग से रक्तस्राव पर—कोमल जडो का रस पिलाते हैं। इससे फुफ्फुस से होने वाला रक्तस्राव भी बन्द होता है।

(२८) व्रध्न (बद की गाठो) पर—जड को नर मूत्र के साथ पीस कर कुछ गरम कर पुल्टिस बाधें।

सोमरोग, प्रमेह आदि पर 'कदल्यादि घृत देखें।

कदली कांड एव स्वरस—

केले के काण्ड के भीतर का श्वेत कोमल दण्डवत् भाग, जिसे नाल या थोड कहते हैं वह शीतल, रुचिकारक, अग्निवर्धक तथा रक्तपित्त, योनिदोष एव रक्तप्रदर नाशक है। इसका शाक भी बनाया जाता है।

केले के उक्त नाल या गाभक को कूटपीसकर कपडे मे रखकर निचोड लेते है, तथा इसी प्रकार काण्ड का भी जो स्वरस निकाला जाता है उसे ही केले का पानी, अर्क कहते हैं। इसकी साधारण मात्रा २ से ४ तोले तक है।

यह काडस्वरस—मूत्रल, सग्राही एव उक्त गुणो से युक्त मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, तृषा, अतिसार, अस्थिस्राव, रक्तपित्त, विस्फोट, दाह, सोमरोग, शोष, रक्तविकार, रुधिरस्राव, गर्भस्राव, कर्णरोग, उन्माद, अपस्मार, विसूचिका और सर्पविष, अफीम, सखिया, आदि विषों का निवारक है।

नकसीर पर—इस स्वरस को सुघाते या नस्य देते हैं। इस स्वरस से मलहम तैयार कर व्रणो पर लगाने से वे शीघ्र भर कर सूख जाते हैं। उदर मे विष के चले जाने पर इसे अधिक मात्रा मे पिलाते हैं।

सखिया के विष पर—इस रस को कई बार २० तोले तक पिलाते हैं।

कर्ण रोग मे—कर्णशूल के प्रतिकारार्थ स्वरस को

सुखोष्ण कर कान मे डालें । (सुश्रुत)

अतिमात्रा मे ली हुई अफीम के दुष्परिणामो के लिए वच्चो को तथा वडो को भी यह स्वरस उचित मात्रा मे वार वार पिलाया जाता है। २॥ तोला रस मे सम प्रमाण घृत मिला पिलाने से उत्तम रेचन होता है।

(२९) क्षय रोग पर—कई डाक्टरो का अनुभव है कि प्रतिदिन केले के काण्ड को मगवाकर ताजा रस निकाल कर दो-दो घण्टे पर २॥–२॥ तोला रस समभाग दूध मिला पिलाने मे तीन दिन मे, भयकर क्षयग्रस्त रोगी जो खासी से त्रस्त, रक्तमिश्रित कफ स्राव, रात्रि प्रस्वेद, तीव्र ज्वर, पतले दस्त, भोजन पर अरुचि, शरीर अस्थिपजर हो गया था, चलने फिरने लगा, खासी व कफ मे कमी हो गयी भूख खुल गयी, तथा दो मास तक यही प्रयोग बरावर चालू रखने से रोगी को सपूर्ण आराम हो गया। यह स्वरस प्रतिदिन ताजा निकाल कर पिलावे। यह २४ घटो मे विगड जाता है। पित्त प्रकृति वाले रोगी को यह प्रयोग अति प्रशस्त है। दिन मे १०–१२ वार २॥–२॥ तोले स्वरस (दूध न मिलाते हुये) सोने का पानी चढाये हुए प्याले मे (या सुवर्ण के प्याले मे) भर कर पिलाते रहने से भी शीघ्र लाभ होता है। (डा जे मेटेलवो और डा० विजयशङ्कर लज्जाशङ्कर)

यह स्वरस मूत्रल होने से, शरीर मे सचित रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं। तथा क्षय रोग की तरह शोथ, जलोदर, श्वास, काम, विप विकार आदि पर उत्तम कार्य करता है। श्वास की दशा मे इस प्रयोग के सेवन काल मे केवल दूध और भात का पथ्य करें।

(३०) गर्भस्राव पर—काण्ड के भीतर के श्वेत गाभे का स्वरस ४ या ५ तोले में उतम शहद २ तोला मिला (१ मात्रा है।) दिन मे २-३ वार पिलावें। तथा उक्त स्वरस मे १ तोला फिटकरी महीन पीसकर घोल दें। इसे शीशी या मिट्टी के स्वच्छ पात्र में रखकर इस घोल मे साफ रुई डुवोकर, जैसे स्त्रिया महावारी के समय कपडा लेती हैं उसी भाति गर्भ मे रख लें। इसे भी २-३ वार वदल दिया करें। दूध मुलायम भात का पथ्य करें। खटाई, मिर्च आदि गर्म पदार्थ कदापि न सेवन करें। शीघ्र लाभ होता है। यदि उक्त प्रयोग के साथ ही ६ माशे कुम्हार के यहा की चिकनी मिट्टी व एक पाव वकरी का दूध लेकर उसमे शहद मीठा होने तक डालकर पिलाया जाय तो चलित गर्भ स्थिर हो जाता है। जिस स्त्री को गर्भ स्थिति होते ही उसके गिर जाने की व्याधि लग गयी हो उसे हर मास मे केले के स्वरस मे शहद मिला पिलाते रहने से गर्भस्राव कदापि नही होता। वच्चा समय पर होता है। (धन्वन्तरि वर्ष २४ पृष्ठ ४८८)

(३१) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और सूजाक पर—स्वरस ५ से १० तोला तक मिट्टी के कोरे चिकने कूजे मे डालकर रातभर वाहर ओस मे लाकर प्रात प्रथम १ मासा कलमी सोरा मुख मे डालकर ऊपर से इसे पिलाते हैं। ४-६ दिन लेने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है।

मूत्राघात पर—स्वरस ३-४ तोला मे पतला किया हुआ घृत १-२ तोला मिला पिलाने से यह घृत तुरत ही मूत्रद्वार से निकल कर मूत्र मार्ग को साफ कर देता है तथा मूत्र की रुकावट दूर होकर लाभ होता है। पुरुपो की अपेक्षा स्त्रियो मे तो यह क्रिया अति शीघ्र होती है। सुजाक पर नीचे स्वरस-क्षार का प्रयोग देखें।

(३२) प्रमेह पर--काण्ड के भीतर के श्वेत भाग के टुकडे टुकडे कर छाया शुष्क कर महीन चूर्ण वनालें। मात्रा ६ मासे से १ तोला तक मिश्री मिला खाने और ऊपर से जल पीने से लाभ होता है।

कुकुर कास पर—उक्त चूर्ण १ से ६ रत्ती तक वालको को शहद के साथ प्रात साय चटायें।

काण्ड एवं स्वरस का क्षार—

केले के काण्डो की राख ६ गुने पानी मे घोलकर २४ घण्टे तैसे ही रक्खें। फिर उसे खूब मलते हुए गाढे कपडे मे छानकर थिराने के लिये कुछ घण्टे पडा रहने दें। उपर का स्वच्छ जल लेकर उसे कलईदार पात्र मे आग पर धीरे धीरे औटावें। सब पानी के जल जाने पर तल भाग मे चूने जैसा जो क्षार प्राप्त हो उसे शीशी मे सुरक्षित रक्खें। उसमे पोटाश साल्ट होने से यह अम्लपित्त उदरशूल आदि पर उत्तम है।

सिध्म, श्वेत कुष्ठ आदि पर इस क्षार के साथ हल्दी पीस कर लेप करें। (वगसेन)

क्षार के साथ समभाग २-२ रत्ती और तिलनाल क्षार तालमखाना क्षार मिला, तिल तैल के साथ पीने से कफवातजन्य प्लीहा विकार नष्ट होता है। (भै र)

(३३) स्वरस-क्षार (सुजाक पर)—स्वरस २ सेर तक और कलमी सोरा १० तोला दोनो को एक मटकी मे डाल मुख वन्द कर मदाग्नि पर पकावें। द्रवाश के जल जाने पर आग वन्द करदें। किंतु मटकी को उसी प्रकार रातभर चूल्हे पर रहने दे। प्रात अन्दर की छाल निकाल कर शीशी मे भर रक्खें। प्रात साय ४-४ रत्ती की मात्रा मे दूध की लस्सी के साथ सेवन से सुजाक पर उत्तम लाभ होता है।

(३४) कास, श्वास, प्रदर, रक्तविकार आदि पर—स्वरस को कलईदार पात्र मे मद आग पर चौथाई औटाकर नीचे उतार उसमे यदि १ सेर शेष स्वरस हो तो २० तोला शहद मिला कर सुरक्षित रक्खें। इसे १ तोला की मात्रा में प्रात साय देने से उक्त विकारो के अतिरिक्त प्रमेह, रक्तपित्त, दाह, लू लगना, रक्तातिसार, तृषा रोग, अश्मरी आदि मे जल के साथ देते है। कास श्वास मे इसे केवल चटाते है, जल नही मिलाते।

कदली पत्र—दाहशामक, व्रणो के लिये हितकर तथा प्रदर, हिक्का, कास आदि नाशक है।

(३५) हिक्का और श्वास पर—पत्तो की राख १ माशा की मात्रा मे १ तोला शहद के साथ दिन मे ३-४ वार चटाते हैं।

(३६) कुक्कुर कास—पत्तो की राख और कद्दू के वीजो की गिरी ६-६ माशे, जगली अनार के फलो का छिलका (नसपाल) और छोटी इलायची ३-३ माशे, तवाखीर ४ माशे तथा मुलैठी ५ माशे इन सवका महीन चूर्ण कर इसमे १० तोला शहद मिला अच्छी तरह अवलेह सा वना लें। इसे वार वार चटाते रहने से वालको की काली की खासी मे उत्तम लाभ होता है। (यूनानी)

(३७) प्रदर पर—कोमल पत्तो को महीन पीसकर दूध मे पका खीर वना २-३ दिन खाने से लाभ होता है।

नोट—(१) शोथ एवं दाहयुक्त व्रणो पर या आग आदि से जलने या अन्य कारणों से शरीर पर उठे हुए छालों पर इसकी कोमल पत्ती पर तिल तैल या कोई भी मीठा तैल चुपड कर मुलायम पट्टी से वांध दे। यह क्रिया दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार कई बार करनी चाहिये। छाले हो तो उन्हें हटाकर पत्तों पर तैल चुपडकर चिपका देना चाहिये। इसी प्रकार कई वार चिपकाने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) दाह शमनार्थ पत्रों पर रोगी को सुलाते है। नेत्र रोगों पर ये पत्तिया नेत्रो पर ढाकने के काम आती हैं।

(३) भोजन के पदार्थों को पत्रो पर रख कर भोजन करना लाभप्रद है। इसमें जो पोटाश का अंश होता है वह आहार को शीघ्र पचाता है, तथा दूषित कीटाणुओं को भोज्य पदार्थों मे प्रविष्ट नहीं होने देता।

(४) जीर्णातिजीर्ण नाडीव्रण (नासूर) पर इन पत्रों को वाधते रहने से असाध्य नासूर भी शीघ्र ठीक हो जाता है। यह नासूर के लिए बहुत ही सुलभ एवं प्रशंसनीय प्रयोग है।

(५) श्वेत कुष्ठ पर—इसके पीले (पत्ते पेट पर ही जब कुछ दिनो में पीले पड़ जाते हैं) पत्रों को सरसों तैल में जलाकर उसमे मुरदाशख का चूर्ण मिलाकर लगाते हैं।

(६) इसके पत्ते या पुष्प या फल के गूदे का लेप अग्निदग्ध पर करते हैं। इसके पत्तों का रस अफीम के विष को दूर करता है। पत्रो मे कुछ अंश पोटाश या लवणीय गुण होने से इसे सिरका या नीबू के रस के साथ पीसकर पतला लेप खुजली, गंज या कच्छ पर लाभकारी होता है।

(७) पत्तो की या पत्तों की राख की खेती या वागवानी के लिये उत्तम खाद होती है।

कदली वीज के गुण धर्म और प्रयोग आगे जगली केले मे प्रकरण मे देखिए।

विशिष्ट योग—

(१) कदल्यादि घृत—केले के पुष्प १० सेर जौकुट कर उसमे केले की जड का रस ५२ सेर तक मिला पकावें। चतुर्थांश (१२ सेर) अवशिष्ट रहने पर छान कर उसमे गोघृत ४ सेर तक तथा लाल चदन, सरल काष्ठ, जटामासी, केले की जड, छोटी इलायची, लौंग, त्रिफला, कैथ का गूदा, श्वेत कमल की जड, नीलोफर की जड, सिंघाडे की जड तथा न्यग्रोधादि गण (वड, गूलर, पीपल आदि) मिलित ६४ तोले का कल्क कर मिलावें। यथाविधि घृत सिद्ध करलें।

मात्रा—६ माशे से २ तोला तक। मधुमेह, मूत्रमेह, प्रमेह, मूत्राघात, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोगो का यह नाशक है। —भै र

(२) कदली तैल—कदली फलार्क—केला पका हुआ छील कर रेक्टीफाईड स्प्रिट मे डाल दें, बोतल को कार्क से बन्द कर दे। आठ दिन बाद देखोगे कि केला ज्यो का त्यो रखा हुआ है तथा स्प्रिट के ऊपर तैल तैर रहा है। इस तैल को यत्नपूर्वक निकाल शीशी मे रखो। यह सजीवनी कदली गंध बन गया। चाय, ठडाई, दूध, शर्बत आदि मे इसकी १ बूद डाल दें। एकदम पके केले की गंध और स्वाद मिलेगा। गुण भी उसी प्रकार देखेंगे। चेचक और विस्फोट निकलने की आशका होने पर देने से बडा लाभ होता है। सहारक ज्वर इसके प्रभाव से शान्त हो जाता है। मात्रा—१-२ बूद, अनुपान—जल या मिश्री मे अथवा दूध या मधु से दें।

—धन्वन्तरि वर्ष ११, पृष्ठ ३३०

(३) कदली पाक (प्रदरनाशक)—अधपके केले को भूभल मे भूनकर छील लें। फिर अच्छी तरह मसलकर यदि गूदा १ सेर हो तो सतावरी, असगंध, दारुहल्दी, धाय के फूल, जटामासी और ईसबगोल प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोले मिलाकर अच्छी तरह घृत मे भूनकर १॥ सेर शक्कर मे आध सेर आवले का रस मिला पाक की चाशनी कर उसीमे उक्त मिश्री को मिला पाक जमा दे। जमाते समय थोडा भीमसेनी कपूर बुरक कर चादी के वर्क जमा दें। —स्वकृत

मात्रा—१ तोला से ५ तोला तक प्रात साय सेवन करने से दोनो प्रकार का प्रदर रोग शीघ्र दूर होकर स्त्री का शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। सोमरोग भी इससे दूर होता है। पुरुषो के लिये वीर्यवर्धक एवं स्तम्भक है। तैल, लालमिर्च, गुड, दही, खटाई, मूली, गरममसाला और मैथुन से परहेज रखना आवश्यक है।

दूसरा 'रम्भा पाक (सोम, प्रदरादिनाशक)। देखिये हमारे वृहत्पाक संग्रह ग्रन्थ मे।[१]

मात्रा—स्वरस १-२ तोला, क्षार १ से ८ रत्ती तक, पानक ½ से १ तोला तक।

---

१ यह ग्रन्थ धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ (अलीगढ) से प्रकाशित है।

केला जंगली (Musa Paradisiaca)

यह भी उक्त देशी या बागी केले की ही जाति के हैं। बगाल के चटगाव प्रदेश के जगलो मे इसके वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं। वहा के जगली हाथी इसके वृक्षो को ही खाकर जीवन यापन करते है।

सस्कृत मे इसे काष्ठ कदली, विषघ्नी, वनकदली, अश्म कदली।

हिन्दी में—जंगली केला, कठकेला।

बगला मे कुर्ताकला। मराठी मे काष्ठ केल।

अग्रेजी—वाईल्ड प्लयाटेन (Wild Plantian)

मुसा सुपर्बा (Musa Superba) तथा पहाडी प्रदेशों मे होने वाले केलो को मुसा ओरनेटा (Musa Orneta) कहते हैं। लेटिन मे मुसा पाराडिसियाका, कोई कोई मुसा सेपियेन्टम (M Sapientum) भी इसे कहते है।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके फल कुछ विशेष कसैले, किन्तु मधुर और गुरु (पचने मे भारी) होते हैं। शेष गुणधर्म बागी केले के जैसे ही है।

नोट—इन केलों में विशेषता बीजो की है। जङ्गलो में बीजों से ही इसके वृक्ष स्वयमेव वर्षाकाल में पैदा हो जाते हैं। इनके स्तम्भों में रस की प्रचुरता नहीं होती, प्राय काष्ठमय होते हैं। इनके फल पकने पर प्रायः खाने के काम में नहीं आते। कच्ची दशा मे इनकी शाक बनाई जाती है। इनके कन्दों को शुष्ककर पीसकर जंगली लोग रोटी बनाकर खाते हैं।

बीज काले रग के कुछ लम्बे, बडे होते हैं। ताजे बीजों पर पतली मलाई जैसा कुछ कोमल, चिपचिपा गूदा सा होता है। पक्षीगण इसके गूदे को खाने के लिये बड़ी दूर दूर आकर पक्व फलों को विदीर्ण कर बीजो को इतस्तत ले जाते हैं। जहां ये बीज गिरते हैं वहीं इसके वृक्ष उत्पन्न हो जाते है। बीजों में कुछ कसैलापन होता है, कडुवाहट नहीं होती।

केला जंगली
MUSA PARADISIACA LINN.

इन बीजों ने चेचक या चेचक जैसी अन्य विस्फोटक व्याधियों को शीघ्र ही समूल नष्ट करने में बड़ी सुप्रसिद्धि प्राप्त की है। ये बीज दो-चार वर्ष तक बिगड़ते नहीं, जैसे के तैसे रहते हैं। ये अत्यन्त ही शीतवीर्य हैं। २-३ दिन के सेवन से ही तत्काल जुकाम हो जाता है, नाक बहने लगती है। इसीलिये चेचक का आक्रमण हुआ हो तो एक से अधिक बार देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत ही आवश्यकता हुई तो २-३ दिन के पश्चात् एकाध बार और दे सकते हैं। इससे अधिक देने पर सारे जुकाम के रोगी परेशान हो जाता है। शीतपित्त भी इन बीजों के प्रयोग से अच्छी जाती है।

(१) चेचक के निरोधार्थ चेचक होने से पूर्व—एक से पाच वर्ष के बालक को बीज का चूर्ण १। रत्ती या १ नग बीज, ५ से ८ वर्ष तक के लिये २ नग बीज, ८ से १२ या १६ वर्ष के किशोर को ३ या ४ नग बीज या २॥ रत्ती चूर्ण, १६ वर्ष से ऊपर वय वालो को ८ अदद बीजो को पीसकर दूध के या शहद के साथ केवल एक बार ही देना चाहिये।

८ बीजो को लगभग ५ रत्ती चूर्ण दूध या शहद के साथ एक बार भी खा लिया जाय तो फिर वर्ष भर चेचक निकलने का भय नही रहता। बीजो की गिरी ६ माशे, हल्दी ३ माशे, कपूर १ माशे और नीम की कोपल १ तोले इनको केले के जल से पीसकर चने जैसी गोलिया बना रक्खे। प्रात सायं अवस्थानुसार १ या २ गोली मिश्री मिलाकर खिलावें। १ वर्ष के बच्चे को १ गोली, २ वर्ष के बच्चे को २ गोली इसी प्रकार सेवन कराने से माता की बीमारी नही होगी।

—श्री राजवैद्य प परमेश्वर मिश्र, बाबूगज, लखनऊ।

चेचक ग्रस्त रोगी को शहद के साथ दिन मे २ बार अवस्थानुसार ३-५ दिन से देवे। पथ्य मे हलका भोजन तथा गरम वस्तुओ से परहेज रक्खें।

ध्यान रहे इसकी मात्रा की व्यवस्था उक्त प्रकार से ही रखनी चाहिये। यदि शरीर अधिक मेदस्वी या स्थूल हो तो ८ वर्ष के ऊपर के वय वालो को एकाध बीज अधिक दे सकते हैं। अन्यथा ८ बीजो से अधिक तो किसी भी उम्र के लिये न दें।

ये बीज 'जीवदया मडली' झवेरी बाजार, बम्बई न २ के पते से प्रचारार्थ प्राप्त होते हैं।

रोगी भयकर चेचक से ग्रस्त हो, असाध्य मान लिया गया हो तो भी इन बीजो के प्रयोग से साध्य हो जाता है। चेचक के फोडे आखो के अन्दर हो जाने से रोगी उस दशा मे सर्वथा अन्धा सा हो गया हो तो तत्काल इस प्रयोग से पुन. आखे ठीक हो जाती हैं, ऐसा खास अनुभव है। (इस विषयक अनुभव सचित्र आयुर्वेद से आयुर्वेद विज्ञान मे प्रकाशित हुये है। उसीका सक्षिप्त साराश यहा दिया गया है)

(२) श्वान दश पर—बीजों का चूर्ण ५ रत्ती तक देते है तथा दश स्थान पर इसका लेप करते हैं।

(३) हिक्का पर—इसके पत्तो की काली राख १ माशे, शहद १ तोले मे मिला दिन में ३-४ बार चटाते हैं। कुक्कुर कास मे यह भस्म विशेष लाभदायक है।

केवड़ा [Pandanus Tectorius]

पुष्प वर्ग एव (स्वकुल) केतक कुल ([Pandanaceae) के इस वनस्पति के खजूर वृक्ष जैसे क्षुप ७-८हाथ ऊ चे होते है । काड टेढा, मध्य भाग मे कोमल, अनेक शाखा प्रशाखायुक्त एव निस्सार होता है । इसके काड से बरगद की जटाएं जैसी अनेक प्ररोहे निकल कर जमीन मे घुस जाती हैं । पत्र—काडलग्न, वृन्तरहित, सघन, २-५ फीट लम्बे, सकडे, लम्बी नोक वाले, नीचे की ओर झुके हुए कण्टकित किनारो से युक्त होते हैं । पुष्प—काण्ड के मध्य भाग से मकई के भुट्टे जैसे ६ से १० इ च के लगभग लम्बे निकलते है । इसके ऊपर कोमल शुभ्र पत्रो की तहे एक के ऊपर एक जमी हुई होती हैं, तथा इन पुष्प-पत्रो के अन्दर मध्य भाग मे असली सुगधित पुष्प होता है । पत्रो के पुट मे रहने के कारण इसे दलपुष्पिका' कहते हैं । भीतर पराग सा लगा रहता है, इसीको 'गगन-धूल' कहते हैं । श्वेत या सित (नर) तथा पीत (स्त्री) पुष्पो के भेद से केवडा दो प्रकार का होता है ।

श्वेत [नर] पुष्प कोष, प्राय शाखाओ के अग्रभाग पर नलिकाकार, पराग या पुष्प रज से पूर्ण मजरीयुक्त २ से ४ इ च लम्बा, १ से १॥ इ च चौडा होता है । ऐसे श्वेत पुष्प वाले केवडे के क्षुप प्राय श्वेताभ काले मोटे गन्ने की तरह मालूम होते हैं । पीत [स्त्री] पुष्प-कोष एकाकी, २ इ च व्यास का, नलिकाग्रमुख पीत वर्ण युक्त, पु केसर या पुष्प रज से रहित होता है, उक्त नरपुष्प कोष से छोटा, किंतु उससे सुगन्धित होता है, इसे 'सुवर्ण-केतकी' कहते है । फल—इस सुवर्ण केतकी के स्त्री पुष्प पास पास आकर उनमे से एक बडा, मोटा सुदृढ लम्ब-गोल फल छोटा नारियल जैसा ६ से १० इ च लम्बा, कुछ चौडा, पीला या लाल वर्ण का वन जाता है ।

वर्षाऋतु के श्रावण मास मे केवडा खूब हरा भरा और खूब फूलता है । केवडे के लम्बे लम्बे क्षुप बागो मे जलाशय के समीप भारतवर्ष मे प्राय सर्वत्र होते हैं । रत्नागिरी, कर्नाटक, अलिबाग, राजापुर आदि भारत के दक्षिण-प्रदेशो मे बडे बडे दीर्घ क्षेत्र व्यापी इसके क्षुपो का ज गल देखने मे आता है । यह जगल अधिक घना तथा विषैले सर्पों से भरा होता है । भारत के अतिरिक्त ब्रह्मा, सीलोन, अण्डमान, ईरान, अरब आदि उष्ण प्रदेशो मे भी यह होता है ।

नाम—

स०—केतकी, सूचीपुष्प (सुई जैसा नुकीला पुष्प वाला); क्रकचच्छद (आरे जैसा दन्तुर एवं कण्टकित पत्र वाला धूलिपुष्पिका, जम्बुक (जामुन जैसा फल वाला), सुवर्ण केतकी ।

हि०—केवडा, गगनधूल, पीली केतकी ।

म०—पाढरा केवड़ा, केतकी ।

गु०—केवड़ो, बं०—केया, सोण केया ।

अं०—फ्रैग्रैन्ट स्क्रू पाइन (Fragrant Screw Pine), काल डेरा बुश (Caldera Bush), अम्ब्रेला ट्री (Umbrella Tree)

केवडा

Pandanus fascicularis Lam.

पत्र

मूल

पुष्प केशर
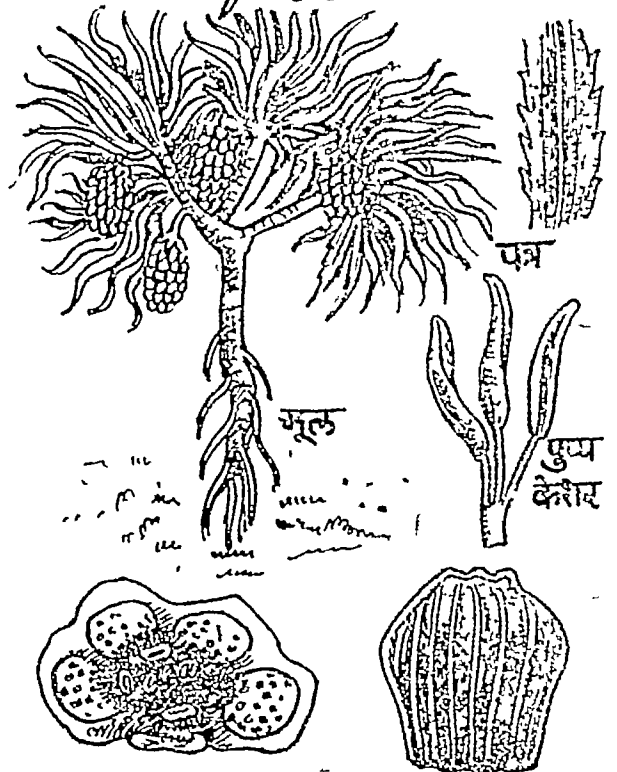
लेटिन—पेंडेनस टेक्टोरियस, पें फेसिकुटेरिस (P Fascicutaris) पें. ओडोरेटिसिमस (P Odoratismus)

प्रयोज्य अग—इसके पुष्प, मूल और पत्ते ।

गुण धर्म और प्रयोग—

श्वेत या सित केवडा लघु–स्निग्ध, तिक्त, कुछ कटु, विपाक मे कटु एव अनुष्ण वीर्य [आयुर्वेदानुसार अति-शीत वीर्य] है । सुवर्ण केतकी-तिक्त, उष्ण, लघु, कटु, त्रिदोष [विशेषत कफ-पित्त] विष दोप नाशक, कातिकर, नेत्रो को हितकर, दुर्गन्ध नाशक है। दोनों प्रकार के केवड़ा दीपन पाचन, अनुलोमन [कुछ अ श मे रेचन], वृष्य, रक्त प्रसादन, मस्तिष्क एव ज्ञानेन्द्रियो को बलप्रदायक, वृष्य, वेदनास्थापन, सौमनस्यजनन, आक्षेपहर, केश्य, व्रणरोपन, स्वेदल, कटुपौष्टिक, कामशक्तिवर्धक एव ज्वर [विशेपत विस्फोटयुक्त ज्वर] कुष्ठ, प्रमेह अजीर्ण, विबन्ध, रक्तविकार आदि नाशक तथा हृदय की अतिधडकन और गर्भस्राव आदि निवारक हैं।

पुष्प—तिक्त, उष्ण, स्वेदल, दुर्बलता, मूर्च्छा, आक्षेप एव सिर के रोगो का नाशक है। इसमे एक सुगधित उडनशील तैल होता है । पुष्प सू घने से श्रम, क्लम दूर होकर मन प्रसन्न होता है । इसके पराग का नस्य देने से अपस्मार का वेग शात होता है । कर्णशूल या पूतिकर्ण मे इसका तैल १–१ बूंद दिन मे ३-४ बार डालने से लाभ होता है ।

[१] मासतान [1] [डिपथेरिया] पर–इस व्याधि मे रोगी को यदि शीघ्र ही वमन करा दिया जाय तो शीघ्र ही लाभ होने की सभावना है । इसके पुष्पो की पराग चिलम मे भर कर या बीडी बनाकर धूम्रपान करने से शीघ्र ही वमन होकर रोग घटने लगता है । उक्त पराग के साथ इन्द्रायण फल की छाल और सर्प की कैंचली मिलाकर धूम्रपान करने से बहुत लालास्राव होकर यह रोग एव कठगत प्रदाहादि अन्याय रोग भी दूर होते हैं। कफ प्रकोप पर यह प्रयोग उत्तम है ।

[२] अर्श पर—केवडे के भुट्टे के ऊपर के पत्ते दूर कर देने पर, जो परागयुक्त लम्बी डडी सी रहती है उसे छाया शुष्क कर महीन चूर्ण करले । पान के बीडे मे यह चूर्ण १ माशा की मात्रा मे भरकर [बीडे मे चूना कत्था आदि सब मसाला डालें, केवल लौंग नही] रोगी को खिलावे । इस प्रकार दिन मे ३ बार खिलाने से अर्श विशेषत रक्तार्श मे शीघ्र ही [लगभग ६-७ दिन मे] लाभ होता है । रक्तस्राव बन्द होकर मस्से भी सिकुड जाते हैं । रक्तप्रदर या रक्त की वमन पर भी इसी प्रयोग से लाभ होता है । अनुपान मे उक्त बीडे के स्थान मे दूध मक्खन या मिश्री प्रकृति के अनुसार दें ।

मात्रा—१ माशा के स्थान मे २ या ३ माशा भी दे सकते हैं। किंतु गरम पदार्थों से परहेज रखें ।

[३] अपस्मार (मृगी) पर—पुष्प के भुट्टो पर जो पराग निकलता है उसे तथा पुष्प के कोमल पत्तो को समभाग एकत्र महीन चूर्ण कर दिन मे ३-४ बार नस्य देते हैं । तथा रोग का दौरा होते ही ताजे पुष्पो का स्वरस १-१ बून्द दोनो नथुनो मे छोडते हैं । रोगी को शुद्ध रेंडी तैल प्रति दो दिन के बाद गो दुग्ध मे मिला पिलाते हैं ।

[४] चेचक, मसूरिका, खसरा आदि विस्फोटक ज्वरो पर तथा मूत्रकृच्छ्र पर—पुष्पो के अर्क या शर्बत के सेवन से लाभ होता है ।

अर्क–इसके १ भाग पुष्पो के साथ २० भाग पानी मिला भवके द्वारा अर्क खीचते हैं । इसके पिलाने से [४-६ तोला दिन मे २-३ बार] अथवा निम्न शर्बत [२-४ तोला थोडे जल के साथ] पिलाने से विस्फोटक के दाने नही निकलते, उपद्रवो की शाति होती है।

मूत्रकृच्छ्र पर–उक्त अर्क के साथ केवडे के प्ररोहो [जटा] के अग्रभाग का कल्क मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से, या केवल उक्त अर्क के ही सेवन से लाभ होता है । सुजाक की जीर्णावस्था मे भी यह हित-कारी है ।

[५] उष्णता या पित्तजन्य शिर शूल पर–उक्त अर्क

---

[1] यह एक भयकर कण्ठगत मुखरोग है । प्राय छोटे बच्चों को अधिक होता है, गले के अन्दर के भाग में सूजन होती है, जिससे कुछ भी खाया पीया नहीं जाता, श्वासो-च्छ्वास में भी अड़चन पडती है । दक्षिण प्रदेशों में इसे घटसर्प रोग कहते है। इसकी यदि शीघ्र ही योग्य चिकित्सा न की जाय तो रोगी का जीवन संकट में पड़ जाता है ।

के साथ घिसा हुआ मलयागिरी असली श्वेत चन्दन मिला कर काच की शीशी मे भर शीशी के मुख पर पतला कपडा वाध वार वार सु घाने से शीघ्र ही सिर दर्द दूर हो जाता है ।

[६] शर्वत-इसके साथ आध पाव पुष्पो को आध सेर पानी मे रात भर भिगोकर प्रात स्वच्छ कपडे से छान-कर पकावें। आधा शेष रहने पर उसमे १॥ पाव शक्कर या मिश्री मिला पकावें । दो तार की चाशनी हो जाने पर उतार कर ठडा होने पर बोतल मे भर रक्खे । प्रति-दिन १ से ४ तोला तक विस्फोटक ज्वरो पर सेवन करावें । यह दिल और दिमाग मे तरावट पहुँचाता है ।

[७] पुष्पो से सुवासित कत्था—इसके पुष्पो या भुट्टो के भीतर महीन पीसा हुआ कत्था भर कर बाध कर रक्खें । १५ दिन वाद खोल कर कत्थे को खरलकर गोलिया बना लें । ये गोलिया मुख की दुर्गन्ध, मुख पाक, कठ की जलन आदि को दूर करती है ।

नोट-(१) वस्त्रों में कीड़े न लगने पावें, एतदर्थ उनमें इसके पुष्पों को रखते हैं। पुष्पों का इत्र भी निकाला जाता है, जो बड़ा सुवासिक होता है।

(२) इसके अर्क या शर्वत में इसके इत्र की १-२ बूंदें मिला, तथा उसमें थोड़ा शीत जल मिश्रण कर पिलाने से दिल की घवराहट, श्रम, क्लम, सिरपीड़ा या पित्तप्रकोप की शांति होती है।

(३) पुष्पों में तिलों को बसा कर तैल निकालते हैं, जो कटिशूल, आमवात, शिर.शूल मे लगाते तथा कर्णशूल में कान के भीतर डालते हैं। व्रणों पर इसे लगाने से वे शीघ्र सूख जाते हैं। यह तैल उत्त जक, स्वेदल एवं आक्षेप-हर होता है।

मूल—मूत्रसगहणीय, स्त भन, गर्भस्थापक और बाजी-करण है। प्रमेह मे इसका प्रयोग होता है। गर्भपात रोकने तथा वध्यत्व निवारणार्थ इसका क्षीरपाक वनाकर सेवन कराते हैं । इसे दूध के साथ पीस कर सेवन से गर्भस्राव की शका दूर होती है ।

[८] रक्त प्रदर तथा गर्भस्राव या गर्भपात निवार-णार्थ—मूल को ६ माशे से १ तोला तक की मात्रा मे गाय के दूध मे या जल मे पीस छानकर मिश्री मिला प्रात साय पिलाने से रक्तप्रदर दूर होता है ।

इसी प्रकार यही प्रयोग गर्भ रहने के दूसरे मास से चौथे मास तक सेवन कराने से गर्भ स्राव या गर्भपात नही हो पाता ।

[९] मूल-क्षार [वात गुल्म पर]—इसकी जड के टुकडे सुखाकर मिट्टी की हाडी में भर कर चारो ओर से कपड मिट्टी कर कण्डो की आच मे फू क दें । स्वाग-शीत होने पर अन्दर की राख निकाल उसे चौगुने जल मे अच्छी तरह घोलकर २४ घण्टे स्थिर पडा रहने दें । राख के नीचे वैठ जाने पर ऊपर का स्वच्छ जल निथार कर आग पर औटावें । जल के उड जाने पर नीचे तलैटी मे जमे हुए क्षार को खुरचकर सुरक्षित रक्खें ।

मात्रा—१ मासा के साथ सम भाग खाने का सोडा [सोडा बाई कार्ब] और कूट का चूर्ण मिला तिल तैल ४ तोला मिला पिलाने से भयकर वात गुल्म [वाय गोला] की पीडा दूर होती है । (जगलनी जडी वूटी)

उक्त क्षार के प्रयोग से उदर शूल और आध्मान मे भी लाभ होता है ।

[१०] प्रमेह पर—मूल को पानी मे उवालकर तथा वस्त्र से निचोडकर निकाले हुए रस की मात्रा २ तोले मे जीरा का चूर्ण और शक्कर या शहद मिला पिलाने से ७ दिन मे विशेषत पित्त कफ प्रधान प्रमेह पूर्णत दूर होता है । पथ्य मे चावल और दही या तक्र देवें । नमक से परहेज रक्खें ।

पत्र—

[११] सर्व प्रकार की उष्णता पर—इसके कोमल पत्तो के स्वरस २ तोले मे श्वेत जीरा चूर्ण तथा मिश्री २-२ माशे मिला प्रात साय पिलाते हैं ।

[१२] ज्वर पर—पत्तो का भवके से खिचा हुआ अर्क १-१ माशे की मात्रा मे सेवन करने से पसीना आकर ज्वर हलका पड जाता है ।

कर्नाटक प्रदेश मे पत्तो की चटाइया, आसन, छत्रियां रस्सिया आदि वनाते हैं ।

नोट—(१) मात्रा-अर्क—१ से ६ तोला तक, शर्वत २ से ४ तोला तक, मूल या पंचांग का क्षार १-२ माशे तक, क्वाथ-५ से १० तोला तक, क्वाथार्थ मंजरी या पुष्प १ से २ तोला तक ।

(२) चरक में केवडा (केतकी) का उल्लेख नहीं

मिलता। सुश्रुत ने इसके क्षार का उपयोग गुल्म रोग पर किया है। अन्य ग्रन्थों में भी इसका विशेष उपयोग प्राप्य नहीं है।

(२) केतकी नामक तलवार जैसे लम्बे पत्रों वाला एक प्रकार का थूहर होता है। पत्रों के दोनों ओर तीक्ष्ण कांटे होते हैं। यह बाग बगीचों की बाड़ों मे खूब लगा दिया जाता है। इसकी पत्तियों को कूट पीसकर रस्सियां बनाई जाती है। इसके औषधि प्रयोग अभी अज्ञात हैं।

केवाँच (Mucuna Pruriens)

गुडूच्यादि वर्ग एवं शिम्बीकुल तथा अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) की इस बूटी की वर्ष जीवी लता, सेमफली की लता जैसी वर्षाकाल मे बाग एवं खेतों मे बोई जाती है तथा जगलो मे भी पैदा होती है। अत बागी और जगली भेद से यह २ प्रकार की है।

इसकी शाखायें बहुत नाजुक कुछ रोमयुक्त होती हैं।

पत्ते—२ से ५॥ इच तक लम्बे सेम के पत्र जैसे ही, किन्तु कुछ बड़े एवं श्यामतायुक्त हरे, त्रिपत्रक और रोमश होते है।

पुष्प—पत्तो की डंठल के पास ही पुष्प दंड ½ से १ फुट लम्बे कुछ भुके हुये निकलते हैं, जिन पर १-१॥ इच लम्बे नीले या बैंगनी रग के पुष्पों के गुच्छे लगते हैं। ये फूल भी सेम या लोबिया जैसे ही होते हैं।

फली—उक्त पुष्प दंड मे ही शरद या हेमन्त ऋतु मे पुष्पो के साथ ही साथ फलिया २-३ इच लम्बी, आधी इच चौडी, कुछ टेढी भूरे रग के लगभग १ इच लम्बे सघन रोमों से व्याप्त होती हैं। इन रोमो के स्पर्श मात्र से ही खुजली, दाह और शोथ पैदा होती है।

बीज—प्रत्येक फली मे ४-६ बीज सेम या लोबिया बीज जैसे किन्तु कुछ बड़े काले से होते हैं। इनमे कोई विशेष स्वाद नही होता। कोई बीज धूसर वर्ण के मुख के भाग पर काले श्वेताभ चौथाई इच लम्बे, चपटे तथा भीतर से श्वेतवर्ण के होते हैं। बीजो के ऊपर कुछ काले रग का चमकीला सख्त पतला छिलका होता है।

नोट—(१) बागी या मीठे केवांच की फलियों पर रोयें कम होते हैं। यह खुजली भी बहुत कम करता है दूसरी और एक बागी केवांच होती है, जिसकी फलियों पर रोयें बिलकुल नहीं होते। इन दोनो बागी केवाच के ऊपरी छिलकों को निकाल कर शाक, अचार बनाते हैं।

जंगली केवाच पर सघन भूरे रंग के रोयें होते हैं, जो विषैले, शरीर में लगते ही तीव्र खुजली, दाह एवं सूजन पैदा कर देते हैं। किन्तु औषधि कर्म में इसके ही बीज अधिक प्रभावशाली होते हैं। वाजीकरण प्रयोगों में ये ही विशेष उपयोगी है। इसकी फलियों को दूर से ही लम्बी लकड़ियों से तोड़ चिमटे से उठा उठाकर इकट्ठा कर निर्वात स्थान में बड़ी सावधानी से चिमटे से पकड़कर हथौड़ी से फोड़कर अथवा हाथों में तेल लगाकर हाथों से ही बीज निकाले जाते हैं। बीजों के ऊपर के छिलकों को दूर करने के लिये उन्हें पानी में कुछ देर भिगोकर या उबाल कर छिलके उतार लेते हैं। फिर उन्हें शुष्क कर काम में लाते है।

बागी केवांच की कोमल फलियों की जो शाक बनाई जाती है वह पुष्टिप्रद होती है, किन्तु यह शाक विशेष
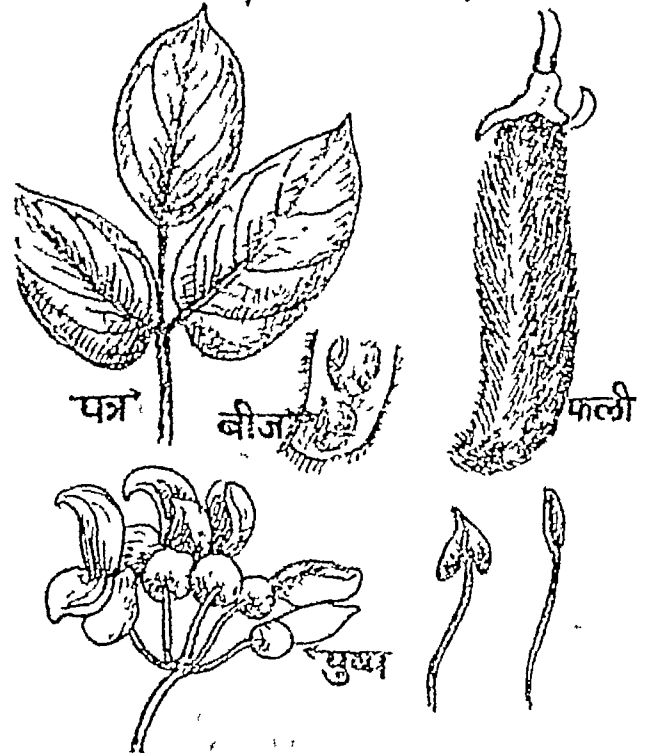
रुचिकर न होने से सर्वप्रिय नहीं होती।

(२) चरक और सुश्रुत के वल्य, मधुर स्कंद, विदारी गन्धादि, वातसंशमन आदि गणों में इसकी गणना है। चरक में वल्य वर्ग से इसका 'ऋषभ' भी नाम है। तथा चिकित्सा स्थान अ० २ मे ऐसे कई प्रयोग हैं जिनमें इसका योग है।

(३) पजाव की ओर वाजारों में कई स्थान पर इसके जो श्वेत रंग के बीज मिलते है वे चरकोक्त (काकांडोला) नामक सेम की जाति के बीज हैं। (चरक सू० अ० २७ में श्लोक ३३)

(४) छोटी केवांच या काली केवांच एक भिन्न प्रकार की होती है। इसके क्षुप होते हैं, किन्तु यह वहुत कम देखने में आते हैं।

नाम—

सं०—कपिकच्छु (वन्दर के रोयें जैसे रोम होने से तथा खुजली करने वाले होने से), आत्म गुप्ता (रोमों से स्वय सुरक्षित), ऋष्य प्रोक्ता (रीछ जैसे रोमश), मर्कटी, कण्डुरा, अध्यण्डा, दु:स्पर्शा।

हिं०—केवांच, कमाच, कौंच, खजोहरा, कवाछु।

वं०—आलकुशी, विच्छोटि, कामचा।

म०—कुहिली, खाज कुहिली। गु०—कौंचा, कवचा।

अं०—काऊ हेज (Cow hage), काऊइच (Cow itch)

ले०—म्युकुना प्रुरिएन्स, म्यु प्रुरिटा (M Prurita)

यह भारत के प्राय समस्त उष्ण प्रदेशो मे पाया जाता है। इसके वीजो मे राल, टेनिन, स्नेह द्रव्य और कुछ मेगनीज पाया जाता है। बीजो की मज्जा की अपेक्षा ऊपर के छिलको मे मेगनीज कुछ अधिकहोता है।

प्रयोज्य अङ्ग—बीज, मूल, रोम और पत्र।

गुणधर्म और प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक मे मधुर, उष्ण वीर्य (विपाक मे कटु और शीतवीर्य भी माना जाता है)। त्रिदोष (विशेषत वातपित्त) शामक, वृष्य, शीतपित्त, व्रण, रक्तपित्त आदि नाशक है।

वीज—

(औषधि के लिये जगली केवाच के वीजो का व्यवहार करना उत्तम है), वृष्य, अत्यन्त वाजीकरण, नाडी सस्थान के लिये वल्य एव वातव्याधि, मूत्रकृच्छ्र, वृक्करोग, शुक्रदौर्बल्य, क्लैब्य, दुष्टव्रण, रक्तपित्त, वात कफ नाशक हैं। इसमे उत्तेजक, धातुवर्धक एव स्तम्भक तीनो गुण होने से वाजीकरण औषधियो मे विशेष उपयोगी है।

श्वास पर—वीज चूर्ण १-३ माशा घृत और शहद (विषम प्रमाण मे) मिलाकर सेवन कराने से, अर्दित अर्द्धाङ्ग वात पर—वीजो की खीर के सेवन से, मूत्रकृच्छ्र मे—इसका चूर्ण ५ रत्ती की मात्रा में दिन मे ३ वार देने से, शुक्रप्रमेह पर- छाया शुष्क वीजो का चूर्ण ५ से १० माशा तक १ पाव दूध मे पकाकर सेवन करने से, उपदश पर--१ तोले वीज १५ तोले पानी के साथ पीसकर प्रात साय सेवन करने से, श्वेत प्रदर पर बीज चूर्ण २॥ माशा तक जल के साथ लेने से, विच्छू के दंश पर वीज का महीन चूर्ण मिट्टी के तैल मे मिला दश स्थान पर मलने से, व्रण या नासूर पर--वीजो को पानी के साथ पीसकर टिकिया वना १२ तोले कड़वे तैल मे जला कर तैल छानकर लगाते रहने से लाभ होता है।

(१) पुरुषत्व वृद्धि, वाजीकरण एव वीर्यस्तम्भनार्थ—वीज चूर्ण के साथ तालमखाना और मिश्री चूर्ण समभाग मिला मात्रा १-२ माशा धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने से पुरुषत्व वृद्धि होती है।

अथवा बीजो के साथ गोखरू समभाग चूर्ण कर तथा चूर्ण के समभाग मिश्री या खाड मिला प्रात साय ६ माशे से १ तोला तक दुग्ध के साथ लेते रहने से अशक्ति दूर होकर वीर्य पुष्टि एव शरीर मे नूतन वल का सचार होता है। इस योग मे श्वेत मूसली, सेमर मूसली, आंवला, तालमखाना और गिलोयसत्व भी मिला देने से और भी उत्तम लाभ होता है। अथवा—

बीज चूर्ण १॥ तोले के साथ जायफल, जावित्री, खरैटी (वला) बीज ३-३ तोला, देशी कपूर १ तोले, केशर ½ तोले खूब महीन कर एकत्र कर नित्य प्रात २ रत्ती की मात्रा मे शहद के साथ लेते रहने से पुरुषत्व की वृद्धि होती है। अथवा—

वीज की गिरी और गेहू समभाग का जवकुट चूर्ण कर ४ तोला चूर्ण गोदुग्ध आध सेर मे मिलाकर पकावें। जव खीर सी वन जाय तव उसमे मिश्री ४ तोला तथा ताजा गोघृत २ तोले मिला नित्य प्रात सेवन करें। वीर्य क्षीणता दूर होती है।

वीर्य स्तम्भनार्थ—इसके बीजो की गिरी १ तोले के साथ इसकी जड़, दालचीनी, मुलैठी, असगध, जायफल, अकरकरा समभाग (१-१ तोले) तथा सबके समभाग (७ तोले) मिश्री महीन चूर्ण कर मात्रा ६ माशे चूर्ण सुखोष्ण दूध के साथ प्रसङ्ग के दो घण्टा पूर्व खाने से खूब स्तम्भन होता है। और भी देखिए विशिष्ट योगो मे वानरी वटिका, कौंच पाक।

(२) वद या गाठ पर—बीजो को पानी के साथ घिसकर इसको थोडा गरम कर गाढ़ा गाढा लेप दिन मे २-३ बार करने से वद या गाठ बैठ जाती है या फूट जाती है।

नोट—अत्यधिक मात्रा में बीजों के सेवन से घबड़ाहट, बेचैनी होती है। इसके निवारणार्थ रोगन मस्तंगी और बबूल का गोंद देते है। बीजों का प्रतिनिधि सेंमल का मूसल है।

मूल—

उत्तेजक, वाजीकरण, मूत्रल, ऋतुस्रावनियामक, नाडी दौर्बल्य, वातव्याधि, अतिसार आदि नाशक है। इसकी मूल (जड) का क्वाथ—अर्दित या शरीर का कोई भी अङ्ग वात से शक्तिहीन होजाने पर योगराजगुग्गुल आदि वात व्याधि नाशक औषधियो के साथ देने से, हैजे पर शहद के साथ इसके क्वाथ या फाट को देने से तथा मज्जातन्तुओ की अशक्तता या ज्वर मे भ्रम या बेहोशी मे केवल इस क्वाथ के प्रयोग से उत्तम लाभ होता है। मूत्र पिण्डो के विकारो पर जड को पानी मे पीसकर पिलाते तथा पेड़ू पर लेप करते हैं। गर्भ धारणार्थ—बागी केवाच की जड और कैथ की गिरी पीसकर दूध से देते हैं। बालापस्मार (बच्चो की मृगी) पर—मूल को अकरकरा के साथ माता के दूध मे पीसकर पिलाते हैं। कम्पवात पर—मूल ५ तोला के क्वाथ को १ पाव कड़वे तैल मे पकाकर तैल की मालिश करते हैं। ज्वर की उष्णता पर—मूल का चूर्ण शहद या गरम जल के साथ देने से उष्णता कम होकर बेहोशी दूर होती है। मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओ की बल वृद्धि के लिये मूल को महीन पीस कर २ से ४ माशे तक की मात्रा मे गौघृत और दूध के साथ सेवन कराते हैं। जलोदर पर—मूल का प्रलेप पेट पर करते हैं, श्लीपद पर भी यह लेप किया जाता है। वद, ग्रन्थि और कखौरी (काख का व्रण) पर—इसका लेप दिन मे कई बार करते तथा ऊपर से सेंकते है। वाजीकरणार्थ—इसे गौदुग्ध मे पीसकर पिलाते हैं। तथा वीर्य स्तभनार्थ—इसे मुख मे रखकर चूसते है। योनिशैथिल्य पर—इसके क्वाथ मे वस्त्र को भिगोकर रखते है। मूत्रकृच्छ्र तथा अन्य वृक्क के विकारो पर—इसका क्वाथ सेवन कराते हैं। पक्वातिसार और रक्तातिसार पर—इसकी मूल से सिद्ध किये हुए दुग्ध के साथ इसके कल्क का सेवन कराते है। अथवा मूल का चूर्ण १ तोला तक की मात्रा मे शहद और चावल के धोवन के साथ सेवन करने से सरक्त पक्वातिसार नष्ट होता है। (सु उ अ ४०-७५)

रोम—

इसकी फलियो पर जो रोए होते हैं, वे गण्डूपद कृमि (Round worms) एव आत्र कृमि नाशक है।

(३) इसकी मात्रा ½ से ¾ रत्ती तक गुड, शहद या मक्खन मे मिला गोली सी बना निगल जाने से तथा दूसरे दिन रेंडी तैल या कालादाना या केलोमेल का रेचन देने से कृमि मर कर शीघ्र ही निकल जाते हैं।

ध्यान रहे इस प्रयोग के पश्चात् रेचन अवश्य ही कराना चाहिये, जिससे रोम का कुछ अ श अन्दर न रहने पावे अन्यथा आत्र मे रहा हुआ यह रोम अत्यन्त दाह पैदा करता है। इसके निवारणार्थ घृत, शक्कर और शहद मिलाकर चटाते हैं।

(४) ये रोए विषनाशक भी है। सखिया के विष पर रोए सहित फली की छाल और श्वेत कत्था एकत्र पानी मे पीस कर थोडा थोडा कई बार पिलाते है।

नोट—शरीर पर इनके लगाने से जो खुजली, दाह आदि विकार होते है उनके निवारणार्थ दही, गोबर या दूध को मलने से शाति होती है अथवा प्रथम गोबर लगा-मलकर गरम पानी से धो डालें और फिर सुखोष्ण घृत की मालिश करने से शीघ्र शाति होती है।

(५) त्वचा की शून्यता पर—रोमो को घृत या हेमलीन मे घोलकर लगाने से लाभ होता है।

पत्र—

(६) व्रण एवं नाडी व्रण (नासूर) पर—इसके पत्रों को पीसकर बाधने से साधारण व्रण शीघ्र भर जाता है,

और ठीक हो जाते हैं ।

पत्तो को महीन पीस टिकिया बनाकर लगाने से नासूर का मुख चौडा होकर अन्दर की राध निकल जाती है। फिर पत्तो का महीन चूर्ण तथा भैंस के सीग की राख इन दोनो को घृत मे घोटकर मलहम बना लगाते रहने से नाडा व्रण ठीक हो जाता है ।

(७) उदर कृमि पर—पत्तो के साथ कालीमिर्च पीसकर पिलावें ।

मात्रा—बीज चूर्ण--१ से ४ माशा, मूलस्वरस १ तोला, मूल-क्वाथ--५ से १० तोला, रोए--१ रत्ती तक ।

विशिष्ट योग–

(१) वानरी वटिका—केवाच बीज ३२ तोले को २॥ सेर गौ दुग्ध मे मन्दाग्नि से पकावें । दूध कुछ गाढा होजाने पर नीचे उतार बीजो का छिलका दूर कर खूब महीन पीस लें, तथा उक्त दुग्ध का खोया बना उसमे मिला छोटी १-१ वटी बना गौघृत मे भून कर द्विगुण खाड की गाढी चाशनी मे वटिकायो को डुवो दे । फिर थोडी देर वाद उन्हे निकाल कर शहद मे डालकर काच की भरनी मे भर रक्खें ।

मात्रा—६ माशे से २ तोले तक प्रात-साय सेवन करने से नपु सकता दूर होती है । यह अत्यन्त वाजीकरण योग है । (भै र)

(२) बाजीकर वटक--इसके बीज और उडद (दोनो छिलके रहित) समान भाग चूर्ण लेकर नारियल के थोडे पानी मे भिगोकर रखदें । ३-४ घण्टे वाद पीस कर उसमे उसका २० वा भाग अभ्रक भस्म मिला ३-३ माशे के के वटक बना घृत मे तल लें । इनमे से १ या २ बटक शहद और घृत मिला मिश्रीयुक्त दूध के साथ सेवन करने से कामशक्ति अत्यन्त प्रबल होती है ।(र रत्नाकर)

अथवा—छिलकेरहित उसके बीज और उडद की दाल ३२-३२ तोले लेकर दोनो को पानी मे भिगो दें। फूल कर नरम होजाने पर अत्यन्त बारीक पीसकर उनमे केशर, नागकेशर, जावित्री, नतावर, गोखरू, तालमखाना, लौग, कालीमिर्च, पीपल तथा सिंघाडे का १-१ तोला महीन चूर्ण मिला १-१ रत्ती के वटक बना उन्हे ३ मे ६ सेर तक घृत मे तलकर पत्थर या काच के पात्र मे भरकर उसमे उक्त घृत के समभाग शहद मिला मुख वन्द कर ३ दिन तक रक्खा रहने दें । फिर नित्य १-१ वटक सेवन करने से वीर्य क्षीणता एव नपु सकता नष्ट हो जाती है । पथ्य मे—मधुराहार, दूध भात आदि दें। क्षार, अम्ल आदि अपथ्य हैं । (भा भै र)

(३) कपिकच्छू पाक-- बीजो का चूर्ण २० तोला, शक्कर ३० तो, घृत १० तोला तथा दूध २ सेर सबको एकत्र पकावें । जब कलछी मे लपटने लगे, तब उसमे अकरकरा, तालमखाना, जायफल, जावित्री, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपात, इलायची के दाने, लौंग, केशर, पुनर्नवा-मूल, खरैंटी बीज, दोनो मूमली, प्रत्येक १-१ तोला, अफीम, चन्द्रोदय, लोह भस्म, अभ्रकभस्म ६-६ मासे तथा चन्दन, अगर, कस्तूरी एव भीमसेनी कपूर १-१ माशा मिलाकर पाक सिद्ध करलें फिर उसमे इच्छानुसार वादाम, पिस्ता, चिरौंजी और किसमिस मिला २-२ तोले के मोदक नित्य खाकर दूध पीने से खूब बल वीर्य की वृद्धि होती है। सर्वप्रकार के प्रमेह दूर होते है, काम शक्ति बढती है ।

अन्य कपिकच्छू पाक के प्रयोग देखिये हमारे 'बृहत्पाकसग्रह' ग्रन्थ मे ।

केशर (Crocus Sativa)

कर्पू रादि वर्ग एव स्वकुल-केशर कुल [Iridaceae] की प्रधान तथा सुप्रसिद्ध इस केशर के वर्षायु क्षुप या काडरहित गुल्म १ इ च से १॥ फुट तक ऊ चे होते हैं । इसकी जड के नीचे प्याज जैसा गाठदार, किन्तु रेशेदार आच्छादनयुक्त कन्द सा होता है ।

पत्र—घास जैसे लम्बे, पतले, पनालीदार, नीचे की ओर अधिक सघन, मूल से ही निकले हुए मूल पत्रो के किनारे पीछे की ओर मुडे हुये होते हैं ।

पुष्प–शरद् ऋतु मे बेगनी रग के एकाकी या गुच्छों मे २-३ एक साथ या १-१ पत्र के साथ बडे सुहावने

होते हैं। पुष्प की नाल पतली, दल ६ खण्डो मे विभक्त तथा इसमे पुंकेश्वर पीत वर्ण के तीन होते हैं, स्त्री केसर का योनिसूत्र ३ भागो मे विभक्त हो जाता है व प्रत्येक के ऊपर रक्ताभ सूत्राकार योनिछत्र होता है। इन रक्ताभ सूत्राकार तन्तुओं मे से जो अग्रभाग होता है, वही असली केसर है। फूलो के खिलने पर केसर की चुनाई का कार्य आरम्भ होता है तथा ज्यो ज्यो फूल खिलते हैं त्यो त्यो उक्त लाल रग की तुरिया निकाल सुखा रख ली जाती हैं।

एक पुष्प से केसर के ३ तन्तु प्राप्त होते है, इस प्रकार लगभग २० पुष्पो से १ रत्ती तथा ४७०० पुष्पो से २॥ तोले तक केसर प्राप्त होती है।

बीज--इसके बीजकोप में तीन कोष्ठ होते हैं तथा प्रत्येक कोष्ठ मे अनेक गोलाकार बीज होते हैं।

इसके कन्द को काट कर बोने से या उक्त बीजो के बोने से पौधे तैयार हो जाते हैं। साधारणत १ एकड भूमि मे लगातार हुये इसके पौधो से ५०-५५ पौंड ताजा केसर प्राप्त होता है जो सूखने पर १०-११ पौंड रह जाता है। केसर की खेती करने तथा फिर केसर को चुनकर तैयार करने में बहुत सावधानी रखी जाती है। सूर्योदय के पूर्व जब फूल लगभग खिलने को होते है तब ही उनको तोड़कर उनमे से केसर निकाल एव चलनी मे डाल कर मन्द आच पर शुष्क कर प्रकाशहीन बन्द पात्र मे रखना पडता है। अन्यथा केसर भद्दी, काली, प्रभावहीन हो जाती है। अच्छी केसर तीव्र सुगधयुक्त कुछ कडुवापन लिये हुए स्वाद वाली होती है।

केसर के लिये निघण्टु ग्रन्थो मे जो 'काश्मीर' पर्याय शब्द है, उससे सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल मे काश्मीर मे ही इसकी अत्यधिक पैदावार होती थी। अब भी वहा के पाम्पुर व किशनवाड नामक स्थानो पर जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से लगभग ४३०० फीट है, इसकी खेती २-२॥ कोस लम्बी तथा लगभग १५० से १८५ फीट चौडी एव ऊंची सुदीर्घ भूमि मे होती है [1]।

कई लोग केसर का आदि निवास स्थान दक्षिणी यूरुप मानते हैं। अब तो स्पेन, इटली, पुर्तगाल, फ्रास, ईरान, तुर्की, यूनान, चीन आदि देशो मे भी इसकी खेती खूब होती है तथा स्पेन और पुर्तगाल देशो का केसर इधर खूब आया करता है। तथापि काश्मीरी केसर सबसे उत्तम समझा जाता है। उत्तमता की दृष्टि से भावप्रकाश ने निम्न तीन प्रकार के केसर निर्दिष्ट किये हैं—

[१] काश्मीरज—काश्मीरी केसर जो रक्ताभ, सूक्ष्म तन्तुओ से युक्त, कमल जैसे गध वाला होता है। यह उत्तम कोटि है। इसका वर्ण उदीयमान सूर्य के समान अरुण होता है।

[२] वाल्हीकज—बलख-बुखारा देश का सूक्ष्म तन्तुयुक्त, पाडुवर्ण एव केवडे जैसी गध वाला केसर

---

[1] यह सुदीर्घ भूमि केसर के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में विभक्त है, जहां क्यारी बनाकर टट्टियों की आड मे इसकी खेती होती है। आने जाने के लिये रास्ते बने रहते हैं। देशी व जंगली करके इसके भी दो भेद हैं। दोनों के आकार प्रकार में विभिन्नता पाई जाती है। देशी पालित केसर की स्त्री गांठ प्राय बन्ध्या हो जाती है तब अरण्य पुष्पी केसर के पौधों में पराग सम्मेलन द्वारा उन्हें गर्भाधान कराते है। —भा० प्र०

मध्यम कोटि का है।

[३] पारसीकज—पारस-ईरान देश का स्थूल तन्तुयुक्त, ईषत् पाडुवर्ण एव मधु जैसे गन्ध वाला केसर निकृष्ट माना गया है।

असली और नकली केसर का परीक्षण—

आजकल केसर मे कई प्रकार की मिलावटें की जाती हैं। सबसे अधिक तो इसीके पुष्प के अन्य भागो को मिलाया जाता है। कही कही पुराने वर्णहीन बेकार केसर को ही पुन रजित कर मिलाते है तथा इसका वजन बढाने के लिये तैल, ग्लुकोज, ग्लिसरीन तथा पोटेशियम या अमोनियम नाइट्रेट को जल मे घोलकर इसमे मिलाते है। कही कही कुसुम्भा के पुष्प तन्तु या पलाश पुष्प की कतरन आदि रगकर इसमे मिलाते है। अथवा चिकने कागज [बटर पेपर] को महीन काटकर केसरिया रग से रग कर या मूज के छोटे छोटे रेशो को रासायनिक रगो मे रग कर केसर के नाम से विक्रय किये जाते है या असली केसर मे इन्हे मिलाकर बेचते है।

परीक्षण—ध्यान रहे असली केसर सूक्ष्म तन्तु वाला, आरक्त, पद्म की गधयुक्त, पीत तन्तुओ से रहित, सुगन्धित, स्वाद मे तिक्त होता है। इसे गधकाम्ल मे डालने से उसका विलय होकर एक गहरे नीले रङ्ग का घोल बनता है जो कि पडा रहने पर प्रथम नील लोहित, पुन लाल और अन्त मे भूरा हो जाता है। शोरे के तेजाब मे डालने से यह हरा रङ्ग देता है।

इसे स्प्रिट मे डालने से इसके तन्तु स्प्रिट को रगीन करते हुये भी जैसे के तैसे बने रहते हैं। यदि इसका सब रग स्प्रिट मे मिल जाय तथा तन्तुओ का रग ही बदल जाय तो उसे नकली समझें। सबसे सरल परीक्षा यह है कि इसे पानी मे भिगोकर कपडे पर लगाने से यदि तत्काल केसरिया पीतवर्ण का दाग पडे तो असली तथा प्रथम लाल रङ्ग का दाग पडकर फिर पीले वर्ण मे परिणत हो तो उसे नकली समझें।

नाम—

सं.—कुकुम, घुसृण, रक्त (रक्ताभ होने से रुधिर वाचक सब शब्द केसर को दिये गये हैं। काश्मीर, वाल्हीक)
हि० म० व गु०—केसर। बं० जाफरन, कुंकुम।
अं०—सेफ्रन (Saffron)
ले०—क्राकस सेटाइवा, क्रा. सेफ्रान (C. Saffron)

रासायनिक संघटन—

इसमे तीन स्फटिकीय रग द्रव्य, एक उड़नशील तैल प्र श ८ से १३ १४ तक, क्रोसीन (Crocin) नामक रजक द्रव्य, एक ग्लुकोसाइड, पिक्रोक्रोसीन (Picrocrocin) नामक तिक्त द्रव्य, मोम, प्रोटीड, पिच्छिलद्रव्य, शर्करा भस्म एव आर्द्रता १२ प्र श होती है।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, तिक्त, कटु, विपाक मे कटु एव उष्णवीर्य हैं।

यह त्रिदोष (विशेषत वात, कफ) हर, दीपन, ग्राही, यकृत् तथा नाडी संस्थान उत्तेजक (अधिक मात्रा मे कुछ मादक), मस्तिष्क वलप्रद, वेदनास्थापन, हृद्य, रक्तप्रसादक, कुछ मूत्रल, वाजीकरण, गर्भाशय सकोचक, वर्ण्य, चक्षुष्य, प्रसन्नताकारक, स्वेदल एवं कटुपौष्टिक है। अग्निमाद्य, अजीर्ण, शूल, शोथ, वमन, सिर के रोग, विष, यकृद्विकार, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, ध्वजभग, रजोरोध, कष्टार्त्तव, कष्टप्रसव, ज्वर, व्रण, आक्षेप, आध्मान, हलीमक, प्रदर, श्वास, आमवात एव विषनाशक है।

वाजीकर औषधियो मे गुणवृद्धि के लिये इसे मिलाते हैं। दुग्धोत्पत्ति के लिये इसका प्रलेप स्तनो पर करते हैं। यकृत् वृद्धि पर-इसे करेले के रस मे घिसकर पिलाते हैं।

बालको के उदर कृमि विकार पर—इसके साथ कपूर दोनो १-१ रत्ती एकत्र खरल कर दूध के साथ देते हैं। बालको के अतिसार, उदर पीडा पर इसके साथ जायफल, आम की गुठली व वच जल मे घिस कर पिलाते हैं। बालको के कफविकार ज्वर आदि पर—इसे दूध मे घिसकर आग पर गरम कर सुखोष्ण पिलाते हैं। तथा इसके साथ जायफल को पानी में घिसकर कपाल नाक और छाती पर लेप करते हैं।

बालको के नेत्र विकार पर—इसके साथ दारुहल्दी, लाख, सोनागेरु, मनसिल और वायबिडंग इनके समभाग मिलित चूर्ण को खरल कर अजन बना नेत्रो मे लगायें।

(भा. भै र. मे केशराद्यंजन)

उदरशूल पर—इसके साथ दालचीनी पीसकर गोली बना कर देते हैं। सूखारोग पर—कुंकुमासव देखें। मिट्टी खाने से हुये पाण्डु रोग पर—इसके साथ मुलैठी, छोटी पीपल और निसोथ मिला क्वाथ कर इस क्वाथ की (अच्छी शुद्ध चिकनी मिट्टी पर) ४ पुट देकर यह मिट्टी खिलाने से खाई हुई मिट्टी निकल जाती है तथा विकार दूर होता है। (व गुणादर्श)

पिंजडे मे पाले हुए तोता, मैना आदि पक्षियो को पखाने या रोयें झडने की या और कोई बीमारी होती है तब उनके पीने के पानी मे इसे घोल देते हैं। उस पानी के पीने से वह ठीक हो जाता है।

(१) पीडितार्त्तव, कष्टार्त्तव या गर्भाशय शूल पर—इसकी पूर्ण मात्रा ५ रत्ती से १० रत्ती तक लेकर उसमे समभाग अकरकरा चूर्ण मिला जल के साथ खूब खरल कर ३ गोली बना दिन मे २-३ बार खिलाते हैं, तथा इसी चूर्ण की गोली बना योनिमार्ग मे रखते हैं।

अथवा—इसकी मात्रा १ माशा के साथ ४ रत्ती कपूर मिला उष्णोदक मे खरल कर मासिक धर्म के तीन दिन पहले प्रात साय पिलाते रहने से गर्भाशय शूल नही होता, तथा मासिक धर्म खुलकर हो जाता है।

यदि गर्भावस्था मे सगर्भा स्त्री के गर्भाशय मे अकस्मात शूल होकर रक्तस्राव होने लगे तो इसे १ माशा की मात्रा मे दो तोले गाय के मक्खन मे मिला तथा थोडी मिश्री मिला सेवन कराने तथा आवश्यकतानुसार २-३ घण्टे बाद पुन इसे देने से, और स्त्री को पूर्ण आराम देने से शूलसहित रक्तस्राव की निवृत्ति होती है।

(२) आधाशीशी (अर्द्धावभेदक) पीनस तथा अन्य सिर के रोगो पर—इसे ४ मासा शक्कर ४ मासा के साथ घृत ४ तोला मे भूनकर नस्य देने से सूर्यावर्त्त, अर्द्धावभेदक आदि शिर शूल मे लाभ होता है। अथवा इसे गोघृत मे खरल कर बार बार नस्य देने से श्वासमार्ग की रुकावट दूर होती है, अन्दर श्वासमार्ग मे क्षत हो तो वह भर जाता है। अन्दर के कीटाणु नष्ट होकर पीनस एव सिर पीडा दूर होती है।

आगे विशिष्ट योगो में-कुंकुमादि घृत व तैल देखें।

अथवा—इसे थोड़े घृत में भूनकर समान भाग खाड़ मिला तथा बकरी के दूध मे पीस कर पीने से पित्तज शिरोरोग, अर्द्धावभेदक शिर शूल आदि नष्ट होते हैं।

अथवा—इसके साथ खाड और मुनक्का १-१ भाग लेकर बारीक पीसलें, फिर उसमे १२ भाग मक्खन मिला नस्य लेने से उक्त विकार दूर होते हैं। (व से०)

(३) रक्तपित्त (ऊर्ध्वगत) पर—बकरी के पके हुए दूध मे इसका महीन चूर्ण मिला (या इस दूध मे इसे ४ रत्ती से १ माशा तक अच्छी तरह खरल कर) पिलाने से उर्ध्वगत रक्तपित्त नष्ट होता है। रोगी को पथ्य मे बकरी का दूध और भात ही देना चाहिये। (ग नि)

(४) प्रवाहिका (मरोड पेचिश) पर—इसके साथ जायफल, जावित्री और अफीम समभाग मिला आध आध रत्ती की गोलिया बना रक्खें। १-२ गोली दिन मे २-३ बार देवे। ध्यान रहे रोगी को कोष्ठ मे यदि दूषित मल का पहले से ही सचय हो, मल मे अति दुर्गन्ध आती हो तो इस प्रकार की अफीम मिश्रित औषधि देने से पूर्व रेंडी के तैल प्रयोग से कोष्ठ शुद्धि कर देना अत्यावश्यक है। अन्यथा रक्तविकार, व्रण, विद्रधि आदि उपद्रव होने की सभावना है।

(५) मूत्राघात पर—इसे एक तोला लेकर पत्थर की खरल मे गुलावजल के साथ अच्छी प्रकार घोटकर उसमे १ तोला शहद तथा दो तोले जल मिलाकर कलईदार या काच, पत्थर या सोना चादी के पात्र मे भरकर ढककर रात्रि मे रख देवें। प्रात शौचादि से निवृत हो मुख शुद्धि कर इसे पी लेने से लाभ होता है। (सु उ त अ ५)

इसका ततु मूत्रमार्ग के भीतर रखने से भी मूत्र जारी हो जाता है।

(६) नेत्र विकार पर—इसके साथ अफीम, फिटकरी और रसौत अन्दाज से थोडा थोडा लेकर पानी से खरल कर लेप सा बना कुछ गरम कर आखो पर लेप करने से दर्द, सूजन, सुरखी एव सरदी से हुई आखो की पीडा दूर होकर २-३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(७) नपुंसकत्वारि तिला—केसर ६ मासा को खूब महीन पीस कर सत्यानासी के बीजो के ५ तोला तैल मे अच्छी तरह खरल कर शीशी मे भर रक्खें। शिश्न के ऊपरी भाग को छोड़ कर शेष भाग पर इसकी २-४

बून्दें धीरे धीरे मर्दन करें। उसकी विकृति शीघ्र दूर होकर वह सशक्त हो जाता है। (स्व प भागीरथ स्वामी)

मात्रा विचार—इसकी मात्रा १।। रत्ती से २ रत्ती तक है, रोगानुसार अधिक से अधिक ५ से १० रत्ती तक दे सकते हैं। अत्यधिक मात्रा मे यह वृक्क दौर्बल्यकारक, क्षुधानाशक एव मादक हो जाता है। अहितकर परिणाम के निवारणार्थ अनीसू या सौंफ, दारुहल्दी का फल [जरिष्क] या दूध, दही और मधु का मिश्रण देते हैं।

इसके प्रतिनिधि रूप मे बिजौरा के बीज, कूट और तज लेते हैं।

विशिष्ट योग–

[१] कुकुमादि घृत—इसके साथ हल्दी, दारुहल्दी और पीपल ५-५ तोले चूर्ण लेकर पानी मे पीस कल्क बना लें। ४ सेर चित्रक मूल ३२ सेर जल मे सिद्ध किया हुआ चतुर्थांश क्वाथ [८ सेर] छान लें। फिर २ सेर घृत मे यह क्वाथ और उक्त कल्क मिलाकर मंदाग्नि पर घृत सिद्ध करें।

यह घृत नीलिका, मुख दूषिका, सिध्मादि त्वचा के रोग, कफजरोग और सिर पीडा को शीघ्र ही नष्ट करता है। अत्यन्त सौन्दर्यवर्धक है। इसे पिलाते तथा अभ्यङ्ग और नस्य द्वारा यथावसर प्रयुक्त करते है। [भा० भै० र०]

कुकुमादि घृत का प्रयोग–कास, श्वास, क्षय आदि पर देखिये भै० र० राजयक्ष्माविकार मे।

[२] कुकुमासव–[शक्तिवर्द्धक]—उत्तम केसर २ तोले, जायफल १ तोले और कस्तूरी आधा तोले सबका एकत्र मोटा चूर्ण कर काच के पात्र में डालकर उसमे मीठे अनार का रस २० तोले, शहद ५ तोले और ब्राण्डी न १ (एक्शा छाप की) ५ तोले मिला पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर लगभग १ मास तक सुरक्षित रक्खें। प्रति सप्ताह हिलाते रहना चाहिये। फिर छान लें तथा १ सप्ताह मे साफ होने के लिये पुन बन्द कर रख दे। पश्चात् नितार कर शीशियो मे भर लें।

मात्रा—१० से ६० बूद तक, अनुपान–जल। रोगी की जीर्णावस्था मे इसका सेवन सुखकर होता है। वीर्यविकार, सिरदर्द तथा सान्निपातिक अवस्था मे तथा काम, श्वास, हिक्का और मूर्च्छा मे अत्यन्त लाभप्रद है।

[३] कुकुमासव—बालशोष रोग पर–उत्तम केसर १ तोले काली गौ के ६४ तोले मूत्र मे अच्छी तरह घोटकर रक्खें। पात्र का मुख बन्द कर ८ दिन बाद छानकर शीशियो मे भर रक्खें।

मात्रा–१० से २० बूद बालकों की अवस्थानुसार दूध मे मिलाकर पिलाने से सूखारोग शीघ्र दूर होकर बालक हृष्ट पुष्ट होता है।

कुकुमासव के अन्य प्रयोग देखिये हमारे वृ० आसवारिष्ट सग्रह मे।

[४] केशर पाक [इसके उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृ० पाक सग्रह मे देखिये। यहा एक छोटा प्रयोग दिया जाता है]--केसर १० तोले अच्छी तरह दूध मे खरल कर १ सेर दूध मे पकावें। जब खोया जैसा हो जाय तब उसमे अकरकरा, लौंग, जायफल, सालब मिश्री, कौंच बीज, जावित्री, समुद्रशोष, पीपल, लोहभस्म और अभ्रक भस्म १-१ तोले महीन चूर्ण कर मिलावें तथा मकरध्वज [चन्द्रोदय] ६ माशे और शुद्ध अफीम ६ माशे मिला १ सेर मिश्री की चाशनी मे पका जमा दें।

१ माशे से ३ माशे तक दूध के साथ सेवन करने से शरीर में पुष्टि एव कामशक्ति की अपूर्व वृद्धि होती है। शीघ्र पतन और प्रमेहादि वीर्यविकार नष्ट होते हैं।

[५] केसरादि वटी–केसर ३ तोले, स्वर्ण वर्क १ तोले, कस्तूरी २ तोले, चादी वर्क ३ तोले, जायफल ६ तोले, वशलोचन ७ तोले, जायपत्री ८ तोले, छोटी इलायची के बीज २ तोले इन सबके चूर्ण को बकरी के दूध मे तथा पान [खाने के] के रस मे ३-३ दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लें। १ या २ गोली नित्य प्रात साय मलाई के साथ सेवन से वीर्य क्षीणता दूर होकर कामशक्ति की वृद्धि होती है।

[६] केसर के द्वारा मल्ल भस्म–४ तोले केसर को २० तोले जल मे रात भर भिगो प्रात मसल कर पानी को छान लें, लुगदी को अलग रक्खें। फिर १ तोले शुद्ध सखिया को उक्त केसर के पानी मे घोटें, जब सब पानी सूख जाय तब उसे जायफल, जावित्री, लौंग, तज, बछ-

नाग और शंखाहुली के क्वाथ मे अलग अलग १-२ वार घोटकर टिकिया वना उक्त केसर की लुगदी मे रख ऊपर कपडमिट्टी कर निर्वात स्थान मे उपले कण्डो की आंच मे फूक दें। फिर खोलने पर उसमे भूरे रग की फूली हुई भस्म मिलेगी। इसे १ चावल भर की मात्रा मे दूध के साथ देने से श्वास, कास, निर्वलता तथा वात के रोग मिटते हैं। इसका सेवन भोजन के पश्चात् करना चाहिये। [व० चन्द्रोदय]

कु कुमादि चूर्ण [रसायन] तथा कु कुमादि तैल के प्रयोग—देखिये, रसचिंतामणि, योग रत्नाकरादि ग्रन्थो मे। विस्तारभय से यहा नही दिये जा सकते।

कैथ (Feronia Elephantum)

फलवर्ग एव जम्बीरकुल (Rutaceae) के इसके वहुवर्ष जीवी वृक्ष वेल वृक्ष के सदृश २५-३० फीट ऊचे तथा शाखाओ पर दृढ सरल कांटों से युक्त होते हैं। इसके तने और शाखाओ की छाल पर ववूल के गोद जैसा निर्यास निकलता है।

पत्र—एकान्तर सयुक्त १-१ सींक पर ३ से ७ तक चिकने, छोटे, मेहदी पत्र जैसे किन्तु उनसे कुछ वडे होते हैं। इन्हे मसलने से सुगध आती है। पुष्प—ग्रीष्मकाल मे छोटे रक्ताभ श्वेत वर्ण के होते हैं।

फल—गोल, छोटे वेल जैसा, ऊपरी आवरण हरिताभ श्वेत, कडा एव खुरदरा तथा अन्दर का गूदा वीज से युक्त कच्ची दशा में श्वेत तथा पकने पर कुछ लाल, मधुराम्ल होता है। यह शीतकाल मे पकता है। हाथी प्राय इस फल को ऐसे ही निगल जाता है, किन्तु चमत्कार यह कि फल का गूदा तो उसके उदर में रह जाता है और गूदारहित अखडित फल मल के साथ बाहर आता है। शायद इसीलिये इसके लेटिन नाम मे हाथी पाचक 'ऐलेफेन्टम' शब्द की योजना की गई है।

इसके वृक्ष प्राय भारत मे तथा दक्षिण और गुजराथ के जगलो, शहरो व गांवो मे प्रचुरता से होते हैं।

नाम—

सं०—कपित्थ [वन्दरों को प्रिय], दधित्थ [दही जैसा गूदे वाला], सुरभिच्छद [सुगन्धित पत्र युक्त], दतशठ।
हि०—कैंथ, कैंत, कवीट।
वं०—कठबेल, कैंत वेल। म०—कवठ, कवीट।
गु०—कोठु। अं०—वुड एपल [Wood Apple]
ले,—फेरोनिया एलेफेंटम।
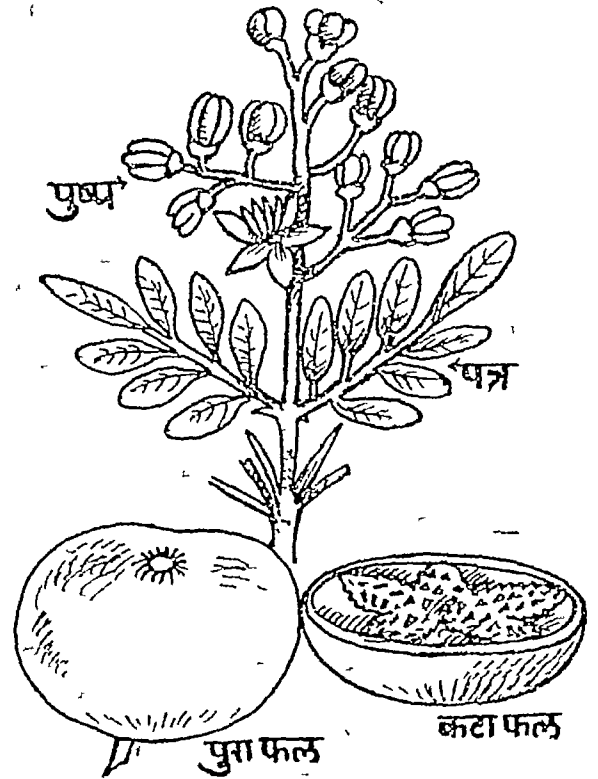
रासायनिक संघठन—

फल के गूदे मे साइट्रिक एसिड प्रचुर परिमाण मे, पिच्छिल द्रव्य तथा क्षार जिसमें पोटाशियम, लोह और खटिक होते हैं। पत्तियो मे एक सुगन्धित उडनशील तैल रहता है।

प्रयोज्य अङ्ग—फल, पत्र, त्वक्, निर्यास।

गुणधर्म और प्रयोग —

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर विपाक मे कटु एव शीत वीर्य है। यह वातपित्तशामक, रोचक, लेखन, रक्तरोधक तथा तृष्णा, शोथ, अतिसार, प्रवाहिका, विष आदि नाशक है।

कच्चा पका—

कसैला, अकण्ठ्य (स्वर को विगाड़ने वाला), रोचक, कफनाशक, लेखन, रूक्ष, लघु, ग्राही, वातकारक एवं विप नाशक है।

रक्तातिसार और आमातिसार मे आन्त्र सकोचक गुण से यह कार्य करता है। इसकी चटनी और पतला सार उत्तम वनता है। इसके गूदे को शुष्क कर चूर्ण वना अतिसार प्रवाहिका मे देते हैं। कपित्थाष्टक चूर्ण मे प्राय यही लिया जाता है।

(१) हिक्का और वमन पर—इसका रस अवस्थानुसार ७ माशे से १। तोले तक लेकर उसमे पीपल चूर्ण और शहद मिला वार वार चाटें। —चरक

किसी किसी को कच्चे फल का रस अहितकर होता है, अत पके हुये सुगधित फल के गूदे को स्विन्न कर रस निकाल १ तोले से ५ तोले तक की मात्रा मे पीपल चूर्ण और शहद मिला थोडा थोडा चटावें। यही प्रयोग सुश्रुत ने सामान्य वमन चिकित्सा मे दिया है।

—सुश्रुत उ त अ ४९

(२) श्वासरोग मे—इसका रस ७॥ माशे से १। तोले तक की मात्रा मे थोडा शहद मिला कर चटावे। पके फल का रस ठीक रहेगा।

(३) कर्णशूल पर—इसके रस के साथ विजौरा नीबू और अदरख का रस मिला मदोष्ण कर कान मे डालने से लाभ होता है।

पका फल—

कण्ठ्य (कण्ठ को साफ करने वाला), वातपित्तशामक, गुरु, ग्राही, मधुर, श्वास, कास, अरुचि, तृष्णा, हिक्का आदि नाशक है। चरक और सुश्रुत ने इसे वातकफनाशक माना है। इसकी पेया ग्राही और पाचक होती है। इसका शर्वत या चटनी अतिलालास्राव, गलक्षत निवारक, मसूढो को दृढ करती है। मुख, मसूढे और गले के विकारो पर इसके गूदे का चर्वण लाभ करता है। जहरीले कीटक दश पर गूदे का लेप लगाते हैं। इससे शोथ और वेदना दूर होती है। गूदे को तैल मे पकाकर तैल को वार वार लगाने से दाद, खुजली आदि चर्मरोगो पर लाभ होता है।

(४) वालकों के उदरशूल पर—गूदे के शर्वत में वेलगिरी का चूर्ण मिला पिलाते हैं।

(५) मूर्च्छा पर—इसके गूदे के चूर्ण के साथ समभाग हरी मूग, नागरमोथा, खस, जौ, सोठ, मिर्च व पीपल का महीन चूर्ण मिला वकरे के मूत्र में खरल कर वत्तिया वनावे। आखो मे इस वत्ती के आजने से अपस्मार, उन्माद, सर्पदश, विषविकार और पानी में डूवने से हुई मूर्च्छा दूर होती है। —भा. भै. र.

(६) अन्नद्वेष एव अरुचि पर—इसके गूदे के साथ सोठ, मिर्च, पीपल का चूर्ण तथा शक्कर मिला मुख मे धारण कराते हैं। यही प्रयोग पैत्तिक उदर रोगो पर दिन मे २-३ वार खिलाया जाता है।

पत्र—

इसके कोमल पत्ते पाचक, वातानुलोमक, अतिसकोचक, वेदनास्थापन, अश्मरी सचय निवारक, वमन, अतिसार, हिक्का, शोथादिनाशक हैं।

वेदनायुक्त शोथ पर पत्रो को गरम कर वाधते हैं। ग्रहणी, अतिसार, शर्करा, आनाह (अफरा) मे पत्रस्वरस पिलाते हैं। प्रवल पित्त शमनार्थ पत्र-रस को दूध मे मिलाकर पिलाते है। कर्ण पीड़ा पर पत्र-रस कान मे डालते हैं। मसूढो की पीडा एव गले के रोगो पर पत्तो को पानी पकाकर कुल्ले कराते हैं।

(७) हिक्का पर—पत्तो का स्वरस धूप मे गरम कर सु घाने से हिक्का का नाश होता है। —भा भै र.

(८) श्वेत प्रदर पर—पत्तो के साथ वास के पत्तो को समभाग पीसकर शहद के साथ दिन मे १ वार चखने से लाभ होता है। —वगसेन

(९) कामला पर—पत्र रस ५ तोले तक गौदुग्ध मे मिला नित्य एक वार पिलाते है अथवा पत्र कल्क

को दही मे मिश्री मिला खिलाते है। तथा फलो को पीसकर शरीर पर लगाते हैं।

(१०) शीतपित्त पर—पत्तो को जीरा के साथ पानी मे पीस छानकर शक्कर मिला पिलाते हैं।

(११) बालरोगो पर—इसके पत्तो के साथ चूका, वेरी और मकोय के पत्तो को पीसकर सिर पर लेप करने से वालक का सिर दर्द, वमन और अतिसार नष्ट होता है। यदि वालक का सिर तपता हो तो चन्दनादि शीतल औषधियो को घृत मे मिला लेप करें। —ग नि

(१२) ज्वरजन्य दाह पीडा आदि पर--इसके पत्तो के साथ विजौरे नीवू के पत्र, खट्टावेर, विदारीकन्द, लोध और अनार के पत्तो को पीसकर मस्तक, नाभी और पेडू पर लेप करने से शरीर की दाह, पीडा, मोह वमन और तृष्णा का नाश होता है। (वा भ चि. अ १)

(१३) कच्ची रसायन के सेवन से हुई विकृति पर--इसकी पत्ती के साथ चौलाई के पत्ते तथा कदली पुष्पो की नन्ही नन्ही कलिया जो नीचे झड जाती हैं उन्हे सव समभाग लेकर अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर नित्य दो वार ताजा क्वाथ १४ दिन तक पिलावें। तैल, लालमिरच, खटाई आदि से परहेज करें तथा स्नान भी न करें। १५ वें दिन वकरी की लेंड़ियो को गोमूत्र मे पीस सर्वाङ्ग पर लेप कर ३-४ घण्टे वाद स्नान कर भोजन करे। सर्व-विकारो की शाति होती है। (व गुणादर्श)

छाल—

वृक्ष की छाल तथा फलो के ऊपर की छाल-त्वग्रोग एव पैत्तिक विकार नाशक है।

(१४) छाल का चूर्ण या क्वाथ पैत्तिक विकारो पर देते हैं। वृक्ष की छाल, पुष्प, पत्र फल और मूल, इस पचकपित्थ को एकत्र लेकर पाताल यत्र द्वारा तैल खीचा जाता है जो व्यङ्ग, किलास, कुष्ठ, दद्रु आदि त्वचा के रोगो पर अभ्यङ्गार्थ काम मे लिया जाता है।

निर्यास (गोंद)–

स्निग्ध एव मार्दवकर, जलन तथा शोथ को दूर करने वाला है। इसमे प्राय कैथे के गुण भी मिलते है।

(१५) इसे प्रवाहिकायुक्त अतिसार एव आमातिसार मे शहद के साथ सेवन कराते हैं।

पुष्प—

विष प्रतिरोधक एव शारीरिक ऊष्मा निवारक है।

(१६) फूलो के चूर्ण को दूध और मिश्री के साथ प्रात साय सेवन करने से शरीर की विशेष उष्णता, गरमी आदि शीघ्र शात होती है।

बीज—त्वग्रोग तथा मूषक विष नाशक हैं।

(१७) बीजो का तैल अथवा बीजो के कल्क को तिल तैल मे पकाकर खुजली, दाद, विसर्प आदि चर्म रोगो पर लगाने से लाभ होता है। चूहे के विष पर भी इसी तैल को लगायें। मस्तक शूल पर भी इसका प्रयोग करें।

यह तैल--कसैला, ग्राही, स्वादिष्ट तथा पित्त, कफ, हिक्का और वमन पर भी उपयोगी है।

नोट—मात्रा—फल का गूदा २ से ४ तोला, स्वरस १-२ माशे, क्वाथ ५ से १० तोला, पत्र या पुष्पों का कल्क ३-३ माशे। इसके अत्यधिक सेवन से हुए विकारों पर लवण शर्करा और कालीमिरच का प्रयोग करते हैं।

विशिष्ट प्रयोग–

(१) कपित्थाष्टक चूर्ण—इसका गूदा (शुष्क चूर्ण) ८ भाग, शर्करा (खाड) ६ भाग तथा अनार के बीज, तिन्तडीक, कोकम[1], वेलगिरी के फूल, अजमोद, पीपल ३-३ भाग और कालीमिरच, धनिया, पीपलामूल, नेत्र-वाला, काला नमक, अजवाइन, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर), चित्रक व सोठ १-१ भाग, इन सवका महीन चूर्ण वना लें।

मात्रा—१ से ४ माशे तक सेवन कराने से गले के समस्त विकार नष्ट होते हैं, तथा अतिसार, क्षय, वायु-गोला, ग्रहणी, कास, श्वास, अरुचि, हिक्का आदि पर लाभ करता है। (शा स)

(२) कपित्थाद्य घृत--इसका रस खट्टे, अनार का रस तथा आमला रस ४-४ सेर, एकत्र घृत दो सेर मे मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले।

इस घृत के लगाने और पीने से क्षार प्रयोग से उत्पन्न वेचैनी एव दाह की शान्ति होती है। (व से)

---

[1] पकी हुई जूनी इमली का गूदा ले सकते हैं। किन्तु कोकम (अमसोल) लेना उत्तम है। देखो कोकम के प्रकरण में नोट।

कैल [Pinus Excelsa]

देवदारु कुल (Coniferae) की इस वनौषधि के वडे वडे ऊचे वृक्ष चीड के वृक्ष जैसे ही होते है। यह चीड की ही एक जाति विशेष है। इसकी छाल मुलायम वादामी रग की तथा पत्ते डालियो पर एक साथ ५-६ गुच्छो के रूप मे होते हैं। ये पत्ते नील हरित वर्ण के दूर स सुन्दर चमकते हुए दिखाई देते हैं। फूल-साधारण लम्व गोल होता है। वृक्ष मे नियसि (गोद) कम निकलता है।

इसके वृक्ष चीड वृक्ष के साथ ही साथ हिमालय के गढवाल, कुमाऊ, सिक्किम आदि स्थानो पर तथा पजाव मे भी पाये जाते हैं। इसे हिन्दी मे कही कैल, कुएल, केरू, वेयर, चिल, कचिलौ आदि नामो से पुकारे जाते हैं। लेटिन मे--पायनस एक्सेलसा।

गुण धर्म और प्रयोग

यह कफ, कण्डु आदि चर्म रोग नाशक है। इसके वीज और छाल से एक तैल निकाला जाता है, जो कयूएल नाम से प्रसिद्ध है।

इसके तैल का प्रयोग श्वास नलिका शोथ से उत्पन्न कास, श्वास आदि कफ विकारो पर वहुत लाभकारी होता है। इसमे कफ उत्पन्न होने की क्रिया कम होती है, तथा कफ की दुर्गन्ध नष्ट होती है।

दाद, खुजली आदि जीर्ण एव शुष्क चर्म रोगो पर इस तैल को लगाते हैं। तथा पिलाते भी हैं। इसकी छाल के कल्क का लेप भी किया जाता है।

कोकम [Garcinia Indica]

फल वर्ग एव नागकेशर कुल (Guttiferae) की इस वनौषधि के सुन्दर, पतले झाडीदार वृक्ष २०-३० फुट ऊचे होते हैं। शाखाए कोमल एव झुकी हुई, तथा छाल ऊपर की ओर काली अन्दर से पीताभ होती है। पत्र-३ से १० इच लम्वगोल, वर्छी या वल्लम जैसे, २ से ४ इच चौडे, चिकने, गहरे हरे रग के अखण्ड होते हैं। फूल छोटे, तथा फल—नारगी जैसे गोल कच्ची दशा मे हरे, पकने पर लाल होते है, फल का रस पीला होता है। वीज--प्रत्येक फल में ५ से ८ वीज श्वेत वर्ण के वडे एव चपटे, फल के गूदे मे दवे हुए होते है।

शीतकाल मे पुष्प आते हैं तथा ग्रीष्म काल मे फल पकते हैं। वीज निकाले हुए फलो को शुष्क कर तथा कुछ नमक का पानी देकर कोकम या आमसोल नाम से (कुछ लाल काला सा यह) वाजार मे पसारियो के यहा विकता है। इसे खटाई के रूप मे दाल शाक आदि मे डालते हैं, चटनी, शर्वत आदि वनाते हैं। यह खटाई इमली या आम की खटाई की अपेक्षा निर्दोष एव पथ्यकारी होती है।

वीजो से निकाला हुआ तैल शीघ्र ही जम कर घृत या मोम जैसा हो जाता है। इस जमे हुए तैल के श्वेत
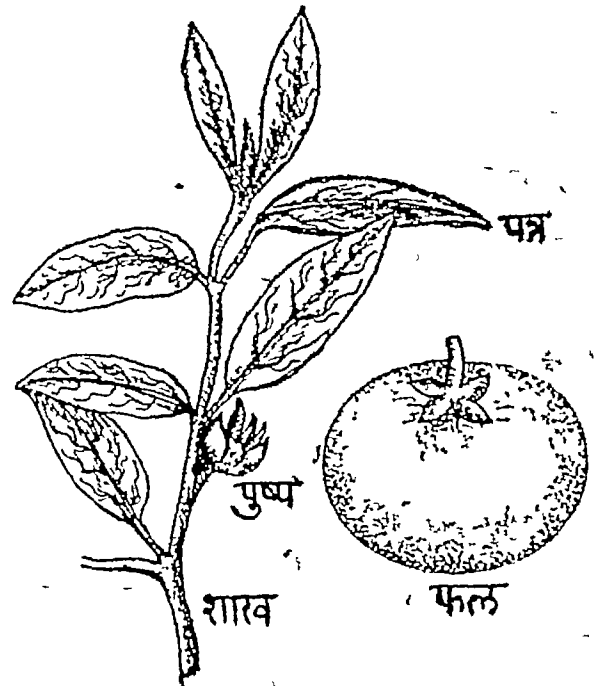
गोले बाजार मे विकते है। यह घृत के स्थान मे खाया जाता है, औषधिकार्य मे लिया जाता है तथा इसकी मोमबत्तिया बनाकर जलाते भी हैं।

नोट—(१) संस्कृत में तिन्तड़ी, तिन्तडीक नाम इमली के लिए प्रसिद्ध है, तथा कोकम को भी यही पर्यायवाची नाम दिया गया है। अतः भ्रम होने की सम्भावन है। मालूम होता है इमली के प्राय: सब गुण इसमे होने से इसे भी तिन्तिडी नाम दे दिया गया है। तथापि तारतम्य की दृष्टि से इसमे यह विशेषता है कि कफ के विकारों पर भी इसका प्रयोग निर्भयता से किया जा सकता है इमली का नहीं। हां जूनी इमली का उपयोग कफ विकारों पर किया जाता है, नवीन इमली का नहीं।

(२) चरक ने 'हृद्य दशेमानि' में इसकी (वृक्षाम्ल) गणना की है। प्राचीन आचार्यों ने 'चतुरम्ल' तथा 'पञ्चाम्ल' में इसकी योजना की है। इसके साथ अम्लवेत, जंबीरी नीवू तथा कागजी नीबू के मेल से चतुरम्ल तथा इसी में खट्टा अनार या बिजौरा नीबू मिलाने से पंचाम्ल होता है।

उत्पत्ति स्थान—इसके वृक्ष दक्षिण भारत के पश्चिम पार कोकण, मलाबार, गोवा आदि मे प्रचुरता से पाये जाते हैं। तथा मलाया, चीन, जावा, सिंगापुर मे होते हैं।

नाम—

सं०—वृक्षाम्ल (इसका सर्वाङ्ग अम्ल होने से), तिंतिडीक रक्तपूरक (रक्तवर्ण फल वाला), चुक्र।
हिं०—कोकम, विषांविल, पहादा, डांसरा, समाकदाना।
म०—आमसोल, कोकम, रातांवा, कलावी।
ब०—म्यांगोस्टीन, तेंतुल।
अं०—Kokum butter tree(कोकम बटर ट्री), Red mango (रेड म्यांगो), म्यांगोस्टीन(Mangosteen)[1]

[1] सिंगापुर की ओर कोकम को मंगुस्तान कहते हैं यह म्यांगोस्टीन का ही अपभ्रंश है। सिंगापुरी मंगुस्तान के फल कलकत्ता में विकते हैं। यह बहुत ही रुचिकर और पाचक होता है। आहार हजम न होता हो, अतिसार या वमन हो, मुख पाक हो तो इन फलों को खाने से विशेष लाभ होता है अत: सिंगापुर और कलकत्ते की ओर यह मंगुस्तान संग्रहणी, अपचन, वमन, तथा मुख पाक में बहुत व्यवहृत होता है। इस सिंगापुरी कोकम तथा अपने यहा के कोकम में अन्तर केवल इतना ही है कि यहां का कोकम अम्ल और वह मधुर होता है।
—वै० आप्पाशास्त्री साठे।

ले०—गार्सिनीया इंडिका, गा. परपूरिया (G Purpurea)

रासायनिक सङ्घठन—

बीजो मे ३० प्र श. हलके पीले रंग का तैल होता है, जो जमने पर घृत जैसा हो जाता है। इसे कोकम तैल या घी या मक्खन (Kokum Butter) कहते हैं। फलो मे सेल्युलोज (Cellulose) होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—फल की छाल, वृक्ष की छाल, तैल और पत्र।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, अम्ल (कच्चा फल), मधुराम्ल (पका फल), विपाक मे अम्ल तथा उष्ण वीर्य है।

कच्चा फल—अम्ल रस युक्त, उष्ण, कफ पित्त कारक एवं वात शामक, आमातिसार नाशक है।

पकाफल तथा उसकी छाल (अमसोल)—

किंचित् कषाय युक्त मधुराम्ल, गुरु, उष्ण, सग्राही, रोचक, रोपण, रूक्ष, दीपन, वातकारी, यकृदुत्तेजक तथा कफ, तृषा, रक्तार्श, ग्रहणी, अतिसार, गुल्म, शूल, हृद्रोग, क्षय, उदर कृमि, रक्त विकार आदि नाशक है। इसका शर्बत दाह, तृषा, व्याकुलता, निद्रानाश आदि पैत्तिक विकारो का नाशक है। ग्रीष्मकाल मे यह शर्बत शांतिप्रद होता है।

रक्त प्रवाहिका पर—इसका ताजा गूदा ६ माशे तक या सूखा अमसोल १ तोला तक दूध मे मिलाकर तुरन्त ही पिलाने से लाभ होता है।

(२) आमातिसार पर—शुष्क फल के चूर्ण को २-३ माशे तक १ तोला घृत और तैल के मिश्रण मे मिला थोडा गरम कर सेवन करने से पीडा एव आध्मानसहित आमातिसार नष्ट होता है।

(३) अम्लपित्त पर—गूदा या चूर्ण के साथ छोटी इलायची के दाने और शक्कर मिला चटनी बना कर भोजन करने के साथ लेने से लाभ होता है।

(४) रक्तार्श पर—इसकी चटनी या चूर्ण को दही के ऊपर की मलाई मे मिला गरम कर खिलाते हैं। दिन मे २-३ वार इस प्रकार से रक्तस्राव बन्द होता है।

(५) गुल्म पर—इसका स्वरस अथवा फाण्ट थोडा सेंधा नमक मिला पिलाते रहने से लाभ होता है।

तैल–

बीजो का तैल–पोषक, उपलेपक, स्निग्ध, स्तभक एव व्रण-रोपक है। इसका मलहम चर्म रोगो के लिये लाभकारी है। पाश्चात्य वैद्यक मे इसका भी उपयोग मलहम बनाने के लिये आधार द्रव्य (base) के रूप मे किया जाता है। फुफ्फुस के रोग तथा शारीरिक निर्बलता मे यह तैल कॉडलिवर आइल के समान ही उपयोगी है।

(६) रक्त प्रवाहिका या आमातिसार पर–इस तैल को गरम कर १-२ तोले की मात्रा मे दूध २ पाव मे मिला पिलाते हैं या आध तोला तैल को मिश्री मे मिला दिन मे दो बार देवे। कुछ दिन इस प्रकार लेते रहने से पूर्ण लाभ होता है।

(७) अर्श की अवस्था मे गुदा पर—इस तैल मे सीसा घिसकर लेप करते हैं।

(८) जीर्ण ज्वर मे– शुष्क कास हो, शक्ति क्षीण हो गई हो तो यह तैल मात्रा १ तोला मिश्री मिला दिन मे दो बार प्रात साय लेते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

(९) शीतकाल मे हाथ, पैर, होठ आदि के फटने पर, पाददारी (बिवाई) पर–इस तैल के साथ रेंडी तैल तथा गधरहित वेसलीन (सुगन्धित नही, इसके अभाव मे मोम लेना उत्तम है) समभाग एकत्र कर एव गरम कर मिश्रण के अच्छी तरह मिल जाने पर शीशी मे भर रखें। इसे लगाते रहने से शीघ्र लाभ होता है। अथवा केवल इसी तैल को गरम कर लगाते रहने मे भी लाभ होता है। उक्त मिश्रण रात्रि के समय लगाना ठीक होता है।

पत्र—इसके पत्ते सग्राही एव सकोचक है।

(९) अतिसार तथा रक्त प्रवाहिका पर–कोमल पत्तो को केले के पत्तो से लपेट कर पुटपाक विधि से कण्डो की गरम राख मे भून कर ठडे दूध मे मसल कर तुरन्त ही पिलाते है। अथवा इसके उक्त प्रकार से पुट-पाक किये हुए पत्तो को पीसकर २-२ माशे की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार दूध मे मिलाकर पिलाते हैं।

छाल और पंचाङ्ग—

स्तम्भक और सकोचक हैं।

(१०) अर्श पर–इसका पचाङ्ग २ भाग, भिलावा का गूदा १ भाग तथा जीरा १ भाग एकत्र पीसकर, मात्रा–१० माशे तक घृत के साथ खिलाने से अन्दर और वाहर के अर्शाकुर नष्ट होते हैं। (व गु)

(११) घृत के अजीर्ण पर—अधिक घृत के खाने से उदर मे अफरा हो तो छाल या पंचाङ्ग का क्वाथ पिलायें।

(१२) शीतपित्त पर छाल के या फल के रस की मालिश कर गरम जल से स्नान करे तथा फल की छाल (अम-सोल) २ तोला को १ पाव जल मे भिगो कर प्रात इसे छानकर पीने से २-३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। कोई कोई इसमे मिश्री भी मिलाते हैं।

कोकीन [Erythroxylon coca]

यह अपने स्वकुल (Erythroxylaceae) की प्रधान बूटी है। इसके सुन्दर पौधे ६-७ फीट तक ऊचे तथा पत्ते पतले, साधारण फीके हरित वर्ण के कुछ अण्डाकार तीक्ष्णधारा युक्त किनारे वाले होते है।

यह विशेषत दक्षिण अमेरिका की बूटी अब भारत-वर्ष, जावा, सीलोन, वेस्ट इ डीज आदि प्रदेशो मे प्राय बागो मे लगायी जाती हैं। भारत के बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, तिनेवल्ली आदि स्थानो में विशेषकर वनस्पति सम्बन्धी (Botanical) उद्यानो मे लगायी जाती है।

इस बूटी की पत्तियो का मादक एवं विषैला क्षार तत्व ही कोकीन या कोकेन नाम से प्रसिद्ध है।

रासायनिक संगठन–

पत्तियो में प्रधान क्षार तत्व 'कोकीन' ० १५ से ० ८ प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त सिनेमिल कोकीन (Cinnamyl Cocaine), ट्राक्सिलीन (Troxilline A B) बेंझाइल इगोनाइल (Benzoyl Ecgonine,) ट्रापेकोकीन (Trope Cocaine), हायग्रीन (Hygrine) आदि क्षार भी पाये जाते हैं। इन सब क्षार तत्वो को सम्मिलित रूप से 'कोकीन' ही कहा जाता है।

यह कोकेन रगहीन, ग धहीन, कटुस्वादयुक्त कण

रूप मे होता है। यह अल्कोहल, ईथर, क्लोरोफार्म तथा बेंजीन (Benzene) मे घुल जाता है। इसका मुख्य व्यवहार सज्ञानाशार्थ ही किया जाता है।

प्रयोज्य अ ग—इसका क्षार तत्व तथा पत्र।

गुणधर्म और प्रयोग—

इसके पत्ते—विशिष्ट गधयुक्त कटु, उत्तेजन, शमन, लालाप्रसेक जनन, जीवनीय, श्लेष्म निस्सारक, वाजीकरण (वृष्य), आर्त्तवजनन, दीपन, पौष्टिक होते हैं। गरिष्ट भोजन के वाद पत्र को अत्यल्प प्रमाण में चबा लेने से शीघ्र ही भोजन पच जाता है। पत्तो को थोडे से चूने के साथ खा लेने से बहुत परिश्रम करने पर भी थकावट नही आती। किसी भी रोग के पश्चात् होने वाली शारीरिक अशक्ति को दूर करने के लिये पत्ती का सेवन कराया जाता है। अधिक मात्रा मे लेने से वहुत नुकसान होता है। पत्ती को पीसकर किसी अंग पर लेप करने से सज्ञाशून्यता पैदा हो जाती है।

वालको के उदरशूल पर—गरम दूध को इसके पत्ते से हिलाकर दूध मात्र पिला देने से शूल शान्त होता है। कास श्वास जन्य कठ के विकारो पर पत्ते को चबाते हैं या सिगरेट मे रख धूम्रपान करते हैं या क्वाथ वनाकर देते है।

कोकीन (क्षार तत्व) पत्रो से ही प्राप्त होने वाला यह स्नायुमण्डल मे प्रबल उत्तेजना पैदा करता है। इसका प्रभाव बहुत कुछ अफीम जैसा होता है, किन्तु उसकी अपेक्षा इसका प्रभाव बहुत देर तक वना रहता है, तथा उग्रता कम रहती है। इसमे कामोद्दीपक (वाजीकरण) गुण विशेषत होने से ऐय्याशवाजी एवं व्यभिचारी नर-पशु इसका वहुत व्यवहार करते हैं[१]। वे इसके आदी हो जाते है। बगैर इसका सेवन किये उन्हे चैन नही पडता। आगे चलकर उन्हे इसके घोर दुष्परिणामो का शिकार होना पडता है। मस्तिष्क की निर्वलता, विपादयुक्त उन्माद जैसी अवस्था, धातुक्षीणता, विभ्रम, चचलता, चिडचिडापन, अनिद्रा या निद्राधिक्य, क्षुधानाश, नपुंसकता आदि विकारो से उनका जीवन दुखमय वन जाता है। शारीरिक, मानसिक एव नैतिक शक्ति का भयकर विनाश हो जाता है। अत इसका सेवन तुरंत ही बन्द कर लाक्षणिक चिकित्सा करानी चाहिये।

कोकीन मे शरीर के किसी भी स्थान विशेष को सज्ञाशून्य कर देने का गुण विशेष प्रभावशाली होने से साधारण शल्य चिकित्सा मे इसका अधिक उपयोग किया जाता है। इसका यह स्थानीय संज्ञानाश का प्रभाव ३ मिनट मे प्रारम्भ होकर लगभग आधे घन्टे रहता है।

विशाक्त प्रभाव—

इसे ३ ग्रेन की मात्रा मे त्वचागत इ जेक्ट करने से अथवा १० से १५ ग्रेन तक मुख द्वारा लेने से निम्न तीव्र घातक विष के लक्षण प्रकट होते हैं—मुख तथा गले की शुष्कता, जिह्वा शून्यता, हाथ पैरों मे शून्यता तथा झुनझुनी प्रतीत होना, हृल्लास, आमाशय मे ऐठन, शिर शूल, भ्रम, मूर्च्छा, अत्यधिक नीलिमा, कनीनिका प्रसारित, नाड़ी की गति तीव्र अनियमित एव बीच बीच मे अव्यक्त होना, श्वास प्रश्वास मे कठिनता, स्वेदाधिक्य, आक्षेप प्रलाप आदि।

चिकित्सा—स्टमक ट्यूब द्वारा या वामक औषधि द्वारा विष को वाहर निकाल देने का प्रयत्न करे। चारकोल (Charcoal) या पोटाश परमैंग्नेट के गरम

---

[१] ये लोग कामोद्दीपनार्थ इसे पान के वीड़े में अत्यल्प प्रमाण में खाते हैं। वेश्यायें (वाजारू स्त्रियां) भी इसका सेवन करती हैं। सरकारी प्रतिवन्ध होते हुए भी अफीम आदि मादक द्रव्यों की भांति इसका भी गुप्त रीति से वहुत व्यापार एवं व्यवहार चालू है। वेश्यायें तो इसका इञ्जेक्शन भी योनी के पास लगा लेती हैं, जिससे योनिसंकोचन होकर संभोग में उसे कोई कष्ट नहीं होता, प्रत्युत विशेष आनन्द आता है। जो इसके विशेष आदी हो जाते हैं। वे इसे एक सींक से अपनी जीभ पर लगा ऊपर से पान का वीड़ा अथवा केवल चूना और कत्था खा लेते हैं; कहते हैं ऐसा करने से इसका प्रभाव कुछ स्थिर रूप से अधिक काल तक वना रहता है। जो कुछ ही यह एक काठ का कीड़ा ही है। जैसे काठ को कीड़ा (घुन) पोला कर देता है तैसे ही यह उनके शरीर को पोला, निस्तेज एवं निर्वीर्य वना देता है।

घोल से उदर प्रक्षालन करें। उत्तेजक औषधि का व्यवहार करे। एमिल नाइट्रेट(Amyl Nitrite) या नौसादर और चूना का मिश्रण शीशी मे भर कर बार बार सुघावें। या ड्यूमिनाल (Duminol)का प्रयोग करें।

कोकेन के पौधे की जड़ का रस–

कृमिनाशक है। कृमिजनित दंतशूल मे इस रस का फाया डाढ या दात के छिद्र मे रख देने से वेदना तुरन्त शान्त होती है।

मसूढे का आपरेशन करने तथा दात निकालते समय इस रस का इजेक्शन देने से इसके क्षार तत्व (कोकीन) के इजेक्शन के जैसा ही स्थानीय सज्ञानाश का गुण होता है। यदि १० मिनट उक्त रस का फाया मसूढे पर रक्खा रहे तो दात निकालने मे कुछ भी पीडा नही होती।

(डा० रामजीवन त्रिपाठी)

कोको [Theobroma Cacao]

इस पिशाचकार्पास या उलटकम्बल कुल (Sterculiaceae) के सुन्दर वृक्ष कोकम वृक्ष जैसे किन्तु अधिक ऊंचे ३०-४० फीट तक होते हैं। पत्र–एकान्तर, विभक्तदलयुक्त, पुष्प—प्राय नियताकार छोटे–छोटे होते हैं। फल–कोकम के फल जैसे ही, तथा फल में बादामी रग के ३-४ बीज होते हैं। इन बीजो को भूनकर चूर्ण कर प्रपीडन द्वारा एक घन वसा (जमने वाला तैल, कोकम के तैल जैसा ही, किन्तु पीताभ-श्वेत तथा हल्की रुचिकारक गधयुक्त एव विशिष्ट स्वाद वाला) प्राप्त किया जाता हैं। इसे थियोब्रोमा आइल (Theobroma Oil) या कोकोआ बटर (Cocoa Butter) कहते हैं।

यह पौधा अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रीका का आदिवासी है। अब यह भारत के दक्षिण मे नीलगिरी पर तथा सीलोन, जावा आदि द्वीपो मे भी बोआ जाता है। इसकी एक जाति बम्बई प्रान्त मे भी बोयी जाती है।

नाम—

हि० म० गु० बं०—कोको

अं.-काकाओ (Cacao), चाकोलेट ट्री (Chocolate tree)। ले.—थियोब्रोमा काकाओ।

रासायनिक सङ्गठन—

इसके उत्तम से उत्तम बीजो मे ५० प्र श वसा, १० प्र श. स्टार्च, अल्बुमिनाइड (Albuminoids) २० प्र श, पानी १२ प्र श, सेल्यूलोज २ प्र श. लवण ४ प्र श तथा थियोब्रोमीन (Theobromine) २ प्र श पाया जाता है।

बाजार में जो कोको का चूर्ण बिकता है (जिसका कही कही चाय या काफी के जैसा ही प्रयोग किया जाता हैं) उसमे से उक्त वसा का बहुताश निकाल दिया जाता है तथा उसके स्थान मे स्टार्च और शक्कर मिला दिया जाता है। इसमे पोषण शक्ति अधिक होती है, किन्तु उत्तेजक शक्ति चाय या काफी की अपेक्षा कम होती है। उसमे जो थियोब्रोमीन होती है, उसकी क्रिया बहुत कुछ केफीन के समान उत्तेजक होती है।

बीजो मे उक्त वसा बीज के बजन से लगभग आधी होती है। इसके साथ जो अन्य नेत्रोजनीय द्रव्य है उनके मेल से यह द्रव्य बहुत पौष्टिक हो गया है। प्रेसिंग क्रिया द्वारा बीजो की वसा अधिकांश मे निकाल ली जाने पर भी कुछ न कुछ उसका अंश रह जाता है। इस प्रकार के बीजो के छिलको को उबाल कर जो अर्क निकाला जाता है वह चाय या काफी के अर्क (Thien and caffeine) के स्थान मे प्रयोजित होता है। बीजो के इन छिलको को जानवरो को खिलाने से खूब दूध देने लगते हैं तथा इनके इस दूध मे मक्खन का प्रमाण भी अधिक होता है।

चाय, काफी और कोको इन तीनो व्यवहारोपयोगी पेय द्रव्यों मे कोको यह वास्तव मे एक पोषक अन्न ही है। इसके महीन चूर्ण का जो पेय बनाया जाता है, उसमे वह पूर्णतया घुल जाता है, चोथा कुछ भी शेष नही बचता। इसके पत्तो मे भी अत्यल्प प्रमाण मे केफीन होता है। अत पत्तो को भी उबाल कर चाय जैसा पेय बनाते हैं।

बीजो की पीताभ श्वेत रङ्ग की वसा जमने पर

कड़ी हो जाती है। यह २५ डिग्री तापमान मे पिघल जाती है। अत गुदवर्त्ती और पेसरीज (Passaries) आदि निर्माण कार्य मे आधार द्रव्य (Vehicle) के रूप मे काम आती है तथा इसका उपयोग सुगन्धित पोमेड, तैल आदि मे भी किया जाता है। इसका यह ताजा मक्खन मलहम, प्लास्टर्स आदि के काम मे भी लेते हैं।

कोटगन्धल (Ixora Parviflora)

इस मंजिष्ठादि कुल (Rubiaceae) की बूटी के सदैव हरे भरे क्षुपाकार छोटे छोटे वृक्ष होते है। छाल–काली, खुरदरी एव रूक्ष होती है। फूल–श्वेत वर्ण के कुछ सुगन्धित बडे बड़े गुच्छो मे लगते हैं। फल–छोटे, गोल, कडे होते हैं।

नाम—

सं०—इस्वर, पिंडीतकी।

हिं०—कोटगंधल। म०—लोखंडी, कुरात, राई-कुटा, माकडी, नेवाली। बं०—रंगन। गु०—नेवारी।

अं०—टार्च ट्री [Torch tree]

ले०—इक्झोरा पर्विफ्लोरा।

इसके वृक्ष पश्चिम, मध्य तथा दक्षिण भारत के जगलो मे अधिकता से होते हैं।

रासायनिक सङ्गठन—

इसकी छाल मे वसायुक्त द्रव्य, टेनिन, लाल रग पाया जाता है। तथा इसकी राख मे कुछ अ श फेरिक आक्साइड [Ferric oxide] होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—छाल और फूल।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह रक्तशोधक, वर्धक और निर्बलता नाशक है।

रक्ताल्पता एव पाण्डु रोग पर—इसकी छाल का क्वाथ [१ तोले छाल मे २० तोले पानी तथा शेषाश ४ तोले] सेवन कराते हैं। इससे निर्बलता भी दूर होतीहै।
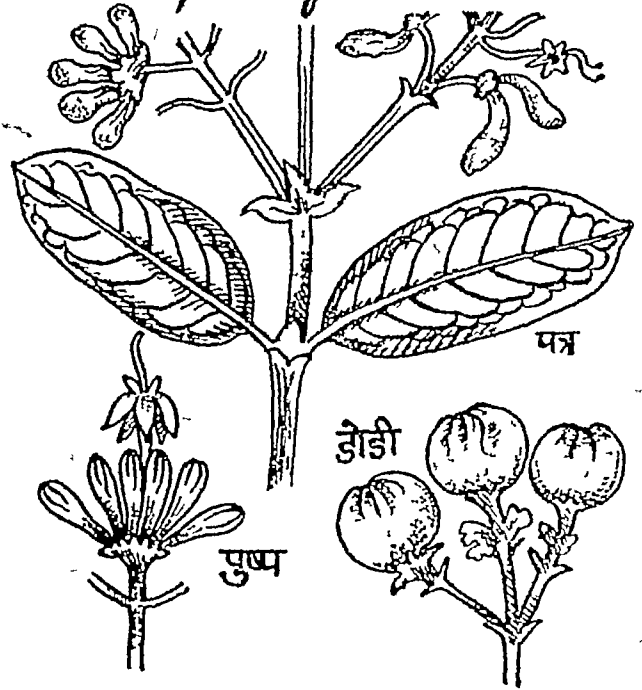
कुकुर कास पर–फूलो का चूर्ण दूध के साथ देते हैं।

नोट–इसकी छालयुक्त लकडी जलाने पर मसाल जैसी जलती है। जंगली लोग इसीसे रात्रि का अन्धकार दूर करते हैं। इसीसे अंग्रेजी में इसे टार्च ट्री [मसाल वृक्ष] कहते हैं।

कौंढ़िया घास [Kondhy Grass]

इस बूटी के मृदुल क्षुप मे मूल के पास से प्राय कई काड निकलते है। काडो की लम्बाई १½ फीट तक होती है। इसकी पत्तियो का किनारा दातदार होता हैं। पुष्प दण्ड १ फुट लम्बा ऊर्ध्वमुखी तथा पीले रग के मुंडक होते हैं। फूल लम्बे वृन्त वाला होता है।

यह बूटी परित्यक्ता तथा चरागाहों मे विशेष होती है। यह गर्मी की ऋतु मे भी हरी भरी रहती है। बह्म-दडी तो सीधी और दृढ होती है, किन्तु यह मदु और

फैलने वाली होती है। कमल की तरह की इसकी नन्ही सी कली वडी मन लुभावनी होती हैं।

नाम--

हिन्दी में विहार की ओर इसकी कली को कोढ़ी कहते हैं। अतः इसका नाम कोंढ़िया [आकर्षक कली वाली] घास रख दिया गया है।

मरेठी—कमरमोडी। वंगला—नेपुरा। उड़िया में विशल्यकर्णी या उढिया आयापान कहते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग —

यह व्रणनाशक है।

व्रण पर—कैसा भी व्रण हो इस बूटी का कल्क विना पानी के वनाकर [सिल पर खूव महीन पीसकर] लगा देवे। वस एक ही वार के लगाने से २-३ घटे मे अपना चमत्कार दिखाती है। डाक्टर लोग आपरेशन के द्वारा जिस व्रण को रोगी को महाकष्ट पहुंचाकर आराम करते हैं वही व्रण [फोडा] इस बूटी को पीस कर तीन वार लगाने से विना कष्ट के आराम होता है।

—श्री कविराज सुधाकर त्रिवेदी, रांची [विहार]

धन्वन्तरि वर्ष २८, अक ४ से

नोट—उक्त बूटी ज्योतिष्मति कुल [Calastraceae] की आयापान बूटी [Eupatorium Ayapan] ही मालूम देती है अथवा उसका ही यह एक अन्य भेद हो सकता है। आयापान बूटी देखिये प्रथम भाग में।

कोदों (Paspalum Scrobiculatum)

यह यवकुल (Gramineae) का एक प्रकार का निकृष्ट अनाज है। यह खेतो मे बोया जाता है। इसका पौधा शाली धान के पौधे जैसा, पत्र नुकीले वर्च्छी जैसे, लम्वे वहुत कम चौडे होते है। पत्रो के वीच मे से वीज युक्त लम्वा कोष निकलता है। जिसमे कंगनी जैसे पीले रंग के गोल गोल वीज या दाने होते हैं। इसका एक भेद वन कोदो है। यह भारतवर्ष की ही खास उपज है, मध्य प्रदेश मे विशेपत विंध्यप्रदेश, दक्षिण मे महाराष्ट्र, गुजराथ, कोकण मे प्रचुरता से तथा उत्तर प्रदेश मे भी कही कही होता है।

नोट—(१) महाराष्ट्र में इसकी चार जातियां रामेश्वरी, शिवेश्वरी, हरकिनी और माजरा नाम की होती हैं। इनमें से माजरा या वनकोदों वहुत ही हानिकारक होती है। इसको वनाने की निम्न विशिष्ट कृति को विना जाने जो इसे वैसे ही पकाकर खाते हैं उन्हें वमन, अतिसार, भ्रम, ग्लानि, माद्यता, कम्पन, मूर्च्छा, प्रलाप, ज्वर आदि विकार होते हैं। इसके दुष्परिणामों के निवारणार्थ केले के पत्तों का रस, अमरूद, गुडमिश्रित कद्दू का रस या हारसिंगार के पत्रों का रस पिलाते हैं। उक्त दुष्परिणामों से वचने के लिये हानिकारक कोदों को एक दिन गोवर और पानी के घोल में भिगोकर दूसरे दिन साफ धोकर धूप में शुष्ककर देने से इसका विष-विकार दूर हो जाता है। फिर इसका भात, वड़ियां, पेय आदि वनाकर खाने से कोई विकार नहीं होता। ध्यान रहे सव कोदों हानिकर नहीं होते और न विशेष स्वास्थ्यप्रद ही होते हैं। जो हानिकर होते हैं वे ही उक्त प्रकार से वनाकर खाये जाते हैं।

(२) यह तृण जातीय धान्य वर्षाकाल के प्रारंभ मे ही वोया जाता है तथा आश्विन, कार्तिक में काट लिया जाता है। इसके बीज का ऊपरी छिलका काले रंग का होता है। कूटकर ऊपरी छिलका या भुसी निकाल देने पर कंगनी या सरसों जैसे पीताभ श्वेत रग के दाने निकल आते हैं। इसे ही कोदों कहते है। इसमे विशेषता यह है, कि भुसी सहित रखने से पचासों वर्ष तक नहीं विगड़ता।

नाम—

सं०—कोद्रव, कोरदूष, कुद्दला इत्यादि तथा वनकोदों की उद्दाल, वनकोद्रव।
हि०—कोदों, कोदव। बं०—कोदो धान्य।
म०—हरीक, कोद्रु। गु०—कोदरो।
अं०—पक्चर्ड पासपेलम (Punctured-Paspalum)।
ले०—पासपेलम स्क्राविक्युलेटम।

रासायनिक संघठन—

बीजो मे दो प्र श एक प्रकार का तैल और ७१.४ प्र श स्टार्च होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

अति शीतवीर्य, वात कफ प्रकोपक, रक्तस्राव रोधक, विबन्ध कारक, उदरकृमि नाशक, यकृत विकार और प्रदाह पर लाभकारी है। किंतु यह अन्न दुर्बलो के लिये हानिकर है। अन्नद्रव शूल पर—जो शूल आहार के जीर्ण, जीर्यमाण या अजीर्ण होने पर उत्पन्न होता है, जो पथ्य, कुपथ्य, भोजन से किसी भी अवस्था मे शात नही होता ऐसे शूल पर इसकी खीर पकाकर देते हैं या इसके भात को दही के साथ खिलाते हैं।

कोधव (*CADABA INDICA*)

इस वरुण या वरना कु (Capparidaceae) की बूटी की वहुशाखी क्षुपाकार बेल किसी वृक्ष आदि के सहारे २० से ४० फीट या इससे भी ऊ ची चढ जाती है। पत्ते—सकड़े, लम्बगोल, ऊपरी भाग हरा या कुछ नीला सा तथा नीचे की ओर फीके रग का होता है। पुष्प—पीताभ श्वेत, शाखाओ के अन्त मे छोटे छोटे गुच्छो मे कड्वे चरपरे गंधयुक्त होते हैं। फलिया—मू गफली जैसी, जामुनी काले रग की दोनों पार्श्वभाग मे चिपटा हुई होती हैं। गरमी मे इन फलियो के पककर फूटने पर इनमे से नारगी र ग का गूदा, राई के दाने जैसे काले वीजो से युक्त निकलता है जो स्वाद मे कड्वा होता है। मूल—भूरी, काले रग की, सुतली से लेकर अगुष्ठ प्रमाण की मोटी होती है, पुराने क्षुप की मूल और भी अधिक मोटी होती है। मूल की वाह्यत्वचा भूरी, काली, पतली तथा अन्दर से पीताभ श्वेत होती है। इसकी वेल की ताजी लकडी तोडने पर तैल सदृश स्राव होता है जो स्वाद मे कड्वा, चरपरा एव गध मे पिसी राई जैसा होता है।

यह बूटी भारत मे राजस्थान, मध्यभारत, गुजराथ, सिंध, काठियावाड, कच्छ, तथा दक्षिण मे कोकण, कर्नाटक और सीलोन मे अधिक पाई जाती है।

नाम—

स०—कृष्णहेमकन्द। हि०—कोधव, कोध।
म०—वेलिवी, हवल। गु०—खरेड्ड, तेलिया हेमकन्द, कालाकटकिया, थानीयु।
अ०—इ डियन क्याडेवा (Indian Cadaba)।
ले०—क्याडेवा इ डिका, क्या. फेरिनोसा (C Farinosa)

रासायनिक संघठन—

पत्तो मे एक तिक्त सार तत्व होता है जो ईथर एवं अल्कोहल मे घुलता है। इसे अतिरिक्त नाइट्रेट, कार्वोनेट तथा अन्य क्षार पाये जाते हैं।

पत्ते—सारक, कृमिघ्न, रज शोधक, ऋतुस्राव नियामक, रक्तविकार निवारक हैं।

मूल—उत्तेजक, पित्तस्राववर्धक, कृमिघ्न, आर्तवजनन, एव उदर वातहर है।

पत्रो का तथा मूल का प्रभाव यकृत और गर्भाशय पर विशेप लाभ होता है।

(१) गर्भाशय के शूलादि विकारो पर—इसका क्वाथ थोडा रे डी तैल मिलाकर दिया जाता है। इससे शूल शात होकर मासिक धर्म शुद्ध एव नियमित होने लगता है।

(२) बाल रोगो पर—रक्तातिसार या श्वेतातिसार (सफेद दस्त होते हो) या सूखा रोग हो तो पत्रो को

पासकर रस निचोड कर पिलाते हैं। अथवा इसके ताजे २॥ पत्रो के साथ २॥ काली मिर्च के दानो को पीसकर दिन मे दो वार दूध के साथ देते हैं। ताजे पत्रो के अभाव मे सूखी फली या डाडी का उपयोग करते हैं। इससे वालको का वमन भी बन्द होता है।

उदर के सूक्ष्म कृमि पर—इसकी जड को दूध में घिसकर पिलाते हैं। तथा बडो को इसी कृमि विकार पर पत्रो या जड का क्वाथ पिलाते हैं।

बालको के ऊपर कफ प्रकोप पर—इसके पत्रो को या डठलो को जलाकर राख को छानकर २ से ८ रत्ती की मात्रा मे दूध के साथ पिलाते है।

(३) सधिवात, मन्यास्तम्भ वात विकार पर—इसके क्वाथ तथा कल्क से सरसों तैल को सिद्ध कर मालिश करते हैं, तथा इसके पत्तो के साथ जिंगन के पत्रो को पीस गरम कर पीडा स्थान पर वाधते हैं। तथा इसकी मूल के चूर्ण को १-१ माशा की मात्रा मे दिन मे दो बार शहद से चटाते हैं।

(४) व्रणो पर—इसके पत्रो की पुल्टिस बना वाधने से वे शीघ्र ही पककर फूट जाते हैं।

नोट—काठियावाड की ओर इसका उपयोग वंग के मारण या भस्मीकरण में विशेष किया जाता है। वहां इसे 'कीमिया का झाड़' कहते हैं।

कोन्दई (*FLACOURTIA SEPIARIA*)

इस तुवरक कुल (Flacourtiaceae or Bixinae) की बूटी के कटकयुक्त छोटे छोटे क्षुप होते हैं। काड अनेक शाखा प्रशाखाओ से युक्त, छाल पीताभ रक्तवर्ण की, पत्र १-२ इच लम्बे दन्तुर किनारेदार, काटे लम्बे, तीक्ष्ण नुकीले, फूल पीताभ १-१ या पृथक् पृथक् चार दल वाले, गुच्छो में लगते हैं। इसके पत्र और फूल प्राय काटो के मूल भाग मे होते हैं। फल छोटे छोटे मटर जैसे, किन्तु मुलायम लाल रग के ग्रीष्मकाल मे पकने पर ये गहरे लाल स्वाद में अम्ल मधुर होते हैं, खाये जाते है।

इसके क्षुप मध्य एव पूर्व वगाल, सुन्दर वन, विहार, उडीसा, कुमाऊं के सूखे जगलो मे तथा दक्षिण मे मद्रास प्रान्त, कारोमंडल का समुद्र तट और सीलोन में प्रचुरता से होते हैं।

नाम—

हि०—कोन्दई, कोदारि, किंग्रो, शेरवान।
म०—अत्रुन, तम्बर। व०—बैंच, पैंच। गु०—लोद्रि।
ले०—फ्लेकोरसिया सेपिआरिया।

गुणधर्म और प्रयोग—

उष्णवीर्य, वातनाशक है।

गठिया वात पर—इसकी छाल को पीसकर तिल तैल मे मिला कुछ गरम कर लेप करते हैं।

मूत्राशय के विकारो पर—इसकी जड़ की राख को पानी मे घोलकर पिलाते हैं।

सर्पदंश पर—पत्तो का शीत निर्यास पिलाते है।

कोसुम (*SCHLEICHERA TRIJUGA*)

इस अरिष्टादि कुल (Sapindaceae) की वनौषधि का सुन्दर वृक्ष मध्यम ऊंचाई का होता है।

छाल–मोटी ½ इंच जाडी, नरम, हल्के बादामी रग की एवं चिकनी होती है।

पत्र–२-६ इंच लम्बे, १-३ इंच चौडे किंचित् अंडाकार एव अनीदार तथा शाखा के नीचे के पत्ते ऊपर के पत्तो से अपेक्षाकृत कुछ बडे होते है। वसत ऋतु मे नवीन पत्र गहरे लाल रग के, फिर वे ताम्रवर्ण के हो जाते हैं।

पुष्प–मंजरी मे हरिताभ पीतवर्ण के छोटे छोटे।

फल–¾ से १ इंच तक लम्बगोल, किंचित् नुकीले, जायफल जैसे तथा प्रत्येक फल मे बीज गोल, ¾ इंच लम्बे, ½ इंच चौडे, लाल रङ्ग के १ से ३ तक होते हैं। फल का गूदा श्वेत अम्ल एव रोचक होता है। वसत (फरवरी, मार्च) मे पुष्प तथा पुष्पो के साथ मंजरियो मे फल लगते हैं जो ग्रीष्म (मई) मे पकते हैं। बीजो का तैल निकालते है जो औषधि प्रयोगो मे तथा शृंगार साधनो में उपयोगी है। बगाल मे बीजो को पक कहते हैं। इसके वृक्ष की लाख सबसे उत्तम मानी जाती है। इसीसे सस्कृत मे इसे 'लाक्षाद्रुम' भी कहते हैं।

हिमालय प्रदेश मे सतलज से नेपाल तक, पश्चिम बगाल, बिहार, छोटा नागपुर, मध्य भारत तथा दक्षिण मे कोकण, सीलोन एव बर्मा आदि के पहाडी स्थानो मे विशेष होते हैं।

नोट—जंगली आम या कोशाम्र इससे भिन्न है। देखें आम्र का प्रकरण भाग १ में।

नाम—

सं०—कोशाम्र, कपिवृक्ष, क्षुद्राम्र।

हिं०—कोसुम, कुसुम, गोसुम, जमोआ, सुमा।

बं०—कुसुम, केओड़ा, जलपाई। म०—कोशिंब, कोसम। गु०—कोसमी, कोसुम्ब।

अं—सीलोन ओक (Ceylon Oak)

ले —स्केलिचेरा ट्रिजुगा।

रासानिक सङ्घठन—

बीजो में वसा ७०.५ प्र श तथा प्रोटीड (Proteids) १२ प्र श। छाल मे टेनिन तथा एक प्रकार का ग्लुकोसाइड और अन्य क्षार द्रव्य पाये जाते हैं।
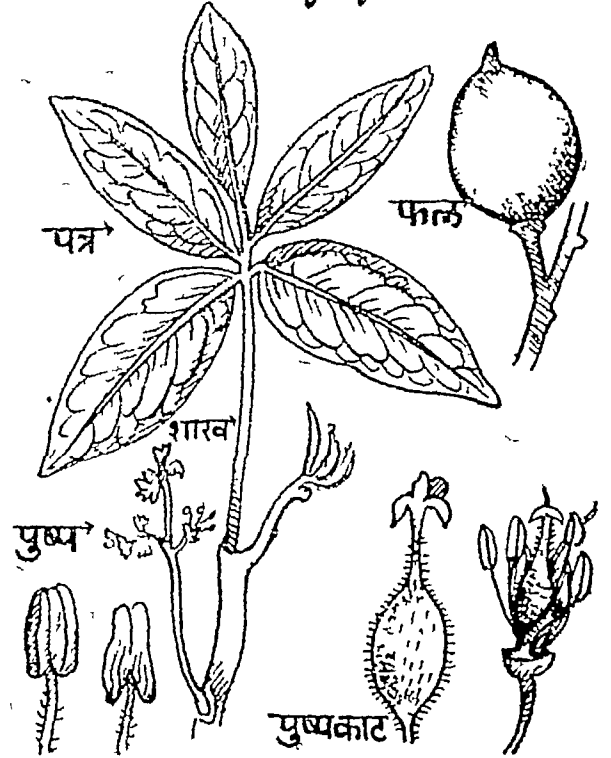
गुणधर्म और प्रयोग—

यह कफनाशक, सकोचक तथा कुष्ठ, शोथ, व्रण, रक्तपित्तादि नाशक है।

छाल–सकोचक, कफ शामक तथा चर्मरोग, प्रदाह और व्रण नाशक है।

छाल को पीसकर तिल तैल मिला खुजली आदि त्वग्रोगो पर लगाते हैं। इस तैल की मालिश से पीठ और कमर की पीड़ा दूर होती है।

मलेरिया पर—छाल का शीत निर्यास (हिमफांट) देते हैं।

कच्चा फल—अम्ल, कसैला, ग्राही, उष्ण और

दुर्जर है। यह पित्तकारक, आन्त्र सकोचक एव वात-नाशक है।

पक्वफल— लघु, अम्ल, मधुर, दीपन, उष्ण, वृष्य, पौष्टिक, हृद्य, वातकफनाशक, आत्र सकोचक एव क्षुधा-वर्धक है।

बीज—स्निग्ध, सुस्वादु, क्षुधावर्धक, पौष्टिक तथा पित्तनाशक हैं। बीजो का तैल कडुवा, कसैला, कुछ मधुर, पुष्टिप्रद, अग्निवर्धक, रेचक, व्रणपूरक, केशवर्धक तथा कृमि, कुष्ठादि चर्मरोग नाशक है। यह तैल खुजली, गज और मुहासो पर लगाया जाता है, आमवात, सिर-दर्द तथा चर्मविकारो पर इसकी मालिश की जाती है। विरेचनार्थ तैल को गरम जल मे मिलाकर देते हैं।

कोहबर बूटी

श्री कविराज विश्वनाथ प्रसाद जी भिषगाचार्य, मकवूलागज, लखनऊ।

[सूखा रोग पर]

इस बूटी का पौधा चौपहल तिल के पौधे की तरह १ इच मोटा, पत्ते कघी के पत्ते जैसे किन्तु अन्तर इतना ही है कि कघी के पत्ते आसपास से लम्बाकार कटे होते हैं तथा इसके पत्ते गोलाकार कटे होते है। फूल गूमे की तरह सफेद और बैजनी होते हैं। बीज फूल के साथ ही वाल मे होते हैं। ये बीज चपटे चिकने सुरवाली से भी अधिक चमकदार होते हैं।

अवध प्रान्त के लोग इसे कोहबर (कोवर) बूटी कहते हैं। यह बूटी प्राय ग्रामो के किनारे तथा बागो व नदी नालो के किनारे और कही कही जगलो मे भी पाई जाती है। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अधिकतर इसका प्रयोग जानवरो के सूखने तथा पतले दस्त होने मे इसकी १ पत्ती ज्वार की पत्ती के साथ लपेटकर मगल या इतवार को खिला देते हैं जिससे जानवरो का सूखना व दस्त होना शीघ्र बन्द होता है तथा वह तन्दुरुस्त हो जाता है।

इस बूटी का बच्चो के सूखारोग पर मेरा अनुभव—

१ इसकी ताजी पत्तियो को पीसकर १-१ माशे की गोलियां बना दिन मे माता के दूध से देवें। अथवा—

२ इसके पचांग को शुष्क कर चूर्ण बना १-१ माशे की मात्रा से दिन मे ३ बार सेवन करावें। अथवा—

३ इसके पचाग का भबके द्वारा जल मिला अर्क खीचकर बलानुसार ३ माशे से १ तोले तक तीनो समय पिलावें। या—

४ पचाग का क्वाथ बनाकर पिलावें तथा स्नान करावें और इसकी ताजी पत्ती का स्वरस और काले तिलो का तैल समभाग तैल विधि से पकाकर बच्चो के शरीर पर मालिश करें। बच्चा अवश्य आरोग्य लाभ करेगा। यह मेरा कई बार का सफलीभूत प्रयोग है।

उक्त प्रयोगो मे से कोई भी योग दे सकते हैं। साथ मे स्नान तथा उक्त तैल की मालिश आवश्यक है। मात्रा बलाबलानुसार घट बढ भी जा सकती है।

—धन्वन्तरि वर्ष १५, अक ११

कोहिबाङ्ग (Hyoscyamas Muticus)

यह कटकारी कुल (Solanaceae) की बूटी बलुचिस्तान, पश्चिम पजाब, अफगानिस्तान, सिंध आदि पहाडी देशो मे विशेष पायी जाती है।

इसमे मुख्य सारतत्व जो हायोसामीन (Hyoscyamine) होता है उसमे आखो की पुतलियो को विस्तृत कर देने का एव मूर्च्छित करने का (Mydriatic) विशेष गुण होता है। फकीर लोग इसका सूक्ष्म-प्रमाण मे धूम्रपान करते हैं। तथा दुष्ट ठग लोग दूसरो को ठगने मारने को इसका धोखे से धूम्रपान कराते हैं।

नाम—

हिन्दी में—कोहिबाग (बलूची नाम)
बंगला में—पार्वतीय सन, कोहिबाग।

कोहिवाङ्ग
Hyoscyamus muticus Linn

लेटिन में—ह्यायोसिमस म्युटिकस, और हा. इन्सेनस H Insamus) है।

इस बूटी का शेप विवरण, वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा ने वगला भारतीय वनौषधि से निम्न प्रका से अनूदित कर भेजा है।

इसका उपयोगी अंश-पचाङ्ग। यह एक सरल गुल्म जातीय उद्भिद, काण्ड १ से ३ फुट ऊंचा, पत्र १ से ४ इंची, कोमल, लोमयुक्त, कुछ कुछ मखमल के समान, किनारा दातयुक्त; दण्ड १/२ से ३ इंची, वहिर्वास कोमल लोमयुक्त २/३ इंची; पुष्पनल १ से १ १/२ इंची पीतवर्ण, या श्वेतवर्ण; वीजकोप १/८ इंची। वीज १/२४ इंची। जुलाई मास मे फूल और फल होते है।

यह गुल्म वलुचिस्तान मे वहुत परिणाम मे उत्पन्न होता है। वहां इसे कोहिवग या पहाडी सन (Mountain hemp) कहते हैं। इसकी विष क्रिया अत्यधिक कही जाती है। इसका धूंआ सुंघाने से लोग मूर्च्छित हो जाते हैं। इसका धूम्रपान करने से कंठ (गले) मे शुष्कता, तथा भयकर वेहोशी एव उन्माद के लक्षण होते हैं।

क्वासिया [Quassia Excelsa]

इस इंगुदी कुल (Simaroubaceae) की बूटी के वड़े वडे ऊंचे वहुशाखी वृक्ष प्रायः जमेका पश्चिम द्वीप समूह (West Indies) मे प्रचुरता से होते हैं। अत इसे अंग्रेजी मे जमेका क्वासिया कहते हैं। क्वाशी नामक एक हवशी गुलाम ने इसका प्रथम औपधीय प्रयोग किया था। अत उसीके नाम पर इस वनौषधि का नाम क्वाशिया रख दिया गया है।

इसके ५०-६५ फीट ऊंचे वृक्ष, मैदानो तथा पहाडो की ढ़ालू भूमि पर वहुतायत से स्वयजात रूप से पैदा होते हैं। इसका मुख्य तना सीधा, मुटाई लगभग दो फुट की होती है।

इसका एक भेद है—क्वाशिया अमरा (Quassia Amara) किन्तु इसके गुलम या छोटे-छोटे वृक्ष अधिक से अधिक २५ फीट तक उंचे तथा तने का व्यास ६ से १२ इंच तक होता है।

औपधि कार्य मे इस वृक्ष की लकड़ी के चीरे हुये छोटे छोटे टुकडो के चूर्ण फाट आदि का उपयोग किया जाता है। ये टुकडे पीताभ श्वेतवर्ण के चिमडे, निर्गन्ध किन्तु स्वाद मे अति तिक्त होते हैं। अंग्रेजी औषधि विक्रेताओ के यहा इसका चूर्ण मिलता है, जो हलके मटमैला रग का होता है। टिंचर आदि भी मिलते हैं।

इसमे क्वासिन (Quassin) नामक जो प्रभावशाली अंश होता है, उसमें अति तिक्त तत्व पिक्रासमिन (Picrasmin A and B) का मिश्रण होता है। तथा एक उडनशील तैल भी पाया जाता है।

यह कटु पौष्टिक है। किन्तु ग्राहि नही, पाचनेन्द्रियो

को उत्तेजक, दीपन तथा कृमिघ्न है । मच्छी मक्खी आदि कीटकों के लिये यह एक मारक विष है ।

अग्निमांद्य, क्षुधानाश एवं ज्वर के पश्चात् की अशक्ति पर इसके चूर्ण का १ भाग उबलते हुये २४० भाग पानी मे मिला फाण्ट रूप में मात्रा १। से २।। तोला तक पिलाते हैं । इसका टिंचर भी देते हैं।

इस द्रव्य मे टेनिन न होने से इसका प्रयोग लोह के यौगिक के साथ भी सफलतापूर्वक किया जाता है ।

गुदा के चुन्ने कृमि के नाशार्थ इसका उक्त फाण्ट या गुदा में इसका इंजेक्शन देते हैं ।

मलेरिया या पैत्तिक ज्वर पर—इसके चूर्ण को नमक के साथ देते हैं । इसकी लकडी मे ज्वरनाशक गुण की विशेषता होने से लकड़ी के बनाये हुये प्याले मे पानी भर कर रात भर रख प्रातः पिलाने से ज्वर उतर जाता है ।

योषापस्मार पर—इसे कपूर और तगर के क्वाथ के साथ सेवन कराते हैं ।

गन्धिवात पर—यह सोंठ तथा दालचीनी लौंग आदि सुगंधित द्रव्यो के साथ दिया जाता है ।

नोट—भारंगी (देशी क्वासिया) में भी उक्त गुणधर्म होने से, तथा एलोपैथी का यह एक सुप्रसिद्ध द्रव्य होने से यहां उक्त विलायती क्वासिया का संक्षिप्त विवरण दिया है। अन्यथा इसकी इस ग्रन्थ में आवश्यकता नहीं थी । भारंगी का प्रकरण देखिये ।

खजूर (छुहारा) (Phoenix Dactylifera)

फलादिवर्ग एवं नारिकेल कुल (Palmae) का यह वृक्ष ताड़ या नारियल के वृक्ष के समान होता है । प्रकाड पर पत्रवृन्त के डंठल खजूरी (या खजूरा जिसे दक्षिण में सिंधी कहते हैं तथा जो भारतवर्ष मे सर्वत्र होता है जिससे ताडी या नीरानामक रस निकलता है, तथा जिसका वर्णन आगे के प्रकरण मे किया है) वृक्ष के डंठल जैसे ही नीचे से ऊपर तक लगे हुए रहते हैं । पत्ते, खजूरी पत्र के समान ही किन्तु कुछ वडे होते हैं । फल–भी खजूरी के फल से बडा तथा मासल या गूदेदार होता है ।

इसीका एक भेद पिण्ड खजूर है । इसके पत्ते अति तीक्ष्णाग्र होते हैं, तथा फल वडा और अति मासल होता है । यही जब वृक्ष पर ही पक कर सूख जाता है तब यह गोस्तन (गौ के स्तन जैसा) खजूर या छुहारा कहाता है । किन्तु गौ स्तन खजूर के वृक्ष पिण्डखजूर के वृक्ष से कुछ वडे होते हैं । इस प्रकार ये तीनो (खजूर, पिण्ड-खजूर और गोस्तना खजूर) आयुर्वेद के खजूर त्रितय हैं ।

पिण्डखजूर का ही एक भेद सुलेमानी खजूर है । एक खजूर वह भी होता है जिसके वृक्ष की ऊंचाई ४ फुट से अधिक नही होती । इसे लेटिन में फिनिक्स हुमिलिस (Phoenix Humilis) कहते हैं। यह शाल वनों मे पाया जाता है। एक भूखजूर (P Acaulis) भी होता है, जिसके काण्ड भूमि के ऊपर नही आते। देहरादून के घास के मैदानो मे यह पाया जाता है इसके फल खाये जाते हैं। (वनौषधि दर्शिका)

यूनानी ग्रंथकारों का कथन है कि विदेशीय पिंड खजूर वृक्ष का सूखा पका फल जो अंगूठे के बराबर लम्बा बेलनाकार एवं गावदुमी होता हैं, यह एक अत्यन्त बारीक, स्वच्छ, रक्त पीताभ छिलके से आवरित होता है । इसके नर वृक्ष मे केवल फूल आते हैं, मादा वृक्ष में फूल और फल दोनो आते हैं । इसके वृक्ष (खजूरी के वृक्ष जैसे) ४०-५० फुट ऊंचे होते हैं । फल के उत्तरोत्तर वृद्धि क्रमानुसार अर्थात् फलोत्पत्ति के प्रारम्भ से अन्त तक ६ अवस्थाए मानी गई हैं–

(१) प्रथमावस्था वह है जब फूल मे जौ के दाने से भी छोटे छुहारे होते हैं । इस अवस्था को छुहारे का फूल कहते हैं। (२) इस अवस्था मे छुहारा बहुत कच्चा होता है। (३) तीसरी अवस्था मे छुहारा बडा और हरा होता है। किंचित् मिठास आजाती है। (४) चौथी में वह गदरा होता है । (५) इस अवस्था मे कोई पकने से पूर्व ही सूख जाते हैं तथा कोई (६) पकने पर बहुत काल तक ताजे बने रहते हैं ।

पिंड खजूर में भी उक्त ३ अवस्थाए होती हैं । किंतु
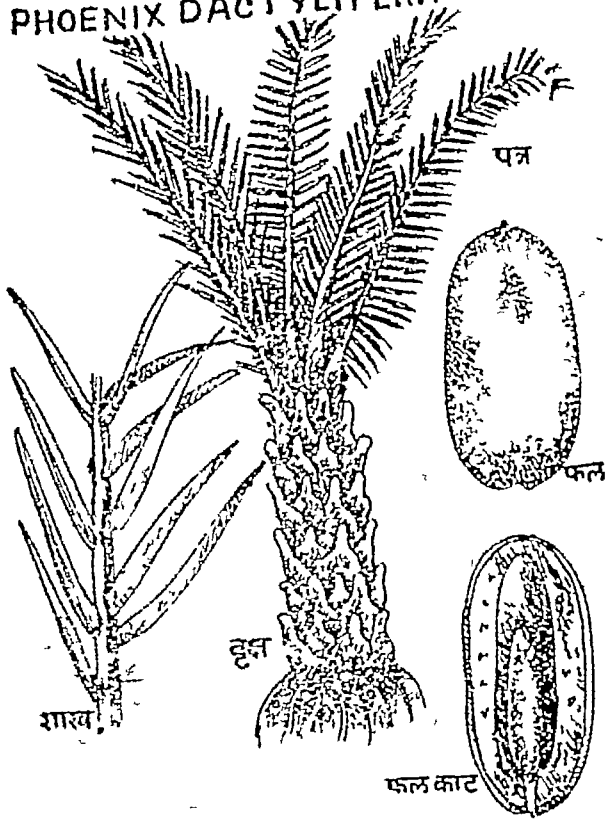
वे दीर्घकाल तक लिबलिबे से बने रहते हैं।

उक्त खजूर या खुहारो का मूल उत्पत्तिस्थान ईराक उत्तरी अफ्रीका, मिश्र, सीरिया, अरब तथा काबुल, कंदहार है। सम्प्रति पजाब और सिंध मे ये बोये जाते हैं। किन्तु ठीक उपज नही होती। अत यहा यह फल प्रायः उक्त स्थानो से विशेषत ईरान से अत्यधिक प्रमाण मे आता है।

नाम–

सं०–खजूर। हिन्दी–खजूर, छुहारा, खुर्मा, तथा पिंडखजूर म०–खारिक, खजूर। बं०–खेजूर छुहारा। गु०–खारेक, खजूर। अं०–डेटएडीबल (Date edible) ले०–फिनिक्स डेक्टिलिफेरा, फि. एक्सेल्सा (P Excelsa)

रासायनिक संघठन–

इसमें शर्करा ६० से ७० प्र० श० तथा शेष भाग मे खनिज लवण, लोह, टेनिन, प्रोटीन, फास्फोरस तथा A. B. C व्हिटामिन्स होते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

स्निग्ध, मधुर, गुरु, विपाक मे मधुर एव शीत वीर्य है। यह वातपित्त शामक, स्नेहन, अनुलोमन, स्तम्भ, नाडी बलदायक, मस्तिष्क शामक, हृद्य, कफनि सारक, बृहण तथा रक्तपित्त, ज्वर, दाह, श्रम, भ्रम, मदात्यय, मस्तिष्क दौर्बल्य, तृष्णा, वमन, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र एवं कटिशूल, गृध्रसी आदि वातविकार नाशक है।

फलों की अवस्थानुसार गुणधर्म और यूनानी प्रयोग

(१) उपर्युक्त प्रथमावस्था या पुष्पावस्था के दो भेद हैं—जबकि अविकसित (कली के रूप मे) हो वह शीतल तथा रूक्ष होता है। इसे कुचल कर समभाग जैतून तैल मिला शीशी मे भर ३-४ दिन हिलाते रहे। फिरछान कर कार्क बन्द शीशी मे भर रखें। यह पित्तज शिर शूल तथा आन्त्र व्रण के लिये लाभकारी है। प्रस्वेद की स्थिति मे इसे लगाने से पसीना बन्द होता है। बालो पर मलने से बाल दृढ़ होते हैं, गिरते नही। अथवा इस कली के क्वाथ से बालों को धोने से दृढ घुघराले, काले हो जाते हैं।

द्वितीय भेद जबकि कली प्रस्फुटित होती है–इसमें छुहारे जौ से भी छोटे छोटे दाने के रूप मे होते हैं। यह छुहारे का फूला कहाता है। यह भी शीतल व रूक्ष है। चिरपाकी आध्मानकारी, तृष्णाशामक है। इसे शुष्ककर चूर्ण कर १। तोला की मात्रा मे लेने से तृष्णा शात होती है तथा अतिसार, श्वेतप्रदर, पैत्तिकज्वर, रक्तष्ठीवन एवं रक्तस्राव बन्द होता है। यह अधिक मात्रा मे विरेचक है, एव कुछ यकृत पुष्टिकर और कफ निस्सारक है।

द्वितीयावस्था जबकि फल बहुत कच्चा हो तब वह बहुत कसैला है। यह विबन्धकारक, शोणितस्थापक एव योनिस्राव और अतिसारनाशक है। मात्रा—७ माशे तक आमाशय, यकृत एव वातनाडियो को शक्तिप्रद है।

(३) इसके लेप से क्षतो का शीघ्र सधान होता है। इसके चबाने तथा क्वाथ के कुल्ले करने से मसूढ़े दृढ होते हैं। इसके स्वरस को कच्चे अगूरो के रस के साथ मिला घन क्वाथ कर नेत्रो मे लगाने से पोथकी, नेत्रस्राव, पक्ष्मशात आदि नेत्र विकार दूर होते हैं।

तृतीयावस्था–जब खजूर पीला होकर, कुछ मधुर

स्वाद विशिष्ट होता है, किंतु साथ ही कुछ अम्लता भी रहती है। यह गदराया हुआ छुहारा-अतिसार रोधक, आमाशय एव शरीर की अग्नि को वलप्रद, रक्तपित्त, अर्श आदि नाशक है।

चतुर्थावस्था–जब वह परिपूर्णतया न पकते हुए ही वृक्ष पर सूख जाता है या नीचे गिरा दिया जाता है। प्राय ऐसे ही खजूर वाजारो मे विकने के लिये भेजे जाते हैं। यह कुछ उष्ण और रूक्ष होता है। इसमे सर्वोत्तम वह है जो मोटा, छोटी गुठली वाला, और कडा हो। इसमे जो बिल्कुल शुष्क न हो वह रूक्ष नही किन्तु तर होता है। यह आमाशय को वलप्रद, अतिसारनाशक, यदि इसे खाकर पानी दिया जाय तो आध्मानकारक है। ऊपर जो गुणधर्म कह आये हैं वे सब इसीके हैं। यह प्राय वृक्क तथा मूत्राशय को पुष्टिकर एव रक्तवर्धक है।

(४) ज्वर या चेचक के वाद की निर्वलता निवारणार्थ इसे दूध के साथ सेवन कराते है। जीर्ण ज्वर पर–इसके साथ सोठ, मुनक्का मिला जौकुट कर उसमे थोडा घृत मिला इस मिश्रण को दूध मे पकाकर सेवन करें।

(५) अतिसार और सग्रहणी पर–फलो का सेवन लाभदायक है। इसका शर्वत अतिसार, वहुमूत्र एव मधुमेह पर लाभप्रद है। अथवा अतिसार पर–फलो मे अफीम और जायफल का चूर्ण भर पुटपाक विधि से पका तथा पीस १-१ रत्ती की गोलिया वना दिन मे ३ वार सेवन कराते हैं। आगे पिंड खजूर देखें।

कफज्वरादि कफ विकारो एव कास, श्वास, प्रतिश्याय और हिक्का पर–यदि कफ ज्वर हो तो फलो का क्वाथ कर मैथी चूर्ण मिला पिलाते हैं। इससे कफ वात की अश्मरी पर भी फायदा होता है।

यदि केवल प्रतिश्याय (जुखाम) हो तो फलो को दूध मे औटाकर पिलावे।

कास पर–फलो के साथ पीपल, मुनक्का और गोखरू को पीसकर घृत और शहद के साथ सेवन करावे। यह पित्तज कास पर चरक जी का प्रयोग है। यदि कफज कास हो तो इस प्रयोग मे गोखरू और घृत मिलाने की आवश्यकता नही।

यदि केवल पैत्तिक खासी हो तो उक्त प्रयोग का अथवा फलो के साथ पीपल, मुनक्का, मिश्री और धान की खील सब समभाग लेकर पीसकर शहद व घृत में मिलाकर चटाने से फायदा होता है। –ग० नि०

श्वास और हिक्का पर—उक्त चरक जी के प्रयोग मे गोखरू के स्थान पर खांड मिला पीसकर शहद व घृत से वार वार चटावे। अथवा श्वास पर फल के साथ सोठ चूर्ण कूट पीसकर पान मे रखकर खिलाते हैं। विशिष्ट योगो मे 'खजूरादि घृत' देखें।

(७) शक्ति, पुष्टि और वाजीकरणार्थ—बीज निकाले हुये फलो को कूट कर उसके साथ वादाम, पिस्ता, चिरौजी आदि तथा मिश्री मिलाकर इस मिश्रण मे उत्तम घृत मिलाकर रख दें। ७-८ दिन पश्चात् नित्य प्रात साय २ तोले से ५ तोले तक सेवन करें। अथवा फल २ नग, वादाम गिरी ४ नग तथा मुनक्का ८ नग तीनो को रात मे पानी मे भिगोकर प्रात. फल की गुठली, वादाम का का छिलका व मुनक्का के बीज दूर करे। फिर सबको पीस १ पाव दूध मे पका शक्कर मिला पीवें। इसी प्रकार शाम को भी पीने से शीघ्र ही निर्वलता दूर होगी। अथवा एक वार प्रात ही पीने से पूर्ण लाभ होकर स्फूर्ति आती है।

अथवा फलो को किसी कोरे वर्तन मे या कलईदार पात्र मे रात भर जल मे भिगो प्रात गुठली दूर कर दे, शेष गूदे को आध सेर तक दूध मे पका छानकर पीवें।

फलो को (२ तोले कूटकर) थोडी दालचीनी के साथ ताजे दुहे हुये १० तोले दूध मे भिगोकर आध घटा वाद खाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीने से कामशक्ति उदीप्त होती है। आगे विशिष्ट योगो मे 'रुतव मअसल' (यूनानी) तथा खजूर पाक देखिये।

(८) तृष्णा एव दाह, रक्तपित्त पर–बीज निकाले हुये फलो के साथ मुनक्का, मुलेठी और खांड प्रत्येक ४-४ तोले तथा पीपल और त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) २-२ तोले लेकर चूर्ण कर शहद के साथ गोलिया वनावे। इसके सेवन से तृष्णा (पिपासा), मोह और रक्तपित्त का नाश होता है। –भा भै र.

रक्तपित्त मे–फल चूर्ण को शहद के साथ देने से भी फायदा होता है। अथवा खजूर पाक का सेवन करावे।

दाहशमनार्थ—चूर्ण को पानी मे मसल छानकर पिलाते हैं, पानी के स्थान पर अर्क गुलाब या अर्क केवडा लेना और भी उत्तम है। आगे विशिष्ट योगो मे खर्जूरादि चूर्ण और खर्जूरासव देखें।

(९) मदात्यय पर—इसके साथ अनार, दाख, कोकम, इमली, आवला और फालसा सबको पत्थर के खरल मे साधारण कूटकर ४ तोले लेकर उसमे १६ तोले पानी मिला मटकी मे डालकर मथानी से मथें, खूब झाग उठने पर छानकर पिलावे। मात्रा ८ तोले तक इस मथ को पिलायें। —शा० स०

अथवा—केवल इसे ही पानी मे भिगोकर तथा उक्त प्रकार से मथकर कई बार पिलाने से भी लाभ होता है।

(१०) अरुचि तथा दीपन पाचनार्थ—बीजरहित फलो को नीबू के रस मे भिगोकर नमक तथा गरम मसाला मिला अचार बनाकर थोडा सेवन करें। इस अचार मे शक्कर या शक्कर की चाशनी मिला देने से और भी उत्तम स्वादिष्ट एव रोचक होता है। इससे दीपन, पाचन भी होता है। अथवा केवल फलो को खा कर तक्र पीने से भी दीपन-पाचन होता है।

(१०) उरुस्तम्भ पर—बीजरहित फलो के साथ बावी की मिट्टी और सरसो को पीसकर शहद मे मिला लेप करने से फायदा होता है। —भा० भै० र०

वात वेदनानाशार्थ—इसका चूर्ण १-१॥ तोले १ पाव उबलते हुये दूध मे डाल दे तथा २ चम्मच घृत भी उसमे छोड़कर ढक कर रक्खे। ३ घटे बाद अच्छी तरह मिलाकर पीने से शारीरिक वात पीडा शान्त होती है। १५ दिन तक दोनो समय भोजन के बाद इसके सेवन से शरीर की काति व शक्ति की वृद्धि होती है।

(१२) सिर दर्द पर—इसके साथ मुलैठी, काकजघा, मुनक्का, खाड एकत्र जौकुट कर मक्खन मिला पकाकर ठडा होने पर शहद मिलाकर पीने से सिर के प्रान्त भाग [कनपटियो] का दर्द नष्ट होता है।—ग नि.

(१३) शुष्क कास पर—इसके साथ सतावर व मिश्री मिश्रण कर दूध मे औटाकर पिलावें। अथवा प्र० न० ६ का पित्तज कास का प्रयोग सेवन करावें।

पिंड खजूर—कुछ उष्ण, स्निग्ध, मधुर तथा अभिघातजन्य वेदना, रक्तविकार, वातपित्त, तृष्णा, पाडु, आमाशय शोथ, क्षय ज्वर एव जराजन्य दौर्बल्यनाशक है। यह बाजीकरण तथा वृक्क एव कटि को शक्तिप्रद है। अर्दित और पक्षाघात पर लाभकारी, कफज्वर नाशक, वायु और शोथ को विलीनकारी है। किन्तु अनभ्यासी अर्थात् जिसने इसे कभी सेवन नही किया है वह यदि इसे अधिक खा ले तो रक्तप्रकोप होता है। इसका रस कुछ शीतल एव मृदु सारक है। ईख की शर्करा की अपेक्षा इसकी शर्करा विशेष स्वास्थ्यप्रद एव हृद्य होतीहै।

(१४) मूत्रकृच्छ्र पर—इसके ताजे रस मे मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

(१५) बल बृंहणार्थ—बादाम की मिंगी के साथ इसका हलुवा बनाकर खिलाते हैं।

इसका विशिष्ट प्रयोग रुतबम असल आगे देखे।

(१६) अतिसार पर—उत्तम बढिया पिंड खजूर ५-७ खाकर पानी लगभग १ घटा बाद वह भी थोडा थोडा कई बार पीवें। फिर ढाई-तीन घटे बाद इसी प्रकार खाकर पानी १ घटा बाद पीवें।

नोट—खजूर या पिंड खजूर की मात्रा ५-७ नग, रस की मात्रा ५-१० तोले तक है।

ध्यान रहे, कठिन शोथयुक्त यकृत् विकारों में या यकृत की अवरोध दशा में एव प्लीहाविकार में तथा उष्ण प्रकृति वालों या जिसे बार बार ज्वर आता हो उनको, तैसे ही शिर.शूल, नेत्राभिष्यन्द, मुखपाक, रोहिणी (खुनाक) और जिनके मसूढ़ों में विकार हो उन्हें इसका सेवन हानिकर होता है।

जिनके आंत्र सबल हों, प्रकृति शीतल हो वे इसका आनन्द से सेवन कर लाभ उठा सकते हैं। इसके साथ बादाम की गिरी और पोस्त के दाने भी सेवन करें तो और भी उत्तम हैं।

विशिष्ट योग—

(१) खर्जूर कल्प—लगभग १ पाव उत्तम छुहारो को रात्रि के समय ओस मे रख प्रात सबकी गुठली इस प्रकार सावधानी से निकाल डाले कि प्रत्येक छुहारा जुडा ही रहे। फिर असली केसर सरसो बराबर तथा उतनी ही अफीम प्रत्येक मे भर ऊपर से सूत बाध दें। पश्चात् एक ऐसा हरा ढाक [पलाश] का पेड जिसकी

मोटाई १ फुट हो, उसको जड का और डेढ फुट छोड कर आरी से इकसार काट दे । फिर १ फुट नीचे छोड ऊपर का आध फुट हिस्सा और आरी से काट दे [यह ढकने के लिये काम आयेगा]। जमीन पर जो १ फुट हिस्सा है, उसको ऊखल की तरह खोद दे किन्तु ध्यान रहे उसके आसपास के किनारो की मोटाई २ अगुल से कम न रहे तथा आवश्यकता से अधिक भी न खोदा जाय। फिर उसको साफकर उसमे उक्त छुहारे अच्छी तरह जमाकर ऊपर से इतना गोदुग्ध डाले कि सब छुहारे डूब जाय। फिर उस पर वह ढक्कन [जोकि आध फुट ऊपर से कटा हुआ-रक्खा है] ढककर मुल्तानी या चिकनी मिट्टी से ऊपर एव आसपास कपरौटी कर दे। पश्चात् उसके चारों ओर और ऊपर आरण्डे उपले [कडे] खूब जमा कर जब २ घडी रात्रि वीत जाय तब उसमे अग्नि लगादें। प्रात आग शान्त होने पर सब छुहारे निकाल शुद्ध पात्र में भर रक्खें।

प्रथम दिन चौथाई छुहारे से प्रारम्भ कर क्रम से बढाते हुये आठवें दिन पूरे दो खुहारे सेवन करे। अनुपान मे दूध की भी मात्रा १ पाव से शुरू कर २ सेर तक बलाबल के अनुसार बढाते जाय। इस प्रकार १-२ मास तक सेवन से नपुसकता पूर्णतया नष्ट होकर शरीर की सर्वांगीण वृद्धि एव पुष्टि होती है। यह प्रयोग मार्गशीर्ष मास से माघ मास तक ही सेवन करना चाहिये। अन्य ऋतुओ मे भी सेवन करना हो तो ऋतु के अनुसार अनुपान बदल दे तथा मात्रा भी रोगी के बलाबलानुसार न्यूनाधिक कर दे। इसे यथोचित मात्रा से मलाई, ताजा मक्खन, शहद, पान का रस आदि किसी एक अनुपान के साथ [कल्प विधान] सेवन करने से नपुसकता, दुर्बलता, मदाग्नि, श्वास, कास आदि व्याधिया नष्ट होती हैं। पथ्य मे जितना हल्का और सात्विक भोजन होगा उतना ही अच्छा है। केवल दूध भात या गेहू का दलिया और दूध सेवन करना ठीक होता है।

—धन्वन्तरि कल्प एव पचकर्म चिकित्साक से

(२) खर्जूरादि चूर्ण—खजूर, आवले के बीज, पीपल, इलायची, मुलैठी, पाषाणभेद, चन्दन, खीरे के बीज और धनिये के चूर्ण मे [खजूर १ भाग शेष द्रव्य अर्ध अर्ध भाग तथा शिलाजीत अर्ध भाग] खाड मिश्रणकर मात्रा १ से ३ माशे तक चावलो के पानी के साथ सेवन करने से अगदाह, लिंगदाह, गुद एव वंक्षण की दाह, शर्करा, अश्मरी, मूत्ररोग और वीर्य सम्बन्धी रोगो का नाश होता तथा बलवीर्य की वृद्धि होती है। —यो० र०

(३) खर्जूरासव [क्षय, शोथादि नाशक]—बीज निकाले हुये खजूर ४ सेर जौकुट कर १३ सेर पानी में पकावें। लगभग ६ सेर शेष रहने पर छानकर उसमें हाऊबेर एव धाय पुष्पो का चूर्ण मिलाकर उत्तम धूपित घडे [या सधानपात्र] मे भर कर उसका मुख अच्छी तरह बन्द कर रक्खें। १४ दिन के पश्चात् छानकर बोतलो मे भर रक्खें।

यथोचित मात्रा मे सेवन से क्षय, सूजन, प्रमेह, पांडु, कामला, ग्रहणी, गुल्म, अर्श शीघ्र नष्ट होते हैं।—यो र

खर्जूरासव के शेष उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे 'बृहदासवारिष्ट सग्रह' मे देखिये।

(४) खर्जूरपाक [पुष्टिकारक]—बीजरहित खजूर १ सेर तथा पीपल ५ तोले एकत्र कूट पीसकर ४ गुने दूध मे पकावें। जब मावा जैसा हो जाय तो उसे आध सेर घी मे भूनें। पश्चात् दो गुनी खाड की चाशनी बना उसमे यह मावा तथा मुनक्का, लोग, असगन्ध, दोनो मूसली, जायफल, जावित्री, तेजपात, खरैंटी बीज एवं केशर का महीन चूर्ण २-२ तोले तथा बग, लोह, अभ्रक भस्म १-१ तोले और बादाम बीज, पिस्ता, चिरौंजी, अखरोट की गिरी इच्छानुसार मिला पाक जमा दे।

मात्रा—१ से २ तोला तक सेवन से शरीर हृष्ट-पुष्ट एव निरोग होता है।

खजूर पाक–के वात पित्त, रक्तपित्तादिनाशक, मूर्च्छानाशक एव धातुक्षय, क्षीणता निवारक उत्तमोत्तम प्रयोग देखिये हमारे 'बृहत्पाक सग्रह' मे।

(५) खजूरादि घृत—बीजरहित खजूर, मुलैठी, और फालसे के कल्क तथा पीपल के प्रक्षेप से सिद्ध किया हुआ घृत वैस्वर्य (गला बैठ जाना), कास, श्वास और ज्वर नाश करता है। (भा भै र.)

(६) रुतब मअसल (शहद मे पाला हुआ ताजा

छुआरा)–ताजे छुआरे (पिंड खजूर) लेकर धूप मे फैला दें जिससे आर्द्रता सूख जाय। फिर प्रत्येक के निम्न भाग में छेद कर गुठलिया निकाल उनके स्थान मे बादाम की मीगी रख उन्हे शीशी या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर कर ऊपर इतना शहद डालें कि वे सब डूब जाय। फिर उसमे थोडी केसर भी पीस कर मिलादें। ७-८ दिन बाद काम मे लावें। यह शीतल एव तर प्रकृति वालों को विशेप लाभकारी है। आमाशय की निर्बलता दूर होकर वीर्य की वृद्धि होती है, कामोद्दीपन होता है। उष्ण प्रकृति वालो को इसके सेवन से सिर दर्द होता है जो गुलकन्द, पोस्तवीज, काहू बीज या बादाम के हलुवे से शीघ्र दूर होता है। (यूनानी)

(७) खजूर या पिंडखजूर का घन सत्व–इनको पानी मे अच्छी तरह पका कर खूब मसल कर छान लें। फिर इस छने हुये रस को पुन मदाग्नि पर खूब गाढा यहा तक पकावें कि वह जमने लायक हो जाय। इसे काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे सुरक्षित रक्खें। गुण-धर्म मे यह उष्ण और रुक्ष होता है। यह पक्षवध, आम-वात एव शीतजन्य कास पर लाभकारी है। शीतल प्रकृति वालो को वाजीकरण है। कूठ चूर्ण और नमक के साथ मिला, या अकेले ही इसका लेप करने से मुख की कांति बढती है, व्यग, दाग आदि दूर होते हैं। वात प्रकोप से हाथ पैर के शिथिल हो जाने पर इसे कलौंजी के साथ पीस कर उवटन जैसा बना मालिश कर निर्वात एव उष्ण स्थानो मे बैठें या लेटें। (यूनानी प्रयोग)

खजूर के बीज (गुठली)–

उष्ण, रुक्ष, मल विवन्धकारी तथा उरक्षत, कास, श्वास, हिक्का आदि मे लाभकारी है।

चोट पर इसे घिसकर लेप करते हैं। अश्मरी पर इसे पानी मे पकाकर पिलाते हैं। अतिसार पर–इसे घिसकर चटाते है।

दुष्ट व्रणो पर–इसे जलाकर बुरकते है। इसे प्रथम धोकर फिर जलाकर चूर्ण कर व्रणो पर बुरकने से विशेष लाभ होता है। इस प्रकार धोकर जलाये हुये बीज आखो के सुरमे में प्रयुक्त करने से शुद्ध नीलाथोथा (तूतिया) का कार्य करते है। यदि आंख के पलको के बाल गिर गये हो, तो इसकी उक्त भस्म को थोड़ा जल मे मिला लगाते हैं, यह नेत्र व्रण नेत्रस्राव को भी दूर करती है। बीजों के कल्क को नेत्रो पर लेप करने से नेत्र पिंड एव नेत्रशुल्क भाग की पैत्तिक सूजन पर लाभ होता है। तथा नेत्र पलको के विकार दूर होते हैं।

अर्श पर–बीजो के चूर्ण की धूनी देते है।

सिर दर्द पर—बीजो के कल्क का लेप करते है।

अतिसार में दस्त बन्द करने के लिये—बीजो को २ मासे तक दिन मे २-३ बार ठडे पानी से देते हैं।

विषम ज्वर पर—बीजो के साथ अपामार्ग मूल को जल मे खूब महीन पीस कर बीडे के पान मे चूने के स्थान पर इसे ४ रत्ती तक लगाकर कत्था, सुपाडी लौंग, इलायची आदि डालकर ऐसे तीन बीडे तैयार करें। शीतज्वर चढने के पूर्व १-१ घटे से १-१ बीडा खिलावें। ऐसा तीन दिन करने से ज्वर नष्ट हो जाता है। (ब गुणादर्श)

बीजो को भूनकर तथा चूर्ण कर उससे चाय या काफी जैसा पेय बनाकर पीते हैं। इसे डेटकाफी (Date Coffee) कहते है।

घोडे को शीत बाधा होने पर–बीजो का चूर्ण आटे के साथ मिलाकर खिलाते हैं।

कृमिघ्न, कामोद्दीपक, यकृत विकार मे लाभकारी है।

पत्तो का क्वाथ कर रात भर ढाक कर रक्खे। प्रात इस वासी क्वाथ मे शहद मिला पिलाने से उदर एव आन्त्र के कृमि समूह का नाश होता है। —भैं० र०

नोट—खजूर पत्र मूल एवं रस (वृक्ष निर्यास या ताड़ी) आगे के प्रकरण में दिये गये खजूरी वृक्ष के लिए जाते हैं क्योंकि भारतवर्ष में इसके वृक्ष प्रायः सर्वत्र सुलभता से प्राप्त होते है। अत. इनका विशेष वर्णन खजूरी के प्रकरण में देखिये।

चरक ने श्रमहर, विरेचनोपग, मधुरस्कंध, कषायस्कंध, फलासव के गणों इसकी गणना की है।

खजूरी [Phoenix Sylvestris]

इसका वानस्पतिक विवरण खजूर वृक्ष के अनुसार ही है। अन्तर इसका ही है कि इसके वृक्ष खजूर वृक्ष की अपेक्षा बहुत ऊचे (४० से ५० फुट तक) किन्तु मोटाई मे कम मोटे होते है।

पत्ते—अपेक्षाकृत अधिक लम्बे, पतले एव तीक्ष्ण नोकदार होते हैं।

फल—ग्रीष्मऋतु मे पत्र दण्डो के मूल भाग से अनेक शाखायुक्त डडिया निकलती है। इन्ही डडियो पर १ इ च लम्बे, गोल गोल फल गुच्छो मे लगते हैं, जो पकने पर लालिमायुक्त नारगी रग के हो जाते हैं। देहाती लडके इन फलो को खूब खाते हैं। फलो मे गुठली का ही विशेप भाग होता है। गूदा तो नाममात्र को थोडा होता है, इसे ही खाकर गुठली को फेंक देते हैं। गुठली या बीज की नोकें गोल एव बीज के एक ओर गहरी लकीर सी तथा दूसरी ओर हलकी एव अधूरी लकीर होती है। इन बीजो के गुणधर्म और प्रयोग खजूर के बीज जैसे ही हैं।

खजूर के पेड का रस तो भारत मे मुश्किल से प्राप्त होता है, किंतु इसके पेड से निकलने वाला रस यहा प्रचुरता से प्राप्त होता है। इस रस को भी हिन्दी मे खजूरी-रस या ताडी तथा दक्षिण मे सिंधी कहते हैं। इस रस को ही गाधी जी ने 'नीरा' नाम दिया है। इससे गुड, चीनी, सिरका, मद्य आदि प्रस्तुत किये जाते है।

इसके वृक्ष भारत मे प्राय सर्वत्र ही एव जगलो मे स्वयमेव उपजते हैं। कही लगाये भी जाते हैं। सिंध मे ये बहुत होने से इसे सिंधी कहते हैं।

नाम—

स०—खर्जूरी, खर्जूरिका, मृदुच्छदा (बीज के ऊपर का आवरण मृदु होने से)।

हिन्दी—खजूरी, खजूरा, देशी खजूर, जगली खजूर, सालमा। म०—सिंधी, सेंधी, खजूरी।

गु०—खजूरी। व०—जागलेर खेजूर गाछ।

अ०—वाइल्ड डेट ट्री, इडियन वाईन पाम (wild date tree, Indian wine palm)

ले०—फिनिक्स सिलव्हेस्ट्रिस।

इसका रासायनिक सघठन खजूर जैसा ही है।

गुणधर्म और प्रयोग—

मधुर, स्निग्ध, पौष्टिक, उत्तेजक, मेदावृद्धिकर, विबन्धकर, कामोद्दीपक एव हृदय विकार, उदर विकार, ज्वर, वमन, मूर्च्छा आदि मे लाभकर है।

इसके फलो का औषधि कर्म मे प्राय व्यवहार नहीं किया जाता है। बीज या गुठली का व्यवहार खजूर बीज जैसा ही है। कहा जाता है कि फल के गूदे का लुगदी को अपामार्ग पत्र के साथ पान के बीडे मे खाने से शीतज्वर मे लाभ होता है। इसके पत्तो के गुणधर्म व प्रयोग खजूर पत्र जैसे ही हैं। इसकी जड़ वेदना स्थापन है, दतशूल मे इसके क्वाथ के कुल्ले कराते हैं। कोई कहते हैं कि इसकी जड को थोडा जौकूट कर मुख मे रात भर धारण करने से दात सब स्वयमेव बगैर किसी प्रकार

खजूरी

PHOENIX SYLVESTRIS ROXB.
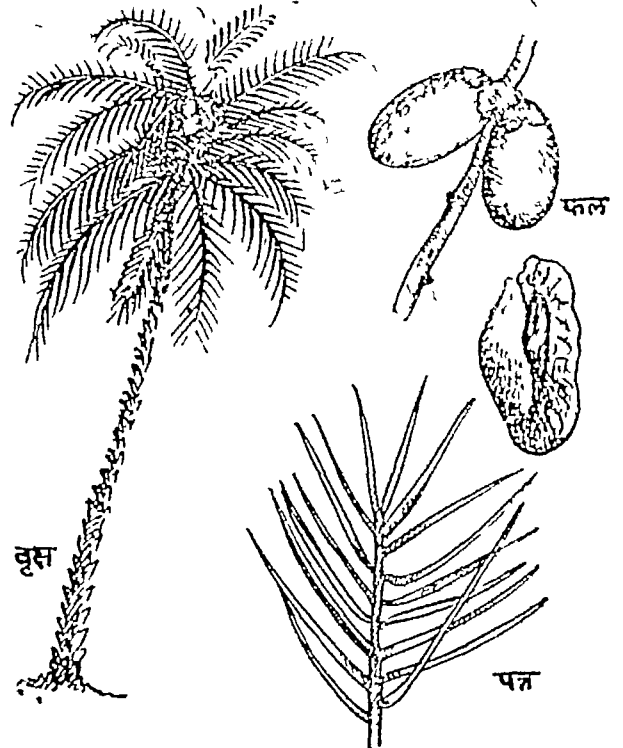
की तकलीफ दिये ही झड़ जाते हैं।

इसका अथवा खजूर का गाभा—छोटे छोटे पेडो के सिरोभाग की पत्तियो को काटकर, तथा तने के ऊपरी हिस्से को छील डालने से मध्य भाग मे जो मुलायम श्वेत रग का स्वाद मे दूध या बादाम गिरी जैसा मधुर गूदा होता है, वही इसका गाभा या मज्जा है। इस गाभे को काट डालने से पेड मे फिर फलोत्पत्ति नही होती है।

यह मधुर, वृष्य तथा वात कफ नाशक है[1]। तथा शीतल और रूक्ष होने से मलावरोधक है। इसे थोडी मात्रा मे चीनी या शहद के साथ खाने से आमाशय एव आत्र को शक्ति प्राप्त होती है तथा अतिसार तथा रक्तातिसार, रक्तष्ठीवन, कण्ठ और छाती की कर्कशता, कास, पित्तज वमन, मदात्यय जन्य दोप, वृक्कदौर्बल्य मे लाभकारी है।

मूत्राश्मरी या शर्करा मे इसका क्वाथ देते है। इसके सेवन से शरीर मे ओज की वृद्धि होती है। बर्र ततैया के दश पर इसका लेप शीघ्र शातिदायक है।

(१) बल, वीर्य की वृद्धि के लिये-इस गाभे के छोटे छोटे टुकडे कर कलईदार पात्र मे रखकर उसमे थोडा पानी डालकर ऊपर किसी पात्र से ढककर धीमी आच पर पकावे। फिर उसके पानी को निथार कर उन टुकडो को शहद मे डालकर रक्खें। ७ या १४ दिन बाद नित्य प्रात साय दो तोले की मात्रा मे सेवन कर ऊपर गौ-दुग्ध गरम किया हुआ १ पाव तक पीने से मूत्र एव वीर्य की शुद्धि हो बल वृद्धि होती है। (भारतीय गृह चिकित्सा)

रस या नीरा—

इस वृक्ष का विशेष महत्व एव प्रचार इससे प्राप्त होने वाले रस के कारण बहुत बढा चढा हुआ है। है भी यह महान उपयोगी, पौष्टिक एव आरोग्यदायक पेय पदार्थ। इसे वृक्ष से प्राप्त करने की कृति इस प्रकार है—

इस वृक्ष के ऊपर के तने मे एक गहरा फन्चर आकृति का गड्ढा खोद, इसमे वास का नलकाकार एक छोटा सा टुकडा लगा देते हैं। इसके नीचे लटकती हुई एक मिट्टी की मटकी तने से बाध देते हैं। गढे मे से रिसता हुआ इस वृक्ष का निर्यास या स्राव वास की उक्त नलकी से टपकता हुआ मटकी मे एकत्रित होता है। प्रात प्रतिदिन रस से भरी हुई मटकी को निकाल कर सरकारी नीरा केन्द्र कार्यालय मे पहुचा दिया जाता है। तथा वृक्ष पर उसी स्थान मे या अन्य स्थान मे उसी प्रकार मटकी लटका जाती है। इस प्रयोजन मे आने वाले इसके पेड़ो का सरकार से लाइसेन्स लेना पडता है।

इस रस मे कई उत्तम विटामिन हैं। प्रात सूर्योदय से पूर्व ही इसे पी लेने से यह ऊष्मा निवारक, शीतल, मूत्रल, तृषाहर एव पौष्टिक पेय होता है। चाय या काफी से यह अत्युत्तम पेय है। इसमे कोई दुर्गुण नही तथा प्रतिदिन पीने पर इसका व्यसन या आदत नही पडती। यह पतला रस नीर (जल) जैसा ही होने से महात्मा गाधी जी ने इसका 'नीरा' नाम प्रसिद्ध किया तथा इसके पीने के लिये प्रोत्साहन दिया। इस नीरा मे प्रतिशत शर्करा १० भाग, पानी ८६ १, शरीर वर्धक प्रोटीन ० ३, वसा ० ०२, खनिजपदार्थ ० ४ तथा शक्तिवर्द्धक कार्वोहाइड्रेट १३ २ भाग है।

खजूर, ताड, तथा नारियल के वृक्षो से निकलने वाले रसो मे भी रासायनिक सघठन प्राय उक्त प्रकार का ही पाया जाता है। इसमे अल्कोहल (मद्यार्क) न होने से यह मादक नही होता। इसका अधिक सेवन करने पर भी कोई अनिष्ट परिणाम नही होता। किन्तु कुछ देर तक पडी रहने से बाह्य वातावरण के सूक्ष्म जतु इसमे प्रविष्ट हो इसकी मधुरता का अपहरण कर इसे कुछ अम्लतायुक्त अल्कोहल मे परिणत कर देते हैं। इस प्रकार रूपान्तर होने पर यह ताडी (माद्यकर) कहाती है। अत. यह ताजी दशा मे प्रात सूर्योदय के पूर्व ही सेवन की जाती है। इसमे चूने का योग देने से यह लगभग १२ घण्टे तक विकृत नही हो पाती। ध्यान रहे ताजी नीरा या चूने के मिश्रण से १२ घण्टे तक अविकृत नीरा कोई विशेप गध या रग रहित एव मधुर होती है, वही विकृत या ताडी रूप मे परिणत होने पर अम्ल गध, स्वाद मे भी अम्ल एव रग मे श्वेत झागयुक्त हो जाती है। इसी को भवके द्वारा खीचकर एक प्रकार की मदिरा तैयार की जाती है। तथा यह भी ध्यान रहे कि यह नीरा डा.

---

[1] "मज्जातु मूर्द्धज, स्वादुर्वृष्यो वातकफापह ॥" (कैयदेव निघण्टु)

देशाई के मत से रोगी को सेवन कराना अन्य मद्यो की अपेक्षा अधिक प्रशस्त होता है। वैद्यराज कैयदेव ने अपने निघण्टु मे इस खजूरी की शराव को मादक, पित्त-कर, रुचिकर, दीपन, वलकारक, वीर्यवर्द्धक एव वात-कफहर बताया है।

उक्त ताजी नीरा केवल पौष्टिक पेय ही नही, अपितु इसमे औषधि गुणधर्म की भी विशेषता है। यह मूत्र-विकार, कामला, राजयक्ष्मा आदि रोगो पर विशेष लाभ-कारी है। दत कृमि, पृष्ठवंश रज्जू (रीढ) की विकृति, तथा स्त्रियों की गर्भावस्था की विकृति मे एव स्तनो मे दुग्ध वृद्धि के लिये भी यह प्रशस्त है।

(२) वीर्य क्षय के कारण हुई स्नायुविक दुर्वलता मे जबकि रोगी एकदम क्षीण, क्षुधा नष्ट एव रक्तहीन हो गया हो तो उसे प्रात साय पानी मे भिगोये हुए चने २॥ से ५ तोला तक थोडे से गुड के साथ खिलावें। तथा प्रात सूर्योदय से पूर्व ही ताजी नीरा आध सेर तक पिलावें। पथ्य मे केवल गेहूँ की पतली रोटी और थोडे से घृत मे वनी हुई मसालेरहित सब्जी देवें। शीघ्र ही लाभ होता है। रोगी को दुपहर में मौसम्बी का रस तथा ऋतु अनुकूल अमरूद, पपीता आदि देना चाहिये। यह प्रयोग अजीर्ण के रोगी को भी लाभकारी है।

(३) कास श्वास पर—कैसी भी खासी हो, नियमित रूप से प्रात नीरा के सेवन से दूर हो जाती है। किंतु लाल मिर्च, तैल, मसाला आदि से परहेज आवश्यक है। वैसे ही श्वास रोग की प्रारम्भिक अवस्था मे भी इसके सेवन से अवश्य लाभ होते देखा गया है। पथ्य—हलका, सुपाच्य होना आवश्यक है।

(४) राजयक्ष्मा (टी० वी०) के रोगी को प्रात प्रथम शीशम की लकडी का बुरादा ३ मासे तक समभाग मिश्री मिला फाककर ऊपर से नीरा पिलावें। कुछ दिनो मे सुधार होना प्रारभ हो जाता है।

नोट—किसी भी दशा में नीरा की मात्रा आध सेर से अधिक नहीं होनी चाहिए। वालक और वृद्धों को आधी या चौथाई मात्रा में सेवन करावें। उक्त तीनों प्रयोग धन्वन्तरि वर्ष २२ अ क ६ में प्रकाशित श्री गंगाधर राव जी वैद्यशास्त्री के लेख के सारांश में उद्धृत किये हैं।

(५) नीरा आसव (हैजा पर)—२॥ सेर नीरा लेकर चिकने मटके मे भर उसमे कपूर १ पाव तथा नागर-मोथा चूर्ण ५ तोला मिला मुख मुद्राकर १ मास तक सुरक्षित रख छानकर वोतलो मे भर दें। मात्रा—१०-१५ बूद वताशे मे टपका कर खिलावें। यह अर्क कपूर के समान ही हैजे को दूर करता है। साधारण अतिसार मे गुणदायक है। (मिश्र वलवंत शर्मा वैद्यराज)

(६) नीरासव नं २—(यकृत प्लीहादि विकार नाशक) नीरा २॥ सेर मे सुहागा, नवसादर, पाचों नमक, जवाखार, काच नोन और मूलीक्षार २॥-२॥ तोले, गाजर वीज, एलुआ तथा शख नाभि भस्म १-१ तोले, गुडहर (जवा पुष्प) की कली ६ नग सवका चूर्ण कर मिलावे। सधान पात्र मे भर मुख मुद्रा कर (दृढ मुख मुद्रा न करे मामूली ढक दें) १४ दिन कड़ी धूप मे रखें। फिर छानकर वोतलो मे भर रखें।

मात्रा—आध ड्राम (लगभग २ माशे) प्रात. साय आवश्यकतानुसार थोडा जलमिला सेवन से यकृत, प्लीहा, उदरशूल और स्त्रियो के अनियमित मासिक स्राव एव रजावरोध की सर्वोत्तम दवा है। (अ. यो. माला)

अन्य प्रयोग हमारे वृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखें।

नीरा से वनी हुई चीनी और गुड—नीरा को औटा कर ठडा कर लेने पर वह जमकर गुड रूप मे होजाती है। इसे ताड गुड कहते हैं। यह ताड़ गुड की क्रिया उत्तम प्रकार से ताजी नीरा से ही सपन्न होती है। वासी नीरा का गुड़ विकृत हो जाता है। वगाल व मद्रास मे इसके वृक्षो की विपुलता होने से वहाँ ताड़ गुड निर्माण करने का एक घरेलू व्यवसाय है। इन प्रान्तो मे वर्षभर मे १७५० ०० टन ताड गुड तैयार किया जाता है। ईख (गन्ना) का गुड तो ऐसेडिक (कुछ अम्लता एव क्षारयुक्त) होता है, किन्तु यह ताड गुड अल्कलीयुक्त होने से अधिक लाभकारी, पौष्टिक एव मलवद्धनाशक होता है। नीरा मे पाये जाने वाला 'क' विटामिन इसमे भी विद्यमान रहता है। इसी ताड़ गुड को सेंट्रिफ्युगल यन्त्र द्वारा परिष्कृत कर खाड या चीनी तैयार की जाती है जो ईख शर्करा से विशेष उपयुक्त होती है।

नोट—जङ्गली खजूर [खजूरी] का वृक्ष ५०-६० वर्ष तक

जीवित रहता है तथा जब यह ८ वर्ष का होता है तब से ही इसमें से रस निकलना प्रारम्भ हो जाता है। यह रस [नीरा] निकालने का उपक्रम वर्षाकाल के पश्चात् लगभग अक्टूबर से मई तक चालू रहता है। एक वृक्ष प्रतिवर्ष ४-६ मास नीरा देता है तथा २५ से ४० वर्ष तक देता रहता है। प्रतिदिन एक वृक्ष से २॥ सेर नीरा प्राप्त होती है। एक वृक्ष से एक मौसम में अधिक से अधिक २५ सेर गुड़ तैयार हो सकता है। एक दिन नीरा निकाल लेने के बाद प्राय: ३ दिन तक उस वृक्ष को आराम देते हैं।

—सरकारी पत्रक से।

खटखटी [*GREWIA SCABROPHYLLA*]

इस परूपक-फालसा कुल (Tiliaceae) की बूटी के क्षुप ६ से ११ फुट ऊचे श्वेतवर्ण के होते हैं।

पत्ते—फालसा के पत्र सदृश, किन्तु कुछ छोटे लगभग २-५ इ च लम्बे व १-२ इ च चौडे, गोल, एकान्तर, रोमश एव रेखायुक्त होते है।

पुष्प—४-५ छोटे छोटे पुष्प अलग अलग गुच्छो मे लगते हैं। फल—छोटे छोटे कुछ गोल एवं खटमीठे होते है।

इसका उक्त खटखटी नाम मरेठी भाषा का है। हिन्दी में इसे गुरभेली या सफेद धामन तथा लेटिन मे इसे ग्रेविया स्केब्रोफिला कहते हैं।

यह हिमालय प्रदेश मे गढवाल से सिक्किम तथा गुजराथ से विहार तक के प्रदेशो मे एव उत्तर प्रदेश मे देहरादून, सहारनपुर के जगलो मे पायी जाती है। उधर आसाम, चितागाग आदि प्रान्तो मे भी होती है।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसका सर्वांग अति स्निग्ध होता है।

पुष्टि के लिये—इसकी जड को खूब पीसकर दूध के साथ पिलाते हैं।

अतिसार, आमातिसार, कास और मूत्राशय की दाह पर—जड को पानी मे या तक्र के साथ पीस छान कर पिलाते हैं।

मल विबन्ध पर—जड, पत्ती आदि पचाग के क्वाथ की बस्ति दी जाती है।

शोथ और अस्थिरोग पर—जड को पानी मे पीस गर्म कर लेप करते हैं तथा इसकी जड ३ माशे, श्वेत, गुलाबास की जड २ तोले और धाय की जड ६ माशा इन तीनो को गोदुग्ध १ पाव के साथ पीस छानकर प्रात साय २४ दिन सेवन कराते हैं। इस प्रयोग से वातरक्त पर भी लाभ होता है। वातरक्त के रोगी को इसकी लकडी की छडी या इसकी जड को सदैव अपने पास रखने के लिये कहा जाता है।

कोकण की ओर कुष्ठ पर भी इसका प्रयोग करते हैं।

ख़तमी [*ALTHOEA OFFICINALIS*]

इस कार्पास कुल (Malvaceae) की बूटी के क्षुप ३-४ फुट ऊचे एव रोमश होते हैं। ग्रीष्मऋतु मे इन पौधों से पीताभ रक्तवर्ण का निर्यास (गोद) निकलता है। पत्ते—गोल, वड़े, खुरदरे, फीके हरे रग के और दन्तुर होते हैं। पुष्प—वडे, गोल, श्वेत, गुलाबी, लाल, पीले, अनेक र ग के प्राय निर्गन्ध होते हैं। इनमे श्वेत रग के फूलो वाली खतमी अन्य रग के फूलो वाली से गुणधर्म मे श्रेष्ठ मानी जाती है। जामुनी या ऊदे रग के पुष्पो वाली खतमी को ही भारतवर्ष मे 'गुलखैरू' कहते हैं। गुलखैरू और खतमी के गुणधर्म प्राय एक समान हैं (गुलखैरू का प्रकरण देखिये)। ईरान और काश्मीर की खतमी गुणधर्म मे अधिक उत्तम होने से यहा के यूनानी चिकित्सक उसीकी जड, बीज आदि का विशेष उपयोग करते हैं।

फल या फली—गोल होती है, जिसमे चपटे, गोल, काले र ग के बीज होते हैं।

मूल—शकु के आकृति की ३-६ इ च लम्बी, झुर्रियो से युक्त, गूदेदार तथा अनेक उपमूलो से सयुक्त, कुछ मधुर एवं हलकी गंधवाली होती है। मूल मे लुआव खूब होता है। लगभग २ वर्ष की आयु के क्षुपो की मूल

औषधि कर्म के लिये उपयुक्त होती है।

खतमी—ईरान और काश्मीर मे प्रचुरता से होती है। भारत के उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि के शहरो मे उद्यानो मे शोभा के लिये लगी यत्रतत्र पाई जाती है।

नाम—

खतमी इस फारसी नाम से ही यह प्राय: भारत की सब भाषाओं मे पुकारी जाती है। कहीं कहीं इसे ही गुलखैरू या गुलखेर कहते हैं। अंग्रेजी मे मार्शमेलो (Marsh mallow) तथा लेटिन में ऐलिथिया आफिशिनेलिस कहते हैं।

रासायनिक सङ्गठन—

मूल मे लुआव २५ प्र श, स्टार्च ५० प्र श तथा कुछ शर्करा एव एल्थीन (Althein) नामक एक तत्व (जो एस्प्रिन के समान वेदनाशामक है) १-२ प्र श पाया जाता है।

औषधि कार्यार्थ—इसका पचाग और बीज, पत्र, मूल, फूल तथा गोद लिये जाते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

बीज—

मूत्र और कफ के विकारो पर बीजो का विशेष उपयोग है। ये आमपाचक, शोथ, पित्तज कास आदि निवारक तथा व्रण पाचक हैं। ये स्नेहन और स्वेदन (मुजिश) रेचन के लिये उपयुक्त हैं। शरीर मे एकत्र हुए शुष्क मलो को आर्द्र कर फुलाकर उन्हे दस्तो के द्वारा बाहर निकाल देते हैं। इसका विशेष उपयोग वृक्काश्मरी, कोष्ठबद्धता, आन्त्र व्रण, मूत्रदाह, श्वेतकुष्ठ आदि पर होता है।

पैत्तिक काम एव कफ मे रक्तस्राव होने पर—बीजो को गर्म पानी मे कुछ देर भिगोकर फिर खूब मसल कर जो लुआव निकलता है उसमें कुछ शक्कर (खॉड) मिला पिलाते हैं। गर्भाशय के शोथ पर बीजो के लुआव मे कपडे को भिगोकर गर्भाशय पर रखते हैं। मूत्रेन्द्रिय की सूजन पर बीजो को सिरके मे पीसकर लेप करते हैं। हाथ पैरो की त्वचा के फटने या पाददारी पर बीजो को समभाग बबूल गोद के साथ पानी मे पकाकर प्रलेप एव प्रक्षालन करते हैं। श्वेत कुष्ठ पर बीजो को पीस कर लेप कर रोगी को धूप मे बैठने के लिये कहा जाता है।

वध्यत्व निवारणार्थ—यदि गर्भाशय के मुख के बन्द होने से स्त्री बाझ हो तो बीजो के क्वाथ से टब को भर कर उसमे उस स्त्री नाभि के निम्न भाग मे नितम्ब के सहारे बैठ धीरे धीरे गर्भाशय पर मर्दन करने को कहा जाता है।

मूल—

वेदनाशामक, कोष्ठबद्धता, पैत्तिकातिसार, कास, खुश्की, रक्तमिश्रित कफस्राव तथा मूत्र, आन्त्र और गुदा की दाह पर इसका प्रयोग किया जाता है। शुष्क या पैत्तिक कास एव शोथ निवारण यह इसका प्रधान गुण है। ऐसी दशा मे मूल का स्वरस या क्वाथ दिया जाता है। फुफ्फुसावरणशोथ (प्लूरिसी) और फुफ्फुसशोथ (निमोनिया) पर इसके क्वाथ और पुल्टिस का प्रयोग करे।

मूत्रकृच्छ्र पर—मूल के फाट मे शराब मिला कर पिलाते हैं। यह प्रयोग अश्मरी पर भी लाभकारी है। पीडायुक्त सधिशोथ एव कर्ण शोथ पर जड को पीसकर उसमे बकरी की चरबी, रोगन सोसन और बाकले का आटा मिला पकाकर लेप करते हैं। दत वेदना पर इसके क्वाथ मे सिरका मिला कुल्ले कराते हैं।

मूत्र कृच्छ्र, सुजाक आदि मूत्र विकारो पर—इसकी जड, बीज, कटकरज बीज तथा गोखरू ४-४ भाग, कबाबचीनी ५ भाग, लकडी परवान भेद २ भाग, कालीमिर्च १ भाग और खाड ६ भाग इन सबका एकत्र चूर्ण कर मात्रा ५ से १० रत्ती तक सेवन कराते हैं।

कास, श्वास पर—इसकी जड ४ भाग, बीज ५ भाग, मुलैठी ६ भाग, गुलबनफ्सा ४ भाग, अजीर ५ भाग, कालीदाख ५ भाग तथा त्रिकटु २ भाग इस मिश्रण का क्वाथ ४ माशे से १ तोले तक सेवन कराते हैं।

स्नेहन, स्वेदनार्थ तथा फुफ्फुसो की दाहयुक्त शोथ पर—शर्बत—इसकी जड ३ भाग जौकुटकर ४० भाग पानी मे १२ घण्टे भिगोकर खूब मसलते एव निचोडते हुए छानकर लुआब ३२ भाग तक निकाल कर उसमे ६४ भाग खाड मिलाकर पकाकर शर्बत तैयार करते हैं। यह शर्बत मृदुकर (अन्दर के भागो को मुलायम करने वाला) है। यह फुफ्फुसो के दाहयुक्त शोथ पर लाभ करता है। इसे बार बार धीरे धीरे चटाते पिलाते भी हैं।

पत्र—

पैत्तिक शोथ, कठमाला, गठिया, गृध्रसी, श्वेतकुष्ठ, उदरशूल, आमातिसार पर इनका प्रयोग किया जाता है।

पैत्तिक उदरशूल और आमातिसार पर—पत्तो का चूर्ण पानी के साथ पिलाते हैं। ताजे पत्तो को चबाकर खाने से भी लाभ होता है। आत्र दाह तथा मूत्रदाह पर भी इससे लाभ होता है।

स्तन शोथ पर—यदि पित्त या गर्मी से यह शोथ हो तो पत्ते को पीसकर लेप करते है।

विषैले कीटक दश पर—पत्तो को पीसकर जैतून तैल मे मिला लगाते है।

श्वेत कुष्ठ पर—पत्तो को सिरके मे पीसकर लेप कराकर धूप मे बैठाते है।

अग्निदग्ध पर—पत्तो के कल्क को तैल मे मिला कर लगाते हैं। पत्तों का प्रयोग पुल्टिस के रूप मे तथा वफारा देने से भी उत्तम होता है।

फूल—

आमरस एव व्रण पाचक, शोथ, पीडा आदि निवारक है। फूलो का भी उपयोग मु जिश (स्नेहन, स्वेदन) रूप मे उदर शुद्धि के लिये विशेष किया जाता है। पैत्तिक सिर पीडा पर—फूलो के कल्क का लेप करते हैं। वृक्काश्मरी और आत्र के शोथयुक्त व्रण पर—फूलो का क्वाथ पिलाते हैं, यह क्वाथ पक्षाघात, गृध्रसी, अपस्मार तथा अनियमित मासिक स्राव पर लाभकारी है।

गोंद—

यह शीतल और खुश्क है। तृष्णा, पित्तातिसार, तथा पित्त के वमन पर यह दिया जाता है।

नोट—बीजों की मात्रा २ से ६ माशे तक है। अधिक मात्रा मे या अधिक काल तक सेवन से फेफड़ों को तथा आमाशय को हानिप्रद है। हानिनिवारक सौंफ या शहद है

मूल—मात्रा ४ से ८ माशे है। अधिक काल तक अधिक मात्रा मे सेवन से आमाशय को हानिप्रद है। हानिनिवारक सौंफ है।

फूल—मात्रा २ तोले है। अधिक मात्रा में या अधिक काल तक सेवन से आमाशय को हानिप्रद है। हानिनिवारक शहद है।

खरबूजा [CUCUMIS MELO]

फलवर्ग एव कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल की बेल तरबूज की बेल जैसी प्राय. जमीन पर ही फैलने वाली होती है। इसके काण्ड गोल या कोणयुक्त होते है। पत्र—गोल, रोमश, कर्कश, कोणयुक्त, पुष्प—पत्रकोणोद्भूत, एकलिंगी पीले, या श्वेतवर्ण के होते हैं। फल—गोल, कुछ चपटे कुछ लम्बे, पकने पर किंचित हरिताभ पीत या श्वेत वर्ण के कोई नारगी वर्ण के सुगंधित, उन पर चारो ओर लगभग १० धारिया नीले रग की बनी हुई होती हैं। पुराणो मे उल्लेख है कि भगवान विष्णु ने आदर से इसे अपने दोनो हाथो मे धारण किया था। अत इसे सस्कत मे 'दशागुल' नाम दिया गया है। फल के भीतर गूदा मोटा लाल, श्वेत या हरे रग का होता है। गूदे के मध्य भाग में बीजो के समूह का लसीला गोला रहता है। बीज—लम्बे, चिपटे, ककड़ी, के बीज जैसे होते हैं।

नोट—(१) यद्यपि आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थों मे इसका विषद उल्लेख नहीं मिलता तथापि यह निश्चित् रूप से कहा जा सकता है कि भारतीयों को इसका ज्ञान प्राचीन काल से था।

(२) उप जातिया—भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों की आबहवा एवं स्थान भेद से रूप रंग एव स्वाद की विभिन्नता के कारण इसकी कई उप जातिया है। किन्तु गुणों की दृष्टि से उनमे कोई विशेष अन्तर नहीं है। लखनऊ का खरबूजा विशेष प्रसिद्ध है। ये ऊपर से अधिक पीले रग के छोटे चिपटे सुन्दर सुगंधित एव अति स्वादिष्ट होते हैं। ऐसे ही जौनपुर के होते हैं। इनके भीतर का गूदा प्राय. श्वेत होता है।

बिहार के मुजफ्फरपुरी तथा पटना के नारंगी रग के होते हैं। वहां इन्हें लालमी कहते है। ये भी उत्तम विशेष मधुर होते हैं। गाजीपुरी खबूजा पीले रग का किन्तु अधिक स्वादिष्ट नहीं होता। इलाहाबादी, खबूजे ऊपर से हरे या हरी धारीदार एव पीताभ होते हैं। इन्हें
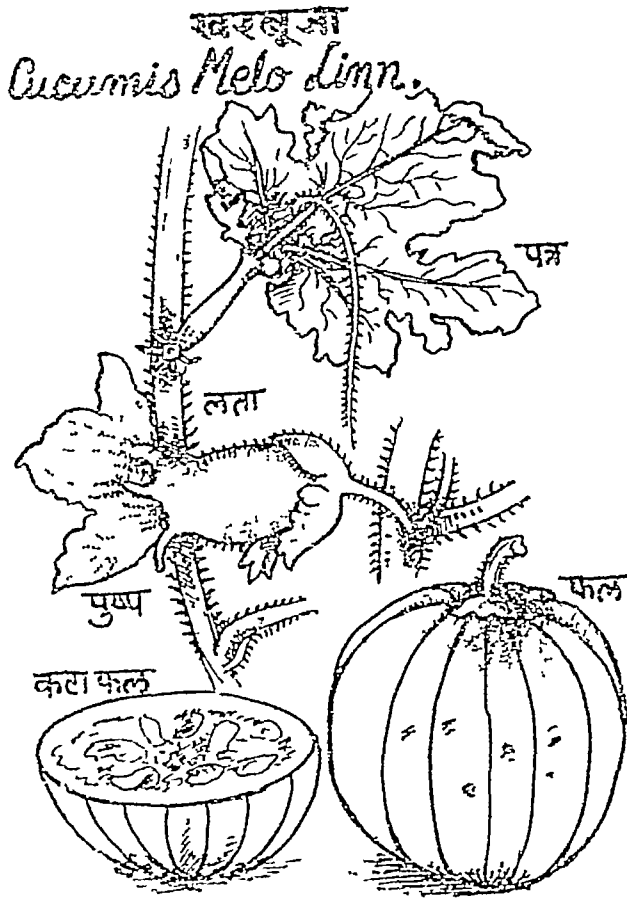
हरिया मीठा कहते हैं। इनका भीतरी भाग भी हरा होता है। ये उत्तम स्वादिष्ट मधुर एवं विशेष गुणयुक्त होते हैं। सहारनपुर तथा अलीगढ के ये फल साधारण किस्म के होते हैं।

चितला खरबूजा जिसका ऊपरी छिलका चितकबरा होता है बहुत सस्ता मिलता है। यह विशेष स्वादिष्ट नहीं होता। कोई खरबूजे अम्ल, नमकीन स्वाद वाले होते हैं। ये अस्वास्थ्यकर होते है। काबुल के खबूजे भारतीय खर्बूजों से विशेष मधुर होते हैं। 'फूट' खबूजे की ही जाति का है, वर्णन 'फूट' में देखें।

खर्बूजा भारत मे प्राय. सर्वत्र रेतीली भूमि मे या नदियों की छोर में प्रचुरता से पैदा होते है। यह ग्रीष्म काल का एक मधुर मेवा है।

नाम—

सं—खर्बूज, षड्भुज, दशाङ्गुल, मधुफल।
हिन्दी—खरबुजा, लालमी, डगरा।
म०—खरबूज, चिबुड, व०—खेर्बुज।
गु०—तलिया मकरटेटी, तलीया चीभड़ा भीमड़ा
अं०—स्वीट मेलान (Sweet Melon)
ले०—कुकुमिस मेलो

रासायनिक संघठन—

इसमे शरीर को सशक्त बनाने वाले तत्व लोह और व्हिटामीन 'सी' अधिक मात्रा मे पाये जाते हैं। साथ ही खनिज लवण की भी इसमे विशेपता होने से यह स्कर्वी जैसे रोगो से शरीर की रक्षा करता है। ग्लूकोज (शर्करा) की मात्रा भी इसमे यथोचित है। इसके अतिरिक्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स आदि भी इसमे पाये जाते हैं। इसके छिलके मे क्षारीय तत्वो की विशेपता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

पका हुआ मीठा फल—

शीतल, मधुर, समशीतोष्ण, किंचित अम्ल, वृष्य गुरु, रुचिकर, कोष्ठशुद्धिकर, स्निग्ध, पित्तवातशामक, दाह, तृषा, मूत्रकृच्छ्र, उन्माद, रक्तविकार, कुष्ठ नाशक है। इसमे जो खारा रस वाला होता है वह रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र प्रकोपक होता है। पुराना फल—मधुर, अम्ल एव रक्तपित्त प्रकोपक है।

पका मीठा फल—उपर्युक्त गुणो के साथ ही साथ इसका प्रधान कार्य यकृत पर होता है। इसके यथाविधि उचित मात्रा मे सेवन से पित्त का निर्माण एव उत्सर्ग यथोचित रूप से होने लगता है। नवीन रक्तनिर्माण का कार्य तेजी से होता है। कामला और पाडु पर शीघ्र ही लाभ होता है। इससे वृक्क का कार्य भी सुचारू रूप से होता है, मूत्रदोषो का परिहार होकर उसकी शुद्धि, प्रवृत्ति होती है। इसके सेवन से शरीर को पुष्टि, हृदय व मस्तिष्क को शाति प्राप्त होता है। यह उत्तम स्तन्यवर्धक, स्वेदल तथा जलोदर, मूत्रमार्गस्थ व्रण, अश्मरी पर लाभकारी है।

नोट—इसे खाने के पूर्व कुछ देर शीत जल में भिगो रखना चाहिये। तथा भोजन के कुछ देर बाद ही सेवन करना ठीक होता है। खाली पेट या भोजन के पहले खाने से शरीर में पित्तप्रकोप की सभावना है। किसी किसी को पित्त ज्वर भी हो जाता है। इसके खाने के पश्चात् ही दूध का सेवन हानिप्रद है, अतिसार या हैजा होने का भय है। आसपास हैजा फैला हो, तो इसे खाना ठीक नहीं।

इसे यथोचित प्रमाण में खाने के बाद एक ग्लास शक्कर का शर्बत पीना पाचन के लिये विशेष उपयोगी

है । पुराने उकवत या एक्जीमा पीडित रोगी के लिये यह अतिहितकारी है। उष्णवात, अश्मरी, जलोदर तथा आमप्रवाहिका पर भी यह लाभकारी है। इसके सेवन से दांतों का मल साफ होकर वे सुदृढ़ होते हैं।

(१) मूत्र विरेचनार्थ—उत्तम ताजा परिपक्व फल एक बार मे एक पाव तक खाकर ऊपर से मिश्री की डली ३ माशे की चूस लें। दिन मे ३-४ बार इसी प्रकार (और कुछ भी खाते हुए) इसके सेवन से मूत्र विरेचन भली भाति होकर वीर्य वृद्धि भी होती है। किन्तु पानी नही पीना चाहिये। २-३ घण्टे बाद शक्कर मिला हुआ गोदुग्ध थोडे प्रमाण मे ले सकते हैं। (फलाक से)

(२) मलबद्धता पर—आंतो मे बार बार मलसचय होकर कब्जी रहती हो, बार बार विरेचनीय औषधि, एनिमा आदि लेना पडता हो तो इसका सेवन सेंधानमक और कालीमिरच के साथ प्रतिदिन करे।

(३) प्रवाहिका की प्रारम्भिक अवस्था मे जबकि आम रस युक्त कफ लिपटा हुआ दुर्गन्धयुक्त मल की बार बार प्रवृत्ति हो तो इसे सोठ, जीरा, कालीमिरच और सेंधानमक के साथ सेवन कराने से आम का पाचन होकर मल की दुर्गन्धि तथा अपानवायु का अवरोध दूर होता है। ध्यान रहे--सग्रहणी विकार मे तथा उक्त प्रकार के विकारो मे ग्रहणी की विकृतावस्था को दूर कर उसे आहारादि के दूषित परिणामो से बचने की शक्ति प्रदान करना, तथा आन्त्र पर किसी प्रकार का अनिष्ट प्रभाव न डालते हुए, मल को सम्यक् फुलाकर उदर शुद्धि का विशेष गुण इसमे ईसबगोल के जैसा ही है।

पैत्तिक उन्माद की अवस्था मे भी यह विशेष हितकारी है। त्वचा की झाई या व्यङ्गो को दूर करने के लिये इसके गूदे को पीसकर लगाते हैं।

(४) खरबूजा कल्प—इस कल्प का प्रयोग सग्रहणी की उत्तरकालीन स्थिति मे शरीर पुष्टि, आम दोष निवृत्ति एव यकृत-कार्य के उत्तेजनार्थ आम्रकल्प या दुग्धकल्प के समान ही किया जाता है। यह कल्प सग्रहणी के अतिरिक्त उन्माद, हृदय के रोग, नपुसकता, अश्मरी, सधिवात आदि मे भी विशेष उपयोगी है।

"उत्तर बिहार के प्राचीन वैद्यो मे जिस भाति कच्चे केले को उबाल कर मखनिया (माखन मिश्रित) दही के साथ खिलाकर पुरातन सग्रहणी, शोथ तथा कई प्रकार की अन्यान्य पुरातन व्याधियो से ग्रसित रोगियो के रोग दूर कर उनके शरीर को नया बनाने की प्रथा है उसी प्रकार उत्तर प्रदेश के काशी और लखनऊ इत्यादि के कुछ प्राचीन वैद्य खरबूजे के प्रयोग से रोग को दूर कर शरीर दोषो से रहित कर देते थे।"

(पं केदारनाथ पाठक की आरोग्यलेखाञ्जली से साभार)

विधि—इस कल्प को केवल २१ दिन ही करना चाहिये। प्रारम्भ मे दूध चावल रखें, बीच मे ७ दिन के लिये बिलकुल खरबूजे पर ही निर्भर रहे। अन्त मे धीरे धीरे अपने पुरातन क्रम पर आजावे तथा ताजे फलो का उपयोग करें।

खरबूजे का मात्र गूदा भाग ही खाना चाहिये। ऊपर से मिश्री चूसें। प्रथम बार १० तोला एक बार मे लेवे। इस क्रम से दिन मे ३ बार लेवे। फिर प्रतिदिन प्रति बार १-१ तोले की मात्रा से १० दिन तक बढाते जांय। ११ वे और १२ वे दिन वही मात्रा रखें। पश्चात् उसी क्रम से घटाते जावे। अन्त मे अन्य सुपाच्य ताजे फलो का रस या ताजे फल व्यवहार मे लाने चाहिए। इस कल्प से धातुविकार हटने के साथ साथ गुर्दे के रोग भी ठीक हो जाते हैं। (रसायन के फलाक से साभार)

किसी किसी की राय मे इस कल्प के कुछ दिन पश्चात् दुग्ध कल्प कराना आवश्यक है जिससे इस कल्प से हुई शारीरिक क्षीणता शीघ्र दूर होकर शरीर हृष्ट पुष्ट हो जाता है।

शरबत खरबूजा—इसके गूदे को घियाकस पर कस कर उसे काच के पात्र में भर उसमें अन्दाज से शक्कर मिलावें। बहुत पतला या बहुत गाढा न होने पावे। फिर उसमें थोडा सा नीबू रस निचोड दें। यह शर्बत कोष्ठबद्धता, हिस्टीरिया, पित्त की पथरी में बहुत लाभकारी है, मूत्र साफ लाता है, आमाशय के कई विकारो को दूर करता है। इसे अधिक पीने पर भी कोई हानि नही होती। (कविराज डा० एच. सी वर्मा फलौदी क्वाथरी, सवाई माधोपुर)।

बीज खरबूजा—खरबूजा के बीज शीतल, बल्य, मूत्रल, आर्त्तव जनन, लेखन, अश्मरीघ्न, अवरोधो-

द्रावक, विशेषत यकृत के अवरोध को दूर करते हैं। इनमे मूत्रप्रवर्त्तन गुण की विशेषता है। अश्मरी, पूयमेह (सुजाक) और रुद्धार्त्तव मे भी यह विशेष गुणकारी है। ऐसी अवस्था में बीजो का क्वाथ दिया जाता है।

(५) पूयमेह (सुजाक) या मूत्रकृच्छ्र पर—बीजो को जल में पीस छान कर उससे १०-१५ बून्द चन्दन तैल मिलाकर सेवन कराते हैं।

(६) वृक्क शूल पर- बीजो को पीस छानकर उसमें जौखार तथा कलमी सोरा मिलाकर पिलाते हैं। इससे शूल दूर होकर मूत्र साफ आता है।

(७) बालको के बार बार मूत्र त्याग पर—बीजो को ठडाई के साथ पीसछान कर चद्रप्रभावटी के साथ दें।

(८) लू लगने पर—बीजो को पीस कर सिर पर लेप करते है, तथा इसीका पतला लेप शरीर पर भी करते हैं, और बीजो को पीस ठडाई या शर्बत के साथ मिलाकर पिलाते हैं।

(९) शारीरिक सौन्दर्य, काति बढाने के लिए तथा झाई, व्यङ्ग एव अन्य त्वचा के विकारो पर बीजो का प्रलेप किया जाता है।

(१०) अन्य उपयोग—फलाहारी लड्डू बनाने मे तथा बेसन या सूजी के लड्डु मे भी बीजो का उपयोग होता है। मैदे की गुजियो मे इसकी मींगी को सूजी चीनी इत्यादि के चूरन मे मिला कर भरने की प्रथा है। इत्यादि कई प्रकार से इनका उपयोग किया जाता है।

आर्य तथा यूनानी वैद्यक की औषधियो के योगो मे कई प्रकार के मगजो के साथ अथवा स्वतत्र रूप से भी बीजो का व्यापक प्रयोग देखने मे आता है।

कच्चा खरबूजा—

मधुर, शीतल, किंचित अम्लतायुक्त, तिक्त तथा त्वचा मे प्रदाहकारी, दुर्जर, आन्त्रसकोचक एव वातप्रकोपक है।

लौकी या कद्दू की तरह छीलकर इसकी रसेदार या सूखी तरकारी बनाई जाती है। रसेदार तरकारी में १-२ चम्मच मठा या दही के घोल को डाल देने से रस उत्तम पाचक बनता है।

फलों का छिलका—

मूत्रल, तथा अश्मरीघ्न है। छिलको को शुष्क कर महीन चूर्णकर थोडा तैल और पानी मिला उबटन जैसा बनाकर मुख की काति निखरती है। झाई आदि दाग दूर होते हैं। इसके चूर्ण को ३ माशे तक देर से सिद्ध या पकने वाली दाल या तरकारी मे डालने से उनकी शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है।

मूत्रावरोध पर—छिलको को जल मे पीसकर पिलाने से शीघ्र ही पेशाब खुलकर हो जाता है। छिलको को घृत या तैल मे तलकर स्वादिष्ट सूखी या रसदार शाक बनाते हैं। इन्हे धूप में सुखाकर भी तला जाता है।

मूल—

खरबूजे की जड मे कुछ वामक एव रेचक तत्व हैं। इसका प्रयोग वमन रेचनार्थ किया जा सकता है।

नोट—खरबूजों का अविधिपूर्वक अतिमात्रा में सेवन संचित एवं कुपित दोषों का वर्धक तथा अजीर्णोत्पादक है। उदर और आंत्र को कमजोर कर प्रवाहिका, अतिसार आदि विकारों को उत्पन्न करता है। ऐसी दशा मे हानि-निवारणार्थ–सिरका, सिकंजबीन (सिरका और शहद के मिश्रण से बना हुआ शर्बत), अनार रस के सेवन से नेत्राभिष्यन्द (आंखें आना) हो जाया करता है।

बीजों की मात्रा ५-७ माशे है। प्लीहा के रोगों पर ये अहितकर हैं। इसका हानिनिवारक शुद्ध शहद है। इनके अभाव में ककडी के बीज लिये जाते हैं।

खरैटी [*SIDA CORDIFOLIA*]

इस गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार कार्पास कुल (Malvaceae) की वनौषधि के अनेक शाखायुक्त छोटे छोटे क्षुप २-४ फुट ऊ चे होते हैं। इसका मूल और काड काष्ठमय, रेशेदार एव सुदृढ होने से इसे 'बला' कहते हैं।

छाल—साधारण पीताभ भूरे रग की, पत्र तुलसी पत्र जैसे एकान्तर, १-२ इ च लम्बे, १ इ च चौडे, गोल, दन्तुर, मृदुरोमश, नोकरहित, ७-९ सिराओ से युक्त होते है। पत्र-वृन्त ½ से १॥ इ च लम्बा तथा पुष्प वर्षा के अन्त मे, पत्रकोणोद्भूत, छोटे छोटे गु डीदार, हलके पीले

रग के और फल १/३ इ च व्यास के, पचकोष्ठीय, आकार प्रकार मे मूंग जैसे होते हैं।

बीज—उक्त फलो मे राई जैसे नन्हे नन्हे भूरे या काले रङ्ग के इन वीजो को वीज वद, पजाव मे हमज या चुकई कहते हैं। वर्षाऋतु के वाद मे सितम्बर से अक्टूवर तक पुष्प तथा अक्टूवर से फरवरी तक फल लगते हैं।

मूल (जड)—निस्तेज श्वेतरग की पैंन्सिल जैसी प्राय २-५ इ च लम्वी और आधी इ च मोटी होती है।

इसके क्षुप भारत के प्राय सव प्रान्तो मे वारहो मास पाये जाते हैं। वर्षात मे खूबहरा भरा हो जाता है।

नोट—(१) भावप्रकाश में इसके ४ भेद (वला चतुष्टय) दर्शाये हैं। उनमें से अतिबला का विवरण कंघी के प्रकरण में दिया जा चुका है। महावला के लिये सहदेवी का तथा नागवला के लिये गंगेरन का प्रकरण देखिये। यहां वला (खरैंटी) का विवरण दिया जा रहा है।

(२) श्वेत और पीत पुष्पो के भेद से इस बूटी के २ भेद हैं। ऊपर का वानस्पतिक वर्णन पीत वला का है। यह प्रायः सर्वत्र सुलभता से प्राप्त है। श्वेत वला छोटी और वड़ी भेद से दो प्रकार की है। आधुनिक वानस्पतिक कुल के अनुसार Sida Acuta, S Carpinifolia, S Lanceolata अनेक क्षुप उक्त दोनों के ही अन्तर्गत हैं।

छोटी श्वेत वला (खरैंटी) के फूल भी विल्कुल श्वेत नहीं होते, उनमें कुछ पीलापन रहता है। इसमें विशेषता यह है कि ये दोपहर में ही खिलते हैं। वड़ी के पुष्प प्रायः श्वेत ही होते हैं तथा फल गोल नारंगी रंग के होते हैं जो पकने पर छोटे रुद्राक्ष जैसे दीख पड़ते हैं। ये दोनों भारत के उष्ण प्रदेशों में अधिक पाये जाते हैं। हिन्दी में प्राय वड़ी को वरियारा तथा छोटी को खरैंटी कहा जाता है। उक्त सव प्रकार की खरैंटी के गुणधर्म एवं रासायनिक सङ्गठन प्राय' एक समान ही हैं।

(३) चरक के वल्य, बृंहणीय, प्रजास्थापन एवं मधुर स्कंध में तथा सुश्रुत के वातसंशमन गणों में इसकी गणना है।

एक भूमिवला (लता खरैंटी) भी होती है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये। खरैंटी की ही एक जाति विशेष को गुजराथी में जङ्गली मेंथी कहते हैं। देखिये गगेरन में।

नाम—

सं०—वला, वाट्यालिका, खरयष्टिका।

खरैंटी (बला)

SIDA CARDIFOLIA LINN.

हिं०—खरैंटी, वरियारी, वरियारा, सिमक।

म०—चिकणा, थोरला चिकणा।

गु०—खपाट, वला, खरेटी। वं०—वेडेला।

अं०—कंट्री मेलो (Country mallow), सिडा (Sida)।

ले०—सिडा कार्डिफोलिया, सिडा हरवेसी (S Herbacea), सिडा रोटंडीफोलिया (S Rotundifolia), सिडा अलथेसीफोलिया (S Althacifolia)

रासायनिक सङ्गठन—

इसके पचाग मे एक क्षाराभ तैल फाइटोस्टेराल (Phytosterol) तथा मूल, काड और पत्र मे एक एफेड्रीन (Ephedrine)[१] प्रधान क्षार तत्व ० ०८५ प्र० श० होता है। यही क्षार तत्व वीजो मे अधिक से अधिक

[१] एफेड्रीन के पौधे पहाड़ियों पर कठिनाई से प्राप्त होते हैं अत यह काफी मंहगा पड़ता है। खरैंटी यहां विपुलता से सहज प्राप्त होते हुए भी इसकी यथायोग्य वैज्ञानिक ढग से उपज नहीं की जाती। अन्यथा इससे उत्तम एफेड्रीन सस्ते में प्राप्त हो सकती है।

० ३२ प्र० श० पाया जाता है। इसीसे खरैंटी श्वासरोग मे विशेष हितकारी हैं। इसके अतिरिक्त वसाम्ल, पिच्छल द्रव्य, पोटाशियम नाइट्रेट, राल आदि पाये जाते हैं। इसमे टेनिन और ग्लुकोसाइड नही पाया जाता।

प्रयोज्य अग—मूल, पत्र, बीज तथा पचाग।

गुण धर्म और प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर, विपाक मे मधुर एव शीतवीर्य है। यह वात पित्त शामक, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही, हृद्य, मूत्रल, गर्भपोषक, वल्य, बृहण, ओजवर्धक, वेदनास्थापन, शोथहर तथा पक्षाघात, अर्दित आदि वात विकार, रक्तपित्त, नेत्ररोग, व्रणशोथ, कोष्ठगतवात, हृद्दौर्बल्य, ग्रहणी, उर क्षत, शुक्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, कृशता, पित्तातिसार एव ज्वरादि नाशक है।

शुक्रमेह पर—इसके पचाग का स्वरस देते हैं। हृदय को बलप्रदानार्थ—इसका प्रयोग मकरध्वज व कस्तूरी के साथ करते है। प्रमेह एव धातुविकार पर—पचाग को पानी मे पीस रस निचोडकर ७ से २० तोले तक की मात्रा मे ७ या १४ दिन सेवन कराते हैं। सुजाक मे पचाग का शीत निर्यास ढाई तोले की मात्रा मे २ बार देने से मूत्र साफ होता है तथा पसीना आता है।

मूल एवं मूल की छाल—

बृहण (मास और शुक्रवर्धक), बल्य, अग्निप्रदीपक, शीतल, कसैली, तिक्त व स्निग्ध है। आयुर्वेदिक ऋद्धि बूटी के अभाव मे इसका प्रयोग किया जा सकता है।

सुजाक, या श्वेत प्रदर या रुक रुक कर बार बार मूत्र होने की दशा मे मूल या मूलछाल का चूर्ण दूध और शक्कर के साथ सेवन कराते हैं।

अर्धांग, अर्दित, मन्यास्तभ, अवबाहुक, गृध्रसी और शिर शूल मे इसकी केवल मूल या इसके साथ हीग सेंधानमक मिला सेवन कराते हैं, तथा दूध के साथ इसके सिद्ध तैल की मालिश कराते हैं। मूत्र दोप तथा अन्य वात विकारो मे इसे सोठ के साथ देते हैं। प्रदाह और ग्रहणी विकारो मे इसका रस देते है। मदात्ययजन्य तृषा एव दाह पर—इसका क्वाथ देते हैं।

शुक्रमेह पर—ताजी जड को पानी के साथ छानकर थोडी शक्कर मिला प्रात पिलाते हैं।

अर्दित पर—इसका चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ दूध पिलाते हैं। तथा बला तैल (देखो आगे विशिष्ट प्रयोग) की मालिश कराते हैं।

अण्डवृद्धि पर—इसके २ तोले क्वाथ मे ५ तोले तक शुद्ध रेंडी तैल मिला पिलाते हैं।

गठिया पर—क्वाथ का सेवन कराते हैं। विशूचिका मे—मूल छाल ५ माशे तक जल मे पीस छानकर पिलाते है। स्वरभग पर—इसके चूर्ण को शहद या मिश्री के साथ देते हैं। आध्यमान, शूल और आत्र एव अण्ड वृद्धि पर—इसके रस या क्वाथ से सिद्ध किये गये रेंडी तैल को दूध के साथ पिलाते हैं।

फेफड़ो के क्षय या टी वी पर—मूल छाल को दूध के साथ दो मास तक सेवन कराते तथा रोगी को केवल दूध पर ही रखते हैं।

बाहुशोष और मन्यास्तभ पर—इसके क्वाथ में सेंधा नमक मिला पिलाते हैं। (व से०)

अथवा—मूल के साथ नीम छाल मिला क्वाथ कर पिलावें तथा उड़द के क्वाथ की नस्य देवें। १ मास मे पूर्ण लाभ होकर बाहु बज्रतुल्य होती है। —भा० प्र०

रक्तपित्त पर—इसके चूर्ण के साथ दूध और जल का मिश्रण कर दुग्धावशेष क्वाथ सिद्ध कर सेवन से दाह प्रधान ऊर्ध्व एव अधोरक्तपित्त मे लाभ होता है।

फिरगोपदशजन्य क्षतों पर—जड को पीस कर बाधने तथा इसके पचाङ्ग के क्वाथ से प्रक्षालन करते हैं। फोडे को पकाकर फोडने के लिये मूल छाल के साथ कपोत विष्टा को पीस कर प्रलेप करते हैं।

शस्त्र आदि से हुए जख्म पर—इसकी जड के रस को भर देते हैं। तथा उसी रस में रुई तर कर बाध देते हैं। और ऊपर से बार बार रस टपकाते रहते है।

मूत्रातिसार मे— मूल छाल का चूर्ण दूध व शक्कर से देते हैं।

(१) रसायन योग—वमन, विरेचनादि क्रियाओ द्वारा शरीर शुद्धि के पश्चात् कुटी-प्रावेशिक विधि से (कल्प प्रयोगार्थ निर्माण की हुई कुटी मे प्रवेश कर) इसकी जड आध पल या १ पल तक (वर्तमान मे ६ माशे से १ तोला तक) चूर्ण को दूध मे घोलकर (प्रात) पिलावें।

औषधि का पाचन होने पर दूध, घी और भात का भोजन करें। इस प्रकार १२ दिन प्रयोग करने से १२ वर्ष तथा १०० दिन के प्रयोग से १०० वर्ष की आयु स्थिर रहती है। यह प्रयोग बल के इच्छुक, शोषरोगी, रक्तपित्त से ग्रसित, रक्तवमन करने वाले तथा विरेचन के योग्य व्यक्तियो के लिये विशेष उपयोगी है। सुश्रुत चि अ २७

(२) रक्तपित्त पर–इसकी जड के साथ गोखरु, आमला, मुनक्का, महुआ की छाल, और मुलैठी समभाग जौकुट कर चूर्ण ५ तोला, दूध १ सेर, पानी ४ सेर एकत्र मिश्रण कर मदाग्नि पर दुग्धावशेष रहने तक पाक करें। (वर्तमान मे उक्त प्रमाण से आधे प्रमाण मे क्षीर-पाक करना ठीक है) इस बला सिद्ध क्षीर को दिन मे ३ बार सेवन कराने से लाभ होता है। —हा० स०

(३) रक्तार्श के रक्तस्राव पर–इसकी मूल के साथ पिठवन (पृश्निपर्णी) को दूध और जल में मिला दुग्धावशेष क्वाथ सिद्ध कर पीने से, अथवा उक्त द्रव्यो के द्वारा सिद्ध किये हुये घृत के सेवन से लाभ होता है।

(४) क्षय पर–इसकी मूल का कल्क १ भाग, घृत दो भाग, तथा गौदुग्ध २० भाग एकत्र मिश्रण को मंदाग्नि पर पका घृत सिद्ध करलें। इसके सेवन से क्षयजन्य उर क्षत, दाह, कफप्रकोप, अतिसार ज्वर मे लाभ होता है।

(५) वातरक्त पर–(इस विकार में रक्त के भीतर वात का प्रकोप होने से सन्धिस्थानो मे मूत्रक्षार जमता है, तथा दाह, शूल, तोदादि व्यथायुक्त शोथ आदि लक्षण होते हैं) उदर सेवनार्थ इसकी मूल के कल्क तथा क्वाथ से सिद्ध किये हुए घृत का सेवन करने और इसके कल्क एव क्वाथ की ४-६ बार भावनायें देकर विधिपूर्वक सिद्ध किये गये तैल का मर्दन करायें। —गावो मे औ र.

प्रदर पर–रक्तप्रदर हो तो इसकी जड के साथ कुश जड मिला, चावलो के धोवन के साथ पीस छान कर सेवन करावें। (यो० र०)

श्वेत प्रदर हो तो—जड के चूर्ण को प्रात साय शहद से देकर ऊपर से दूध पिलावें। अथवा मूल छाल के चूर्ण को दूध के साथ पीस छानकर सेवन करावें। अथवा मूल छाल के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ दें।

सगर्भा स्त्री के शूल पर—मूल कल्क एव क्वाथ से सिद्ध किये हुये घृत का सेवन प्रात साय कराते रहने से शूल की शाति तथा गर्भ एव गर्भिणी की पुष्टि होती है।

(८) अतिसार पर—मूल छाल के हिम के साथ अतीस का चूर्ण मिला पिलाते हैं। अथवा मूल के क्वाथ मे जायफल घिसकर पिलाते हैं। यदि अतिसार मे मल-क्षय के कारण अति निर्बलता आ गई हो तथा अग्निदीप्त हो तो इसकी मूल के साथ सोठ मिलाकर पकाये हुये दूध मे गुड और तिल तैल मिला पिलावें। —बगसेन

किसी भी रोग से मुक्ति होने के बाद होने वाली निर्बलता पर मूल छाल के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला मात्रा ६ माशे से १ तोले तक दूध के साथ सेवन करें।

(९) पक्षाघात, अर्दित तथा स्नायु सम्बन्धी पीडा पर–मूल के क्वाथ मे घृत मे भुनी हीग और सैंधानमक मिला कर पिलाते है। अर्दित पर इस क्वाथ मे समभाग दूध पिलाते रहने से भी लाभ होता है। अथवा मूल छाल के साथ तिल को पीसकर दूध के साथ सेवन कराते हैं। इससे स्नायु शूल पर भी लाभ होता है। केवल स्नायु सम्बन्धी पीडा हो तो मूल छाल के साथ लौंग, जावित्री और मिश्री के एकत्र चूर्ण को दूध मे पीस छानकर सेवन कराते हैं।

(१०) प्रमेह पर—मूल १ तोले तथा महुआ वृक्ष की छाल १ तोले दोनो को १० तोले पानी मे पीस छान कर उसमे २॥ तोले मिश्री या शक्कर मिला प्रात साय सेवन कराने से प्रमेह दूर होकर वीर्य गाढा होता है।

(११) श्लीपद पर—मूल के चूर्ण के साथ कघी मूल का चूर्ण समभाग मिला मात्रा ३ माशे तक दूध के साथ सेवन करावें। —बगसेन

तथा जड के कल्क मे ताड वृक्ष के रस या नीरा को मिलाकर प्रलेप करते रहे।

(१२) क्षत क्षय पर—जड के साथ विदारीकन्द, खम्भारी की छाल, शतावर और पुनर्नवा को मिला पीस छानकर दूध के साथ सेवन करावें। —यो र.

(१३) पित्तज काम पर—जड के साथ दोनो कटेरी की जड़, मुनक्का और अडूसा पत्र मिला क्वाथ सिद्ध कर मात्रा १० तोले क्वाथ में १-१ तोले शहद और मिश्री

मिला सेवन करावें। —वगसेन

(१४) गर्भ धारणार्थ—जड के चूर्ण के साथ कघी का चूर्ण, मिश्री और मुलैठी चूर्ण समभाग मिला, मात्रा ३ से ६ माशे तक शहद व घृत के साथ चाटकर ऊपर से दूध पिलावें। —वगसेन

भावप्रकाश ने उक्त योग मे वड के अकुर तथा नागकेसर को भी मिलाया है। यह भी उत्तम लाभदायक है।

(१५) शखक, अनतवातादि शिरो रोगो पर—जड के साथ नीलोफर, दूवघास, काले तिल और पुनर्नवा जड को पीसकर लेप करें। —यो र

(१६) राजयक्ष्माजन्य शिर शूल, असशूल एव पार्श्व शूल पर—जड के साथ रास्ना, तिल, मुलैठी और नीलोफर के चूर्ण को घृत मे मिला लेप एव धीरे धीरे मर्दन करे। —च० स०

(१७) वालक के सिर की अरुषिका या सिर मे व्रण होकर उसमे कृमि पड गये हो तो उसे इसकी जड के क्वाथ से प्रक्षालन कर व्रणो पर जड का महीन चूर्ण वुरकते रहने से शीघ्र लाभ होता है। —भा भै र

(१८) विषम ज्वर पर—वारी से आने वाला कपनयुक्त ज्वर हो तो जड के साथ सोठ या अदरख मिला क्वाथ सिद्ध कर पिलाते हैं तथा जड को पुष्य नक्षत्र मे शुद्धता के साथ लाकर हाथ पर बाधते है। यदि दाह हो तो जड की छाल के रस का मर्दन करते हैं।

मूल के विशिष्ट योग—

(१९) वलाद्य घृत—खरैंटी की जड, गगेरन की छाल तथा अर्जुन वृक्ष की छाल समभाग मिश्रित २ सेर, जल १६ सेर, शेप क्वाथ ४ सेर मे मुलैठी का कल्क १० तोला तथा १ सेर घृत मिला मदाग्नि पर पकावें। घृत शेप रहने पर छान लें। इसके लिये गोघृत लें। —वगसेन

मात्रा—६ माशे से १ तोला तक दिन मे दो वार मिश्री या खाड के साथ लेकर दूध पीवें। अथवा भोजन के साथ लेवें। हृद्रोग, हृदय शूल, उर क्षत, रक्तपित्त, वातज शुष्क कास, वातरक्त एव पित्तप्रकोपज रोग दूर होते हैं। अन्य वलाद्य घृत के प्रयोग शास्त्रो मे देखिये।

(२०) वला तैल—खरैंटी मूल ४ सेर जौकुट कर ३२ सेर जल मे पकावें। ८ सेर क्वाथ शेप रहने पर छानकर उसमे इसीकी जड का कल्क आध सेर, ८ सेर दूध तथा ४ सेर तिल तैल मिला मदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेप रहने पर छानले। यह तैल समस्त वात व्याधि, योनिदोष, तालु शोप, तृपा, दाह, रक्तपित्त, शोप, अपस्मार, विसर्प आदि नाशक है। इसकी मालिश की जाती है तथा उदर सेवनार्थ भी दिया जाता है। हृदय को वल देने के लिये इसका प्रयोग मकरध्वज व कस्तूरी के साथ किया जाता है।

मलावार की ओर उक्त तैल मे कई वार इसकी जड़ का कल्क और दूध मिश्रण कर पकाते है तथा तैल सिद्ध करते है। यह क्रिया १४ से लेकर १०१ वार तक भी की जाती है। फिर यह परम सिद्ध रामवाण तैल वाजारो मे वहुमूल्य विकता है। इसका वाह्य तथा आन्तरिक प्रयोग स्नायु प्रदाह युक्त अर्दित, अर्द्धांग, गृध्रसी आदि मे शीघ्र लाभप्रद होता है (नाडकर्णी)। यह तैल वालशोष पर भी लाभकारी है।

(२१) वलारिष्ट—इसकी जड और असगन्ध ५-५ सेर जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पका १३ सेर शेष रहने पर छानकर सधान पात्र मे भर कर उसमे गुड १५ सेर तक, धाय फूल का चूर्ण १३ छटाक तथा सतावर, रेंडी वृक्ष की छाल का चूर्ण ८-८ तोले, रास्ना, इलायची, प्रसारिणी, लौंग, खस और गोखरू चूर्ण ४-४ तोले मिला १ माह तक सुरक्षित रक्खे। फिर छानकर वोतलो मे भर रक्खे।

मात्रा—१ से ४ तोले, सेवन से प्रवल वातव्याधि दूर होकर वल, पुष्टि एव अग्नि की वृद्धि होती है। (भै र) वलादि मद्दर आदि इसके कई विशिष्ट प्रयोग वैद्यक ग्रन्थो मे देखने योग्य हैं।

बला-बीज—

इसके वीज कामोद्दीपक, मूत्र सस्थान पर वल्य, कसैले, मधुर, शीतल, गुरु, स्तभन, लेखन, विबन्धकारी, आध्मानजनक, वातकारी तथा कफ, पित्त, रक्तविकार नाशक हैं। ये अपने एफेड्रीन के प्रभाव से श्वसन सस्थान पर उत्तम कार्य करते हैं।

(२२) श्वेत प्रदर पर—बीज चूर्ण ३ माशा मे समभाग मिश्री या खाड मिला खाकर ऊपर से इसकी

जड १ तोले, कालीमिर्च ७ दाने दोनो को ५ तोले पानी में पीस छान कर पीवें। प्रात साय ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। मैथुन तथा चावल का सेवन अपथ्य है।

(२३) मूत्रातिसार पर—बीज का चूर्ण घृत और शक्कर के साथ प्रात साय सेवन से वस्ति स्थान तथा मूल नलिका की उग्रता शमन होकर लाभ होता है।

(२४) शुक्र प्रमेह पर—बीज चूर्ण १० तोले मे समभाग कालीमिर्च चूर्ण मिलाकर, मात्रा ६-६ माशे तक प्रात साय मिश्री या शक्कर के साथ सेवन करे तथा ऊपर शक्कर मिला कर पकाया हुआ गोदुग्ध १ पाव पीवें। वीर्य गाढा होकर शुक्रप्रमेह दूर हो जाता है।

बला-पत्र—

(२५) मूत्र कृच्छ्रादि मूत्र सम्बन्धी विकारो पर—इसके पत्रो को पानी मे भिगोकर मल छानकर लुआव निकाल कर मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

दाह पर—पत्तो को कालीमिर्च के साथ पीस छान कर पिलाते हैं। पुष्टि के लिये इसके ताजे पत्तो को नित्य प्रात खाते हैं। रक्तार्श मे पत्रो की शाक बनाकर खाते हैं। प्रमेह पिटिका (कारबकल) पर पत्तो को पीस कर लेप करते तथा उस पर तर कपडा बाधते हैं। विसहरी (अगुल हाडा) ऊगली के पैरो की गाँठो मे होने वाले महान कष्टदायक व्रण पर इसके कोमल पत्तो को पीस टिकिया बना बाध दे, ऊपर से शीत जल डालते जावें। इस प्रकार दिन मे २-३ बार करने से शीघ्र लाभ होता है। नेत्राभिष्यन्द पर दुखती हुई आखो पर इसके पत्तो के साथ बबूल के पत्तो को पीस टिकिया बनाकर रखते और ऊपर से स्वच्छ वस्त्र को लपेट देते हैं। ऐसा २-४ बार करते हैं। बदग्रन्थि—बद की गाठ को फोडने के लिये कोमल पत्तो को पीस पुल्टिस बना बाधते तथा ऊपर से जल छिडकते रहते है। गाठ शीघ्र फूट जाती है। कफज विसर्प पर पत्तो को पीस रस निचोड कर मर्दन करते है। बिच्छू के दश पर उक्त प्रकार से पत्र-रस का मर्दन करते हैं।

(२६) बालशोष पर—बच्चो के सूखा रोग पर रविवार और मगलवार को इसके पचाग चूर्ण ३ माशे का क्वाथ पिलावें तथा १० तोले पचाग को ४-५ सेर पानी मे पकाकर स्नान करावें। ऐसा ५ बार करने से सूखा रोग निश्चय ही दूर हो जाता है।

—स्व० श्री प० भागीरथ जी स्वामी

मात्रा—चूर्ण १-३ मा । मूल—६ माशे से १ तोला। पचाङ्ग—६ माशा से १ तोला। स्वरस—१-२ तोला मूल छाल—६ से १२ रत्ती। बीज शक्ति वृद्धि के लिये २ से ६ माशे तक, क्वाथ के लिये पचाग १ तोला तक लेवे। इसका ताजा पचाग श्वास प्रकोप तथा वात रोगो पर विशेष लाभकारी होता है।

खरैंटी-लता (नागबला) [*SIDA HUMALIS*]

यह भी उक्त खरैंटी की एक जाति विशेष है। किन्तु यह रोमयुक्त लता रूप मे भूमि पर या झाड़ो पर फैली हुई होती है। यह सर्प जैसी टेढी मेढी लेटी हुई दिखायी देने मे कई लोग इसे नागबला मानते हैं। कोई कोई इसे फरदी बूटी कहते हैं। किन्तु फरदी बूटी नामक इससे एक भिन्न बूटी भी होती है। आगे यथास्थान फरीद बूटी का प्रकरण देखिये।

इस लता के काड की प्रत्येक ग्रन्थि मे मूल निकलते हैं। तथा इसकी डडी पतली, पत्ते—आधे इच से १ या १॥ इच तक, कघी के पत्र जैसे, लसीले, नोकीले रोमश तथा किनारे अनीदार, फूल—पीतवर्ण के छोटे छोटे खरैंटी के पुष्प जैसे ही होते हैं। तथा तैसे ही इसमे फल की डोडी लगती हैं जिसमे महीन काले या भूरे रग के बीज होते है।

यह बूटी भी भारत के प्राय उष्णप्रदेशो मे एव ऊसर भूमि मे प्रचुरता से पायी जाती है। प्राय वर्षा के बाद इसमे पुष्प और फल आते हैं।

नाम—

सं-भूमिबला हि०-लता खरैंटी, नारबरियार, भुई बरियार म०-भुई चिकणा गु० भोयबल व०-जुनका ले०-सिडा हुमालिस, सिडा व्हेरोनिसिफोलिया (S Ucronicifolia)

गुण धर्म और प्रयोग—

यह स्निग्ध, मधुर, पित्तशामक है । अतिसार या आमातिसार पर—पत्तो को थोडे से पानी के साथ कूट पीस कर लुग्राव निचोड कर थोडी कालीमिर्च चूर्ण मिला सेवन कराते हैं। गर्भवती स्त्री के अतिसार पर भी थोडी मिश्री मिला कर दिया जाता है।

प्रदर मे—इसके फल या कोमल पत्तो के साथ ही कच्चे फलो को भी कूट पीस कर मिश्री से सेवन कराते हैं इससे उष्णता शमन हो रक्तप्रदर मे शीघ्र लाभ होता है ।

शरीर के किसी भाग मे चोट, मरोड आदि आ जाने पर इसके पत्तो की पुल्टिस बना कर बाधते हैं । शेष प्रयोग खरैंटी जैसे ही हैं ।

नोट—स्व यादव जी तथा भागीरथ स्वामी ने इसे ही नागबला (गगेरन) माना है।

विशिष्ट योग—

लता खरैंटी के समूचे क्षुप को लाकर जल से स्वच्छ धोकर कुचला पीस कर स्वरस निचोड कर २।। से ५ तोले तक की मात्रा मे १ तोला मधु अथवा मिश्री मिला पिलाने से; या इसके क्षुप को छाया शुष्क कर, महीन चूर्ण बना मात्रा ३ मासे रात्रि के समय पत्थर या काच पात्र मे ५ तोले पानी के साथ भिगो प्रात इस हिम मे १।। तोले मधु मिला पिलाने तथा तैसे ही प्रात' भिगो कर शाम को पिलाने से रक्तप्रमेह, पूयप्रमेह, रक्तप्रदर, अतिरजस्राव एव रक्तपित्त मे शीघ्र ही लाभ होता है। धातुस्राव तथा पित्त प्रमेह पर ८-१० दिन मे अवश्य लाभ होता है। अतिरजस्राव एव रक्तप्रदर मे ३ दिन मे ही लाभ होता है ।

क्षुप के उक्त चूर्ण को केवल ताजे जल से देते रहने से भी लाभ होता है, किन्तु उतना शीघ्र नहीं जितना उक्त स्वरस या हिम से होता है ।

खस [Andropogon Muricatus]

यह कर्पूरादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार यवकुल (Graminae) के एक वीरण (गांडर) नामक वहुवर्षायु तृण विशेष की जड है। कृष्ण (काला) श्वेत आदि भेद से इसकी कई जातिया है। यह तृण कुश के समान होता है। इसकी जडे जमीन मे २ फीट से भी अधिक गहरी घुसी हुई होती हैं, इसमे एक प्रकार की मनमोहक सुगध आती हैं। इसका काड २-५ फुट ऊचा एव समूहवद्ध होता है।

पत्ते—१-२ फुट सीधे, लम्बे, पतले, सरकडे जैसे तथा पुष्प दट ४-१२ इच लम्बा, रक्ताभ पीतवर्ण का होता है। वर्षाकाल मे यह फूलता और फलता है ।

चरक के वर्ण्य, स्तन्यजनन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन एव तिक्तस्कन्ध के तथा सुश्रुत के सारिवादि और पित्त सशमन के गणो मे इसकी गणना पाई जाती है।

इसका प्रयोग विशेपत अर्क, हिम, फाट, शर्वत आदि के रूप मे किया जाता है। इसके तैल, इतर आदि प्रसिद्ध सुगन्धयुक्त द्रव्य निर्माण किये जाते हैं। ग्रीष्म-काल में इसके परदे, पखे, टट्टिया आदि बनाये जाते है।

यह दक्षिण भारत, मैसूर, बगाल, राजपूताना, छोटा नागपुर आदि प्रदेशो मे विशेपत नदी, नालो के उपकूल मे एव जलप्राय स्थानो मे प्रचुरता से पाया जाता है।

नाम—

सं —उशीर [कांतिवर्धक], नलद [गन्ध देने वाला], सेव्य [सेवनीय], अमृणाल [कमल नाल जैसा], वीरण-मूल, जलवास, बहुमूलक।

हिं०—खस, गाडर की जड़, पन्नि।

म० -वाला। गु०—वालो। व०—खस, वेना, खसखस।

अ ०—कुस कुस [Cus cus]

ले —एण्ड्रोपोगान म्युरिकेटस, ए स्क्वेरोसस [A. Squarrosus], व्हेटिवेरिया झिझेनिओडिस [Vetiveria Zizanioidis]

रासायनिक सङ्गठन—

इसमे एक उडनशील तैल, राल, रङ्गद्रव्य, एक स्वतन्त्र अम्ल (A free acid), चूने का एक लवण, लोह का आक्साइड तथा काष्ठमय भाग होता है।

प्रयोज्य अग—मूल

गुण धर्म और प्रयोग—

रूक्ष, लघु, तिक्त, मधुर, ग्राही, विपाक मे कटु एव शीतवीर्य है। यह कफ पित्तशामक, दीपन, पाचन, बल्य, स्तम्भन, मस्तिष्क, हृदय और नाडी सस्थान को शामक, रक्तप्रसादन, रक्तरोधक, कफनिस्सारक, मूत्रल, स्वेद-दौर्गन्ध्यहर, स्वेदापनयन, कटुपौष्टिक तथा तृष्णा, स्वेद, वमन, दाह, विसर्प, व्रण, कुष्ठ, त्वग्विकार, मद, मूर्च्छा, अतिसार, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, पैत्तिक ज्वर, शोप रोगादि नाशक है।
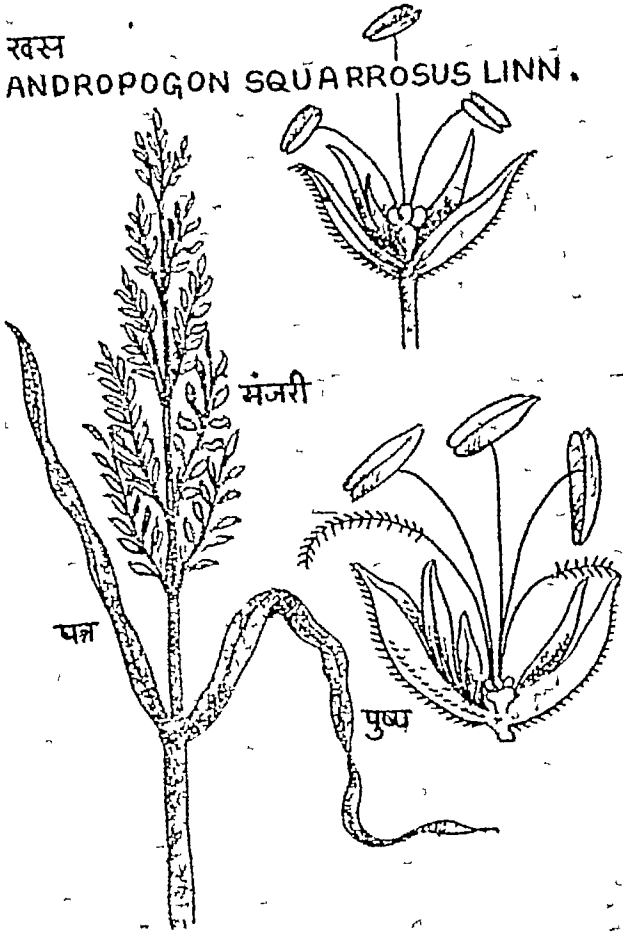
पित्तज्वर, प्रसूति ज्वर, तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्त, विप, स्वेद दौर्गन्ध्य, वमन, कुष्ठ एव आमाशयिक प्रक्षोभ पर इसका उपयोग फाट रूप मे किया जाता है। दाह, त्वचा के रोग, मसूरिका तथा अति प्रस्वेद रोकने के लिये इसे महीन पीसकर बार बार लेप किया जाता है। इसका शीत निर्यास उत्तेजक, अग्निदीपक, पित्तज्वर को शान्तकर पौष्टिक तथा ऋतुस्राव नियामक है।

रुधिर विकार मे—इसके चूर्ण का प्रयोग शुद्ध गधक के साथ करते हैं। तृष्णा पर—इसे मुनक्का के साथ पीस छानकर पिलाते हैं। कम्पवात पर—इसके चूर्ण मे सोठ का चूर्ण मिलाकर सेवन कराते है। पित्तोन्माद पर—इसका शर्बत पिलाते हैं।

(१) हैजा की वमन पर—१ पाव खौलते हुये पानी मे इसका मोटा चूर्ण ८ माशे तक डालकर फांट बना थोडा थोडा बार बार पिलाते हैं। इस फाट मे थोडा धनिया का चूर्ण मिला देने से और भी उत्तम लाभ होता है। अथवा इसके इत्र की बूदे पोदीने के अर्क मे मिलाकर पिलाते हैं। अथवा इत्र की २ बूदें बताशे मे भर कर खिलाते हैं।

(२) मूत्र कृच्छ्र या मूत्रावरोध पर—इसके साथ ईख की जड, कुश की जड और रक्त चन्दन मिला क्वाथ या फाट बनाकर पिलाते हैं। अथवा इसके चूर्ण मे मिश्री चूर्ण मिला पानी के साथ बार बार देते हैं।

(३) दाह पर—इसके साथ गुलाब पुष्प की कली तथा कचोरा समभाग पीसकर मिश्री मिला चावल के धोवन के साथ या दूध के साथ पिलाते हैं, शरीर पर इसके साथ श्वेत चन्दन को पीसकर लेप करते हैं।

(४) बालको के तृष्णाधिक्य पर—इसके चूर्ण के साथ कमल गट्टा की गिरी का चूर्ण मिला अर्क केवडा के साथ पिलाते हैं।

बच्चो के रक्तातिसार या अन्य अतिसार, कास, श्वास और वमन पर इसके चूर्ण के साथ मिश्री और शहद मिला बार बार चटाते हैं।

(५) हृदय शूल पर—इसके चूर्ण के साथ समभाग पीपलामूल का चूर्ण मिला मात्रा २ माशे दिन मे ३ बार गोघृत के साथ चटाते हैं।

(६) सिर दर्द पर—तीव्र पीडा हो तो इसमे लोभान मिश्रण कर चिलम मे भरकर या सिगरेट बना कर धूम्रपान कराते हैं।

(७) त्वचा पर कडुयुक्त बारीक फुसिया उठने पर—इसके साथ नागरमोथा और धनियां को जल मे पीसकर

लेप करते हैं।

खस के विशिष्ट प्रयोग—उशीरासव, उशीराद्य तैल, उशीरादि क्वाथ, उशीरादि चूर्ण भैषज्य रत्नावली आदि ग्रन्थो मे देखिये। यहा उशीरादि क्वाथ का एक छोटा सा प्रयोग दिये देते हैं—

(८) खस, रक्तचन्दन, नागरमोथा, गिलोय, सोठ, धनिया समभाग जौकुट कर मात्रा २ तोले, जल ३२ तोले मे पकावें। ८ तोले शेष रहने पर छानकर उसमे मधु तथा शर्करा मिला सेवन करावें। यह तृष्णा एव दाहयुक्त तृतीयक ज्वर मे विशेष लाभप्रद है।

नोट—मात्रा—चूर्ण ३-६ माशे तक। अर्क २-४ तोले। हिम २॥-५ तोले। फांट ४-८ तोले। क्वाथ ५-१० तोले तक।

जो खस दीर्घ मूल वाली, दृढ, पतली, अपनी विशिष्ट गध से युक्त, साधारण देश (विशेष आनूप या जागल देश की न हो) मे उत्पन्न होती है वह उत्तम मानी जाती है। कहा है—

दीर्घमूलं दृढं सूक्ष्ममुत्तमं गन्धसंयुतम्।
देशे साधारणे जातं लामज्जं भद्रकं भवेत्॥
—भै. र. वातव्याधि खंड श्लोक ३८६

इसका इत्र अत्यन्त सूक्ष्म, सुगन्धित तथा उष्ण प्रकृति वालो के लिये विशेष हितकारी है।

खसखस (Poppy Seeds)

इस अहिफेन कुल (Papaveraceae) के प्रसिद्ध द्रव्य के एक वर्षायु क्षुप ३-४ फीट ऊचे, काण्ड-हरितवर्ण, कोमल, चिकने, चमकीले एव अल्पशाखायुक्त, पत्ते—चौडे, लम्बे, कोमल, अनीदार, एव, वृन्तरहित होते हैं। फूल—श्वेत, लाल, कृष्ण या नीले वर्ण के कटोरी जैसे बहुत सुहावने तथा फल—फूल खिलने के एक मास बाद उनके दलो के मध्य भाग मे छोटी छोटी गोल, सुनहरी जैसी या अनार जैसी, विषम कोषीय २-३ इच व्यास की स्वय स्फोटी डोडि लगती है। इस डोडी या डोडा का रग हलका पीताभ, भूरा तथा कुछ काले काले धब्बो से युक्त होता है। इस डोडा के छिलको को 'पोश्त' कहते हैं। बीज—उक्त डोडो मे श्वेत, लाल या कृष्ण वर्ण के मधुर, स्निग्ध बीज होते हैं। इन्हे ही खसखस कहते है।

नोट—१—पौधों में लगे हुए इनके कच्चे डोडों के चारों ओर सायंकाल मे चीरे लगाकर छोड देते हैं, तथा उनसे जो दूध जैसा निर्यास निकलकर जम जाता है उसे प्रातः खुरच कर सुखा लेते है। इस निर्यास को ही अफीम कहते हैं। इसका पूर्ण विवरण प्रथम भाग में आ चुका है। वहीं इसके पौधे का चित्र भी दिया गया है।

२—यहा तो केवल उक्त डोडो का और बीजों का ही वर्णन किया जा रहा है। अफीम की विशेष जानकारी के पूर्व इन डोडों का तथा बीजों का ही व्यवहार विशेष रूप से किया जाता था, तथा अब भी किया जाता है।

पुष्प तथा रंग भेद से खसखस की तीन जातियां—(१) श्वेत पुष्पों के पौधो से श्वेत रंग की खसखस प्राप्त होती है। भारत में यह अत्यधिक प्रमाण में होती है (२) लाल पुष्प वाले पौधों से लाल रगी (मंसूर-नामक) होती है। वास्तव में यह कुछ काली सी ही होती है। इसके पौधे हिमालय पहाड तथा काश्मीर एव उत्तर के भारतीय मैदानों में पाये जाते हैं। ये वहा स्वयं उत्पन्न होते हैं। इन फूलो को गुल-लाल कहते है। (३) कृष्ण या नीलपुष्पयुक्त पौधो से जगली या स्याह खसखस पैदा होती है। इन पौधों का डठल भी काला होता है। ये पौधे राज-पूताना तथा मध्य भारत मे बहुत होते हैं। ये छोटे आकार, के तथा इनके डोडे भी बहुत छोटे छोटे होते है, किन्तु इनसे प्राप्त होने वाली खसखस और अफीम उक्त श्वेत व लाल की अपेक्षा प्रमाण और प्रभाव में अधिक होती है।

उत्पत्तिस्थान—इसकी खेती भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल, विंध्यप्रदेश, मालवा, आसाम और बर्मा मे सरकारी नियत्रण मे होती है। उधर फारस, चीन नेपाल एव एशिया माइनर के प्रदेशो मे भी यह प्रचुरता से होती है।

नाम—

डोंड़ा के—

सं०—खसफल, खाखस।

हि०—अफीम का डोडा, पोस्ता, पोस्त।

म०—खसखशीचें बोंड। गु०—खसखसना डोडा।

अं०—Poppy Capsules (पापी क्याप्सुल्स)।

ले०—पेपेह्वे रिस क्याप्सुली (Papaveris Capsulae)

बीज के—
सं०—खसतिल, खस्खस, खसबीज।
हि०—खसखस, पोस्तदाना। म०—खाखस।
बं०—पोस्तदाना। गु०—पोस्त बीज, खसखस।
अं०—पापी सीड्स (Poppy Seeds)

रासायनिक संघटन—

डोडा मे—प्र श ०१ से ०३ तक मार्फिन (morphine) एव अत्यल्प प्रमाण मे कोडीन (Codeine), पेपेव्हेराइन (Papaverine), तथा नार्कोटीन (Narcotine) आदि क्षाराभ और मेकोनिक एसिड (Maconic acids) आदि पाये जाते हैं।

बीज या खसखस मे—एक मीठा, स्थिर, पीताभ एव निर्गन्ध तैल होता है। कोई क्षाराभ नही पाया जाता।

गुणधर्म और प्रयोग—

डोडा—शीतल, लघु, ग्राही, कडुवा, कषैला, वातकारक, रूक्ष, मदकारक, मोह एव निद्राकारक, वेदनास्थापक, रोचक, धातु शुष्ककारक, कफ तथा कास नाशक है। लगातार इसके सेवन से नपुसकता होती है। जिस डोडे से अफीम नही निकाली गई, वह विशेष प्रभावशाली होता है। इसका बाह्य लेप वेदनाहर है। इसके फाट या क्वाथ को शिर शूल, अर्धावभेदक, पार्श्वशूल, कटिशूल, प्रसूत की पीडा, गृध्रसी, उन्माद तथा अनिद्रा आदि मे सेवन कराते हैं। और इसका स्थानीय लेप भी करते हैं। गले के दर्द या गले के बैठ जाने पर इसे अजवायन के पानी मे औटा कर कुल्ले कराते हैं। तथा इसके क्वाथ से सेंक करते हैं। प्रसवोत्तर वेदनाशमनार्थ भी इसका सेंक किया जाता है। तैसे ही कर्णपीडा पर भी इसके क्वाथ का बफारा देते हैं।

(१) पीडायुक्त नेत्राभिष्यन्द पर—इसका लेप नेत्रो के चारो ओर करते हैं, तथा अन्य औषध द्रव्यो के साथ इसकी पोटली बनाकर अर्क गुलाब मे तर कर नेत्रो पर बार बार फेरते हैं।

(२) अतिसार सग्रहणी पर—ग्राही औषधियो के साथ इसका चूर्ण विशेष लाभकारी है। रक्तातिसार मे रक्तस्राव को यह बन्द करता है। तथा बच्चो के दन्तोद्भेद के अवसर पर होने वाले अतिसार पर भी देते है।

(३) खासी, जुखाम पर—बीजसहित ६ तोले डोडो का क्वाथ बना उसमे २॥ तोले मिश्री मिला शर्बत बना ३ तोले की मात्रा मे दिन मे दो बार सेवन कराते हैं। शुष्क कास पर यह शर्बत विशेष लाभकारी है। आगे विशिष्ट योग न० ६ देखिये।

(५) मोच, सूजन तथा त्वचा के छिल जाने पर—इसके फाट या क्वाथ से सेक करते हैं, तथा इसकी गरम-गरम लुगदी को बाधते हैं।

नोट—डोड के विशिष्ट प्रयोग आगे देखिये—

बीज-खसखस—मधुर, बल्य, वृष्य, विपाक मे मधुर एव वीर्य में शीतोष्ण है। यह अति गुरुपाकी, विबन्धकारी, स्नेहन, निद्राजनक, पोषक, कफवर्धक तथा वातशामक है। यह विबन्धकारक तो है, किन्तु इसका फाट या क्वाथ कुछ सारक है। आन्त्रस्थ रक्तस्राव को बन्द करता है। मिठाइयां पक्वान्नो पर बाह्यदोष निवारणार्थ इसे छिडकते हैं। पुष्टि के लिये इसका हलुवा बनाकर खाते हैं। इसकी सूखी साग भी बडी स्वादिष्ट बताई जाती है।

(१) शुक्रवृद्धि एव वाजीकरणार्थ—बादाम गिरी और शर्करा के साथ इसका पतला हलुवा बनाकर सेवन करें। अथवा इसे पीसकर शहद के साथ प्रात साय सेवन करें। अथवा—

इसके साथ बादाम गिरी, चिरोंजी बीज समभाग पीस कर गौदुग्ध मे मिला खीर जैसी पकावें। फिर नीचे उतार कर उसमे शुद्ध ताजा घृत और मिश्री २-२ तोला मिला ठडी करें तथा गिलोय सत २ मासे मिला सेवन करें। इससे बल पुष्टी की विशेष वृद्धि होती है। यह प्रयोग उचित मात्रा मे निर्बल बालको को भी दिया जा सकता है।

अथवा—इसकी मात्रा १ तोला लेकर प्रथम थोडा दूध मे पीस कर उसमे १ पाव दूध मिला और छानकर २-२॥ तोला मिश्री मिला कर पकावें। ठडी कर सेवन करें।

(२) निद्रानाश पर—इसे ३ मासे तक पीस कर शक्कर या मधु के साथ खिलाते हैं। तथा इसे आग पर भूनकर सुघाते हैं। और मस्तिष्क पर इसको जल के साथ पीसकर लेप करते हैं। यह प्रयोग दौर्बल्य, शुष्क कास, रक्तष्ठीवन, यकृत ग्रहणी एव वृक्क के दौर्बल्य तथा

बस्ति विकार पर भी लाभदायक है।

अनिद्रा रोग मे—२ भाग खसखस मे १ भाग काहू के बीज मिला पानी में भिगो कर थोडी देर बाद पीस और निचोड कर थोडी मिश्री मिला सेवन कराते है।

(३) मस्तिष्क की निर्बलता पर--इसके दाने ३ माशे, बादाम गिरी (भिगोकर निकोई हुई) ७ नग, छोटी इलायची १ माशा और मिश्री ५ तोले इन सबको एकत्र पीस कर २॥ तोला गोघृत मे थोडा पका हलुवा सा बना नित्य प्रात सेवन कराते है।

(४) आमातिसार पर--इसे पीस कर दही के साथ खिलाते है।

(५) दारुणक रोग पर (इसमे सिर की केश भूमि या त्वचा कफ, वात एव पित्त के प्रकोप से कडी, काण्डु-युक्त रूक्ष होकर फट जाती है इसमे पिपासा दाह, पीडा भी होती है। इसे भाषा मे 'रुक्खी' रोग कहते है) इसे दूध के साथ पीस कर सिर पर लेप करने से लाभ होता है।

विशिष्ट प्रयोग—

[६] कास और नजला पर--[शर्वत] खसखस का डोडा २० नग, खतमी बीज, बीह दाना प्रत्येक १ तोला ५ माशा तथा मुलैठी का चूर्ण ३ तोला इनको रात्रि मे तिगुने उष्ण जल मे भिगोकर प्रात क्वाथ करें। आधा शेप रहने पर छानकर उसमे शक्कर १ पाव मिला शर्वत की चाशनी करें। फिर उसमे कतीरा और बबूल का गोद प्रत्येक १ तोला ५ माशा पीसकर मिलादें।

मात्रा—१-२ तोला धीरे धीरे चाटना चाहिए। इस प्रयोग को यूनानी मे 'दिया कूजा' कहते हैं।

अथवा—स्व श्री गोवर्धन जी शर्मा छागाणी का स्वानुभूत जुखाम (विशेषत अफीम-शराब आदि नशा लेने वाले व्यक्तियो का जुखाम जो प्राय कष्टसाध्य होता है) नाशक—खस—खश खीर का प्रयोग—

प्रथम १ कप पानी मे २ तोला खसखस तथा बादाम गिरी ७ नग प्रात भिगो शाम को दोनो अच्छी तरह घोट कर १ पाव पानी बनालें। दूध जैसा श्वेत हो जाने पर उसमे १ तोला चावल मिला पकावें। चावल पक जाने पर उसमे केशर १ रत्ती, इलायची १ नग, घृत २ तोला व मिश्री २॥ तोला मिला कुनकुना (सुखोष्ण) पीवें। ७ दिन के सेवन से पुराने से पुराना जुखाम तथा नशेबाजो का जुखाम ठीक हो जाता है। यह शक्तिवर्धक भी है। (आयुर्वेद से साभार)

(७) डोडा १ सेर रात को ८ सेर उष्ण जल मे भिगो प्रात चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध कर छानलें। उसमे १ सेर शक्कर मिला शर्वत की चाशनी तैयार करलें। मात्रा—१ तोला अर्क गावजवान ६ तोला के साथ सेवन करने से खासी तथा पित्तज प्रतिश्याय (नजला) मे लाभ होता है। यदि उक्त चाशनी को अच्छी गाढी चाटने योग्य बनाई जाय तो यही यूनानी का खमीरे 'खशखाश' हो जाता है। इसकी मात्रा ७ माशे तक अर्क गावजवान १२ तोले तक मिला सेवन करने से उक्त लाभ के साथ ही साथ फुफ्फुस का रक्तस्राव बन्द होकर सताप दूर होता है। जुखाम की सिर पीडा तथा स्त्रियो के अतिरजस्राव मे लाभ होता है।

खसखस का तैल—इस तैल का प्रयोग जैतून तैल (ऑलिव्ह आईल) के समान ही ३ से ६ मासे की मात्रा मे किया जाता है। यह तैल निद्राजनक है।

शिर शूल मे—इसे गुलरोगन के साथ मिला मर्दन करते हैं।

कर्ण शूल मे—इसे कान मे डालते हैं। इस कार्य के लिये काले पोस्त का तैल विशेष लाभकारी है।

अर्धाङ्ग वात पर—इस तैल के साथ नारियल तैल मिला मर्दन करते है।

नोट—खसखस की अपेक्षा इसका तैल कम प्रभावशाली होता है।

इसका अधिक सेवन फुफ्फुसों के लिये हानिकर है। तथा काला खसखस मस्तिष्क के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ मस्तगी, तज, अजमोद, खांड या शहद का सेवन कराते हैं।

खिडनाऊ (Ficus Cunia)

इस वटकुल (Urticaceae) की वनौषधि के मध्याकार के वृक्ष होते हैं। वृक्ष की छाल गहरी भूरे रंग की, पत्ते भिन्न भिन्न प्रकार के पृष्ठ भाग पर रोमश, फल अजीर जैसे वृक्ष के तने तथा शाखाओ पर लगते हैं, ये पकने पर लाल एवं बादामी रंग के हो जाते हैं।

इसके वृक्ष हिमालय के तल प्रदेशो मे तथा छोटा नागपुर, पूर्वी सतपुडा पहाडी, खासिया पहाडी, चिटगाम और ब्रह्मा मे पाये जाते है।

नाम—

सं.—खरपत्र।

हिं.—खिडनाउ, खुनिया, करु, खैना, गोई, खेतल।

म.—पोशैडूमर। बं.—जग्याडोमुर, कुरली।

ले.—फायकस कुनिया।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह रक्तशोधक है, कुष्ठ तथा मूत्रनलिका के विकारो पर विशेष उपयोगी है।

कुष्ठ मे—इसके फल तथा छाल को पानी मे पकाकर इससे रोगी को स्नान कराते है। मुख के क्षत एवं छालो पर इसकी जड़ को दूध मे उबाल कर कुल्ले कराते है। मूत्राशय के विकारो पर जड को थोडे पानी मे कूट पीस कर रस निचोड कर पिलाया जाता है।

खिरनी नं.२ (Mimusops Hexandra)

फलादि वर्ग एवं नैसर्गिक क्रमानुसार मधूक कुल (Sapotaceae) का यह प्रसिद्ध चिरहरित (सदा हरे पर्णों से युक्त) वृक्ष २०-२५ फुट ऊंचा होता है। काड की छाल तीन स्तरो वाली (प्रथम स्तर धूसर वर्ण की गहरी झुर्रीदार, बीच की स्तर हरित वर्ण की तथा अन्तिम स्तर दुग्ध पूर्ण कुछ काली सी) होती है।

पत्र—लम्ब गोल, दोनों ओर चिकने २-४ इच लम्बे तथा १-२ इच चौडे, चिमडे होते हैं। पत्र वृन्त लगभग ½ इच होता है।

पुष्प दड—पत्रकोण से निकला हुआ, अनेक शाखायुक्त, जिस पर छोटे छोटे चक्राकार आध इंच व्यास के पीताभ श्वेतवर्ण के सुगन्धित पुष्प गुच्छो मे प्राय. शीतकाल मे लगते हैं।

फल—प्राय बसत मे नीम के फल जैसे आध इच लम्बे गुच्छो मे कच्ची दशा मे हरे व पकने पर पीले होते हैं। फलो मे गाढा लसदार दूध निकलता है।

बीज—प्राय प्रत्येक फल मे एक किसी किसी मे क्वचित दो बीज स्निग्ध, काले, चमकदार होते हैं। बीजो के भीतर की पीताभ गिरी या मज्जा से तैल निकाला जाता है।

क्षीरणी (राजादन - रायण) खिरनी नं १
MIMUSOPS HEXANDRA ROXB.
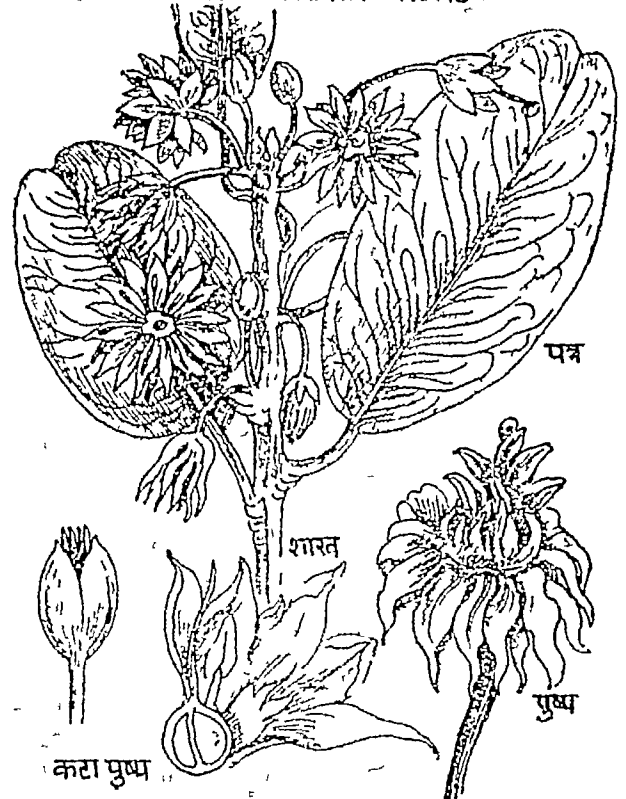
नोट--[१] चरक ने पित्तप्रदर के प्रयोग में तथा सुश्रुत के न्यच्छ [मुख की झांई] के प्रयोग एवं परुषकादि गण में [इसका उल्लेख है।

[२] यह भारत का ही एक खास वृक्ष है। यह बम्बई, महाराष्ट्र प्रान्त, गुजराथ, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, विहार, मद्रास आदि प्राय. सब स्थानों में पाया जाता है।

इसकी ही एक जाति है जो मलाया प्रायद्वीप में प्रचुरता से तथा यहां भी कहीं कहीं पायी जाती है। इसका वर्णन आगे खिरनी नं २ के प्रकरण में देखिये।

नाम—

सं –राजादन, क्षीरिणी, राजन्या।

हि –खिरनी, खिन्नी। म.–खिरणी, राजन, रायणी।

बं –क्षीर खेजुर, क्षीरणी, राजणी।

गु –रायण, राण कोकडी।

ले –माइमुसाप्स हेक्जेंड्रा। मा. इंडिका [M Indica]

रासायनिक सङ्गठन—

फल मे शर्करा ७० प्र श. तथा रवड़ जैसा द्रव्य (Cautchouc), पेक्टीन, टैनिन और कुछ रजक द्रव्य होता है। छाल मे टैनिन, मोम, स्टार्च, रजक द्रव्य एव कुछ खनिज द्रव्य पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अग—फल, छाल, पत्र, बीज और दूध।

गुण धर्म और प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, विपाक मे मधुर एव उष्णवीर्य है [यह बिल्कुल शीतवीर्य अनुभव मे नही आता]। यह प्राय त्रिदोषशामक, रुचिकर, बल्य, वृंहण, हृद्य, रक्तस्तम्भन, कफनिसारक, शोथहर, वर्ण्य, व्रण रोपण तथा मस्तिष्क दौर्वल्य, मूर्च्छा, भ्रम, कास, मदात्यय, वमन, शुक्रमेह, पूयमेह, ज्वरक्षय, कृशतानाशक है।

फल--

कच्चे फलो को पीस कर व्यग, न्यच्छ आदि चर्म विकारो पर लेप करते हैं। पके फल खाये जाते हैं। वंबई तथा गुजराथ के कई गरीव मनुष्य कुछ दिनों तक इन्ही फलो पर उदर निर्वाह करते हैं। पके फलो पर घृत लगा कर दो दिन रखने पर अन्दर का दुग्ध शोषण होकर वे विशेष स्वादिष्ट हो जाते हैं।

छाल--

तिक्त, कटु, स्तम्भन, ग्राही तथा व्रण रोपण है। छाल का उपयोग प्राय वकुल (मौलसरी) की छाल जैसा ही किया जाता है। इसके चूर्ण को दन्तरोगनाशक मजनो मे मिलाते हैं या तैसे ही दातों पर लगाते हैं। व्रणो पर इसे वुरकते है। यह अतिसार प्रवाहिका नाशक है।

१ कामला पर—इसकी ताजी अन्तरछाल ५ तोले को समभाग पानी मे पीसकर तथा खूब मसलते हुए छानकर प्रात पीने तथा पथ्य मे केवल बाजार की रोटी खाने से १०-१५ दिन मे लाभ होता है। प्रथम ४-५ दिन कुछ वेचैनी घबडाहट मालूम देती है, किन्तु फिर शीघ्र ही शान्ति प्राप्त होती है। पुरानी कामला भी दूर हो जाती है। —व च

२ अपस्मार पर—वृक्ष के तने की छाल पर की गाठो को गरम राख मे सेक या पुटपाक विधि से रस निकाल कर पिप्पली चूर्ण और शहद मिला प्रात साय सेवन कराते रहने से नूतन अपस्मार १-२ मास मे दूर हो जाता है। —गावो मे औ र

बीज—

ये लेखन हैं। इन्हें घिसकर नेत्र विकारो पर लगावें।

३ नेत्रो की फूली, जाला, कण्डू तथा दृष्टि दौर्वल्य पर—बीजो की गिरी को खरल कर लगाते हैं।

उत्तम योग फूली के लिये यह है कि बीजो की गिरी के साथ समभाग काला सरसो के बीज लेकर दोनो का एकत्र खूब महीन चूर्ण कर ३ दिन इसी खिरनी के पत्र रस मे फिर ३ दिन काली सरसो के पत्र रस मे तथा ३ दिन वट (वरगद) के दूध मे खरल कर गोलिया बना छायाशुष्क कर रक्खें। गोली को स्त्री के दूध मे घिसकर आजने से शीघ्र ही फूली कट जाती है। —वे च

४ नष्टार्त्तव पर—इसके बीजो की गिरी, एलुवा, इन्द्रायण की जड़ और गाजर के बीज प्रत्येक ३-३ माशे तथा एक लहसन की गुली लेकर महीन पीस कर लम्बी वत्ती वना स्त्री के गर्भाशय मे रखने से बहुत दिनो का रुका हुआ मासिक धर्म चालू हो जाता है। यह प्रयोग अनुभवी वैद्यो के द्वारा ही करवाना चाहिये। गर्भवती पर यह प्रयोग न करें अन्यथा गर्भपात का भय है। व च

इसका निर्भय प्रयोग यह है—बीजो की गिरी के चूर्ण की छोटी पोटली बना उसमे एक लम्बा तागा वाधकर

कर योनिमार्ग के भीतर धारण करें। ३-४ घण्टे बाद तागा खीचकर पोटली निकाल लें। इस प्रकार कुछ दिन करने से गर्भाशय के मार्ग का अवरोध दूर होकर आर्त्तवस्राव प्रारम्भ हो जाता है। नित्य ताजी पोटली बनाकर धारण करना चाहिये।

५ बिच्छू के विष पर—बीज को पानी मे घिस कर लेप करते हैं।

तैल—

बीजो की गिरी का तैल स्नेहन, पौष्टिक तथा कामोत्तेजक है। पुष्टि तथा वाजीकरणार्थ इसे मलाई और खाड के साथ सेवन करते है।

पत्र—

इसके पत्ते चर्मविकार तथा पित्त प्रकोपशामक हैं।

६. पित्त प्रदर (रक्तप्रदर) तथा रक्तपित्त पर—इसके पत्तो के साथ समभाग कैथ के पत्ते पीसकर कल्क बना लें। मात्रा १-१ तोले कल्क घृत मे थोडा सेक कर प्रात साय खिलाते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

७ न्यच्छ, व्यग, नीलिका आदि चर्मविकारो पर—पत्तो को दूध मे पीसकर रात्रि के समय गाढा लेप करें।

दूध—

छाल या कच्चे फलो से निकलने वाले दूध को व्रण शोथ या व्रणो पर लगाते है। यह दूध दांतो की खाल मे भर देने से दन्तशूल मे लाभ होता है।

नोट—मात्रा-छाल क्वाथ ५-१० तोला। चूर्ण ३ से ६ माशे तक। पत्र कल्क १ से ३ माशे या १ तोला तक।

पके फलों को एक बार में १० या २० तोला से अधिक खाने पर शीघ्र पाचन नहीं होता, आध्मान होता है।

खिरनी बड़ी नं. २ [MIMUSOPS KAUKI]

यह खिरनी न १ के ही कुल की है। इसके वृक्ष बहुत बडे ४० से ६० फीट ऊचे फैलने वाले तथा खूब छायादार होते है।

पत्ते—अण्डाकार उक्त खिरनी पत्र जैसे ही किन्तु कुछ बडे होते हैं। फल भी बड़ा १ इच लम्बा नारङ्गी रङ्ग का एव आकर्षक होता है।

इसके वृक्ष प्राय मलाया प्रायद्वीप मे बहुत होते हैं। भारत के दक्षिण की ओर पश्चिमी घाटी के पहाडो पर भी ये पाये जाते है।

नाम—

संस्कृत--वसन्तदूती [वसन्त ऋतु में खूब फलने से]। हिन्दी--खिरनी बडी। मरेठी—ककी, खिरनी। लेटिन—माइमोसाप्स कौकी।

गुणधर्म और प्रयोग—

इसके फल विशेष मधुर नही होते, इसमे लुआबदार दुग्ध की अधिकता होती है। वृक्ष की छाल मे भी दुग्धांश की विशेषता होती है।

छाल और जड़ मे सकोचक गुण की अधिकता होने से इसका प्रयोग अतिसार मे किया जाता है।

पत्र—शोथहर तथा ज्वरनाशक हैं। पत्रो मे थोडी
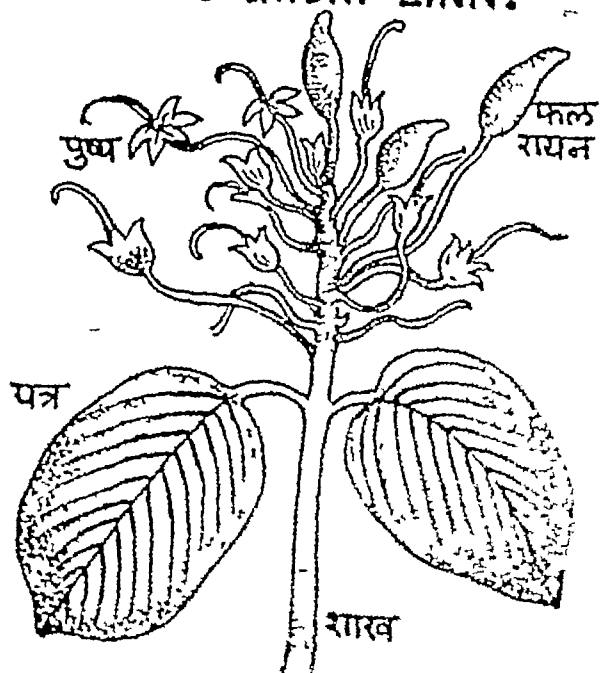
हल्दी और अदरख के साथ पीसकर शोथ पर बांधते हैं। पत्तो का क्वाथ ज्वर पर देते हैं।

बीज—पौष्टिक, ज्वर निवारक और कृमिनाशक हैं।

दूध—वृक्ष के दूध का प्रयोग कान के प्रदाह तथा नेत्राभिष्यन्द पर किया जाता है।

खीरा (Cucumis Sativus)

यह कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की ककडी का ही एक विशेष भेद है। इसकी लता ककडी की ही लता जैसी वर्षायु एव रोमश होती है। पत्र दण्ड-२-३ इच लम्बा, जिस पर पचकोण विशिष्ट ३ से ६ इच व्यास का गोलाकार पत्र लगता है। पुष्प-पीतवर्ण एक लिंगी, तथा फल-हरिताभ श्वेत या पीत, मुख पर कुछ श्याम वर्ण, रोमश ४ से १२ इच लम्बे १-१॥ इंच मोटे होते हैं। फल के अन्त के पार्श्व भाग मे काटे जैसी गाठें होती हैं। अत इसे 'कटकी फल' कहते हैं। बीज-फल मे अनेक बीज लम्बे, चपटे, दोनो सिरो पर नुकीले चिकने एव श्वेत वर्ण के होते हैं।

नोट—बडा व छोटा भेद से इसकी दो जातिया हैं। बड़े खीरे का फल बडा एवं अधिक लम्बा हरित पीत वर्ण का होता है इसे 'बालम खीरा' कहते हैं। छोटे का फल छोटा, लगभग एक बालिस्त लम्बा, कुछ कांटे जैसे गाठदार एवं हरित श्वेत होता है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत वालुकामय उष्ण प्रदेशों में प्रचुरता से होता है।

नाम—

सं०—त्रपुष, कटकिफल, सुधावास, सुशीतल।
हि०—खीरा, काकड़ी, बालमखीरा।
म०—तवसें, काकडी, खीरा। गु०—तांसली।
वं०—शशा, खीरा। अं.-कॉमन ककुम्बर (Common Cucumber)
ले०—कुकुमिस सेटिव्हस।

इसका रासायनिक सघठन, गुणधर्म, प्रयोगादि ककडी के ही समान है। इसके १-२ विशिष्ट प्रयोग इस प्रकार हैं—

(१) स्वर भग आदि कठ के विकारो पर—इसके पत्रो को वाष्प पर उबाल कर उसमे श्वेत जीरा चूर्ण मिला आग पर भूनकर चूर्ण बनाते हैं, तथा १५ रत्ती या अधिक की मात्रा मे शहद के साथ सेवन करें।

बीजो का शर्बत—इसके बीजो की गिरी के साथ तरबूज बीजो, खरबूज बीजो की गिरी तथा मुनक्का या किसमिस प्रत्येक २॥ तोला, कासनी ५ तोला लेकर जौ-कुट कर ४ तोला पानी मे पकावें। अच्छी तरह पक जाने पर उसे अच्छी तरह मसलते हुए छानकर इस छने हुए पानी मे ३० तोला शक्कर मिला शर्बत बना लें।

मात्रा—२॥ तोला तक, थोडा पानी मिलाकर सेवन कराने से मूत्रकृच्छ आदि मूत्र सम्बन्धी विकार शीघ्र दूर होते है। विस्फोटक ज्वरो पर तथा प्रत्यावर्तित ज्वर पर यह शर्बत उत्साहवर्धक एव शातिदायक है।

इसके कई लम्बे २ (अनेक द्रव्य मिश्रित) प्रयोग यूनानी चिकित्सकों मे प्रचलित हैं।

खुब्बाजी नं. १ [*MALVA SYLVESTRIS*]

इस कर्पासी कुल (Malvaceae) की वनौषधि के वर्षजीवी रोमश क्षुप प्राय एक हाथ ऊचे या जमीन पर फैले हुए होते हैं। पत्ते गोल हरे पत्र वृन्त कुछ दीर्घ, फूल-ऊदे या पीतवर्ण के छोटे छोटे सुन्दर, तथा फल पीतवर्ण के छोटे छोटे कुछ लम्बे गोल से होते हैं। इन फलो को या बीजो को ही खुब्बाजी कहते है। बीज भूरा होता है तथा इसकी जड पीली होती है।

यह हिमालय प्रदेश के समशीतोष्ण स्थानो मे कुमायू से काश्मीर तथा पजाब तक पाई जाती है। फारस या ईरान की यह विशेष प्रभावशाली मानी जाती है। अत इसके फलो या बीजो का आयात उधर से ही यहा होता है। यूनानी वैद्यक मे इसका बहुत प्रचलन है। पत्ती

कड़वी होती है।

नाम—

हि.—खुब्बाजी (यह फारसी शब्द है), पापरा, चंगेल, विलायती कंगई, कुंभी, गुलखैर।

म.—खुबाजी। अं.—कामन मेलो, चीज केक (Common mallow, Cheese cake)

ले०—माल्वा सिल्वेस्ट्रिस।

रासायनिक संघटन—

इसमे प्रचुर मात्रा मे एक पिच्छिल तैल तथा अल्प मात्रा मे एक तिक्त पदार्थ पाया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह स्नेहन, पिच्छिल, मूत्रल, सारक, दोष पाचन तथा कास, फुफ्फुसविकार, ज्वर शोथ, पूयमेह, अश्मरी आदि नाशक है।

इसके गुणधर्म और प्रयोग प्राय खतमी जैसे ही हैं। इसके क्वाथ को मिश्री के साथ जीर्णकास, स्वरभेद व खरत्व में देते हैं।

प्रवाहिका या आंत्र के आक्षेपजनक मरोड पर इसकी वस्ति देते हैं। प्रदाहयुक्त शोथ पर इसके पत्तो की या सर्वाङ्ग की अथवा केवल फलो की पुल्टिस बांधते हैं। बीजो का क्वाथ शीतल एव मृदुकारी है। गुलखैर के स्थान पर इसका उपयोग करते हैं।

मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह (सुजाक) पर—इसके फलो के या फलो के बीजो के समभाग, गुलखैर पुष्प या जड, खीरा बीज, तरबूज के बीज और सौंफ लेकर जौकुटकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर २॥ तोले की मात्रा मे दिन मे २-३ बार पिलाते हैं।

नोट—चूर्ण की मात्रा—३ से ६ माशे तक। यह आमाशय के लिये शीत प्रकृतिवालों को हानिकारक है। हानि निवारक खटाई व मूली है। इसके अभाव में कुल्फा के बीज या खतमी ली जाती है।
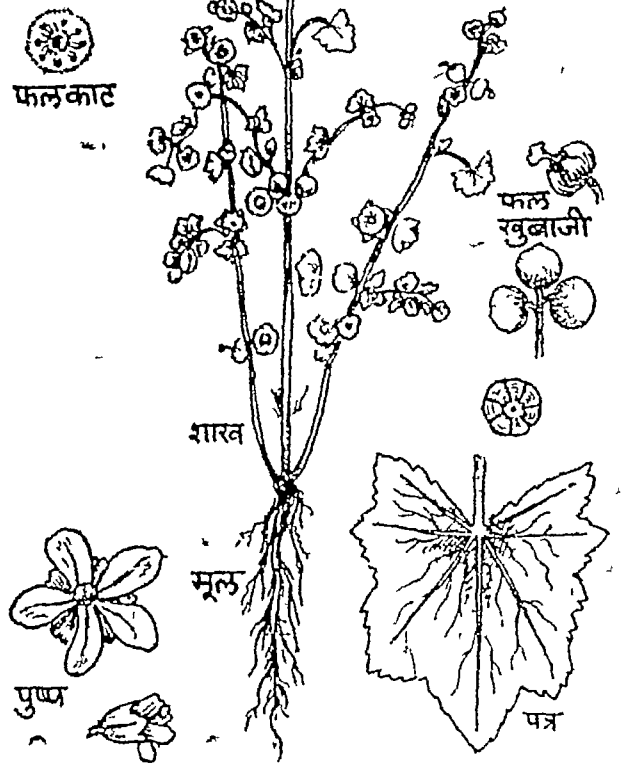
खुब्बाजी नं २ [*MALVA ROTUNDIFOLIA*]

यह उक्त खुब्बाजी का ही एक विशेष भेद देशी खुब्बाजी है। इसे कुवाभी तथा पजाब की ओर सोचल, मरेठी मे कड्चानियापालें, अंग्रेजी मे कंट्री मेलो (Country mallow) लेटिन मे—'माल्वा रोटंडीफोलिया' कहते हैं।

इसके क्षुप भी खुब्बाजी न० १ जैसे ही होते है। इसके पत्र एव पुष्प प्रायः सूर्याभिमुखी रहते हैं। यह काश्मीर के पर्वतीय प्रान्तो के मैदानो मे जौ, गेहूँ के खेतो मे तथा दक्षिण मे और मैसूर प्रान्त मे खूब होता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह मृदुकर, स्निग्ध तथा दाहयुक्त शोथ, अर्श आदि नाशक है। इसके बीजो का चूर्ण फुफ्फुस प्रदाह युक्त ज्वर, कास, मूत्राशय के व्रणजन्य दाह युक्त शोथ एव रक्तस्रावपर दिया जाता है।

इसके पत्रो की पुल्टिस प्रदाहयुक्त शोथ तथा अर्श के अंकुरो पर बांधने से बेचैनी दूर होती है, शांति प्राप्त होती है। चर्म रोगो पर प्रलेप आदि बाह्य प्रयोग करें।

खूबकला (*SISYMBRIUM IRIO*)

इस राजिका कुल (Cruciferae) की वनौषधि के क्षुप सरसो के क्षुप जैसे ही भारतवर्ष मे गेहूँ, जौ, मेथी आदि के साथ स्वयमेव रबी की फसल मे पैदा हो जाते है। पजाब,पेशावर, बलूचिस्थान, कोहट तथा राजस्थान मे यह खेतो तथा जगलो मे भी खूब होता है। ईरान तथा यूरोप मे भी इसकी उत्पत्ति होती है । यह ईरान की उत्तम मानी जाती है, प्राय वही से इसके बीजो का आयात होता है।

ये बीज जिसे खूबकला कहते हैं । खसखस के बीजो से भी छोटे लबगोल रक्ताभ पीतवर्ण या कत्थई रग के होते हैं। इन्हे जल मे भिगोने से लुआब उत्पन्न होता है। लाल एव केसरिया रग के बीज सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। तथा ये बीज अधिक दिनो तक खराब नही होते ।

औषधिकर्म मे बीजो का ही प्रयोग होता है ।

नाम —

हि —खूबकला (यह फारसी नाम है), खाकसी, खाकसीर, नक्तरस, जगली सरसों, परजन।
म —रानतीखी । अ —हेज मस्टर्ड (Hedge Mustard)
ले —सिसिम्ब्रियम आयरिओ ।

गुण, धर्म और प्रयोग—

स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, मधुर, तिक्त, मधुर विपाक एव उष्ण वीर्य है । यह कफ नि सारक, वातपित्त शामक, वेदनास्थापक, वातानुलोमन, बल्य, बृहण, स्वेदजनन, क्षुधावर्धक तथा तृषा, वमन, आध्मान, ज्वर, त्वग्दोष एव विशूचिका आदि मे लाभदायक है ।

[१] शक्ति वर्धनार्थ इसे दूध के साथ सेवन करते है। मसूरिका (चेचक), मथर आदि विस्फोटक ज्वरो (न १) मे यह विशेष लाभकारी है । इसकी मात्रा ३ माशे के साथ उन्नाव ३ दाने, मुनक्का ५ नग, अजीर ३ नग और शक्कर ३ तोला लेकर सबको १० तोले पानी मे पका ५ तोला शेष रहने पर छानकर पिलाते रहने से (दिन मे दो बार) विस्फोटक ज्वरो मे लाभ होता है। बेचैनी, घबराहट आदि दूर होती है। चेचक या मथर ज्वर से पीडित रोगी को उक्त सेवनीय प्रयोग के साथ ही साथ रोगी के पीने के पानी मे इसकी पोटली बनाकर डालते है । तथा इन बीजो को उसके बिस्तरे पर बिखेर देते हैं। तथा इसके क्वाथ मे रोगी के कपडो को भिगोकर शुष्क कर पहनाते है । उक्त उपचारो से शाति के साथ विस्फोट के दाने निकाल आते हैं ।

[२] टायफाईड (मथर ज्वर) मे उक्त उपचारो के साथ ही मे निम्न प्रयोग विशेष लाभदायक है—

इसके ३ माशे बीजो के साथ बनफशा, गावजबान, तुलसीपत्र, त्रिकटु (सोठ, मिर्च, पीपल) और मुलैठी प्रत्येक ३-३ मासा का जौकुट चूर्ण कर उसमे अमलतास का गूदा ६ माशा मिला सबको २० तोला पानी में पका चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर शहद मिला पिलावें । [यह एक मात्रा है] । इस प्रकार दिन मे दो बार दें ।

खूबकला २ तोला, मुनक्का ११ नग, लौग ५ नग, बडी इलायची व तुलसी पत्र ५-५ नग—सबको ६ सेर पानी मे उबाल कर ३ सेर पानी शेष रक्खें । इस जल का प्रयोग मथर ज्वर, चेचक, मसूरिका आदि के ज्वरो की सब हालतो मे बेखटके करें। और कोई भी दवा देते रहे, किन्तु इस जल के पिलाते रहने से हालत शीघ्र सुधरती है । ज्वर को पचाकर शीघ्र दाने बाहर निकालता है । प्रलाप आदि लक्षण दूर होते हैं। केवल इसी सहारे से मैंने बिना कोई दवा के मोतीझरा के रोगी ठीक किये है । —कविराज एच सी वर्मा, फलौदी क्वायरी, सवाई माधोपुर

[३] जीर्ण ज्वर, मन्दज्वर तथा मन्दाग्नि पर— इसके बीजो की एक बडी सी पोटली मोटे वस्त्र की बना किसी बडे शीतजल के पात्र मे २४ घटे तक डालकर [कोई कोई इस पोटली को कुयें या तलाब मे छोड देते हैं।] फिर निकाल कर बीजो को शुष्क कर मात्रा ४ या ६ माशे फाककर ऊपर से ५ तोला गरम जल मे शर्बत बनफशा २ तोला मिला पिलाते हैं ।

इस प्रकार यूनानी चिकित्सक प्राय ज्वर नाशार्थ प्रयोगो मे इसका अत्यधिक उपयोग करते हैं ।

[४] जीर्ण कास, श्वास तथा स्वरभेद मे–इसे भूनकर अवलेह या पाक बनाकर सेवन करने से कफ शीघ्र ही

नि सृत होता है श्वासावरोध दूर होता तथा कंठ स्वर मे सुधार होता है।

बीजो को थोडा भूनकर ३-४ मासा की मात्रा मे शर्वत बनफ्शा के साथ नित्य सेवन से वक्षस्थल एवं फुफ्फुसो के विकार कफ द्वारा नि सृत हो लाभ होता है।

[५] विसूचिका [हैजा] मे तृषा और वमन के निवारणार्थ इसे अर्क गुलाब मे उबाल कर देते हैं।

[६] नेत्र, अण्डकोष, आमवात तथा स्तन आदि के शोथ पर—इसे पानी मे जोश देकर ठडाकर सुखोष्ण लेप करते है। गर्भाशय के फोडे तथा फुंसियो पर भी यह लेप उत्तम है।

नोट—मात्रा—३ से ६ माशे तक। अधिक मात्रा में अधिक काल तक सेवन से प्रायः शिर शूल पैदा होता है। इसके निवारणार्थ गोंद कतीरा दिया जाता है।

खेसारी (L. THYRUS SATIVUS)

यह धान्यवर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार शिम्बीकुल (Leguminosae) के अपराजिता उपकुल [Papilinaceae] का एक द्विदलधान्य विशेष है। यह मटर का ही एक छोटा भेद है। भारत के प्राय सब प्रान्तो मे विशेषत मध्यप्रदेश, विंध्यप्रदेश, सिंध तथा उत्तर पश्चिम के प्रदेशो मे अधिक बोई जाती है। वसन्तऋतु मे यह पैदा होती है। इसकी छोटी छोटी बेल (लता) फैलती हैं। शाखाएं पक्षदार, पत्ते–लम्बे, फूल–नीलाभ लाल रग के;

फलिया—१-१॥ इंच लम्बी, पखदार होती है। प्रत्येक फली मे ४-५ बीज होते है। इन बीजो को ही खेसारी कहते है। बीजो को कच्चे ही या होले की तरह भूनकर खाते हैं। पकने पर इसकी दाल बनाई जाती है। इसके पत्तो की कोपलें भी नमक मिर्च मिलाकर ग्रामवासी खाते हैं। या पत्तो की साग बनाकर खाते है। विन्ध्य प्रदेश की ओर खेसारी को तीऊर, तेवरा कहते है।

नाम—

सं०—त्रिपुट, खंडिका।
हि०—खेसारी (डी), लतरी, तीऊर, कसूर, कस्सा।
म०—लाख, लाक, लांख। गु०—लांग, लेंगलेगुई।
बं.—खेसारी, कलाय, तेओरा।
अं.—चिकलिंग वेच (Chickling vetch)
ले.—लेथिरस सेटिव्हस।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह मधुर, तिक्त, कसैली, अतिरूक्ष, रुचिकारक, ग्राही, शीतल एव कफपित्तनाशक है। अतिवात प्रकोपक है। इसके विशेष सेवन से यह कलाय खज–(कलाय अर्थात् खेसारी नामक इस छोटी मटर विशेष से उत्पन्न शरीर के निम्न गात्रो, पैर, घुटने आदि में उत्पन्न पंगुता वातव्याधि) लेथिरिझम(Lathyrism)को पैदाकर देती है।

नोट—वैसे तो यह एक पौष्टिक रुचिकर द्विदलान्न है। उत्तर प्रदेश के कई स्थानो में मनुष्य शौक से लगातार इसकी दाल खाते हैं, किंतु उक्त व्याधि से ग्रस्त नहीं होते। किन्तु विन्ध्य प्रदेश मे रीवां, सतना की ओर उक्त व्याधि से ग्रस्त प्रायः ४५ प्र श. व्यक्ति पाये जाते हैं।
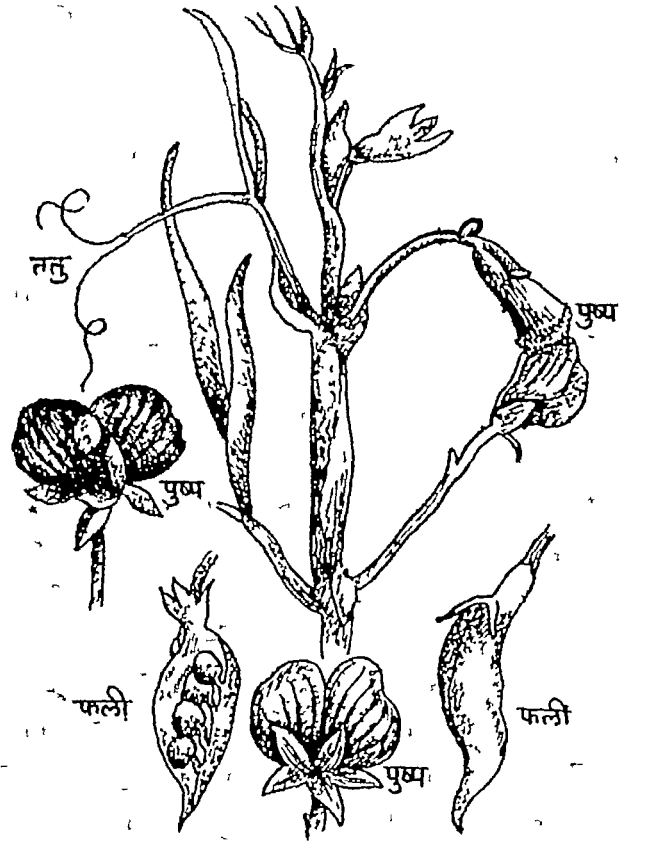
इससे निष्कर्ष निकलता है कि सब स्थानों की यह मटर दुर्गुणकारी नहीं होती। कहा जाता है कि यह दुर्गुण या दुष्प्रभाव इसके अन्दर के एक उड़नशील अल्कलाइड के कारण होता है। यदि इसकी दाल को अच्छी तरह भून कर पकाई जाय तो फिर उसका दुर्गुण नष्ट हो जाता है तथा खेतों से इसके बीजों के साथ आंकरा, आंकड़ी (Vicia Sativa या Lathyrus Angustifolia) जैसे अन्य विषैले, वातकारक बीजों का सम्मेलन हो जाने पर भी उक्त दुष्परिणाम होता है। ऐसा अर्वाचीन संशोधकों का कथन है। उक्त विषैले उड़नशील तैल या अन्य विषाक्त बीजों के संसर्ग से यह शूल, हृदय शूल, शोथ एवं अर्शोत्पादक भी होता है।

बीजों का उक्त तैल एक तेज विरेचक है तथा इसका प्रयोग खतरनाक है (कर्नल चोपरा)। यह तैल बीजों में केवल ०.६ प्रतिशत पाया जाता है।

खैर [*ACACIA CATECHU*]

यह वटादि वर्ग एवं नैसर्गिक क्रमानुसार बबूल कुल (Mimosaceae) का वृक्ष मध्यमाकार १०-११ फुट (कहीं कहीं इससे भी अधिक) ऊंचा होता है।

छाल—खुरदरी, कंटकयुक्त, श्वेत या धूसर वर्ण की आधे से पौन इंच मोटी होती है। काष्ठ का ऊपरी भाग पीताभ श्वेत तथा भीतर का रक्तवर्ण, पत्र बबूल पत्र जैसे संयुक्त लगभग २-४ इंच लम्बे तथा डंठल के नीचे की पत्ती (Stipule) के स्थान पर छोटे बडिशाकार (Hooked) भूरे या काले रंग के चमकीले कांटे होते हैं।

पुष्प—वर्षा के पूर्व ज्येष्ठ आषाढ तक छोटे पीताभ तीन पुष्पदल निकलते हैं।

फली—वसन्त या हेमंत ऋतु में २ से ४ इंच लम्बी, आधे से पौन इंच चौड़ी, पतली, किंचित् धूसर वर्ण की चमकीली होती है, जिसमें ५, से १० तक गोल छोटे छोटे बीज होते हैं।

नोट—इसकी कई जातियां हैं। उनमें श्वेत खदिर और रक्तकपिश (रक्ताभ भूरा) खदिर ये दो मुख्य भेद हैं। ऊपर श्वेत का वर्णन दिया गया है।

चरक के कुष्ठघ्न और कषाय स्कन्ध में तथा सुश्रुत के सालसारादि गण में इसकी योजना की गई है।

कत्था और खैरसार—पुराना परिपक्व खैर के वृक्ष को तोड़कर छाल निकालकर अलग कर देते हैं तथा तने के मध्य भाग के महीन टुकड़े कर बड़े पात्र में भर कर भट्टी पर रख पकाते हैं। फिर छानकर गाढ़ा या घन क्वाथ तैयार कर छोटी बड़ी कई प्रकार की बना लेते हैं। यही कत्था या खैर कहा जाता है। अनेक जातियों के खैर वृक्ष से निर्माण किये जाने के कारण इसके कई प्रकार हैं। जैसे—

१ रक्तकपिश खैर या श्वेत कत्था—यह ऊपर से ललाई लिये हुये भूरा तथा भीतर हल्का पीला या बादामी रंग का कोमल एवं सहज में ही टूट जाने वाला होता है। इसे पपड़िया, भपूरी या पसरा खैर कहते हैं। स्वाद में यह प्रथम कुछ तिक्त कसैला तथा बाद में मधुर प्रतीत होता है। औषधियों तथा पान में प्रयुक्त किया जाता है।

२ रक्त या लाल खैर—इसे विशेषतः पान के साथ ही प्रयुक्त करते हैं, औषधि कर्म में नहीं।

३ कृष्ण या काला कत्था अत्यन्त तिक्त होता है। यह निकृष्ट माना जाता है, औषधि कर्म में बिल्कुल नहीं लिया जाता।

४ एक पीला विदेशी कत्था होता है। इसे काठ, चिनाई या सफेद कत्था कहते हैं। यह अनकेरिया गेंबियर (Uncaria Gambier) नामक वृक्ष की पत्तियों तथा टहनियों से निर्माण किया जाता है। आगे का प्रकरण देखिये 'खैर चिनाई'।

५ खैरसार के विषय में आगे गुणधर्म में देखिये।

उत्पत्ति स्थान—

देशी उत्तम खैर वृक्ष हिमालय प्रदेश के ५ हजार फीट की ऊंचाई तक रूक्ष वायुमंडल में अधिक होते हैं। पंजाब से सिक्किम तक पश्चिमोत्तर प्रदेशों में तथा मध्य भारत, अवध, छोटा नागपुर, बम्बई प्रान्त, सौराष्ट्र, मैसूर, मद्रास और राजस्थान आदि प्रदेशों के जंगलों में साधारणतः सब जाति के खैर (उक्त नोट ४ के खैर को छोड़कर) पाये जाते हैं।

नाम—

सं०—खदिर (रोगनाशक एवं शरीर में स्थैर्योत्पादक),

खैरवृक्ष (खदिर)
ACACIA CATECHU WILLD.

रक्तसार, सोमवल्क, कदर, दन्तधावन, कण्ठकी, यज्ञीय (इसकी लकडी यज्ञ कर्म में उपयोगी होने से)।
हि०—खैर, खैरी, खेर। म०—खैर काथा, चें भाड़।
व०—खयेरगाछ, खादिर। गु –खेरियो।
अ०—केटेच्यु ट्री (Catechu tree)
ले०—एकेशिया केटेचु, ए. पोलियाकेन्था (A Polyacantha), ए वालीचायना (A Wallichiana), मिमोसा केटेच्यु (Mimosa Catechu)

रासायनिक सङ्गठन—

इसमे प्र श ३५ से ५७ तक कत्था या खैरसार (Catechu tannic) तथा शेष भाग मे कषाय द्रव्य, केटेचीन (Catechin) नामक सत्व आदि पाये जाते हैं। खैरसार को उबालने या मुख की लार से मिलने पर वह केटेचीन में परिणत हो जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—छाल, कत्था, खैरसार, कोपल, पुष्प।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कसैला, कटु विपाक, शीतवीर्य, प्रभाव मे कुष्ठघ्न है। यह कफ पित्तशामक दातों को हितकर, स्तभन, कृमिघ्न, शोणितास्थापन (रक्त प्रसादन, रक्त स्तभन एव रक्तवर्धक), मूत्रसग्रहणीय, शुक्रशोषण, गर्भाशय-शैथिल्यकर तथा शोथ, कफ, कण्डू, ज्वर, श्वेत कुष्ठ, अरुचि, अतिसार, रक्तपित्त, पाडु, कास, प्रमेह, प्रदर, योनि शैथिल्य, कामातिशय, रक्तदोष, मेद रोग, प्लीहा-वृद्धि, व्रण आदि नाशक है।

उक्त सब गुणधर्म छाल, कत्था तथा खैरसार के हैं। वास्तव मे कत्था ही खैर वृक्ष का सार है। वृक्ष के अन्दर सार भाग काण्ठ के टुकडे टुकडे कर जल के साथ उबालने से टुकडो से मधु जैसा गाढे रूप मे यह निसृत होता है जिसे फिर सुखा लिया जाता है।

खैरसार—किन्तु किसी किसी बहुत पुराने खैरवृक्ष के खोखलो या काष्ठ के भीतर स्थान-स्थान पर जो एक द्रव पदार्थ एकत्र होता है उसे खैरसार कहा जाता है। यह वृक्ष के परिपक्व स्तम्भ के सार भाग से स्वयमेव निसृत होता है। यह खैरसार—वर्ण्य, विशद, रक्तदोष, कफ एव मुख रोग नाशक है। यह छाती, फुफ्फुस आदि मे जमे हुए कफ को मुख द्वारा निकालने मे विशेष उपयोगी है। इसके अभाव मे उत्तम शुद्ध श्वेत कत्था लिया जाता है।

छाल के प्रयोग—(इन प्रयोगो मे छाल के अभाव मे कत्था या खैरसार ले सकते हैं)।

दातो से रक्तस्राव हो तो छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं तथा पिलाते हैं। रक्तपित्त मे भी यह क्वाथ पिलाते है। क्षीणता या शैथिल्य पर ताजी छाल के रस मे हीग मिलाकर देते हैं। कास पर—इसकी अन्तर छाल ४ भाग, बहेडा २ भाग तथा लौंग १ भाग का चूर्ण शहद के साथ चटाते हैं।

(१) बालको के डब्बा रोग (पसली चलना) पर--इसकी अन्तर छाल ३ मासे तक गोदुग्ध मे पीस छानकर उसमे १ रत्ती गोरोचन मिला नित्य प्रात एक बार तीन दिन तक पिलाने से लाभ होता है।

(२) सुजाकजन्य गठिया पर—इसकी छाल के साथ कुडा छाल, नीम छाल, बच की जड, निसोथ प्रत्येक २-२ तोले तथा त्रिफला २ तोले इन सबका जौकुट चूर्णकर २५ तोले उबलते हुए पानी मे मिला फाट तैयार कर

२-२ तोले की मात्रा मे दिन मे ३ वार सेवन कराते है।

(३) कृमि रोग पर—छाल के साथ इन्द्रजौ, नीम छाल, वच, त्रिकुटा, त्रिफला और निसोत को गोमूत्र मे पकाकर ७ दिन पीने से अत्यन्त प्रवृद्ध कृमि भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। (वृ नि र)

(४) समस्त त्वग दोप (चर्म रोग) तथा कुष्ठ पर--इसकी छाल का या पचाङ्ग का क्वाथ कर लेप, मालिश, स्नान, पान भोजन आदि कार्यों मे इसीका व्यवहार करने से लाभ होता है। आगे विशिष्ट योगो मे खदिरासव तथा खदिरारिष्ट देखे।

(५) अरू पिका (शिरोपिडिका, सिर की दाद) पर--इसकी छाल के साथ नीम और जामुन की छाल को गोमूत्र मे पीस कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

(६) मसूरिका पर--छाल के साथ सिरस की छाल, नीम पत्र तथा गूलर की छाल को एकत्र पीसकर लेप करना हितकारी है। (वृ नि. र)

(७) उपदश पर--इसकी तथा विजैसार की छाल का एकत्र क्वाथ कर त्रिफला चूर्ण मिला सेवन करें।

कत्था अथवा खैरसार--(प्रयोगार्थ उत्तम श्वेत कत्था लेवें) अत्यन्त धारक एव सकोचक है। सग्रहणी विशेष कर जिसमे आत्रवेदनायुक्त पानी जैसा मलस्राव अधिक होता हो उसमे यह विशेप उपयोगी है। वालको के अतिसार, विपमज्वर, पुराना व्रण, मुख के व्रण, स्नायुदौर्बल्य, रक्तस्राव आदि विकारो पर विशेप लाभकारी है। दातो की दृढता के लिये तथा गलशु डी शोथ (घाटी की सूजन) आदि पर इसका मजन तथा क्वाथ के कुल्ले आदि कराते हैं। श्वेत या रक्त प्रदर, तथा प्रसव पश्चात् अधिक रक्तस्राव पर--इसे पानी मे घोलकर डूश [उत्तर वस्ति] देते है। कर्णस्राव मे पानी मे घोल और छानकर कान मे पिचकारी देकर तथा शुष्क कर इसके चूर्ण को अन्दर वुरकते हैं। गुदशैथिल्य के कारण दस्त की रुकावट न हो तथा कुछ ज्वर भी रहता हो तो इसका चूर्ण १ से २॥ माशे तक मधु के साथ चटाते हैं, इससे आमातिसार पर भी लाभ होता है। जीर्ण ज्वर या पुराने विपम ज्वर पर इसके चूर्ण को या खैरसार को चिरायते के अर्क या क्वाथ के साथ सेवन कराते हैं। इससे प्लीहावृद्धि भी दूर होकर वल वृद्धि होती है। मुख के छालो पर--इसके साथ कलमी सोरा के चूर्ण को मिला लगाते है। शुष्क कास पर इसके चूर्ण के साथ समभाग हल्दी चूर्ण और मिश्री मिला थोड़ा थोडा मुख मे डालते रहने से लाभ होता है। पुरुप या स्त्री के कामविकार को कम करने के लिये इसे ५ रत्ती से १। माशे की मात्रा तक पानी में घोलकर पिलाते हैं। नासिकाशोथ या पाक पर इसके साथ छोटी हरड के चूर्ण को पानी मे पका गाढा गरम गरम लेप करते हैं। गर्भावस्था मे गर्भ पुष्टि के लिए- इसके साथ वोल [श्वेत] अर्थात् एलुवा [वाजारो मे हीरा वोल नाम से मिलता है] मिलाकर सेवन कराते हैं, इससे स्तनो मे दुग्ध की भी वृद्धि होती है। पूयस्रावयुक्त व्रणो पर--इसे मोम के साथ मिला लेप करते है। नासूर [नाडी व्रण] पर-- इसके उक्त मोम सहित लेप मे थोडा नीला थोथा मिलाकर लगाने से उत्तम लाभ होता है। जखम पर इसका चूर्ण वुरकाने से रक्तस्राव वन्द होता है। उपदश की टाकियो पर भी इसे वुरते हैं।

(८) अतिसार पर—कत्था या खैरसार १ तोला तथा दालचीनी ४ माशे इन दोनो का एकत्र मोटा चूर्ण २५ तोला उवलते हुए पानी मे डालकर १ घटे वाद छानकर २॥-२॥ तोले की मात्रा मे दिन मे २-३ वार देवें। अथवा इसके चूर्ण के समभाग वेलगिरी चूर्ण मिला सेवन करावें। अथवा--

इसके साथ समभाग दालचीनी चूर्ण मिलाकर सिरके मे पीस कर ४-४ रत्ती की गोलिया वनाकर १-१ गोली दिन मे ३ वार सेवन करावें।

जीर्णातिसार हो तो कत्था ५ भाग, हीग ४ भाग, पापडखार ३ भाग और अफीम २ भाग सवको महीन पीस २॥ रत्ती से ५ रत्ती तक की गोलिया वना लें। इसे ताम्बूल पत्र (खाने के पान) रस के साथ सेवन करावें।

(६) अर्श पर—इसके चूर्ण के साथ समभाग रीठे की छाल की राख (भस्म) एकत्र पानी के साथ खरल कर १-१ रत्ती की मात्रा मे मक्खन या मलाई के साथ सेवन कराने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है, विशेपत रक्तस्राव पर यह अधिक लाभकारी है। नमक खटाई से परहेज आवश्यक है। प्रति ६ मास के पश्चात्

यह प्रयोग ७ दिन तक कराते रहे।

(१०) अर्श के बढे हुए मस्सो पर तथा गुदभ्रंश पर—५ तोला कत्था या खैरसार के चूर्ण को ६ मासे अफीम, १ तोला मोम तथा ५ तोला गोघृत के साथ घोटकर मलहम बना लेप करें।

(११) भगन्दर पर—खैरसार और त्रिफला के क्वाथ मे भैंस का घृत तथा वायविडग का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है। (यो. र)

अथवा खैरसार के चूर्ण को असना वृक्ष (विजयसार) की छाल के क्वाथ की (३ या ७ या २१) भावना देकर उसमे शुद्ध गूगल मिलाकर शहद के साथ सेवन से भगन्दर, कुष्ठ तथा प्रमेह पिटिका का भी नाश होता है। (भा भै र)

(१२) श्वेत कुष्ठ पर—खैरसार और आमले के क्वाथ मे बावची के बीजो का चूर्ण मिलाकर सेवन से शख और चन्द्रमा या कुन्द के फूलो के समान श्वेत कुष्ठ भी नष्ट होजाता है। (ब. से)

(१३) मुख के रोगो पर—कत्था या खैरसार को ६ गुना पानी मे पकावें। खूब गाढा हो जाने पर उसमे जायफल, कवावचीनी, कपूर, चातुर्जात (तेजपात, दालचीनी, नागकेशर व इलायची) और सुपारी का महीन चूर्ण (यदि कत्था २५ तोला हो तो प्रक्षेप द्रव्यो का चूर्ण ६ से ८ रत्ती तक प्रत्येक) मिला चने जैसी गोली बनालें। इसे मुख मे धारण करने से जिह्वा, होठ, दात, मुह, गले और तालु के समस्त रोग नष्ट होते हैं।

नोट—उक्त प्रयोगों में कस्तूरी भी प्रक्षेप द्रव्य के प्रमाण में मिला ली जाय तो बहुत ही उत्तम लाभ होता है। कस्तूरी मिलाने पर गोलियां मूंग जैसी बना काम में लाते। इन्हें पान बीड़े में भी डालकर उपयोग कर करते हैं। बीड़े का स्वाद बढ़कर मुख के रोग दूर होते हैं। अथवा—

इसके चूर्ण १० भाग मे दालचीनी, जायफल और कपूर का चूर्ण २-२ भाग मिश्रण कर बबूल गोद (खैर वृक्ष का ही गोद हो तो और उत्तम है) के घोल मे घोट कर चना जैसी गोलिया बना मुख मे धारण करने से मसूढा, गला, जीभ या दातो के दर्द पर लाभ होता है।

(१४) सखिया के विष पर—कत्था या खैरसार को गोदुग्ध मे मिलाकर बार बार पिलाते हैं।

(१५) घोडे के सुधार के लिये उसे नित्य ५ तोले तक कत्था चने के साथ दिया जाता है।

विशिष्ट योग (छाल तथा कत्थे के)—

(१६) खदिरासव (कुष्ठ पर)—खैर की छाल ५ सेर जौकुट कर १ मन १२ सेर पानी मे पकावें। १३ सेर पानी शेष रहने पर छानकर ठडा हो जाने पर उसमे ७॥ सेर शहद, त्रिकुटा, त्रिफला, पिंडखजूर, दारुहल्दी, बावची, गिलोय और बायविडग का चूर्ण ४-४ तोले, धाय के पुष्प आध सेर चूर्ण कर मिला दें और अच्छी तरह हिलाकर रख देवें। इस तरह १६ दिन तक रोज १-२ बार हिला दिया करें। १६ वें दिन उसमे ५ सेर उत्तम शहद और मिला कर पात्र का मुख सन्धान कर १ मास तक सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर काच या चीनी मिट्टी की भरणी मे भर उसमे १ माशा कस्तूरी तथा २ माशे शुद्ध कपूर को एक मलमल के वस्त्र मे बाधकर डाल दें और पात्र का मुख बन्दकर रक्खे। १०-१५ दिन बाद इसका सेवन प्रारम्भ करें।

मात्रा—१ से ४ तोले तक, जल के साथ सेवन से महाकुष्ठ (गलित कुष्ठ), उपदश तथा सब प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं।

(१७) खदिरासव (अतिसार पर)—कत्था ४ भाग, खैर की छाल १ भाग तथा मद्यसार (४५ प्र श वाला) २५ भाग एकत्र मिला बोतल मे भर ७ से १५ दिन तक बन्द कर रक्खे। रोज बोतल को हिला दिया करें। फिर छानकर मात्रा २ से ६० बूद पानी के साथ देने से आमातिसार, रक्तातिसार मे शीघ्र लाभ होता है।

नोट—खैर के आसव एवं अरिष्ट के प्रयोगों को हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह में देखिये।

(१८) खदिर विधान—खैर के एक उत्तम वृक्ष के चारो ओर की मिट्टी हटाकर उसकी जड के भीतर एक गढा करे। गढे मे एक लोहे का घडा रख दें कि जिसमे वृक्ष का रस (कटे हुए स्थान से) टपक टपक कर घडे मे जमा होता रहे। फिर उस वृक्ष के ऊपर (जडो के चारो ओर) गोबर मिली हुई मिट्टी का लेप कर चारो ओर

कण्डो को जमाकर आग लगादे। इस क्रिया से पेड का रस निकल कर घडे मे जमा होगा। आग शान्त हो जाने पर घडे को निकाल रस छानकर सुरक्षित रखें। यथोचित मात्रानुसार आमले का रस, शहद और घृत मिश्रण कर सेवन करें। इससे आयु की वृद्धि होती है। अथवा—

खैरसार या शुद्ध कत्था २॥ सेर को ६ सेर ३२ तोले पानी मे पकावे। ३२ तोले शेष रहने पर इस अवलेह को सुरक्षित रक्खे। सेवन करते समय उचित मात्रा मे आवला रस तथा शहद और घृत मिला कर सेवन से समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं। अथवा खैरसार के क्वाथ से सिद्ध भेड का घृत भी कुष्ठनाशक है (उक्त विधान का पूर्ण विवरण सु स चि अ १० मे देखिये। हमने बहुत ही सक्षेप मे यहा इसे दिया है)।

उक्त रसायन की ही एक अन्य विधि वृन्द माधव के अनुसार इस प्रकार है—

खैर वृक्ष को जड के ऊपर से काट डालें तथा उसकी जड के भीतर एक गहरा गढा खोदकर उसमे एक घडा रख दें और चारो ओर ईधन से ढक कर आग लगादें। इस विधि से घडे मे जो रस एकत्रित हो उसे उचित मात्रा मे आमला रस, घृत एव शहद मिला सेवन करें।

(१९) खदिरादि घृत—खैरसार, मूर्वा, खस, अमलतास की छाल, कुडा छाल, नीम छाल, कदम छाल और अजवायन इनके क्वाथ से सिद्ध घृत समस्त कुष्ठ और विसर्पनाशक है।

(२०) खदिरादि तैल—खैरसार ५ सेर का ३२ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान ले। उसमे श्वेत चन्दन, अगर, केसर, मोथा, खस, विडग, देवदारु, लोध, मुनक्का, मजीठ, दालचीनी, तगर, कायफल, छोटी इलायची इनका चूर्ण १-१ तोले कल्क करके डाल दें। फिर तैल २ सेर मिला तैल सिद्धकर ले। इसे पीने, नस्य लेने तथा गण्डूष धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होकर दृष्टि एव श्रवण शक्ति तीक्ष्ण होती है।

—वा० भ० उ० अ० २२

हमने उक्त योग मे पद्माक, लजालु, नखी, पतग तथा कतृण को नही लिया है। तो भी यह तैल उत्तम सिद्ध हुआ है। प्राप्त होने पर इन द्रव्यों को भी मिला लेना अच्छा है।

(२१) खदिरादि गुटिका—कत्था या खैरसार १४ भाग तथा त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रायण, सोठ, इलायची, काकडासिंगी, कपूर, पीपलामूल, लोंग और कपूर ये १४ द्रव्य १-१ भाग लेकर सबके महीन चूर्ण को अनार रस तथा बबूल छाल के क्वाथ की ३-३ भावना देकर छोटे बेर जैसी गोलिया बना सेवन से कास, कण्ठस्थित कफ, दारुण स्वरभग तथा क्षय का नाश होता है।

—यो० चि० म० अ० ३

(२२) खदिराष्टक क्वाथ—खैर छाल, त्रिफला, नीम छाल, गिलोय, पटोल पत्र और अडूसा छाल का क्वाथ, रोमान्तिका (खसरा), मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट तथा कण्डू आदि को नष्ट करता है। —भै० र०

नोट—स्वल्प खदिर वटिका तथा बृहत्खदिर वटिका के सुन्दर प्रयोग भैषज्य रत्नावली में देखिये मुखरोगाधिकार के प्रकरण में।

खैर की कोंपल—यह प्रमेह और पित्तविकारनाशक है।

२३—पूयमेह (सुजाक) पर—खैर वृक्ष की कोंपल (टहनियो का अग्र कोमल भाग तथा कोमल पत्र) के समभाग बबूल और वृक्षो की कोंपलो को लेकर पीसकर मात्रा १ तोले तक यह कल्क ताजे गोदुग्ध ५ तोले में मिश्रणकर तथा छानकर उसमे जीरा चूर्ण ४ रत्ती व मिश्री चूर्ण ६ माशे मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे २ बार पिलावें। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

—व० गुणादर्श

बबूल और शमी के कोंपलो के अभाव मे केवल इसीकी कोपल २ तोले और जीरा १ तोले को पीसकर गोदुग्ध मे छानकर मिश्री मिला दिन मे दो बार देने से भी लाभ होता है।

(२४) पित्त के विकारो पर—इसकी कोमल कोपल १ तोला और सोठ ३ मासे एकत्र पीसकर ताजे (उसी समय के दुहे हुए) गोदुग्ध के साथ प्रात तीन दिन पीवें।

खैर के पुष्प—

(२५) रक्तपित्त पर—इसके पुष्पो के साथ फूल प्रियगु, कचनार तथा सेमल के फूलो का चूर्ण एकत्र
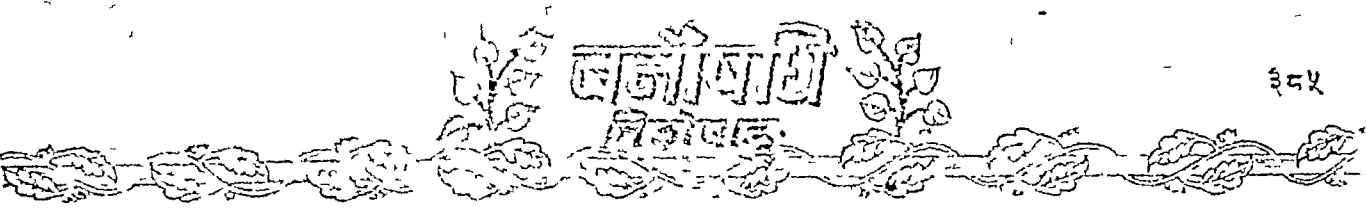
मिला २ से ४ माशे तक शहद के साथ दिन मे २-३ बार चटाने से लाभ होता है। (ग नि)

खैर का गोंद—

मधुर, बलकर तथा वीर्यवर्धक है। इसे पुष्टिदायक प्रयोगो मे प्रयुक्त करते हैं। अ ग्रेजी का गम एकेसिया है। यह खोर नामक खैर वृक्ष का गोद है। खोर का प्रकरण देखे।

नोट—मात्रा—छाल चूर्ण १ से ३ माशे तक। क्वाथ ५ से १० तोले तक। कत्था या खैरसार ३ से ८ रत्ती तक। थोडी मात्रा में यह पुरुषार्थवर्धक है, तथा बड़ी मात्रा मे यह नपुंसकताकारक तथा वस्ति में अश्मरीकारक है। हानि निवारणार्थ कस्तूरी और अम्बर का प्रयोग किया जाता है।

कहा जाता है कि १० तोले कत्था को थोडा कर्पूर मिलाकर खा लेने से मनुष्य तत्काल नपुंसक होजाता है।

खोर [खैर सफेद]

यह बबूल कुल (Mimosaceae) का खैर की जाति का ही कटकयुक्त वृक्ष है। इसका वृक्ष खैर वृक्ष जैसा ही किन्तु उससे छोटे कद का होता है। पत्ते—खैर पत्र जैसे ही किन्तु छोटे तथा फलिया भी तैसी ही होता हैं। प्रत्येक फली मे ३ से ६ तक बीज होते हैं।

इसके वृक्ष राजपुताना विशेषत अजमेर तथा सिध और कच्छ के जगलो मे बहुत होते हैं। मारवाड़ की ओर इसके बीजो की साग बनाते हैं। औषधिकार्य मे विशेषत. इसका गोद ही लिया जाता है। यह बबूल, खैर आदि के गोद से श्रेष्ठ माना जाता है। अ ग्रेजी का गम एकेशिया (Gum Acacia) इसे ही कहते हैं।

नाम-

स—श्वेतखदिर। हि.—खोर, कुमटा, कुंभट कुम्हरिया गु०—धोलो खेर। म०—खोर। ले—अकेसिया सिनेगाल।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका गोद स्निग्ध, शातिदायक, तथा शैथिल्योत्पादक है। इसे प्रदाहयुक्त शोथ एव अग्निदग्ध पर लगाते हैं। पाकस्थली तथा मूत्रेन्द्रियो की श्लैष्मिक कला के प्रदाह पर इसका प्रयोग करते हैं। खासी मे गोद की डली को मुख मे धारण करते हैं। नासिका के रक्तस्राव पर इसे सुंघाते या नस्य देते हैं। मधुमेह मे यह पथ्य रूप से खिलाया जाता है।

नोट—इसकी एक जाति विशेष को नेपाल की ओर खोर तथा लेटिन मे (Acacia Terruyinca) कहते हैं। इसकी छाल संकोचक होती है।

खोर (खैर सफ़ेद)

ACACIA SENEGAL WILLD.
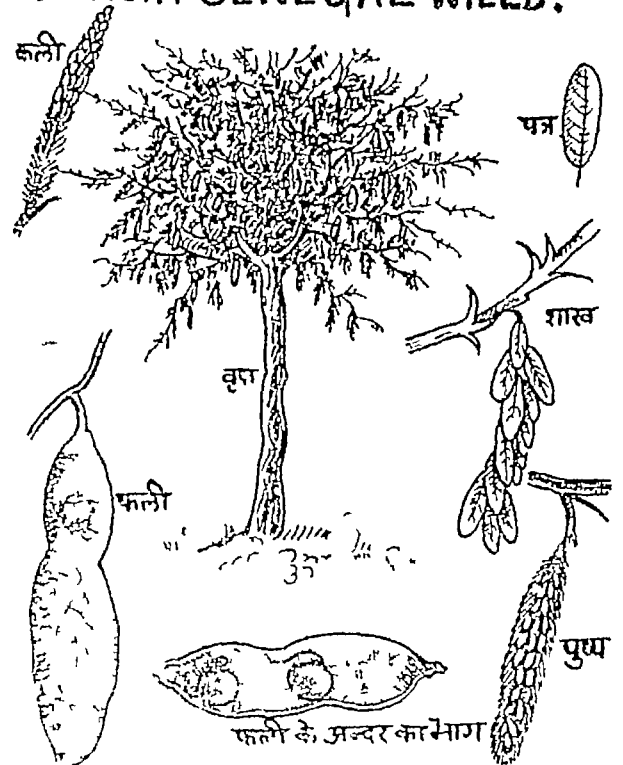
खैर चिनाय (*UNCARIA GAMBIER*)

यह मजिष्ठादि कुल (Rubiaceae) की एक खदिरलता है। इसकी लता नाजुक होती है। पत्ते गोल-झिलीदार तथा नोकदार, निम्न भाग की सिराये रोम-युक्त, फलिया—सिकुडी हुई सी होती हैं।

इसकी लताएँ सिंगापुर, मलाया, बोर्नियो, पेनाग और सुमात्रा मे प्रचुरता से पाई जाती हैं ।

नोट—इसके पत्ते तथा टहनियों को उबाल और निचोड़ कर रस को सुखाकर जो कत्था प्राप्त होता है, उसे सफेद कत्था या चिनाई कत्था कहते हैं । यह स्वाद में कड़ुवा, कसैला होता है ।

नाम—

स.—लता खदरी । हि —खैर चिनाय, काथ कुथा ।
म —चिनाई काथ । ब —पापरी खपर
अं —गैंबिर (Gambier), पेल क्याटेचु (Pale Catechu)
ले.—अंकेरिया गेंबीयर । नाक्लिया गेंबियर (Nauclea Gambier)

गु णधर्म व प्रयोग—

यह बहुत ही संकोचक है । ब्रिटिश [illegible] में इसीका अत्यधिक उपयोग होता है । मुख पाक तथा गले के विकारों पर टिंचर को पानी मे मिलाकर गंडूष धारण कराते हैं । अतिसार तथा पेचिश पर इसके योग में अफीम विजैसार का या पलाश का गोंद व खाक मिट्टी मिला कर दिया जाता है । उपदंश के व्रणों पर इसका लेप करते हैं ।

भारत मे प्राय पान के बीड़े मे इसका अधिक उपयोग होता है । गत प्रकरण मे खैर के प्रयोगों मे इसका उपयोग विशेष लाभकारी है ।

गंगेरन (छोटी) नागबला (Sida Spinosa)
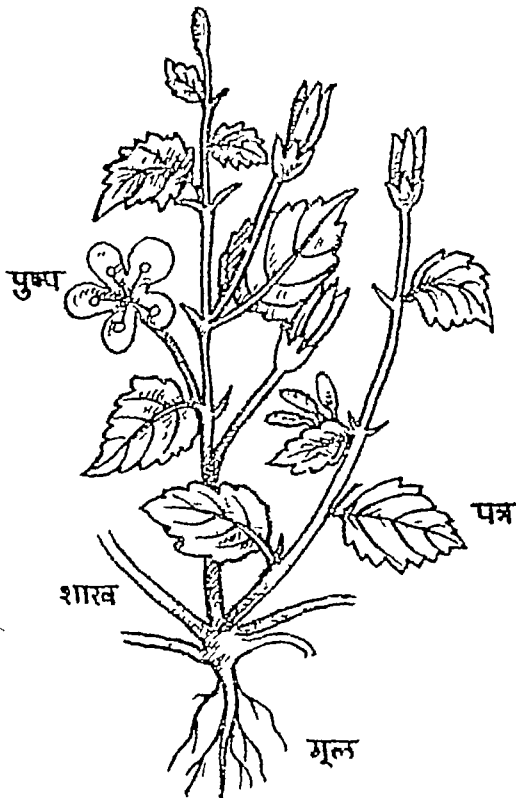
गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार कार्पासी कुल (Malvaceae) की इस बूटी के बहुवर्षायु क्षुप ४-७ फुट ऊँचे अनेक शाखा प्रशाखायुक्त, श्वेताभ वर्ण के, शाखायें पतली, खुरदरी एव किंचित् सूक्ष्म रोएँदार होती हैं ।

पत्ते—१-२ इंच लम्बे गोलाकार, कुछ नुकीले, कंगूरेदार तथा मोटे एव पत्तों की निम्न सन्धि पर प्राय कांटे होते हैं ।

फूल—गोल गोल अर्ध इंच व्यास के ५ पंखुड़ीयुक्त, श्वेतवर्ण के या भीतर से पीतवर्ण और ऊपर से गुलाबी रंग के ऐसे २-३ पुष्प प्राय उक्त पत्र मूलों से निकलते हैं।

फल—छोटे छोटे पीले ४ या ५ कोष्ठ वाले महुदेई के फल जैसे पकने पर नारङ्गी रंग के हो जाते हैं, सूखने पर इसके ४ या ५ भाग हो जाते हैं । पके फल मधुर, स्वादिष्ट होते हैं । इन्हे 'शिकारी मेवा' कहते हैं । शरद ऋतु या हेमन्त मे इसके फूल फल लगते हैं ।

इसके क्षुप भारत के अधिक उष्ण भागों मे प्राय पश्चिमोत्तर प्रदेशों से लेकर दक्षिण तक पथरीले पार्वत्य प्रदेशों मे विशेषत विन्ध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, कोंकण आदि में पाये जाते हैं ।

नोट—गंगेरन (नागबला) के विषय में बहुत मतभेद हैं। स्व यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने तथा स्व भगीरथ स्वामी ने भुईं नरियार (नागबरियार Sida Humilis) जिसका वर्णन 'खरैंटीलता' प्रकरण मे हमने किया है, उसे ही वास्तविक नागबला माना है। हम तो उस भूमिबला (खरैंटीलता) को बला (खरैंटी) का ही एक भेद विशेष

मानते हैं, यद्यपि उसमें नगेरन के प्रायः समस्त गुण विद्यमान है।

जिसे संस्कृत में नागेरकी, गांगेरुक कहते हैं, वह नागवला (गंगेरन) से भिन्न परुषक कुल (Filiaceae) की है। उसे एक प्रकार की बड़ी गंगेरन कह सकते हैं। देखिये आगे गंगेरन बड़ी का प्रकरण।

नाम--

सं.—कंटकिनी बला, नागवला।
हि—गंगेरन, गुलमकरी, गांगिया, जंगली मेथी।
म—गंगावती, गांगी, वनवावरी।
गु—गनेटी, कांटालोवल, जंगलीमेथी, डुगराऊवला।
व—गोरकचौलिया, पीलावरेला, वोनमेथी।
ले—सिडा स्पिनोसा, सिडा आल्बा (S Alba), सिडा आलिनीफोलिया (S Alnifolia)

गुण धर्म और प्रयोग--

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर, कषाय, मधुर विपाक एवं शीतवीर्य है। यह वातपित्तशामक, अनुलोमन, स्नेहन, अम्लतानाशक, हृद्य, कफनिस्सारक, वृष्य, गर्भस्थापक, मूत्रल, दाहप्रशमन, रक्तस्तम्भन, वेदनास्थापक, व्रण रोपक, रसायन तथा कोष्ठगत वात, अम्लपित्त, विबन्ध, रक्तपित्त, हृद्रोग, नाडीदौर्बल्य, वातव्याधि, कास, श्वास, उरक्षत, यक्ष्मा, स्वरभेद, शुक्रदौर्बल्य, रक्तप्रदर, गर्भपात मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह एव पैत्तिक विपमज्वर नाशक हैं।

प्रयोज्य अग—मूल और पत्र।

मूल—

मूल की छाल का क्वाथ सुजाक, मूत्राशय की जलन, आमवात और ज्वर मे सेवन कराते हैं। जड का चूर्ण अजीर्ण में पानी के साथ तथा सुजाक मे दूध के साथ देते हैं। अस्थिभग या मोच आने पर मूल का क्वाथ या स्वरस पिलाते हैं, विशेषत जानवरो को यह बहुत पिलाया जाता है।[1] पैत्तिक विषमज्वर मे इसका क्वाथ सोंठ के साथ देते हैं, इससे मूत्र साफ होता है तथा क्षुधा वृद्धि होती है।

नोट—ध्यान रहे औषधिकार्य के लिये ऐसे क्षुप का मूल लेना चाहिये जो जंगल के उत्तम शुद्ध स्थानों में हो तथा जो बहुत कोमल या अति जरठ भी न हो।

(१) हृद्रोग, कास और श्वास पर—जड़ छाल का चूर्ण नित्य दिन मे दो बार प्रात साय मात्रा ६ माशे तक अनुपान दूध के साथ सेवन करे। यह अतिबल वीर्य-वर्धक एक उत्तम रसायन योग है। औषधि के पच जाने पर दूध भात का भोजन करें। यह उरक्षत मे भी लाभकारी है। १ मास तक इसके सेवन से समस्त वातविकार दूर होते हैं तथा १ वर्ष के सेवन से दीर्घायु प्राप्त होती है। —वृ० मा० तथा चक्रदत्त

छाल के चूर्ण को दूध में पकाकर भी दिया जाता है। शीघ्र लाभ होता है।

(२) क्षय पर—जड छाल का चूर्ण १॥ से ३ माशे तक घृत और मधु के साथ नित्य प्रात सेवन से रक्त और वीर्य की वृद्धि होती है। अति स्त्री सम्भोग या विपम ज्वर आदि से हुई शारीरिक क्षीणता शीघ्र दूर होती है। यह योग भी उत्तम रसायन है। नित्य प्रात सेवन के बाद पच जाने पर दूध, घृत और चावल का भोजन करें, सयम से रहे तो १ वर्ष के सेवन से निरामय १०० वर्ष दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है (च० स० चि० अ० १ मे इस प्रसग पर गगेरन का पौधा किस स्थान का कैसा हो तथा उसे किस प्रकार से माघ या फागुन के माह मे लाना चाहिये आदि का वर्णन विस्तार से दिया है)।

साधारण वीर्य की क्षीणता पर—जड छाल के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला मात्रा १ तोले तक १ पाव पकाये हुये गोदुग्ध के साथ सेवन करावें।

(३) वातरक्त पर—नागवला तैल—शुद्ध स्वच्छ किये हुए इसके जड सहित पचाग को जौकुट कर ५ सेर चूर्ण १२ सेर ६४ तोले जल मे पकावें। चौथाई शेष रहने पर छानकर इसमे तिल तैल ३ सेर १६ तोले तथा इतना ही बकरी का दूध एवं तगर व मुलैठी का कल्क २०-२० तोले मिला तैल सिद्ध कर लें। इस तैल की बस्ति देने से ७ दिन में और पिलाने से १० दिन मे रोग की शांति हो जाती है। —च द तथा भै र.

(४) स्तन शैथिल्य पर—जड को पानी मे पीसकर लेप करते है।

(५) रक्तपित्त, उरक्षत आदि पर विशिष्ट योग—नागवला घृत—इसका शुद्ध स्वच्छ पचाग ५ सेर जौकुट

[1] प्रयोगविधि देखिये गंगेरन बड़ी के प्रकरण में।

चूर्ण कर १२ सेर २४ तोले जल मे पका चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर इससे गोघृत तथा गोदुग्ध प्रत्येक ३ सेर १६ तोले तथा खिरैटी जड, पुनर्नवा, गभारी छाल, चिरौंजी, केवाच वीज, असगन्ध, सतावर, गोखुरू, कमल नाल, कमल मूल, सिंघाडा और कसेरू ८-८ तोले कल्क कर मिलावें तथा घृत को सिद्ध कर लें। इसके १ से २ तोले की मात्रा मे गोदुग्ध के साथ सेवन से रक्तपित्त, उर क्षत, क्षय, दाह, भ्रम, तृषा आदि दूर होकर वल, पुष्टि, ओज, आयु की वृद्धि होती है। –च द तथा भै. र

(६) मुहुर्मूत्र (बहुमूत्र) पर—जड की छाल का चूर्ण १० ग्राम और मिश्री १० ग्राम दोनो को मिला गोदुग्ध २० ग्राम के साथ दिन मे दो वार सेवन से वार वार मूत्र होना वन्द होता है। यह प्रयोग मेरा १५ वर्ष से अनुभूत हैं। सहस्रो रोगियो को लाभ पहुँचाया है।

—वैद्य श्री मोहरसिंह आर्य हितैपी, महेन्द्रगढ पू प

पत्र—

शान्तिकर,ज्वरघ्न पूयमेह,जीर्ण प्रमेह तथा मूत्रोष्मा को शमन करते है। मूत्रकृच्छ्र सुजाक एव मूत्रेन्द्रिय सम्वन्धी अन्य विकारो पर इसके पत्तो का उपयोग किया जाता है। पत्र स्वरस जीर्ण आन्त्र विकारो पर लाभदायक है।

सुजाक या मूत्रकृच्छ्र पर—पत्रो को कालीमिर्च के साथ पीस छानकर ठडाई के समान पिलाते हैं। प्रमेह पर पत्रो को जल मे भिगोकर तथा मल छानकर लुआव पिलाते है। शोथ पर पत्तो को तिल के साथ पीसकर तथा गरम कर लेप करते हैं।

फल—

मधुर, कसैले, शीतल, सकोचक, रूक्ष, लेखन, वातकारक, विवन्ध, आध्मानकर एव पित्त कफनाशक है।

नोट–मात्रा–मूल छाल चूर्ण १-३ माशे, क्वाथ ५-१० तोले तक, पत्रस्वरस १ तोले तक।

गंगेरन बड़ी [*GREWIA POPULIFOLA*]

परुपक कुल (Tiliaceae) के इसके क्षुप रोमश ५-१० (कही ३ फुट) फुट तक ऊचे होते हैं।

पत्र—आध-एक इच लम्वे रेंडी के पत्र जैसे, छाल—श्वेताभ, चिकनी तथा डडी अगुली जैसी मोटी होती है। पुष्प–छोटे छोटे श्वेत वर्ण के कुछ गुलावी रग लिये हुये किंचित् सुगन्धित, ग्रीष्मकाल मे आते हैं। डालियो पर काटे से प्रतीत होते है, किन्तु वे छिदते नही।

फल—छोटे छोटे कालीमिर्च जैसे गोलाकार किन्तु रोमश व चार कोष्ठ वाले मधुराम्ल होते हैं।

इस क्षुप की जड के पास से अनेक शाखाऐं निकली हुई रहती हैं। इसके पत्ते विशेप लुआबदार लसीले एव स्वाद मे फीके होते हैं।

यह पश्चिम भारत, नेपाल तथा कोकण में वहुत पाया जाता है।

नाम—

सं०—नागेरुक, वृहन्नागवला, गुडशर्करा।
हि०—गगेरन वडी, छिरछिटा, गुलसकरी।
म०—तूपकडी, गगेटी, झिझरूट।
गु०—डुगरुवला, गगेटी। ले०–ग्रीविया पापुलिफोलिया, ग्रीविया हिरसुटा (G Hirsuta)।

गुण धर्म और प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कसैली, किंचित् मधुर, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, वृष्य, वल्य, स्तन्य, तृप्तिकारक, स्तभन, व्रण शोधन और रोपण, रक्तस्तभक, रक्तपित्त एव रक्तातिसार नाशक, कफ पित्तशामक है।

शस्त्राघात या किसी प्रकार के आगतुक व्रण या जखम पर—इसके मूल या छाल के स्वरस प्रयोग से शोधन, रोपण एव रक्तस्तम्भन तत्काल होता है[1]। स्वरस को घाव मे भर दें। या इसके पत्तो की पुल्टिस वाधें।

१ अस्थि भग पर–मूल की छाल का चूर्ण २५ तोला, देशी खाड ३५ तोला, घृत ६० तोला, वादाम व पिस्ते कतरे हुए ५५ तोले इन सवको मिलाकर १८ मोदक वनालें, प्रात साय १-१ मोदक खिलाकर दुग्धाहार करावें। दुग्धाहार १८ दिन तक रक्खें। यदि आवश्यकता हो तो औषधि प्रारम्भ के पूर्व एरंड तैल से विरेचन से उदर शुद्धि करलें।

---

[1] खड्गादि च्छिन्न गात्रस्य तत्काल पूरिते व्रणः। नागेरुकी मूल_ रसैर्जायते गतवेदन ॥ (शार्ङ्गधर)

९ दिन के भीतर ही अस्थिसधान हो जाता है। भग्नास्थि पर अस्थि सधान ठीक होने के लिये निम्न द्रव्यो का प्लास्टर लगाते हैं—चपडा, गधाबिरोजा, राल, उसारे रेवन्द-समान भाग लेकर मेथिलेटड स्पिरिट मे घुलाकर लेप कर भग्न स्थान को समतल रखो।

पशुओ के अस्थि भग पर—इसका चूर्ण ५ तोले प्रतिदिन जल मे घोल ७ दिन पिलावें। (स्व कवि प्रतापसिंह)

२ उपदश पर—इसके पत्ते एक मुट्ठी भर लेकर साफ धोकर १ चुटकी श्वेत जीरे के साथ सिल पर खूब महीन पीस कर लगभग ५ तोले जल मिला छान लें तथा थोड़ी मिश्री मिला प्रात और इसी प्रकार साय बनाकर सेवन करावे। १४ से २१ दिन तक। औषधि प्रारम्भ के पूर्व एरण्ड तैल या सनाय पत्र से उदर शुद्धि करावें। पथ्य मे अरहर की दाल (बिना नमक, मिर्च या मसाले के) घृत २ तोले तक मिलाकर गेहूँ की रोटी के साथ अथवा रोटी और गोदुग्ध बस केवल ये ही चीजे खानी चाहिये। तैल, गुड, खटाई, वेसन की चीजें, शाक भाजी, मिठाई आदि अपथ्य है।

उपदश के व्रणो को त्रिफला के क्वाथ से प्रात सायं धोना चाहिये। यदि व्रणो के स्थान पर सूजन विशेष हो तो पत्थर वाला पाषाण भेद, मसिल, व मुरदासग १-१ तोला तथा नीला थोथा ६ माशे इनको एकत्र खरलकर इसमे से १ चुटकी चूर्ण किंचित जल मिला लेप करें तथा कडे की आच से लेप के सूखने तक सेंक करें। ३-४ बार के लेप से शोथ विलीन हो जाती हैं। व्रणो पर लगाने के लिये मलहम रूप मे नागवला घृत (देखो गगेरन छोटी का प्रयोग न० ५) को लगाया करे। इसके शेष प्रयोग गगेरन छोटी के जैसे ही है।

नोट—इसी गंगेरन वड़ी (वृहन्नागवला) का एक भेद 'चिरियारी' देखिये।

गंजनी [*ANDROPOGON NARDUS*]

यह यवादि कुल (Gramineae) का एक प्रकार का सुगन्धित तृण विशेष है। इसके पत्ते जव धान्य के पत्र जैसे लम्बे, तथा तैसी ही प्राय इसमे बीजयुक्त बालिया लगती हैं। यह तृण या घास श्रावणकोर, सिंगापुर, सीलोन तथा पजाव मे और कही कही उत्तर प्रदेश मे भी जङ्गलो मे पाई जाती है।

नाम—

सं०—गुच्छ, कुतृण। हि०—गंजनी, सुगन्धवाला।
बं०—कामाखेर। म०—सुगधि गवत, गंधवेल, उषाधन।
अ.—सिट्रोनेला (Citronella)। ले—एण्ड्रोपोगान नार्ड्स।

नोट—(१) वाष्पीकर क्रिया द्वारा इस तृण से एक सुगन्धित उड़नशील तैल प्राप्त होता है। इसे सिट्रोनेला आईल कहते है। इसका इत्र आदि सुगंधित द्रव्य निर्माण में तथा औषधि कार्य में विशेष उपयोग होता है।

(२) यह लामज्जक का ही एक भेद मालूम देता है। लामज्जक का प्रकरण देखिये।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह विकाशी, श्वासहर, दीपनीय, वातशामक, आध्मानहर, आत्र पीडा शामक, उत्तेजक, तृष्णानिवारक, मूत्रल तथा स्थौल्यनाशक है।
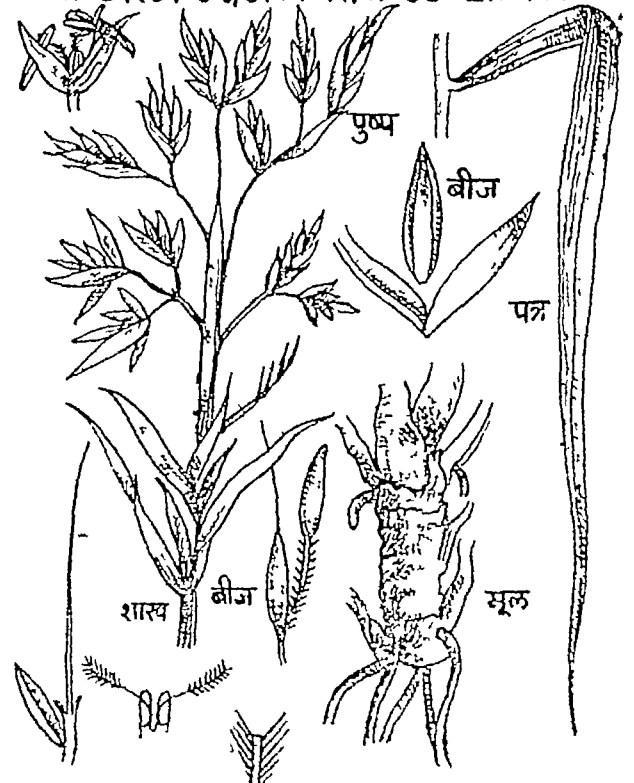
औषधि कार्य मे इसका उपयोग विशेषत: खस के जैसे ही किया जाता है। इसकी जड़ मूत्रल, पसीना लाने वाली एव ज्वरघ्न है। इसके तैल का प्रयोग मेदा रोग, आत्र मरोड या एठन तथा हैजा पर किया जाता है– मात्रा १ से ४ बूंद, मिश्री या बतासे के साथ दें।

बालको के आमातिसार, उदरशूल तथा आंत्र-विकारो पर इसके पत्तों का फाट या शीत निर्यास १ तोले से २॥ तोले की मात्रा मे दिया जाता है।

गन्दना [Allium Ampeloprasum]

यह रसोनादि कुल (Liliaceae) की वर्षायु बूटी लहसुन या प्याज जैसी क्षुद्र गुल्म रूप मे भारत मे गेहूँ या चने के खेतो मे स्वय पैदा हो जाती है। प्राय यह ईरान की ओर की बूटी है।

इसके पत्ते लहसन के पत्र जैसे तीक्ष्ण गन्धयुक्त होते हैं। गुल्म के शिरोभाग पर फूल व वीज डडियो पर लगते हैं। फूल प्राय: प्याज के फूल जैसे श्वेत वर्ण के तथा वीज भी प्याज वीज जैसे काले कड़वे, चरपरे, प्याज जैसे तीक्ष्ण गधयुक्त होते हैं। इसका कन्द (जड) प्याज जैसा ही होता है।

नाम–

हि.—गदना, गंधना, दंदना। अं —लीक (Leek), पोरेट–(Porret)। ले.–एलियम एम्पलोप्रेझम।

गुण धर्म और प्रयोग—

उष्ण, खार, सशमन, लेखन, कफ निस्सारक, मूत्रल, आर्त्तव प्रवर्तक, वाजीकर तथा शोथ, अर्श तथा ग्रन्थि रोग मे लाभकारी है।

वातार्श तथा रक्तार्श में इसके वीजो का प्रयोग अन्य औषध द्रव्यो के साथ करते हैं। यूनानी अर्शनाशक गोलिया प्राय इसके पत्र स्वरस मे औषधि द्रव्यो के चूर्ण को घोट पीस कर वनाई जाती हैं। अर्श के अकुरो को इसके वीजो की धूनी दी जाती है। कई चर्म रोगो पर इसका पतला लेप लगाते हैं। ग्रथि या गाठ को परिपक्व करने के लिये कन्द का गाढा लेप या पुल्टिस वना लगावें।

नोट—(१) इस गुल्म के हरे पत्तों का साग भी बनाकर खाया जाता है। इस बूटी का औषधि प्रयोग उष्ण प्रकृति वालों को अहितकर है। यह आध्मानकर शिर:शूल जनक एवं ज्ञानेन्द्रियों को दूषित कर देता है। इसके हानिनिवारण के लिये धनियां तथा हरी कासनी दी जाती है। इस बूटी के अभाव में लहसुन या प्याज लिया जाता है। इसके वीजों की मात्रा १ से २ माशे से ७ माशे तक।

इसके पचांग के क्वाथ से टब को भरकर उसमें स्त्री को बैठाने से गर्भाशय की रुकावट दूर होती है। उदरशूल में इसकी वस्ति दी जाती है। इसके कन्द के या पत्र के स्वरस की मात्रा १ या १॥ तोले तक पीने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता है। इसके बीजों को पीसकर मुख पर लेप करने से मुंह की झाई नष्ट हो कांति बढ़ती है।

(२) कहीं कहीं विरंजासिफ को भी गन्दना कहते है यथा स्थान बिरंजासिफ का प्रकरण देखिये।
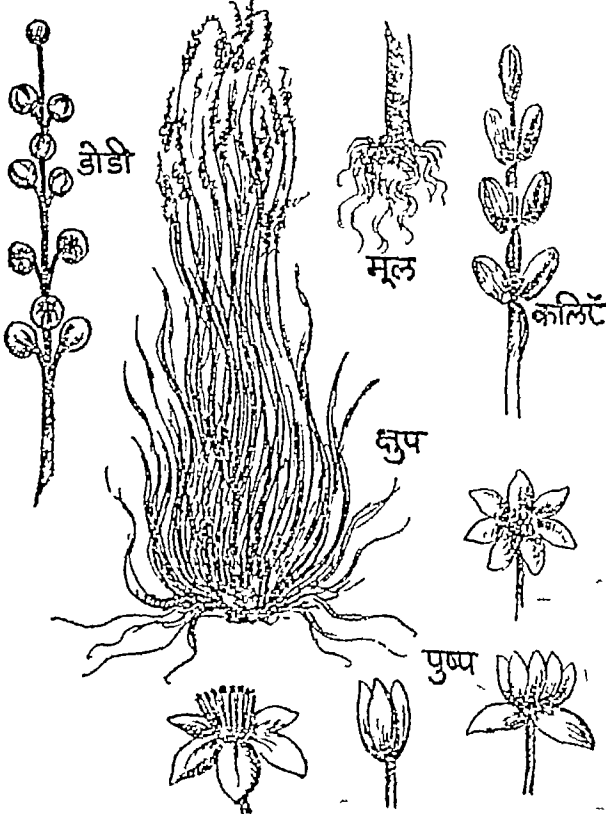
गम्भारी (Gmetina Arborea)

गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) की इस वनौपधि के वहुशाखी वृक्ष ४०–६० फीट ऊंचे होते हैं।

काण्ड—गोलाई मे ६ फुट तक, सीधा; काण्ड की छाल–श्वेतवर्ण, कुछ भूरी, कुछ काले चिन्हो या गोल गोल दानों से युक्त, पत्र—४-९ इच लम्बे, ३-७ इच चौडे, पीपल पत्र जैसे, पत्रोदर चिकना, तथा पत्र का पृष्ठ भाग श्वेत चूने जैसा होता है।

पुष्प—लम्बी मजरियो मे अडूसे पुष्प जैसे किन्तु पीतवर्ण के होते हैं।

फल—मौलसरी फल जैसे लम्बे गोल, पकने पर पीतवर्ण के चिकने, स्वाद में मधुर कसैले होते हैं। फल की गुठली वादाम जैसी, भीतर २-३ वीज होते हैं। प्राय वसत मे पुष्प और ग्रीष्म मे फल आते हैं।

इसके वृक्ष हिमालय, नीलगिरी, तथा दक्षिण के पूर्वी पश्चिमी घाटो के पहाडी प्रदेशो मे प्रचुरता से, तथा मध्यभारत, वरार, पूर्व वगाल, विहार और कोकण आदि प्रान्तो मे भी पाये जाते हैं।

नोट–(१) चरक के शोथहर, विरेचनोपग, दाहप्रशमन गणों मे, तथा सुश्रुत के वृ० पंचमूल[१], सारिवादिगण एवं फलवर्ग में इसका उल्लेख है।

(२) गभारी वृक्षो मे कुछ वृक्षों की पुष्प मंजरी खूब वड़ी सी होती है। तथा पत्ते उक्त वर्णितानुसार ही होते हैं। तथा कुछ वृक्षों की पुष्प-मंजरी वहुत छोटी तथा पत्ते भी अपेक्षाकृत छोटे, मोटे दलदार, अधोभाग पर नसें उभरी हुई ऐसे होते हैं।

(३) कई लोग गंभारी के स्थान पर प्राय· पिंडार वृक्ष (Trewia Nudiflora) की मूल, छाल, फल आदि का उपयोग करते हैं। यह प्राय· सर्वत्र सुलभ प्राप्त हो जाता है। यथास्थान 'पिंडार' का प्रकरण देखिये।
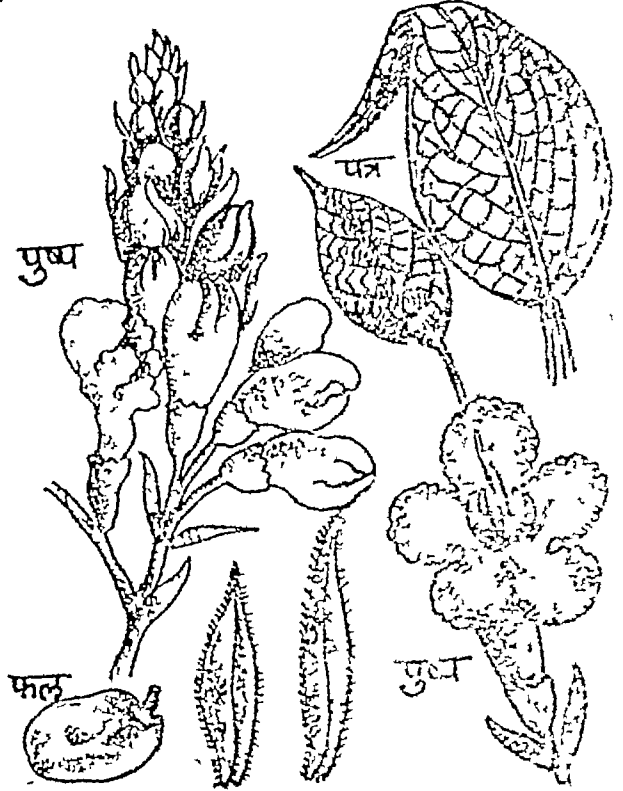
नाम—

सं०—गम्भारी, श्रीपर्णी, काश्मीरी, मधुपर्णिका।
हि.—गभारी, गमार, कुमेर, कासमर, गंभारी।
बं०—गाभार गाछ, गमार। गु०—सवन, शीवण
ले०—मेलीना आर्बोरिया।

रासायनिक संघटन—

मूल मे एक पीले रग का गाढ़ा तैल, राल, एक क्षार-तत्व तथा कुछ बेन्जाइक एसिड होता है। फल मे ब्युटिरिक (Butyric) और टार्टरिक एसिड, एक क्षारतत्व, शर्करा, राल एव टेनिन (कषाय द्रव्य) पाया जाता है।

इसके प्रयोज्य अग—मूल, छाल, फल, पत्र, पुष्प लिये जाते हैं।

---

[१] बृ. पचमूल—
बिल्व श्योनाक गाम्भारी पाटला गणिकारिका।
एतन्महत्पंचमूल संज्ञाया समुदाहृतम्॥
–बेल, सोनापाठा, गंभारी, पाढल और अरनी मूल की छालों के मिलित रूप को बृ० पचमूल कहते हैं।
श्योनाक को ही टिंटुक कहते हैं। सुश्रुत ने 'टिंटुक' शब्द रखा है। (सुश्रुत सू. अ. ३८)

गुण धर्म और प्रयोग—

गुरु, तिक्त, कषाय, मधुर, विपाक मे कटु, एव उष्ण वीर्य है। त्रिदोषशामक, दीपन, अनुलोमन, गर्भस्थापन, स्तन्यजनन, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन तथा तृष्णा, ज्वर, भ्रम, मस्तिष्क दौर्बल्य वातविकार आदि नाशक है।

इसकी मूल तथा छाल—

कटुपौष्टिक, बृंहण, शोथहर, रसायन एव विषघ्न है। यह विबन्धनाशक, अग्निवर्धक, कृमि, अर्श, ज्वर, मूत्रसम्बन्धी विकारनाशक है ।

सधिवात, ज्वर, अजीर्ण तथा मूत्राघात मे मूल को शीतल जल मे घिसकर पिलाते है।

सूतिका रोग मे--छाल का क्वाथ देते है। इससे गर्भाशय का शोथ कम होकर ज्वरादि उपद्रव शान्त होते हैं, तथा स्तन्य (स्तनो मे दुग्ध) की वृद्धि होती है। ज्वरोत्तर दौर्बल्य मे भी इसका प्रयोग होता है।

(१) गर्भस्राव निवारणार्थ—मूल-छाल के साथ काले तिल, और मजीठ समभाग एकत्र महीन चूर्ण कर दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(२) स्तन दृढीकरणार्थ श्रीपर्णी तैल—छाल २ सेर जौकुट कर १६ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ (४ सेर) सिद्ध करलें। फिर छाल १० तोले को पानी के साथ पीस कर कल्क तैयार कर उक्त क्वाथ तथा १ सेर तिल तैल मिला तैल को सिद्ध करलें। इस तैल मे रुई को भिगोकर स्तनो पर रखते रहने से शिथिल स्तन दृढ एव पुष्ट होते हैं। (भैं० र० तथा च० द०)

(३) रक्त प्रदर पर—काश्मर्यादि घृत न०१—इसकी छाल के साथ बेर की छाल, अनन्तमूल, गिलोय और मुलैठी ४-४ तोले पानी मे पीस कल्क करें। २ सेर घृत मे यह कल्क तथा ८ सेर बकरी का दूध मिला पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर छान लें।

मात्रा—२ तोले गौदुग्ध के साथ सेवन से लाभ होता है। (व० से०)

काश्मर्यादि घृत न २ नीचे पत्र के प्रयोगो मे देखिये।

(४) रक्तयोनि, अरजस्का योनि तथा अपुत्रा योनि पर—काश्मर्यादि घृत न ३—इसकी छाल तथा कुडा छाल १-१ सेर लेकर दोनो को जौकुट कर १६ सेर पानी मे पकावें। ४ सेर शेष रहने पर छान लें। फिर इसमे १ सेर घृत मिलाकर पकावें। इसकी उत्तर वस्ति उक्त योनि विकारो मे उपयोगी है। —वगसेन

(५) वातज ज्वर पर—छाल के साथ सारिवा, दाख, बनफशा और गिलोय का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर थोडा गुड मिलाकर सेवन करावें। —यो र

फल—

हृद्य, सकोचक, बल्य, वृष्य, मूत्रल, सधानीय तथा रक्तपित्त, तृष्णा, उर क्षत, क्षय, शुक्र दौर्बल्य, गर्भपात आदि निवारक हैं।

रक्तपित्त मे—पक्व फल १ या २ का गूदा शहद के साथ खिलाते हैं। शीतपित्त मे शुष्कफलो को उबाल कर मसलकर या पीस छानकर दूध के साथ सेवन कराते हैं। आगे प्रयोग न ११ देखिये।

(६) पैत्तिक ज्वर पर—फलो के साथ फालसा, मुलैठी (या महुआ के पुष्प), रक्तचन्दन, खस समभाग जौकुट कर २ तोले चूर्ण को ३२ तोले पानी मे पकावें। आधा शेष रहने पर छानकर उसमे थोडी खांड या मिश्री मिला दिन मे २-३ बार पिलाते हैं।

(७) विषम ज्वर पर—फल तथा मुनक्का १०-१० भाग, अनन्तमूल या सारिवा ६ भाग और गिलोय ८ भाग इनका चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर थोडा गुड मिला पिलाते है। मात्रा २॥ तोले से ४ तोले तक।

(८) पित्तज तृष्णा पर—फल (अथवा छाल) के साथ श्वेत चन्दन, खस, पद्मकाष्ठ, दाख और मुलैठी को जल मे पीस छानकर खाँड मिलाकर पिलावें। —भै र

(९) पित्तप्रधान वातरक्त पर—फल (या छाल) के साथ मुनक्का, अमलतास का गूदा और रक्तचन्दन जौकुट कर २-३ तोले चूर्ण को १ पाव गौदुग्ध मे पका थोडा थोड़ा थोडी थोडी देर से पिलावें। —वृ यो त

(१०) वात योनि विकार निवारणार्थ तथा गर्भधारणार्थ—काश्मर्यादि घृत न ४—इसके फलो के साथ त्रिफला, मुनक्का, कसौंदी, फालसा, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी, काकनासा, सहाचर (झिण्टी), सतावर और गिलोय १-१ तोले एकत्र कल्क कर १२८ तोले गोघृत मे

यथाविधि साधित यह घृत योनि के वातिक रोगो का नाशक, गर्भदाता है। मात्रा—आध तोले। च स चि ३०

(११) शीतपित्त पर—वृक्ष पर स्वय पके एव सूखे फलो को गौदुग्ध मे पका खाऐं और पथ्य से रहे। भै र

(१२) वातजन्य गर्भशोष और बालशोष पर—फलो के साथ समभाग मुलैठी जौकुट कर इसके द्वारा सिद्ध किये गये गौदुग्ध का सेवन कराते हैं।

पत्र—

इसके कोमल पत्ते या कोपल--शीतल, स्नेहन, मूत्रल तथा दाह-पीडा निवारक हैं। ज्वरजन्य दाहयुक्त शिर-शूल मे पत्तियो को पीसकर लेप करते हैं। मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह (सुजाक) एव बस्तिशोथ मे पत्रस्वरस को गौदुग्ध व मिश्री के साथ देने से लाभ होता है। व्रणो के कृमि-नाशार्थ तथा गर्भाशय विकार की शान्ति के लिये पत्ररस का प्रयोग किया जाता है। ग्रीष्मऋतु के शिर शूल मे पत्तो को दूध मे पीसकर सिर पर मलते हैं।

(१३) रक्त प्रदर पर—काश्मर्यादि घृत न. २—इसकी कोपल, वड के अकुर तथा दन्तीमूल एकत्र अथवा केवल इसकी कोपलो के कल्क और क्वाथ से सिद्ध घृत मात्रा १ से २ तोले तक पीने मे लाभ होता है। --बगसेन

(१४) अम्लपित्त तथा दाह पर—पत्तो के साथ अपामार्ग मूल और साभर कन्द इनको गौदुग्ध मे पीस, छान कर १४ दिन तक पिलाते हैं।

दाह निवारणार्थ— इसके पत्र रस को शरीर पर मलते हैं।

फूल —

हृद्य, सकोचक, मूत्रल, केशो को दृढ करने वाले, बुद्धिवर्धक एव पित्तविकार तथा कुष्ठ आदि रक्तविकारो मे लाभकारी हैं। वातरोगो पर इनका प्रयोग होता है।

नोट—मात्रा--मूल या छाल का क्वाथ ४-८ तोले। मूल या छाल का स्वरस १-२ तोले। फल १ से ३ माशे। फल स्वरस १-२ तोले। मूल चूर्ण ३-६ माशे। पुष्प चूर्ण ४ माशे से १ तोले तक।

गजपीपल[1] (Scindapsus Officinalis)

इस सूरणादि कुल (Araceae) की बनौषधि की लता जगलो मे साल आदि बडे बडे वृक्षो पर चढी हुई पाई जाती है। इसका डठल या काण्ड १ इच से भी कुछ मोटा, गोल एव गूदेदार, पत्र—शाखाओं मे विपमवर्त्ती, बडे बडे ५ से १२ इच लम्बे, २॥ से ६॥ इच चौडे, अण्डाकार, गाढे हरित वर्ण के, पत्र दण्ड-(सयुक्त पत्ती का सदृश भाग, जिसमे पत्रक निकलते हैं) २ से ६ इच लम्बा; जिसका अन्तिम भाग हाथ की कोहनी या तलवार की म्यान जैसा होता है। इस पत्रदण्ड का भीतरी भाग पीले रग का होता है। फल सयुक्त, गूदेदार लगभग ६ इच लम्बा, १। से १।। इच व्यास का नीचे की ओर लटका हुआ, अग्रिम भाग मे बर्छी जैसा नोकदार होता है।

फल के आडे कटे हुए टुकडे बाजार मे बिकते हैं। ये टुकडे प्राय १ इच व्यास के चौथाई इच मोटे तथा भूरे रग के निर्गन्ध होते हैं। इन्हे जल मे भिगो रखने से ये फूलकर नरम हो जाते हैं। मध्य भाग मे इसके बीज टेढे, चिकने, गाजे के बीज जैसे किंतु बडे और भूरे रग के होते हैं। पत्तो का शाक खाया जाता है। कई लोग इस की जड़ को चव्य मानते हैं जोकि अनिश्चित है। विशेष देखिये 'चव्य' के प्रकरण मे।

पजाब की ओर कही कही ईसबगोल की एक जाति विशेप (Plantago Amplexicaulis) को गजपीपल कहते हैं जोकि ठीक नही। देखिये ईसबगोल के प्रकरण मे।

[1] प्राचीन काल से यह एक विवादास्पद बनौषधि है। पिप्पली, गजपिप्पली, सैंहली और बनपिप्पली, इन चारों पिप्पलीयों में से गजपिप्पली अभी तक एक प्रकार की संदिग्ध द्रव्य है। छोटी बड़ी भेद से जो दो प्रकार की पीपल प्रचलित हैं इनमें बड़ी को ही कई लोग गजपीपल [सैंहलीया सींगापुरी पीपल) कहते हैं।]कई विद्वान चव्य फल को ही गजपीपल मानते हैं। (इसका विवरण 'चव्य' के प्रकरण में देखें)

यहां इससे भिन्न, वैज्ञानिकों की मानी हुई गजपीपल का वर्णन किया जाता है।

गजपीपल

SCINDAPSUS OFFICINALIS SCHOTT.
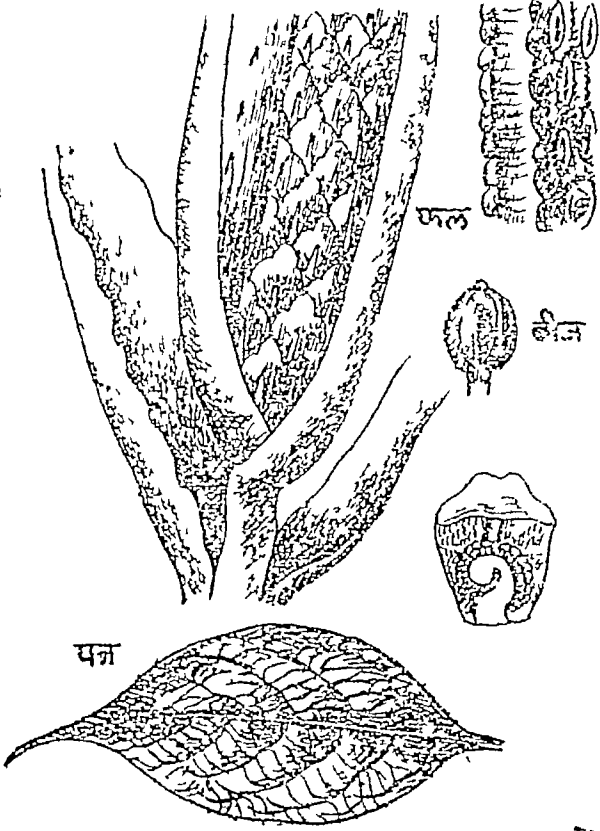
प्रस्तुत प्रसग के गजपीपल की लताऐ हिमालय प्रदेश के आर्द्र सपाट मैदान मे सिक्किम से पूर्व की ओर वगाल, चट्टगाव, ब्रह्मा एव शिवालिक के ज गलो मे बडे-बडे पेडो पर लिपटी हुई पाई जाती है ।

नाम—

सं - गजपिप्पली, कपिपल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी, वशिर हि.–गजपीपल, बडी पीपल
म. गजपिपली, थोरपिपली । बं.–गजपीपुल, करिपिपुल। गु –गजपीवर, मोटो पीपर। ले –सिन्डेप्सस आफिसिलेनिस; पोथोस आ.(Pothos Off)

रासायनिक संघठन—

इसमे १४½ प्रतिशत एक क्षाराभ, राख तथा गोद पायी जाती है ।

गुण धर्म और प्रयोग--

कटु, दीपन, उष्णवीर्य, वातकफ शामक है ।

शुष्क फल—तीक्ष्ण, स्वेदल, सुगधिकारक, वातहर, उत्तेजक, पाचक, बल्य तथा अतिसार, श्वास, कंठ सम्बन्धी विकार एव कृमिनाशक है ।

आमातिसार, अजीर्ण शूल तथा काम मे कफ की अधिकता होने पर इसका फांट दिया जाता है। आमवात, सधिवातादि वातपीड़ा पर इसे पीसकर लेप करते हैं।

[१] श्वास पर—इसका चूर्ण ४ रत्ती से १ मासा तक की मात्रा मे अदरख के रस व शहद के साथ प्रात. साय कुछ दिनो तक देते रहने से अथवा इसके चूर्ण को खाने के पान मे रखकर सेवन करते रहने से श्वास प्रकोप का वेग शात होता है, कफोत्पत्ति रुकती है तथा पाचन शक्ति बढती है ।

[२] अतिसार पर—इसका चूर्ण आम की गुठली की गिरी के साथ सेवन कराते हैं।

(३) जुखाम पर—जुखाम की प्रारभिक अवस्था मे इसके चूर्ण को चाय के साथ पीने से, अथवा शहद के साथ चाटने से शीघ्र लाभ होता है । इससे स्वरभेद तथा कास मे भी लाभ होता है ।

(४) वातज उदर शूल पर—इसके चूर्ण को गरम पानी के साथ देते हैं ।

गठिवन (गठौना) [Polygonum Bistorta]

यह भी एक सदिग्ध बूटी है। इसका बहुत कुछ स्वरूप एव गुणधर्म अजुवार के सदृश है। शालिग्राम जी ने अपने निघण्टु मे लिखा है कि कामरूपोद्भव तृण जाति की यह गाठदार सुगन्धित वनौषधि आसाम की ओर बहुत होती है। पत्ते अंगुली जैसे लम्बे लम्बे और फूल नीले गुच्छों में आते हैं। कुछ मनुष्य वनतुलसी को गठिवन मानते है।

श्री डा. वा ग देसाई जी ने ग्रन्थितृण नाम से जिस बूटी का वर्णन किया है वह भी बहुत कुछ अजुवार के सदृश ही है। ग्रन्थिपर्ण के शास्त्रीय गुणधर्म से इसमें अन्तर होते हुये भी और सब बातो में सादृश्य होने से हम उसीका उल्लेख इस प्रकरण में करते हैं। साथ ही साथ

श्री पं. विश्वनाथ द्विवेदी जी ने इसके विषय में जो कुछ लिखा है उसका भी साभार उद्धरण दिया जाता है।

भावप्रकाश में गठिवन के जो दो भेद थुनेर और भटेउर दिये गये हैं, वे भी संदिग्ध हैं। इनका भी विशेष विवरण इसी प्रकरण में प्रसंगानुसार आवश्यक होने से किया जाता है।

कर्पूरादि वर्ग के इस गठिवन (ग्रन्थिपर्ण) का ही सादृश्यता रखने वाला चुकादि कुल (Polygonaceae) का ग्रन्थितृण बहुशाखायुक्त एक छोटा सा क्षुप है। इसकी जड अनेक उपजडयुक्त कुछ लम्बी, दृढ एव काष्ठमय होती हैं। शाखाऐं गोल गोल जमीन पर फैली हुई होती हैं तथा टहनियो की ग्रन्थिया बहुत गाठदार और उनमे से ही पत्र निकलने से इसे सस्कृत में ग्रन्थितृण (ग्रन्थिपर्ण), हिन्दी मे मचोटी, केस्वी, झोन आदि तथा लेटिन मे पोलिगोनम एविक्युलेरी या बिस्टोर्टा कहते हैं।

इसके पत्ते एकान्तर, अखण्ड, १ इच से छोटे, शल्याकृति, धूसर रग के, पुष्प अनेक रग के तथा बीज त्रिकोण युक्त काले चमकीले होते हैं। सिन्ध मे इन बीजो को 'बीजबन्द' कहते हैं। यह उत्तरी भारतवर्ष मे होता है।

(डा० देसाई ने बूटी का लेटिन नाम Polygonum Aviculare दिया है। अजुबार का भी यही लेटिन नाम होने से द्विरुक्ति को टालने के लिये हमने इसका शीर्षोक्त पर्यायवाची नाम दिया है।)

रासायनिक संघटन—

इसमे पोलिगोनिक अम्ल (Polygonic acid), टेनिक तथा गेलिक अम्ल (Gallic acid), स्टार्च आदि और एक सुगन्धित तैल पाया जाता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

इसकी जड रक्तसग्राहक, मूत्रल, अनुलोमक तथा अश्मरी, ज्वर और कफनाशक है। बीज स्रसन, मूत्रल एवं वामक है।

अश्मरी या मूत्रकृच्छ्र मे इसके पचाग के क्वाथ का या मूल के रस का प्रयोग अधिक मात्रा मे करने से विशेष लाभ होता है। जीर्णातिसार मे मूल का रस या पंचाग का रस देते है। विषम ज्वर मे जड़ रस का उपयोग करते हैं। फुफ्फुस के विकारो मे विशेषत श्वासनलिका शोथ एवं कुकास मे पचाग का क्वाथ देते है। वेदना पर सूखी जड को पीसकर लेप करते है। विसर्प, बस्तिपीडा तथा आन्त्र की पीडा में पत्तो का लेप करते हैं।

डा० नाडकर्णी जी का कथन है कि दूषित पूययुक्त जख्म मे तथा श्वेत प्रदर मे इसके क्वाथ का प्रयोग किया जाता है, व्रण या जख्म को क्वाथ से प्रक्षालन करते तथा श्वेतप्रदर मे इसका उत्तरबस्ति देते है। कण्ठ की पीडा पर इस क्वाथ का गड्डूष मुख मे धारण करते है।

श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी लिखते हैं कि ग्रन्थिपर्ण एक विशेष प्रकार का सुगन्धित क्षुप होता है। जहा पर यह रहता है आसपास की जमीन सुगन्धित रहती है। अत. इसका एक नाम सुगन्ध है।

इसके क्षुप ३ फीट तक ऊचे, पत्र तुलसी पत्र जैसे, गन्ध मे यदि पार्थक्य न होता तो इसके और तुलसी के क्षुपो मे कोई विशेष अन्तर नही पाया जाता। इसके पत्तो मे भी बहुत उग्र गन्ध रहती है।

पुष्प—शीतकाल मे तुलसी जैसी ही मजरिया, किंतु बहुत सुगन्धित निकलती है जिनमे नीले रग के पुष्प होते हैं अत इसे नीलपुष्पी कहते है।

वर्षाऋतु मे इसके नये नये पौधे उगते हैं। ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ मे मजरियो के दाने पक जाते हैं। इन्हे तुख्मलगा भी कोई कोई कहते है, किन्तु यह[1] तुख्मलगा नही है उसका प्रतिनिधि हो सकता है। इसके दाने सुगधित होते हैं। तुख्मलगा मे कोई सुगन्ध नही होती। इसके क्षुप बहुत गाठदार होने से इसे ग्रन्थिपर्ण (गठिवन) कहते हैं।

प्रभाव—उग्र गन्ध होने से छछुन्दरी इसके पास नही आती। इसकी गन्ध सर्प के दर्प को दूर करती है। जहा यह होती है सर्प भाग जाते हैं। इसे जल मे भिगो कर फूलकर लुआबदार होने पर पुल्टिस की तरह लेप करने से कच्चा फोडा दब जाता है व अपका पककर शीघ्र फूट जाता है। उत्तर प्रदेश के बहुत से प्रदेश तथा

---

१ इसका वर्णन यथास्थान 'तुख्मबलंगू' के प्रकरण में देखिये।

उपजाऊ भूमि के हर भाग मे इसके क्षुप पाये जाते हैं।

इसे हिन्दी मे गठिवन, गठौना, वगला मे गठेना, मराठी मे गेठेनाचे झाड तथा गुजराथी मे तगरनी गाठ[२] कहते हैं। सस्कृत मे ग्रन्थिपर्ण, ग्रथिक, काकपुच्छ, नील-पुष्प, सुगन्ध, तैल पर्णिक आदि इसके नाम हैं।

गुण धर्म—

यह कडुवा, तीक्ष्ण, चरपरा, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, लघु तथा कफ, वात, विष, श्वास, खुजली और दुर्गन्ध नाशक है।

गठिवन के दो भेद—थुनेर और भटेउर। ये दोनो सदिग्ध हैं—

१ थुनेर (स्थौणेयक)—भावप्रकाशकार के मतानुसार गठिवन का ही एक भेद है। सस्कृत मे स्थौणेयक, बर्हिवर्ह, शुकच्छद आदि तथा हिन्दी मे थुनेर, भरुट इसके नाम है।

यह चरपरा, मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषशामक मेधाबुद्धि-दायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक तथा भूतप्रेतवाधा, ज्वर, कृमि, विष, कुष्ठ, रक्तविकार, दाह, दुर्गन्ध तथा शरीर के तिल आदि दागो का नाशक है।

राजनिघण्टुकार इसे कफपित्तशामक, सुगन्धित, चर-परा, कड्वा और पौष्टिक मानते हैं।

चरक के चि० स्थान अ० ३, २३ और २८ के क्रमश अगुर्वादि तैल, मृतसजीवनी अगद और वला तैल में तथा कल्पस्थान अ० १ के मदन फल उत्कारिकामोदक के योग मे इसकी योजना की गई है।

आधुनिक अन्वेषको के मतानुसार तालीसपत्र जो वंगीय, नेपाली और मध्यदेशीय देश भेद से तीन प्रकार का व्यवहृत होता है, उनमे से मध्यदेशीय तालीशपत्र (Taxus Baccata) को ग्रन्थिपर्ण (गठिवन) का भेद थुनेर मान लेना ठीक है। सुश्रुत के सूत्रस्थान के एलादि गण मे स्थौणेयक द्रव्य है टीकाकार घाणेकर जी ने इसकी टीका मे इसे थुनेर Taxus Baccata ही लिखा है। विशेष देखिये तालीसपत्र के प्रकरण मे।

कुछ चिकित्सक भाट (Clerodendron Infortunatum) को ही थुनेर मानते है। इसका विवरण भाट के प्रकरण में देखिये।

२. भटेउर (चोरक) भावप्रकाशकार ने गठिवन का दूसरा भेद नेपाल देश मे होने वाले भटेउर को माना है। सस्कृत मे इसे चोरक, निशाचर, धनहर, कितव आदि तथा हिन्दी और गुजराथी मे भटेउर कहते है।

गुणधर्म मे—यह मधुर, तिक्त एव कटुरसयुक्त, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, लघु, हृद्य तया कुष्ठ, खुजली, कफवात भूतादिवाधा, अलक्ष्मी, प्रस्वेद, मेद, रक्तविकार, विष व व्रणादिनाशक है।

चरक के सज्ञास्थापन दशेमानि, धूपन द्रव्यो तथा उन्मादोक्त महापैशाचिक घृत एव हिक्का, श्वास, पीनस, अपस्मारादि रोगो के प्रयोगो मे इसकी (चोरक की) योजना पाई जाती है।

आधुनिक मतानुसार—

कुछ लोग उक्त थुनेर और भटेउर को एक ही वनौषधि मानते है। कुछ खाने के पान की जड़ को ही चोरक कहते है। कुछ अन्वेषको का कथन है कि पजाव की ओर चोरा या चोरक नाम से जो एक द्रव्य मिलता है जिसे लेटिन मे अजेलिका ग्लाका (Aangelica Glauca) कहते है वह गठिवन का यह दूसरा भेद भटेउर हो सकता है।

इस मण्डूकपर्ण्यादि कुल (Umbelliferae) की वूटी के क्षुप ४-५ फीट ऊचे, काण्ड चिकना, पोला, पत्र बड़े वडे पंख के सदृश फैले हुए तथा सयुक्त पत्ती के स्वतन्त्र खड या पत्रक सख्या मे ३ अण्डाकार या भाला-कार तीक्ष्ण दातो से युक्त होते हैं। पुष्प अत्यन्त श्वेत या नीलारुण वर्ण के फल चिकने, चिपटे, आयताकार १३ मि. मि. लम्बे व ६ मि मि चौडे होते है।

इसके क्षुप पश्चिम हिमालय प्रदेशो मे काश्मीर से शिमला तक ८—१० हजार फीट की ऊचाई पर पाये हैं।

गुणधर्म मे यह हृद्य और उत्तेजक है, मन्दाग्नि, अजीर्ण एवं कोष्ठवद्धता पर इसका विशेषत उपयोग किया जाता है।

---

२ तगर और ग्रन्थिपर्ण का भेद तगर के प्रकरण में देखिये।

गन्धपूरा (Gaultheria Fragrantissima)

इस तालीशादि कुल (Ericaceae) की वनौषधि के सुगन्धित क्षुप जमीन पर फैलने वाले होते हैं। पत्ते—चमड़े जैसे मोटे, चीमट, अण्डाकार एव त्रिकोण युक्त, पुष्प—श्वेत तथा फल करौंदे जैसे होते हैं।

इसके क्षुप हिमालय प्रदेश मे नेपाल से लेकर भूतान और आसाम तक तथा दक्षिण मे नीलगिरी पहाड और ट्रावन्कोर मे प्रचुरता से पाया जाते है। ब्रह्मदेश व सीलोन में भी खूब होते हैं।

नाम—

सं.—गन्धपूर्ण, हेमन्त हरित, तैलपत्र, चर्मपर्ण।
हि म. बं.—गन्धपुरा (पुरो), गुलथीरिया।
अं.—इंडिलन विंटर ग्रीन (Indian Winter Green)।
ले.—गालथेरिया फ्रेग्रन्टीसिमा।

नोट—इसके ताजे पत्तों से परिस्रवण (Distillation) द्वारा एक प्रकार का तैल निकाला जाता है। औषधि कर्म में यही तैल लिया जाता है। यह रंगहीन एवं विशिष्ट प्रकार की उग्र सुगन्धियुक्त तैल स्वाद में तीक्ष्ण होता है। इसमें लगभग ६८ प्र. श मेथिलसेलिसिलेट (Methyel Salicylate) पाया जाता है। इस तैल को गन्धपुरो तैल (Winter Green Oil) या गुलथीरिया तैल कहते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग

इसका तैल सुगधित, उत्तेजक, वातिशायक, स्वेदल, मूत्रल, वेदनाशामक, हृद्य तथा वात पीड़ा, ज्वर, आध्मान स्नायुशूल, कृमि आदि नाशक है।

तीव्र एव नूतन आमवात, गठिया, तीव्र स्नायुशूल पर—इस तैल की मात्रा १० बून्द तक (क्रमश बढाते हुए १० बूंद या इससे कुछ अधिक) कैपसूल मे बन्द कर खिलाई जाती है, तथा इसका बाह्य लेप किया जाता है। अन्य वातनाशक मलहमो मे मिलाकर मालिश किया जाता है। तैल बाह्य प्रयोगार्थ ही काम मे लायें।

वेदनाशामक बाम, पोमेड, एव नाना प्रकार के व्हेसलीन से वनाये जाने वाले मलहमो मे इसकी योजना की जाती है।

गन्धप्रसारणी[1] (Paederia Foetida)

गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार मजिष्ठादि कुल (Rubiaceae) की इस बूटी की विशाल फैलने वाली वृक्षाश्रित रोमश लता जलवहुल स्थानो मे पायी जाती है। काण्ड या डडिया पतली, चिकनी, सुदृढ लम्बी तथा पुरानी लता की जड १-१॥ इ च मोटी होती है।

---

[1] शास्त्रीय गन्धप्रसारिणी के विषय में अभी तक निश्चित निर्णय नहीं हुआ है। उत्तरभारत में इस बूटी के नाम से जिसका व्यवहार किया जाता है, उसीका विवरण हम यहां दे रहे हैं।

भारत के अन्य प्रदेशों में कहीं कहीं हिरनपदी (Convolvulus Arvensis) का तो कहीं अन्य बूटियों का व्यवहार इसके नाम से किया जाता है। मारवाड़ की ओर खीप नाम से जिसका सफल प्रयोग किया जाता है, उसकी भी खूब फैलने वाली लता होती है, पत्ते अपेक्षाकृत कुछ छोटे, फलियां कच्ची दशा में शाक के काम आती हैं, पकने पर ये नोकदार पतली फलियां कुछ पीली पडकर इनमें से आक की रुई जैसी रुई निकलती है। इसके कोमल पत्तों की भी शाक वनाई जाती है। पजाव की ओर भी इसी खीप का व्यवहार होता है। यह प्राय. गन्धरहित एवं फोको मधुर रसयुक्त होतो हैं। इसीको दक्षिण की ओर चादवेल कहते हैं। स्थान विशेषता से इसके पत्र खीप के पत्र से अधिक लम्बे चौडे होते हैं। तथा मध्यभाग में अर्ध चन्द्राकार रेखायें होती हैं, जो छिद्र सी दिखाई पड़ती हैं। इसी लिए इसे चांदवेल कहते हैं। शास्त्रीय गन्धप्रसारणी को चन्द्रवल्ली नाम दिया गया है इसका कारण ऊपर के विवरण में देखिये। अत यह बूटी दो प्रकार की है एक तो अत्यन्त दुर्गन्ध एव कटु रस युक्त होती है। तथा लेपादि वाह्य प्रयोगों में ही प्राय: काम आती है। दूसरी जिसे खीप या चादवेल कहते हैं खाने के काम आती है। यह पौष्टिक, मूत्रल, कामोत्तेजक, ऋतुस्राव नियामक तथा यकृत और प्लीहा के प्रदाह में लाभदायक है। यह वात प्रकृति वालों को विवन्धकारक है अन्यों को नही।

पत्र—काण्ड पर कुछ दूर दूर दो दो की सख्या मे अभिमुख, भालाकार या कुछ अडूसा के पत्र जैसे २-६ इंच लम्बे व ¾-१½ इ च चौडे एव नुकीले (नोकदार) होते है। नीचे के पत्र कुछ बडे और चौडे तथा ऊपर के उनसे छोटे एव पतले होते हैं। वृन्त की ओर पत्रदण्ड से मिला हुआ भाग अर्ध गोलाकार, फिर क्रमश सकुचित होता हुआ अन्तिम भाग मे नुकीला होता है। इस प्रकार यह अर्ध चन्द्राकार जैसा दिखाई देने से इसे चान्द्रवेल (चन्द्रवल्ली) कहते हैं। पत्तो को मसल कर सूघ ने से बडी दुर्गन्ध आती है। वैसे भी इस वेल के आस पास की हवा इसके कारण दुर्गन्धपूर्ण हो जाती है। शुष्क पत्रो मे दुर्गन्ध नही होती। ताजे पत्रो को या पचाङ्ग को पानी मे उबालने से दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

पुष्प—शरदऋतु मे जामुनी गुलाबी रग के नलिकाकार मजरियो मे लगते हैं। पुष्प दल ५ तथा पुष्प वृन्त रोमश होता है। फल—शीतकाल मे पंखाकार, चिपटे गोल ¼-½ इ च लम्बे, पच्चरेखायुक्त एव पीतवर्ण के होते हैं। फल मे प्राय. एक ही बीज होता है जो छोटा, दानेदार, चिकना, चिपटा एव पतले आवरण से युक्त होता है।

इसकी लताये पूर्वी हिमालय प्रदेशो मे ५ हजार फीट की ऊचाई तक नेपाल से लेकर आसाम तक तथा गाल दक्षिण मे कोकण के जगलो मे पाया जाती हैं।

नाम—

सं.—प्रसारिणी; भद्रपर्णी, राजवला, गंधाढ्या, कटंभरा, गंधभद्रा।
हि.—गंधप्रसारणी, पसरन, गधाली, खीप।
म.—चांदवेल, हिरणवेल, प्रसारण।
गु.—गंधान प्रसारणवेल्य, नारी। व.—गंधभादुलिया।
अं.—चाइनीज फ्लावर प्लाट (Chinese flower plant), मूनक्रीपर (Moon creeper)
ले.—पिडेरिया फिटिडा, कान्हवोलव्हुलस फिटीडस (Convolvulus Foetidus), अपोसायनम फिटिडम (Apocynum foetidum)

रासायनिक सघटन—

इसमे एक दुर्गन्धित उडनशील तैल तथा अल्फा पिडेरिन (Alpha paederine) और बिटा पिडेरिन (Beta paederine) नामक दो क्षार तत्व पाये जाते हैं।

नोट—औषधिकर्म के लिये शरद्काल मे इसको ताजी अवस्था मे ही सग्रह कर लेना चाहिए। ग्रीष्मकाल में शुष्क हो जाने पर यह गुणहीन हो जाती है।

प्रयोज्य अङ्ग—मूल, पत्र एव पचाग।

गुणधर्म और प्रयोग—

गुरु, तिक्त, विपाक मे कटु एव उष्णवीर्य, सर (मृदुरेचन, किन्तु वात प्रकृति वालो को कुछ मल स्तम्भक), कफवात शमन, पित्त सशोधक, वातानुलोमन, रक्तप्रसादन (रक्तगत वातशामक), वृष्य, कटुपौष्टिक, बल्य, सन्धानीय, वेदनास्थापक, शोथहर, स्तब्धतानाशक तथा वातव्याधि, सधिजाड्य, उदरशूल, आनाह, गुल्म, अर्श, वातरक्त एव ज्वरादि रोगो के पश्चात् होने वाली सामान्य दुर्बलतानाशक है।

(१) सन्धिवात, आमवात, सन्धिजाड्य आदि आम कफयुक्त व्याधियो मे तथा वातव्याधियो मे इसका क्वाथ-

त्रिकटु के साथ या इसके अवलेह का सेवन कराते हैं तथा इसका लेप चित्रकमूल के साथ एव इसके तैल (प्रसारणी तैल) की मालिश, नस्य आदि कराते हैं और रोगी को इसके ताजे पत्रो को उबाल शाक बना खिलाते हैं।

(२) उदरशूल, आध्मान तथा विवन्ध पर—इसके पत्रो का कल्क बना गर्म कर या गर्म पानी मे घोल कर १ तोले तक की मात्रा मे पिलाते है तथा पत्रो का शाक भी खिलाते हैं।

पत्र व पंचांग—

पत्तो का स्वरस अति सकोचक होता है।

(३) वालको के अतिसार पर इसके पत्तो का स्वरस २-३ माशे पिलाते हैं।

(४) नाभि के समीप के नले फूल जाने पर पत्र स्वरस २ माशे से १ तोले तक की मात्रा मे थोड़ी मुर्गी की बीट मिलाकर पिलाते हैं।

(५) शोथ पर—इसके पचाग या पत्रो का कल्क तथा त्रिफला क्वाथ के योग से घृत सिद्ध कर सेवन कराते हैं। इससे कोष्ठबद्धता दूर होती है एवं रजवीर्य की शुद्धि भी होती है।

(६) मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी पर—इसके पचाग का चूर्ण प्रात नारियल के पानी के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। —भा. भै र

(७) आमवात पर-प्रसारणी लेह—इसके पचाग का जौकुट चूर्ण ४ सेर को ३२ सेर पानी मे पकावें। ८ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे १ सेर गुड मिला पुन पकावें। अवलेह तैयार होने पर उसमे पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ प्रत्येक का २-२ तोले चूर्ण मिला दें। मात्रा १ तोले सेवन से आमवात नष्ट होता है। —भा. प्र

मूल—

(८) अर्श पर—इसकी जड़ को सेहुड वृक्ष के दूध के साथ खरल कर टिकिया वना कण्डो की आंच पर रख धूनी देने से अर्श के मस्से शिथिल एव निष्क्रिय हो जाते हैं।

फल—

(९) दत शूल पर—फल को चबाने से शीघ्र लाभ होता है। किन्तु दात काले पड जाते है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१०) प्रसारणी तैल—सुपक्व एव सारयुक्त इसके पचाग को जौकुट कर ५ सेर चूर्ण को ३२ सेर पानी मे पकावें। ८ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे जवाखार, सैंधानमक, पीपरामूल, चित्रकमूल, रास्ना, इसी गन्धप्रसारिणी की जड व मुलैठी ८-८ तोले तथा सोठ २० तोले इन सवका कल्क और ८ सेर तिल तैल मिला मदाग्नि पर पकावें। पकाते समय उसमे प्रथम दही ८ सेर फिर खट्टी कांजी १६ सेर क्रमश धीरे धीरे डालकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर सुरक्षित रखें।

यह तैल नस्य, पान, वस्ति एव मालिश के काम आता है। पीने के लिये मात्रा ६ माशे दूध मे डालकर पीवें। इसके प्रयोग से एकाग, सर्वांगग्रह, त्वचागत शिरा सन्धि एव अस्थिगत वात, वातज रजोदोष, शुक्र विकार, अपस्मार, उन्माद, अग्निमाद्य नष्ट होते हैं।

इसके सेवन से इन्द्रिय बलवान होती है, पंगु की पगुता दूर होती है। —यो. र

प्रसारिणी तैल के अन्य योग शास्त्रो मे देखें।

कफजरोग नाशक एक छोटा योग इस प्रकार है—

(११) कफज रोगो पर—प्रसारणी तैल—इसके ४ सेर पचाग को जौकुटकर ३२ सेर पानी मे पकाकर ८ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे अण्डी तैल २ सेर मिला पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान लें। इसके सेवन और मालिश से कफ रोग एव समस्त दोषो का नाश होता है। —वगसेन

नोट—मात्रा—क्वाथ ५-१० तोले, स्वरस १-२ तोले, चूर्ण २-४ तोले, इसकी जड की अधिक मात्रा वमनकारक है।

गरजन [Dipterocarpus Alatus]

शालकुल [Dipterocarpaceae] के इसके वडे ऊचे वृक्ष ४० से १५० फीट तक ऊचे होते है। इसकी कई जातियो मे से मुख्य जातिया गरजन [Dip. Alatus], तेलिया [धूलिया] गरजन [Dip. Turbina-

गर्जन

DIPTEROCARPUS ALATUS ROXB.
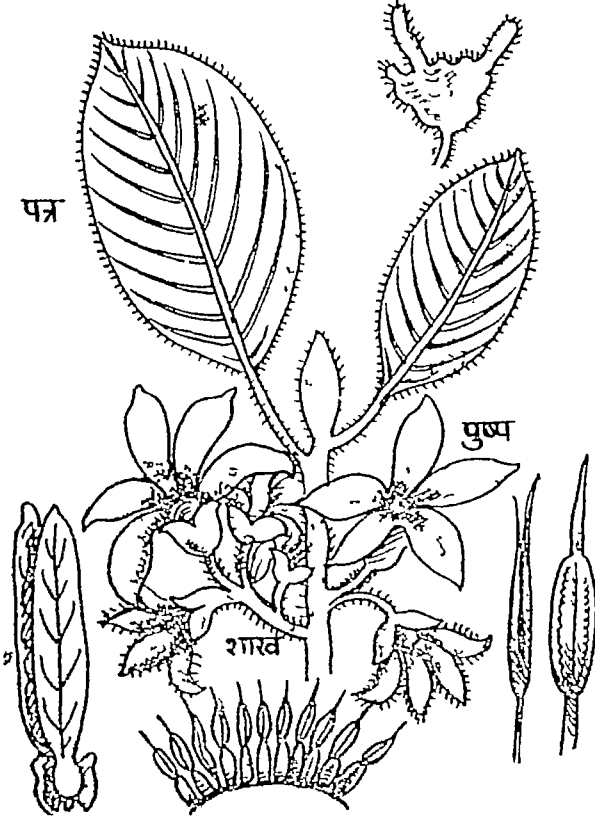
tus] है। दोनो जातियो के वृक्ष प्राय एक समान ऊचे, सुन्दर एव तैलयुक्त निर्यासमय होते है। इनके पिण्ड का व्यास लगभग १५ फीट होता है। छाल धूसर वर्ण की, लकडी नरम भीतर से लाल धूसर, निर्यास श्वेतवर्ण का या भूरापन लिये हुए पीला होता है। पत्र चर्म सदृश, रोमश, अण्डाकार, ३-५ इ च लम्बे, १२-१५ जोडी सिराओ से युक्त, पुष्प शीतकाल मे बडे आकार के रक्ताभ श्वेतवर्ण के आते है। फल कुछ बडे, गोल एव कवचदार वसत ऋतु मे लगते हैं।

इसके वृक्ष पूर्वी बगाल, चिटगाव, आसाम, वर्मा, सिंगापुर, मलाया और अण्डमान मे बहुत होते है। औषधि कर्म मे इसका तैल ही लिया जाता है।

नाम—

सं०—यज्ञद्रुम, गर्जन, अश्वकर्णा।
हिं०—गरजन। बं०—गर्जन (तेलिया, काली)
अं०—गरजन आयल ट्री (Gurjun oil tree)
वुड आयल ट्री (Wood oil tree)
ले०—डिप्टेरोकार्पस एलेटस, डिप. इनकेनस (Dip Incanus), डि लीह्विस (D Laevis)

रासायनिक सङ्घठन—

काष्ठ मे हलके भूरे रग का मधु जैसा गाढा राल-युक्त तैल होता है। इसे गर्जन तैल [Gurjan balsam, Wood oil] कहते हैं।

नोट—इसके वृक्ष के तने में खांचा मारने से इसका तैली निर्यास झरने लगता है। अथवा पेड़ के तने में नीचे की ओर छिद्रकर उसके नीचे आंच लगाते हैं। आंच की गरमी से उक्त प्रकार का गाढ़ा तैल छिद्र से टपकने लगता है। उसका संग्रह कर फिर बाष्पीकरण द्वारा स्वच्छ उड़नशील तैल प्राप्त किया जाता है। तने से निकले हुए गाढ़े तैल के बडे बडे डिब्बे जहाजों द्वारा अण्डमान, मौलमीन से कलकत्ते आते हैं। यह तैल बाजार में प्रायः तीन रंगों का पाया जाता है। फीका श्वेत या कुछ पीलासा रक्ताभ

गर्जन धूलिया (तेलिया)

DIPTEROCARPUS TURBINATUS GEARTN
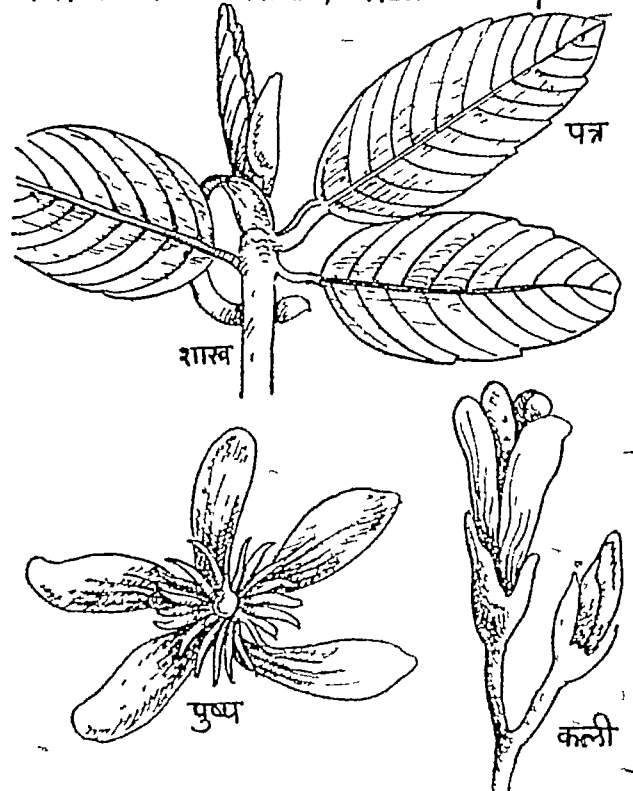
धूसर या रक्त और काला।[1]

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, विपाक मे कटु, उष्ण-वीर्य, उत्तेजक, मूत्रल, कफवात एव वेदनाशामक है।

मूत्रवह सस्थान पर इसकी विशिष्ट क्रिया कोपेवा बालसम [Copaiba balsam] जैसी ही है [किन्तु कोपेवा के समान विस्फोटककारक दुर्गुण इसमे नही है]। यह श्लेष्मलकला को उत्तेजित करता, मूत्र का प्रमाण बढाता, दूषित कीटाणु का नाश करता है, कुष्ठघ्न है।

१ कुष्ठ आदि चर्म रोगो पर—जिस कुष्ठ मे शरीर सुन्न पड जाता है, हाथ पैरो मे जख्म होकर चमडा मोटा तथा शरीर पर गठानें सी पड जाती है। प्रथम रोगी को साबुन, मिट्टी और पानी से अच्छी तरह साफ कर १ भाग इसके तैल मे ३ भाग चूने का निथरा पानी मिलाकर प्रात साय २-२ घटे तक खूब मालिश करते हैं तथा जख्मो पर भी इसे रुई के फाये में तरकर बाधते हैं तथा साथ ही साथ इस तैल को ४ भाग चूने के निथरे हुये पानी मे अच्छी तरह मिलाकर ४-४ ड्राम [१ ड्राम लगभग ४ माशे] प्रात साय पिलाते हैं। यह प्रयोग धैर्य पूर्वक कुछ दिनो तक करते रहने से लाभ होता है। यदि इस मिश्रण मे ५-१० बूद चालमोगरा तैल मिलाकर दिया जाय तो और उत्तम लाभ होता है।

त्वचा के प्राय सब रोगो मे इस तैल की मालिश से लाभ होता है। किन्तु विशेषत त्वचा के जिन लाल चट्टो पर श्वेत पर्त से जम जाते है उन पर यह अत्युत्तम लाभ पहुँचाता है। अन्य प्रदाहयुक्त चर्मविकारो पर भी इसका बाह्य उपयोग किया जाता है।[2]

२ नये और पुराने पूयमेह [सुजाक] एव मूत्रकृच्छ्र पर—इसके तैल की मात्रा १० से १५ बूद तक ५ या १० तोले दूध अथवा चावल के माड के साथ मिलाकर दिन मे २-३ बार पिलाते हैं।

३ दद्रु पर—इस तैल मे थोडा गन्धक और रस कपूर मिलाकर दाद पर मर्दन करते हैं।

नोट—इसके पत्ते तथा छाल का क्वाथ फोडे, फुन्सी, उदरविकार एव उदर शैथिल्य पर पिलाते हैं। इसके पत्तों को सिरके में जोश देकर कुल्ले कराने से दत पीडा दूर होती है। इसके फल कास, यकृत विकार तथा मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी है।

---

[1] बाजार में मुख्यत जिस गरजन वृक्ष (D. Alatus) का वर्णन यहां किया जाता है, उसीका तैल मिलता है।

[2] पहले तो इस तैल का कुष्ठादि चर्मविकारों पर एलोपैथी में बहुत उपयोग किया जाता था। अब कुछ वर्षों से पूर्ण लाभ के न होने से इसका उपयोग बन्द कर दिया गया है।

गाजर [Daucus Carota]

नैसर्गिक क्रमानुसार शतपुष्पा कुल (Umbelliferae) की इस शाक विशेष का काण्ड २-४ फुट तक ऊचा, पत्र—सोया के पत्र जैसे किन्तु घने चौडे व मोटे २-३ इच लम्बे रोमश, पुष्प—गुच्छेदार छत्तो मे श्वेत-वर्ण के, बीजकोष ३-४ फुट लम्बी डडियो के अन्त मे सौंफ जैसे छत्राकार बीज कोष लगते है।

मूल—लाल (नारगी) काला, पीला और भूरे रग का गोपुच्छाकार होता है, इसे ही व्यवहार मे गाजर कहते हैं। गाजर को खोदने पर उसमे जो डोरे जैसे लगे रहते है वे उसकी जडें हैं। येही जडें परिपुष्ट होकर फिर गाजर का रूप धारण कर लेती है। इन गाजरो मे लाल तथा काली रग की गाजर गुणधर्म की दृष्टि से श्रेष्ठ होती हैं।

साग सब्जी के लिये इसकी खेती प्राय समस्त भारत वर्ष मे की जाती है।

नाम—

सं०—गर्जर, गृंजन, गाजर, नारगवर्णक।
हि म गु बं—गाजर। अं.केरट (Carrot)।
ले—डाकस केरोटा, डा व्हलगेरिस (D Vulgaris)

रासायनिक सङ्गठन—

इसमे साधारणत प्र श पानी ८६ ००, खनिजपदार्थ १ १६, प्रोटीन ० ६, वसा ० १, कार्वोहाइड्रेट १० ७, केलशियम ० ०८, फासफोरस ०.०३, लोहा प्रतिशत ग्राम १ ६ मिलिग्राम, व्हिटामिन ए प्र श ग्राम २०२०

गाजर
DAUCUS CAROTA LINN.
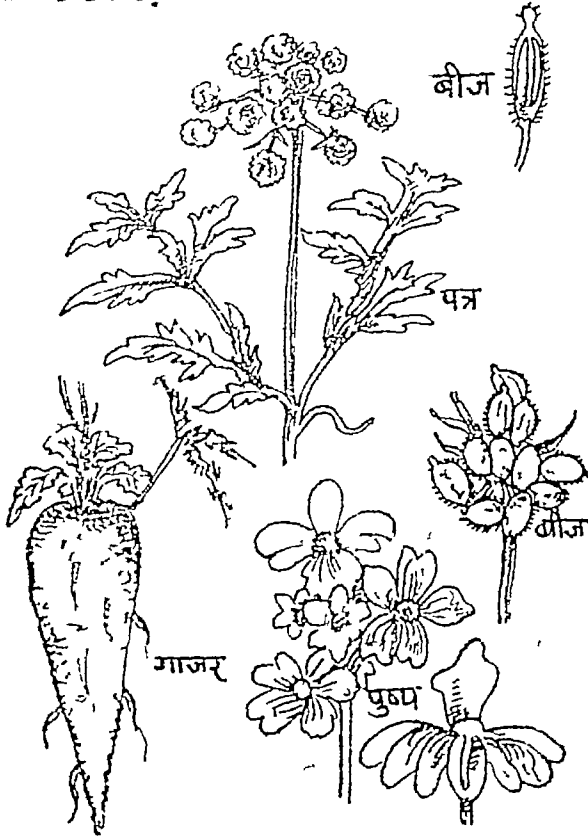
से ४३०० इ यू, विटामिन बी प्र श ग्राम ६० इ यू, विटामिन सी प्र श ग्राम ३ मिलिग्राम।

मूल मे—कैरोटीन (Caroun), हाइड्रो केरोटिन, शर्करा, स्टार्च, पेक्टीन, मेवाम्ल (Malic Acid), लिगनिन (Lignin), अलव्युमिन, लवण, एक उडनशील तैल, एक टरपीन (Terpene) तथा सिनिओल (Cineol, जैसा एक पदार्थ एव लोह भी पर्याप्त प्रमाण मे पाया जाता है। इसके बीज मे एक पीला उग्र गन्धि वाला तैल होता है।

प्रयोज्य अ ग—मूल, बीज और पत्र

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक मे मधुर तिक्त उष्णवीर्य, दीपन, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही, मूत्रल, हृद्य, रक्तरोधक, कफ निस्सारक, त्रिदोष (विशेषत वात कफ) शामक, वाजीकरण, बृहण, शोथ प्रशमन, मस्तिष्क व नाडियो के लिये बल्य है।

यह अग्निमाद्य, आनाह, ग्रहणी, अर्श, उदर रोग, रक्तपित्त, रक्तविकार, शोथ, कास, शुक्रदौर्बल्य, ध्वजभंग, अश्मरी, मूत्रदाह, मूत्रकृच्छ्र, कृशता आदि नाशक है।

मूल—

उक्त गुणधर्म प्राय मूल (गाजर) के है। शुक्रदौर्बल्य पर इसका हलुवा, पाक, खीर आदि सेवन करते हैं। इसका शहद मे तैयार किया हुआ मुरब्बा अत्यन्त कामोत्तेजक होता है। प्लीहा वृद्धि पर इसका अचार खिलाते हैं। पाडु या पीलिया पर इसका क्वाथ सेवन कराते हैं। पिंडलियो की ऐंठन पर इसे भूनकर शक्कर के साथ खाते हैं। स्त्री के स्तन्य वृद्धि [दुग्ध वृद्धि] के लिए काली गाजर का हलुवा खिला ऊपर से गोदुग्ध पिलाते हैं।

नकसीर पर—ताजी गाजर का कल्क सिर व माथे पर लेप करते हैं। कच्ची गाजर के टुकडे कर उसमें नमक, पोदीना, अदरख तथा नीबू रस मिला खाने से अरुचि एव दूषित वात का निवारण होकर पाचन शक्ति की वृद्धि होती है। गाय,भैंस आदि जानवरो को इसे चरी मे मिला कर खिलाने से वे पुष्ट होते तथा उनके दुग्ध की वृद्धि होती है।

अग्निदग्ध पर—इसे पीस कर लगाने से दाह की शाति होती है। पित्त शोथ (शोथ जिस पर फुसिया उठ आती हैं) पर इसकी पुल्टिस मे नमक मिला बाधें।

दूषित व्रणो पर—इसे उबाल कर पुल्टिस बना बांधते हैं। कच्ची गाजर खाने से आत्र कृमि नष्ट होते है। आगे कृमि पर यत्र पाक रस देखिये।

(१) हृद् दौर्बल्य एव विशेष धडकन पर—इसे भूभल मे भूनकर छीलकर रात भर बाहर खुली हवा या ओस मे रख प्रातः उसमे मिश्री तथा केवडा या गुलाब का अर्क मिला सेवन करते है। अथवा कच्ची गाजर का रस १० तोला तक दिन मे २-३ बार पीयें।

(२) क्षय पर—इसके स्वरस आध सेर मे समभाग बकरी का दूध मिला मदाग्नि पर पकावें। दुग्धावशेष रहने पर ठडा कर दिन मे २-३ बार सेवन कराते हैं।

(३) गर्भस्राव पर—जिस स्त्री को गर्भस्राव का विकार हो उसे उक्त प्र० न० २ का दूध सेवन प्रथम

मास से ही प्रारम्भ कर गर्भ के ८ वे मास तक प्रतिदिन दो बार कराते रहने से गर्भ पुष्ट होकर पूर्ण स्वस्थ बालक पैदा होता है, तथा उसे रक्तविकार नही होता एवं उसका हृदय पुष्ट रहता है।

(४) रक्तार्श, रक्तातिसार तथा रक्तप्रदर पर—इसका स्वरस तथा बकरी के दूध का दही १-१ पाव दोनो को मिला मथन कर प्रात पिलाते है। यदि रक्तस्राव जोर का हो, तो दिन मे दो बार पिलावे। इससे रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता है।

रक्तातिसार मे—इसके स्वरस १० तोला मे समभाग बकरी का दूध मिला पिलावें। इस प्रकार दिन मे दो बार देने से लाभ होता है।

रक्तप्रदर मे—केवल इसके स्वरस को ही १०-१० तोले की मात्रा मे दिन मे कई बार पिलावें।

(५) उकवत (इसब), दद्रु आदि चर्मरोगो पर—गाजर को कद्दूकस मे कस कर उसमे थोडा नमक मिला तथा आग पर थोडा सेक कर पुल्टिस जैसा बाधने से उकवत शीघ्र नष्ट होता है।

दद्रु, उकवत आदि कष्टप्रद चर्मरोगो पर उक्त प्रयोग के साथ ही रोगी को कुछ दिनों तक केवल गाजर का अथवा इसके साथ दुग्ध का सेवन कराते हैं, अन्य कुछ भी आहार नही देते। शीघ्र ही लाभ होता है।

(६) बच्चो के दन्तोद्भव की सुविधा के लिये उन्हें नित्य नियमित रूप से कच्ची गाजरों का रस पिलाते हैं। इससे उन्हे दूध भी ठीक ठीक हजम होने लगता है।

(७) हिक्का पर—इसकी जड को स्त्री के दूध मे पीस कर तथा वस्त्र मे निचोड कर नस्य देते हैं।

(८) वातपित्त के प्रकोप से यदि रोगी के हृदय की गति तीव्र हो, चक्कर आते हो, सिर भारी हो, आख, छाती तथा हाथ पैरो मे जलन हो, निद्रा न आती हो तो इसके ५ तोले स्वरस मे गोदन्ती भस्म ४ से ८ रत्ती तक मिलाकर दिन मे २-३ बार सेवन करावें। तथा पथ्य मे सादा हलका भोजन और प्रात खुली हवा का सेवन करावें।

नोट—(१) गाजर कच्ची ही सेवन करना हितकारी है। उबालने या पकाने से उसके बहुत से रासायनिक तत्वों का नाश हो जाता है।

(२) गाजर का रस—कच्ची गाजर को पीसकर कपडे मे निचोड लें। इस स्वरस में ए बी सी तथा चूना, लौह, फासफोरस आदि महत्त्वपूर्ण तत्व ज्यो के त्यों रहते हैं। यह रस बच्चे, बूढे, गर्भिणी, दुर्बल एवं जीर्ण रोगियों के लिए अत्यधिक उपयोगी है। इसे दिन में कई बार सेवन किया जा सकता है। किन्तु ज्वर, अतिसार आदि की अवस्था में इसका सेवन ठीक नहीं।

बीज—

आर्त्तवजनन, गर्भाशय सकोचक, कष्टप्रसव निवारक, गर्भपातकर, शोथहर, मूत्रल, अधिक वाजीकरण, व्रणरोपक, अश्मरीभेदन हैं।

प्रसव कष्ट पर—इसका क्वाथ पिलाते हैं तथा इनकी धूनी भी दी जाती है। शोथ पर इसका लेप करते हैं। व्रणो पर इसके चूर्ण को बुरकाते हैं।

(९) कष्टार्त्तव पर—बीज १ तोले तथा पुराना गुड २॥ तोले दोनो का क्वाथ कर ७ दिन प्रात साय पीने से रज शुद्धि एव गर्भाशय की भी शुद्धि होती है।

(१०) अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र पर—गाजर मे छिद्र कर उसमे इसके बीज, शलगम बीज और मूली बीज भर कर भूभल में पकाकर खिलाते है। अथवा इसके बीज और शलगम के बीज समभाग मूली के भीतर गड्ढा कर भर दें तथा मुख मुद्रा कर भूभल मे पकाकर सेवन करें। बस्ति एव वृक्कगत अश्मरी निकल जाती है तथा मूत्रकृच्छ्र भी दूर होता है।

पत्र—

इसके हरे पत्ते कच्चे ही चबाकर खाने से मैथुन शक्ति की वृद्धि होती है। पत्तो का शाक भी उत्तम होता है।

(११) आधाशीशी पर—पत्तो पर घृत चुपड कर आग पर थोडा गरम कर रस निचोड कर २-३ बून्दें नाक मे टपकावें [नस्य देवें] तथा कुछ बून्दें कान मे भी टपकावें। छीकें आकर लाभ होता है।

(१२) रक्तग्रन्थि या शरीर के किसी स्थान पर रक्त का जमाव हो गया हो तो पत्तो को औटाकर उस स्थान पर सिचन एव बफारा देने से लाभ होता है।

विशिष्ट योग—

१ गर्जरासव—बलवर्धक—गाजर ५ सेर अन्दर के

मध्य भाग का काष्ठमय भाग दूर कर चाकू से महीन टुकडे कर या कद्दूकस से कस कर मिट्टी के पात्र में २८ सेर जल मिला पकावें। ७ सेर जल शेष रहने पर अच्छी तरह मलमल छानकर सन्धान पात्र मे भर उसमे शहद ४ सेर, लौंग, वालछड, दालचीनी, कुलिजन और केशर का चूर्ण १-१ तोले तथा धाय के फूलो का चूर्ण आध सेर तक मिला मुख सन्धान कर १५ दिन सुरक्षित रखें। फिर छानकर बोतल मे भर लें। मात्रा–१ से ३ तोले। अनुपान जल। यह बलवीर्य, एव कान्तिवर्धक तथा प्रमेह सुजाक तथा क्षय रोग नाशक है।

२ प्लीहानाशक आसवार्क—इसका रस १६ सेर तथा नीवू रस ८ सेर दोनो को सन्धान पात्र में डालकर मुख मुद्रा कर ४० दिन बाद भवके द्वारा अर्क खीच लें।

मात्रा—१-१ तोले प्रात साय दातो के बिना लगाये कण्ठ से उतार लें, ऊपर से थोडे भुने हुये चने चबा लें। हल्का पथ्य सेवन करें।

और भी आसवार्क के प्रयोग वृ० आसवारिष्ट संग्रह मे देखिये।

३ गाजर पाक–बलवीर्यवर्धक एव रक्तशुद्धिकारक–अच्छी ताजी गाजर २॥ सेर कद्दूकस मे कस कर सम-भाग घृत मे तल लेवें। चौगुने दूध का खोया बना समभाग खाड की चाशनी मे भुनी हुई गाजर और खोया मिला दे तथा श्वेत मूसली, श्वेत जीरा, छोटी इलायची, मोठ, मिर्च, पीपल, दोनो बहमन प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोले मिला दें। फिर सबको परात मे निकाल कर ठडा होने पर बरफी कतर ले।

४ से ८ तोले तक यथाबल सेवन करे। वृष्य है, पुष्टिप्रद है, रक्त को शुद्धि कर बढाता एव वीर्य को गाढ़ा करता है।

गाजरपाक – और भी उत्तमोत्तम प्रयोगो को वृ पाक सग्रह मे देखिये।

४ गाजर का मोहन भोग—गाजरो को छीलकर मध्य भाग निकाल कर फेक दे। शेष मोटा गूदा महीन टुकडे कर छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर लें। यह चूर्ण १ सेर हो तो उसमे १ सेर चूर्ण सिंघाडा और आध सेर चूर्ण दालचीनी मिलाकर सुरक्षित रक्खे। प्रतिदिन प्रात साय २॥ तोले चूर्ण को २॥ तोले घृत मे भूनकर ५ तोले मिश्री की चाशनी मिला हलवा जैसे बना सेवन करें। उत्तम बलवीर्यवर्धक है। —धन्वन्तरि से

५ यन्त्रपाक रस (कृमि पर) – ताजी गाजर का रस २० सेर, पलाश बीज १ सेर [जौकुट चूर्ण] दोनो को चीनी मिट्टी के पात्र मे भर कर मुख मुद्रा कर अन्न या भूसे के ढेर मे ४ दिन दाब रक्खे। फिर निकाल यन्त्र द्वारा १० बोतल अर्क खीच लें।

मात्रा–४ तोले तक सेवन से उदरकृमि नष्ट होते हैं।

६ खीर गाजर—आध पाव गाजर को साफ कर सिल पर महीन पीस आध सेर दूध मे डालकर मंद मद आच पर पकावें। एक उबाल आने पर उसमे थाडी मिश्री या शक्कर मिला नीचे उतार लें, सेवन करें। यदि उदराग्नि तीव्र हो तो इसमे पिसी हुई बादाम, केशर, मक्खन या शुद्ध घृत मिला लें। इसके सेवन से मस्तिष्क शक्ति की वृद्धि व नेत्र ज्योति की वृद्धि होती है। पाचनशक्ति भी बढती है।

गाजर का हलुवा तो प्राय सब कोई बना लेते हैं। अत. यहा नही लिखा गया।

७ शर्बत गाजर—१ सेर गाजर छीलकर कुचल कर रस निकाल लें। इसे मन्द आंच पर पकावें, आधा शेष रहने पर उसमे १ सेर खाड या बूरा मिला शर्बत की चाशनी तैयार होने पर बोतल मे भर रक्खें। आव-श्यकतानुसार १ तोले पीने से रक्त शुद्धि होती एव चित्त प्रसन्न रहता है।

८ अर्क गाजर—गाजर १ सेर, गावजवा पत्र २ तोले, गुल गावजवा १ तोले, श्वेत चन्दन १ तो १०॥ माशा, लाल तोदरी व श्वेत बहमन प्रत्येक १ तो १॥ माशा सबको जौकुट कर २५ सेर पानी मे रात भर भिगोकर प्रात. भवका यन्त्र द्वारा १२॥ सेर तक अर्क खीच लें। मात्रा–१० तोले तक अनुपान के रूप में या वैसे भी सेवन करने से दिल की धडकन, बेचैनी दूर होती है। यह बल्य, सन्तापहर और चित्त प्रसन्नकर है।

गावजवाँ[1] नं. १ [Onosma Bracteatum]

श्लेष्मातक (लसोडा) कुल (Boraginaceae) के इस बूटी के छोटे छोटे क्षुप लगभग १ से ३ फुट तक ऊंचे होते है। पत्र—मोटे, मासल, हरे पीले रग के गाय की जीभ जैसे खुरदरे तथा साबूदाने जैसे नन्हे नन्हे श्वेत चिन्ह युक्त होते है। पत्तो को पानी मे भिगोने से लुआब निकलता है, स्वाद मे कुछ खारा सा होता है। यूनानी मे पत्तो को वर्गगावजवा कहते है।

पुष्प—नीलवर्ण के गुच्छे मे आते हैं। पुराने होने पर पुष्प रक्ताभ हो जाते हैं। यूनानी मे पुष्पो को गुल गावजवां कहते हैं।

बीज—श्वेत वर्ण के कुसुम के बीज जैसे किन्तु छोटे होते हैं। स्वाद मे फीके चिकनाहट लिये हुये होते है।

यह हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से कुमायू तक १०-११ हजार फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। ईरान व अफगानिस्थान मे अधिक होता है।

नोट—एक गावजवा मीठा नाम का उक्त गावजवां जैसा ही होता है। इसके पत्ते जमीन पर बिछे हुये रहते हैं। पत्तों के बीच में से एक शाखा लगभग १ गज लम्बी निकलती है, जिसके सिरे पर सुरमाई रंग के फूल आते हैं। उक्त गावजवा से इसका पत्ता चौड़ा, पतला और गोल होता है। सूखने पर इसके पत्तो मे सल पड़ जाती है। प्राचीन काल मे गावजवा के स्थान पर इसीका उपयोग किया जाता था। यह बूटी दिल की धड़कन तथा मेदे की गरमी को दूर करती है। शेष सब गुणधर्म उक्त गावजवा जैसे ही हैं। —व चं

नाम—

सं०—गोजिह्वा, वृषजिह्वा, खरपत्रा दर्वीपत्रा।

गावजबान
CACCINIA GLAUCA G SAVI

हिं०, व०—गावजवा, गाजवा।
ले०—ओनेस्मा ब्रैक्टिएटम,
केक्सीनिया ग्लाका (Caccinia Glauca)

रासायनिक संघठन—

इसके पत्तो मे पिच्छिल द्रव्य प्रचुर मात्रा मे तथा सोडियम ९½ प्र श, कैलशियम २७ प्र. श, पोटाशियम १३¼ प्र श, लोह १ प्र. श के प्रमाण मे होता है और कुछ मैगनीशियम के लवण होते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक मे मधुर एवं

[1] आयुर्वेदोक्त 'गोजिह्वा' बूटी जो वर्षाकाल में ताल तल्लियों के किनारे या वृक्षों की छाया में अधिक पायी जाती है, उसके और इस प्रस्तुत प्रसग के गावजवा के आकार प्रकार में कोई विशेष भेद नहीं है। दोनों के गुणधर्म मे भी प्राय. समानता है, इसे गोजिया, गोज़िह्वा (बनगोभी) लेटिन में एलेफेंटोपस स्काबर (Elephantopus Scaber) कहते हैं। यह भृंगराज कुल (Compositae) की है। इसका विवरण आगे गावजवा नं. २ क प्रकरण मे सचित्र देखिये।

गातवीर्य है। वातपित्तशामक, कफनिसारक (कफ ढीला कर बाहर निकालना तथा कफोत्पत्ति को बन्द करता है। अत प्रतिश्याय, कास, श्वास एव अन्य कफ के रोगो पर इसका उपयोग विशेष लाभकारी है) अनुलोमन, मृदुरेचन (पित्तज मलदुष्टि तथा दुग्धपानजन्य उदर व्याधि मे उत्तम गुणकारी है), रक्तशोधक (रक्तशोधन मे यह सार्सापरेला के स्थान मे अधिक उपयुक्त है), मूत्रल, उन्माद, हृद्दौर्बल्य, उपदश, आमवात, उरोविदाह, मूत्रकृच्छ्र, पार्श्वशूल तथा ज्वरादि मे इसका उपयोग किया जाता है।

(१) प्रतिश्याय, कास आदि कफ के विकारो पर—मुलैठी, वनफसा आदि के साथ मिलाकर इसका फाट दिया जाता है। यदि सिर मे दर्द हो, कफ सूख गया हो तो गावजवा ३ माशा, ५ तोले गेहू का चोकर तथा ५ नग लौंग तीनो को पीसकर थोडा पानी डाल आग पर पकाकर शीतल होने पर पिलाने से कफ पिघल कर नाक से टप टप चुवेगा और शान्ति प्राप्त होगी।

—श्री रमेशचन्द्र मिश्र 'श्याम' हरदोई।

(२) ज्वर मे—विशेषत विषम ज्वर मे पत्रो का का क्वाथ देते हैं, इससे ज्वर कम होता है, वेचैनी, दाह, एव प्यास दूर होती है।

(३) उपदश तथा सुजाकजन्य सधिशोथ मे—इसके साथ चोपचीनी मिलाकर क्वाथ या फाट देते हैं।

(४) हृदय की धडकन पर भी इसका फाट देते हैं। इससे मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभ होता है।

(५) वालको के मुखपाक मे दाह शमनार्थ तथा व्रण रोग मे व्रण को सुखाने के लिये इसके पत्ते एव पुष्पो की भस्म बनाकर बुरकते हैं।

पुष्प—

फीका, लुआबदार होता है। इसका उपयोग पाण्डु, हृदय की धडकन, तृषा, मस्तिष्क एव यकृत् के विकारो पर किया जाता है। यूनानी चिकित्सक इसका अत्यधिक उपयोग करते है।

नोट—मात्रा-पत्र ४-७ माशे तक, पुष्प ३-५ माशे, अत्यधिक मात्रा में यह प्लीहा के लिये अहितकर है। हानिनिवारणार्थ श्वेत चन्दन और गुलकन्द देते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) अर्क गावजवा—गावजवा (पत्र) २॥ सेर रात मे पानी मे भिगोकर प्रात यथाविधि अर्क परिश्रुत करें। फिर २॥ सेर गावजवा उक्त अर्क मे भिगोकर अगले दिन पुन अर्क परिश्रुत करें। मात्रा—३ तोले।

यह हृदयोल्लासकारी एव हृदय वलदायक होने से मूर्च्छा के योगो के अनुपान रूप मे व्यवहार होता है।

—यू सि संग्रह

(२) खमीरा गावजवा—गावजवा (पत्र) ३॥ तो, पुष्प गावजवा, धनिया सूखा, श्वेत बहमन, रक्तबहमन, श्वेत चन्दन, अवरेशम (कैंची से कतरा हुआ), वीज रामतुलसी, बीज वालगु और विल्ली लोटन (वादरजबूया) प्रत्येक १-१ तोले इन्हे रात्रि को २ सेर जल मे भिगो प्रात क्वाथ करें। तृतीयाश जल शेष रहने पर मल छानकर १ सेर चीनी तथा १ पाव शुद्ध मधु मिलाकर चाटने योग्य चाशनी करे। मात्रा १ तोले मे चादी का वर्क लपेट कर १२ तोले अर्क गावजवा या ताजे जल से सेवन करे। यह दिल व दिमाग को पुष्ट बनाता, दृष्टि को लाभ पहुँचाता, प्यास बुझाता और विक्षेप (वहशत) को दूर करता है।

—यू सि सग्रह

शर्वत गावजवा आदि के प्रयोग यूनानी ग्रन्थो मे देखिये। एक योग शर्वत का इस प्रकार है—

गावजवा ५० ग्राम, नीलोफर ४० ग्राम, उस्तखद्दूस व गुलाव पुष्प, धनिया, कासनी, श्वेत चन्दन, इलायची २०-२० ग्राम का क्वाथ बना उसमे मिश्री १ किलो मिला पकावें, चाशनी कर ले। इसके प्रात साय सेवन से रक्तशुद्धि, कान्ति की वृद्धि एवं दिल की धडकन व मूत्राशय के रोगो मे लाभ होता है।

—वैद्य मोहरसिंह आर्य हितैषी, महेन्द्रगढ पू प

गावजवां नं.२ (गाजिया) [*ELEPHANTOPUS SCABER*]

गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार भृगराज कुल (Compositae) की इस वूटी के क्षुप भारतवर्ष मे

प्राय सर्वत्र विशेषत उष्ण प्रदेशो के खेतो एव वन प्रान्तो की आर्द्र भूमि या छायादार वृक्षो के नीचे की भूमि मे अधिक पाये जाते हैं।

इसके क्षुप ८ से १८ इंच तक ऊंचे काण्ड पतला, द्विविभक्त एवं रोमश, पत्ते मूल मे ही पत्र गुच्छ के रूप मे ४-७ इंच लम्बे एव १॥-२ इंच चौडे निकल कर जमीन पर फैले हुये होते हैं। शेष ऊपर के काण्ड के पत्र १-३ इंच लम्बे, रोमश, वृन्तरहित एव दूर-दूर होते हैं। पत्रो का आकार गौ की जीभ जैसा होने से इसे गोजिह्वा कहते हैं। वर्षा मे उगते समय नये पत्ते चिकने होते है, किन्तु शीतकाल मे ये पुष्ट होने पर खुरदरे, कुछ पीले वर्ण के एव चित्तीदार हो जाते हैं। पत्र के मध्य भाग मे श्वेत गहरी लकीर सी होती है। क्षुप के मूल भाग मे १ से ३ तक डठल से निकलते हैं। जिनमें पुष्प व्यूह मुण्डक के रूप में या घण्टाकृति के एवं कुछ पीले वर्ण के होते है। प्रत्येक मुण्डक मे पुष्प सख्या प्राय २-५ तक होती है।

नोट—(१) इसके पुष्प व्यूह का उक्त मुण्डक गुच्छ मयूरशिखा के सदृश दिखलाई देने से कई लोग इसे मयूर शिखा बूटी का ही एक भेद मानते है, और कुछ महानुभाव इसे ही शास्त्रीय मयूरशिखा बूटी मानते है। किन्तु हम इसे मयूरशिखा से भिन्न मानते हैं। मयूर शिखा बूटी का वर्णन आगे यथास्थान देखिये।

(२) दूसरी और एक गोजिह्वा बूटी होती है। इसका भी आकार प्रकार अधिकांश में प्रस्तुत प्रसंग की बूटी के सदृश ही होता है। इसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त में देखिये।

(३) एक वनगोभी और होती है जिसके पत्ते मूली के पत्ते जैसे, रग से कुछ श्वेत एवं स्वाद से कडुवे; तथा बीज श्वेत मिर्च जैसे किन्तु कुछ छोटे होते है। इसका गुण-धर्म गरम और रुक्ष, रेचक है। इसके पत्तों का लेप व्रण रोपणार्थ किया जाता है। सूखी एवं गीली खुजली पर पत्तो का रस लगाते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग की बूटी के नाम एवं गुणधर्म

सं —गोजिह्वा, गोजिका, दार्विका, खरपर्णिनी ।
हि —गोजिया, गोभी, तिलली ।
व —दाडिशाक, गोजिया ।
गु —भोपाथरी, गलजीभी ।
म.—गोजीभ, हस्तिपद ।
अं.—(Prickly Leaves Elephant's Foot)
ले.—एलेफन्टापस स्केबर ।

गोजिह्वा (गोजिह्वा)

ELEPHANTOPUS SCABER LINN.
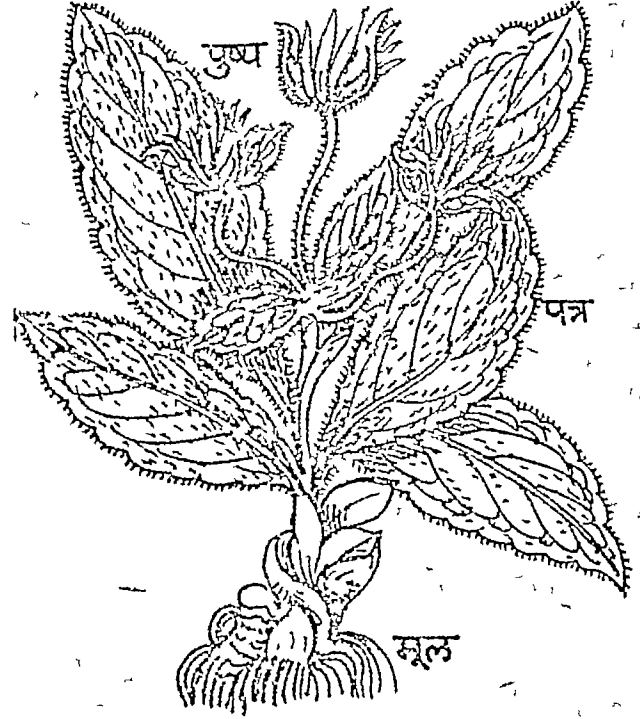
गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कसैली, कड़ुवी, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, स्नेहन, ग्राही, वातकारी, हृद्य, बल्य, मूत्रल तथा कफ पित्त, कास, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र एवं ज्वरादि नाशक है।

(१) मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्र सम्बन्धी अन्य विकारो पर—इसके पंचाङ्ग का क्वाथ श्वेत जीरा चूर्ण और तक्र (छाछ) मिलाकर दिन मे २ वार देते है।

(२) ज्वर तथा उदरशूल पर—पचाङ्ग के चूर्ण को चावल की पेया मे पकाकर देते हैं।

(३) रक्तातिसार तथा बच्चों के अतिसार पर—इसकी मूल का फाण्ट देते हैं।

(४)—व्रण और छाजन पर—इसके चूर्ण को नारियल तैल मे पकाकर लगाते हैं।

(५) दतशूल पर—मूल के चूर्ण को कालीमिर्च चूर्ण के साथ मिलाकर मजन करते हैं।

नोट—चरक के शाकवर्ग में एव विसर्प के लेपों में इसका उल्लेख है। चरक और सुश्रुत दोनों इसे व्रणरोपण मानते हैं। सुश्रुत के उपदश, व्रण, और ग्रंथिविसर्प के

प्रयोगों मे तथा शाक रूप मे इसकी योजना है।

ध्यान रहे शाक के रूप मे प्रयोग मे आने वाली गोभी भिन्न है । जिसका वर्णन आगे गोभी के प्रकरण मे देखिये।

मात्रा—स्वरस ½ से २ तोले तक। क्वाथ या फाण्ट ५-६ तोले तथा चूर्ण १ से ३ माशे तक

उक्त जाति की ही एक वनगोभी होती है । जिसके वर्षायु क्षुप आर्द्र भूमि मे बारहो मास प्राप्त होते हैं । इसकी जड प्राय २-४ इंच लम्बी होती हैं। इसके छाते जमीन पर फैलते तथा टहनिया कभी कभी २-१ फुट ऊ ची भी होती हैं। तने पर लम्बगोल, लम्बे, कगुरीदार एव खुरदरे ३ अ गुल चौडे पत्ते निकलते हैं, पत्तो को तोडने पर दूध निकलता है। इसमे तुर्रे के समान बैंजनी गुण्डी आती है। डोडी (फल) रुयेंदार एव खडी पक्तियो वाली होती है। इसके फल मे गुण अधिक है। बीजो सह डोडी उपयोग मे लेना चाहिये। हजारे के बीज जैसे इसके बीज उक्त डोडी मे ही होते हैं। इसके नाम वे ही हैं जो उक्त गोजिया (गोजिह्वा) के कह गये है।

(६) वन्ध्यत्व निवारणार्थ इसका बहुत उत्तम प्रयोग इस प्रकार है—पचाङ्ग या विशेषत डोडियो को कूट छान कर बोतल मे भर रक्खें। ऋतुमती होने के पश्चात् स्त्री के शुद्ध हो जाने पर चौथे दिन से शौचादि से निवृत्त होकर प्रात लगभग ६ माशे उक्त चूर्ण को ताजे शीतल जल से सेवन करें। इस प्रकार १२ या १५ दिन तक ही लेवे। एव ऋतुमती होने के बाद प्रत्येक मास मे १२-१४ दिन तक इसका सेवन ३ मासा तक करने से रज का शोधन होकर गर्भधारण अवश्य होता है। यदि पुरुष वीर्य मे कोई खराबी न हो। इसके सेवन काल मे अधिक परिश्रम वाला कार्य नही करना चाहिये।

(गावो मे श्री रत्न, तथा स्वास्थ्य मासिक वर्ष २ अङ्क ८ से साभार)

(७) आख आने पर—इसके पत्तो का अ जन करें।

(८) शीत ज्वर पर—इसकी जड के साथ रेंडी की जड समभाग, चावल के धोवन के साथ पीस छान कर पिलावें।

(९) कुत्ते के विष पर—इसके क्वाथ मे घृत मिला कर पिलावे।

चर्म रोग एव रक्त दोष निवारणार्थ—इसके स्वरस मे चीनी मिला ७ दिन पिलावे।

(११) पारे के विष पर—इसकी जड का रस पिलावे तथा शरीर पर मर्दन करे। और इसकी शाक बनाकर खिलावे।

(१२) मूत्र शुद्धि एव नेत्रो की उष्णता पर—इसके रस को पिलावे। (व गुणादर्श)

गिलोय (Tinospora Cordifolia)

अपने गुडूच्यादि वर्ग एव उसी कुल (Menispermaceae) की प्रधान इस बूटी की बहुवर्षायु लता नीम आम्रादि वृक्ष, पहाडो की चट्टानो एव खेतो की मेडो आदि पर कुण्डलाकार चढती है। इसका काण्ड छोटी उ गली से लेकर अ गूठे जैसा मोटा (बहुत पुराना होने पर यह काण्ड या तना बाहु जैसा मोटा) होता है तथा इसमे स्थान स्थान पर सूत्रवत् जडे (गोरिया) निकल कर नीचे की ओर झूलते रहते हैं (चट्टानो या मेडो पर ये जडें जमीन मे घुसकर अन्य लता को पैदा करती हैं)। काड की ऊपर की छाल बहुत पतली धूसरवर्ण की होती है, जिसे सहज ही मे हटा देने पर भीतर का हरित मासल भाग दिखाई देता है।

पत्र—पान के पान जैसे, एकान्तर ५ से १२ सेन्टीमीटर तक लम्बे (२-४ इन्च व्यास के) एव स्निग्ध तथा पत्र वृन्त १-३ इन्च लम्बा होता है।

पुष्प—ग्रीष्मकाल मे छोटे छोटे पीतवर्ण के गुच्छो मे आते है।

फल—गुच्छो मे मटर जैसे, पकने पर लाल होते हैं।

बीज—कुछ टेढे, चिकने होते है।

भारतवर्ष की खास उपज है और सर्वत्र पाई जाती है।

नोट—(१) आयुर्वेदानुसार गिलोय, आंवला और हरीतकी ये तीनों अमृत से उत्पन्न होने के कारण अमृता कहाते हैं। ये वास्तव में आयुर्वेद के अमृत ही हैं। ये अपने शामक गुण से कुपित हुए दोषों को यथास्थित रख

गिलोय

TINOSPORA CORDIFOLIA MIERS.

कर प्रकृति को निरोग रखने में विशेष सहायक हैं अतः आयुर्वेदीय दृष्टि से इन्हें 'अमृत' कहना योग्य ही है।

(२) चरक के वयः स्थापन, दाहप्रशमन, तृष्णा निग्रहण, स्तन्यशोधन आदि गणों में तथा सुश्रुत के गुड्डूच्यादि, पटोलादि, आरग्वधादि, काकोल्यादि, वल्लीपचमूल आदि गणों में इसकी गणना की गई है।

(३) इसकी लता के टुकड़ों को कहीं छायादार स्थान पर रख देने से उनमें नये अंकुर फूट आते हैं। कई दिनों तक नहीं सूखती। अत इसे अमृतवल्लरी यथार्थ नाम दिया गया है। यह वृद्धावस्था एवं निर्बलता को दूर कर जीवनीय शक्ति का संरक्षण करती है, अत इसे रसायनी, वयस्था आदि नाम दिये गये हैं।

(४) इसकी एक जाति 'पद्मगुडूची (गिलोय पद्म), कन्द या पिंड गुडूची' है। इसके काण्ड पर छोटे छोटे गोल, तीक्ष्णाग्रयुक्त (अर्बुदाकार) उत्सेध या कन्द होते हैं।

पत्र—त्रिखण्डयुक्त एवं बड़े ७ से २३ सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। यह बगाल, देहरादून, आसाम, उड़ीसा, कोंकण, मद्रास आदि के घने जंगलों में कहीं कहीं प्राप्त होती है। गुणधर्म में उक्त लता गुडूची तथा यह कन्द गुडूची प्राय दोनों समान हैं तथापि इसमें रसायन, रक्तशोधक, विषघ्न एवं भूतबाधा निवारण गुण की विशेषता है। इसे लेटिन में Tinospora Malabarica या T Tomentosa कहते हैं।

(५) इसकी एक जाति और होती है जिसे लेटिन में T Crispa कहते हैं। इसके कांड सूक्ष्म पिटिकाओं से आच्छादित होते हैं।

पत्ते—अण्डाकार, लम्बगोल ७ से ९ सेन्टीमीटर लम्बे एवं लम्बी नोकदार होते हैं। यह जाति आसाम, सिलहट, वर्मा, सीलोन, मलाया आदि देशों के जंगलों में पाई जाती है।

नाम—

सं०—गुडूची, अमृता, मधुपर्णी, छिन्नरुहा।
हिं०—गिलोय, गुडिच। म०—गुडबेल, गरुडबेल।
बं०—गुलंच, गुरुच। गु०—गलो।
अं०—Heart leaved, Moon Seed
ले०—टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया,
-मेनिस्परमम का. (Merispermum Cordifolia),
काकुलस का. (Cocculus C)

गिलोय पद्म

TINOSPORA TOMENTOSA MIERS.

पत्र
फल
शाख
पुष्प

रासायनिक संघठन--

इसके ताजे काण्ड मे विपुल प्रमाण मे स्टार्च (जिसे सत कहते हैं), एक गिलोइनिन (Giloinin) नामक तिक्त पदार्थ तथा अत्यल्प प्रमाण मे बर्बेरिन (Berberine) नामक रसाजन जैसा पदार्थ पाया जाता है।

इसकी नूतन एव पतली वेल की अपेक्षा पुरानी एवं मोटी वेल मे सत्वाश अधिक पाया जाता है। अत वह अधिक गुणशाली होती है।

प्रयोज्य अग—काण्ड, सत्व, स्वरस, पत्र।

औषधि कार्यार्थ—यथासभव ताजी गिलोय, परिपक्व, धूसर वर्ण की काण्ड वाली लेनी चाहिये। लगभग उगली जैसी मोटी लता का काण्ड लेवे। सग्रहार्थ इसे वर्षा के पूर्व ही लाकर छायाशुष्क कर रखना चाहिये। ध्यान रहे जिस वृक्ष पर की यह लता होती है उस वृक्ष के अधिकाश गुणधर्म इसमे आ जाते हैं। नीम वृक्ष की गिलोय अधिक उत्तम होती है। शुष्क की अपेक्षा आर्द्र अधिक गुणप्रद है।

गुण धर्म और प्रयोग--

गुरु, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, विपाक मे मधुर, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक (वात कफ की अपेक्षा पित्तदोष पर इसका विशेष प्रभाव पडता है), दीपन, पाचन, पित्तसारक, अनुलोमक, हृद्य, वृष्य, मूत्रल, वेदनास्थापक, रक्तशोधक एव वर्धक, रसायन तथा तृषा, दाह, प्रमेह, कास, पाण्डु, कामला, वातरक्त, कुष्ठ, ज्वर, कृमि, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, वमन, आमाशय की अम्लता (आम), अग्निमाद्य, शूल, यकृद्विकार, प्रवाहिका, ग्रहणी विकार आदि नाशक है।

वात, पित्त और कफ के विकारो पर[1] यह क्रमश घृत, शर्करा एव मधु के साथ दी जाती है। आमवात पर सोठ के साथ देते है (इसके क्वाथ मे सोठ चूर्ण मिला)

(१) ज्वरो पर—जीर्ण ज्वर, मन्थर ज्वर (टाइफाइड) आदि ज्वरो मे जहा क्विनाइन आदि का परिणाम विपरीत होता है यह अपने पित्तशामक गुणो से आश्चर्यजनक लाभ पहुचाती है। तेज ज्वर के पश्चात् शरीर मे जो ज्वराश या ज्वर का दूषिताश शेष रह जाता है उसे तथा निर्बलता को यह बहुत शीघ्र दूर कर देती है। इस प्रकार के ज्वरो मे वनफ्शा, तुलसी, गावजवा, खूबकला आदि औषधियो के साथ इसकी योजना की जाती है। अथवा इसके घनसत्व को त्रिफला चूर्ण और मधु के साथ देते है।

मलेरिया जैसे कीटाणुजन्य ज्वरो के कीटाणुओ को यद्यपि यह नष्ट नही कर सकती, तथापि अपने प्रभाव से यह शरीर की अन्य क्रियाओ को विकृत नहीं होने देती तथा शरीर को निर्बल होने से बचाते हुये प्रकृति को सहायता पहुचाते हुये ऐसे ज्वरो को भी धीरे धीरे निशेष कर देती है। अत मलेरिया मे कई चिकित्सक क्विनाइन के साथ इसकी योजना करते हैं।

"नवीन अनुसन्धानो से इसका व्याधि प्रतिकारक गुण व्यापक रूप मे प्रमाणित हुआ है। जीर्ण पूतिकेन्द्र (Chronic septic focus) जनित विकार, जीर्ण विषम ज्वर तथा यकृत् की हीनकार्यता आदि मे कुछ काल तक इसका प्रयोग करते रहने से अवश्य लाभ होता है।"

—श्री गगासहाय जी पाण्डेय

जीर्ण ज्वर पर इसके योग से प्रस्तुत स्वरस, घृत, अरिष्ट, क्वाथ, फाण्ट या सत्व का प्रयोग विशेष लाभकारी है। घृत का उपयोग आजकल बहुत कम हो गया है, किन्तु शुद्ध घृत से प्रस्तुत किया हुआ गुडूच्यादि घृत अधिक लाभदायक होता है।

(अ) पित्तज्वर पर—इसके साथ वनफ्शा, धमासा, पित्तपापडा व वच को मिला क्वाथ बनाकर सेवन कराते है। अथवा इसमे कमल, लोध्र, सारिवा व नीलोफर को मिला शीतकषाय कर शहद और शक्कर मिला दिन मे दो बार देवें।

---

१ घृतेन वात सगुडा विबन्ध,
पित्त सिताढ्या मधुना कफं च।
वातासृगुग्र रुबुतैल मिश्रा,
शुण्ठ्याम वात शमयेद् गुडूची॥
—भा० प्र०

घृत, गुड, मिश्री, शहद, एरण्ड तैल और सौंठ के साथ गिलोय का सेवन करने से यथाक्रम वात, मलावरोध, पित्त, कफ, प्रबल वातरक्त और आमवात का नाश करती है।

अथवा—गिलोय, पित्तपापडा व आमला इनका क्वाथ देवे। (हा सं)

(आ) कफज्वर पर—एक अ गुल की गोटी गिलोय ४ अ गुल तक लेकर, ३ माशा छोटी पीपल, ५ तोले पानी के साथ पीस छानकर मिट्टी या कलई के पात्र मे गरम करें, और १ तोला शहद मिला प्रात साय पिलावे। इससे कासयुक्त कफज्वर दूर होगा।

(इ) वात पित्त ज्वर हो तो—इसके साथ चिरायता, कुटकी, मुनक्का, आवला व कचूर जोकुट कर क्वाथ कर दिन मे २ वार गुड मिला पिलावे। दस्त आते हो तो कुटकी नहीं मिलावे। वातकफ हो तो इसमे चिरायता, कुटकी, नागरमोथा व सोठ मिला क्वाथ वना दिन मे २ बार सेवन करें।

(ई) जीर्ण चातुर्थिक ज्वर पर—इसमे नीम की अन्तर छाल व आवला मिला क्वाथ वनाकर शहद के साथ सेवन करावे।

(उ) मथर ज्वर पर--इसके क्वाथ या फाण्ट मे शहद मिला दिन मे २-३ वार पिलाने से शान्त हो जाता है।

(ऊ) जीर्ण ज्वर पर--इसके क्वाथ मे चतुर्थां श शहद तथा पीपल का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं, अथवा इसके सत्व का सेवन दिन मे २ वार शहद या दूध के साथ कराते हैं। विशिष्ट योगो मे अमृताहिम देखें।

सर्व प्रकार के ज्वरो पर--इसके साथ धनिया, नीम की अन्तरछाल, कमल की नाल और लाल चन्दन लेकर क्वाथ सिद्ध कर दिन मे दो वार सेवन कराते हैं। ज्वर पश्चात् आई हुई अशक्ति के निवारणार्थ गिलोय, चिरायता और सोठ का फाण्ट २॥ तोला की मात्रा मे दिन में २-३ वार सेवन करावे।

अथवा गिलोय और सारिवा का फाण्ट भी अति हितकर है।

(२) वातरक्त और कुष्ठ पर--गिलोय, अडूसा तथा अमलतास के क्वाथ मे रेंडी तैल मिलाकर सेवन करने से शरीर मे उत्पन्न हुआ वातरक्तजन्य सम्पूर्ण विकार पूर्णतया नष्ट होता है। (भा प्र)

अथवा--गिलोय, सोठ और धनिया के क्वाथ का सेवन करें। इससे वातरक्त, आमवात और कुष्ठ भी नष्ट होता है। अथवा--गिलोय के क्वाथ मे शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन करावे। (इसमे रेंडी तैल भी मिलाते हैं।)

अथवा—इसके क्वाथ के साथ ३ या ५ छोटी हर्र का चूर्ण और गुड मिलाकर सेवन करें।

अथवा–गिलोय, कुटकी, मुलैठी और सोठ समभाग मिलित (३ माशे) लेकर पानी के साथ महीन पीस लें। इसे शहद मे मिला गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफयुक्त वातरक्त नष्ट होता है। [भा प्र]

नोट–रोगी को पथ्यपूर्वक दीर्घकाल तक औषध सेवन करना आवश्यक है।

मूत्रकृच्छ्र और सुजाक पर–गिलोय, आमला, सोठ, असगध और गोखरू इनका क्वाथ शूलसहित वातज मूत्रकृच्छ्र का नाशक है। [भै र]

गिलोय ५ तोला पीसकर १ पाव पानी मे छानकर उसमे कलमी शोरा, जवाखार, तथा शीतलचीनी का महीन चूर्ण ६–६ माशे और शक्कर ५ तोला मिला पुन छानकर इसे ४ वार मे ४–४ घन्टे वाद पिलाने से सुजाक के सारे कष्ट दूर होते हैं। ३-४ सप्ताह तक इसका सेवन आवश्यक है। अन्यथा पूर्ण लाभ नही होता।

(४) उन्माद पर–विशेषत पित्तज उन्माद मे यदि रोगी अधिक प्रलाप करे, नेत्र लाल हो, निद्रानाश हो, अति क्रोध हो तो इसके साथ वाह्मी या शखाहुली [शख पुष्पी] मिला फाण्ट बनाकर वडी मात्रा मे शक्कर मिला दिन मे ३ वार पिलाते रहने से १५-२० दिन में पूर्ण लाभ होता है।

(५) यकृत के विकार तथा मदाग्नि पर-ताजीगिलोय १॥ तोला, अजमोद २ माशा, छोटी पीपल २ दाने, नीम की सीकें ७ नग इन सबको कुचल कर रात को पाव भर पानी मे मिट्टी के पात्र मे भिगो दें। प्रात इसे उसी पानी मे पीसछानकर पिलावें। १५ से ३० दिन इसके सेवन से पेट के सब रोग दूर होते हैं। [ब० चद्रोदय]

गिलोय, लौग और दालचीनी का चूर्ण ४-४ माशे एकत्र ५१ तोले पानी में पकावे। आधा शेप रहने पर छानकर २॥ तोले की मात्रा मे दिन मे ३ वार देने से अग्निमाद्य मे बहुत लाभ होता है।

[६] क्षय पर–२ या २॥ तोले गिलोय का शीत-

निर्यास छोटी पीपल के चूर्ण के साथ नित्य प्रात पीने से क्षय रोगी के ज्वर का वेग घटता है, पाचन क्रिया सुधरती, क्षुधा प्रदीप्त होती एव जठर बलवान होता है।

आत्र क्षय पर—उक्त प्रयोग न० ५ का गिलोय, अजमोद पीपल व नीम सीक वाला योग रात मे मृत्पात्र मे भिगो प्रात ठडाई की तरह पीस आध पाव पानी मे छानकर उसमे ईंट का एक टुकडा खूब गरम कर बुझा कर रोज प्रात पिलावे। (व च)

(७) दृष्टिमाद्य तथा अन्य नेत्र रोगो पर—इसके साथ त्रिफला मिला क्वाथ सिद्ध कर प्रात सायं सेवन करते रहने से शीघ्र ही नेत्र दृष्टि सबल होती है। क्वाथ मे पीपल चूर्ण व शहद मिला लेना चाहिये। प्राय सर्व नेत्र रोग दूर होते हैं।

(८) वमन पर—गिलोय के हिम की मात्रा ५ से १० तोले तक मे शहद १। तोले से २॥ तोले तक मिलाकर पीने से त्रिदोषज कष्टसाध्य वमन भी नष्ट होती है।

यदि केवल पित्तज वमन हो तो गिलोय, त्रिफला, नीम छाल और पटोलपत्र के क्वाथ मे अष्टमाश शहद मिलाकर पिलावें। अम्लपित्त तथा अन्य पित्तरोग भी शात होते हैं। —भा० प्र० तथा व० से०

(९) मेद रोग पर—गिलोय और त्रिफला के क्वाथ मे लोह चूर्ण (इसके स्थान मे लोह भस्म १ रत्ती लेना ठीक होगा) मिला कर अथवा शिलाजीत या गूगल (इनकी मात्रा १ मासा तक ही लेना पर्याप्त है) मिला कर सेवन कराने से लाभ होता है। (व० से०)

(१०) श्लीपद मे—इसके कल्क को सरसो तैल के साथ सेवन करे [व, से] पैर के तलवो पर जलन हो तो इसके साथ रेंडी बीज की गिरी दही मे पीस कर लेप करे।

गरमी के फोडे फुसी पर—इसके साथ उसवा [सारिवा] मिला क्वाथ बना सेवन कराते हैं। श्वेत प्रदर पर—इसका क्वाथ या शीत निर्यास [हिम] सेवन करते हैं। दिल की धडकन पर—इसके साथ ब्राह्मी लेकर क्वाथ बना पिलाते हैं, इससे उन्माद मे भी लाभ होता है। स्तन मे दुग्ध वृद्धि के लिये इसके क्वाथ मे दूध मिलाकर सेवन कराते हैं। कर्ण पीड़ा पर—इसे पानी में पीस गरम कर २-४ बूद कान में टपकाने से अन्दर की विकृति दूर होकर लाभ होता है। सग्रहणी मे—गिलोय, अतीस, नागरमोथा व सोठ का क्वाथ लाभदायक है, इससे मंदाग्नि एव आमयुक्त सग्रहणी दूर होती है (वैद्यामृत)। दाह पर देखें विशिष्ट योगो मे गुडूची क्वाथ। इत्यादि कई गुडुच्यादि क्वाथ के प्रयोग शास्त्रो मे देखिये।

चूर्ण गिलोय—

गिलोय को साफकर पत्थर पर अच्छी तरह कुचल कर धूप मे शुष्क कर महीन चूर्ण बना रखें।

श्लीपद मे—इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराते है और इसके चूर्ण मे कुटकी, सोठ, देवदारु तथा वायविडङ्ग का चूर्ण मिला गोमूत्र मे पीस कर लेप करें। (यो. र)

हृदय के शूल पर तथा वातज शूल पर—इस चूर्ण मे कालीमिरच चूर्ण मिला उष्णोदक के साथ सेवन कराते है। राजयक्ष्मा पर—इस चूर्ण मे खरैटी, कघी, आमला और मिरच का चूर्ण मिला शहद के साथ सेवन करें (हा० स०)। वीर्यस्तम्भन के लिये इसका या इसके पचाङ्ग का चूर्ण १ तोला तक शहद के साथ सेवन करें।

(११) स्मरणशक्ति की वृद्धि—इसके चूर्ण के समभाग अपामार्ग, बायविडङ्ग, वच, शङ्खपुष्पी, हर्र, सोठ और सतावर का चूर्ण एकत्र खरलकर घृत मे मिला मात्रा ३ माशा १ तोला घृत मे मिला प्रात साय चाटकर ऊपर से मिश्रीयुक्त दूध पीने से शीघ्र ही स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है।(व० से०) इसे रसायन चूर्ण कहा गया है। दूसरे रसायन चूर्ण व अमृत रस का प्रयोग देखिये आगे विशिष्ट योगो मे।

(१२) हिक्का पर—इसके चूर्ण के साथ सोठ चूर्ण मिला फाण्ट बनाकर उसमे दूध मिलाकर पिलाने तथा उक्त दोनो के महीन चूर्ण का नस्य कराने से आमाशय एव अन्न नलिका की विकृति से उत्पन्न हिक्का बन्द हो जाती हैं। (ग्रा. औ. र)

रस या स्वरस—

गिलोय के स्वरस में कडुवापन हेमन्त और शिशिर

ऋतु मे अधिक प्रमाण में एव अधिक प्रभावशाली होता है। वाग्भट में प्रमेह पर इस रस को शहद के साथ; वगसेन ने हृदय शूल पर इसे काली मिर्च और सुखोष्ण जल के साथ; चक्रदत्त ने श्लीपद पर इसे तैल के साथ; शोढल ने (गदनिग्रह में) कामला पर दूध के साथ, तथा कुष्ठ पर इसे बडी मात्रा में जितना सहन हो सके उतना प्रयुक्त किया है। कुष्ठ रोगी के लिये उक्त रस की मात्रा (२ तोले या बलानुसार कम या अधिक) का पाचन हो जाने पर चावल, मूंग का यूष एव घृत का सेवन करते रहे। इससे गलत्कुष्ठ रोगी भी सुधर जाते हैं। अरुचि पर—इस रस में पीपल चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन से रुचि एव क्षुधा की वृद्धि होती है, कास में भी लाभ होता है। वीर्यस्राव पर—स्वरस १ तोला में समभाग शहद मिला सेवन करें।

(१३) ज्वरो पर—नूतन ज्वर की अपेक्षा जीर्ण ज्वर एव विषम ज्वर में स्वरस का प्रयोग विशेष लाभदायक होता है। स्वरस में पीपल चूर्ण व शहद मिला कर (पीपल चूर्ण १ माशा तथा शहद रस का चतुर्थांश) सेवन से जीर्ण ज्वर, कफ, प्लीहा रोग, खासी एव अरुचि दूर होती है। (ब से)

वात ज्वर पर—स्वरस ६ माशे मे समभाग सतावर स्वरस और थोडा गुड मिला सेवन कराते हैं।

काला ज्वर (यह एक विषम ज्वर का प्रकार है, बगाल की ओर यह अधिक देखने मे आता है, ज्वर वेग १०५ तक रहता तथा नेत्र, मुख, जीभ आदि रक्त वर्ण, दात ओष्ठ काले, नेत्र फटे से, तन्द्रा, मूत्र कम प्रमाण मे पीला लाल एव कुछ गाढ़ा सा होता है) पर—इसका स्वरस शहद मिलाकर दिन मे ३ वार देते हैं। यदि पित्त की विशेषता हो (वमन, दाह आदि लक्षण हो) तो शहद के स्थान पर मिश्री या शर्करा मिलाकर देते हैं।

(१४) प्रमेह, नवीन सुजाक (पूयमेह) एव अन्य मूत्र विकारो पर—स्वरस की अधिक मात्रा दी जाती है, जिससे दस्त भी साफ होता है। ऐसे विकारो पर इसका स्वरस २ तोले तक, पाषाणभेद चूर्ण ५ से ८ रत्ती मिलाकर शहद, या दूध या शर्करा के साथ दिन मे ३ बार देते हैं। साधारण विकार हो तो केवल स्वरस और शहद का प्रयोग करें।

(१५) हलीमक (वातपित्तजन्य पाडु रोग जिसमे रोगी का वर्ण हरित या नील पीत हो जाता है, Chlorosis) पर अमृतलतादि घृत—इसका स्वरस १ सेर तथा इसके काड का कल्क १० तोले, दूध ४ सेर, और भैंस का घृत १ सेर लेकर यथाविधि घृत सिद्ध कर लेवें। मात्रा १ तोले गौ दुग्ध या उष्ण जल के साथ प्रात साय सेवन करने से लाभ होता है। (भा. प्र)

(१६) शीतपित्त पर—अमृतादि लेप—इसके स्वरस मे बावची को पीस कर लेप करने तथा मलने से लाभ होता है। (भा. भै र)

(१७) नेत्र विकारो पर—इसके स्वरस १ तोला मे शहद व सैंधव नमक १-१ माशा मिलाकर खूब खरलकर आखो मे आजने से तिमिर, पिल्ल, अर्म, काच, कण्डू, लिंगनाश एव शुक्ल तथा कृष्ण पटल गत नेत्र रोग नष्ट होते हैं। (यो. र)

पित्तप्रकोप के कारण दृष्टि मन्द हो, नेत्र लाल हो एव तिमिर आदि हो तो इसका स्वरस १ तोला शहद या मिश्री मिलाकर पिलावें।

(१८) वमन पर—यदि पित्त प्रकोप या सूर्य ताप मे घूमने फिरने से वमन हो तो स्वरस मात्रा ६ माशे से १ तोला तक मे मिश्री ४ से ६ माशे मिलाकर पिलाते हैं, इससे बेचैनी दूर होती है, वमन शात होती है।

(१९) प्रदर पर—पित्त प्रधान प्रदर में जब पतला गरम-गरम स्राव होता हो, स्वरस को शहद मिलाकर सेवन कराते हैं। कामला रोग मे भी इसी प्रकार इसे नित्य प्रात पिलाते है।

सत्व—

वर्षाकाल के पूर्व ही सग्रह की हुई अच्छी मोटी गिलोय के ऊपर की पतली छाल को दूर करदें, फिर शेष काण्ड भाग को साफ धोकर छोटे टुकडे बना पत्थर के खरल मे महीन कूटकर मिट्टी के या कलईदार बडे पात्र मे चौगुना जल मिला ३-४ घण्टे तक भिगो रखें।[1]

---

[1] कई मनुष्य इसे १२ से २४ घण्टे तक भिगो रखते हैं। ऐसा करने से गिलोय लसदार हो जाती है तथा

फिर अच्छी तरह मसल छानकर जल को निकाल लें। पुन छन्ने मे रहे हुए चोथे मे थोडा जल मिला लगभग १ घण्टे तक मसल कर जल निकाल लें। इसी प्रकार तीसरी बार भी करें। फिर सब जल को वस्त्र में छान कर पात्र मे रख दें। कुछ देर मे सब सत्व नीचे तलैटी मे वैठ जावेगा। ऊपर का जल धीरे धीरे नियार कर सावधानी से सत्व को निकाल लें। सूखने पर शीशी मे भर रखें। कई लोग इस सत्व को एकदम श्वेत वनाने के लिये बार वार धोकर नि सत्व वना डालते हैं। इसे बार वार धोने से उसके प्रभावशाली गुणधर्म मे न्यूनता आती है। ध्यान रहे प्रथमारम्भ मे ३-५ घण्टे तक भिगोकर मसल छानकर जो जल निकले उसे तथा बाद मे नियारते समय जो जल निकले उस सब जल का उपयोग घनसत्व वनाने के लिये करना चाहिये। जो इस जल को औटाकर घनसत्व नही वनाना चाहते वे इस जल मे फिर उसे गिलोय के चोथे को मसल एव उबाल कर छान लेते हैं तथा उस द्रव को पहले निकाले हुये सत्व मे मिलाकर धूप मे शुष्क कर लेते हैं, जिससे इसमे उष्ण जल मे घुलनशील पदार्थ भी आ जाते है।

यह सत्व मधुर, वल्य, पथ्य, लघु, दीपन, चक्षुष्य, वुद्धिप्रद, रसायन, अशमन, पित्तशामक, ग्राही, शीतवीर्य है तथा अनुपान रूप से या अकेला शहद या दूध आदि के साथ जीर्ण ज्वर, दाह, निर्वलता, प्रमेह, तृषा, अरुचि, पित्तविकार, धातु की उष्णता, अम्लपित्त, अर्श, मधुमेह आदि रोगों मे सेवन कराया जाता है। यह सौम्य होने से वच्चे, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता आदि सवके लिये उपयोगी है। किन्तु ध्यान रहे—वाजारू गिलोय सत्व मे मैदा, चावल का आटा, चाक मिट्टी आदि का मिश्रण होता है। अत जहा तक हो सके इसे विश्वस्त स्थान से लेवें अथवा घर में ही स्वय प्रस्तुत करलें।

(२०) क्षय, निर्वलता एव जीवनशक्ति की वृद्धि के लिये—सत्व ४ रत्ती से २ माशे तक तथा सुवर्ण भस्म ⅓२ रत्ती से ⅙ रत्ती और सितोपलादि चूर्ण २ माशे (यह १ मात्रा है) एकत्र मिला शहद से प्रात साय चाट कर ऊपर से मिश्री मिला दूध पीवें। इस प्रकार कुछ दिन सेवन से क्षय के कीटाणु नष्ट होते, ज्वर में रुकावट, शुक्रवृद्धि होती है। अथवा सत्व और मिश्री ३-३ माशे, शहद १ तोले तथा मक्खन (बकरी के दूध का मक्खन) इन मिश्रण मे अच्छी तरह मिलाने योग्य लेकर सवकी १ गोली सी वना (१ मात्रा है) प्रात सायं खाली पेट सेवन करने से भी क्षय रोग मे वहुत लाभ होता है। आगे विशिष्ट योगों में रसायनमोदक, धात्रीमोदक आदि प्रयोग देखिये।

साधारण निर्वलता या किसी रोग के पश्चात् का दौर्वल्य निवारणार्थ—सत्व १ माशा, प्रवाल पिष्टी २ रत्ती तथा सितोपलादि चूर्ण २ माशा का मिश्रण (१ मात्रा है) दिन मे दो बार शहद मे सेवन करें। इससे जीवनीयशक्ति एव रोग निवारण शक्ति की शरीर में वृद्धि होती है। नियम एव पथ्य तथा सयमपूर्वक लगभग दो मास तक इसका सेवन करना चाहिये। अथवा—

सत्व के साथ छोटी इलायची और वशलोचन के चूर्ण का मिश्रण शहद के साथ सेवन से भी वहुत लाभ होता है। क्षय का निवारण होता है।

(२१) पित्तप्रकोपजन्य विदग्धाजीर्ण (Irritable or Acid dyspepsia) तथा श्वास, कास पर—सत्व के साथ कपर्दक (कौडी) भस्म, कालीमिर्च का चूर्ण मिला घृत से सेवन करने से उक्त अजीर्ण एव श्वास रूप उपद्रव शीघ्र दूर होता है।

पित्त या वातप्रकोपजन्य शुष्क कास पर—सत्व २ रत्ती मे सितोपलादि चूर्ण १॥ माशा मिला शहद या अनार शर्वत के साथ (यह १ मात्रा है) दिन मे ३-४ वार सेवन कराते है।

(२२) ज्वरो पर—पित्त प्रकोपजन्य या पित्तप्रधान प्रकृति वाले को होने वाले विषम ज्वर पर, जवकि क्विनाइन के प्रयोग से रक्तवृद्धि, निद्रानाश आदि उपद्रव हो तो सत्व की मात्रा ४-४ रत्ती वनफशा शर्वत या शहद के साथ दिन मे ३ वार देवे। इस प्रयोग मे मुक्तापिष्टी १ रत्ती तथा प्रवालपिष्टी २ रत्ती मिला लेने से और भी शीघ्र लाभ होता है।

यदि जीर्ण ज्वर हो तो सत्व की मात्रा -घृत और

उससे निकलने वाला सत्व का रंग मैला होता है। किन्तु गुणधर्म की दृष्टि से यह अधिक प्रभावशाली होता है।

शक्कर के साथ अथवा पीपल चूर्ण व मधु के साथ अथवा स्याह जीरा चूर्ण व गुड के साथ देते हैं। अथवा सत्व के साथ समभाग १-१ माशा पीपल और श्वेत जीरा का महीन चूर्ण का मिश्रण कर उसमे १ तोले शहद मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे ३-४ बार सेवन से प्राय सब प्रकार के ज्वरो मे लाभ होता है। अथवा सत्व १॥ माशा को पित्तपापडा के क्वाथ २॥ तोले मे मिला (१ मात्रा है) दिन मे ३ या ४ बार पिलावें। विशिष्ट योगो मे गुडूच्यादि वटी देखें।

(२३) प्रमेह और मधुमेह पर—सत्व के साथ गोखरू, मुलैठी और त्रिफला का समभाग महीन चूर्ण एकत्र मिश्रण कर कुल मिश्रण के समभाग शक्कर मिला प्रात साय ६-६ माशा खाकर ऊपर से गिलोय का शर्वत (गिलोय काण्ड ४ अगुल लेकर ५ तोले जल मे पीस छानकर १ तोले शक्कर मिला) पिलावें। शीघ्र ही पित्त प्रमेह के कष्ट दूर होते है।

मधुमेह पर—सत्व १॥ माशा तथा गौ का ताजा घृत ३ माशा दोनो का मिश्रण [१ मात्रा है] प्रात साय खाली पेट सेवन करें। —नाडकर्णी

(२४) प्रदर पर—सत्व १॥ माशा को अशोक छाल या जामुन वृक्ष की छाल के क्वाथ ५ तोले मे मिला [१ मात्रा है] दिन मे २-३ बार पिलावें तथा जामुन की या गूलर की छाल के क्वाथ से योनिमार्ग का प्रक्षालन करें। —नाडकर्णी

(२५) नपुसकता पर–गुडिचसत्वादि चूर्ण—सत्व, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, इलायची, मिश्री और पीपल समभाग चूर्ण बना रखें। २ से ४ रत्ती की मात्रा में शहद से सेवन करने से विशेष लाभ होता है [यो चि] यह वाजीकरण योग है। अथवा सत्व के साथ अभ्रक भस्म, हरताल भस्म, इलायची, सोठ और पीपल का महीन चूर्ण मिला शहद के साथ सेवन करे।

(२६) वातरक्त पर–गुडूची लोह—सत्व के साथ त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, तेजपात और नागकेशर १-१ भाग लेकर उसमे लोह भस्म १० भाग मिला चूर्ण करके २ रत्ती की मात्रा मे शहद व घृत के साथ सेवन करे। —भै० र०

(२७) सत्व का सेवन–रक्तपित्त पर—रेंडी तैल से, अर्श पर मक्खन से, अरुचि पर अनार रस से, कामला मे मुनक्का से, श्वास कास पर त्रिकटु व शहद से, हिक्का पर शहद से, मूत्रकृच्छ्र पर दूध से; कुष्ठ पर जगली तुलसी के पत्र रस से, गुल्म पर सोठ से, नेत्रविकारो पर गौ या भैंस के ताजे घृत से, पाण्डु पर घृत व मधु अथवा दूध से, दाह पर श्वेत जीरा व शक्कर से, वमन पर धान की खीलो से, सर्वमर्मस्थान के रोगो पर तक्र से, बाल काले करने के लिये भृगराज के रस से, अग्निमाद्य पर गोरख मुडी के रस से सेवन कराते हैं। घनसत्व के सशमन वटी आदि प्रयोग देखिये विशिष्ट योगो मे।

पत्र—

गिलोय के पत्ते वातहर तथा वृष्य हैं। ताजे कोमल पत्तो की शाक उष्ण, लघु, विपाक मे मधुर, रसायन, दीपन, बल्य, ग्राही तथा वातरक्त, तृष्णा, दाह, मेद, कुष्ठ, कामला, पाण्डु आदि नाशक है।

कामला व पाण्डु पर—पत्तो को पीसकर तक्र मे मिलाकर पिलाते हैं।

(२८) तृतीयक आदि विषम ज्वरो पर—गिलोय पत्र ४ भाग, अमरूल [अम्बूटी], छोटी हर्र, सोठ और पीपल १-१ भाग लेकर सबका क्वाथ सिद्धकर उसमे शहद मिला ४ माशे से ६ माशे तक की मात्रा मे सेवन करने से लाभ होता है। —नाडकर्णी

(२९) व्रणो पर—ताजे हरे पत्तों को कूट पीसकर रस निचोड लें। यदि यह रस ४० तोले हो तो उसमे १० तोले तिल तैल मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर भुना हुआ नीलाथोथा १॥ माशा व सगजराहत १ तोले मिला अच्छी तरह खरल कर उसमे ६ माशे मोम मिलाकर मलहम तैयार कर लें। इसे फोडा, फुन्सी, व्रण, खुजली एव कुष्ठ के व्रणो पर भी लगाने से लाभ होता है।

मूल या कन्द—

गिलोय की जड मे अधिक मात्रा मे देने से वामक गुण की विशेषता है। इसे दूध मे पीस छानकर पिलाने से वमन के द्वारा किसी भी विष का प्रभाव दूर किया

जा सकता है। कोई कोई इसकी जड या कन्द को दूध मे उबाल कर शुष्क कर चूर्ण बना रखते हैं। इसे रीठे के पानी के साथ या केवल पानी के साथ वमनार्थ प्रयोग करते हैं।

फल—

गिलोय के फलो के रस का प्रयोग फोड़ा, फुन्सी, मुहासे आदि पर करते हैं। इसके रस को चेहरे पर मलने से मुख की कान्ति बढती है।

विशिष्ट योग—

(१) अमृता क्वाथ—अच्छी परिपक्व अगूठे जैसी मोटी गिलोय १० तोले पत्थर पर जौकुट कर १६ गुने पानी में पात्र का मुख बन्दकर मदाग्नि पर उबाले। फिर छानकर मुख खुला रख पकावें। लगभग १ पाव पानी शेष रहने पर उतार लें। ठर्डा होने पर मात्रा २॥ से ५ तोले तक दिन मे तीन बार शहद ६ माशा मिश्रण कर सेवन करें। यह उत्तम कटु पौष्टिक एव रसायन है।

(२) गुडूची फाण्ट—ताजी गिलोय को साफ धोकर पत्थर पर पीस कर ५ तोले कल्क बना ले, उसमे ५ तोले अनन्त मूल (सारिवा) का चूर्ण मिश्रण कर उबालते हुये ५० तोले पानी मे बन्द पात्र में दो घन्टे बन्द रखें। फिर मसल कर छान ले। यह फाण्ट उत्तम रसायन एव मूत्रल है। फिरङ्गोपदश की द्वितीयावस्था, कुष्ठ, वात-रक्त, जीर्ण आमवात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह में विशेष लाभ-दायक है। ज्वर के पश्चात् की निर्बलता तथा अन्य दौर्बल्ययुक्त व्याधियो मे इसका उपयोग पौष्टिक रूप मे किया जाता है। मात्रा २॥ से १० तोले तक दिन मे ३ बार पिलाते हैं।

(३) अमृता हिम—गिलोय ४ तोले अच्छी तरह कुचल कर मिट्टी के बर्तन में २४ तोले पानी मे मिला रात को ढाक कर रखें। प्रात इसे मसल कर छान ले। मात्रा ८ तोले तक दिन मे ३ बार पीने से जीर्ण ज्वर दूर होता है। "अमृताया हिम पेयो जीर्ण ज्वरहर स्मृत।"
—शार्ङ्गधर

(४) अमृत रस तथा रसायन चूर्ण—उत्तम परि-पक्व गिलोय का महीन चूर्ण १०० तोले, गुड व शहद १६-१६ तोले तथा गोघृत २० तोले मिलाकर एक जी करें। इस मिश्रण को 'अमृत रस' या 'गुडूची कल्प' कहते हैं। प्रतिदिन अग्नि बलोचित मात्रानुसार पथ्य पालन पूर्वक (१ वर्ष पर्यन्त) इसका सेवन करने से जरा, पलित (बालो का पकना), निर्बलता, ज्वर, प्रमेह, वात-रक्त, गृध्रसी, विषमज्वर, नेत्ररोग आदि सब व्याधियां दूर होती हैं। यह रसायन, त्रिदोषनाशक व बुद्धिवर्धक है।
—ग० नि०

रसायन चूर्ण—गिलोय, बडा गोखरू व आवला इन तीनो के समभाग एकत्र मिले हुये चूर्ण की मात्रा ४-६ माशे मिश्री व घृत के साथ या दूध के साथ १-२ माह तक सेवन से पित्तशमन होकर मूत्राशय दाह, मूत्र-कृच्छ्र, प्रमेह, वीर्यस्राव आदि विकार दूर होते हैं, शरीर सुदृढ होता है। आगे 'गुडूच्यादि रसायन' का प्रयोग न ६ देखें।

(५) गुडूच्यादि क्वाथ (दाह पर)—गिलोय २ भाग तथा नागरमोथा, आवला, हरड़, लाल चन्दन और सोठ १-१ भाग एकत्र जौकुट कर यथाविधि चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे २-३ बार पिलाने से सब प्रकार का दाह दूर होता है।

(६) अमृता गुग्गुलु—गिलोय ६४ तोले, हरड़, बहेडा, आमला प्रत्येक ३२-३२ तोले सबका जौकुट कर १३ सेर पानी मे पकावें। चौथाई शेष रहने पर छान कर इस क्वाथ मे शुद्ध गूगल ३२ तोले डालकर मदाग्नि पर पकाते समय लोह के खुरचना से हिलाते जावें। गाढा होने पर उतार कर उसमे शीतल होने के पूर्व ही दतीमूल, त्रिफला चूर्ण, वायविडग, गिलोय, त्रिकटु का चूर्ण २-२ तोले, निसोथ चूर्ण १ तोले मिश्रण कर तथा थोडा थोडा एरण्ड तैल अथवा गोघृत डालते हुये अच्छी तरह कूटें। मृदु हो जाने पर छोटे बेर जैसी गोलिया (१ से ३ माशे तक की) बना लें। बलानुसार इसके सेवन से वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, मदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, उरुस्तभ, शोथ पर लाभ होता है।
—भै० र०

अमृतागुग्गुलु के कई प्रयोग शास्त्रो मे देखने योग्य हैं।

(७) गुडूच्यादि वटी—गिलोय सत्व १ तोले, चिरा-

यता चूर्ण ६ माशे, छोटी इलायची बीज ३ माशा तथा पित्तपापडा चूर्ण १ तोले सबको अच्छी प्रकार खरल कर गिलोय के रस की भावना देकर १-१ माशा की गोलिया बना लें। इसे गर्म पानी से लेने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।

(८) अमृता मोदक—गिलोय सत्व या घनसत्व ४ भाग तथा हरड, आमला और पीपल का महीन चूर्ण १-१ भाग सबको १६ भाग पानी मिला मदाग्नि पर पकावें। चतुर्थांश शेप रहने पर उसमे ८ भाग शक्कर मिला पाक की चाशनी कर उतार ले। ४-४ माशे के मोदक बना ले। प्रतिदिन १ मोदक प्रात सेवन करने से प्लीहावृद्धि सहित जीर्ण ज्वर, कास नष्ट होकर क्षुधा वृद्धि होती है। —नाडकर्णी

नोट—उक्त प्रयोगों में पाक की चाशनी तैयार हो जाने पर सबका १६ वा भाग मण्डूर भस्म मिला २-२ माशे की गोलियां बनाकर प्रात साय सेवन करने से उक्त लाभ में उत्तम वृद्धि होती है।

अमृतादि पाक (गुडूच्यादि पाक) के तथा अन्य पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग वृ० पाक सग्रह ग्रन्थ[१] मे देखिये।

(९) गुडूच्यादि रसायन—गिलोय सत्व और खूबकला ४-४ तोले, प्रवालपिष्टी तथा छोटी इलायची बीज २-२ तोले व शृङ्गभस्म १ तोले सबके महीन चूर्ण का मिश्रण कर लें। मात्रा—१-१ माशा दिन मे ३ बार सेवन कर ऊपर से बनपशा अर्क पिलाने से क्षय की वृद्धि रुकजाती है, कफ सरलता से निकल जाता है तथा शारीरिक शक्ति का क्षय नही होता। जीर्ण ज्वर मे भी लाभकारी है। —रसतन्त्रसार

(१०) गुडिच हरीतकी—गिलोय के १ सेर रस या क्वाथ मे १-१॥ पाव हरड भिगोकर प्रतिदिन जितना रस सूख जाय उसमे डालते जावें। हरडो के अच्छी तरह फूल जाने पर धूप मे शुष्क कर महीन चूर्ण बना रखें। मात्रा—३ माशा से १ तोले तक घृत व शहद के साथ सेवन से वातरक्त, चर्मरोग, उदर रोग एव शिरोरोग दूर होते हैं। इसके सेवन काल मे घृत का विशेप सेवन करे। नमक व मिठाई का त्याग करें।

(११) गिलोय जल—एक पाव गिलोय को ८ सेर पानी मे पकावें। आधा जल शेप रहने पर छान रखें। इस पानी के पीने से रक्तज्वर, पित्तज्वर, खुजली, चर्मरोग, वातरक्त आदि दूर होते है। यदि इसी गिलोय जल को अधिक प्रमाण मे बनाकर उसीके द्वारा सिद्ध किये हुए भोजन को करें तथा इसी जल से स्नान और इसीके द्वारा धुले हुये वस्त्रो का उपयोग करे तो दु साध्य वातरक्त भी दूर होता है।

(१२) गुडूची घृत—गिलोय क्वाथ ४ सेर, गिलोय का कल्क पाव सेर, दूध एक सेर और घृत एक सेर लेकर यथाविधि घृत सिद्ध कर सेवन करने से वातरक्त, ज्वर तथा कुष्ठ का नाश होता है। —चंद तथा वगसेन

इस घृत से कामला, पाण्डु, प्लीहा व कास मे भी लाभ होता है।

गुडूच्यादि घृत, अमृतादि घृत के कई बडे बडे प्रयोग अन्य ग्रन्थो मे देखिये।

(१३) गुडूची तैल—उक्त घृत के जैसे ही गिलोय के क्वाथ, कल्क, दूध के स्थान मे जल एव तिल तैल का प्रमाण लेकर यथाविधि तैल सिद्ध कर ले। इस तैल की मालिश से रक्तविकार, चर्मरोग, वातरक्त, विसर्प, फोड़ा, फुन्सी मे लाभ होता है।

गुडूच्यादि या अमृतादि तैल के प्रयोग शास्त्रो में देखिये।

(१४) अवलेह गिलोय—गिलोय का रस तथा अनार रस १-१ सेर एकत्र कर उसमे बनफ्से के फूल का चूर्ण ३० तोला मिला पकावें। अर्द्धावशिष्ट रहने पर उतार कर मसलकर छान लें। फिर उसमे १ सेर खाड या मिश्री मिलाकर मद अग्नि पर पकावें। अवलेह जैसा गाढा हो जाने पर उसमे वसलोचन, छोटी इलायची चूर्ण १-१ तोला व पीपल चूर्ण ६ माशा मिला कर रक्खें।

मात्रा—३ से ६ माशा सेवन से निमोनिया ज्वर, कास, सिर दर्द, वृक्क शूल आदि विकार दूर होते है। मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभ होता है।

(१५) शर्बत गिलोय—गिलोय १ सेर जौकुटकर ८ सेर जल मे पकावें। चतुर्थांश शेप रहने पर मसलते हुए छानकर उसमे उन्नाव का चूर्ण ५० तोला मिला

[१] यह ग्रन्थ धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ (अलीगढ) से प्रकाशित हुआ है।

पकावें। १ सेर जल शेष रहने पर उसमे १४ छटाक मिश्री मिला शर्बत की चाशनी तैयार करले। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक सेवन से हृदय शूल, कास, पित्त ज्वर, तृषा, क्षय आदि मे लाभ होता है। (जगले)

(१६) घनसत्व एव सशमनी वटी—ताजी गिलोय (नीम के वृक्ष के ऊपर की हो तो उत्तम) अच्छी मोटी लेकर छोटे छोटे टुकडे कर कुचल कर चौगुने जल मे ३-४ घटे भिगोकर अच्छी तरह मसलकर छान लें। (प्रथम दो गुना पानी मे भिगोकर छान लें, पश्चात् पुन उस चोथे मे दो गुना पानी मिला छान लेना ठीक होता है) फिर इस जल को हलकी आच पर लोह की कढाई मे पकावें। (कई लोग ३-४ घटे चौगुने जल मे भिगोने के बाद उसे वगैर छाने लोह कटाह मे पकने के लिये रख देते हैं, जब चतुर्थाश क्वाथ शेष रहता है तब उतार कर ठंडा कर खूब मसलकर छानकर पुन क्वाथ द्रव को अच्छी तरह गाढा होने तक पकाते हैं।) गाढ़ा होजाने पर १-१ रत्ती की गोलिया बना सुखाकर रखलें। यह सशमनी वटी न. ३ है। यह ग्राही है।

मात्रा—४ से ८ गोली, दिन मे आवश्यकतानुसार ३ से ५ बार जल, दूध या गरम किये हुये करेले के पत्र रस के साथ देने से जीर्ण ज्वर, दाह, मदाग्नि, आमातिसार आदि पर लाभ होता है। दुर्बलता, प्रदर, क्षय, पांडु, प्रसूता स्त्री, बालको के ज्वर मे भी लाभकारी है। शिशु बालक को १-१ गोली प्रात साय देते रहने से बाल सजीवनी के समान हितकारी है।

क्षय की प्रारभावस्था में रोगी को अन्य कोई दवा न देते हुए केवल इसके सेवन से ही ज्वराश दूर होजाता है, पित्तादि दोष शमन होते हैं।

सशमनी न १—उक्त घनसत्व १० तोला मे स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा लोहभस्म १-१ तोला मिला पानी के छींटे देते हुये लोहखरल मे खूब अच्छी तरह खरल कर हाथों मे थोडा घृत चुपड कर चना जैसी या आधी आधी रत्ती की गोलिया बनाले। २ से ५ गोली तक दिन मे दो बार दूध के साथ देने से जीर्ण ज्वर, दाह, पाडु, कामला, मदाग्नि, हृदय रोग, निर्बलता, श्वेतप्रदर, क्षय, मूत्ररोगो पर लाभकारी है। अथवा—

घनसत्व १० तोला मे स्वर्णमाक्षिक भस्म ६ माशा, प्रवाल भस्म ६ माशा, लोह भस्म व अभ्रक भस्म १-१ तोला मिला १ या २ रत्ती की गोलिया बनाले। ४ से ५ गोली दूध के साथ दिन मे ३ बार देने से उक्त लाभ के साथ ही साथ यह स्मरण शक्तिवर्धक, धातुपरिपोषक एव पित्त प्रधान प्रकृति वालो को, सगर्भा, प्रसूता व बालको को विशेष हितकारी है।

सशमनी न० २—उक्त घन सत्व मे केवल स्वर्णमाक्षिक (१० तोला मे १ तोला के प्रमाण मे) मिलाकर जो गोलिया बनती है, वे भी उक्त गुणधर्म वाली होती हैं। किंतु यह बहुत भी सौम्य है।

गुजराथ की ओर उक्त घनसत्व मे चंद्रप्रभावटी मिलाकर भी सशमनी वटी बनाते हैं। उक्त सशमनी वटियो का प्रचार गुजराथ के वैद्यो मे बहुत है।

(१६) अमृतारिष्ट एव अर्क—अमृतारिष्ट के प्रयोग ग्रन्थो मे या हमारे वृ आसवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

अर्क या टिंचर—ताजी गिलोय को खूब जौकुट कर ५ गुना देशी शराब मे मिला बोतलो मे ७ दिन तक भर कर रक्खे। दिन मे ३-४ बार बोतलो को हिला दिया करें। फिल्टर पेपर से छान ले। मात्रा—१ से २ ड्राम।

अथवा—ताजी गिलोय ४० तोला को पत्थर पर कूट कर १ सेर जल मे मिला ६ घटे बाद मसलकर छान लें। इसमे १२ औंस (३० तोला) देशी शराब या मद्यार्क मिलाकर बोतल मे भर रक्खें। मात्रा—२ से ४ ड्राम।

गीदड़ तमाखू [Helitropium Europium]

इस श्लेष्मातकादि कुल (Boraginaceae) की बूटी के छत्ते ककरीली जमीन पर होते हैं। काड रोमश, पत्र भी रोमश, कगूरेदार तथा अण्डाकार और फल छोटे छोटे लम्बगोल होते हैं।

यह बूटी—पजाब, सिंध, राजस्थान के रेगिस्तान एव बलूचिस्तान मे अधिक पाई जाती है।

नोट—एक गीदड तमाखू और होती है, जिसे जंगली तमाखू कहते हैं। तमाखू के प्रकरण में देखिए।

कुटकी कुल की 'कुलाहल' बूटी को भी गीदड़ तमाखू कहते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह वामक, व्रणपूरक, शूलनाशक एव विषघ्न है। इसके पत्तो को रेंडी तैल मे उबालकर बाधने से व्रण साफ होकर शीघ्र भर जाता है। कर्ण शूल पर—पत्र चूर्ण को रुई मे लपेट कर कान मे रखते हैं। सर्प और विच्छू के विष पर इसे लेप करते तथा वमनार्थ तैल के साथ पिलाते हैं जिससे साधारण सर्प विष निकल जाता है।

इस बूटी की जड १ इ च लम्बी तथा सतावरी के समान पतले मूल से युक्त तथा श्वेत होती है।

नहरुआ (स्नायुक) रोग पर—इसके मूल को पीसकर गुड या जल में झडबेरी जैसी गोलिया बना ३-३ मासे की मात्रा में प्रात पानी के साथ निगल जावें। ३ से ४ दिन में लाभ हो जाता है। तैल, खटाई आदि वातकारक पदार्थ न खावें। यह प्रयोग केवल पुरुष वर्ग पर ही करें।

(श्री उदयलाल जी महात्मा के एक लेख का साराश
—धन्वन्तरि से)

गुंजा [Abrus Precatorius

गुडूच्यादिवर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार शिम्बीकुल (Leguminosae) की अनेक पतली, लचीली शाखायुक्त इसकी वर्षायु, सुन्दर चक्रारोही, पराश्रयी लता भारत मे प्राय सर्वत्र जगल एव झाडियो मे पायी जाती है।

पत्र—इमली पत्र जैसे, किंचित वडे, संयुक्त १ से ३ इ च तक लम्वे, पत्रक—८ से २० तक जोडे, विपरीत, ½ से १ इ च लम्वे एव ⅓ इ च चौडे होते हैं। पुष्प शरद ऋतु मे सेम के पुष्प जैसे किन्तु बडे, सघन गुच्छो मे गुलावी या नीले रग के आते हैं।

फली—१-१॥ इंच लम्वी, ⅓ से ½ इ च चौडी, रोमश, नुकीली, गुच्छो मे लगती हैं।

वीज—प्रत्येक फली मे जाति के अनुसार लाल, श्वेत या काले रग के अण्डाकार छोटे, चिकने, चमकीले एव कडे २ से ६ तक होते हैं। इन बीजो को ही गुजा घु घची आदि कहते हैं।

शीतकाल मे फली के पक जाने पर लता सूख जाती है तथा वर्षा के प्रारम्भ मे पुन मूल से लता अकुरित हो उठती है। मूल—काण्डमय, टेढ़ीमेढ़ी, अनेक शाखायुक्त होती है। इसके पत्र और मूल मे मुलैठी जैसी ही मिठास तथा प्राय तैसे ही गुणधर्म पाये जाते हैं। कई लोग भ्रमवश इसीके मूल को मुलैठी मानते हैं।

नोट—(१) बीज के वर्णानुसार—लाल (इसके मुख पर काला दाग रहता है), श्वेत (यह सम्पूर्ण श्वेत होती है), और काली [1](यह श्वेत व लाल की अपेक्षा कुछ वडी, काले रंग की, मुख पर कुछ श्वेत दाग युक्त काले उड़द जैसी होती है)। इन तीनों की लतायें एक समान होती है। श्वेत गुंजा के पुष्प भी सफेदी लिये हुये या श्वेत ही होते हैं। यह कम प्राप्त होती है। औषधिकर्म में लाल और श्वेत गुंजा के ही मूल, फल, पत्रादि लिए जाते हैं। तथापि गुणधर्म की दृष्टि से श्वेत अधिक ग्राह्य है। श्वेत गुंजा की जड़ को हिन्दी में 'जाठौन' कहते हैं। सोना तोलने के काम मे लाल गु जा विशेष प्रचलित है; १ गुंजा से १ रत्ती का वजन माना जाता है। अतः इसे रत्ती भी कहते हैं।

(२) श्वेत गु जा बाजीकरण एवं वशीकरण के कार्य में प्रशस्त होने से (वश्ये श्वेता प्रशस्यते। ध० नि०) चरक में उच्चटा नाम से वाजीकरण के प्रसंग में इसका उल्लेख है। वशीकरण के लिये तांत्रिक लोग इसका उपयोग करते हैं। रक्त या श्वेत गुंजा का विषैला प्रभाव केवल अधस्त्व-गीय प्रवेश से ही होता है, तथा उबालने से वह भी नष्ट हो जाता है, इसीलिये शायद चरक ने स्थावर विषों में इसकी गणना नहीं की है। सुश्रुत में [मूल विषों के अन्तर्गत इसका उल्लेख है। भावप्रकाश आदि निघण्टुओं में सप्तोपविषों के अन्तर्गत यह लिया

[1] यह बहुत कम प्राप्त होती है, तथा औषधिकार्य में इसका व्यवहार भी नहीं होता, तथापि रसराज सुन्दर के अनुसार कृमिनाशक, कुष्ठ, कण्डू, कफपित्तविकार एवं व्रण नाशक है 'कृष्णा कृमि कुष्ठ कण्डू श्लेष्म पित्त व्रणापहा' (र. रा.सु.)

गया है ।[१]

नाम—

सं—गुंजा, रक्तिका, काकणन्ती, आदि नाम रक्तगुंजा के तथा उच्चटा (श्वेतोच्चटा) और कृष्णला नाम श्वेतगुंजा के हैं।

हि.—गुंजा, रत्ती, घुंघची, चिरमिट, चिरम, करजनी।

म—गुंज। बं—कुंच। गु—चणोटी।

अं—जेकुरिटी (Jequirity), इंडियन लायकरिस (Indian Liquorice)

ले—एब्रस प्रिकेटोरियस, ए मायनोर (A Minor), ए पासिफ्लोरस (A Pauciflorus)

रासायनिक सघठन—

बीज मे कुछ स्थिर तैल, एक अब्रिन (Abrin) नामक विषाक्त प्रोटीन, एब्रुसिक एसिड (Abrussic Acid) नामक एक ग्लुकोसाइड, हिमेग्लूटिनिन (Haemagglutinin) इत्यादि पदार्थ पाये जाते हैं। उबालने पर बीजो की शक्ति नष्ट हो जाती है[२]। इसकी जड मे १५ प्र श ग्लिसराइजिन (Glycyrrizin) तथा ८ प्र श

गुंजा (Abrus Precatorius)

अम्लराल आदि तथा पत्तियो में १० प्र. श ग्लिसरायजिन व कुछ अब्रिन होती है। बीजों के आवरण मे एक रक्तवर्ण का रजक द्रव्य होता है, तथा लालगुंजा के आवरण मे विष प्रभाव अधिक रहता है। अत. औषधिकार्यार्थ इसके शोधन की आवश्यकता है। इसकी कच्ची फली वमनकारक होती है।

गुणधर्म और प्रयोग—

रक्त और श्वेत दोनो लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य है (कोई मधुर विपाक व शीत वीर्य मानते हैं।)

बीज—

कफवातशामक, वीर्यवर्धक, कुष्ठघ्न, व्रणरोपण, वेदनास्थापन, केश्य, गर्भ निरोधक, विषाक्त, अल्पमात्रा मे कटुपौष्टिक, अधिक मात्रा मे मादक, नाडी सस्थान उत्तेजक तथा ज्वर, मुखशोष, भ्रम, श्वास, तृष्णा, नेत्र रोग, कण्डु, व्रण, कृमि, इन्द्रलुप्त (गज) आदि नाशक है।

बीज शोधन विधि—काजी या नीबू के रस मे या गोदुग्ध मे दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करने से इसकी शुद्धि हो जाती है। काजी या नीबू रस मे करना हो तो बीजो को दोहरे कपडे मे बाध कर एक प्रहर तक स्वेदन करें। दूध मे करना हो तो बीजो को कुचल कर कपड़े मे बाध कर दो प्रहर तक स्वेदन करें। शोधन के बाद

---

[१] अर्क क्षीरं स्नुहीक्षीरं लांगली करवीरकः।
गुंजाहिफेनो धत्तूरः सप्तोविष जातय॰ ॥

मदार दूधथूहर दूध,कलिहारी, कनेर, गुंजा,अफीम, धत्तूर ये ७ उपविष हैं। वास्तव मे कुचला, जायफल, भांग (गांजा), भिलावा भी उपविष हैं। कुल ११ प्रमुख उपविष मानने योग्य हैं।

[२] अब्रिन यह अत्यंत विषैला द्रव्य है। उबालने से इसका ग्लोब्युलिन (Globulin) नामक अधिक शक्तिशाली तत्व नष्ट हो जाता है। इसे एरंडबीज में पाये जाने वाले रिसीन (Ricin)सदृश मानते हैं। शरीर भार के प्रति किलोग्राम के लिए $\frac{1}{1000}$ से $\frac{1}{2000}$ मिलिग्राम की मात्रा में इसका अधस्त्वगीय इंजेक्शन घातक होता है। बीजों के क्वाथ को आंखों में डालने से भी मृत्यु हो सकती है। त्वचान्तर्गत प्रयोग से स्थानिक अत्यत तीव्र प्रक्षोभ उत्पन्न होकर शोथ व रक्तस्राव होता है। मुख द्वारा सेवन से अत्यल्प या बिल्कुल ही प्रक्षोभ नहीं होता एवं आमाशय में पहुचने पर यह विषरहित हो जाता है। चर्मकार चर्म के लोभ से जानवरों को मारने के लिये बीजों की नुकीली वर्ति बनाकर गुदामार्ग में प्रवेश करते हैं। तथा गर्भपात कराने के लिए भी इसकी बत्तियों का उपयोग किया जाता है।

छिलके निकाल कर गरम जल से धोकर प्रयोग करें ।

(१) स्नायुमडल की अशक्ति पर—श्वेत बीज चूर्ण मात्रा आधी से १॥ रत्ती तक । १ पाव दूध मे औटाकर उसमे इलायची चूर्ण बुरका कर पीने से कमजोरी दूर होती है । वाजीकरण एव कामशक्ति की वृद्धि होती है ।

(२) प्रदर पर—श्वेत बीज १२ तोले, गूलर फल शुष्क ८ तोला, गोरखमु डी ४ तोला, लोध्र २ तोला और असगध १ तोला सबका महीन चूर्ण मात्रा २ माशे चावल के धोवन के साथ सेवन से सर्वप्रकार के प्रदरो मे लाभ होता है ।

(३) प्रमेह पर—श्वेत गु जा बीज २ रत्ती तथा कालीमिर्च १०–१५ दाने एकत्र जल मे पीस छान कर प्रात पीवें । १५ दिन तक गरम चीज खटाई, लालमिर्च, तैल तथा स्त्री प्रसंग से परहेज रक्खें । (इस प्रयोग मे बीज के स्थान पर श्वेत गु जा की जड़ ३ माशा लेना अधिक उपयुक्त है ।)

(४) वंध्या के गर्भधारणार्थ—बीज चूर्ण १ रत्ती को स्याहजीरा और घृत के साथ नित्य प्रात मासिक धर्म के समय ४ दिन सेवन करावें । यदि गाय या भैस गाभिन न होती हो तो गु जाबीज खिलाने से उनका वध्यत्व दोष जाता रहता है । (अगद तत्र)

(५) विश्वाची (Brachial Paralysis), अपवाहुक, गृध्रशी (Sciatica) आदि अन्य वातज पीडाओ पर–उस स्थान के बालो को उस्तरे से निकलवा कर बीजो को पानी में पीस कर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है । वगसेन तथा योगरत्नाकर मे स्थान विशेष की शिराप्रच्छन्न कर (नश्तर लगाकर) गुञ्जा कल्क के लेप का निर्देश किया गया है । किन्तु आजकल ऐसा करना खतरे का काम है । ध्यान रहे बाह्य प्रयोगार्थ भी शुद्ध बीजो का ही उपयोग करना ठीक होता है ।

नोट–चर्मरोग, कुष्ठ, जीर्णव्रण तथा खालित्य या इन्द्रलुप्त (Boldness) पर भी उक्त प्रकार से बालों को निकाल कर या वैसे ही लेप करते हैं ।

(६) सिर के बालो की वृद्धि के लिये एक सिद्ध तैल योग—बीजो के महीन चूर्ण ५ तोले में भागरा रस की ७ भावनायें देकर उसके साथ इलायची छोटी, जटामांसी, कपूर कचरी, कूट व देवदारु चूर्ण ५-५ तोले पानी के साथ पीस कल्क बना लें । पीतल की कलईदार कढाई मे ५ सेर पानी, १ सेर काली तिली का तैल और उक्त कल्क मिला मद आच पर पकावे । तैल सिद्ध हो जाने पर (जलाश जल जाने पर) उतार कर छान लें । इस तैल को सिर मे लगाने से नये बाल पैदा होते है । गज रोग दूर होता है । वैसे भी इस तैल को लगाते रहने से बाल खूब लम्बे बढते हैं ।

अथवा—गु जा बीज के चूर्ण के साथ हाथी दात की राख और रसाजन मिला पानी मे पीस पतला लेप सिर पर करते रहने से भी लाभ होता है । इन्द्रलुप्त या गज रोग दूर होता है ।

(७) दाद, खुजली, मु हासे या चेहरे की झाई तथा श्वेत कुष्ठ पर—गु जा १ सेर जल के साथ पीसकर कल्क बना लें । उसमे भागरा के पत्तो का रस १६ सेर तथा तिली तैल ४ सेर मिश्रण कर तैल सिद्ध कर ले । इस तैल की मालिश से दाद, खुजली शीघ्र दूर होती है ।

श्वेतकुष्ठ पर प्रयोगार्थ–उक्त कल्क मे थोडी चित्रक मिला तैल सिद्ध कर लगावें । अथवा गु जा बीज और चित्रक को पानी मे पीस केवल इसका लेप ही करते रहने से श्वेत कुष्ठ मे लाभ होता है । कुष्ठनाशक लेप विशिष्ट योगो मे देखें । चेहरे की झांई व मुहासे मिटाने के लिये श्वेत गु जा को पीस तिल तैल मे मिश्रण कर रात्रि मे सोते समय चेहरे पर मलकर प्रात ताजे पानी से धो डाले । कुछ दिनो में लाभ हो जाता है ।

(८) वद, गाठ, गडमाला पर—लाल गु जा बीज, इमली बीज और गेरू इन तीनो को पानी मे पीसकर लेप करने तथा लेप के सूखने पर पुन लेप करते रहने से वद, गाठ, गडमाला मे लाभ होता है। वह बैठ जाती है ।

मूल—

गु जा लता की जड मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषहर (विशेषत वातपित्तशामक), कफ नि सारक, मूत्रल, गर्भाशयोत्तेजक, अल्प मात्रा मे पौष्टिक है । इसका व्यवहार प्राय मुलैठी के समान ही किया जाता है ।

(९) वीर्यविकार पर—इसके चूर्ण की मात्रा २ रत्ती से २ माशे तक १ पाव दूध में समभाग पानी

मिश्रण कर क्षीरपाक की विधि से पकाकर भोजन के ३ घटे पूर्व सायकाल मे सेवन से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। पकाते समय मिश्री या उत्तम खाड थोडी मिला लेवें। वीर्य गाढा होकर स्तम्भन शक्ति बढती है।

(१०) पूयमेह (सुजाक) हो तो श्वेत गु जा की जड २॥ माशे, ५ तोले पानी मे पीस छानकर मिश्री मिश्रण कर कुछ दिन सेवन कराते हैं।

श्वेत प्रदर पर—जड को रात भर पानी मे भिगो कर प्रात तथा प्रात भिगोकर शाम को पीस छान पीवें।

उपदश पर–श्वेत गु जा की जड तथा गुडहल (जपा-फूल) की जड समभाग लेकर पानी मे पीस छानकर दिन मे दो बार पिलावें।

(११) कुक्कुर कास आदि बच्चो के कफ विकारो पर—जड का महीन चूर्ण ढाई से तीन रत्ती तक लेकर सोठ का थोडा चूर्ण मिश्रण कर शहद से चटाने से बच्चो की काली खासी मे लाभ होता है। अथवा–

शर्वत—इस प्रकार बनाकर बार बार चटावें। इसकी ताजी जड ५ तोले को जौकुट कर उसमे ताजी भिंडी के टुकडे ढाई तोले मिला २५ तोले पानी मे मद आच पर आध घन्टा तक पकाकर मोटे कपडे मे मसलते हुये छान ले। फिर उसमे १० तोले शक्कर या शहद मिला आंच पर रख शर्वत की चाशनी तैयार कर ले। इसे बार बार चटाते रहने से बालको के कास आदि कफ विकारो पर शीघ्र लाभ होता है। यह शर्बत अधिक दिनो तक रखने से बिगड जाते हैं। अत २-३ दिन बाद पुन पुन ताजा तैयार कर लेना चाहिये।

(१२) तृषा पर—श्वेत गुजा मूल का चूर्ण ६ माशा, श्वेत कत्था व आमला चूर्ण ३-३ माशा सबको इसी गु जा के पत्र स्वरस मे घोटकर गोलिया बना मुख मे रख कर चूसते रहने से अत्यधिक प्यास, शोष एव कास मे भी लाभ होता है। पत्र स्वरस के अभाव में जड के क्वाथ से खरल कर गोलिया बना लेना और भी उत्तम है।

(१३) दाद, छाजन आदि चर्म रोगो पर—श्वेत गु जा जड के स्वरस या फाण्ट से कालीमिर्च चूर्ण मिला नित्य सेवन करें तथा इसके बीजो को पत्थर पर पानी के साथ पीस कर लेप करते रहने से लाभ होता है। लेप मे थोडी बावची भी पीसकर मिला दी जाय तो श्वेत कुष्ठ तथा अन्य कठिन चर्मरोगो को लाभदायक होता है।

(१४) कृमिविकार पर—श्वेत गु जा मूल २ भाग तथा कबीला, वायविडग व पलास पापडा १-१ भाग-सबका महीन चूर्ण कर पानी के साथ खरल कर २ से ६ रत्ती की गोलिया बना रात्रि मे १ से ३ तक गोलिया पानी के साथ खिलावें। ३ दिन बाद रेंडी तैल का जुलाब देवें। सब कृमि नष्ट हो जावेगे।

(१५) शिरोरोग पर—जड को पानी के साथ घिस कर नस्य देने से मस्तकशूल, अर्द्धमस्तकशूल, आखो के सामने अधेरा आना, रतौंधी आदि विकार दूर होते हैं।

(१६) गण्डमाला, गलग्रन्थि आदि रोगो पर—गु जा तैल–इसकी जड (श्वेत गु जा की हो तो उत्तम) तथा फलो को जल के साथ पीसकर कल्क बना लें। कल्क से चौगुना सरसो तैल तथा तैल से चौगुना जल मिला मदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर उतार कर छान लें। इस तैल की मालिश एव नस्य से महादारुण गण्डमाला नष्ट होती है। —भा० प्र०

विशिष्ट योगो मे गु जा तैल व गु जाद्य तैल देखें।

(१७) इन्द्रलुप्त [बालो का विशेषत मूंछ व डाढी के बालो के सहसा गिरने] पर—इसकी जड और फल दोनों का चूर्ण कर कटेरी के पत्र रस मे खरल कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

पत्र—

मधुर, स्निग्ध, त्रिदोषहर (वातपित्तशामक), मूत्रल, शोथहर, वेदनास्थापन, शूलनिवारक, कफनि सारक एवं व्रणरोपक है। कई जगह ये पत्र पान के बीडे में रखकर खावे हैं, बीडे का स्वाद मधुर हो जाता है।

(१८) रक्तमिश्र मेह, पूयमेह [सुजाक] तथा लाला-मेह [जिसमे पेशाब के पूर्व या पश्चात् लार के जैसा प्रवाह हो] पर—लाल गु जा के पत्र १ माशे तक, श्वेत जीरा २ माशा व मिश्री १ तोले का मिश्रण (१ मात्रा है) दिन मे दो बार ७ दिन पानी के साथ सेवन करने से

रक्तमेह व उपदश दूर होता है। पत्र रस १ से ३ माशे तक १ पाव दूध मे मिला पूयमेह मे सेवन कराते हैं।

इसके पत्तो के साथ मेहदी पत्र व जीरा पानी के साथ पीस छान कर मिश्री मिला दिन मे दो बार ७ दिन सेवन से लालामेह दूर होता है। यह योग रक्तमेह मे भी लाभकारी है।

(१६) उदरदाह तथा लू लगने पर—पत्र रस मे श्वेत जीरा पीसकर पानी के साथ पिलाने से पेट की जलन दूर होती है। लू लगने पर पत्र रस मे शक्कर व जीरे का चूर्ण मिला पिलाते है।

(२०) कठ व्रण, मुखपाक तथा रोहिणी रोग [Diptheria] पर—श्वेत गु जा के पत्रो के साथ शीतलचीनी पीसकर मिश्री मिला धीरे धीरे चटाते हैं अथवा पत्रो को पीस गोली बना मुख में धारण कराते हैं। अथवा गु जा की जड के चूर्ण मे भूने सुहागे का चूर्ण और शहद मिला फुरेहरी मे लपेट कर लगाते हैं। साधारण मुखपाक मे पत्तो को मुख मे रख कर चूसते रहने से या इसके क्वाथ से गण्डूप (कुल्ले) करते रहने से भी लाभ होता है। स्वरभग मे भी उक्त प्रयोगो से लाभ होता है।

(२१) सर्वप्रकार की पीडा, शोथ एव आमवात पर—पत्तो के कल्क मे रेंडी तैल मिला गरम कर पुल्टिस के समान बाधने या वेदनास्थान पर गरम गरम रेंडी तैल मर्दन कर ऊपर से इसके पत्तो को गरम कर बाधने तथा ऊपर से सेंकने से अथवा पत्तो को गरम किये हुये सरसो तैल मे डुबाकर सुहाता हुआ बाधने से लाभ होता है। व्रणशोथ हो तो पत्तो को पीस कर व्रण पर बाधने से दाह शान्त होती है, शोथ उतरती तथा व्रण भी शीघ्र रोपण होता है।

(२२) नेत्र शोथ मे—कीचड बहुत आती हो तो पत्तो को पानी के साथ पीस छान कर आख मे डालते हैं।

विसर्प पर—पत्तो को पीस कर लेप करते हैं। सिन्दूर के विष पर—पत्तो का रस ७ दिन पिलाते है। श्वेतकुष्ठ पर—श्वेत गु जा पत्र व चित्रक जड का लेप करते हैं। केश वृद्धि के लिये विशिष्ट योगो मे गु जा पत्रादि लेप देखें।

फल—

गु जा के फूलो का नस्य—रतौधी आती हो, नेत्रो में माड़ा पडा हो, आखो के सामने अधेरा छा जाता हो, चक्कर आते हो या किसी कारण से सिर मे दर्द होता हो तो इसके फूलो को घिसकर नस्य देवें। —अ त.

विशिष्ट योग—

१—गु जादि लेप [कुष्ठनाशक]—छिलकेरहित गु जा बीज के चूर्ण को मक्खन मे घोटकर मालिश करने से कुष्ठ नष्ट होता है। फिर जलरहित छानी हुई दही की तलछट [मथित किट्ट] को कुछ समय तक ताम्रपात्र मे रखकर उससे मालिश की जाय तो पुन कुष्ठ होने का भय नही रहता। —ग नि.

२—गु जा पत्रादि लेप [केशवृद्धि]—इसके पत्तो के साथ शुद्ध वत्सनाभ, तिल, तिल तैल व मुलैठी चूर्ण को काजी मे पीस लेप करने या इस मिश्रण से सिर धोने से बाल नहीं गिरते, अत्यधिक वृद्धि होती है। —बगसेन

३—गु जा तैल—गु जा बीज ८ तोले का कल्क कर उसमे शुद्ध तिल तैल, काजी व भागरे का रस ३२-३२ तोले मिश्रण कर मद अग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर एक दिन तक सुरक्षित रक्खें। इस तैल के नस्य व मर्दन से भयकर शिरोरोग, आधाशीशी, भौं, कनपटी एव कर्णशूल नष्ट होता है। —भै र

गु जा तैल न २—गुजा कल्क २० तोले, तैल१ सेर तथा भागरे का रस ४ सेर लेकर यथाविधि तैल सिद्ध कर मर्दन करने से खुजली, दारुणक [एक क्षुद्र शिरोरोग जिसमे सिर से भुसी सी झडती है] व कपाल कुष्ठ नष्ट होता है। —यो र.

गुजाद्य तैल—देखिये भैषज्य रत्नावली। गुजा भद्र रस, गुजागर्भ रस आदि विस्तृत प्रयोगो को शास्त्रो मे देखिये।

नोट—मात्रा—बीज चूर्ण आधी से डेढ रत्ती, मूल चूर्ण ५ से १० रत्ती (कभी कभी २ से ४ माशे तक), पत्रक्वाथ ५ से १० तोले।

यह उष्ण प्रकृति वालों को अहितकर है। हानिनिवारणार्थ यवास शर्करा और हरा धनियां देते हैं।

विष प्रभाव

बीज चूर्ण अधिक मात्रा मे खाने से या अशुद्ध बीजों

के प्रयोग से हैजे के समान तीव्र वमन व विरेचन होते हैं। मूत्राघात एव हृदयावसाद की स्थिति उत्पन्न होती है। क्षतो मे प्रलेप से भी विपाक्त क्रिया होती है। इसकी मूल अधिक मात्रा मे लेने से भी वमन विशेष होता है।

निवारण—इसके विष प्रभाव के निवारणार्थ कांटे वाली चौलाई का रस मिश्री मिलाकर पिलावे तथा ऊपर से दूध पिलावें। अथवा फालसा, अनार या अगूर का रस या मुनक्का को पानी मे भिगोकर निकाले हुये रस को शहद मिश्रण कर पिलावें। अथवा गौदुग्ध को मिश्री मिला भरपेट पिलावें।

गुड़मार (Gymnema Sylvestra)

गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार अर्क कुल (Asclepiadaceae) की बूटी की पराश्रयी, बहुवर्षायु, चक्रारोही, कोमल एव रोमश लता बड़ी लम्बी, अनेक शाखायुक्त फैलने वाली होती है। इसके प्राय सर्वाङ्ग मे दूध होता है। इसकी मूल छोटी उंगली जितनी मोटी, बाहर से मुलायम, सीधी धारियो से युक्त, तथा सूखने पर छाल पतली होकर फट जाती है, स्वाद मे कुछ नमकीन या तिक्त होती है। पत्र-मृदु, रोमश, अभिमुख, १ से ३ इच लम्बे, ½ से १½ इच चौडे अडाकार नोकरहित एव छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पत्रों को चबाने पर १-२ घटे तक मधुर व तिक्त रस की प्रतीति नही होने से इसे गुडमार या मधुनाशिनी कहते हैं। पुष्प– शरद ऋतु मे पीताभ, शिखराकार, छोटे १ इच लम्बे, रोमश, गुच्छो मे लगते हैं। फली शीतकाल के अन्त मे १॥ से ३ इच लम्बी, गोल, सरसो की फली जैसी कठोर, भालाकार, पतली दो-दो एक साथ लगती हैं। दो फलियो मे से प्राय एक फली का पूर्ण विकास नही होता। बीज–फली के भीतर आक के फल के अन्दर की रुई जैसी कुछ रुई और कतार से पतले, चपटे, आध इच लम्बे-अण्डाकार बीज होते है।

यह लता विन्ध्यप्रदेश के वन प्रान्तो मे मध्य, पूर्व तथा उत्तर भारत की झाडियो मे, बागो की झाडियो मे तैसे ही कोकण, त्रावणकोर और गोवा मे बहुत पाई जाती हैं।

नोट—आयुर्वेद तथा यूनानी वैद्यक में इस बूटी का कोई उल्लेख नहीं है। कई विद्वानों ने इसे मेषशृंगी (मेढासिंगी) नाम दिया है। यह नाम हमें युक्तियुक्त नहीं जचता। मेढासिंगी का वर्णन यथास्थान देखिये।
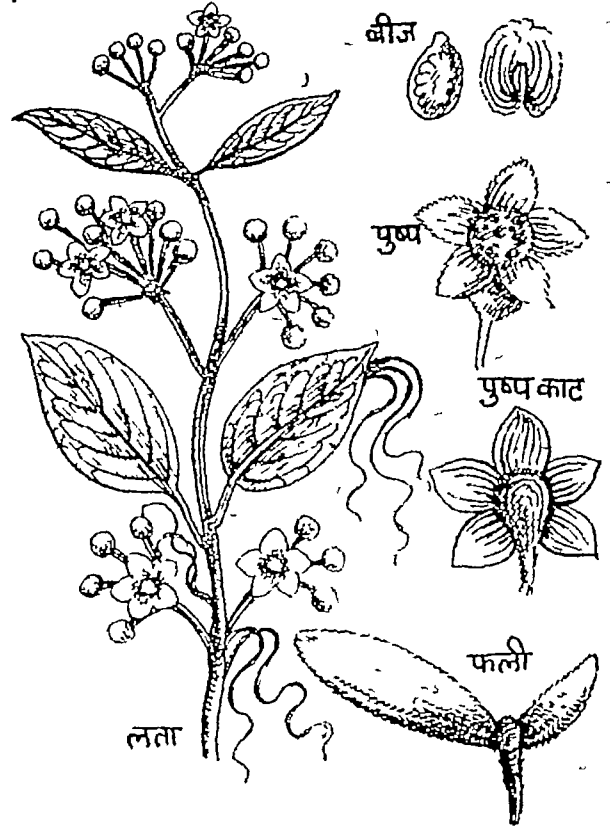
नाम—

सं०—मधुनाशिनी, अजगन्धिनी।
हि०—गुडमार। म०—कावली, करदोडी।
गु०—गुडमार। अ—छोटी दूधीलता, ग़ुरमार।
लै०—जिमनेमा सिलवेस्टर, एस्क्लेपियास जेमिनाटा [Asclepias Geminata]

रासायनिक सङ्गठन—

पत्तियो (विशेपत शुष्क पत्तो) मे जिम्नेमिक एसिड

(Gymnemic acid) ६ प्र श है, इसी के प्रभाव से जिह्वा के ग्राही स्वादतन्तु चेतनाहीन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त किण्वतत्व (Enzymes), क्वर्सिटाल (Quercitol), कैलशियम ग्रावजलेट, रजक द्रव्य तथा रालद्रव्य, चिचाम्ल आदि मिलते हैं। इसकी भस्म मे क्षार, फास्फारिक एसिड, फेरिक आक्साइड व मेगनीज तथा छाल मे कैल्शियम लवण, स्टार्च पाये जाते है।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, मूल और बीज।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह लघु, रूक्ष, कषाय, कटु, विपाक में कटु एव उष्णवीर्य है। कफ वातशामक, दीपन, ग्राही, यकृत हृदय व गर्भाशय उत्तेजक, कफघ्न, मूत्रल, विषमज्वरघ्न, कटु-पौष्टिक, विषघ्न, अश्मरी, हृद्रोग, अर्श, प्रदाह, कामला, व नेत्र रोगादि नाशक है। अधिक मात्रा मे वामक है।

पत्र—

शोथहर, मृदुविरेचक, यकृदुत्तेजक—यकृत की स्वाभाविक क्रिया शर्करा के सात्मीकरण की होती है। यह इस क्रिया के द्वारा रक्त से अधिक शर्करा को खीचकर उसे ग्लायकोजन (Glycogen) या शर्कराजन के रूप मे सचित कर रक्तगत शर्करा को प्राकृतिक मान ०१२ प्र श. पर रखता है। इस क्रिया मे स्वभावत अग्न्याशय, अधिवृक्क तथा पोपणक ग्रथियो के स्राव सहायक होते हैं। गुडमार यकृत की इस क्रिया मे प्रत्यक्षत यकृत को उत्तेजित कर तथा अप्रत्यक्षत अग्न्याशय ग्रथि के स्राव—इंसुलीन (Insulin) को प्रेरित कर सहायक होता है। अत इसके प्रयोग से रक्तगत शर्करा की मात्रा कम हो जाती है तथा मूत्र मे भी उसका आना वन्द होजाता है। यह क्रिया पत्र चूर्ण की ही होती है उससे पृथककृत तत्वो की नही।

[द्र० गु० विज्ञान]

[१] मधुमेह तथा इक्षुमेह[१] (Glycosuria) पर—इसके पत्तो के साथ जामुन पत्र ६-६ माशे लेकर क्वाथ कर पिलाते रहने से लाभ होता है।

अथवा—इसके पत्र ६० तोला तथा जटामासी व नागरमोथा १०-१० तोला सबके चूर्ण को ८ गुने जल मे भिगोकर दूसरे दिन अर्क खीच लें। मात्रा—२॥ से ५ तोले दिन मे दो वार थोडा शिलाजीत मिलाकर पिलाते रहने से उत्तम लाभ होता है। अथवा—

यदि अर्क न निकाल सको तो इसके पत्रो का चूर्ण १ तोला और जल ५ तोला अच्छी तरह पीसछान उसमे ४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर प्रात साय सेवन करते रहे।

अथवा—मधुमेहनाशक वटी निम्न विधि से बना सेवन करें—पत्ते १० तोला, जामुन की गुठली व सोठ ५-५तोला-सबका महीन चूर्ण कर घीगुवार [ग्वारपाठा] के रस मे खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया वना लें। ३-३ गोली दिन मे ३ वार शहद के साथ देते रहे।

अथवा— इसके पत्ते, सोठ, वबूल पत्र व जामुन की गुठली १८-१८ तोला, शिलाजीत ६ तोला, प्रबाल भस्म ४ तोला तथा रस सिंदूर, लोह भस्म, अभ्रक भस्म ३-३ तोला, नाग भस्म १ तोला, सबके महीन चूर्ण को ग्वार पाठा रस, पलाश पुष्प रस, गुडमार पत्र क्वाथ और गूलर के दूध की १-१ भावना देकर उसमे ६ माशा सुवर्ण वर्क मिला अच्छी तरह खरलकर २-२ रत्ती की गोलिया वना ले। १-१ गोली प्रात साय गुडमार पत्र, गूलर छाल, जामुन छाल तथा बबूल की कोपल के सम्मिलित क्वाथ लेने से ही दु साध्य मधुमेह भी दूर होता है। किंतु पथ्य मे केवल ३ भाग जौ व १ भाग चने को मिलाकर उसके आटे की रोटी मठ्ठे के साथ खानी चाहिए अथवा बाजरे की रोटी शहद के साथ खावे। मूग की दाल ले सकते हैं। शक्कर, गुड, नमक, खटाई चावल आदि विल्कुल छोड देवें।

[ब च]

[२] शर्करामेह (अश्मरी का एक विकार Passing of gravel) पर—इसके पत्र १२ तोले, गिलोय चूर्ण ६ तोले, सोठ चूर्ण २ तोला, शिलाजीत १ तोले, कातिसार (फौलाद) भस्म ६ माशा तथा जामुन गुठली चूर्ण ५ तोले सबको एक साथ खरल कर ६ माशे की मात्रा मे खांड सहित दूध के साथ सेवन करें।

[३] अण्डकोष की वृद्धि एव शोथ पर—पत्र स्वरस

---

[१] मधुमेह (Diabetes mellitus) में अग्न्याशय की विकृति, क्षुधा, तृष्णा की वृद्धि एव मूत्र में शर्करा की अधिक वृद्धि होती है। इक्षुमेह में उक्त कोई विकृति न होते हुए भी मधुर और शीत के कारण मूत्र भद्दे रंग वाला, लेसदार गन्ने के रस जैसा मधुर होता है।

३ माशे तक शहद के साथ सेवन करते रहे ।

[४] कृमि पर—उक्त प्रकार से पत्र रस का सेवन करें अथवा इसकी छाल का क्वाथ देवें ।

[५] इक्षुमेह तथा अश्मरी पर—पत्र चूर्ण १-२ माशे प्रात साय मधु या गोदुग्ध से देते हैं। ग्रंथिशोथ, यकृच्छोथ, प्लीहावृद्धि आदि मे पत्तियो का लेप एरण्ड तैल मे मिलाकर करें।

मूल—

मूल की छाल वेदनाहर, वामक एव विषघ्न है। इसकी क्रिया इपीकाक के तुल्य होती है। यह हृल्लास तथा स्वेदोत्पत्तिकारक है। अधिक मात्रा (१५ से ३० रत्ती तक) मे देने से वमनकारक है। वमन से कफ निकलता है तथा शरीर की पीडा कम होती है।

(६) प्रतिश्याय, कास व श्वास पर—मूलत्वक् का धूम्रपान कराने से कफ शमन होकर सिर का भारीपन आदि उपद्रव दूर होते है।

कफ कास पर—कफ का स्राव कराने के लिये छाल चूर्ण १-२ रत्ती शहद या शक्कर के साथ दिन मे दो वार देते हैं।

(७) सर्प विष पर—जड का क्वाथ या जड के ४-४ माशे चूर्ण को जल मे पीस छान कर २-२ घटे वाद पिलाते हैं। तथा दंश स्थान पर इसका लेप भी करते हैं। इस प्रयोग से वमन, विरेचन द्वारा विष का प्रभाव कुछ कम हो जाता है। फिर उत्तेजक औषधियों का सेवन कराते है।

(८) अफीम के विष पर—भी उक्त प्रकार से इसका प्रयोग करते हैं।

बीज—

गुडमार के बीजों का चूर्ण प्रतिश्याय, कास, श्वास मे देते हैं।

नोट—मात्रा—पत्र चूर्ण १-२ माशे। बीज चूर्ण १-३ माशे, मूल छाल कफ निःसारणार्थ १-२ रत्ती तथा वमनार्थ २ से ४ माशे तक और क्वाथ ४-८ तोले। अधिक मात्रा में यह वमन, रेचन, अरुचि तथा निर्बलताकारक है। इसके सेवन काल मे शरीर में खुरकी होती है। अतः पर्याप्त रूप में धारोष्ण गोदुग्धपान करना श्रेयस्कर होता है।

गुड़हल [Hibiscus Rosa Sinensis]

पुष्पादि वर्ग का एव नैसर्गिक क्रमानुसार कार्पास कुल (Malvaceae) का अनेक शाखाप्रशाखा युक्त छोटा वृक्ष होता है। पत्र—शहतूत के पत्र जैसे अण्डाकार, दन्तुर, तीक्ष्णाग्र, तथा पुष्प—वर्षा व ग्रीष्म मे लाल रग के और श्वेताभ लाल रग के घटाकार होते हैं। पुष्प एकहरा, दुहरा, तिहरा लाल, श्वेत या श्वेताभलाल, पीले आदि ३-४ रग के होते हैं, इनमे लाल सर्वत्र तथा श्वेत भी अनेक स्थलो में सुलभ है। श्वेत या श्वेताभ लाल रग के पुष्प वाला गुडहल विशेष लाभकारी होता है। बीजकोष पुष्प की पखुडियो के मध्यवर्ती कोमल सलाका पर गोल गोल केसरिया रग के हैं। ये ही या इसमें ही अनेक बीज होते हैं। इसमें अलग कोई फल नही लगते। यह समस्त भारतवर्ष के वाग वगीचो में लगाया जाता है।

नाम—

सं०—जपा, ओण्ड्रपुष्प, त्रिसध्या।

हि०—गुडहल, ओड़हुल, अड़ौल, जवा, जासूद, झांसी।

म.—जासवंद । गु०—जासुद, जासूंस,

बं०—जवा । अं०—शू फ्लावर (Shoe Flower), चायनीज रोज (Chinese Rose)

ले०—हिबिस्कस रोज सायनेन्सिस ।

प्रयोज्य अङ्ग—पुष्प, पत्र, कलि (पुष्प कली), मूल छाल तथा बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, विपाक में कटु, उष्ण वीर्य, कफपित्तशामक, स्तभन, सौमनस्यजनन, रक्तरोधक, हृद्य, वृष्य, गर्भ पुष्टिकारक, मूत्रल तथा रक्तातिसार रक्तार्श, मस्तिष्क दौर्बल्य, दाह, उन्माद, हृद्रोग, रक्तपित्त, रक्तविकार, प्रमेह, ज्वर आदि मे लाभकारी है।

पुष्प—

(१) पूयप्रमेह (सुजाक) पर—प्रथम दिन १ पुष्प, दूसरे दिन २ पुष्प इसी प्रकार पाचवें दिन ५ पुष्प

गुड़हल

HIBISCUS ROSA-SINENSIS LINN.
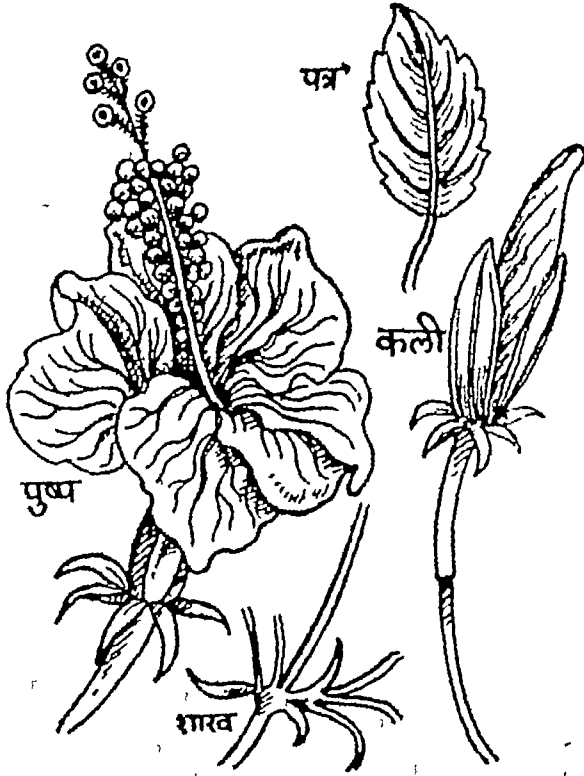
बतासे या मिश्री के साथ खावें, फिर १-१ फूल घटाते हुए १० वें दिन १ फूल खावें तथा पथ्य परहेज से रहे।

(२) आमातिसार तथा रक्तातिसार पर—ताजे पुष्प या पुष्प कली १ या २ नग नित्य प्रात साय मिश्री के साथ सेवन करें।

(३) गर्भ निरोधार्थ—पुष्पो को काजी में पीसकर ५ तोले तक पुराना गुड मिला ऋतुकाल मे ३ दिन तक खाने से स्त्री के गर्भ नहीं रहता। (यो. र)

(४) गज या खालित्य पर—फूलों को काली गाय के मूत्र में पीस कर लेप करने से गज नष्ट होकर सुन्दर घने बाल निकल आते हैं। (भा.भै र)

(५) पलित पर—पुष्प रस मे समभाग शहद मिला कर प्रतिदिन १ तोला तक नस्य लेने से (७ दिन तक) श्वेत बाल काले हो जाते है। (भा भै. र)

(६) केश वृद्धि के लिये—ताजे फूलो की पखुडियो के रस मे समभाग जैतून तैल मिला मद आच पर पकावें। द्रवांस जल जाने पर शीशी मे भर रक्खें। इसे केशो पर मर्दन करते रहने से वे अच्छे चमकीले बढते हैं।

(७) वाजीकरणार्थ या शुक्रदौर्बल्य तथा रक्तविकारो पर—पुष्पो का गुलकद सेवन करते हैं।

पुष्प कलियां—

रक्त संग्राहक, वेदनाशामक तथा मूत्रल है।

(८) श्वेत प्रदर पर—इसकी ४-५ कलियो को घृत में तल कर मिश्री के साथ खाते तथा ऊपर से गोदुग्ध नित्य प्रात ७ दिन पीते हैं।

रक्तातिसार व अर्श पर—कलियो को घृत मे तल उसमे मिश्री व नागकेशर मिला प्रात साय सेवन करें।

(१०) वीर्य विकार पर तथा पुष्टि के लिये—४-५ कलियो को घृत मे तलकर मिश्री मिला प्रात साय खाकर ऊपर से गोदुग्ध पीवें। इससे रक्तविकार तथा स्त्री के अतिरज स्राव मे भी लाभ होता है।

(११) रक्त प्रदर मे—कलियो को दूध में पीसकर पिलाते हैं।

पत्र—

इसके पत्ते मृदुकर, वेदनाशमन, मृदुरेचन तथा पित्त-प्रकोप, पूयमेह, दाह, शोथनाशक हैं।

(१२) पूयमेह (सुजाक) पर—इसकी ११ पत्तियो को १ पाव जल मे पीस छान कर उसमें जवाखार ६ माशा व मिश्री २॥ तोला मिला प्रात साय [दो बार मे] पीने से विशेष लाभ होता है। अथवा—

पत्ते १ या २ तोला लेकर रात में पानी में भिगोकर प्रात पीसकर लुआब निकाल मिश्री मिला पीवें।

१३—वाजीकरण या कामशक्तिवर्धनार्थ-शुष्क पत्तो का चूर्ण समभाग शक्कर मिला ९ माशा की मात्रा मे नित्य ४० दिन तक सेवन करें।

१४—पित्त प्रकोप पर—पत्र रस शक्कर मिला पिलाते हैं। वात गुल्म पर—पत्र रस २ या ३॥ तोले तक ७ दिन नित्य पीवें।

१५—पत्तों का लेप शोथ को मुलायम कर पीडा दूर करता है। ताजे पत्तो को पीस सिर के गज पर लगाते हैं।

मूल—

कफशामक, गर्भपुष्टिकर है।

१६–गर्भ धारणार्थ तथा गर्भ की पुष्टि के लिये– श्वेत गुडहल की जड गोदुग्ध मे पीसकर उसमे बिजौरा नीबू के बीज का महीन चूर्ण मिला ऋतुकाल मे पिलाने से गर्भ धारण होता है। (व गुणादर्श)

मूल और फूलो का क्वाथ प्रात काल पिलाते रहने से गर्भस्थित बालक की पुष्टि होती है। (भा भै. र)

१७–रक्त प्रदर पर मूल के चूर्ण मे समभाग कमल मूल चूर्ण व श्वेत सेमल की छाल का चूर्ण मिला ४ से ६ माशे तक जल के साथ सेवन कराते हैं।

छाल–

इसकी छाल स्नेहन तथा रक्त सग्राहक है। रक्तप्रदर पर इसे देते हैं।

बीज–

सुजाक पर बीजो का कल्क पानी के साथ दें।

विशिष्ट प्रयोग

१८–शर्वत गुडहल–इसके १०० फूल लेकर नीचे के हरे डठल को दूर कर पखुडियो को नीबू के १ पाव रस मे रात्रि मे भिगो काच की शीशी मे मुख बन्दकर खुले स्थान पर रक्खें। प्रात मसल छाल कर उसमे २॥ पाव मिश्री या चीनी तथा १ बोतल उत्तम गुलाबजल मिला दो बोतलो में बन्द कर धूप मे दो दिन रखें। बोतलो को दिन में कई बार हिला दिया करे। मिश्री अच्छी तरह घुल मिल जाने पर बस शर्वत तैयार है। १॥ से ४ तोला की मात्रा में पीते रहने से रक्त की उष्णता शीघ्र दूर होकर शिर पीडा, जी मिचलाना, बेहोशी, चक्कर, नकसीर, रक्त प्रदर, नेत्र जलन, अरुचि, छाती की जलन, उन्माद, निद्रानाश, लू लगना आदि मे लाभ होता है।

१६–गुडहलासव—इसके १०० फूल तथा कागजी नीबू रस आध सेर, दोनो शुद्ध चिकने मिट्टी के पात्र मे २४ घटे रखने के बाद मलकर छानकर चीनी मिट्टी के पात्र मे भर उसमें अर्क गुलाब, अर्क केवड़ा, अर्क वेदमुश्क आध आध सेर, मिश्री १ सेर मिला मुख सबानकर १५-२० दिन बाद छानकर बोतल मे भर कार्क लगा ७ दिन रक्खा रहने दें। फिर ऊपर का द्रव रूप आसव नितार कर दूसरी शीशियों मे भर काम मे लावें। मात्रा-३ माशे से २॥ तोला जल के साथ दें। वात, पित्त, रक्तशोधक, स्वादिष्ट, तृषा, श्रमनिवारक, पुष्टिकर, बच्चो को हितकारी, दीपक, प्रमेह, पूयमेह, हृद्रोग एव रक्तार्श मे विशेष लाभकारी है।

शेष प्रयोग हमारे वृ. आ अरिष्ट सग्रह मे देखें।

नोट—मात्रा—स्वरस १-२ तोला पुष्पों, का कल्क-१ से २॥ तोला। अधिक मात्रा में सेवन से आंतों में कृमि उत्पन्न करता है। यह शीत प्रकृति वालों के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ काली मिर्च व मिश्री का सेवन कराते हैं। गुलखैरा के अभाव में गुड़हल लिया जाता है।

गुरलू (Coix Lachryma)

धान्यवर्ग एव नैसर्गिक क्रम से यवकुल (Gramineae) के इसके पौधे ज्वार के पौधे जैसे ३ से ५ फुट ऊचे वर्षाकाल मे पैदा होते हैं। पत्र—४ से १८ इच लम्बे, १-१॥ इच चौडे एव नुकीले होते हैं। पुष्प—नारगी रग के। बीज कोष युक्त बालिया लम्बगोल तथा बीज कोष के निम्न भाग पर डडी सी होती है और ऊपर की ओर १-२ इच लम्बा पुष्प होता है। बीज कोष के भीतर गेहूँ जैसा एक कडा बीज होता है जिसका छिलका श्वेत, चिकना, चमकीला होता है।

यह जगली और बोई हुई भेद से दो प्रकार का होता है। बोई हुई के बीज कुछ श्वेत रग के मटमैले से व स्वाद में मीठे तथा ऊपर का छिलका मुलायम होता है। जगली के बीज कुछ चरपरे (कटु) तथा छिलका बहुत ही कडा होता है। औषधि कार्य मे जगली गुरलू ही ली जाती है।

बोई हुई के तथा जगली के भी बीजो के आटे की रोटी गरीब जगली लोग खाते हैं। भूनकर सत्तू भी बनाते हैं। बीजो को जौकुट कर पानी मे उबालकर इसका भात भी बनाया जाता है। जापान आदि देशो मे इससे एक प्रकार की मद्य बनाई जाती है।

प्राचीन वैदिक काल मे हिमालय की ढालू पहाडियो (खासिया, नागा आदि) पर इसकी खूब खेती की जाती
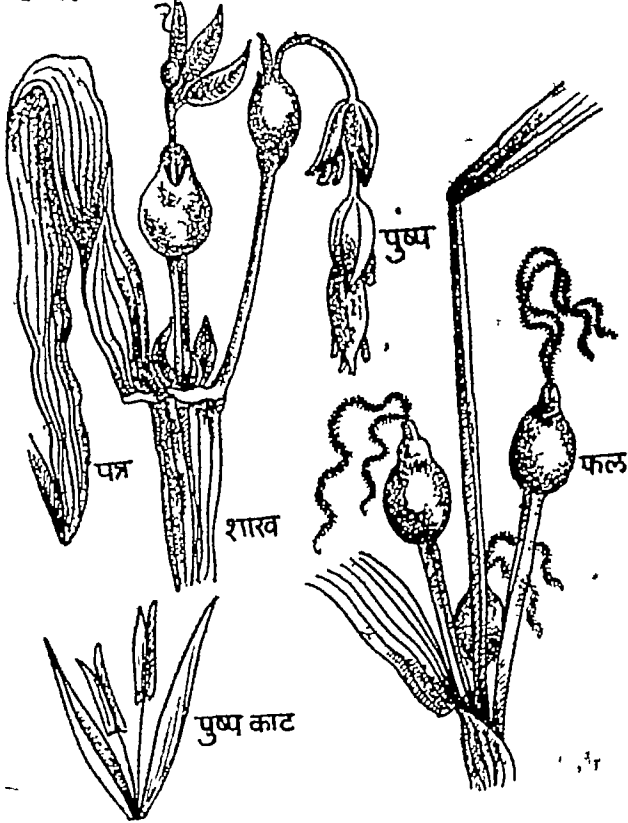
अं.—जाबस् टीअर्स (Job's tears), कोइक्स वर्बाटा (Caix barbata)
ले.—कोइक्स लेक्रिमा ।

गुण धर्म और प्रयोग—

कटु, मधुर, शीतवीर्य, मूत्रल, कृशताकरक (यूनानी मत से स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक), शातिदायक, रक्तशोधक तथा कफ, कास नाशक है ।

अश्मरी तथा अनियमित ऋतुस्राव पर इसकी जड़ का प्रयोग किया जाता है । चीन मे रोगियो को बीजो का उत्तम पथ्य पेय रूप मे बनाकर देते हैं ।

मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी पर जड़ो का क्वाथ शहद मिला कर पिलाते हैं ।
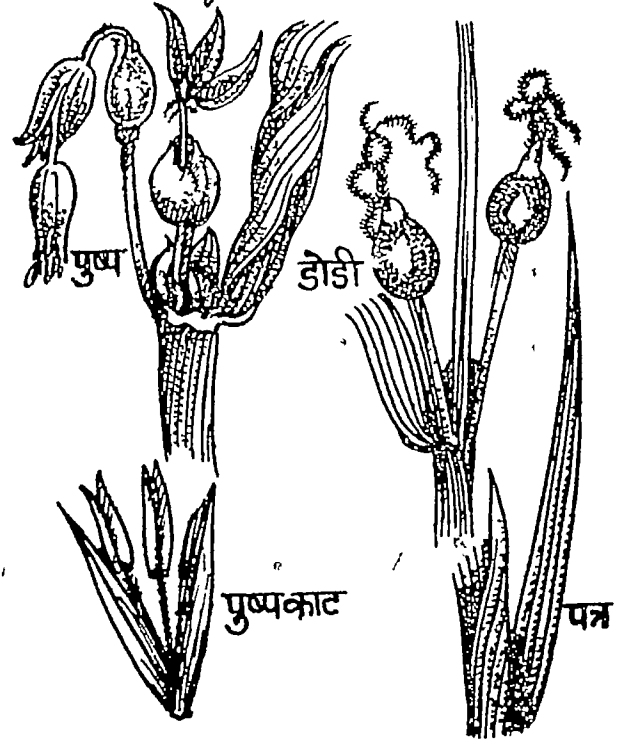
थी । गवेधु नाम से प्रसिद्ध थी । आजकल यह जगली अवस्था मे मध्य प्रदेश, तथा पजाब से लेकर आसाम व वर्मा तक एव बगाल के गढ्ढो, चावलो के खेतो मे और जापान,मलाया आदि देशो के मैदानो व ढालू पहाडियो पर खूब पाई जाती है ।

नाम—

सं —गवेधु, गवेधुका, क्षुद्रा गोजिह्वा ।
हि —गुरलू, कस्सी, गरहेडुआ, गर्गी, गरगरी, संखलु, दभिर, गंडुला ।
म.—कसई, रान जोंधला, रान मकई ।
गु.—कसाई । बं—गुरगुर, देधान, कुंच ।

गुलखैरू (Althaea Rosea)

यह पुष्प वर्ग एव कार्पास कुल (Malvaceae) की खतमी (देखो खतमी) की ही एक जाति विशेष है। इसका पौधा २-३ फुट ऊंचा, रोमश, पत्र गोल, वडे, दन्तुर, मोटे, खुरदरे, फूल—गोल, वड़े, प्याले के आकार

के गधरहित, श्वेत, गुलाबी, लाल, बैंगनी आदि विविध रंग के होते हैं। खतमी के फूल से यह बड़ा होता है। कही कही ऊदे फूल की खतमी को गुलखैरू कहते हैं। वीज—फूलो के झड़ जाने के बाद इसमे गोल, चपटे एव काले रंग के बीजयुक्त डोडी लगती है। मूल—तन्तुयुक्त, बेलनाकार ३ से ६ इच लम्बी, बाहर व भीतर से श्वेत रग की स्वाद मे कुछ मधुर होती है, इसमे लुआब बहुत होता है। औषधि कार्यार्थ प्राय दो वर्ष के पुराने पौधो से यह सग्रह की जाती है। इसे थोड़ा छीलकर उपयोग मे लाते हैं।

यह यूनान देश का है, किंतु प्राय भारतीय बाग बगीचों मी यह लगाया हुआ बहुत पाया जाता है। कही कही खुब्बाजी को गुलखेरा कहते हैं, किन्तु यह उससे भिन्न है।

नाम—

हि.—गुलखैरू, गुलखेरा। म.—गुलखेरा।
अं.—राऊंड डाक (Round dock)
ले.—एल्थिया रोजिया।

रासायनिक सङ्घठन—

मूल मे—पिच्छिल पिष्टिमय पदार्थ, पेक्टिन, शर्करा एक स्थिर तैल तथा कुछ अल्थीन (Althein) होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

बीज और पत्र—

दोष-पाचन, संशमन, मूत्रल, शोथ, वेदना आदि नाशक है। फल या बीजो का प्रयोग सधिवात और ज्वर पर किया जाता है। मूत्रदाह, अण्डशोथ, प्रवाहिका, पित्तज अतिसार एव अन्त्रावरोध पर तथा प्रतिश्याय, प्रसेक व कास मे भी बीजो का क्वाथ पिलाते हैं। पार्श्वशूल तथा फुफ्फुस शोथ में बीजो के महीन चूर्ण को मोम या तिल तैल में मिला मलहम बना मालिश करते हैं। फूल—शीतल और मूत्रल हैं। फूलो का क्वाथ कफ का पाचन करता है, श्वासोच्छ्वास के कष्ट को दूर करता है। बालतोड (व्रण), स्तनशोथ, गृध्रसी, आमवात पर इसके पत्तो को पानी मे पकाकर परिषेक करते तथा पत्तो के कल्क को गरम कर बांधते या लेप करते हैं। इसकी मूल सकोचक एव सशमन, शोथनाशक एव कासघ्न है। इससे एक प्रकार का शातिदायक पेय पदार्थ शर्बत तैयार किया जाता है। इसके शेष गुणधर्म खतमी जैसे ही हैं।

नोट—मात्रा—४-७ माशे। यह आमाशय को हानिकारक है। हानि निवारणार्थ शहद और सौंफ देते हैं। इसका प्रतिनिधि खुब्बाजी है।

गुलतुर्रा[1] नं. १ (Caesalpinia Pulcherrima)

यह शिम्बी कुल (Leguminosae) के पूतिकरजादि उपकुल (Caesalpiniaceae) का अनेक शाखायुक्त सुन्दर वृक्ष होता है। शाखायें प्राय कंटकरहित (किसी किसी की शाखाओ पर कांटे कुछ बिखरे हुये होते हैं) पुराने वृक्ष की छाल मटमैली सी होती है।

पत्र—छोटे छोटे लम्ब गोल, अभिमुख, मोटी सींक पर ६ से ६ तक होते हैं।

पुष्प—प्राय वर्षा में या अन्त में पत्रकोण से निकले हुये शाखा के अन्त पर या ६-१२ इंच लम्बी कलगी पर पुष्प लाल या पीले रग के प्राय १॥ इंच चौड़े आते हैं। पुष्प की पखुडिया ४ या ५, मध्य में २ इच लम्बे लाल चमकीले से पु केसर होते हैं। फली २ से ६ इंच लम्बी, चपटी, भीतर कतार से कई गोल चिपटे बीज होते हैं। ये बीज रुचिकर होने से बालक इन्हें प्रेम से खाते हैं।

नाम—

हि०—गुलतुर्रा, गुलमौर, कृष्णचरण।
म०—गुलतुर्रा। ब०—कृष्णचूड़ा।
अं०—गोल्ड मोहर फ्लावर (Gold mohor flower)
फाल्स पीकाक फ्लावर (Falsepeacock flower)
ले.—सीसालपिनीया पुलचेरिया, डेलोनिक्स रेजिया (Delonix Regia—यह नया नाम रक्खा गया है)

गुण धर्म और प्रयोग—

पत्र—रजस्रावी, सारक तथा उत्तेजक हैं। छाल मे रजस्रावी गुण की विशेषता है।

---

[1] इसीके कुल का किन्तु इससे भिन्न उपकुल का श्वेत पुष्प वाला एक अन्य गुलतुर्रा होता है, जिसका वर्णन नं. २ के प्रकरण में आगे किया गया है।

गुलतुर्रा
Caesalpinia pulcherrima Swartz.
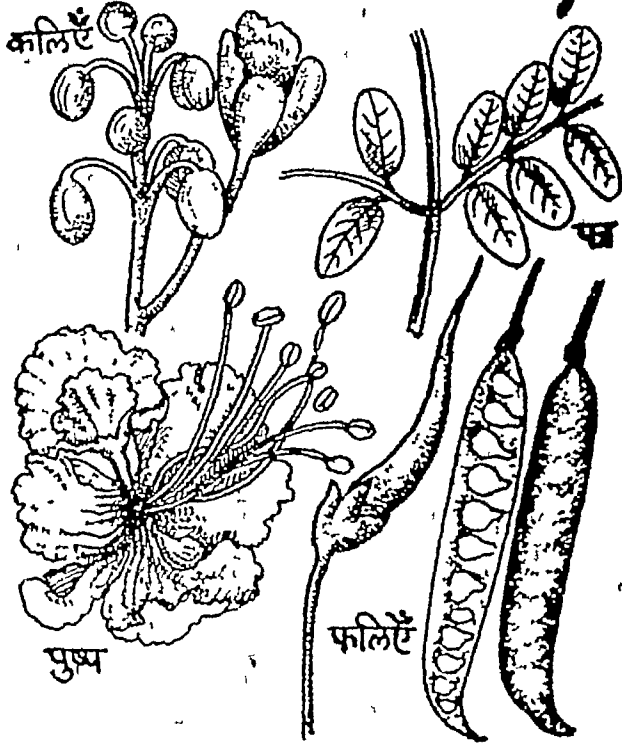
पुष्प—कास, श्वास आदि फुफ्फुस सम्बन्धी रोगो पर तथा विषम ज्वर पर पुष्पो का फांट या शीत निर्यास दिया जाता है।

गुलतुर्रा नं. २
[POINCIANA ELATA]

यह उक्त शिम्बी कुल के उपकुल अपराजितादि वर्ग (Papilionaceae) का वृक्ष अपेक्षाकृत कुछ अधिक ऊंचा (२०-३० फुट तक), अनेक छोटी छोटी चमकीली शाखा-युक्त होता है। काड भूरा, चिकना, छाल मोटी तथा मुलायम, पत्र ववूल पत्र जैसे संयुक्त, वृन्तरहित, शीघ्र पतनशील होते हैं। ये पत्र १।। इंच लम्बी सींक पर आध आध इंच की दूरी पर आमने सामने १२ से १५ तक जोड़े से लगते हैं।

फली—६-८ इंच लम्बी, १ इंच चौड़ी कच्ची दशा में हरी पीली तथा पकने पर भूरी लाल हो जाती है। बीज फली में ४-८ लम्ब गोल, चमकीले, दोनो ओर से दबे हुये होते हैं।

गुलतुर्रा नं. १ और २ के वृक्ष बागो मे तथा शहर के रास्तो के किनारे शोभा एव छाया के लिये लगाये जाते हैं। न १ की लकडा पीली, हल्की, नरम, दियासलाई आदि बनाने के काम मे अधिक आती है। यह गुजराथ, काठियावाड़, पश्चिमी घाट, बिहार आदि में अधिक होता है।

नाम—

सं.—सिद्धेश्वर, सिद्धनाथ, कृष्णचूड़ा (आदि नाम देकर वनस्पति शास्त्रज्ञ पं. जयप्रकाश जी ने इस वनस्पति को भारतीय होना सिद्ध किया है)।

हिं.—गुलतुर्रा, सफेद गुलमोर।

गु.—संधेसरो, संधेसरा। म.—संखेसर। बं.—कृष्णचूड़ा

अं.—व्हाइट गुलमोहर (White Gulmohar) क्रीम पीकाक फ्लावर (Cream peacock flower)

ले.—पोइनसियाना ऐलाटा, डेलोनिक्स एलाटा (Delonix elata)

गुण, धर्म और प्रयोग—

कटु, कषाय, सारक, स्निग्ध, त्रिदोषहर तथा ग्रन्थि, नाड़ी व्रण, आमवात, शोथ, आध्मान, विषनाशक है।

पत्र—

१ आमवात (सन्धिवात) पर—पत्ते ३ तोले तक की मात्रा मे ५ तोले पानी मे पीस छान कर दिन में ३ वार पिलाते हैं। तथा पीडा स्थान पर पत्तो के क्वाथ का बफारा देकर गरम गरम पत्तो को दिन मे २ बार बांधते हैं। शीघ्र ही लाभ होता है। रोगी को पथ्य में केवल गेहूँ की रोटी दूध से देनी चाहिये। इस प्रकार लगभग १५ दिन पथ्यपूर्वक इस उपचार से पूर्ण लाभ होता है। पत्तों के अभाव मे वृक्ष की छाल का क्वाथ दिन में दो बार देते हैं। तथा उसीका बफारा देते हैं।

२. श्वेत प्रदर पर—उक्त प्रकार से पत्तों को पानी मे पीस छान कर दिन मे दो वार देते हैं।

३ ग्रन्थी तथा नाड़ी व्रण पर—पत्तों को पीसकर लुगदी की टिकिया बना बांधते हैं या इसके कल्क का लेप करते हैं।

४ इन्द्रलुप्त या गज पर—पत्तो को पानी मे पीस कर दिन मे दो वार लेप करते हैं।

५. जख्म पर—चाकू आदि से जख्म हो जाने पर पत्तो को मुख मे चबाकर वाधते हैं।

मूल—

विच्छू के दश पर इसका निम्न प्रयोग वहुत प्रशसित है—इसकी ताजी जड को पानी मे घिसकर या पीस कर दश स्थान पर लगाते तथा ऊपर जहा तक विष चढा हो इस जडी को ऊपर से नीचे की ओर कई वार फिराते हैं। यदि यह जड रविवार के दिन तीसरे प्रहर से सायकाल तक के समय में खोद कर लाई गई हो तो विशेष गुण होता है। शीघ्र ही आधे घन्टे तक विष की शान्ति हो जाती है। यदि फिर वेदना वढने लगे तो पुन उक्त प्रकार से ही उपचार करे। कभी कभी तीव्र विच्छू के दश पर १ घन्टे से भी अधिक समय तक इस उपचार को करना पडता है। ताजी जड के अभाव मे इसकी सूखी जड को थोडी देर जल मे भिगोकर काम मे ला सकते हैं।

नोट—गुलतुर्रा नं. १ की जड़ प्रायः ताजी गीली ही प्रभावशाली होती है, किन्तु नं २ की जड़ गीली और सूखी दोनों दशा मे गुणकारी है।

गुलदाउदी [*CHRYSANTHEMUM CORONARIUM*]

भृंगराज कुल (Compositae) का इसका ३ फुट तक ऊंचा सुगन्धित क्षुप होता है।

पत्र—सेवती गुलाव (गुलसेवती) या कपास के पत्र जैसे कतरनदार होते हैं। उद्यानो मे लगाये गये इसके पौधे के पत्ते जगली पौधे के पत्तो की अपेक्षा वडे होते हैं किन्तु उनमे सुगन्ध अपेक्षाकृत कम होती है। जगली के पत्तो मे सुगध अधिक होती है।

पुष्प—गेंदा या गुलसेवती के ही पुष्प जैसे, किन्तु कुछ धूसर वर्ण के श्वेत, किसी मे पीले तथा किसी के नारगी रग के शरद् ऋतु मे आते हैं। जगली के पुष्पो की अपेक्षा वागी के पुष्प वडे तथा अधिक सुगन्धित होते हैं। मूल—अकरकरे की मूल जसी तथा गुणधर्म मे भी अकरकरे के समान है।

यह चीन-जापान की ओर का क्षुप भारत के जगलो मे स्वयमेव तथा पुष्प वाटिकाओ मे या घरो मे गमलो मे लगाया जाता है।

नोट—इसे कोई गुल सेवती कहते हैं। क्योकि गुलसेवती [सफेद गुलाव] और इसमें विशेष भेद नही है। यह गुलदाउदी अपने फारसी नाम से ही हिन्दी, गुजराती एवं वंगला भाषा में प्रसिद्ध हैं।

गुल दण्डी (गुलदाउदी)
CHRYSANTHEMUM CORONARIUM LINN.

पुष्प
पत्र
शाख
पुष्पकाट

नाम—

सं०—शतपत्रिका, शिववल्लभा, सेवंती, चन्द्रमल्लिका [ये ही नाम गुलसेवती के भी हैं]।
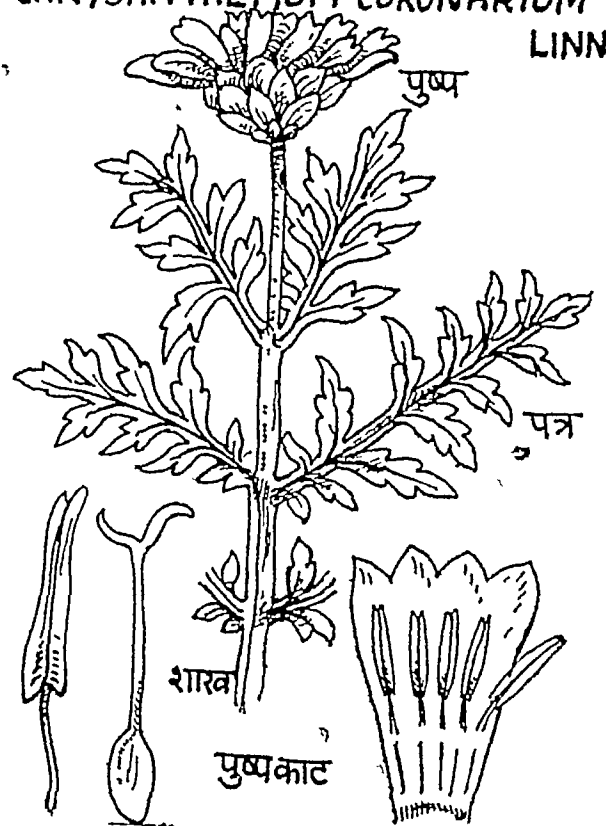
हिन्दी—गुलदाउदी, गुलदावरी, गलचीनी, गेन्दी।
म०—दवणशेवती, शेवती, अकुरकरा, गुलचीनी।
बं०—गुलदाउदी, चन्द्रमल्लिका।

ले —क्रिसेन्थिमम् कोरोनेरियम
,, इण्डिका

गुण धर्म और प्रयोग—

फूल और पत्र—

कटु, ग्राही, शीतवीर्य, पित्तशामक, दीपन, पौष्टिक, उत्तेजक, वीर्यवर्धक, हृद्य, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, कान्तिवर्धक तथा यकृत् विकार, रक्तपित्त, मुखपाक, दाह, रक्तविकार, जीर्ण प्रमेह आदि नाशक हैं।

शीतजन्य मस्तिष्क विकारो पर इसके सूंघने से ही बहुत कुछ लाभ होता है। पित्तज्वर तथा यकृत् के विकारो पर पत्र या फूलो का फाट या क्वाथ देते हैं। इससे वमन के द्वारा पित्त निकल कर शान्ति प्राप्त होती है। मासिक धर्म की रुकावट तथा सुजाक, वातशूल एव रक्तविकार मे भी इनके फाण्ट का प्रयोग करते हैं। ग्रन्थि पर–पत्तो को पीसकर पुल्टिस बना बाधने से गांठ विखर जाती है या शीघ्र पक कर फूट जाती है। अश्मरी पर–शुष्क फूलो का चूर्ण १ से ६ माशा तक समभाग मिश्री मिला पानी के साथ पिलाते हैं। अथवा ३ तोले फूलो का क्वाथ या फाट बनाकर पिलाते हैं। वृक्क तथा मूत्रनलिका की पथरी टूट कर निकल जाती है। पथ्य रूप मे रोगी को चावल पकाते समय जब चावल आधे पक जावें तब उसमे इसके फूलो को पोटली मे बाध कर छोड दें। चावलों के परिपक्व हो जाने पर पोटली को निकाल दें तथा चावलो को दूध शक्कर के साथ खिलावें। कफ शोथ पर पीली गुलदाउदी के फूल १ तोले, सोठ ३ माशा तथा श्वेत जीरा १॥ माशा एक साथ जल के साथ पीस कर लेप करते हैं। या इसके फूलो तथा पत्रो को पीस कर लेप करते हैं। अग्निदग्ध स्थान पर भी इस लेप से शान्ति मिलती है। बाजीकरणार्थ हरे पत्तों को पीसकर अण्डकोष और गुदा के मध्य स्थान पर धीरे धीरे मलते हैं, इससे इन्द्रिय की शक्ति बढती है। गर्भाशय को शिथिल करने के लिये फूलो के क्वाथ से कटिस्नान कराते हैं। मूत्र कृच्छ्र या सुजाक पर इसके पत्रो को कालीमिर्च के साथ पीस छानकर पिलाते हैं। रक्तार्श के रक्तस्राव पर पत्तो का शीत निर्यास शक्कर के साथ सेवन कराते हैं। हृदय के विकारो पर पुष्पो का अर्क या गुलकन्द का सेवन कराते हैं।

मूल—

गुणधर्म में अकरकरा जैसा ही है। व्रण या फोड़ों पर इसे पीसकर गरम कर लगाने से वे फूट जाते हैं।

नोट—इसके चूर्ण की मात्रा २ से ७ माशे तक है। क्वाथ २ से ४ तोले तक।

गुलबकावली [CLERO DENDRON FRAGRANS]

यह निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) का क्षुप ४-६ फुट ऊचा, शाखा व पत्र अभिमुख। पत्र–मोटे, चौडे, नुकीले, मसलने से दुर्गन्धयुक्त। फूल–गुलदस्ते जैसे गुच्छो मे श्वेत रग के सुगन्धित, गुलाव पुष्प जैसे दुहरी, तिहरी पखुडियो से युक्त, कुछ गुलाबी या बैंगनी छटायुक्त होते हैं। ये रूप व रग मे चित्ताकर्षक, ग्रीष्म एव वर्षा मे खूब खिलते हैं। इसके फल व बीज देखने मे नही आते।

औषधि मे इसका बहुत कम प्रयोग होता है। इसके पत्तो का उपयोग फोडे, फुन्सी, शोथ पर किया जाता है। पत्तो को पीसकर लेप करते हैं। आखो की दृष्टि शक्ति बढाने के विषय मे इसकें पुष्पों की प्रख्याति है।

इसका लेटिन नाम 'क्लेरोडेन्ड्रान फ्रेग्रन्स' कच्छनी वनस्पतियों नामक गुजराथी ग्रन्थ से प्राप्त हुआ है।

गुलदुपहरिया [PENTAPETES PHOENICEA]

मुचकुन्द कुल (Sterculiacea) के इस बागी पुष्प के क्षुप १॥-२ फुट ऊचे वर्षाकाल मे अधिक होते हैं। पत्र कोमल, हरे, प्रान्त भाग अनीदार, ५-८ इंच लम्बे तथा १॥-२ इंच चौडे होते हैं। फूल प्राय लाल या

श्यामाभ लाल वर्ण के चमकीले, गोल, निर्गन्ध, ५-६ पखुडायुक्त होते हैं। किसी किसी पौधे में श्वेत, फीके, पीले और सिन्दूरी रग के भी पुष्प होते हैं। इसके फूल प्राय दुपहर के समय मे ही खिलने तथा सायकाल मे मुर्झा जाने के कारण इसे गुल दुपहरी कहते हैं। पुष्प वर्षाकाल मे अधिक आते हैं, वैसे तो प्राय सब काल में ये फूल आते हैं। फल लम्ब गोल कुछ नुकीला होता है तथा पकने पर इसमे काले बीज १-३ तक पाये जाते हैं। ये भारत के उष्ण प्रदेशो मे उत्तर पूर्वी प्रान्त तथा बगाल गुजराथ आदि के बाग बगीचो मे लगाये जाते हैं।

नाम–

सं०—बन्धूक, बन्धुजीव, माध्यान्हिक।
हि०—गुल दुपहरिया, दुपहरिया, गोजुनियां।
म०—दुपारी। गु०—बेपोरियो। बं०-बन्धूक।
ले०-पेन्टापेटस फीनीसिया।

गुण धर्म और प्रयोग–

लघु, किंचिदुष्ण, वातानुलोमन, कफ करने वाला, वातपित्त, ज्वर, प्रेत तथा ग्रहबाधा निवारक है।

अर्धावभेदक पर—फूलो के रस का नस्य देते है। इसके कोई विशेष प्रयोग नही पाये जाते।

गुलबास (Mirabilis Jalapa)

यह पुनर्नवा कुल (Nyctaginaceae) का बहुशाखी लगभग ३ फीट ऊचा क्षुप शोभा के लिये बागो एव घरो मे भी लगाया जाता है। इसकी शाखाऐं ग्रन्थि (लाल ग्रन्थि) युक्त इधर उधर फैली हुई कोमल, पत्र ६-७ इन्च लम्बे प्राय त्रिकोणयुक्त छोटे, लम्बे और मुलायम होते हैं। पुष्प घन्टाकार कटसरैया के पुष्प जैसे, निर्गन्ध, श्वेत, रक्त, श्वेताभ रक्त, पीताभ रक्त अनेक रग के वर्षाकाल मे प्राय सन्ध्या समय खिलते हैं, फल या बीज गोल कालीमिर्च जैसे झुर्रीदार होते हैं। बाजार के व्यापारी पुरुष कालीमिर्च मे ये बीज प्राय मिश्रण कर दिया करते हैं।

मूल या कन्द—मूल कन्दमय बहुवर्ष स्थायी होती है। नये क्षुप का कन्द ऊपर की ओर बेलनाकार तथा निम्न भाग मे गोपुच्छाकार होता है। पुराने क्षुप की जड अर्धगोलाकार सलगम जैसी तथा चोबचीनी जैसी गुणकारी होती है।

नोट–ध्यान रहे पीले फूल वाली कटसरैया को भी पियाबासा कहते हैं। वह कटकयुक्त तथा इससे भिन्न है। कटसरैया का प्रकरण देखिये।

औषधि के लिये श्वेत पुष्प वाला गुलबास प्रशस्त माना गया है।

नाम—

सं.–कृष्णकेली, संध्याकली। हि–गुलबास (यह फारसी के 'गुल अब्बास' का अपभ्रंश है), गुलाबांस।
म.—गुलबाशी, सायकाली। ब—कृष्णकेली।
अ.–मारव्हेल आफ पेरू (Marvel of Peru), फोर ओ

गुलबास

Mirabilis jalapa Linn.

क्लाक फ्लावर (Four o'clock flower)

ले —मिरे विलिस जालप।

गुण धर्म और प्रयोग—

शीत, वातकारक, पौष्टिक, जलापा के समान विरे-चक, ग्रन्थि, व्रण, अर्श, शोथ, प्रदाह आदि नाशक है।

मूल (कन्द)—

सौम्यरेचक, शुष्क मूल पौष्टिक, वाजीकर, रक्तप्रसादन, आमवात, फिरङ्गरोग, कण्डू आदि मे इसका क्वाथ पिलाते हैं। पुष्टि या वाजीकरणार्थ—इसके कन्द को कद्दूकस से कस कर छायाशुष्क चूर्ण कर घृत मे थोडा भून कर इसमें बादाम, पिस्ता, चिरौंजी आदि मेवा के महीन टुकडे मिला शक्कर की पाक की चासनी मे सबको मिला १-२ तोले के मोदक बना लें। नित्य प्रात साय १-१ मोदक खाकर ऊपर से ताजा गोदुग्ध पीलें। वीर्य-स्राव पर—कन्द १ तोला को गोदुग्ध १ पाव तक पीस छानकर उसमे मिश्री १ तोला तथा श्वेत जीरा चूर्ण ६ माशा मिला प्रात साय सेवन करने से लाभ होता है, रक्तविकार एव पित्त दोष की शाति होती है। पथ्य से रहना आवश्यक है। प्लीहा शोथ पर कन्द को ऊपर से छीलकर १॥ तोला तक की मात्रा मे आग पर भूनकर नमक व कालीमिर्च के साथ सेवन कराते हैं। अर्श पर—कन्द के चूर्ण मे समभाग त्रिकटु चूर्ण मिला २ माशा की मात्रा में शहद के साथ सेवन कराते है। बालो को उड़ाने के लिये इसे पानी मे पीस लेप करते है। फोड़े पर—इसे पानी मे पीस बार बार लेप करते हैं या इसे पीसकर टिकिया बना गरम कर बाधते हैं। पका हुआ फोड़ा फूट जाता है या वह पककर शीघ्र फूटता है।

पत्र—

रेचन, कामोद्दीपक तथा शोथ, उपदश, जलोदर, कामला, प्रदाह, व्रण आदि नाशक है। फोडे फुंसियों पर—पत्तो पर घृत या तैल चुपड कर व गरम कर बाधते हैं। उठते हुए कच्चे फोड़े विलीन होते हैं, जो फोडे बढ़ गये हैं उनका पाचन व दारण हो जाता है।

कामला तथा जलोदर पर—पत्ते १॥ तोला की मात्रा मे पानी के साथ पीस छान कर (यह १ मात्रा है।) दिन मे दो तीन बार पिलाते हैं। अथवा पत्तो की भुजिया बना रोटी के साथ दिन मे २-३ बार खिलाते हैं। रेचन होकर दोष नष्ट हो जाते हैं।

पित्तप्रकोपजन्य दाह एव खुजली पर—पत्र रस की मालिश करते हैं। चोट, मोच, शोथ पर—पत्तो को पानी मे पीस कर लेप करते है।

फूल—

समशीतोष्ण तथा अर्श नाशक हैं। अर्श पर फूलों का चूर्ण देते है।

बीज—

ग्राही, रक्तस्तम्भक हैं। श्वेत या रक्तप्रदर पर—बीजो के चूर्ण का प्रयोग करते हैं।

नोट—मात्रा—जड़ व पत्र ७ माशे से १॥ तोले तक। फूल व बीज-५ माशा से ७ मासे तक।

यह उष्ण प्रकृति के लिये अहितकर है। हानिनिवारणार्थ मिश्री व ताजा दूध देते हैं।

गुलमेंदी [*IMPATIENS BALSAMINA*]

यह चागेरी कुल (Geraniaceae) का सुन्दर पुष्पो से लदा हुआ क्षुप १ से २ फुट ऊंचा, शोभा के लिये बाग बगीचो मे लगाया जाता है। यह जगलो मे भी कही कही पाया जाता है। यह गुलाबी नीले आदि कई वर्ण के निर्गन्ध होते है। इलायची के दाने जैसे बीज होते हैं। पत्र—१॥ से ४ इंच लम्बे पतले, दन्तुर किनारो से युक्त, नीचे का पत्र बडा ऊपर का छोटा होता है।

नाम—

हि.—गुलमेंदी, बॉतिल, तिलफाडा।
म.—तेरड़ा। ब.—दोपाटी। गु०—गुलमेंदी।
अं०—गार्डन बालसम (Garden balsam), टच मी नाट [Touch-me-not]
ले०—इम्पेशन्स बालसेमिना।

गुण धर्म और प्रयोग—

तिक्त, आर्तवार्य, मूत्रल, दीपन, दाह-प्रशमन, वामक, रेचक।

वाजीकरणार्थ—फूलो को मांस के साथ पकाकर खाते हैं। अग्निदग्ध पर—फूल व पत्रो का स्वरस लेप करने से संताप व दाह शांत होता है। संधिवात पर—इसका लेप करते है। गुदभ्रंश पर—इसके बीजों का चूर्ण बुरकाते हैं।

नोट—इसकी सेवनीय मात्रा २ से ७ माशे तक है।

गुलशब्बो [*POLIANTHES TUBEROSA*]

यह रसोन कुल (Liliaceae) या तालमूली कुल (Amaryllidaceae) का बहुवर्षायु गुल्म २ से ३॥ फुट ऊंचा बाग बगीचो या घरो मे भी लगाया हुआ पाया जाता है। यह जगलो मे भी होता है। पत्र ६ से ९ इंच लम्बे, आध इंच चौडे, प्याज के पत्र जैसे, उज्ज्वल हरित-वर्ण के निम्न भाग मे किंचित् लाल वर्ण के दलदार एवं रसपूर्ण होते हैं। मूल या कन्द प्याज या लहसुन जैसा गाठदार होता है। वर्षा के प्रारम्भ मे पानी गिरने पर इस कन्द से पत्राकुर फूटते है, तथा मध्य भाग से एक काफी लम्बी डडाकर सलाका निकलती है, जिस पर श्वेत वर्ण के फूल घंटाकार या नलिकाकार १॥ से २॥ इंच लम्बे मुलायम, अति सुगंधित आते हैं। रात्रि मे ये फूल खिलकर खूब महकते हैं, अत इन्हे शब्बू (रजनीगन्धा) कहते हैं। वर्षा ऋतु से लेकर शीत ऋतु तक फूलो की खूब बहार आती है।

इसके गुल्म से कभी कभी अंधियारी रात्रि मे एक प्रकार की चमक निकलती हुई दिखाई पड़ती है।

नाम—

सं०—रजनीगन्धा, भरंजिका, नलिका।
हि०—गुलशब्बो, गुलचेरी। बं०—रजनीगंधा।
म०—गुल छब्बू, गुलछब्बी।
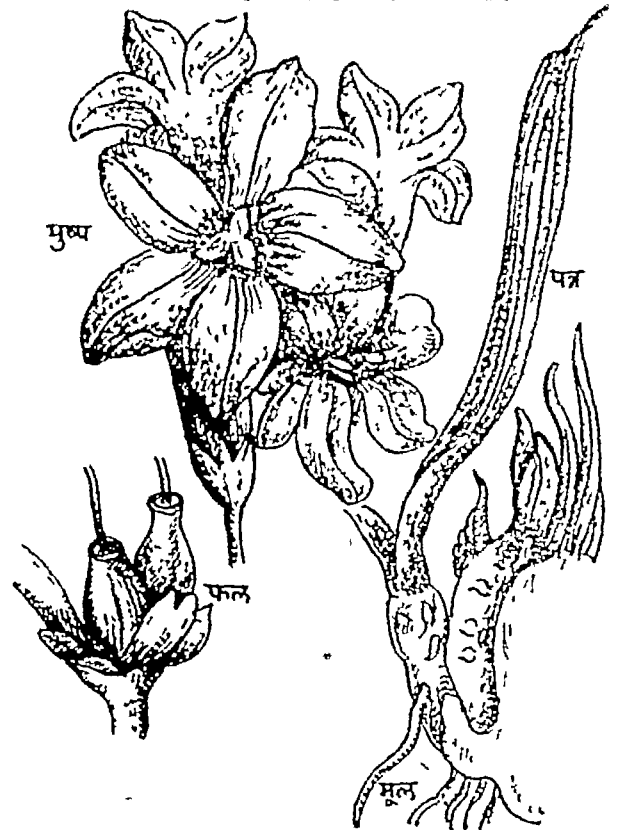
अ.—ट्यूबरोज (Tuberose)।
ले.—पोलिएन्थस ट्यूबरोजा।

गुण धर्म और प्रयोग—

कसैला, स्निग्ध, लघु, उष्ण, रूक्ष, वातानुलोमक, लेखन, वामक तथा शोथ, हिक्का, कुष्ठ, ग्रन्थि आदि नाशक है।

मूल या कन्द—आर्तवप्रवर्त्तनार्थ तथा वमनार्थ इसका प्रयोग करते हैं। सुजाक पर—इसके चूर्ण को दूध के साथ या चूर्ण को ठंडाई के साथ पीस छानकर पिलाते हैं। मद्यार्क में बनाया हुआ इसका टिंचर भी दिया जाता है। बच्चों की फुंसियों पर (विशेषत जन्मत १२ दिन के बच्चे के शरीर पर जो लाल लाल फुंसियां निकलती हैं) कन्द को हल्दी के साथ पीस कर मक्खन मिलाकर लगाते हैं।

ग्रंथि पर—इसे दूब के रस के साथ लेप करते हैं।

प्लीहा शोथ पर—इसे सिरका में पीस लगाते हैं।

दंत शूल पर—इसका घन क्वाथ दांतो पर मलते हैं तथा क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

फूल—मूत्रल एव वामक हैं। इसे सूंघने से मस्तिष्क के वात और कफ के विकार दूर होते हैं। गुलरोगन की तरह इसके फूलो से जो तैल प्रस्तुत किया जाता है उसके सेवन से आर्त्तव व मूत्र का प्रवर्त्तन तथा गर्भपात भी होता है। इस तैल की मालिश शोथ पर करते हैं। इसके नस्य से मस्तिष्क की शुद्धि होती है। केश वृद्धि के लिये इसे बालो पर लगाते हैं।

पत्र—कष्टार्त्तव तथा मूत्रकृच्छ्र पर—इसके ताजे पत्तो का स्वरस ३ तोला तक पिलाते हैं। मूढगर्भ तथा मृत-गर्भ के उत्सर्गार्थ इस स्वरस को पिलाते तथा पत्तो के कल्क को योनिमार्ग मे धारण कराते हैं।

नोट—यह उष्ण प्रकृति के लिए हानिकर है। हानि-निवारणार्थ—गुलरोगन और सिरका का प्रयोग करते हैं।

गुलाब (Rosa Centifolia)

यह स्वकुल तरुणी कुल (Rosaceae) का प्रमुख एवं सुप्रसिद्ध पुष्प क्षुप ५-१२ फुट ऊंचा; शाखायें कंटकयुक्त, पुष्प लाल, श्वेत, पीले आदि अनेक रंग के अनेक पखुडियो से युक्त (जगली गुलाब की प्राय. ५ पंखुडियां होती हैं।) वसतऋतु मे खिलते हैं।

फल—पुष्प बाह्य कोषनलिका के भीतर, पुष्प के झड़जाने पर इसके अण्डाकार फल प्रतीत होते हैं जो पकने पर लाल होते हैं। ये कुछ मीठे होते हैं।

नोट—(१) देशी विदेशी, वन्य-ग्राम्य, सुगन्ध-निर्गन्ध आदि भेद से इसकी लगभग १५० से भी अधिक जातियां उपजातियां पायी जाती हैं। प्रस्तुत प्रसंग में मुख्यत सर्वत्र प्रचलित उक्त शत पत्री गुलाब (R Centifolia) के साथ ही उसका भेद फारसी गुलाब (R. Damascena या R Gallice—लाल गुलाब) का तथा लता गुलाब का वर्णन किया जाता है। जंगली गुलाब की एक जाति जिसमें पीताभ श्वेत वर्ण के पुष्प आते हैं जिसे गुलाब सेवती (R Alba) कहते हैं उसका वर्णन आगे गुलाब सफेद के प्रकरण मे देखिये।

(२) इसका मूल उत्पत्तिस्थान सीरिया, ईरान है। यद्यपि यह भारत में भी प्रायः सर्वत्र उद्यानों में तथा घरों में कलम करके लगाया जाता है तथा बगाल, पटना, गाजीपुर, पंजाब, पश्चिमोत्तर प्रदेशों में खूब होता है, तथापि हजारों मन इसके पुष्पों का ईरान से अभी भी भारत में आयात होता है। पहाड़ों पर इसके बीज वायु से बिखर कर यह नैसर्गिक रुप से भी खूब पैदा होता है।

नाम—

सं.—तरुणी, शतपत्री, कर्णिका, चारुकेशरा, महाकुमारी, गंधाढ्या।

हि. म ग —गुलाब। बं.—गोलाप।

अं —क्याबेज रोज (Cabbage Rose), डमस्क या पर्शियन रोज (Damask or Persian Rose)।

ले.—रोजासेंटी फोलिया, रोजा डेमेसीन (R. Damascene) रोज गेलिक (R Gallica)

नोट—लतागुलाब (राजगुलाब) जिसे संस्कृत में कुब्जक, भद्रतरुणी आदि, हिन्दी में—कुजोई, बगला में कुजा, गुजराथी में कस्तूरी गुलाब, अं—में मस्करोज (Musk Rose) तथा लेटिन में-रोजो माश्चाटा (R Maschata) कहते हैं, इसका कांटेदार आरोही क्षुप होता है।

गोलाप [गुलाब]

ROSA DAMASCENA MILL.
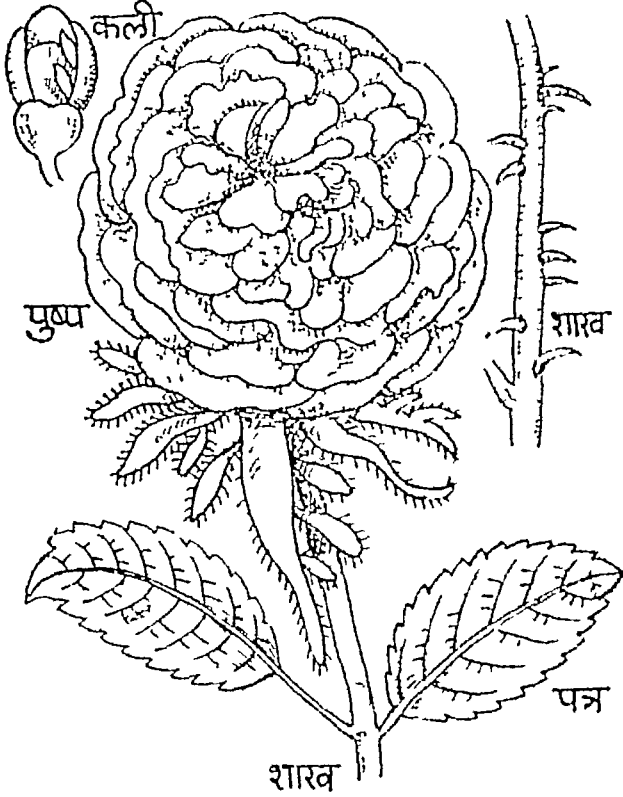
कांटे मजबूत बिखरे हुए से, पत्र--२-६ इंच लम्बे अनीदार कंगूरे दार, पुष्प--श्वेत, कुछ रोमश, १॥--२ इंच व्यास के १--१॥ इंच लम्बे, कस्तूरी जैसे सुगंधित कोमल वृन्तों से युक्त होते हैं। इन पुष्पों से इत्र निकाला जाता है। यह खास कर इत्र के लिये ही भारत के उत्तर पश्चिम प्रदेशों में बोया जाता हैं। यह वाजीकरण है तथा पित्त विकारों एवं त्वग्दाह आदि पर उपयोगी है।

फल--इसके फल ३ इंच व्यास के गोल एवं भूरे रंग के होते हैं। और इसकी जड़ जिसे राजरानी कहते हैं नेत्र-रोगों पर लाभकारी है।

रासायनिक संघठन--

सर्वसाधारण गुलावो में एक तैल (Oleum Rosi) टेनिक एसिड तथा गैलिक एसिड पाया जाता है।

गुणधर्म और प्रयोग--

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, रोचक, मधुर विपाक, शीतवीर्य एव प्रभाव हृद्य। त्रिदोष शामक दीपन, पाचन, अनुलोमन, ग्राही (अल्प मात्रा मे शुष्क फूल), मृदुरेचन (अधिक मात्रा में ताजे फूल), मेध्य, सौमनस्यजनन, वर्ण्य, दुर्गन्धनाशक, दाहप्रशमन, धातु-वर्धक, वाजीकर तथा शोथ, व्रण, त्वग्दोष, ज्वर, पाचन विकार, मुखपाक मस्तिष्कदौर्बल्य, कोष्ठवात, विबन्ध, हृद्रोग, रक्तपित्त, रक्तविकार, दौर्गन्ध्य, दौर्बल्यादि नाशक है।

(१) मलशुद्धि एव ज्वरादि रोगोपरान्त की उष्णता पर—शुष्क फूलों की २ तोला पंखुड़ियों को ५-७ तोले जल मे रात्रि समय भिगो प्रात. मल छानकर ६ माशे शक्कर मिला पिलाने से शौचशुद्धि होकर मसूरिका, रोमान्तिका, विसर्प, ज्वर आदि निवृत्ति के बाद होने वाली उष्णता दूर होती है। इससे आमाशय के रस की तीव्रताजन्य मुखपाक, कण्डू, पामा, रक्तदाह आदि शमन होते हैं। इस प्रकार के मुख पाक पर गुलकन्द का सेवन तथा पुष्पो के फाण्ट से कुल्ले (गण्डूष) कराना भी हितकर है।

अथवा--मल शुद्धि के लिये शुष्क गुलाब की कलियों को मिलाकर पकाया हुआ चावल, घृत व शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है, रक्तशुद्धि होकर रक्तविकार शमन होते है।

(२) प्रदर, वीर्यविकार, रक्तार्श एवं पित्तप्रकोप पर—प्रात साय ताजे फूल ५-५ तोले लेकर २-३ माशे मिश्री के साथ पीस कर खावें, ऊपर से थोडा गोदुग्ध पीवें। १४ दिन तक शौच शुद्धि एव मूत्रस्थान का उत्ताप दूर होकर उक्त विकारो मे लाभ होता है।

(३) अजीर्ण तथा उदर पीडा पर—पुष्प ६ माशा, पीपल, श्वेत जीरा, सोठ ३-३ माशा, सुहागा भुना १ माशा तथा खाने का सोडा ४ माशा एकत्र महीन पीस कर मिश्री और गुलावजल १०-१० तोले मिला मद आच पर पका अवलेह बना (यह १ मात्रा है) रात्रि मे सेवन करें। इससे कोष्ठबद्धता दूर होकर शूल नष्ट होता है।

(४) अन्यान्य प्रयोग--श्वास पर—पुष्पो को पीसकर शर्वत बनफशा के साथ चटाते हैं। मसूरिका (चेचक) ग्रस्त रोगी के विस्तरे पर शुष्क फूलो का चूर्ण विखेर देने से चेचक के दाने शीघ्र सूखते हैं। योनिस्राव तथा

गर्भाशय शूल पर फूलो को पीसकर योनिमार्ग मे रखते हैं। इससे योनि मे शैथिल्य दूर होता है। शिर शूल मे इसे जल मे पीस मस्तक पर लेप करते है। नेत्राभिष्यन्द पर इसके स्वरस को नेत्र मे डालते हैं। कर्ण शूल पर इसके स्वरस को कान मे डालते हैं। दुर्गन्धयुक्त स्वेदाधिक्य पर इसे महीन पीस कर शरीर पर मलते है। नेत्रदाह पर काले सुरमे को गुलाब अर्क की २१ भावनाऐं देकर महीन खरल कर सलाई से लगाते हैं, रक्तस्राव पर शस्त्रादि लगने पर होने वाले रक्तस्राव पर पुष्पों का चूर्ण बुरकने से स्राव बन्द होकर घाव मे शीघ्र सुधार होता है। योनि के दुर्गन्ध, जलस्राव तथा दाह पर पुष्प की पखुडियो के कल्क का लेप करते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) गुलकन्द[1]—ताजे सुगन्धित पुष्पो की पखुडिया १ भाग तथा २ से ४ भाग तक मिश्री या शुद्ध शक्कर लेकर काच की या चीनी मिट्टी की भरनी मे थोडी पंखुड़िया व मिश्री चूर्ण को हाथ से मसलते हुये डाल दें, उस पर थोडी मिश्री या शक्कर की तह बिछा कर उस पर पुन पखुडिया व मिश्री का मिश्रण फैला दें। पुन शक्कर की तह बिछा कर पखुडियो का मिश्रण फैलावें। इस प्रकार पात्र मे सबको भर कर पात्र का मुख बन्द कर रख दे। बीच बीच मे पात्र को धूप मे रख दिया करें। १ या २ मास बाद उत्तम गुलकन्द तैयार होगा। मात्रा १। से २।। तोले तक सेवन से मलावरोध, दाह, पित्त, स्त्रियो का अतिरज स्राव आदि मे लाभ होता है[2]।

सुकुमार मनुष्य, अर्श के रोगी एव सगर्भा को गुलकन्द का सेवन प्रात करना ठीक होता है। ज्वरावस्था मे उदर शुद्धि के लिये गुलकन्द को अमलताश गूदा २।। तोले के क्वाथ मे मिलाकर देना उत्तम है।

गुलकन्द निर्मित उत्तम प्रयोग—(अ) २ भाग शक्कर या मिश्री के योग से बना हुआ गुलकन्द १ सेर मे बगभस्म, प्रबालपिष्टी, छोटी इलायची बीज चूर्ण, चादी के वर्क ६-६ माशा तथा गिलोय सत्व १ तोले मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा १ से २ तोले तक सेवन से रक्तविकार, पित्त प्रकोप, प्रदाह आदि मे तथा रक्तप्रदर मे भी उत्तम लाभ होता है। रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) के रोगी के लिये भी यह एक उत्तम प्रयोग है। यह उत्तम सौमनस्यजनन एव क्षुधावृद्धिकर है।

(आ) गुलकन्दासव (विशूचिकानाशक)—गुलकन्द १० तोले लेकर सिल पर महीन पीसकर उसमे गुलाबजल (अर्क गुलाब), अर्क सौफ आध आध सेर तथा धनिया ३ तोले, कासनी व बड़ी इलायची के दाने डेढ़-डेढ तोले महीन चूर्ण कर मिलाकर शुद्ध मिट्टी के पात्र मे भर १२ घन्टे बाद छानकर काम मे लावें। मात्रा २।। तोले। इससे हैजा मे शीघ्र लाभ होता है।

—श्री बलवन्त शर्मा मिश्र वैद्यराज

(इ) शीतपित्त पर—गुलकन्द ५ तोले मे सौंफ चूर्ण ६ माशा और सिरका २ तोले मिला इस मिश्रण की २ मात्रा कर प्रात साय सेवन कराते है।

---

[1] गुलकन्द तीन प्रकार का होता है।

[१] गुलकन्द आफताबी—इसमें पुष्पों की पंखुडियां तथा शक्कर या मिश्री मिला पात्र में रख १४ दिन धूप में रखते हैं। बीच से २-३ बार उसे मल दिया करते हैं। इसमें मृदुकारिणी शक्ति अधिक होती है।

[२] गुलकन्द आबी—इसमें पुष्प दल तथा मीठे को पात्र में ऐसा भरते हैं कि उसमें चतुर्थांश स्थान खाली रहे। फिर पात्रमुख बन्द कर २१ दिन तक पात्र के गले तक जल में रख देते हैं। इस गुलकन्द में शीत व स्निग्ध गुण की विशेषता होती है।

[३] गुलकन्द असली—इसमें शर्करा या मिश्री के स्थान में मधु मिलाया जाता है, इसमें विरेचनीय एवं कफनिःसारण की शक्ति अधिक होती है।

यदि ताजे पुष्प न मिलें तो शुष्क फूलों को गुलाव जल में कुछ देर भिगोकर तथा निकाल कर उक्त प्रकार से मीठा मिलाकर गुलकन्द तैयार किया जा सकता है।

[2] वृद्धावस्था, शारीरिक निर्बलता या रोग विशेज से जिनका मूत्राशय निर्बल हो उनको शक्कर मिश्रित शीतल सारक औषधि गुलकन्द आदि तथा शीतल पेय नहीं देना चाहिये। अन्यथा पेशाव मे पीलापन आता तथा शीतकाल में स्वेदस्राव कम होने से मूत्राशय मे भारीपन आता है। किसी को उदर में भी भारीपन भी आ जाता है।

[गांव मे औ० र०]

(२) गुलाव अर्क (गुलाव जल) और इतर गुलाव—ताजे सुगन्धित फूलो को ४ गुने जल मे मिला वक यन्त्र या भवका (नलिका यन्त्र) के द्वारा अर्क गुलाव खीच लें। इस अर्क पर जो इत्र तैरता है उसे सावधानी से रुई के फाहे से अलग निकाल लेवे।

अ नेत्रविकार पर—गुलाव जल २-२ बूंद प्रात-साय आख मे डालने से नेत्र दाह की शीघ्र शान्ति होती है। अथवा गुलावजल २० तोले मे अनारदाना ४ तोले शाम को भिगो देवें। प्रात मल छानकर उसमे रसौत, फिटकरी का फूला ६-६ माशा, नीलाथोथा ४ रत्ती, अफीम व कपूर १-१ माशा मिश्रण कर ३ दिन रहने देवें, दिन में २-३ वार हिला दिया करें, चौथे दिन फिल्टर पेपर से छानकर शीशी मे भर रक्खें। इस नेत्र विन्दु से २-२ बूद दिन मे २ वार डालते रहने से नेत्रो की लाली, जलन, खुजली, नेत्रस्राव आदि शीघ्र ही दूर होते हैं। —गावो मे औ र

आ छोटे वच्चो के अपतन्त्रक रोग पर गुलाव जल मे रुई का फाया तर कर वालक के नाक, मस्तक तथा आखो पर (तालुस्थान पर नही) फेरते हैं।

आयुर्वेदोक्त प्रवालपिष्टी, अकीक, मुक्तादि को घोटने के काम मे तथा अन्यान्य कई प्रयोगो मे गुलावजल का उपयोग किया जाता है। इसीसे शर्वत गुलाव वनता है।

(३) शर्वत गुलाव—गुलावजल १ भाग मे शक्कर २ भाग मिलाकर शर्वत की चाशनी तैयार कर ले। यह उष्णताशामक, सारक है, ग्रीष्मकाल मे सेवनीय है, मस्तिष्क को शान्त एव सौमनस्यजनन है।

अन्य विधि—अच्छे खिले हुये फूल १ पाव को १॥ पाव पानी में पकावें। पानी आधा रह जाने पर उतार कर वस्त्र मे मसलते हुये छान कर उसमे गुलावजल ५ तोले तथा शक्कर १॥ पाव मिला पकावें। शर्वत की चाशनी तैयार कर ठडा होने पर शीशी मे भर रक्खें। आवश्यकतानुसार प्रयोग मे लावें।

(४) गुलाव पाक—फूल ६० तोले पीसकर ४ सेर गौदुग्ध मे पकावे। खोया हो जाने पर २ सेर खाड की चाशनी मे यह खोया तथा गिलोय सत्व, हरड, तेजपाल, कालीमिर्च, जटामासी, कौंच वीज, जायफल, कपूर, भागरा, छोटी इलायची, सोने के वर्क, अभ्रक भस्म, लोह, मुक्ता व वग प्रत्येक १-१ तोले एव कस्तूरी, अम्बर ३-३ माशा सब महीन पीसकर मिलावें। ठण्डा होने पर १६ तोले शहद मिला मोदक या पाक जमा दें। मात्रा—६ माशे मे १ तोले तक। पुष्टिवर्धक एव पित्तविकार, श्वास, प्रमेह, जीर्ण ज्वर नाशक है। कामी पुरुषों को आनन्ददायक है। —श्री नानकचन्द जी वैद्यशास्त्री

पाक के अन्यान्य उत्तमोत्तम प्रयोगों के लिये हमारा 'वृहत्पाक सग्रह' देखिये।

(५) सतपत्र्यादि चूर्ण—मन्दी आंच की हुई शुष्क गुलाव की पखुडिया १५ तोले तथा इसबगोल, धनिया, दालचीनी, श्वेतजीरा, वशलोचन, गिलोय सत्व, नागकेसर, श्वेतचन्दन, इलायची, नागरमोथा, रूमीमस्तगी और आमला प्रत्येक १-१ तोला, शक्कर ३० तोले सबको एकत्र मिला शीशी मे भर रक्खें।

मात्रा—३ माशा दिन मे ३ वार दूध या जल के साथ लेने से उष्णता, दाह, उदरशूल, अतिसार, अम्लपित्त, तृषा, यकृतविकार, बद्धता, मन्दाग्नि, दुर्वलता, मुखपाक, जीर्ण आत्रविकार आदि दूर होते हैं।

(६) गुलरोगन—यदि पुष्प ताजे हो तो ४ भाग मे ५ भाग तिल तैल मे डालकर धूप में रक्खे। १०-१२ दिन वाद पुष्पो को मसल कर तैल छान काम मे लावें।

अथवा—ताजे पुष्पो का रस निचोड कर ३ भाग मे २ भाग तिल तैल मिला मद आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर काम मे लावें।

यदि पुष्प शुष्क हो तो उन्हे जल मे भिगो कर क्वाथ वना ले। जितना क्वाथ हो उससे तौल मे आधा तिल तैल मिला तैल सिद्ध कर ले।

यह मेध्य, उत्तम निद्रा लाने वाला, शोथनाशक, पीडानाशक एव सग्राही है। सन्निपात की दशा में गुलरोगन, अर्क गुलाव तथा सिरका मे कपडा भिगोकर सिर पर रखते है।

इस तैल को सिर पर नित्य मालिश करने से मस्तिष्क दौर्वल्य दूर होता है। इसे कान मे डालने से कर्णशूल मिटता है। इस तैल के गण्डूष धारण (मुख मे धारण) करने से दतशूल तथा अधिक चूना खाने से हुए व्रण दूर होते हैं।

अग्निदग्ध स्थान पर इसे लगाने से शांति प्राप्त होती है। आमातिसार एव आंत्र तथा आमाशय के व्रणों पर इसका आंतरिक प्रयोग किया जाता है।

इसकी मात्रा—७ मासे से १ तोला तक है।

गुलाब का फल और जीरा—

पौधे पर ही पुष्पो की पंखडिया झड जाने पर जो वेर जैसा किंतु छोटा गोल भाग नजर आता है वही इसका फल है। इस पर ही जीरा जैसे केशरिया दाने होते हैं, तथा इसके भीतर रोमयुक्त लम्बे लम्बे श्वेत दाने से होते हैं। वह भी गुलाब की जीरा कहाता है।

ये फल शीत तथा रूक्ष हैं तथा जीरा उष्ण एव रूक्ष है। इनका प्रयोग रक्तस्राव तथा अतिसार पर करते हैं। गर्भाशय को दृढ एवं संकुचित करने के लिये पीसकर वत्ती वना योनि मार्ग के भीतर धारण कराते हैं। इसके सेवन से यकृत, आमाशय व हृदय को बल मिलता है। दांतो को मजबूत करने के लिये पीस कर दातो पर मलते हैं। कंठ शोथ पर—इसके क्वाथ के गण्डूष धारण कराते हैं। घाव से वहते हुए खून को रोकने के लिये इसके महीन चूर्ण को बुरकाते हैं।

आंतरिक सेवनार्थ मात्रा—१ से २-३ माशे तक। इसका अधिक सेवन फुफ्फुसो को हानिकर है। हानि निवारणार्थ—गुलकन्द और कतीरा या ईसवगोल या केवल कतीरा गोद का सेवन कराते हैं।

गुलाब के पत्र—

गुलाब के पत्तो का प्रयोग सिर के घाव तथा नेत्र रोगो पर किया जाता है। पत्तो को पीसकर लगाते हैं।

गुलाब पौधे की जड़ में—

ग्राही गुण की विशेपता है।

नोट—मात्रा-ताजे पुष्प १ से ३ तोले तक। शुष्क पुष्प चूर्ण—२ से ७ माशे तक। पुष्प-क्वाथ २ से ५ तोले। गुलकन्द १ से ४ तोला तथा अर्क २ से ४ तोला।

ताजे फूलों के अधिक मात्रा मे सेवन से कामशक्ति निर्वल होती है।

गुलाब-सफेद (Rosa Alba)

यह तरुणी कुल (Rosaceae) का जगली गुलाब का क्षुप गुलाब जैसा ही होता है। छोटा, वडा, श्वेत, पीला, नारगी आदि भेदो से यह कई प्रकार का होता है। प्राय. पीताभ श्वेत पुष्प वाला अधिक होता है। तथा बाग वगीचो मे भी लगाया जाता है।

नाम—

सं० —शतपत्री, कुब्जक[1]।
हि०—सफेद गुलाब, कूजा, सदागुलाब, गुलचीनी, सेवती गुलाब, गुलसेवती, चैती गुलाब।
म०—शेवती, शेवन्ती। व०—श्वेत गोलाप।
गु०—शेवती, काटे सेवती।
अं०—इंडियन ह्वाईट रोज (Indtan white rose)
ले०—रोजा अलवा, रोजा इंडिका (R Indica)

गुण धर्म और प्रयोग—

तिक्त, कटु, कपाय, शीत, रूक्ष, हृद्य, रोचक, मेध्य, मृदुरेचन, सौमनस्य-जनन, आंत्रसकोचक, वीर्यवर्धक, त्रिदोप शामक, कांतिवर्धक तथा पित्तदाह, मुखशोष, कुष्ठ, रक्त विकार आदि नाशक है।

हृदय के धडकन आदि विकारो पर—इसका गुलकन्द तथा अर्क दिया जाता है।

(१) गुलकन्द सेवती—इसके १०० पुष्प लेकर उन पर गुलाबजल छिड़क कर हाथो से मसलकर ३० तोले मिश्री चूर्ण मिला ४-५ दिन छाया मे रख काम में लावें।

मात्रा—२ तोला। हृदय की तीव्र धडकन तथा हृदय की पुष्टि के लिये अर्क गावजवान १० तोला एव

[1] भावप्रकाशादि निघण्टुओं में जो कुब्जक (कूजा) कहा गया है वह भी एक प्रकार की गुलसेवती ही है। कूजा के वडे वडे वृक्ष जलाशय के निकटवर्ती वन-उपवनों में सघन पाये जाते हैं। डंडियों व पत्रों का आकार गुलाब की डंडियों व पत्र जैसा ही किंतु वडा होता है, तथा इन पर कांटे अधिक सघन होते हैं। पुष्प उक्त सेवती पुष्प जैसे ही श्वेत होते हैं किंतु सुगन्ध बहुत कम होती है। पुष्प आकार में सेवती या गुलाब से बड़ा होता है।

गुणधर्म में यह युक्त गुलसेवती जैसा ही है। शीत नाशक गुण की विशेपता है।

अर्क वेदमुश्क के साथ देते हैं। शीघ्र लाभकारी है।

(२) सेवती पाक—इसके १००० फूल लेकर २ सेर घी मे मद आच पर भूनकर उसमे ४ सेर मिश्री तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात व नागकेसर का चूर्ण ५-५ तोला एव पत्थर पर पिसी हुई मुनक्का ३० तोला, शहद ४० तोला, गिलोय सत, तवाखीर, श्वेतजीरा चूर्ण, वग भस्म, नाग भस्म २॥-२॥ तोला और ३ रत्ती कपूर मिलाकर पत्थर की वरनी आदि मे भर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—५ माशे तक। सेवन से (४० दिन तक) जीर्णज्वर, क्षय, कास, अग्निमांद्य, प्रमेह, शिरोरोग, प्रदर, रक्त विकार, कुष्ठ, अर्श, नेत्र रोग और मूत्र रोग दूर होते हैं। (गा. औ. र)

नोट—पुष्प चूर्ण २ से ७ माशे तक, गुलकन्द २ तोले। इसके पुष्पों से जो इत्र निकाला जाता है वह मलहम आदि औषधियों में दुर्गन्धनाशार्थ मिलाया जाता है। इसकी मूल से निर्मित 'कुब्जकासव' का प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह में देखिये।

गुलू (Sterculia Urens)

यह मुचकुन्द कुल (Sterculiaceae) का एक मध्यम ऊचाई का सदा हराभरा रहने वाला वृक्ष है। इसकी छाल चिकनी, साफ, मुलायम, श्वेत कागज जैसी होती है। शाखाए प्राय पोली सी होती हैं। पत्र—प्राय शाखाओ के अग्रभाग पर समूहबद्ध, ६ से १८ इच व्यास के प्राय ५ खण्डयुक्त किनारे वाले, पृष्ठ भाग श्वेत सूक्ष्म रोमो से युक्त होते है। फूल वैंगनी छटा युक्त लाल, हरे या पीले रग के, फल—बडे बेर जैसे ऊपर से रोमश, पकने पर स्वाद में खटमीठे होते हैं। वसन्त ऋतु मे पत्तो के झड जाने पर इसमे आम के बौर जैसा ही बौर आता है तथा उसीमे उक्त फल लगते हैं। बीज—फल मे ३-६ बीज घु घची जैसे होते हैं। जड—वृक्ष की जड रक्त वर्ण की होती है।

नोट—शीतकाल मे इस वृक्ष की छाल के फटने से जो निर्यास (गोंद) निकलता है, वह कतीरा नाम से बाजारों में बिकता है। असली गोंद कतीरा तो पर्शिया के ईरान एवं हीरात प्रांतो में पैदा होने वाले दृढ़, कटकाकीर्ण कताद (या कतीरा) नामक पेडों से प्राप्त होता है। इन्हे लेटिन में हिराती कतीरा वृक्ष (Astragalus Heratensis) और ईरानी कतीरा वृक्ष (A Strobiliferus) तथा अंग्रेजी मे पर्शियन ट्रागाकाथ (Persian Tragacanth) कहते हैं। इस कताद पेड की एशिया माइनर मे पैदा होने वाली एक अन्य जाति के पेड Astragalus Gummifera से जो गोंद प्राप्त होता है उसे अंग्रेजी में ट्रेगाकाथ (Tragacanth) कहते हैं। इसे भी कतीरा गोंद कहते हैं। इन सव पेड़ों से प्राप्त होने वाले गोद के छोटे बड़े टुकड़े पीताभ श्वेत वर्ण के कडे, स्वाद व गधरहित पानी में शीघ्र घुलकर फूल जाने वाले होते है।

उक्त विदेशी पेड़ों से जिस प्रकार या कतीरा गोंद प्राप्त होता है, वैसा ही गोंद प्रस्तुत प्रसग के गुलू पेड़ से तथा पीली कपास (Cochlospermum Gossypium) के पौधों से भी प्राप्त होता है (पीली कपास का प्रकरण यथा स्थान देखिये) तथा यह गोंद भी उक्त विदेशी कतीरा या
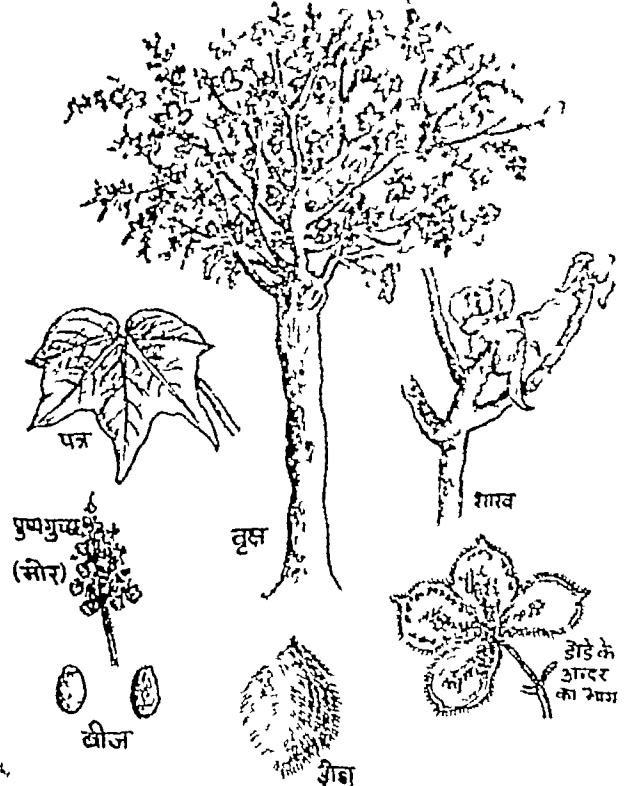
ट्रागाकांथ के स्थान में प्रयुक्त होता है। बाजारों में प्राय: इन सब गोंदों का मिश्रण ही कतीरा नाम से प्राप्त होता है।

गुलु के पेड़ भारत में प्राय: सर्वत्र जंगलों में विशेषत: कंकरीली या बालूवाली जमीन में पैदा होते हैं।

नाम—

सं०—बालिका। हिं०—गुलु, कुल्ली, कालरू, खडिया। म०—कांडोल, मारडोल, पांढरख।

गु०—खड़ियो, कडायो। ब०—गुली।

ले०—स्टेरक्यूलिया यूरेन्स।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह ग्राही व पौष्टिक है। खांसी पर छाल के स्वरस या फांट में पीपल चूर्ण व शहद मिला कर देते हैं। अस्थि भग्न तथा अण्डकोष के प्रदाह पर जड़ की छाल की पुल्टिस बनाकर बांधते हैं। अतिसार पर छाल को पीस छान कर पिलाते हैं। इसकी जड़ का क्वाथ पौष्टिक रूप में व्यवहृत होता है। इसके बीजों को भून कर चूर्ण बना काफी के स्थान पर पेय रूप में काम में लाते हैं। पूयमेह एवं वीर्य विकार पर इसकी छाल को पानी के साथ पीस छानकर शक्कर मिला सेवन कराते हैं। थकावट (ग्लानि) तथा वायुविकार पर छाल के क्वाथ से स्नान कराते हैं। इसके पत्ते एवं कोमल शाखाओं को पानी में पीसकर फुफ्फुस शोथ पर गरम कर लेप करते हैं तथा पीस छान कर पिलाते भी हैं। इसकी जड़ शीतवीर्य है।

गोंद (कतीरा)—

शीतल, रूक्ष, पिच्छिल, बृंहण, रक्तस्तम्भक, मृदुसारक, दाह, सन्तापशामक है। प्लीहा व फुफ्फुस के विकारों में तथा उरःक्षत, रक्तपित्त, कास, कफ की खरखराहट आदि में लाभकारी है। यह दोषों की तीक्ष्णता को शान्त कर शरीर में मृदुता की वृद्धि करता है। यह पौष्टिक पाकों में भी भूनकर डाला जाता है। गर्मी, प्रमेह तथा रक्तप्रदर पर इसे रात्रि के समय पानी में भिगोकर प्रातः मिश्री मिला सेवन कराते हैं। दाह, संताप के शमनार्थ इसे शर्बतों में मिला पिलाते हैं या इसे गेहूं के सत (निशास्ता) के साथ पानी या दूध में पकाकर ठंडा हो जाने पर खिलाते हैं। रक्तष्ठीवन (ऊर्ध्व रक्तपित्त), पैत्तिक कास, फुफ्फुस व्रण या स्वरभंग की दशा में इसे गदही या बकरी के ताजे दूध के साथ देते हैं। पुल्टिस के लिये इसके साथ बादाम की गिरी, निशास्ता, व शक्कर समभाग मिला दूध मिला हरीरा खिलाते हैं। फुफ्फुस के विकारों पर इसे शहद में मिला गोली बना मुख में धारण कराते हैं।

जयपाल आदि तीक्ष्ण विरेचन लेने पर होने वाले दस्तों के वेगों को बन्द करने के लिये इसके चूर्ण को दही में मिलाकर देते हैं। विरेचन औषधियों की तीक्ष्णता एवं उष्णता निवारणार्थ इसे उन औषधियों के साथ मिलाकर देते हैं।

प्रायः औषधियों के अनुपान रूप में इसका विशेष प्रयोग (जैसे ट्रागाकांथ का पाश्चात्य वैद्यक में किया जाता है, वैसे ही) किया जाता है। पानी में मिलाकर किसी ऐसी औषधि को देना हो जो घुलनशील न हो तो उसके साथ इसे मिलाकर दिया जाता है या इसके लुआब में उस औषधि को मिलाकर देते हैं।

इसे उपयुक्त द्रव्यों के साथ पीसकर नेत्र में लगाने से नेत्रगत व्रण, पूयस्राव आदि पर लाभ होता है।

पानी में मिलाकर इसके प्रलेप से झाई एवं व्यङ्गादि दूर होते हैं, त्वचा कोमल होती है। होठों के फटने पर इसे लगाते हैं। खुजली पर गन्धक के साथ इसका प्रलेप करते हैं।

नोट—मात्रा—१ से ६ माशे तक। अधिक मात्रा में या इसके अधिक काल तक सेवन से गुदा आदि निम्न भाग के रोगों के लिये यह अहितकर है। हानि निवारणार्थ इसबगोल, अनीसून का प्रयोग करते हैं। इसके प्रतिनिधि रूप में बबूल का गोंद और मीठे कद्दू के बीजों की गिरी ली जाती है।

गुवार फली (Cyamopsis Tetragonoloba)

यह शिम्बीकुल के अपराजितादि उपकुल (Papilionaceae) का शाकवर्ग का पौधा ६-११ फुट तक ऊंचा होता है। यह खेतों में बोया जाता है। पत्र—अरहर के पत्र जैसे, पुष्प—छोटे छोटे बैंगनी रंग के तथा

फली लम्बी ३-६ इंच, हरितवर्ण की चिपटी होती हैं। फली मे चपटे छोटे छोटे कई बीज होते हैं।

इसकी एक बडी जाति की फली इससे ४ गुनी तक लम्बी तथा अधिक चपटी और बहुत मुलायम होती है। कच्ची कोमल अवस्था मे ही इसकी उत्तम खाने योग्य शाक होती है। पकने पर या कडी पड जाने पर तो यह गाय, भैंस आदि पशुओ के खाद्य रूप मे काम आती है। इससे वे पुष्ट होते हैं व अधिक दूध देते हैं।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र विशेषत दक्षिण, राजस्थान एव उत्तर प्रदेश के कई स्थानो मे अधिक होती है।

नाम—

सं०—गौराणी, गोरक्षफलिनी, दृढबीज।
हिं० गु०—गुवार फली, खुर्ती। म०—गौवारी।
ले०—स्यामोप्सिस टेट्रागोनोलोबा।

मधुर, रूक्ष, गुरु, मृदुसारक, दीपन, वात कफकर, पित्तनाशक है।

गुण धर्म और प्रयोग—

पित्तातिसार पर इसका क्वाथ देते हैं। चोट व मोच पर फली को तिल के साथ कूट पीसकर गरम कर बांधते हैं। रतौंधी पर इसके पत्र स्वरस को आंख मे डालते तथा पत्तियो का साग बनाकर खिलाते हैं। दद्रु पर पत्तो के साथ लहसुन पीसकर लेप करते हैं। नाडी व्रण पर पत्र रस मे रुई की कडी बत्ती भिगोकर व्रण मे प्रविष्ट करते है।

नोट—फलियों का सेवन अशक्त एवं वातग्रस्त रोगी के लिये अहितकर है। इससे आध्मान, वातज, उदरशूल, विबन्ध आदि विकार पैदा होते है। इसके निवारणार्थ हरा धनियां का सेवन कराते हैं।

गूगल (Balsamo dendron Mukul)

कर्पूरादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रम से स्वकुल गुग्गुल कुल (Burseraceae) का यह प्रमुख, छोटे कद का सुगंधित, कटीला वृक्ष ४-१२ फुट तक ऊंचा होता है।

पत्र—नीम पत्र जैसे, सयुक्त, एकान्तर, अनीरहित चिकने, चमकीले एव दलदार, पुष्प—छोटे छोटे रक्त वर्ण के, ४-५ दलयुक्त, फल—छोटे छोटे लम्बगोल, मासल तथा पकने पर लाल रग के होते है।

छाल—हरिताभ पीतवर्ण की एव इससे कागज जैसे लम्बे,पतले, चमकीले परत निकलते रहते हैं। लकड़ी श्वेत व कोमल होती है।

निर्यास (गोद)—ग्रीष्म एव शीत या शिशिर ऋतु मे भी सूर्य की गरमी पाकर इस वृक्ष के तने तथा किंचित् स्थूल शाखाओ से इसका रस या निर्यास निकल कर जडो की पार्श्ववर्ती बालू एव मिट्टी मे आकर सचित् होता रहता है। कभी कभी यह पुराने वृक्षो के तनो की कोटरो मे भी आकर सचित हो जाता है। यही गूगल कहलाता है। इसीलिये गूगल में बहुत ककड मिट्टी, कचरा आदि पाया जाता है तथा उसे औषधि प्रयोगार्थ शुद्ध करने की आवश्यकता होती है।

उत्तम गूगल—

मधुर गधयुक्त, चमकीला, चिपचपा, ताजी अवस्था मे कुछ पीला (पुराना होने पर काला सा) स्वाद मे कडुवा, सहज ही टूटने वाला, तथा अन्दर से हरा एव लाल चमक वाला होता है। इसे उष्ण जल मे घिसने से हरिताभ चमकीला श्वेत रग का मिश्रण बन जाता है। इसे जलाने से अच्छी तरह नही जलता, फूलकर इसमे महीन पपडी सी निकलती है, तथा उसकी सुगंध चारो ओर फैलती है।

बाजार मे व्यापारी लोग इसमे कई प्रकार का मिश्रण कर देते हैं। अत अच्छी तरह परीक्षण कर ही इसे खरीदना चाहिये। तथा सदैव नवीन गूगल का ही व्यवहार करना चाहिये। नवीन गूगल स्निग्ध, सुवर्ण जैसा वर्ण वाला या पके हुये जामुन जैसा स्वरूप वाला सुगध एव पिच्छिल गुणयुक्त होता है।

यह बृंहण, (धातुवर्धक) तथा वृष्य (वीर्यजनक) होता है। पुराना गूगल—शुष्क दुर्गन्धयुक्त स्वाभाविक वर्णहीन एव वीर्यरहित तथा अति लेखन (शरीर के धातु तथा मलो को सुखाकर खुरचने वाला) होता है।

गूगल
BALSEMODENDRON MUKOL
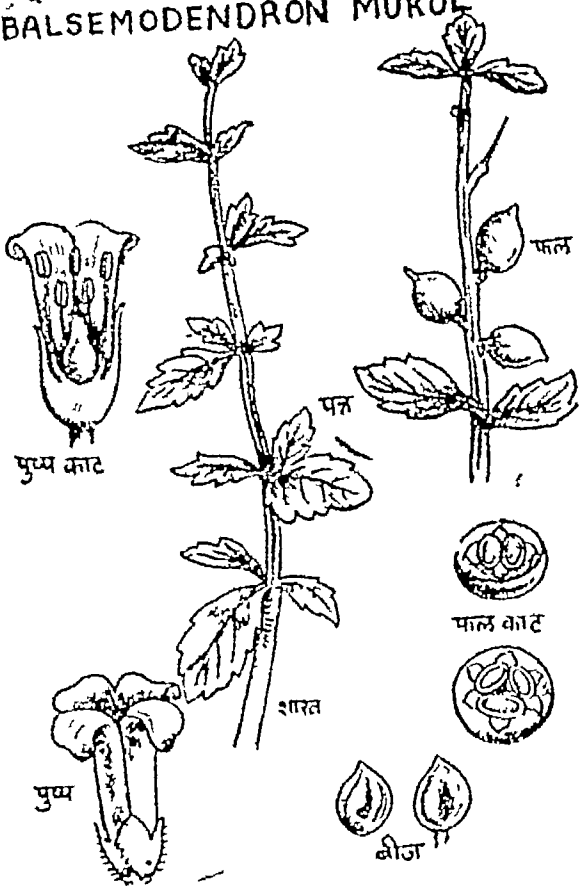
यद्यपि उत्तम गूगल लगभग २० वर्ष तक वेकार (वीर्य-हीन) नही होता, तथापि उसके गुण मे परिवर्तन होकर वह अति लेखन हो जाता है। ऐसी दशा मे लेखन कार्य के लिये मेदोरोग जैसे रोगो मे इसे गोदुग्ध मे स्वेदित कर प्रयोग मे लाना उपयुक्त होता है।

गूगल के प्रकार--

आकृति, रग एव स्थान भेद से आयुर्वेद यूनानी तथा पाश्चात्य वैद्यक मे भी इसके मुख्य ५ प्रकार माने गये हैं--

(१) हेमाभ (हिरण्याख्य या कनक, कण)--सुवर्ण जैसा रक्ताभ पीत वर्ण का होता है। यूनानी मे मुक्ले यहूद कहते हैं। यह मारवाड (राजस्थान) मे विशेष होता है, महिपाक्ष से नरम होता है तथा सवसे श्रेष्ठ है।

(२) महिपाक्ष (भैसा गूगल)--कृष्ण पीत वर्ण का, भौंरा या स्रोतोञ्जन जैसा काले रग का, हल्का हरिताभ पीतवर्ण का टेढे मेढे छोटे वडे गड्ढो मे होता है। इस पर वाल, मैल एव छाल के टुकडे आदि चिपके रहते है। यह कुछ नरम तो होता है किन्तु दबाने से भुराभुरा, स्वाद मे कड्वा एव देवदार जैसी गन्ध वाला होता है। इसे जलाने पर गुब्बारे जैसे निकलते हैं। यह हलकी जाति का होता है। इसे यूनानी मे मुक्ले लकलावी कहते हैं। यह सिंध तथा कच्छ मे अधिक होता है।

उक्त दोनो मे हेमाभ (कनक) गूगल विशेषत मनुष्यो के लिये हितकर होता है। कोई कोई महिषाक्ष को भी हितकारी मानते है। इनके अतिरिक्त—

(३) पद्म गूगल--लाल कमल जैसा रग वाला होता है। इसे यूनानी मे मुक्ले अर्जफ कहते है।

(४) कुमुद गूगल--कुमुद (कुई) पुष्प के समान अरुण पीत वर्ण वाला, जिसे यूनानी मे मुक्ले अरवी कहते हैं। पद्म तथा कुमुद ये दोनो गूगल घोडो के लिये विशेष हितकारी एव आरोग्यदायक हैं। तथा—

(५) महानील गूगल--अत्यत नीले रग का होता है। यूनानी मे मुक्ले हिन्दी कहते हैं। यह तथा महिषाक्ष ये दोनो गूगल हाथियो के लिए हितकारी होते हैं।

बाजारो मे प्राय उक्त न. १ और न० २ का गूगल विकता है। कभी कभी व्यापारी गूगल नाम से सलई का गोंद भी दे दिया करते हैं।

उत्पत्ति स्थान--इसके वृक्ष प्राय रेतीले भूमि प्रदेशो मे अरव, अफ्रीका तथा भारत के राजस्थान, सिन्ध, कच्छ, काठियावाड, मैसूर, बरार, पूर्वबगाल, आसाम, सिलहट मे अधिक पाये जाते हैं।

नाम—

सं.—गुग्गुलु, देवधूप, कौशिक, पुर, पलंकष।
हि.—गूगल। म गु—गुगल, गुगरु।
व—गुग्गुल, मुकुल। अं—इंडियन बेडेलियम (Indian Bedellium), गम गुग्गुल (Gum Guggul)।
ले.—वाल्समो डेंड्रान मुकुल, कामीफोरा मुकुल (Commiphora Mukul), का अफ्रिकाना (C Africana) वाल्स एगोलोचा (B Agollocha)

रासायनिक संघठन—

इसमे एक उड़नशील तैल, रालयुक्त गोद (Gum re-

sin) तथा एक तिक्त सत्व पाया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

अति लघु, विशद, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, सूक्ष्म, सर, तिक्त, कटु, मधुर, कषाय, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, त्रिदोष शामक (पित्त कर), दीपन, अनुलोमन, वह्निदु-त्तेजक, वेदनास्थापन, हृद्य, रक्तप्रसादन (रक्त एवं श्वेत कण वर्धक), कफ निःस्सारक, मधानीय, मूत्रल, कामोत्तेजक, आर्तवजनन, रसायन, वर्ण्य, शीतप्रशमन, तथा शोथ, मेदरोग, व्रण (शोधन, रोपण एवं जंतुघ्न), अर्श, कृमि, गण्डमाला, अश्मरी, सन्धिवातादि वात विकार, रक्त-विकार आदि नाशक हैं।

शोधन—

आभ्यन्तर प्रयोगार्थ इसका शोधन इस प्रकार कर लेना आवश्यक है—त्रिफला १ पाव तथा गिलोय आध पाव, दोनों को जौकुट कर ४ सेर पानी में रात को भिगोकर प्रातः पकावें। आधा शेष रहने पर छान लें। इस छने हुए क्वाथ को पुनः कड़ाही में डाल तथा उसके दोनों कुन्दों में एक लम्बी लकड़ी आड़ी पिरोदें और एक साफ कपड़े में १ पाव उत्तम कनक गूगल (या भैंसा गूगल) बांध अर्धमुख खुली हुई पोटली भी बना उसी लकड़ी के मध्य भाग में लटका दें। मन्द आंच पर कड़ाही को रख दें, तथा उसी कड़ाही में से गरमागरम क्वाथ को कलछी से भर भर कर गूगल की पोटली में डालते रहें, साथ साथ गूगल को चलाते भी रहें। जब सब गूगल कड़ाही में छन जाय कपड़ा खाली हो जाय तब कपड़े को को निकाल लें। कड़ाही में गूगल मिला क्वाथ में उसे धीरे धीरे नितार लें, तलैठी में जो मैल रह जाय उसे दूर करदें। इस नितारे हुए क्वाथ को मन्दी आंच पर पका गाढ़ा होजाने पर उतार कर कुछ ठंडा होने पर हाथों में घृत लगा इसकी गोलियां बना सुखा लेवें तथा कड़ाही को गाय के ताजे गोबर से साफ करलें। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गूगल आमशोधक कार्य उत्तम सम्पन्न करता है। वात रोगियों के लिये प्रयोग में लाना हो तो उक्त शोधन विधि में त्रिफला के स्थान में दशमूल लेना ठीक होता है।

इसका उपयोग उक्त गुणधर्म में दर्शाये रोगों के अतिरिक्त जीर्ण कफ रोग, नाड़ी की अवसन्नता, ग्रहणी अग्निमांद्य, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रंथि, विद्रधि, कुष्ठ, फिरङ्ग, पूयमेह, उदर, चर्मरोग, भगन्दर, पांडु, अर्श, प्रमेह, मेदोवृद्धि, गर्भाशय के विकार आदि उन-उन अवयवों पर कार्यकारी प्रयोजक औषधियों के साथ सफलता-पूर्वक किया जाता है। यथा—

(१) जीर्ण कफ विकारों में (जिनमें अत्यधिक चिकना दुर्गन्धित कफ निकलता हो) इसे रोग, बल, काल एवं प्रकृति अनुसार पीपल, अडूसा, शहद या घृत के साथ या इन चारों के मिश्रण के साथ मात्रा ३ माशे तक (यह अल्प मात्रा में विशेष कार्य नहीं करता) दिया जाता है। राज-यक्ष्मा में इसके प्रयोग से कफ की प्रबलता नष्ट होती है एवं दूषित रोग प्रवर्तक कीटाणु भी नष्ट होते हैं।

श्वास में—इसे घृत के साथ देते हैं।

(२) पाण्डु रोग पर (विशेषतः दुर्बल एवं मध्यम आयु का रोगी हो तो)—इसे लौह भस्म के साथ देते हैं। महायोगराज गूगल, तथा चन्द्रप्रभा आदि इसके विशिष्ट योगों में लोह की योजना रहने से उनका प्रयोग दीर्घकाल तक करते रहने से रक्त में श्वेत कणों की तथा साथ ही साथ रक्त की रोगजंतुनाशक शक्ति की वृद्धि होती है, एवं रोग शनैः शनैः समूल नष्ट होता जाता है।

(३) अग्निमांद्य तथा तज्जन्य अतिसार, प्रवाहिका, आमप्रदर एवं क्षयज अतिसार आदि की अवस्था में इसे आन्त्रिक दोष प्रतिबन्धक सुगन्धित द्रव्य, इंद्रजौ, एलुवा और गुड़ आदि के साथ दिया जाता है। इससे पाचन-क्रिया में यथेष्ट सुधार एवं क्षुधावृद्धि होती है। स्त्री शरीर में इस प्रयोग का पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ता है।

(४) शोथ पर—यथोचित शोथ निवारक औषधियों (पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ या दशमूल के क्वाथ से या केवल गोमूत्र) के साथ इसे ४-४ या ६-६ घंटे के अन्तर पर देते रहने से स्वरयन्त्र शोथ, श्वासनलिका शोथ, क्षयज उदरावरण शोथ जन्य जलोदर एवं वस्तिशोथ, जीर्ण गर्भाशय शोथ आदि में लाभ होता है।

जीर्ण वस्तिशोथ मे इसे गिलोय क्वाथ से देते हैं, इससे सुजाक मे भी लाभ होता है। जीर्ण आमवात या सुजाक से जन्य सधिशोथ मे इसे शिलाजीत के साथ देते हैं। इससे रक्त विकार भी दूर होते हैं। जलोदर की दशा मे भी इसे शिलाजीत के साथ अथवा गोमूत्र के साथ देने से लाभ होता है। वातज शोथ पर दशमूल क्वाथ से देते हैं।

(५) गण्डमाला पर—काचनार गूगल २ से ३ माशे की मात्रा मे बलाबलानुसार त्रिफला क्वाथ के साथ सेवन से अथवा केवल शुद्ध गूगल ३ से ६ माशा तक कचनार वृक्ष की छाल के क्वाथ से या त्रिफला क्वाथ से दीर्घकाल तक लेते रहने से और साथ ही साथ कंठमाला की ग्रन्थियो पर गूगल को पानी मे पकाकर गाढा लेप (इसमे गंधक, कपूर, कत्था आदि मिलाकर मलहम जैसा बना सकते है) करते रहने से उत्कृष्ट लाभ होता है। क्षय रोग के जन्तु जो इन गाठो मे होते हैं वे नष्ट हो जाते है। प्लेग की गाठो पर भी उक्त लेप लाभकारी है।

त्रिफला क्वाथ के साथ प्रात साय इसका सेवन करते रहने से भगन्दर मे भी यथेष्ठ लाभ होता है।

(६) सधिवात पर—इसकी मात्रा ३ माशे तक रास्नादि क्वाथ के साथ नित्य सेवन करते रहने से अथवा रास्नादि क्वाथ को बनाते समय मे ही उसमे गूगल की उचित मात्रा डाल दें, तथा क्वाथ सिद्ध हो जाने पर छान कर पी लिया करें। इसी प्रकार गोरखमुण्डी के क्वाथ के साथ भी इसे सेवन कर सकते हैं। अथवा त्रयोदशाग गूगल या योगराज गूगल का सेवन करें।

यदि कटिशूल की विशेषता हो तो उक्त आभ्यन्तरिक प्रयोग के साथ ही साथ इसे पानी मे पकाकर गाढा मोटा लेप कर ऊपर से पट्टी बाध दिया करें। आभ्यन्तरिक प्रयोगार्थ उक्त क्वाथ आदि के अभाव मे केवल इसकी ही ३ माशा की मात्रा को ६ माशा घृत मे अच्छी तरह चूर्ण कर मिला गोली बना दिन मे २ बार निगल जाया करें।

(७) पक्षाघात, अर्दित और वातनाडी शूल पर—किशोर गुग्गुलु अच्छा काम करता है।

उरुस्तम्भ मे इसे गोमूत्र के साथ तथा गृध्रसी मे—रास्ना एव घृत के साथ इसे देते हैं।

(८) गर्भाशय के विकारो पर तथा तरुण स्त्रियो के अनार्तव (रुके हुए मासिक धर्म) पर इसके साथ एलुवा तथा कसीस मिलाकर सेवन कराते हैं।

श्वेतप्रदर पर तथा तज्जन्य वध्यत्वदोष निवारणार्थ-यह अधिक मात्रा मे रसौत के साथ दिया जाता है। अथवा चन्द्रप्रभा के सेवन से भी उपयुक्त लाभ होता है। चन्द्रप्रभा की ५-५ गोलिया प्रात साय कुमारी आसव के साथ धैर्यपूर्वक कुछ दिनो तक सेवन करते रहने से अवश्य लाभ होता है।

(९) शीतपूर्व ज्वर पर—इसे १ मटर बराबर लेकर १ तोला गुड मिला जूडी आने के १ घटा पूर्व खाकर ऊपर से उष्णोदक पीने से जूडी ज्वर शीघ्र ही रुकता है।

(१०) मलावरोध पर—इसमे समभाग त्रिफला चूर्ण मिला एकत्र कूटकर ३-३ माशा की गोलिया बनाकर त्रिफला क्वाथ अथवा केवल उष्ण जल से लेवें। कोष्ठबद्धता दूर होती है तथा व्रणो की शुद्धि होकर वे भर जाते हैं। [यो० र०]

(११) वात रक्त पर—इसे गिलोय स्वरस या क्वाथ अथवा मुनक्का के क्वाथ या बिजौरे नीबू रस मे या त्रिफला क्वाथ मे घोटकर ३ या ४ माशे की गोलिया बना शहद के साथ सेवन करने से कष्टसाध्य वातरक्त एव पैर या शरीर का भयकर स्फोट (फटना) शीघ्र नष्ट होता है। [व से]

क्रोष्टुशीर्ष (घुटने की वेदनायुक्त शोथ) पर—उक्त गिलोय और त्रिफला क्वाथ मे घोटकर बनाई हुई गोलियो का सेवन १ मास पर्यन्त करने से लाभ होता है, मात्रा १॥ माशा, अनुपान मे त्रिफला या गिलोय का क्वाथ लेवें। (यो र)

जीर्ण वातज अण्डवृद्धि मे—इसे गोमूत्र के साथ सेवन करते है।

(१२) रसायनार्थ—इसे १॥ सेर लेकर त्रिफला, असन, खैर, गिलोय, पुनर्नवा, भागरा व गोखरू के ३। सेर क्वाथ मे मिला अवलेह के समान पाक सिद्ध कर उसमे यथोचित मात्रा में शहद, घृत व मिश्री मिला लें। इसके सेवन से काति, बल एव बुद्धि की यथेष्ठ वृद्धि होती है। (ब. से)
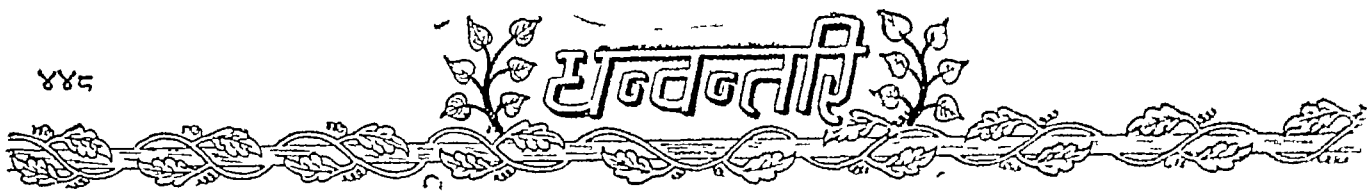
काम शक्ति की वृद्धि के लिये—इसे ३ माशा तक की मात्रा मे दूध के साथ सेवन कराते हैं।

उपदश मे इसका सेवन अनन्तमूल के क्वाथ के साथ करते हैं।

गुग्गुल, कल्प की विधि आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

(१३) व्रण आदि अन्यान्य रोगो पर—प्रारम्भिक अवस्था मे तो इसके गरम लेप से ही फोडे बैठ जाते हैं। चिरकालीन सडने वाले दूषित व्रणो पर इसके महीन चूर्ण को जभीरी नीबू के रस मे या नारियल तैल मे घोट कर प्लास्टर बना लगाते रहने से या उक्त रस अथवा तैल मे इसका घोल सा बना प्रलेप करते रहने से अथवा इसके चूर्ण को घृत मे अच्छी तरह खरल कर मलहम बना लगाते रहने से लाभ होता है। उक्त दूषित व्रणो के प्रक्षालनार्थ २५ तोला शुद्ध जल मे इसका ४ माशे से ६ माशे तक टिंचर (२० प्र श गूगल मे ६० प्र श मद्यसार) मिलाकर काम मे लाते हैं।

उक्त टिंचर का उपयोग मसूढो की सूजन, पायरिया, दाँतो में गड्ढे हो जाना, गले के व्रण, जीर्ण ग्रसनिका शोथ व गलतुण्डिका शोथ (Chronic tonsillitis and Pharyngitis) पर गण्डूष के लिये सफलतापूर्वक होता है।

देहली की ओर एक देहली व्रण (Delhi sores) नामक जो फोडा होता है, उस पर—इसके साथ गधक, सुहागा और कत्था मिला मलहम बनाकर लगाते हैं।

कक्षा व्रण (काख बिलाई) पर—इसके साथ इमली के बीजो को पानी मे पीसकर लेप करते हैं।

दुष्ट नाडी व्रण और भगन्दर पर—इसके साथ समभाग त्रिफला व त्रिकटु चूर्ण पानी मे पीसकर गरम कर लेप करते है। भगन्दर मे—इसके २ माशा चूर्ण को प्रात साय त्रिफला क्वाथ के साथ सेवन भी कराते हैं।

अर्श पर—इसका लेप तथा धूम्र दिया जाता है। मुख रोगो मे इसे मुख मे रखकर चूसने से लाभ होता है।

अस्थि भग पर गूगल के साथ १-१ भाग बबूल बीज तथा त्रिफला एव त्रिकटु को पानी के साथ पीसकर लेप या प्लास्टर बना बाधते हैं।

गुल्म तथा शूल पर—इसकी यथोचित मात्रा गोमूत्र के साथ सेवन कराते हैं।

शीतजन्य अङ्ग वेदना पर—इसे सोठ के साथ पानी मे पीस गरम कर लेप करते हैं तथा ऊपर से सेंकते हैं।

सिर के गज पर—इसे सिरके मे घोट लगाते है।

सिर दर्द पर—इसे पान मे पीस कर लेप करते हैं।

हिचकी पर—आमाशयोर्ध्व प्रदेश मे इसका लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(१४) गोहिरे के विष पर (यह अत्यन्त जहरी प्राणी छिपकली के आकार का, किन्तु उससे कुछ बड़ा होता है) इसके काटने पर—गूगल को पानी मे उबाल कर पिलादे या इसकी गोली बनाकर खिला देवे। विष के कारण कठगत प्राण हो जाने पर भी वह बच जाता है। धीरे धीरे वह होश मे आ जाता है। अत पूर्णतया जहर का असर दूर होने के लिये पाच पाच या दश दश मिनिट के अन्तर से १॥ माशे से ३ माशा तक गूगल पिलाते या खिलाते रहना चाहिये।

यह जानवर घर मे जहा कही रहता हो उस स्थान पर गूगल का धूप देने से उसका धुआ पहुँचते ही यह बेहोश होकर गिर जाता है तथा फिर कभी उस स्थान पर नही आता।

(स्व भागीरथ स्वामी--सिद्धयोगाक धन्वन्तरि)

(१५) धूप का विधान--गूगल की धूप नित्य नियमित रूप से देते रहने से ज्वर, नजला, स्वरनलिका प्रदाह, क्षय आदि मे लाभ होता है। विकारोत्पादक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। कर्णपाक मे इसकी धूप कान के भीतर नलिका द्वारा प्रविष्ट की जाती है। कनखजूर के दश पर इसका धूप दश स्थान पर दिया जाता है।

लालबर्र—ततैये के दश स्थान को इसकी धूप देकर पसीना निकल जाने के बाद आक के पत्तो पर घृत चुपड कर बाध देने से पीडा शात हो जाती है।

छीक नाशार्थ--इसके साथ समभाग गोघृत, मोम (देशी) कूट कर निर्धूम आग पर थोडा डालकर नासिका से धूम्र सूघने से तत्काल प्रबल छीकें बन्द हो जाती हैं। प्रतिश्याय मे नाक से पानी गिरना रुक जाता है।

--वैद्य मौहरासिंह आर्य हितैषी

सर्व प्रकार के ज्वर पर--इसके समभाग गवतृण,

वच, राल, नीम पत्र, आक के पत्र, अगर और देवदार सबका चूर्ण एकत्र मिला धूप दें। (व से.)

विशिष्ट योग—

(१) गुग्गुलु कल्प--इसे (यथोचित मात्रा मे) नित्य प्रात एक मास पर्यन्त त्रिफला, दारुहल्दी, पटोलपत्र और कुशा के क्वाथ (रोगानुसार इनमे से किसी एक के क्वाथ या मिलित क्वाथ) मे मिला कर सेवन करने से अथवा गोमूत्र, या क्षार जल, या उष्ण जल के साथ ही सेवन करने तथा उसके पचने पर मूंगादि का यूप या मास रस या फल रस, अथवा दुग्धाहार करते रहने से गुल्म, प्रमेह, उदावर्त, उदर रोग, भगंदर, कृमि, कण्डू, अरुचि, श्वित्र, अर्बुद, ग्रथि, नाडीव्रण, शोथ, कुष्ठ, दुष्टव्रण, कोष्ठगत तथा सधि एव अस्थिगत वात शीघ्र ठीक होता है। (सु. स चि स्थान ५)

गूगल कल्प का अन्य विधान हारीत सहिता या गद नग्रह ग्रन्थो मे देखिये।

(२) गुग्गुलु वटिका-वायविडग, त्रिफला, और त्रिकुट प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग तथा इन सबके सम-भाग शुद्ध गूगल लेकर घृत मे कूट कर गोलिया बनालें। मात्रा--२ माशा तक त्रिफला क्वाथ या वायविडग क्वाथ या उष्णजल से लेते रहने से दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ तथा नाडी व्रण रोग नष्ट होता है। (भा० प्र०)

(३) योगराज गूगल, किशोर गूगल, सिंहनाद आदि गूगलो के विशिष्ट योग अन्य ग्रन्थो मे देखिये। गोक्षुरादि गूगल का योग बडे गोखरू के विशिष्ट योगो मे देखें।

मात्रा—४ से १२ रत्ती या ३ माशे तक (यह अल्प मात्रा मे विशेष कार्यकारी नही होता)

इसके मिथ्या योग से यकृत्, प्लीहा तथा फुफ्फुसो को हानि पहुँचती है। हानिनिवारणार्थ कतीरा और केशर का प्रयोग करते है।

अपथ्य—इसके सेवन काल मे अम्ल, तीक्ष्ण, मद्य, मैथुन, अजीर्ण भोजन, अतिव्यायाम, आतप (धूप) का सेवन तथा क्रोध का त्याग करना आवश्यक है।

गूमा [Leucas Cephalotes]

गुडूच्यादि वर्ग एव नैसर्गिक क्रमानुसार तुलसी कुल (Labiatae) का यह वर्षायु क्षुप वर्षाऋतु (कही जला-शय के समीप सब ऋतुओ) मे प्राय आधे से १॥ या ३ फुट तक ऊचा पाया जाता है।

मूल–इसकी कुछ श्वेत रग की सुतली जैसी २-६ इ च लम्बी, स्वाद मे चरपरी होती है।

पत्र—समवर्ती १-२ इ च लम्बे, ½-१ इंच चौडे तुलसीपत्र-जैसे अनीदार, कगूरेदार, रोमश, स्वाद मे कड़ुवे एव गध तुलसी पत्र जैसी होती है।

शाखाएँ–चतुष्कोण, रोमश (सूक्ष्म श्वेत रोमयुक्त) तथा पुष्प—शाखा की प्रत्येक गाठ पर पुष्प, गुच्छो मे श्वेत, छोटे छोटे गोल १–२ इ च व्यास के कोण पुष्पको से घिरे हुए होते हैं, तथा पुष्प गुच्छ के ऊपर प्राय. दो पत्तिया निकली हुई होतीं हैं। फूल के ऊपर पत्ता यह बुझौवल इसी पुष्प के विषय मे पूछी जाती है।

फल—उक्त पुष्प गुच्छ मे ही इसका वीजकोष या फल होता है। पुष्प के विकसित होने पर शीघ्र ही पख-डिया झडकर पुष्पाभ्यतर कोष के निम्न भाग मे एक सूक्ष्म ४ विभागो वाला हरा चमकीला फल आता है। पकने पर इसके ये ४ विभाग ही ४ बीजो मे परिवर्तित हो जाते हैं।

पुष्प प्राय शीतकाल मे आते हैं, ये आकार मे द्रोण (दोना या प्याला) सदृश होने से इसे द्रोणपुष्पी कहते हैं।

इसके क्षुप भारत मे प्राय सर्वत्र खेतो मे तथा जूनी दीवालो या खडहरो मे विशेषत दक्षिण मे एव बगाल, विहार, उडीसा, पजाब मे अधिकता से पाये जाते हैं।

नोट—छोटे बड़े के भेद से इसकी ४ जातियां पाई जाती हैं—(१) हलकुसा, गुमा, गु –मीना पानगो कुवो; व.—हलक्सा, घलघसे तथा ले —ल्यूकास लिनिफोलिया [L Linifolia]

इसके पत्र २-४ इ ंच लवे, वर्च्छी जैसे एवं पतले होते हैं। यह भी खेतों मे बगाल, आसाम, सिलहट, सिगापुर तथा दक्षिण में कोंकण से ट्रावनकोर तक प्रचुरता से एवं अन्यत्र भी कई स्थानों पर पाया जाता है।

यह कफ निस्सारक, कृमिनाशक, कामोद्दीपक, शांति-

गूमा (हलकुसा)
LEUCAS LINIFOLIA SPRENG
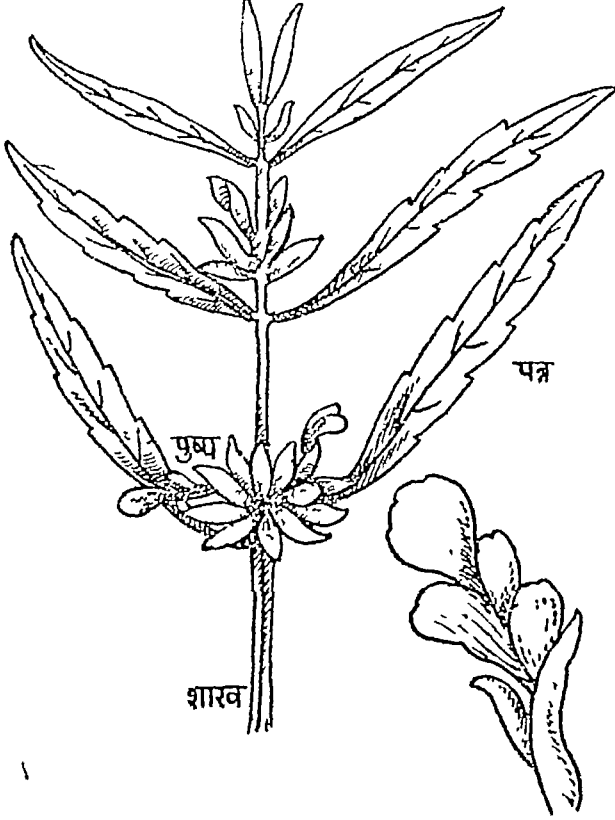
दायक, मृदुरेचक, दीपन, पौष्टिक एवं अर्श तथा नेत्र व्रण मे लाभकारी है। शेष सब गुण धर्म उक्त गूमा जैसे ही हैं।

(२) छोटा हलकुसा, म —ताम्वा, व —हुलकुशा ले.—ल्युकास अस्पेरा (L Aspera)

इसकी शाखाएं मूलप्रदेश से ही प्रायः निकलती हैं जिनमें कई सीधी प्रशाखाएं होती हैं। डंठल सीधा व दृढ़, पत्र-१ से ३ इंच लम्बे, किंचित गोल एवं अनीदार, शाखा के चारों ओर इसके पुष्पगुच्छ कुम्भाकार १ इंच व्यास के लगते हैं। शेष आकार प्रकार उक्त गूमा जैसा ही होता है। यह भी प्राय सर्वत्र खेतों मे तथा विहार से पजाब तथा दक्षिण में भी पाया जाता है।

यह कृमिघ्न, शीतनिवारक, खुजली, फोडा फुंसी आदि चर्म रोगों में पत्र-रस लगाया जाता है तथा सन्धि-वात में पत्रों को पीस कर लेप करते है। शेषगुण धर्म गूमा जैसे ही है।

(३) गट्टा दुम्बा, कुंवा, ले —ल्यु झेलानिका (L Zeylanica)। यह भी आकार प्रकार एव गुणों में उक्त गूमा जैसा है। भारत के दक्षिण प्रदेशों में तथा बगाल, आसाम से लेकर सीलोन तक अधिक पाया जाता है।

यह विशेष उत्तेजक है। इसकी कडुवी मूल एवं तीक्ष्ण पत्र व पुष्प, त्वग्रोगो मे विशेषतः पीली कंडुयुक्त फुंसियों पर उपयोगी हैं। इन्हें पीसकर प्रलेप करते हैं। सर्प विष पर पत्र रस पिलाते हैं।

(४) वक्र गूमा, ले —लियोनुरस सिब्रिकस (Leonurus Sibricus)--इसका क्षुप ४ से ६ फुट ऊंचा होता है। शीत काल में यह जलाशय के समीपवर्ती स्थानों में तथा धान के खेतों में, बंगाल, सिलहट से लेकर कुर्ग तक अधिक पाया जाता है। इसकी शाखा प्रशाखाएं टेढ़ी मेढ़ी (वक्राकार) चतुष्कोणयुक्त होती हैं। पत्ते कंगूरेदार १॥ से ४ इंच लम्बे, प्रायः तीन पत्र एक साथ लगे हुए होते हैं। पुष्प-उक्त गूमा पुष्प जैसे ही, डडी के चारों ओर गुच्छों में आध इंच लम्बे, कुछ नीलाभ लालिमायुक्त होते हैं। उसका भी पचाङ्ग कड़ुवा होता है। ज्वरनाशक शक्ति इसमें विशेष है। ज्वर में इसका फाट या क्वाथ १ से ४ तोला दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त एक वड़ा गूमा (महाद्रोण पुष्पी) और भी होता है। इसका क्षुप उक्त चारों प्रकार के गूमा से वड़ा, किंतु शेष पत्रादि एव गुणधर्म में प्राय तैसा ही होता है। इसे देवकुंवा, देवतुम्बे, दणहला आदि प्रान्तीय भाषाओं में कहते हैं। और यह विशेषत वातव्याधि, भूत-बाधा आदि नाशक, और पारद शोधक माना जाता है।

नाम–

सं.—द्रोणपुष्पी, द्रोणा, फले पुष्पा, कुंभयोनि।
हि —गूमा, गोमा, दडधल, गुलडोरा, दनहली, मोढ़ापानी।
व —वड धलघसा, घसघस, हलकसा।
म —तुम्वा, गुमा, कुंभा, शेत कुंभा।
गु —कुवो। ले.—ल्युकस सिफेलोटस, फ्लोमिस सेफालोटस [Phlomis Cephalotes]

रासायनिक सङ्गठन—

इसमे एक सुगन्धित तैल और एक क्षारतत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, पुष्प एव पचाङ्ग।

गुण धर्म और प्रयोग–

गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, लवण, विपाक मे मधुर एव उष्ण वीर्य। यह कफवातशामक, पित्तशोधक (उष्ण प्रकृति के लिये वातपित्तकारक), रेचक, दीपन, अनुलोमन, रक्त-शोधक, आर्तवजनन, स्वेदल, तथा पाडु, कामला, आध्मान,

शूल, विबन्ध, कृमि, कफविकार, शोथ, प्रतिश्याय, कास, श्वास, रजोरोध, चर्मरोग, ज्वर (विषम-ज्वर), सर्प विष आदि नाशक हैं।

पत्र—

मधुर, कडुवे, रूक्ष, गुरु, पित्तकारक, रेचक, पांडु कामला, शोथ, प्रमेह, ज्वर आदि नाशक है।

(१) पांडु व कामला मे—स्वरस १ तोला मे काली मिर्च ७ दाने और सेंधानमक १॥ माशा मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे ३ बार सेवन करने तथा नेत्रो मे पत्र-स्वरस लगाते रहने से लाभ होता है।

(२) नहरुवा (स्नायुक रोग) पर—इसके अवरोध के लिये पत्र या पचाग का स्वरस १० तोला माघ की अष्टमी को पिलाते तथा उस दिन केवल चावल घृत व शक्कर का पथ्य देते हैं। इस प्रयोग से फिर जन्म भर यह रोग नही होता है। यह प्रतिरोधक है। जिन्हे यह रोग हो रहा हो उन्हे भी १ से २ तोला स्वरस प्रतिदिन पिलाने से आराम होता है। (स्व वैद्यरत्न कवि. प्रतापसिंह)

(३) मधुमेह पर—इसके पत्ते १ तोला व कालीमिरच १ दाना दोनो पानी मे पीसकर नित्य प्रात काल मे २१ दिन तक पिलाने से मधु प्रमेह (डायबिटीज) रोग नष्ट होता है। (पं० शिवचन्द जी राजवैद्य—धन्वन्तरि के अनुभवाक से)

(४) श्वास, कास व प्रतिश्याय पर—पत्र या पचाग का स्वरस, अद्रख रस व शहद समभाग मिला अलमोनियम के पात्र मे फाट बना (प्रथम दोनो रसो को इस पात्र मे गरम कर फिर शहद मिलावे) मात्रा ६ माशा दिन मे ३ बार रोगी को पिलाते है।

कास पर—रस मे बहेडे के छिलके का चूर्ण मिला सेवन कराते हैं।

प्रतिश्याय (जुकाम) में—इसके शुष्क पत्तो के साथ समभाग वनफशा व मुलैठी चूर्ण मिला क्वाथ बना कर उसमे मिश्री मिला सेवन कराते हैं।

बालको के जुकाम मे—पत्र-स्वरस मे सुहागे की खील व मधु मिला चटाते है।

(५) ज्वरो पर—पत्र रस ३० तोला में पित्तपापडा व नागरमोथा चूर्ण १-१ तोला तथा चिरायता चूर्ण २ तोले को एकत्र घोटकर १-१ माशा की गोलिया बना सर्व प्रकार के ज्वरो पर लाभ होता है।

मलेरिया (जूडी बुखार) हो, तो पत्र स्वरस मे फिटकडी का फूला ६ माशा व कालीमिर्च १ तोला खरलकर चना जैसी गोलिया बना १ से ३ गोली गरम जल से दें।

चातुर्थिक ज्वर मे उक्त प्रयोग के साथ ही साथ पत्र रस का आखो मे अ जन करते हैं। कामला मे भी इससे लाभ होता है।

ज्वर की तीव्र उष्णता के शमनार्थ—पत्रो को पीस कर शरीर पर लेप करने से पसीना आकर उष्णता दूर होती है।

(६) वात प्रकोप पर—स्वरस मे मधु मिला ६ माशे से १ तोला तक पिलाते है। तथा रोगी को चावल व घृत का पथ्य देते हैं।

नलाश्रित वायु एव उदरशूल हो तो पत्र रस को छुहारे मे भरकर [या छुहारे के चूर्ण मे मिला] खिलावें।

(७) अजीर्ण एव क्षुधावृद्धि के लिये—इसके कोमल पत्रो को केला पत्र से लपेट कर पुटपाक विधि से भूभल मे पकाकर नमक के साथ खिलाते हैं। या पत्रो की शाक बनाकर खिलाते हैं। यह ज्वर रोगी को भी पथ्य रूप मे दी जाती है।

(८) शिर शूल आदि अन्यान्य विकारो पर—इसके ताजे पत्र रस को पिलाने तथा नस्य देने से सिर की पीडा व सर्दी दूर होती है।

आधाशीशी या सूर्यावर्त्त का दर्द हो तो ताजे पत्र १ तोला को २-३ कालीमिर्च के साथ थोडा जल मिला पीस छानकर नस्य देते है। इससे पीनस मे भी लाभ होता है।

सिर के जू आदि पर इसके १ पाव पत्रो को लेकर मालकागनी तैल चुपडकर आच पर सेंक कर सिर पर बाधते रहने से ५-७ दिन मे सब जू आदि कृमि नष्ट हो जाते हैं।

शोथ पर इसके पत्र तथा नीम पत्र दोनो को पानी में उबालकर बफारा देते हैं। खुजली पर पत्र स्वरस का मर्दन करते है।

अफीम के विष पर—इसके पत्र एव पुष्पो का स्वरस

६ माशा कई बार पिलाते है।

सर्प विष पर—इसके पत्र या पचाग का स्वरस २-२ तोला तक कालीमिरच का चूर्ण मिला पिलाते तथा नाक आख व कान मे टपकाते है। इससे वेहोशी नही आने पाती तथा वेहोश हुआ सर्पदष्ट व्यक्ति होश मे आता है।

पंचांग--

(९) श्वास (तमक व प्रतमक) पर इसके पौवे अच्छी तरह पकजाने पर (जब पुष्प गुच्छ पीले पड जांय तब) उखाड कर शुष्क कर भस्म करलें। १ सेर इस भस्म को ४ सेर पानी मे डालकर खूब मले और स्वच्छ निर्मल जल (क्षार विधि से) मोती सा साफ बनाकर बोतल में भर लें। दमे के रोगी को १५-१५ मिनट में २-२ तोला पिलावें। २-३ बार मे रोगी को पूर्ण श्वास आने लगेगा व भयकर दौरा नष्ट होगा। कुछ काल तक इस जल को पिलाने से दमा, श्वास, कास निर्मूल होता है। (श्री शिवचन्द्र राजवैद्य धन्वन्तरि के अनुभवाक से)

(१०) वात व्याधि पर—पचाग का चूर्ण मात्रा ६ माशा प्रात साय २ तोला मधु में मिलाकर ऊर्ध्ववात तथा किसी प्रकार के अर्धाङ्ग वात व्याधि वाले रोगी को ३ सप्ताह सेवन करावें। अवश्य लाभ होगा। (श्री शिवचन्द्र)

सधिवात पर—पचाग का क्वाथ पीपल चूर्ण मिला कर सेवन कराते हैं।

वातज व कफज सिर दर्द पर—पचाग को समभाग कालीमिरच के साथ पीसकर लेप करते हैं।

(११) किसी स्थान से सर्प को भगाने के लिये—पचाग के चूर्ण को आग पर डालकर धुवा देने से वह भाग जाता है। पचाङ्ग के चूर्ण को पानी में घोल सर्प पर छिडकने से वह मद पड जाता है। (अ बूटी दर्पण)

(१२) चादी भस्म—चादी के पत्रों को आग पर लाल कर इसके रस में २१ वार बुझाने तथा इसकी २॥ सेर लुगदी में रख कपडमिट्टी कर कडो की अग्नि में फूक देने से भस्म बन जाती है। (अ. बू दर्पण)

फूल—

(१३) तमक श्वास, कास आदि पर—इसके तथा काले धतूरे के पुष्पो को चिलम में भर कर श्वास रोगी को धूम्रपान कराते हैं।

काम पर—पुष्पों का शर्बत देते हैं।

प्रतिश्याय पर—पुष्प रस ५ से १५ बूंदों में दूना मधु तथा १ २ रत्ती भुना सुहागा मिला चटाते हैं।

मूल—

(१४) यकृत् और प्लीहावृद्धि पर—जड के चूर्ण मे चतुर्थांश पीपल का चूर्ण मिला २ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा मे जल के साथ दिन मे २-३ बार देते रहने से १०-१५ दिन में लाभ होता है। इससे शीत, विषम ज्वर या मलेरिया मे भी लाभ होता है।

(१५) विषम ज्वर या मलेरिया से हुई पुरानी प्लीहावृद्धि पर—इसके पुराने पौधे की जड रविवार के दिन उखाड लावें तथा इसमे से ५-६ माशे पित्तपापडा के साथ ताजे पानी मे पीस १० तोले पानी में मिला आग पर साधारण उष्ण कर आधा तोले देशी चीनी मिला पीवें। पीने के लगभग ६ घन्टे बाद एक भारी वमन या दस्त होगा। दूसरे या तीसरे दिन आधी प्लीहा या पूर्णतया वृद्धि दूर होगी। पुन दूसरे रविवार को इसी तरह पीवें। इस प्रकार २ या ३ रविवार को पीने से बढी प्लीहा मे पूर्ण लाभ होता है। —अ० बू० दर्पण

विशिष्ट योग—

१ सत्त-गूमा—इसके पत्तो को स्वच्छ किये हुये कोल्हू मे पिढ़वाकर रस निकालें (लोहे के इमामदस्ता मे कुटवाकर नही)। जितना रस हो समभाग पानी मिला कर १२-१४ घण्टे तक स्थिर होने के लिये रख छोडें। दूसरे दिन ऊपर का पानी धीरे से नितार दें तथा नीचे के गाढे सत को एक थाली मे निकाल लें। फिर एक चौडे मुख के पात्र मे तीन हिस्सा पानी भर मन्द आंच पर रख दें। पानी गरम होने पर उक्त थाली को इस जल वाले पात्र पर रख भाफ की गरमी से जब थाली का पानी सूख जावे तब शीतल होने पर सत्व को खुरच कर कागदार शीशी मे सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—४रत्ती से १ माशा तक। (अ) सर्पदश पर—मूर्च्छा हो तो नली द्वारा इसे नाक मे फूकने से मूर्च्छा दूर होती है। फिर कुछ सत्व पानी मे घोलकर पिलाने से विष नष्ट होता है।

(आ) अफीम विष पर—इसे पानी मे घोल आध-आध घन्टे से पिलाने से लाभ होता है।

(इ) विषम ज्वर पर—सत्व १ माशा तथा २५ दाने कालीमिर्च, तुलसी के ५ पत्र व कटकरंज (लता करंज) के बीज की मिंगी १ माशा एक साथ खरल कर गरम जल से सेवन करें।

(ई) कामला मे—इसे मधु के साथ घिसकर नेत्राजन करें। —अ० बू० दर्पण

२. अर्क गूमा—इन्फ्लुएन्जा पर—इसका पचाग २ सेर और धतूर पत्र आध सेर दोनो को कूटकर ६ गुना पानी मे सन्ध्या समय मिलाकर प्रात भवके द्वारा तीन प्रहर से धीरे धीरे अर्क खीचकर बोतल मे भर लें।

मात्रा—युवा के लिये ६ माशा तक दिन मे ३ बार तथा बच्चो को अवस्थानुसार २-३ माशा दिन मे दो बार देवे।

विषम ज्वर पर—इसका पचाग, पित्तपापडा, सोठ, गिलोय और चिरायता मिलाकर अर्क खीच लें। यह अर्क विषम ज्वर को नष्ट करता है। —अ बू दर्पण

गूलर [Ficus Glomerata]

वटादि वर्ग एव बटकुल (Urticaceae) की इस वनस्पति[1] का क्षीरयुक्त वृक्ष २०-४० फीट ऊंचा, छाल रक्ताभ धूसर वर्ण की, पत्र ३-४ इच लम्बे, १॥-३ इच चौडे, अण्डाकार, चिकने चमकीले अग्रभाग मे नुकीले होते हैं। पुष्प—गुप्त रूप मे, फल—गुप्त पुष्प ही परिवर्धित होकर शाखाओ पर गुच्छो मे फल रूप अजीर जैसे लगते हैं। ये फल कच्ची दशा मे हरे तथा वर्षाकाल में लाल हो जाते हैं। भारत मे इसके पेड सर्वत्र पाये जाते हैं।

गूलर (FICUS GLOMERATA)

नोट—(१) चरक के मूत्र संग्रहणीय, कषाय स्कन्ध तथा पित्तातिसार, योनिरोग, अत्यग्निप्रशमन आदि प्रयोगों में अन्तरोपचारार्थ एव अर्श, विसर्प आदि में बाह्योपचारार्थ इसका उपयोग पाया जाता है। सुश्रुत के न्यग्रोधादि गणों में तथा गर्भरक्षा, व्रण बन्धन आदि प्रयोगों में इसका उल्लेख है।

(२) ऐसी मान्यता है कि जिस स्थान पर इसका पेड़ होता है, उसके दाहिनी ओर या नीचे ही पानी का स्रोत या झरना होता है। इस स्थान पर कुंवा आदि खुदवाने से शीघ्र ही उत्तम मधुर जल की प्राप्ति होती है।

(३) अथर्ववेद में इसके पुष्टिकर गुण का विशेष वर्णन मिलता है। इसे पुष्टिप्रदायक द्रव्यों मे सर्वश्रेष्ठ कहा

[1] डल्हण, चक्रपाणि आदि प्राचीन टीकाकारों ने—'अपुष्पा फलवन्तो वनस्पतय' जिनमें बिना फूल लगे ही फल होते हैं उन्हें वनस्पति कहते हैं, यथा बड़, गूलर आदि ऐसी अवस्था वनस्पति की है। किन्तु आजकल यह व्याख्या विज्ञान सम्मत नहीं है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से देखा गया है कि वट, गूलर, पीपल आदि में भी पहले सूक्ष्म पुष्प आते हैं तथा उनसे ही फल बनते हैं। इन पेड़ों मे फल की प्रारम्भिक अवस्था में जो सूक्ष्म अंकुर सा फूटता है उसे चीर कर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर ये सूक्ष्मातिसूक्ष्म पुष्प दिखाई देते हैं। यही अंकुर या पुष्पाधार (Receptacles) बडा होने पर फल रूप में परिवर्तित हो जाता है। फिर उसमें फूल नहीं दिखाई पड़ते। उक्त पुष्पाधार के भीतर ही गाल वास्प (Gall wasp) नामक सूक्ष्म जन्तु होते हैं। इन जन्तुओं से ही आगे फलों की परिपूर्णता होती है। ये जन्तु ही फल की वृद्धि में कारण होते हैं। ये जन्तु बाहर से नहीं आते। इसीसे संस्कृत में 'जन्तुफल' कहते हैं।

—द्रव्यगुण विज्ञान के आधार से

यहा अपुष्पा का अर्थ अल्प या सूक्ष्म या गुह्य पुष्प वाला करना ठीक विज्ञानानुमोदित हो सकता है। पीपल के पर्याय में गुह्य पुष्प शब्द पाया जाता है।

गया है। यथा—"मयि पुष्ट पुष्टपतिर्दधातु, दरामौदुम्बरो मणिर्द्र विणानि नियच्छतु। औदुम्बरस्य तेजसा धातु पुष्टिं दधातुमे। पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्धि गृहमेधी गृहपतिं माकृरुड', औदुम्बर' स त्वमस्मासु धेहि'।" इत्यादि कतिपय ऋचाओं द्वारा कहा गया है कि—हे पुष्ट सर्वश्रेष्ठ गूलर मुझे पुष्ट कर दो, अपना पोषण धन मुझे दे दो, जिससे मैं सम्पुष्ट हो जाऊं। गूलर के तेज द्वारा धाता मुझमें पुष्टि का आधान करे। हे औदुम्बर मणि। तुम सृष्टि की पुष्टि हो, अत. मुझे भी पुष्टियुक्त कर दो। तुम सन्तानों द्वारा गृह को बढ़ाने वाले हो, अतः मुझे सन्तान परम्परा द्वारा गृहपति बना दो। इत्यादि।

(४) इसी जाति का एक जगली गूलर (काला गूलर) होता है। इसका वर्णन यथास्थान जङ्गली गूलर के प्रकरण में देखिये।

नाम—

सं०—उदुम्बर, यज्ञांग (यज्ञों में इसकी समिधा ली जाती है), जन्तुफल, हेमदुग्धक (दूध श्वेत होता है, किन्तु शीघ्र पीला पड़ जाने से)।

हि०—गूलर, परोआ, ढ्डुरि, काकमाल।

म०—उम्बर। गु०—उंबरो, उमरडो।

ब०—यज्ञ डुम्बुर।

अं०—क्लस्टर फिग Clusterfig), कंट्री फिग (Country fig)

ले०—फाइकस ग्लोमेरटा, फा रेसमोजा (F Roccmosa)

रासायनिक सङ्गठन—

इसमें टेनिन, मोम, एक प्रकार का रबड़ (Caoutchoue) तथा भस्म मे सिलिका व फास्फरिक एसिड पाये जाते है।

प्रयोज्य अंग—फल त्वक् (छाल), पत्र, दूध, मूल एव पचाङ्ग।

गुण धर्म और प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, कषाय, मधुर, विपाक में कटु, शीतवीर्य, एव कफपित्त शामक, अग्निसादक, स्तभन, वर्ण्य, वेदनास्थापन, व्रणशोधक, रोपण, मूत्रसंग्रहणीय, दाहप्रशमन, गर्भरक्षक, अस्थि संधानक तथा शोथ, रक्तपित्त, व्रण, रक्तातिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, प्रदर, प्रमेह, अर्श, योनिरोग, गर्भाशय विकार आदि नाशक है।

फल—

[अ] अत्यन्त कोमल [प्रारभिक अवस्था के] फल कसैले, सकोचक [स्तम्भक], कफ, पित्त, तृषा, रक्तविकारादि नाशक। चेचक मे दाह शमनार्थ तथा मधुमेह मे पाचन एव पौष्टिक रूप मे इनका उपयोग होता है।

[आ] मध्यम कच्चे फल—कसैले, शीतवीर्य, रुचिकारक, प्रदर, रक्तस्राव, वमनादिनाशक हैं।

[उ] अर्ध पक्व [गदरे] फल—गुरु, कसैले, रुचिकर, दीपन, मांसवृद्धिकर तथा रक्तदोषकारक है।

[ई] परिपक्व फल—गुरु, कसैले, मधुर, दीपन, अतिशीत वीर्य, रुचिवर्धक, कृमि उत्पादक कफकारक तथा रक्तविकार, दाह, क्षुधा, तृषा, श्रम, प्रमेह शोष, मूर्च्छा एव नेत्रविकार आदि नाशक हैं। कहा जाता है कि वर्ष में १०–२० बार ये फल खा लेने से वर्ष भर नेत्र रोग नही होते। इतना ही नही—

कच्चे फलों का शाग तथा मौसम में पक्के फलों को प्रतिमाह ५-१० दिन खा लेने से नेत्र रोग, मधुमेह, एव मूत्र सम्बन्धी विकार नही होने पाते। यह मधुमेही के लिये एक उत्तम पथ्य है। रक्तार्श मे—फलों का शाग रोटी के साथ खिलाते हैं।

नेत्राभिष्यन्द—आंख आने पर कच्चे फल को स्त्री दुग्ध के साथ लोह पात्र मे घिस कर आंखों पर लेप करते हैं।

मूत्रकृच्छ्र मे—नित्य प्रात २-२ पके फल रोगी को खिलाते हैं। गर्भवती के अतिसार मे—पके फल शहद के साथ सेवन करावे।

गर्भपुष्टि के लिये—गर्भ के चौथे मास मे स्त्री को फल के कल्क से अभ्यग कराना यह हिन्दु सस्कृति का अंग है। [गृह्य सूत्र]।

धातु दौर्बल्य मे—कच्चे फलो का चूर्ण व खांड सम-भाग मिश्रण कर १ तोला तक नित्य प्रात. साय जल के साथ लेवें।

कठ की पीडायुक्त शोथ मे—कच्चे फल ५ तोले लेकर ३० तोले जल मे आध घटे तक उबाल कर छान कर गण्डूष कराते है।

उष्णता एव दाह शमनार्थ—पके १ या २ फलो को मिश्री के साथ नित्य प्रात सेवन कराते हैं।

तृष्णा शांति के लिये—कच्चे फलो को पत्थर पर

जल के साथ पीस छानकर पिलाते रहने से ज्वरजन्य या किसी भी प्रकार की अत्यधिक प्यास की शांति होती है। प्रदर, अधिक रजस्राव, प्रमेह आदि पर—कच्चे फलो का चूर्ण १ या २ तोले की मात्रा मे प्रात साय शीतल जल से लेते रहने से प्रदर आदि तथा मसूरिका, रोमातिका कठमाला रोग भी धीरे धीरे आराम हो जाते हैं।

ग्रीष्म काल मे पके फलो का शर्बत मन को प्रसन्न एव शरीर को पुष्ट करता कब्ज को दूर करता तथा कास श्वास मे भी लाभ करता है।

बृहत्वगेश्वर रस के अनुपान मे पक्व फलो का ताजा रस दिया जाता है, जिससे मधुमेहजन्य मूत्रनलिका सम्बन्धी विकारो मे शीघ्र लाभ होता है।

[१] पूयप्रमेह [सुजाक] पर—कच्चे फलो का महीन चूर्ण, समभाग खाँड मिला कर मात्रा २ से ६ माशे या १ तोला तक प्रात साय कच्चे दूध को मिश्री मिली हुई लस्सी के साथ सेवन करने से सुजाक की प्रारभिक अवस्था मे विशेष एव शीघ्र लाभ होता है।

[२] पिष्ट प्रमेह या शुक्लमेह [Chyluria] पर—अच्छे परिपक्व फलो को चीरकर उनकी टोपी उलट कर सूखा लें, फिर उनको थोडा कूट बीज निकाल डालें; केवल छिलके को ही महीन पीस समभाग मिश्री मिला ६-६ माशे प्रात साय गो दुग्ध से सेवन करें।

[३] रक्तपित्त पर—शरीर के किसी भी मार्ग से किसी भी कारण से रक्तस्राव हो तो इसके २ या ३ पके फलो को शक्कर या खाड के साथ सेवन करावें।

अथवा शुष्क कच्चे फलो का चूर्ण समभाग मिश्री चूर्ण मिला ६ माशे से २ तोले तक की मात्रा मे ताजे जल से प्रात साय २१ दिन तक सेवन कराने से रक्त प्रदर, अधिक रजस्राव, गर्भपात, रक्तप्रमेह, रक्तातिसार या ऊर्ध्वगत रक्तपित्त में पूर्ण लाभ होता है।

अथवा—उक्त चूर्ण को या सूखे या हरे फलो को पानी मे पीस मिश्री मिला पीने से भी लाभ होता है।

केवल रक्त की वमन हो, तो फलो के चूर्ण के साथ कमलगट्टा चूर्ण मिला, दूध के साथ थोडा थोडा पिलावे।

[४] प्रमेह-पिडिका [Carbuncle] और मधुमेह पर—पके फलो का चूर्ण १ से २ तोले नित्य प्रात साय जल से १ मास तक सेवन करें। तथा पथ्य मे यव के अन्न का ही भोजन करें।

केवल मधुमेह हो. तो उक्त चूर्ण के साथ जामुन गुठली का चूर्ण समभाग मिला मात्रा २ तोले शीतल जल से लेवे। इससे बहुमूत्र मे भी लाभ होता है।

[५] नकसीर—यदि मस्तकशूल के कारण नाक से रक्तस्राव हो, तो पके फलो मे शक्कर भरकर घृत मे तल कर इलायची व कालीमिर्च चूर्ण ४-४ माशे के साथ नित्य प्रात सेवन करें तथा मस्तक पर कटेरी फल का रस मर्दन करें।

(६) बाजीकरणार्थ—फल का चूर्ण तथा विदारीकन्द का कल्क समभाग मात्रा ४-६ माशा घृत मे मिले हुए दूध के सेवन करने से 'वृद्धोऽपि तरुणायते' अर्थात् वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता है। —भै र.

(७) श्वास पर—इसके फल, पत्ते और छाल १-१ सेर जौकुट कर ४ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर छानकर उसमे १ सेर मिश्री (खजूर की हो तो उत्तम) मिला पुन पकाकर अवलेह बना ले। १-१ तोले दिन मे ३ बार चटावें।

(४) गुदपाक पर—अत्यधिक दाहयुक्त अतिसार के कारण हो तो फलो के साथ इसके कोमल पत्र और छाल का कल्क मिला क्वाथ कर उससे सिद्ध किये हुये घृत या तिल तैल का लेप करे। गुदा मे होने वाली सदाह वेदना दूर होती है।

त्वक् (छाल)—

कसैली, सकोचक, शीतवीर्य, दुग्धवर्धक, गर्भरक्षक, व्रणरोपक है।

अत्यार्त्तव या अतिरज स्राव पर—छाल का फाँट देते हैं। रक्तप्रदर मे छाल का शीत निर्यास देवे। नकसीर मे छाल को पानी मे पीस तालू पर लेप करते हैं। व्रण—इसके क्वाथ से धोते रहने से साधारण तथा जहरीले व्रण शीघ्र आराम होते हैं। इस क्वाथ का उपयोग मुखपाक मे गण्डूष कराने तथा दुष्ट प्रदर मे उत्तर वस्ति देने के कार्य मे भी उत्तम होता है। अपरापातनार्थ—प्रसूता का आवल शीघ्र गिरने के लिये छाल को चावलो के धोवन

में घिस कर पिलाते हैं। वछनाग के विप पर छाल को थोडे पानी मे पीस तथा कपडे मे निचोड छान कर थोडा घृत मिला गरम कर पिलाते हैं। सखिया के विष पर उक्त छाल का रस या फलो का रस आध सेर तक पिलाते है। शेर या बिल्ली के नाखूनो से हुई जखम को छाल के क्वाथ से धोते हैं।

(९) रक्तप्रदर पर—ताजी छाल २ तोले कूटकर १ पाव पानी मे पकावें। आधा पानी शेप रहने पर छान कर उसमे २ तोले मिश्री व १॥ माशा श्वेत जीरा चूर्ण मिला प्रात तथा इसी प्रकार शाम को बनाकर पिलावें। तथा पथ्य भोजन मे इसके कच्चे फलो के रायते का सेवन करावें।

(१०) सुजाक पर—छाल का जौकुट चूर्ण ५ तोले पानी आध सेर मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे ३ माशा कत्था व १ माशा कपूर मिला कुछ गरम रहते ही पिचकारी से मूत्रेन्द्रिय को धोते रहने से अन्दर की जख्म भर कर मवाद आना बन्द होता है।

(११) मधुमेह व बहुमूत्र पर—छाल को कूटकर ४ गुने पानी मे पका चतुर्थांश शेप रहने पर मल कर छान लें। इसे पुन पकाकर घन क्वाथ बना लें। मात्रा १ माशा गौदुग्ध से या जल से लिया करे। स्वर्ण बग या बग भस्म १ रत्ती की मात्रा मे मधु से लेकर पश्चात् इस घन क्वाथ का सेवन करे तो और भी उत्तम लाभ होता है।

(१२) मुख रोग पर—छाल के १० तोले क्वाथ मे ३ माशा कत्था व १ माशा फिटकिरी मिला कुछ गरम रहते गण्डूष (मुख मे धारण कर कुल्ले) करे।

मूल की छाल तथा मूल का रस—

शीतल, स्तम्भक एव उत्तम पौष्टिक है।

मूल का रस निकालने की विधि—गूलर के अच्छे तरुण वृक्ष की जड के नीचे गड्ढा खोदकर तथा उसकी किसी एक जड की मोटी शाखा को काटकर उसका मुख एक घडे के अन्दर रख दें। जड से बूद बूद रस टपक कर घडे मे एकत्रित होने पर इसे शीशी मे भर रक्खे।

(१३) सुजाक तथा उपदश पर—उक्त मूल रस ४ तोले तक स्याह जीरा चूर्ण व शक्कर मिला पिलाते रहने से मूत्रनलिका का शोथ कम होकर लाभ होता है। अथवा जड की छाल का क्वाथ ही जीरा व मिश्री मिश्रणकर सेवन करावें। इस जड़के रस का उपयोग मधुमेह मे भी लाभकारी है।

(१४) अश्मरी पर—मूल रस २ से ६ तोले मे मिश्री मिला पिलावें तथा इसकी जड को गौदुग्ध मे पीसकर शिश्न पर लेप करे।

(१५) गर्भस्राव या पात पर—जड छाल का क्वाथ बना शक्कर मिश्रण कर पिलावें। होता हुआ गर्भस्राव रुक जाता है। अथवा—

इस शर्करा मिले जड छाल के क्वाथ मे शाठी चावल के आटे को मिला खिलावें अथवा इस क्वाथ मिश्रित आटे की पूडी बना घृत मे तलकर खिलावें। —शोढल

(१६) पित्तज्वर पर—जड की छाल के हिम मे या जड के रस मे शक्कर मिला पीने से तृषायुक्त ज्वर की शान्ति होती है।

(१७) बालको की तीव्राग्नि पर—गूलर की अन्तर छाल को स्त्री दुग्ध मे घिस कर पिलाते हैं। अथवा केवल जड रस को ही ७ दिन तक पिलावें। बडो की तीव्राग्नि या भस्मक रोग मे भी इससे लाभ होता है।

(१८) फिरग रोग पर—जड की छाल ४ तोले तथा पानी १ सेर अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर इसकी २ मात्रा कर प्रात साय सेवन करावे। सयम व पथ्य का पूर्ण पालन करें। नेत्ररोग मे भी इससे लाभ होता है।

(१९) सखिया के विष तथा भिलावे की शोथ पर—छाल का शीत निर्यास या जड रस गरम कर घृत मिला आवश्यकतानुसार १-१ घन्टे पर पिलाते हैं, सखिया का असर दूर होता है।

भिलावे के धुएँ से पैदा हुई सूजन पर मूल छाल को पीसकर लेप करते है।

पत्र—

इसके पत्र सकोचक, कसैले, पित्त, दाह, व्रण, अतिसार, विशूचिका, प्रदर आदि नाशक हैं।

पित्त विकारो मे—पत्तो को पीस छान कर शहद के

साथ देते हैं। रक्तप्रदर मे पत्तों के साथ दूब की जड तथा काटेदार चौलाई की जड थोडा पानी मिला पीस छान कर पिलाते हैं। हैजा मे पत्तो को चावल के धोवन के साथ पीस छान कर यथा समय आवश्यकतानुसार पिलाते हैं। कट जाने या कुचल जाने पर उस स्थान पर पत्र रस दिन मे ३-४ वार लगाते तथा ऊपर इसीके पत्र बाधते हैं। विच्छू के विष पर पत्तो की लुगदी दश स्थान पर रखते हैं। वाजीकरणार्थ पत्राकुर का रस २ तोले मे विदारीकन्द चूर्ण २ माशा मिला दूध और घृत के साथ सेवन करें। —भैं० र०

संखिया के विष पर—पत्ते १० नग पीस कर ५ तोला पानी मे घोल छान कर पिलाते हैं। इस प्रकार घटे घंटे से जब तक विष दूर न हो पिलाते हैं। आमातिसार मे पत्ते १ तोला पानी १ पाव मे चतुर्थाश क्वाथ कर प्रात साय पिलावें।

(२०) पित्तज श्वास एव कास पर—पत्ते तथा इसकी छाल १॥-१॥ सेर लेकर जौकुट कर १२ सेर जल मिला मिट्टी के पात्र मे २४ घटे तक भिगोने के वाद चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध कर उसमे शक्कर (यह खजूर की हो तो उत्तम) ३ सेर मिला शर्बत की चाशनी करलें। २-२ तोला दिन मे ३ वार देवें।

कास पर—चूर्ण तथा मुलैंठी चूर्ण समभाग इनको पत्र रस से ही खरल कर बेर जैसी गोलिया वना मुख मे चूसते रहे।

(२१) रक्तार्श पर—कोमल पत्र २ तोला महीन पीस गाय के दूध का दही १ पाव व थोडा सेंधा नमक मिला सेवन करें।

(२२) चेचक और गडमाला पर—चेचक की प्रारभावस्था मे— पत्तो पर जो छोटे छोटे श्यामवर्ण के दाने से होते हैं, उन्हे (पत्तो पर से निकाल कर) गौदूध मे पीस छानकर मधु मिला पिलाने से चेचक का असर कम पड जाता हैं। चेचक के दानो मे मवाद नहीं होने पाता। दाने विशेष उभर आने पर इसके पत्तो को दूध मे पीस मधु मिला दानो पर लगावें।

गूलर पत्र के इन उभारो को मिश्री के साथ पीस कर सेवन करने से उष्णताजन्य मुखपाक मे लाभ होता है।

गण्डमाला ग्रस्त रोगी को पत्तों के ऊपर की इन फुसियो (दानो) को मीठे दही में पीसकर शक्कर मिला नित्य १ वार पिलावें।

(२३) दुष्ट व्रणो पर—पत्तो का क्वाथ कर उससे सिद्ध किये हुए घृत को लगाते रहने से भयकर सडे हुए फोडे ठीक हो जाते हैं। साधारण व्रणो पर कोमल पत्तो को पत्थर पर पीस कर लुगदी बाधते रहने से उनका शोधन एव रोपण होकर सूख जाते हैं।

(२४) ऊर्ध्वग रक्तपित्त पर—पत्र-स्वरस के साथ पीपल वृक्ष की लाख का चूर्ण और मिश्री समभाग मिला मात्रा ६ माशे से १ तोला तक सेवन कराते हैं।

(२५) अतिसार और ग्रहणी पर—पत्र चूर्ण ३ माशे व काली मिरच २ नग थोडे चावल के धोवन के साथ चटनी जैसा पीस उसमे काला नमक और तक्र मिला छानकर प्रात साय सेवन करें। पथ्य मे इसके कच्चे फलो की शाक, भात, जीरा व नमक देवें।

पत्र से निर्मित औदुम्बर सार का प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

दूध—

कई व्याधियो पर हितकारी है तथा बच्चो की बीमारियो तथा कृमि, ज्वर, कफप्रकोप (पसली चलना), कास, अशक्ति, सूखा रोग, अतिसार, रक्तविकार एव दुग्धजन्य व्याधियो मे विशेष लाभकारी है। १ से ५ बूद तक इसे माता के दूध से या गोदुग्ध या मधु के साथ देते हैं, तथा छाती एव कनपटी पर इसके दूध का लेप करते हैं। मनुष्यो की भगन्दर, नासूर, शोथ जैसे रोगो मे तथा वीर्य सम्बन्धी विकारो में इसका उपयोग किया जाता है। यह शीतल, स्तम्भन, रक्त सग्राही, रसायन एव वल्य है। यह रक्तस्रावयुक्त प्रवाहिका मे दिया जाता है। कठमाला, बदगाठ तथा अन्य प्रदाहयुक्त शोथ एव फोडे फुसियो पर इसके प्रलेप से वेदना दूर होती है। कटिशूल मे कमर पर तथा श्वास रोग मे छाती व पीठ पर इसे लगाते है। नासूर मे इसे तिल तैल मे मिलाकर लगाते हैं। अथवा इस दूध मे रुई का फाया भिगो नासूर या भगदर के भीतर रखते हैं, तथा उसे रोज बदलते रहते है। मूत्र विकार मे दूध को बताशे मे भर कर नित्य प्रात सेवन

करे। प्रमेह पिडिका पर—दूध मे बावची बीज पीस कर लगाते या केवल दूध को ही दिन मे ३-४ बार लगाते हैं। छाती, पेट, गाल, कर्ण शोथ, कर्णमूलिक ज्वर (Mumps), आम-वात से पीडित सन्धिस्थान तथा अन्य भागो पर उठी हुई गाठो पर दूध का लेप कर ऊपर रुई रख पट्टी बाधते हैं। नेत्राभिष्यन्द (आख आने) पर—५ से १० बूदें बताशे में भर दिन मे ३ बार देवें। इस प्रयोग से आत्र व्रण एव उदर शूल मे भी लाभ होता है।

बच्चो की काली खासी मे—दूध को तालु स्थान पर बार बार लगाते हैं। शीत वात से शरीर का कोई स्थान जकड जाने पर दूध लगाकर रुई बाधते हैं। विपादिका (बिवाई) पर इसका लेप करते हैं।

(२६) विद्रधि पर—इसका दूध सूर्योदय के पूर्व ही [ध्यान रहे सूर्योदय के पूर्व ही किसी तेज चाकू, छुरी से वृक्ष को छेदने से शनै शनै एक एक बूद दूध निकलता है। इसे सावधानी से छोटी कटोरी (चादी की हो तो उत्तम) मे सग्रह कर अच्छी तरह ढाक कर रखना चाहिये] निकाल कर विद्रधि पर चुपड कर महीन चिकना पतला कागज ऊपर रख रुई की पट्टी से बाध देने से वह बैठ जाती है। जब तक न बैठे तब तक नित्य एक बार यह उपचार करें।

(२७) धातुक्षीणता पर—दूध को बताशे मे भर कर प्रात साय सेवन करने से यौवन स्थिर रहता एव रोग दूर होते हैं। अथवा—मूल-रस को दोनो समय थोडा थोडा चाटने से यथेष्ट बलवृद्धि होती है।

(२८) बालकों के सूखा रोग पर—जबकि बालक को कुछ भी पता न हो, दस्त, वमन एव हल्का ज्वर रहता हो तो इसके दूध की ५ से १० बूद, माता या गौ के दूध मे मिला दिन मे ३-४ बार पिलावे।

(२९) रक्तार्श पर—इसकी ५ से १० बूदें जल में मिला पिलावे, तथा मस्सो पर यह दूध दिन में २ बार लगाते रहे और गोघृत २-२ तोला प्रात साय पीते रहे। इस प्रयोग से मूत्रकृच्छ्र में भी लाभ होता है।

पंचाङ्ग—

गूलर के पचाङ्ग का क्वाथ, शक्कर मिलाकर पीते रहने से बल वीर्य की वृद्धि एव कास श्वास में लाभ होता है।

विशिष्ट योग—

(१) औदुम्बर-सार—५ सेर अच्छी हरी पत्तियो को साफकर जल से धोकर कूटकर कलईदार पात्र मे २० सेर जल के साथ मन्द आच पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान ले (क्वाथ के आधा शेष रहने पर ही छानने में सुविधा रहती है) फिर उसमें २॥ तोला सुहागे का फूला महीन चूर्ण कर मिला मन्द आग पर पकावे, लकडी के करछे से हिलाते रहे। जब करछे मे लगने लगे नीचे उतार कलईदार थाली मे फैला ऊपर बारीक कपड़ा बाधकर धूप मे सुखा लें। अच्छा घन हो जाने पर काच की बरनी मे भर रखें।

मात्रा—५ से १० रत्ती। रक्तस्राव एवं प्रदाह प्रधान रोगो मे उदर सेवनार्थ। नेत्र मे डालने के लिये इसे १६ गुना शुद्ध जल मे मिला ले। यह शोथ विलयन, व्रण शोधन, रोपण, व्रण शोथ तथा स्त्रियो के स्तन शोथ पर इसका प्रलेप लाभकर है। व्रण प्रक्षालनार्थ इसे ८ से १६ गुने गरम जल मे मिला लेने से वह शीघ्र शुद्ध होकर भरता है। मुखपाक मे इसके कुल्ले कराते हैं। स्त्रियो के प्रदर एव योनिक्षत मे इसकी उत्तर बस्ति देते हैं। नेत्राभिष्यन्द मे नेत्र के चारो ओर इसका लेप तथा अर्क गुलाब मे बनाये हुये इसके द्रव की बूदें अन्दर टपकाने से शीघ्र लाभ होता है। रक्तार्श, रक्तप्रदर आदि मे इसकी ३ से ६ माशे की मात्रा ८ गुने जल मे मिला दिन मे ३-४ बार पिलाते है। इसी प्रकार जीर्ण आमातिसार, अपचन, सुजाक, मधुमेह, पित्तप्रकोप व्याधिया, जीर्णज्वर आदि ग्रस्त रोगियो को भी इसका सेवन कराते है तथा अण्डकोष के क्षत, नाडी व्रण, विद्रधि, श्लीपद, क्षय-ग्रन्थि, पायोरिया, कर्णपाक, नासाक्षत, अग्निदग्धव्रण, विपादिका आदि मे इसका प्रलेपादि बाह्योपचार करें।

फिरग (उपदंश) पर—उक्त सार के घोल से प्रक्षालन करने एव इसीका गाढा लेप करने तथा दिन में २ बार उदर सेवन कराते रहने से नया फिरग रोग शीघ्र ही शमन होता है।

(२) उदुम्बरादि तैल का प्रयोग—चरक सहिता

चि स्था अ ३० योनि व्यापच्चिकित्सा प्रकरण मे देखिये ।

(३) औदुम्बर पाक तथा औदुम्बरासव के प्रयोग हमारे वृहत्पाक सग्रह तथा वृ०आसवारिष्ट संग्रह पुस्तको मे देखिये ।

(४) वहुमूत्रान्तक रस (भै र.) मे गूलर बीज का योग है तथा इस रस को गूलर स्वरस के ही अनुपान से सेवन कराया जाता है ।

(५) हेमनाथ रस (भै. र) को ७ बार गूलर पत्रांकुर के स्वरस की भावना देकर उसीके अनुपान से सेवन कराते हैं । यह प्रमेह, सोमरोग, वहुमूत्र, क्षय, श्वास, कास, उर क्षत आदि रोगो पर दिया जाता है । बहुमूत्र मे यह विशेषत गूलर के रस के अनुपान से उत्तम लाभ करता है । अन्य रोगो मे रोगानुसार अनुपान की कल्पना करनी चाहिये ।

नोट—मात्रा-कच्चे या पके फलों का चूर्ण ३ से ६ माशे । क्वाथ ५-१० तोले तथा दूध ५ से १० बूद तक । फल २-४ । अधिक मात्रा में यह आमाशय के लिये हानिकर है तथा ज्वरकारक भी है । हानिनिवारणार्थ अनीसूं, सिकंजवीन और शीतल जल देते हैं ।

गेंदा [Tagetes Eracta]

इस भृंगराज कुल (Compositae) के गुल्म जातीय वर्षायु क्षुप ३-८ फ़ीट ऊंचे, काड तथा शाखायें कोणयुक्त, पतली, खुरदरी, पत्र एकान्तर, भाग के पत्र जैसे रोमश, कगूरेदार १-२ इंच लम्वे तथा ½ इंच चौडे, सुगन्धयुक्त होते हैं ।

पुष्प—शीतकाल मे गोल, छोटे, बडे कई रग एव प्रकार के आते हैं । बीज—पुष्प की पखुड़ियो के निम्न भाग मे बारीक, लम्बे व काले होते हैं ।

नोट—पुष्प के वर्ण एवं आकृति भेद से इसकी अनेक जातिया हैं । जैसे जाफरी गेंदा–इसमें फूल की पखुड़ियां वड़ी, रंग पीला, शाखाएं पीताभ हरितवर्ण की, एवं पत्तिया कम होती हैं । हजारा (सदावर्ग) गेंदा–का फल वड़ा, सुहावना, पीला सुनहरी रंग का होता है । हब्शी गेंदा–के फूल की पखुडियां छोटी, पीली तथा लिपटी हुई सी होती हैं । सुरमाई गेंदा–की पखुडियां जरा वड़ी, बिखरी हुई होती हैं । मखमली गेंदा–की पंखुड़ियां लाल स्याम, नीचे की ओर मुड़ी हुई, भीतर की छोटी पंखुड़ियां पीले रग की वहुत ही सुन्दर होती हैं । इत्यादि

यह मूलत मेक्सिको देश का है । लगभग ४०० वर्ष से इसका प्रचार भारत मे हो रहा है, सर्वत्र बाग बगीचो मे तथा घरो मे वर्षाकाल मे लगाया जाता है ।

नाम—

सं०—झण्डू, झण्डूक ।
हिं०—गेंदा, गुलजाफरी, मखमली ।
म०—झेंड, मखमल । गु०—गलगोरो ।
ब०—गेंदा, मखमल ।
अं०- फ्रेंच मेरीगोल्ड (French Marigold)
लै०—टेगेटस एरेक्टा ।
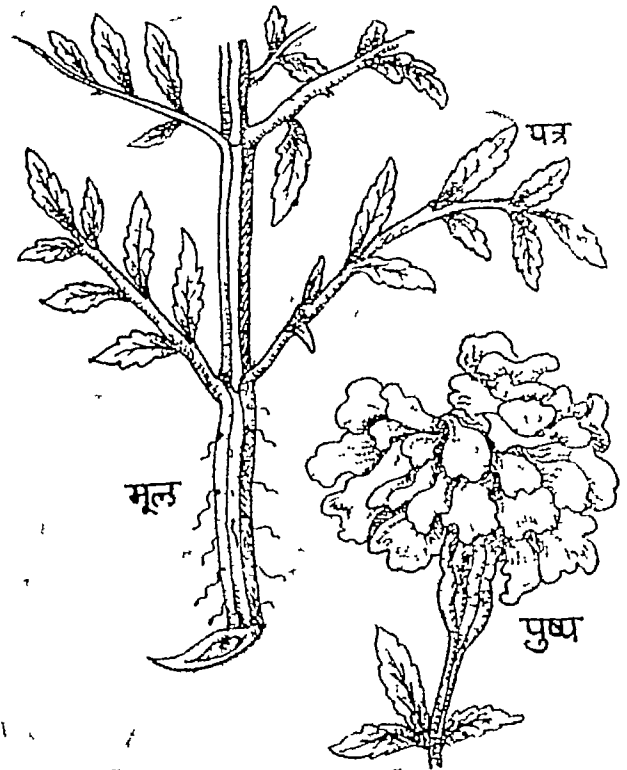
रासायनिक सङ्घठन—

इसमे एक उडनशील तैल, कटु सत्व तथा एक पीला रंजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्य अग—पुष्प, पत्र, मूल, बीज व पचाग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य तथा कफपित्तशामक, मूत्रल, सग्राही, रक्तरोधक, शोथहर है। क्षत, व्रण, रक्तार्श, अश्मरी आदि नाशक एव कामेच्छा शामक है।

क्षत, व्रण और शोथ मे—पुष्प और पत्तो का लेप करते हैं। रक्तविकार, रक्तार्श, रक्तप्रदर एव रक्तपित्त मे पुष्प स्वरस देते हैं अथवा इसके कल्क को घृत मे तल कर देते हैं। शस्त्रादि से कट जाने या सद्योव्रण मे फूल के स्वरस को जखम मे भरकर ऊपर से इसकी पत्ती की लुगदी रख कर बाध देते हैं। व्रण से विशेष रक्तस्राव होता हो तो इसके पत्र रस मे कुडा छाल का महीन चूर्ण मिला लगाते हैं। कर्णपीडा पर पत्र रस कान मे डालते हैं। स्तन शोथ पर पत्र रस लगाते हैं। दाद पर पत्र रस का मर्दन करते हैं। दन्त पीडा पर पत्तो के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। अर्श पर पत्र .१ तोले व कालीमिर्च २ माशा जल मे पिलाते हैं। मूत्रकृच्छ्र मे पत्र १ तोले पीस कर मिश्री मिला पिलाते हैं। अश्मरी पर इसे बेर पत्थर (हजल यहूद) के साथ पानी मे पीस छान पिलाते।

१ रक्तार्श के रक्तस्राव पर—पत्र १ पाव तथा केले की जड २ सेर इनको कूटकर पानी मे रात भर भिगो दूसरे दिन प्रात भबके से अर्क खीच कर प्रात साय मात्रा २ तोले तक पिलाते है। फूलो की पखुडियां ६ माशा से १ तोले तक पीसकर गोघृत मे तल कर खिलाने से भी रक्तस्राव बन्द होता है।

२ पित्तज श्वास कास पर—फूलो के मध्य भाग की श्वेत घुन्डियो का चूर्ण कर शक्कर और भीगे ताजे दही के साथ सेवन कराते हैं।

३. गुदभ्रश [काच निकलने] पर—पत्र ३ माशा, मिश्री ६ माशा, पानी २॥ तोले के साथ पीस छानकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। —धन्वन्तरि

४ कामेच्छा शमनार्थ—इसके बीज १०॥ माशे की मात्रा मे महीन चूर्ण कर खिलाने से स्त्री पुरुष दोनो की विषय वासना शान्त हो जाती है। —यूनानी

५ सविशोथ, चोट व मोच पर—इसके पंचाग के रस का मर्दन करते हैं। पचाग का स्वरस १५ से २५ रत्ती तक की मात्रा मे प्रशमन, उत्तेजन तथा स्वेदजनक है।

६ आखो की लाली पर—इसके फूल १ तोले जला कर उसमे गोघृत तथा कपूर १-१ तोले मिला खरल कर अजन करने से लाभ होता है।

७ स्तन शोथ पर—इसके पत्रो को कपडे मे बाध कर ऊपर से कपड़मिट्टी कर पुटपाक विधि से भूभल मे सेक कर अन्दर के गरम पत्रो को निकाल कर शोथ पर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

इस प्रकार गरम किये हुये पत्तो का रस निकाल कर कान मे टपकाने से कर्ण शूल एव कर्णस्राव में भी लाभ होता है। अर्श के मस्सो पर इस प्रकार गरम किये हुये पत्रो की लुगदी बाधते हैं।

वैद्य भँवरलाल सुराणा 'वैद्य विशारद'
Registered Practitioners (Regd No ... .. Class......)
P.O. NOKHA (Raj.)

धन्वन्तरि

[वनौषधि विशेषांक परिशिष्टाङ्क]

वर्ष ३७ अंक ३
मार्च १९६३

गेहूं [TRITICUM VULGARE]

यह धान्यवर्ग मे सर्वश्रेष्ठ, पौष्टिक, यवकुल [Graminacae] का धान्यराज सर्वत्र प्रसिद्ध है। पृथ्वी के प्राय. सब बडे बडे देशो मे इसकी खेती होती है । पौधे यव [जो] के पौधे जैसे होते हैं ।

भावप्रकाश निघण्टु मे इसके ३ भेद हैं—[१] महागोधूम [बडा गेहूं] यह भारत के पश्चिम [पजाब आदि] देशो मे होता है। इसके दाने बडे होते हैं।

[२] मधूली—यह उक्त महागोधूम की अपेक्षा कुछ छोटा, तथा भारत के मध्य [उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि] देशों मे होता है।

[३] दीर्घ-गोधूम—यह शूक या टुंड रहित होता है। इसे 'नन्दीमुख' भी कहते हैं।

वैसे तो इसकी कई जातिया—कटा [जो गेहू खेत मे बिना सिंचाई के होता है], वागिया [जिसे सीचना पडता है], दाऊदखानी, बक्षी [कला कुसुल], खापली, हसिया आदि इनमे बक्षी गेहूँ सर्वोत्कृष्ट है । आजकल जो फार्म [फारम] का विदेशी गेहू बोया जाता है वह सबसे निकृष्ट है। रग भेद से पीले, सफेद, लाल, तुलिया आदि भी इन्हे कहते हैं। लाल गेहूँ सर्वोत्तम होता है तथा यह बक्षी की ही एक जाति है, तुलिया निकृष्ट है।

गेहू के जितने उत्तम खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं उतने और किसी धान्य के नही। अन्य धान्यो की भूसी [चोकर] तो प्राय पशुओ के लिये ही उपयोगी है, किन्तु गेहूँ की भूसी पशुओ के अतिरिक्त मनुष्यो के लिये भी महान उपयोगी है। इसमे अन्य धान्यो की भूसी की अपेक्षा अधिक परिमाण मे प्रोटीन, खनिज द्रव्य तथा सेल्युलोज होता है। इसके गुणधर्म आगे देखिये । ध्यान रहे आधुनिक मशीन की चक्कियो मे पीसने से यह भूसी प्राय जल जाती है हमे नि सत्व आटा मिलता है किन्तु परिस्थिति एव दुर्भाग्यवश हमे अब यही आटा खाकर निर्बल तथा अनेक रोगो के शिकार बनना पडता है।

नाम—

सं०—गोधूम, सुमन। हि०—गेहू, गोहू। म०—गहू।
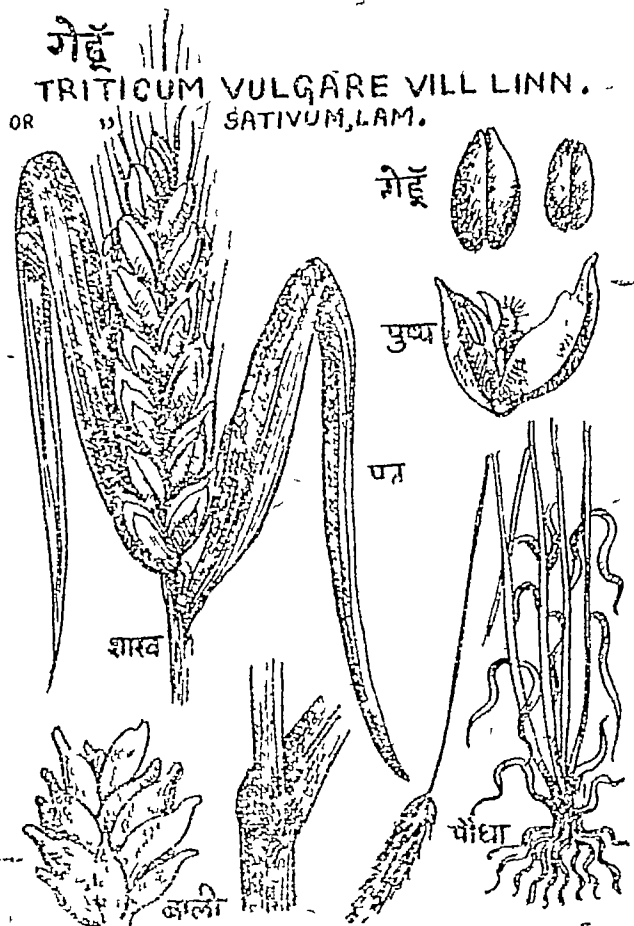
गु०—घऊ, घेऊं। बं०—गम। अं०—व्हीट (Wheat) ले—ट्रिटिकम ह्वलगेरी, ट्रि सटिह्वम (T Sativum)

रासायनिक सघठन—

इसमे प्रतिशत ६७ ६ स्टार्च या कार्वोहायड्रेट, १२.४ प्रोटीन, १ ४ चरबी तथा कुछ खनिज द्रव्य होते है। मानव शरीर के आधारभूत सब आवश्यक तत्व इसमे होने से ही, यह 'जीवन' [जीवनाधार—Staff of Life] कहलाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

गुरु, मधुर, स्निग्ध, वृंहण, शीतवीर्य, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, रुचिकर, कामोद्दीपक, मृदुसारक, सन्धानकर, वर्ण्य, वातपित्तशामक, व्रण के लिये हितकर है।

नवीन गेहूँ कुछ कफ को बढाता है किन्तु पुराना कफनाशक है। यह मधुमेही के लिये विशेष अहितकर

नही है।

कास, रक्तष्ठीवन, छाती की पीडा, मस्तिष्क दौर्बल्य एव नपु सकता पर—बादाम-गिरी का कल्क व शक्कर के साथ गेहू का हरीरा या सीरा बनाकर सेवन करायें।

अस्थिभग पर—इसे किंचित् भूनकर चूर्ण करते व मधु से चटाते हैं। अश्मरी पर—इसके साथ चने को औटाकर छानकर पिलाते हैं।

नारू [नहरुआ] पर—इसके साथ सन के बीजों को पीस कर घी मे भून, गुड मिला खिलाते हैं। तथा नारू के स्थान पर चूना व बिडलोन पानी मे पीस कर लेप करते हैं।

कास पर—इसका मोटा चूर्ण १। तोला व सेंधानमक २ माशा [यह १ मात्रा है] दोनो को १ पाव पानी मे पका कर ५ तोला शेष रहने पर छान कर ७ दिन तक पिलाते है।

अर्श पर—इसके आटे को भागरे के रस मे गू धकर गोघृत मे पूडिया बना तक्र के साथ खिलाते तथा ऊपर से १--२ मूली खिलाते हैं।

मूत्रकृच्छ्र तथा शारीरिक अत्यधिक उष्णता के शमनार्थ—इसे १० तोले तक लेकर पानी मे रात भर भिगो प्रात पीस छानकर उसमे ५ तोला तक मिश्री मिला ७ दिन तक पिलाते हैं।

बद या किसी भी ग्र थि को पकाने के लिये इसके आटे की पुल्टिस ७-८ बार बाधते रहने से वह पक कर फूट जाती है, फिर व्रणोक्त चिकित्सा करते हैं।

चोट या मोच पर—बाह्य लेपादि चिकित्सा के साथ साथ इसे किंचित् भूनकर चूर्ण कर समभाग गुड तथा थोडा घृत मिला २ तोले तक की मात्रा मे नित्य प्रात साय खिलाते हैं।

विषैले कीटक के दश पर—इसके आटे को सिरके मे मिला लगाते हैं। बाल तोड या अन्य फोडाफु सी पर—इसे मुख मे चबाकर लगाते हैं।

कामला पर—एक करछी को आग मे खूब लाल कर १-२ मुट्ठी गेहू के ढेर पर दबाने से करछी मे जो गेहू का तैल जैसा काला द्रव भाग लग जाता है उसे ऊगली से आखो मे आजते हैं।

पागल कुत्ते की परीक्षा—यदि कोई कुत्ता किसी को काटा हो तो दश स्थान पर इसके आटे को पानी में गू थ कर मोटी रोटी सी बना वैसी कच्ची ही बाध दें। थोडी देर बाद उसे खोल कर किसी भी कुत्ते के आगे डाल दें। यदि वह उसे न खाय तो समझना होगा कि उस मनुष्य को पागल कुत्ते ने ही काटा है।

भूसी(चोकर)—इसकी भूसी कफ नि सारक, सारक, आन्त्रशुद्धिकर, लेखन, सशोधन, कफ पाचन एव शोथ विलयन है। इसका फाण्ट चाय जैसा बनाकर सेवन करते रहने से शरीर में स्फूर्ति, बल, वीर्य की वृद्धि, क्षुधा वृद्धि होती है। कास, श्वास, मधुमेह आदि रोगो मे इसका गरम हलुवा या हरीरा (बगैर शक्कर का) थोडा सेंधा नमक मिलाकर सेवन कराते है।

विशिष्ट योग—

१ गोधूमाकुर जीवनीय प्रयोग—उत्तम जाति का वजनदार रक्तवर्ण (बक्षी) गेहूँ ४० तोले लेकर २४ घन्टे पानी मे भिगोने के बाद उन फूले हुये गेहूँ को एकत्र वस्त्र मे पोले पोले लपेटकर रख दें। तीसरे दिन उस पर कुछ पानी के छीटे मार दें, चौथे दिन उन गेहूँ मे अंकुर फूट आने पर उन्हे छायाशुष्क कर तवे पर भून कर पत्थर की हाथ की चक्की मे पीस कर रख लें।

मात्रा-—२ तोले तक नित्य १०-१५ तोले दूध मे थोडा आग पर पकाकर १ चम्मच शक्कर मिला प्रात और कुछ न खाते हुये केवल इसका सेवन करने से शारीरिक निर्बलता शीघ्र ही दूर होती है। छोटे बच्चो को भी इसे उक्त मात्रा से आधी या चौथाई मात्रा मे देने से वे पुष्ट होते हैं। इस प्रयोग से प्रकृति निरोग एव प्रतिकार-क्षम होती है। नवप्रसूतिका, गर्भवती स्त्री को तथा दीर्घ रोग से मुक्त हुये अशक्त एव क्षीण व्यक्ति भी इससे यथेष्ठ लाभ उठा सकते हैं। गर्भवती को तीसरे मास के प्रारम्भ से या उसके पहले से ही इसे देते रहने से गर्भस्राव या पात, अकालप्रसूति आदि विकार नही होते तथा यथायोग्य समये पर प्रसूति होती है। इस प्रयोग से स्त्री का वन्ध्यत्व भी दूर होता है।

उक्त प्रयोग मे गेहूँ मे अकुर फूटने के बाद उन्हे

छायाशुष्क कर चक्की मे न पीसते हुये तैसे ही खरल में कूटकर जौकुट कर चूर्ण कर तथा थोडे घृत मे तलने से उत्तम खील उठते हैं तथा वहुत ही रुचिकर होते तथा कई दिनो तक बिगड़ते नही। इनका भी सेवन उसी १ या २ तोले की मात्रा मे दूध व शक्कर के साथ करते रहने से यथोचित यथोक्त लाभ होता है।

—श्रा पत्रिका के आधार पर

२ गेहूँ की काफी—कुछ उत्तम जाति के गेहूँ को लेकर मिट्टी के पात्र मे भूनकर हाथ की चक्की मे पिसवा लें। १। या १॥ तोले की मात्रा मे १० से २० तोले तक पानी मिला थोडी देर (५-१० मिनिट) आग पर पकावें। (पकाते समय उसे चम्मच से चलाते रहे), फिर उसमे यथावश्यक दूध व शक्कर मिला सेवन करें। वाजारू काफी के स्थान पर इसका सेवन करते रहने से शारीरिक निर्वलता शीघ्र दूर होती है।

इसी प्रकार गेहूँ के चोकर की भी काफी वनाकर सेवन करना परमोपयोगी है।

३. गेहूँ का तैल—पाताल यन्त्र द्वारा गेहूँ से जो एक प्रकार का तैल निकाला जाता है वह गजचर्म, दाद, झाई, सफेद दाग, सिर की गज आदि पर विशेष उपयोगी है। किन्तु पाताल यन्त्र से भी इसका तैल न निकले तो गेहूँ को अगारे पर रख दें, जव वे जलने लगे तो उन्हे लोहे के चदरे पर रख लोहे के वजनदार डण्डे से दवा दें। डण्डे व नीचे के पात्र मे लगे तैल को सावधानी से ऊगलियो से निकाल रखें।

नोट—गेरुवा-गेहूँ, जौ आदि धान्यों के पौधों मे होने वाले छत्रक कुल (Fungi) की रोगविशिष्ट वनस्पति को हिन्दी में गेरुवा, मरेठी में तांवा, गु० गेरवो, अं० अर्गट (Ergot), ले० क्लेविसेप्स पर्प्युरिया (Claviceps Purpurea) कहते हैं।

यह अतिसूक्ष्म वनस्पति इन पौधों का एक रोग ही है, इससे पौधे मारे जाते हैं। उनसे गेहूं आदि की उपज नहीं हो पाती। यह दुर्गन्धयुक्त एव अप्रिय गन्ध वाली होती है। इसी प्रकार मकई व जुआर के भुट्टों में होने वाली को काजली, कन्डो, अ गारा आदि कहते हैं।

गेहूं का यह गेरुवा तथा मकाई की कजली दवा के काम आती है। विदेशी अर्गट[१] के स्थान में इनका प्रयोग सफलता से होता है। कागदार शीशी में भर कर रखने से यह १ वर्ष तक नहीं बिगड़ता।

गुणधर्म और प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफपित्तशामक, उत्तेजक, प्रवल हृदय सकोचक, रक्तस्तम्भन (यह सूक्ष्म धमनियो का सकोचकर रक्तभार को भी चढाती है), तीव्र गर्भाशय सकोचक होने से शीघ्र ही गर्भाशय के पदार्थ वाहर निकल जाते हैं, यह क्रिया लगभग २० मिनिट के वाद प्रारम्भ होती है, रक्तस्रावरोधक होने से प्रसवोत्तर रक्तस्राव के अवरोधार्थ इसे देते है। रक्तप्रदर में भी इसका उपयोग होता है। यह वाजीकरण भी है।

१ गर्भाशय के सकोचनार्थ—गेरुवा १० से २० रत्ती तक, मकाई की काजली ७-३० रत्ती तक एकत्र खरल कर सोठ या पीपरामूल के फाण्ट के साथ पिलावें। अथवा गेरुवा ६ माशे तक लेकर १२ तोले अधौटा (खूव उवलते हुये) पानी में डालकर आध घण्टे तक ढक कर छान कर शीशी में रख २॥ तोले की मात्रा मे २०-२० मिनिट में गुण प्रकट होने तक देवे।

उक्त प्रयोगो से प्रसव सुविधापूर्वक होकर प्रसव के वाद रक्तस्राव नही होता, दर्द शान्त होता एव गर्भाशय अपनी पूर्व स्थिति में आता है, ज्वर आदि उपद्रव नही होने पाते। प्रसव के वाद विशेषत वहुत वार की प्रसूताओ में इसका प्रयोग ५-६ दिनो तक प्रात साय कराया जाता है।

ऐलोपैथी में अर्गट का निम्न प्रयोग विशेष प्रसिद्ध है—

अर्गट सत्व (एक्स्टैक्ट लिक्विड) २० बूद, क्विनैन हाइड्रोक्लोराइड २ रत्ती, टिंक्चर डिजिटेलिस ५ बूद,

---

[१] यह विदेशी अर्गट स्पेन, पुर्तगाल आदि यूरोपीय देशों से आता है। आजकल दक्षिण भारत के नीलगिरी में इसे प्राप्त करने के लिये राई (Rye) वनस्पति की खेती की जाती है। इसे लेटिन में सिकेल सिरिआले (Secale Cereale) कहते हैं। यह राई अपने यहां की राई (राजिका-Black musterd) से भिन्न है।

स्प्रिट क्लोरोफार्म १५ बूंद, एक्वा (शुद्ध जल) २॥ तो. (१ औंस)। इस मिश्रण का प्रयोग प्रसूता को कराने से गर्भाशय अपनी पूर्व स्थिति में शीघ्र आ जाता है। गर्भपात के बाद भी इसका प्रयोग करते हैं। यदि योनि संकीर्ण या किसी अर्बुद आदि से अवरुद्ध हो तो इसका प्रयोग करना ठीक नहीं। ऐसी अवस्था में इसके प्रयोग से प्रबल गर्भाशय संकोच से दबकर बच्चे की मृत्यु हो सकती है या गर्भाशय के ही विदीर्ण होने का भय है।

गर्भपात के बाद यदि गर्भाशय का शैथिल्य कायम रहे, रक्तस्राव होता रहे, कमर व पेट में पीडा, शरीर में फीकापन रहता हो तो इसे गुग्गुलु के साथ देवें। रक्त प्रदर में बोलबद्ध रस या रक्त बोल के साथ इसे देते हैं।

२ नपुंसकता, स्वप्नदोष एवं शीघ्र पतन में इसका प्रयोग करते हैं। ध्वज भंग में इसे पीसकर या पानी में घोलकर इन्द्रिय पर लेप करते हैं।

३ सुजाक में मवाद आता हो तो चन्दन के बुरादा और इसबगोल की भुसी के साथ इसे देते हैं।

४ दृष्टिमांद्य—बहुत पढने लिखने के कारण दृष्टि मन्द हो गई हो तो त्रिफला के साथ इसे मिश्रण कर मधु घृत से देते हैं।

५ कब्जी—आन्त्र शैथिल्य से कोष्ठबद्धता हो तो त्रिफला के साथ इसे देने से आंतों की चलन क्रिया सुधर कर कब्जी दूर होती है।

६ मूत्रकृच्छ्र—मूत्रबस्ति की मांसपेशी के शैथिल्य से मूत्र रुके हो तो शीतलचीनी या यवक्षार के साथ दें।

अधिक मात्रा में सेवन करने से नाडी मन्दक्षीण, झुनझुनी, कण्डू, तृष्णा, आमाशय एवं अन्त्र में क्षोभ, गर्भाशय से रक्तस्राव, गर्भपात, बेहोशी, अवसादन आदि तीव्र विष लक्षण होते हैं। अधिक दिनों तक प्रयोग से मस्तिष्क शक्ति का ह्रास, इन्द्रिय दौर्बल्य, स्पर्श संज्ञा-नाश आदि इसके जीर्ण विष लक्षण होते हैं।

—द्रव्यगुण विज्ञान तथा अगद तन्त्र के आधार पर

गोखरू छोटा [*TRIBULUS TERRESTRIS*]

गूडूच्यादि वर्ग एवं स्वकुल गोक्षुर कुल (Zygophyllaceae) का इसका क्षुप, वर्षाकाल में जमीन पर छत्ते के जैसा फैलने वाला, रोमश, शाखाऐं बेंजनी हरे रंग की, २-३ फुट लम्बी चारों ओर फैली हुई श्वेत रोम एवं अनेक ग्रंथियुक्त, पत्र—विपरीत चने के पत्र जैसे, किन्तु कुछ बडे २-३ इंच लम्बे, पुष्प—शरद ऋतु में, पत्र कोण से निकले हुए पुष्प वृन्तों पर छोटे छोटे पीतवर्ण के चक्राकार, पांच पखुडी वाले पुष्प, कंटकयुक्त, तथा फल-पुष्प के लगने के बाद ही फल छोटे छोटे गोल, चपटे, पंचकोणीय, दृढ, २ से ६ तक तीक्ष्ण कांटों से एवं अनेक बीजों से युक्त होते हैं। बीजों में एक हलका सुगंधित तैल होता है। मूल-पतली चीमड़, ४-१० इंच लम्बी, धूसर वर्ण की कुछ उग्रगन्धी एवं मधुर, कसैली होती है।

नोट—(१) चरक— के विदारिगंधादि, मूत्रविरेचनीय, शोथहर, क्रुमिघ्न, अनुवासनोपग के प्रकरण में तथा सुश्रुत के लघुपंचमूल, वीरतर्वादि, कंटकपंचमूल, वाताश्मरी भेदन आदि के प्रसङ्ग में इसका उल्लेख है।

(२) जड़ी बूटियों के पंचामृत में इसकी गणना है जैसे 'गूडूची गोक्षुरं चैव मूसली मुंडिका तथा। शतावरीति पंचाना योगः पंचामृताभिधः॥'

(३) एक 'वन गोखरू' और ही होता है। इसका वर्णन यथास्थान देखिये। शंकेश्वर (शंखाहुली) को भी कहीं कहीं छोटा गोखरू कहते हैं।

(४) इसकी बडी जाति भिन्न कुल की है, इसका वर्णन आगे गोखरू बडा के प्रकरण में देखिये।

प्रस्तुत प्रसंग का गोखरू छोटा भारत में सर्वत्र प्रायः रेतीली भूमि में तथा बंगाल, बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण में मद्रास आदि में प्रचुरता से होता है।

नाम—

सं०—क्षुद्र गोक्षुर[1] (इसके तेज कांटे वन में चरने वाले गो आदि पशुओं के पैरों में लगकर क्षत कर देने से)

---

[1] गौ के क्षुर-खुर-जैसे फल होने से यह गोक्षुर नाम है ऐसा मानना ठीक नहीं। ये फल गो के खुर जैसे नहीं होते। गो के खुर जैसा तो बिछुआ (Martnia Diandra) होता है तथा त्रिकंटकयुक्त भी यह होता है। अतः कुछ लोग विशेषतः बडे गोखरू के स्थान में इसीका प्रयोग करते हैं।

गोक्षुर छोटा
TRIBULUS TERRESTRIS LINN.
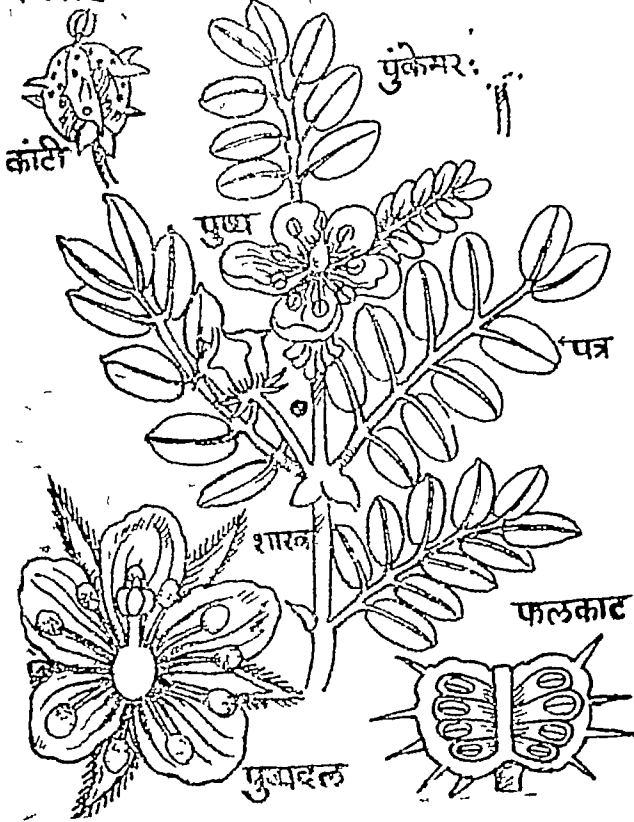
श्वदंष्ट्रा स्वादुकंटक, त्रिकटक, वनशृंगाट, चणद्रुम ।
हि०—गोखरू (छोटा), गुलखुर, गोरखुल, मखडा ।
म०—कांटे गोखरू, सराटे । व०—गोक्षुर, गोखरी ।
गु.—न्हाना गोखरू, बेठा गोखरू ।
अं.—स्माल कालट्राप्स (Small Caltrap)
ले.—ट्रिबुलस टेरेस्ट्रिस; ट्रि लेनुजिनोसस (T Lenuginosus), ट्रि झैलेनिकस (T Zeylanicus)

नोट-इसी गोखरू का एक जाति-भाई और है जिसे हि में वाखरा गोखुरे, कला हसक आदि, अं०-विंग्ड् कलट्रोप्स (Winge Caltrdops) और ले.-ट्रिबुलेस अलेटा (T Alata) कहते हैं। इसके फल एक ओर मोटे व दूसरी ओर संकुचित पत्ताकार एव दो बीजों से युक्त होते हैं। इसके गुण प्रस्तुत गोखरू के समान ही होते हैं। इसमें सर गुण की विशेषता है। प्रसूता स्त्री को इसके फलों की पेया पिलाते हैं। यह गोखरू विशेषत पश्चिम भारत के पजाव सिंध एव बलुचिस्तान फ़ारस, अरब, सीरिया मिश्र में होता है।

रासायनिक सङ्गठन—

फल मे एक क्षारतत्व, स्थिरतैल ३ ५ प्र श, अत्यल्प प्रमाण मे एक सुगधित उडनशील तैल, राल तथा पर्याप्त प्रमाण मे नाइट्रेट (Nitrates) होता है ।

प्रयोज्य अ ग—फल, मूल, पत्र एव पचाङ्ग। चूर्ण के लिये फल तथा क्वाथ के लिये मूल एव पचाङ्ग लिया जाता है ।

गुणधर्म और प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य एव मधुर विपाक, वातपित्त शामक, अनुलोमन, ग्राही (अधिक मात्रा मे सारक), आमाशय के लिये बल्य, क्षुधावर्धक रसायन, बस्तिशोधन[1], हृद्य, कफ नि सारक, वृष्य, गर्भस्थापन, मूत्रल, वेदनास्थापन (यह गुण कुछ कम होने से कष्टप्रद रोगो मे इसके क्वाथ के साथ अफीम या खुरासानी अजवायन की योजना करनी पडती है) तथा—रक्तपित्त, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि मूत्र विकार, नाडी दौर्बल्य, वातरोग, शूल, प्रमेह, अग्निमाद्य, अर्श, कृमि, हृद्रोग, कास, श्वास, गर्भपात, योनिरोग, क्लैव्य एव शोथ (वस्ति शोथ, मूत्र पिण्ड शोथ आदि मे जब मूत्र क्षारयुक्त, दुर्गन्धित एव गदला होता है । तब इसका क्वाथ शिलाजीत के साथ देते हैं) आदि नाशक है ।

मूत्र की क्रिया यदि अम्ल हो एव बार बार कष्ट से उतरता हो तो क्वाथ मे यवक्षार मिला देते हैं ।

(१) मूत्र विकारो पर—(अ) उवलते हुए पानी को आग से नीचे उतार कर उसमे इसके पचाङ्ग के चूर्ण को मिला दें । तथा दो घ टे बाद अच्छी तरह मल छान

१ बड़े गोखरू की अपेक्षा इसमें शोधनगुण अधिक है। रसायन तथा पुष्टि के लिए तो बड़ा गोखरू ही लाभकारी है इसमें पिच्छिल गुण की अधिकता है। अत यह शर्करा, अश्मरी, प्रदरादि की कष्टप्रद स्थिति में तथा रसायनार्थ विशेष उपयोगी है। टीकाकार शिवदत्त जी का कथन है 'शर्कराश्मरि मेहेपु कृच्छ्रेषु प्रदरेष्वपि । रसायनप्रयोगेपु महानेव गुणोत्तर ।' यदि इन प्रयोगों के लिये छोटा गोखरू लेना ही हो तो फलों के साथ मूल एवं पचाग को कूट पीस कर लेना ठीक होता है।

कर शहद व शक्कर मिला पिलाते रहने से जलन एव पीडायुक्त पेशाव, मूत्रकृच्छ्र तथा सुजाक मे लाभ होता है। अथवा—

(आ) इसके पचाङ्ग का चूर्ण १।। तोला तथा हरड व चागेरी (तिनपतिया) का चूर्ण १-१ तोला इन तीनो को खूब महीन खरल कर मात्रा २ से ४ मासा दिन मे ३ बार जल के साथ या दूध की लस्सी के साथ सेवन करें। अथवा—

(इ) इसके २ तोला चूर्ण को जलमिश्रित दूध १६ तोले मे मिला दुग्धावशिष्ट क्वाथ कर शक्कर मिला ठडा होने पर पिलावे। इस प्रकार प्रात साय सेवन से लाभ होता है। अथवा—

(ई) इसके फल व मूल के चूर्ण को चावल के साथ पानी मे उबालकर पिलाते रहने से भी शीघ्र मूत्र की रुकावटें दूर होती हैं। अथवा—

(उ) इसकी जड या पचाग के साथ समभाग धमासा, पाषाण भेद, अमलतास गूदा, हरड व बबूल छाल मिश्रण कर कूटकर क्वाथ या फाट तैयार कर दिन मे ३ वार पिलावें। इस योग मे बबूल छाल के स्थान मे दाभ, कास की जड लेकर क्वाथ कर शहद मिलाकर भी सेवन करते हैं। इसमे दारुण मूत्रकृच्छ्र की पीडा दूर होती है (भै० र०)। अथवा—

(ऊ) इसके साथ रेंडी की जड और शतावर या तृण पचमूल (कुश, कास, शर, दर्भ व ईख की जड) से सिद्ध दूध मे थोडा गुड व घृत मिला सेवन करें (औषधियो का कल्क ५ तोले, दूध ४० तोले व जल १६० तोले मिलाकर पकावें, दूध मात्र शेष रहने पर ठडा कर पीवें)। —चक्रदत्त। अथवा—

(ए) इसके साथ खरैटी, कटेली व सोठ समभाग का चूर्ण कर मात्रा ८ तोले, दूध ३२ तोले तथा चौगुना पानी मिश्रण कर पकावें, दूध शेष रहने पर छानकर गुड मिला सेवन करने से मूत्रावरोध, कब्ज व कफज्वर नष्ट होता है। —वगसेन। अथवा—

त्रिकण्टकादि घृत— (ऐ) इसके साथ रेंडी मूल और तृणपचमूल का क्वाथ ४ सेर तथा शतावर, पेठा व ईख का रस ४-४ सेर तथा घृत ४ सेर लेकर एक मन्द आच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे २ सेर गुड अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खें। मात्रा २ तोले सेवन से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं अश्मरी नष्ट होती है। —भै० र०

(ओ) अथवा त्रिकण्टकादि गूगल—१ सेर गोखरू के जौकुट चूर्ण को ८ सेर पानी मे पका १ सेर शेष रहने पर छान कर उसमें १० तोले शुद्ध गूगल मिला पकावें। गाढ़ा हो जाने पर उसमे त्रिफला, त्रिकटु व नागरमोथा का समभाग मिश्रित १० तोले चूर्ण मिला कूट कर १ से ३ माशा तक की गोलिया बना सेवन करें। प्रमेह, मूत्राघात, वातज मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं शुक्रदोष नष्ट होता है। अथवा— —वृ० नि० र०

(औ) इसके साथ धनिया समभाग पानी के साथ कूट पीसकर ४० तोले कल्क कर उसमे गोखरू क्वाथ ८ सेर तथा २ सेर घृत मिला घृत सिद्धकर लें। मात्रा ६ माशा से १ तोले प्रात साय पथ्य भोजन के साथ लेते रहने से यथेष्ठ लाभ होता है। वीर्य सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। अथवा—

(क) इसके ताजे फल व पत्तो को थोडे पानी में कूट पीस कर वस्त्र मे निचोड़ कर २ से ५ तोले तक की मात्रा मे दिन मे २-३ वार पिलावें। इससे मूत्र की वेदनायुक्त दाह या जलन शान्त होती है।

(ख) मूत्र के साथ रक्तस्राव हो तो इसके चूर्ण को दूध मे उवाल कर मिश्री मिला पिलावें।

(ग) साधारण मूत्र की रुकावट पर लेप—फल के साथ मूली बीज, वायविडङ्ग व खीरे के बीज समभाग लेकर सबको कांजी मे पीस बस्ति प्रदेश पर दिन मे २-३ वार लेप करने से मूत्र खुल जाता है। —यो० र०

नोट—सुजाक पर बड़ा गोखरू उत्तम कार्य करता है।

(२) अश्मरी पर—इसके चूर्ण ३ माशा को मधु के साथ चटाकर ऊपर से बकरी या भेड का दूध पीने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। —सु० चि० अ० ८

अथवा—ताजे गोखरू पचाग को पीस कर कल्क करें और फिर इसीके पचाग को १६ गुने जल में उबाल

कर क्वाथ करें। १ सेर कल्क के साथ ४ सेर घृत और १६ सेर क्वाथ मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर ले। प्रात साय इस घृत का सेवन ८ गुने दूध के साथ कराते रहने से थोडे ही दिनो मे पथरी टूट टूट कर निकल जाती है। अथवा—

इसके साथ रेंडी के पत्ते, सोठ व बरने की छाल (वरुण छाल) समभाग ले क्वाथ वना प्रात काल सेवन करते रहने से लाभ होता है। —भै० र०

अथवा—इसके चूर्ण के साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म मिला भैंस के दूध के साथ सेवन करें। —हा० स०

अथवा—उक्त प्रयोग नं १ का 'उ' वाला योग सेवन करें।

(३) गर्भाशय शूल पर—गर्भस्राव या पात हो जाने के बाद गर्भाशय मे उग्रता रह जाने से जो शूल पैदा होता है। उसके निवारणार्थ गोखरू, मुलैठी व मुनक्का को जल के साथ पीस कल्क करे। फिर दूध मे मिला छानकर शक्कर मिला पिलाते रहै या तीनो द्रव्यो का क्वाथ कर पिलाते रहने से गर्भाशय शामक असर पहुँच कर शूल शमन हो जाता है। —गाव में श्रो० र०

(४) रसायन—गोखरू व शतावरी को दूध मे मिला उबाल कर पीते रहने से वृद्धावस्था मे शरीर सुदृढ़ होता है एव नपुंसकता भी दूर होती है तथा पूयमेहजन्य रक्तविकारादि भी दूर होते हैं। —गाव में श्रो० र०

रसायन व वाजीकरण के प्रयोगो को वडा गोखरू के प्रकरण मे देखिये।

यदि सुजाक के कारण नपुंसकता हो गई हो तो इसके पचाग का चूर्ण १० भाग के साथ त्रिकटु, बशलोचन ५-५ भाग, छोटी इलायची, केशर व करज बीज की गिरी ४-४ भाग, जायफल, काहू बीज ३-३ भाग तथा तेजपत्र २ भाग इनके एकत्र चूर्ण का क्वाथ मात्रा २॥ तोले तक दिन में २ बार सेवन करें।

(५) पित्तप्रकोप से भ्रम या चक्कर आते हो तो इसके और कैथ के ताजे पत्तो का रस २ तोले तक गौ दुग्ध के साथ सेवन कराते हैं।

विशिष्ट योग—

गोक्षुरासव—इसके १ भाग चूर्ण में ५ भाग मद्यसार (७० प्र० श० वाला) मिला १५ दिनो तक बोतलो मे रक्खें। पश्चात् छानकर काम मे लावें।

मात्रा—१० से ६० बूंद तक जल के साथ सेवन से मूत्राघात, प्रमेह एव सर्वांग शोथ को शीघ्र नष्ट करता है। (बृ० आ० सग्रह) शेष आसवारिष्ट के विशिष्ट योग वडे गोखरू के प्रकरण में देखिये।

नोट—मात्रा–फल चूर्ण २-६ माशा, मूल या पंचांग चूर्ण-क्वाथार्थ २-४ तोले, क्वाथ ५-१० तोले।

अधिक सेवन से–सिर, प्लीहा तथा वृक्को को हानिकर एव कफ वात के विकार पैदा होते हैं। हानिनिवारणार्थ वादाम, तिल तैल, गोघृत और मधु का सेवन कराते हैं। इसका क्षार मधुर, शीतल, रक्तशोधक, वातनाशक एव कामोद्दीपक होता है।

गोखरू बड़ा [*PEDALIUM MUREX*]

यह तिल कुल (Pedaliaceae) का वर्षायु चिकना, मासल क्षुप ६-१६ इंच ऊंचा, १-२ फुट के घेरे मे फैला हुआ होता है। शाखायें खुरदरी, गठेली; पत्र–एकान्तर, १-२ इंच लम्वे, १-१॥ इंच चौडे, हरे, चिकने, कुछ मोटे, अण्डाकार, दन्तुर किनारे वाले; पुष्प–पीले, १ इंच लम्वे, एकाकी, पत्रकोण से निकले हुए, चमकीले, मसलने पर कस्तूरी जैसी सुगन्धयुक्त, तथा फल–चतुष्कोण युक्त, ½ से ¾ इंच लम्वे, ½ इंच चौडे, आधार की ओर प्रत्येक कोने पर १-१ काटा, ऊपरी भाग शाखाकार, भीतर से दो कोष वाले होते हैं। इसके प्रत्येक कोष में २-२ बीज होते हैं।

मूल—३-१० इंच लम्वी, नारगी वर्ण की, कनिष्ठका उंगली जैसी मोटी एव अनेक उपमूलयुक्त होती है।

इसके हरे पत्तो या पचाग को जल मे विलोडने से जल शीघ्र ही लुआबदार हो जाता है। यह लुआब स्वाद या गन्ध से रहित एव कुछ समय बाद यह विलुप्त हो जाता है। इसके क्षुप सौराष्ट्र, गुजरात, कोकण आदि दक्षिण भारत मे समुद्र-किनारे के देशो मे तथा सीलोन,

गोक्षुर बड़ा
PEDALIUM MUREX LINN.

अफ्रीका आदि उष्ण प्रदेशो मे प्रचुरता से पाये जाते हैं।

नाम—

स०–बृहद्गोक्षुर, तिक्त गोक्षुर।
हि०–गोखरू बड़ा, दक्खिनी गोखरू, हाथी चिंघाड़।
म०–मोठे गोखरू। गु०–ऊभा गोखरू, मोटा गोखरू।
ब०–बड़गोखटी। लै०–पेडालियम मुरेक्स।

रासायनिक सङ्घठन—

इसमे एक क्षार तत्व, वसा, राल व राख ५ प्र० श० होती है।

प्रयोज्य अंग—फल, पत्र, पचांग।

गुणधर्म और प्रयोग—

स्निग्ध, रस विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, बल्य, पौष्टिक, मूत्रल, बस्तिशोधन, तथा प्रमेह, अश्मरी, प्रदर, शुक्रमेह, श्वास, कासनाशक एवं वाजीकर है।

यह उत्तम मूत्रल एवं पौष्टिक गुण विशिष्ट है।

पत्र—
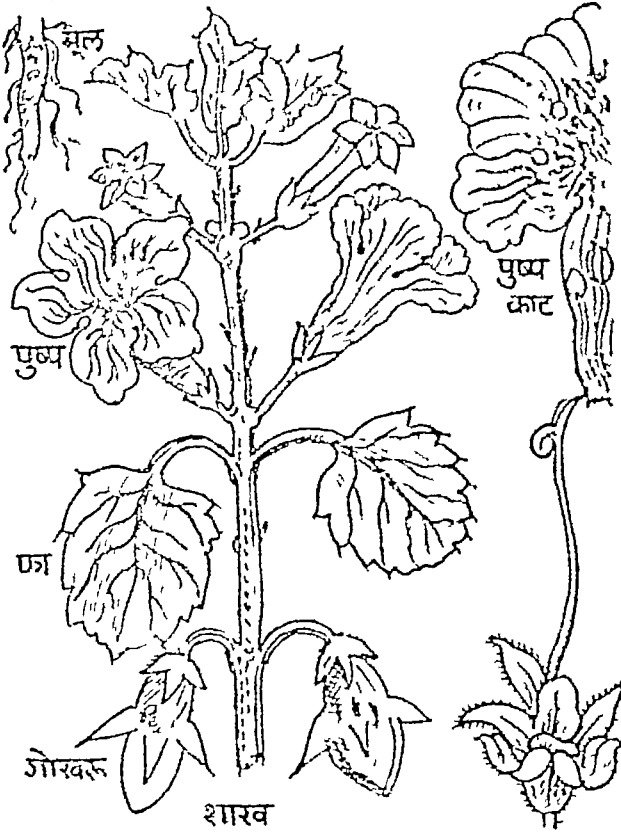
वृष्य, स्रोत विशोधक, कामोद्दीपक एवं रक्तशोधक है।

(१) रसायन तथा वाजीकरणार्थ—फल चूर्ण के साथ गिलोय, आमला चूर्ण समभाग मिला २-६ माशे तक प्रात साय दूध से लेते रहने से धातुओं की यथेष्ट वृद्धि होती है। अथवा—

इसके साथ शतावरी, तालमखाना चूर्ण समभाग शक्कर और दूध से लेते रहते हैं। या इसके चूर्ण मे लौंग, इलायची चूर्ण मिला घृत शक्कर से लेते है। या इसे शतावरी के साथ औटाकर सेवन कराते हैं। या इसे समभाग तिल चूर्ण के साथ मिला शहद या बकरी दूध के अनुपान से अथवा केवल गोखरू के ही चूर्ण को बकरी दूध मे पका मधु मिला सेवन करते रहने से हस्त मैथुन आदि कुटेवों से उत्पन्न नपुंसकता दूर होती है।

(अ) गोक्षुरादि चूर्ण—गोखरू, तालमखाना, शतावर, कौंच बीज, नागबला मूल (गगेरन) व खरैटी मूल के मिश्रित चूर्ण को रात्रि के समय दूध के साथ सेवन अत्यन्त वाजीकरण है। —यो० र० अथवा—

(आ) त्रिकटाकादि मोदक—उक्त (अ) के मिश्रण मे असगंध, मूसली और मुलैठी चूर्ण समभाग मिलाकर ८ गुना दूध में पकावें, मावा जैसा हो जाने पर उसमे चूर्ण के बराबर गोघृत डालकर भूनें। फिर सबसे दोगुनी खाड की चाशनी में मिला मोदक बनाले। अग्निबलानुसार १ तोला तक दूध के साथ सेवन करें। यह अत्युत्तम कामशक्तिवर्धक (वाजीकर) है। (भै र.) अथवा

(इ) इसके साथ समभाग केवल कौंच बीज चूर्ण मिला, तथा सबके बराबर खाड मिला दूध के साथ सेवन कराते रहे, मात्रा ३ से ६ मासा तक। (वं से)

विशिष्ट योगो मे 'गोक्षुर-कल्प' देखिये।

(२) नवीन सुजाक (पूय प्रमेह) पर—इसके ताजे पचाङ्ग को कूट कर कुछ देर जल मे भिगो एवं मसलने पर जो लुआव हो उसे १० से २० तोले की मात्रा मे मिश्री तथा श्वेत जीरा चूर्ण मिला ७ दिन तक सेवन करे। प्रत्येक बार ताजा लुआब बनाना होगा। तथा पथ्य मे गेहू की रोटी, घृत, शक्कर तथा अलोनी मूंग या अरहर की दाल का सेवन करना होगा।

अथवा—इसके पत्तों का चूर्ण १ तोला तक, दूध व मिश्री के साथ सुजाक एव तज्जन्य सधिवात मे सेवन कराते हैं।

(३) स्वप्नदोष पर—फलो का चूर्ण २ मासा की मात्रा मे घी व शक्कर के साथ सेवन कर ऊपर से दूध पीवे।

अथवा—फल चूर्ण २॥ तोले को २५ तोले उबलते हुए जल मे डाल कर १ घ टा बाद छान कर थोडा थोडा बार बार पिलावें। इससे स्वप्नदोष, अनैच्छिक मूत्रस्राव, कामशक्ति का ह्रास आदि मे लाभ होता है।

(४) शोष (क्षय), कास पर—इसके चूर्ण के साथ समभाग असगध चूर्ण मिला २-४ मासा की मात्रा मे शहद मिलाकर देने तथा ऊपर से दूध पिलाते रहने से शुक्र के दुरुपयोग से उत्पन्न शोष, निर्बलता तथा कास मे लाभ होता है।

(५) प्रदर पर—फल चूर्ण १ पाव जल १॥ सेर में २४ घ टे भिगो कर पकावें। अर्द्धावशिष्ट क्वाथ रहने पर छान कर उसमे २५ तोले शक्कर मिला शर्बत की चाशनी बनालें। नित्य भोजन के बाद १-२ चम्मच पीते रहने से लाभ होता है।

गर्भवती के प्रदर पर भी उक्त शर्बत लाभकारी है। अथवा-फल चूर्ण ६ मासा तक १-१ तोला गोघृत व मिश्री चूर्ण या शक्कर के साथ नित्य प्रात सेवन करावें। इससे गर्भाशय भी बलवान होता है।

(६) जीर्ण सूतिका रोग मे—फलो का क्वाथ अथवा ताजे पचाङ्ग या पत्र का स्वरस [१-२ मासा] दिन मे २-३ बार पिलाते हैं। इससे यकृत, प्लीहावृद्धि जन्य विकारो की भी शाति होती है।

(७) अश्मरी पर—फल ५ तोला कूट कर १ सेर पानी मे पकावें। आधा शेष रहने पर छानकर १ तोला जवाखार तथा ५ तोला मिश्री मिला ४ बार मे ४-४ घ टे से पिलावें। इससे पथरी गल कर निकल जाती है।

(८) अपस्मार पर—इसकी ताजी हरी जडो के ऊपर की छाल १६ तोले महीन पीस कर कल्क करें। कलईदार पीतल की कढाई मे इसके साथ २५६ तोले पानी और ६० तोले घी मिला मन्दी आच से पकावें। घृत सिद्ध हो जाने पर छानले। १ से ४ तोला तक की मात्रा प्रात साय लेने से तथा भोजन मे केवल दूध भात खाने से यह भयकर रोग नष्ट हो जाता है। —व च.

(९) आमवात आदि पर—इसके फल व सोठ का क्वाथ आमवात पर सेवन कराते हैं। इससे कटिशूल भी दूर होता है। इन्द्रलुप्त या गञ्ज पर गोखरू, तिलपुष्प, मधु व घृत समभाग पीसकर लेप करते हैं। मसूढो की जख्म, बदबू तथा कठ की सूजन दूर करने के लिये इसके क्वाथ से गण्डूष कराते है।

नेत्र विकारो पर—पचाङ्ग को या पत्तो को पीस कर आख पर बाधने से आखो की ललाई, जलस्राव एव पीडा दूर होती है। इसके ताजे रस को आख के भीतर भी लगाते है।

विशिष्ट प्रयोग-

(१) गोक्षुर कल्प—उत्तम स्थान के गोखरू के क्षुप को शरदऋतु मे सफल मूल सहित लाकर साफ कर चूर्ण कर मोटे वस्त्र से छान ले। वमन विरेचन द्वारा शरीर शुद्धि के पश्चात् प्रशस्त तिथि मे १॥ तोला मात्रा से दूध के साथ सेवन प्रारभ करें। प्रतिदिन १। तोले बढाते जावें। औषधि पचने पर साठी चावल व दूध का आहार करे। इस प्रकार ८ दिन तक यह प्रयोग करने से कामशक्ति अत्यधिक प्रबल हो जाती है। (भा भै र)

(२) गोखरू-रसायन—गोखरू के पौधे पर जब फल कच्चे हो तब उखाड कर छायाशुष्क कर महीन चूर्ण करले। फिर चूर्ण को हरे गोखरू के रस के साथ खरल कर सुखा ले। इस प्रकार ७ बार हरे गोखरू के रस की भावनायें देकर प्रतिदिन २ तोला की मात्रा मे दूध मिश्री के साथ सेवन करने तथा तैल, खटाई, लालमिर्च आदि से परहेज करने से धातु सम्बन्धी सर्व विकार दूर होते हैं। पेशाब मे रक्तस्राव होना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रदर, प्रमेह आदि सब विकार नष्ट होते है। शरीर मे बल वीर्य एव सौंदर्य की विशेष वृद्धि होती है। यह रसायन परम वाजीकरण है।

(३) गोखरू पाक—ऊपर रसायन तथा वाजीकरण के प्रकरण मे न० १ के "आ" का जो त्रिकटकादि मोदक

है वह उत्तम एव सरल पाक है। इसके अतिरिक्त अन्य उत्तमोत्तम गोक्षुर पाको को वृ 'पाकसग्रह मे देखिये।

(४) गोक्षुरावलेह—इसका पचाग १०० तोले कूट कर ४०० तोले शेष रहने पर छान कर उसमे ५० तोले शक्कर मिला पुन पकावें। उत्तम चाशनी होने पर सोठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तमालपत्र, जायफल, अर्जुनवृक्ष की छाल, व खीरा बीज, प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोले तथा वसलोचन ४ तोले मिला अवलेह तैयार करें उचित मात्रा मे सेवन करने से मूत्र सम्बन्धी सब विकार दूर होते हैं। (ब गुणादर्श)

अवलेह के अन्य योग शास्त्रो मे देखिये।

(५) गोक्षुरकादि वटी (गुग्गुलु)—त्रिकटु, त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य १-१ भाग तथा शुद्ध गुग्गुलु ६ भाग एकत्र चूर्ण कर गोखरू के क्वाथ मे घोट कर ३ माशे तक की गोलिया वना ले। देश, काल, वलानुसार उष्ण जल के साथ सेवन करने से प्रमेह, वातरोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष एव प्रदर रोग नष्ट होते हैं। सेवन काल मे किसी प्रकार के परहेज की आवश्यकता नही (किन्तु साधारण पथ्यापथ्य का तो ध्यान अवश्य रखना चाहिए)। —यो० र०

(६) गोक्षुरादि गूगल—गोखरू ११२ तोला जौकुट कर ६ गुना पानी मे पकावें। आधा शेप रहने पर छान कर उसमे शुद्ध गूगल २८ तोला मिला अवलेह के समान पकाले। फिर त्रिकटु, त्रिफला व नागरमोथा इन ७ द्रव्यो का चूर्ण २८ तोला (प्रत्येक का ४-४ तोला) मिला कूटकर गोलिया वना ले। सेवन से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वातव्याधि, शुक्रदोप एव अश्मरी नष्ट होती है। मात्रा ३ माशे तक। —शा० सं०

(७) श्वदष्ट्रादि तैल—गोखरू का रस, तैल व दूध ८-८ सेर तथा अदरख ५ छटाक एव गुड १। सेर इन दोनो का कल्क इन सबको एकत्र मिला पकावें। तैल मात्र शेप रहने पर छान ले। इसके पीने तथा बस्ति लेने से गृध्रसी, पादकम्पन, कटिग्रह, शोथ एव अन्य वातज व्याधिया दूर होती हैं। यह तैल वन्ध्यत्व निवारण और मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभकारी है। —वगसेन

(८) गोक्षुरादि घृत के प्रयोग अन्य ग्रन्थो मे देखिये तथा गोक्षुरासव के प्रयोग हमारे वृहद् आसवारिष्ट सग्रह मे देखें।

नोट—फल चूर्ण २-६ माशे। फलों का फांट २ ३ तोले। पत्र चूर्ण १ तोले। क्वाथ ५ तोले तक। यह शीत प्रकृति के लिये हानिकर है।

गोधापदी (Vitis Pedata)

द्राक्षाकुल (Vitaceae) की इस आरोही लता के काण्ड कोमल, पत्र कोमल दवाते ही टूट जाने वाले, ७ पत्रिका मे विभक्त, पत्रिका ४-८ इच लम्वी, १।।-३ इच चौडी, किनारे दन्तुर कतरे हुए से, पुष्प दण्ड पत्र वृन्त जैसा तथा पुष्प सब्जवर्ण किंचित् धूसर वर्ण के रोम युक्त एव उभयलिंग विशिष्ट, फल गोल ½ इन्च व्यास के श्वेतवर्ण, किनारे की ओर चपटे, ४ बीजो से युक्त होते हैं। वडी और छोटी के भेद से इसके दो प्रकार हैं। वडी या पडागुल गोधापदी ही साधारणत औषधि मे व्यवहृत होती है। इसमे अगस्त-सितम्वर माह मे फूल व अक्टूवर मे जनवरी तक फल लगते हैं। यह विशेषत वगाल, आसाम, पश्चिमी घाट, छोटा नागपुर, हुगली, सीलोन मे अधिक मिलती है।

नाम—

स० व हि०—गोधापदी। वं०—गोआले लता, गोआली लता। म०—बोटपादवेल, सारबारी बेल।

ले०—व्हायटिस पेडाटा।

प्रयोज्य अग—पचाङ्ग।

गुण धर्म और प्रयोग—

चरपरा, दाहशमन, मलावरोधक तथा योषापस्मार, त्वग्दाह, अतिसार, मूत्रविकार, व्रण, रक्तस्राव, श्लीपद आदि रोगो मे व्यवहृत होता है। पत्ते—ग्राही एव दाहशामक हैं। ये पत्ते व्रणो पर बाधे जाते हैं। अत्यधिक मूत्रस्राव या रज'स्राव मे पत्तो का क्वाथ देते हैं।

मूत्रविकार पर—इसके क्वाथ में गोघृत, तिल तैल,

और दूध मिलाकर सेवन करते रहने से लाभ होता है। इससे मूत्रावरोध भी दूर होता है। रक्तमूत्र या अन्य प्रकार के रक्तस्राव पर मूल का क्वाथ देते है। श्लीपद-जन्य ज्वर पर जड को उडद के साथ पीसकर वडे बना कर खिलाते हैं।

—नाडकर्णी और भारतीय वनौषधि के आधार पर।

गोवरा [*ANISQMELES INDICA*]

तुलसी कुल (Labiatae) के इसके वर्षायु क्षुप ३-६ फुट ऊचे, शाखाऐं चतुष्कोण युक्त, कडी, कोमल रोमयुक्त, पत्र—मोटे, १॥ से ३ इच लम्बे, डिम्बाकृति, अग्रभाग नुकीला, किनारे दन्तुर, पुष्प दण्ड छोटा, जिसमे पुष्प गुच्छो मे गोल गोल, श्वेत वर्ण के नीचे की ओर लाल आभायुक्त, पु केश्वर ४ असमान, फल—गोल १⁄६ इच व्यास के चिकने, कुछ चपटे, पकने पर काले पड जाते हैं। पत्तों की सुगन्ध कपूर जैसी आती है। इसमे शीत के प्रारम्भ मे फूल तथा शीतकाल मे या अन्त में फल आते है।

नाम—

हिन्दी में—बम्बई की ओर गोवुरा, वं -गोवरा-गोपाली ले. -एनिसोमलेस इण्डिका, एनि. ओव्हाटा (A. Ovata)

इसके क्षुप विशेपत वगाल की पडत जमीन मे तथा जगलो के किनारे देखे जाते हैं। बम्बई, कोरोमण्डल, सिक्किम (दार्जिलिंग), नेपालादि मे भी प्रचुरता से होते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह ग्राही, दीपन, बल्य, मूत्र एव जननेन्द्रिय विकार निवारक है। इससे निकाला हुआ तैल जनन यन्त्रो के रोगो मे प्रयोग किया जाता है। इसके बीज उदरशूल निवारक, धारक तथा बलकारक हैं।

—नाडकर्णी व भा व.
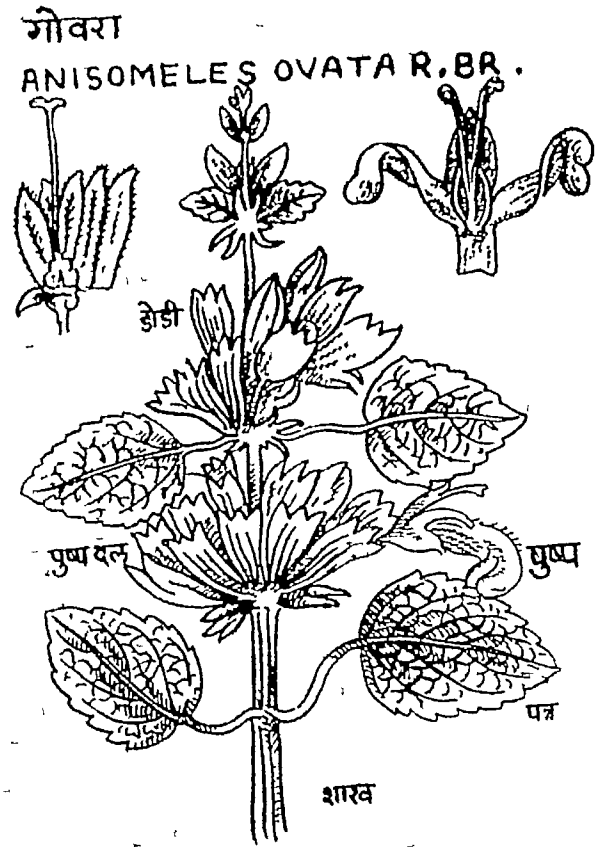
गोभी (Brassica)

राजिका कुल (Cruciferae) की शाकवर्ग की गोभी के क्षुपो की पान, फूल और कद भेद से मुख्य तीन जातिया भारत मे प्राय सर्वत्र बोई जाती है। इसका बीज यूरोप से यहा लाया गया है। यूरोप मे इसकी कई जातिया पैदा की जाती हैं। शीत प्रधान प्रान्तो मे इसमे फलिया भी आती हैं, जिनमे राई से भी छोटे बीज होते हैं, तथा बीजो का तैल भी निकालते हैं। भारत जैसे उष्ण देशो मे फली नही लगती, तथा शीतकाल मे ही इसकी विशेष पैदावार होती है।

१—पान गोभी [Brassica Oleracea]—

इसमे केवल कोमल पत्तो का बधा हुआ सम्पुट होता है। रासायनिक सघटन की दृष्टि से इसमें प्रतिशत ६० २

गोभी (फूल गोभी)
Cauli flower
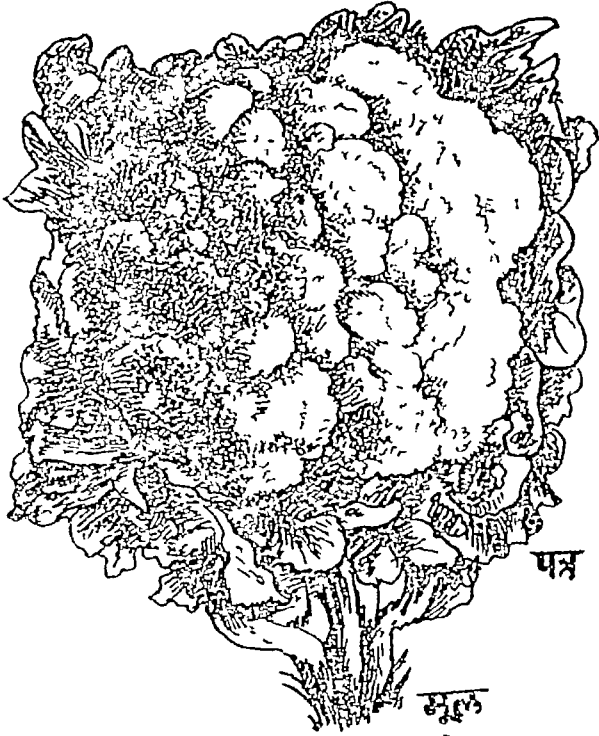
पानी १ ८ प्रोटीन,वसा ० १, कार्बोहाइड्रेट ६ ३, कैलसियम ० ०३, फासफोरस ० ०५, खनिजपदार्थ ० ६ तथा लौह ० ८ मिलीग्राम प्र श ग्राम, वी १ एव १२४ मिलीग्राम प्र श सी होता है।

इसमे तथा अन्य गोभियो मे भी गधक की कुछ मात्रा होती है। इन्हे पकाते समय इसी गधक के कारण एक प्रकार की विशिष्ट गन्ध आती है।

नाम–

हि०--पान गोभी, वन्दगोभी, करमकल्ला।
म०--कोवी। गु०--पान गोली। व०- वोधाकपि।
अ ०--क्याबेज (Cabbage)। ब्रे सिकाऑलेरेसी, ब्रे सिका सेटिह्वा (B Sativa)

इसका एक भेद और होता है, जिसमे प्राय पत्तो का सम्पुट नही होता। पत्ते लम्बे लम्बे खडे होते हैं। इसे हिन्दी मे सलाद तथा अ ग्रेजी मे लेट्टूस (Lettuce) कहते हैं। यह काहू का एक उपभेद विशेष है।

पानगोभी का एक जगली भेद (Colewort) होता है। यह जगली गोभी वम्बई की ओर खडाल, महाबलेश्वर आदि पहाडी स्थानो पर प्रचुरता से पाई जाती है। यह कुछ कडवी होती है तथा वागी पानगोभी की अपेक्षा अधिक पुष्टिदायक तथा सारक होती है। इसे अनार के रस मे पकाने से इसकी कडुवाहट दूर होती है।

चैत्रमास मे वागी पानगोभी के भी पत्ते कडुवे हो जाते हैं, तथा अन्दर के पत्र सम्पुट का मुख खुलकर वीच मे एक डडा सा निकलता है, जिस पर सरसो जैसे फूल एव फूलो के भीतर से राई जैसे दाने निकलते हैं।

२—फूल गोभी—

इसके चारो ओर चौडे, मोटे, खडे, तथा पत्तो के वीच मे बहुत छोटे छोटे मुख वद्ध फूलो का श्वेत गुथा हुआ समूह होता है। खिले हुए फूलो की गोभी खराव मानी जाती है।

इसके फूल और पत्तो का शाक अलग अलग या

करमकल्ला (पान गोभी नं० १)
Brassica oleracea Linn.

पान गोभी नं. २ (सलाद)
अं. *Lettuce.*

सम्मिलित भी बनाया जाता है।

नाम—

हि.--फूल गोभी। म --फूल कोवी। गु.--फूल गोली।
बं.--फूल कपी। अं.--कालीफ्लावर (Cauli flower)।
ले --ब्रेसिका वोट्रायटिस (B. Botrytis),
ब्रे फ्लोरिडा (B Florida)

रासायनिक सङ्घठन—

इसमे प्र श ८६.४ पानी, ३ ५ प्रोटीन, ० ४ वसा, ५ ३ कार्बोहाइड्रेट, ० ०३ कैलशियम, ०.०६ फासफोरस, १.४ खनिज पदार्थ, तथा १ ३ मिलीग्राम प्रतिशत ग्राम लोहा, ३८ इ यू प्र श. ग्राम विटामिन ए, ११० इ. यू. प्र श ग्राम विटामिन बी$_1$ होता है।

३—गांठ (कन्द) गोभी—

इसका क्षुप फूलगोभी जैसा ही होता है, किंतु पत्तो के बीच मे फूल नही होता, क्षुप के नीचे गूदेदार गाठ या कन्द होता है।

नाम—
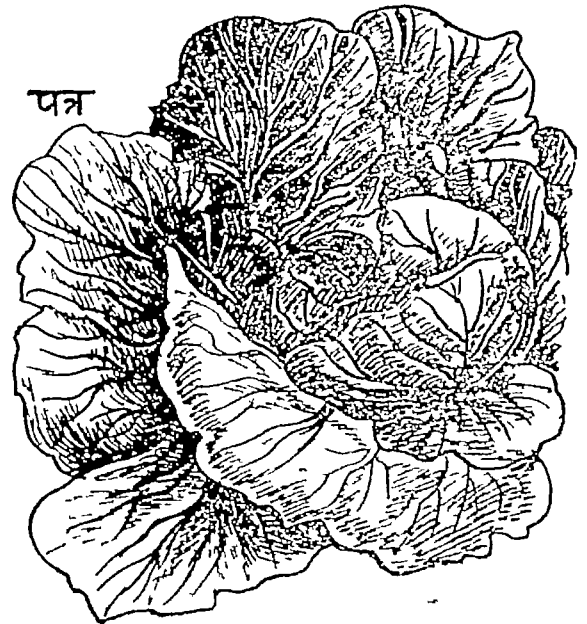
हि.—गांठ गोभी। म —गड्डा कोवी, नवलगोल।
गु.—कन्द गोली। बं —नाल खोल।
अं.--नाल खोल (Knol-Khol)।
ले.--ब्रे. कालोकार्पा (B Caulocarpa)

रासायनिक संघठन--

प्र श ८० तक पानी, १ १ प्रोटीन, ० २ वसा, ६ कार्बोहाइड्रेट, तथा प्र. सहस्र २ ३ कैलशियम, ३ ५ फासफोरस, ४० लोह एवं प्र श मिलिग्राम ८४ ५ व्हिटामिन सी होता है। इसमे ए बी व्हिटामिन नही के बराबर हैं।

नोट—उक्त रासायनिक संघठन से विदित होता है कि पानगोभी की अपेक्षा फूलगोभी अधिक पौष्टिक एवं गर्भाशय के लिये अधिक बलदायक है। कन्दगोभी से पोषण बहुत कम मिलता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

(१) पानगोभी (करमकल्ला)—

लघु, मधुर, पाक मे कटु (चरपरी), शीतवीर्य, दीपन, पाचन, मलमूत्र प्रवर्त्तक, वातकारक तथा कफ, पित्त, प्रमेह, कास, रक्तविकार, व्रण विद्रधि, यकृतिवृद्धि, पित्तप्रकोप जन्य भ्रमनाशक है।

गांठ गोभी
Knol Khol.

इसके ऊपरी पत्ते सूर्य किरणें पडने के कारण भीतरी पत्तो की अपेक्षा अधिक गुणकारी हैं। इसके पत्तो को आग पर अधिक पकाने से पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते है तथा वह कोष्ठवद्धताकर होता है। अत इसका सलाद या रायता बनाकर खाना विशेष लाभकारी है। इससे पित्तज्वर, शुक्ररोग, स्तन्यदुष्टि, रक्तविकार आदि में विशेष लाभ होता है। मदात्यय मे पत्रो को पानी मे उवाल कर खाने से शराब का नशा उतर जाता है। रक्त की वमन पर पत्र स्वरस १-१। तोला की मात्रा मे पिलाते है। पत्तो के लेप से जख्म या घाव शीघ्र भरता है। सूखी या गीली खुजली पर पत्तो का रस मलते है। आमाशय के शोथ एव पीडा पर पत्तो को कूटकर चावलो के साथ पकाकर या चावलो के धोवन के साथ पकाकर पिलाते हैं। अर्श मे पत्तो को पानी के साथ थोडा जोश देकर बनाई हुई शाक खिलाने से शौच शीघ्र ही सरलता से होकर अर्श की पीडा कम होती है। मूत्रकृच्छ्र मे पत्र क्वाथ मे मिश्री मिला पिलाते हैं। कुत्ते के विष पर इसके क्वाथ मे घृत मिला पिलाते हैं। वातरक्त तथा आमवात की सूजन पर पत्तो को गरम कर बाधते हैं। नेत्र पीडा मे इसका रस डालते हैं। प्रमेह पर इसके रस मे हल्दी चूर्ण और मधु मिला पिलाते हैं।

नोट—इसके अधिक एवं नित्य खाने से दिमाग कमजोर होता है, आमाशय भी निर्वल पड़ जाता है। हानिनिवारणार्थ—गरम मसाला, नमक, घृत आदि देते हैं।

इसके वीज—मूत्रल, सारक, दीपन, पाचन, कृमिघ्न तथा स्वेदल और कामोद्दीपक हैं।

(२) फूल गोभी—

लघु, मधुर, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, कषाय, हृद्य, कामोत्तेजक, कफपित्तनाशक है।

अर्श रोगी को इसे घृत मे भूनकर केवल थोडा सैंधानमक मिलाकर रोटी के साथ खाते रहने से लाभ होता है। ज्वर मे इसकी जड का क्वाथ पिलाते हैं। पारद विष पर जड का रस पिलाते, शरीर पर मालिश करते तथा इसका शाक वनाकर खिलाते हैं। कण्ठ के क्षत या शोथ पर जड को जलाकर मधु चटाते है। जड या मूल, फूल गोभी या पान गोभी दोनो की उक्त प्रयोगो के लिये ली जा सकती है। इसके फूलो को पीसकर वर्त्तिका वना योनि मार्ग मे धारण कराने से गर्भस्थ वालक मर जाता है तथा अधिक रजस्राव होने लग जाता है। —यूनानी

अफीम के विष पर—जड का चूर्ण ७ माशे तक पीना के साथ पिलाते हैं। खाज, फोडा, फुन्सी आदि चर्मविकारो पर इसके या पानगोभी के रस मे शक्कर मिलाकर सेवन कराते है।

(३)गांठ गोभी—

मधुर, उष्णवीर्य, गुरु, रूक्ष, रुचिकर, सग्राही (मामूली उवालकर खाने से भेदक तथा खूब पकाकर खाने से ग्राही) तथा कफ, कासनाशक, वातकारक, पित्त प्रकोपक, प्रमेह व श्वास मे लाभकारी है। उक्त गोभियो के डण्ठल के भीतरी गूदे की भी शाक बनाई जाती है। यह गूदा कच्चा भी सलाद रूप मे खाया जाता है। डण्ठल का छिलका उवाल कर रसा वनाया जाता है। यह स्वादिष्ट होता है।

जंगली गोभी—लघु, कड़ुवी, शीतल, वातकारक, पित्त व रक्तदोष निवारक है। कालीमिर्च के साथ सेवन से कफ और कास मे लाभ करती है। इसका शाक भी केवल घृत व सेंधानमक मिला हुआ अर्श मे लाभदायक होता है।

नोट—वहुमूत्र एवं वृक्कदोष से पीड़ित रोगियों को पान या फूल गोभी का शाक अधिक खाने से मूत्र में कष्ट होता है, दिन मे मूत्र साफ नहीं होता तथा रात्रि में बार बार मूत्र के लिये उठना पड़ता है।

गोरख इमली [*ADANSONIA DIGITATA*]

कार्पास कुल (Malvaceae) के इसके वडे, मोटे, अद्भुत वृक्ष ५ हजार वर्ष से भी अधिक आयु वाले होते हैं। पुराने किसी किसी वृक्ष के तने मे इतना वड़ा गहरा खोखला या पोला हो जाता है कि उसमे २५० गेलन (१ गेलन = ५ सेर २४ तोले) तक पानी भरा हुआ मिलता है। यह वृक्ष ६०-७० फीट ऊंचा, तने का घेरा

गोरख आमली (कल्प वृक्ष)

ADANSONIA DIGITATA LINN.
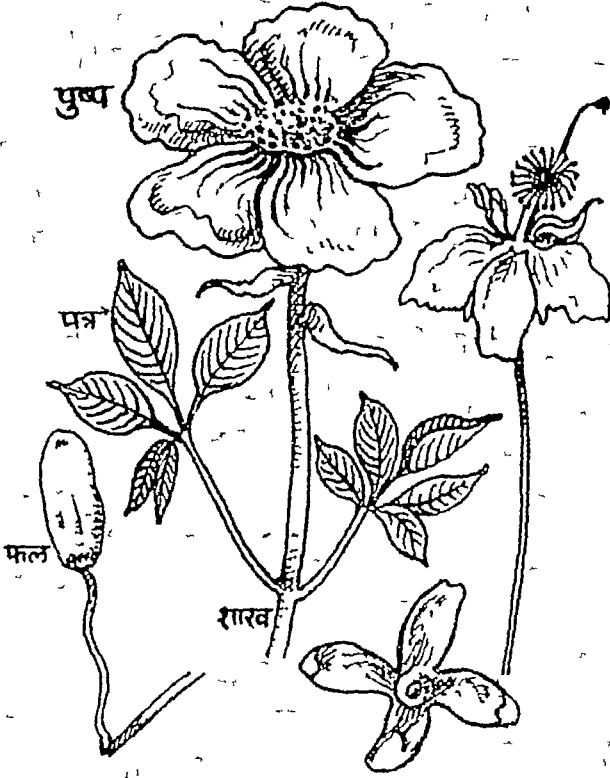
२५-३० फीट तक, शाखायें लम्बी सघन, खूब फैली हुई, छाल मोटी, चिपकनी, पत्र सेमल पत्र जैसे लम्बे, अण्डाकार, कुछ नुकीले ५-७ पत्रो का समूह प्रत्येक सीक के अन्त मे, पुष्प लम्बे पुष्प दण्ड पर फूल एकाकी, श्वेत कमल पुष्प जैसे प्राय. ग्रीष्मकाल मे आते हैं।

फल—लौकी या तुम्बी जैसे १ फुट तक लम्बे, अग्रभाग एव निम्न भाग मे सकडे, बीच मे चौडे, ३-६ इच व्यास के प्राय: शीतकाल मे आते हैं। फल का छिलका कडा तथा अन्दर का गूदा खट्टा कसैला अनेक भूरे रंग के बीजो से युक्त होता है।

यह अफीका का वृक्ष है। भारत मे बबई, गुजरात, मालवा, दक्षिण मे कारोमडल का किनारा आदि प्रान्तो में क्वचित् कही कही पाया जाता है तथा सीलोन में भी कही कही इसके वृक्ष हैं।

फल के गूदे मे इमली जैसी खटास होने से ही इसके नाम मे इमली शब्द जोड़ा गया है। कोई कहते है बाबा गोरखनाथ ने इसे लगाया था। इसका कुछ वर्णन कल्प वृक्ष के प्रसग मे दिया गया है।

नाम—

[स०—गोरक्षी, महावृक्ष, कल्पवृक्ष, गोपाल।
हि०—गोरख इमली, विलायती इमली, कलवक्षी।
म०—गोरक्षचिंच, चोरी चिच।
गु०—चोर आमली, गोरख आमली। बं०—गोरक्ष चाकुले
अ०—मकी ब्रेड ट्री आफ अफ्रिका (Monkey Bread Tree of Africa), बोआबाब ट्री (Boabab Tree)
ले.—अडेन्सोनिया डिजिटाटा।

रासायनिक संघठन—

इसके फल के गूदे मे ग्लूकोज, लुआव, टार्टरिक एसिड, एसेटेट पोटाश [Acetate potash], घुलनशील टेनीन, वसा, क्लोराईड सोडियम, तथा गोंद जैसा पदार्थ आदि, पत्रो मे ग्लूकोज, वसा, नमक, गोद, अल्बुमिनायड्स [Albumimoids], छाल की राख मे विशेषत क्लोराइड सोडियम, कार्बोनेट पोटास व सोडा पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—गूदा, छाल, पत्र व बीज।

गुण धर्म और प्रयोग—

मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, दाह, पित्त, वमन, विस्फोट, अतिसार, ज्वर आदि नाशक है।

गूदा—ग्राही, स्नेहन, रुचिकर, हृद्य, शीतल, मृदु, रेचन, ज्वर, अतिसार आदि नाशक है।

पित्त ज्वर की तृष्णा शमनार्थ—इसे जल मे मसल कर छानकर मिश्री मिला पिलाते हैं। प्रवाहिका अतिसार मे इसे मक्खन या मट्ठे के साथ देते है। अम्लपित्त मे इसका अष्टमास क्वाथ सिद्ध कर पिलाते हैं।

गूदे का शर्बत—शीतल, दाहनाशक है।

अतिसार व श्वेत प्रदर पर—इसके शर्बत मे शक्कर मिला पिलाते हैं। कोष्ठबद्धता मे जीरा व शक्कर मिला पिलाते है, इसके शर्बत के सेवन से धूप का असर नही होता। अम्लपित्त पर—गूदे का चूर्ण १० तोला, जीरा २॥ तोले और मिश्री १२॥ तोले सबका चूर्ण एकत्र मिला ले। ३-३ मासा प्रात साय जल के साथ लेने से भोजन के बाद वमन, कंठ में दाह, छाती मे जलन, सिर दर्द,

सगर्भा की वमन, घबराहट, प्रदर, रक्तातिसार व पेचिश होता है।

श्वास पर—यदि कफ प्रधान न हो तो गूदा ३ मासे तक सूखे या गीले अंजीर के साथ खिलाते हैं। चर्म रोग पर गूदे का लेप करते हैं।

छाल—

स्नेहन, शीतल, दीपन, मग्राही, ज्वरघ्न, कुनैन जैसी गुणकारी, तीव्र नाड़ी स्पन्दन को कम करती है।

पित्तज विषम ज्वर पर—छाल का चूर्ण २॥ तोला को ७५ तोला जल मे मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर इसकी ३ मात्रायें बना २-२ घटे से पिलाते हैं। दाह, उत्ताप की शाति होती, नाड़ी की सौम्य गति होती एव क्षुधा प्रदीप्त होती है। छाल का महीन चूर्ण भी ज्वर पर देते हैं। क्षुधावर्धक भी है। पाचन शक्ति की वृद्धि के लिये छाल के क्वाथ मे छोटी पीपल का चूर्ण मिला सेवन कराते है। पित्तज शिर शूल पर—क्वाथ पिलाते हैं। मूत्रावरोध मे—क्वाथ मे जवाखार मिला पिलाते हैं।

पत्र—

स्नेहन, ग्राही, मूत्रल, ज्वरघ्न, ग्रन्थि को पकाने वाले हैं। ज्वर के प्रतिस्वेद में, विशेषतः कफज ज्वर में रात्रि प्रस्वेद में पत्र चूर्ण ५-१५ रत्ती तक देते हैं। दाह में भी इससे कमी होती है। अतिप्रस्वेद पर पत्र चूर्ण की मालिश भी की जाती है। पत्तों की चटनी भोजन के साथ खाने से गरमी शांत होती है। पीड़ायुक्त व्रण शोथ तथा सन्धिवात की पीड़ा पर पत्तों को उबाल, लेप या पुल्टिस बांधते रहने से पीड़ा जलन व दाह की शांति होती है।

बीज—

ज्वर व व्रणनाशक है। उपदंश या गरमी चट्टे, फोड़े एवं सर्व प्रकार के व्रणों पर बीजों की नारी भस्म बना मक्खन में मिला लगाते हैं। दन्त वेदना पर—बीजों को भूनकर चूर्ण दंत पीड़ा तथा मसूड़ों की सूजन पर लगाते हैं, मंजन करते हैं।

गोरखपान [Gorakhpan]

इस बूटी के विषय मे कविरत्न प० गुरुदत्त जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, जम्मू (तवी) निवासी का लेख धन्वन्तरि वर्ष १५ के अंक ६ मे प्रकाशित हुआ था। उसी का साराश यहा दिया जाता है। यह बूटी पंजाब की ओर अधिक पायी जाती है।

यह बूटी सावन भादो मे ज्वार, मकई व बाजरे के खेतो मे या मैदानी भागो मे या नदियो के किनारे बहुत मिलती है। पौधा ४-५ अंगुल ऊंचा, भूमि से ऊपर उठा हुआ, पत्र बारीक ३-३ जुडे हुये ठीक चिड़िया के पजे जैसे होते हैं। अत इसे चिडीपंजा या पानावनी जख्महयात भी कहते हैं। फूल—श्वेत व बारीक कटोरी जैसा, तथा कुछ सुगन्धित होते हैं। पत्तो को मुंह मे चबाने से मुख लाल होता है। अत इसे गोरखपान कहते हैं। मूल—सूत्रवत् पतली होती है।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह रक्तशोधक, रुचिकारक, स्मरणशक्ति व उत्साह-वर्धक है। यह चाय के स्थान मे महान उपयोगी है। चाय के लिये इसके केवल पत्ते और फूल प्रयुक्त होते हैं। एक प्याली चाय के लिये इसका २ मासा तक चूर्ण पर्याप्त है। इसे उबलते हुए पानी मे डालकर २-३ जोश दे लेने चाहिये। यह बच्चे बूढे, जवान के लिये समान रूप मे लाभकारी है। आंखो की दृष्टि तेज करती, सर्व-प्रकार के अर्श दूर करती, ताजा रक्त पैदा कर जिगर को शक्ति देती है, रक्त साफ करती है, आमाशय के विकार, क्षुधामाद्य, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि वीर्य विकारो को दूर करने मे रामबाण सिद्ध हुई है। साधारण स्वास्थ्य के लिये बड़ी लाभदायक है। ज्वर मे लाभकारी है।

यदि गर्भ मे बच्चा सूख गया हो हिलता डुलता प्रतीत न हो तो इसके आध सेर चूर्ण को १० सेर गौ-दुग्ध मे पकावें। खोया सा हो जाने पर २ तोला केशर असली तथा आवश्यकतानुसार खाड मिलाकर रख लें। २॥ तोला से ५ तोला तक खाकर ऊपर से इसी बूटी

जरवन्हयात
(गोरखपान)

का स्वरस या अर्क ५ तोला तक पिलावें। प्रात साय कुछ दिनो के सेवन से गर्भ हरा भरा होकर समय पर प्रसव होगा।

रक्तार्श पर—इसके पत्र २ तोला पानी मे पीसछान कर उसमे २ तोला शर्बत अजुवार मिलाकर पिलावें।

अर्श पर—पत्र १ तोला के साथ समभाग अपामार्ग पत्र व ५ का ि मिर्च सव जल मे घोटकर पीने से मल नर्म आने ल ा है और स्थायी लाभ होता है।

मुख के ालो पर—इसे पानी मे उबालकर कुल्ले करावे। मले ा ा ज्वर पर—१ तोला पत्र मे ७ काली-मिर्च घोलकर दिन मे ३ वार पिलावें।

कर्ण रोग पर—इसके रस को डालने से कोई भी कर्ण रोग दूर होता है, विशेपत कर्ण पीडा शीघ्र दूर होती है।

सुजाक पर—इसे पानी के साथ पीस छानकर प्रात खाली पेट सेवन कराने से लाभ होता है। अथवा—इसके व खरवूजा बीज १-१ तोला, कवावचीनी ६ माशा १ पाव पानी मे घोट छानकर पिलावें। ७ दिन मे सुजाक पूर्णत. दूर हो जाता है।

नोट—इस बूटी के विवरण एवं प्रयोगों में श्री शेख-फैय्याज खां आ विशारद के लेख का भी सारांश दिया गया है। चित्र भी उन्हीं का वनाया हुआ है।

गोरखमुण्डी (Sphaeranthus Indicus)

गुडूच्यादिवर्ग एव भृंगराज कुल (Compositae) की इस बूटी के वर्षजीवी, अनेक शाखायुक्त क्षुप १ फुट तक ऊचे या जमीन पर फैले हुए होते हैं। काड-गोल, शाखायें कोमल, नलिकाकार, किंचित् श्वेत रोमयुक्त, पत्र—वृन्तरहित, गेंदा पत्र जैसे, किनारे दतुर, कुछ रोमश १-२ इच लम्बे, फीके हरे रङ्ग के होते हैं। पुष्प दण्ड पत्रा-भिमुख ५-७ इच लम्बे, डालियो के अग्रभाग मे जिन पर कदम्ब पुष्प जैसे पुष्पो की गोल-गोल घुण्डिया वेगनी रग की तीव्र गध वाली लगती हैं। कोमलावस्था मे इसी को पुष्प कहते हैं, तथा जब वह पक कर कठोर हो जाती हैं तव उसे ही फल कहते हैं। शीतकाल मे पुष्प फल आते हैं।

यह ५ हजार की ऊचाई तक प्राय समस्त भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशो मे होती है। धान के खेतो मे तथा गेहू, जो आदि रवी के खेतो मे भी बहुत पायी जाती है। तथा छोटे छोटे जलाशयो का पानी सूख जाने पर उस स्थान मे भी यह शरदऋतु मे उगती है।

नोट-(१) इसी छोटी मुण्डी का ही एक भेद महा मुण्डी है, इसे बड़ी मुण्डी, भूकदम्बिका, महाश्रावणी आदि तथा ले टिन में—स्फिरेन्थस अफ्रिकन्स (S Africans) कहते हैं। , अफ्रीका निवासिनी है, तथापि भारत में बहुत प्राच काल से पैदा हो रही है। इसका क्षुप अपे-क्षाकृत कु अधिक ऊंचा, शाखायें दृढ, कुछ मुडी हुई सी, पत्र ३ इ तक लम्बे, किनारे दतुर, पुष्प घुण्डी १/४ से १/२ इच व्यास की तथा ये घुण्डियां गुच्छों में लगती हैं।

यह कुछ अधिक सुगंधित होती है। यह बंगाल, बिहार, सिलहट की तरफ दलदल वाले स्थानों में अधिक पाई जाती है। इसके गुणधर्म प्रयोगादि प्रस्तुत-प्रसंग की छोटी मुण्डी जैसे ही हैं। इसमें दोष-शोधन गुण की कुछ अधिक विशेषता है। तथापि औषधि कार्य में छोटी ही प्रशस्त मानी जाती है।

चरक में उक्त दोनों मुण्डियों का योग इन्द्रोक्त रसायन, अमृतादि तैल तथा चन्दनादि तैल में पाया जाता है। अन्य आचार्यों ने भी अनेक रोगों पर इसके प्रयोग एवं कल्प आदि अपने अपने ग्रन्थों में ग्रथित किये हैं। यह बूटी पचामृत की ही एक बूटी है[1]।

(२) बंगाल की ओर एक छोटी मुण्डी, कोटि मुण्डी और होती है जिसे बंगला में सामनी तथा लेटिन में—स्फिरेंथस माइक्रोसेफालस (S Microcephalus) तथा स्फि लीव्हिगेटस (S Laevigatus) कहते हैं। इसके भी गुणधर्म उक्त मुंडियों के जैसे ही हैं। यह विशेषतः मूत्रल पौष्टिक तथा कृमिनाशक है।

बंगाल की ओर एक मुण्डी का भेद पाया जाता है जिसमें मधुर, तेज सुगन्ध होती है। इसे लेटिन में—स्फि. सुआव्हे ओलेन्स (S Suaveolens) कहते हैं। इसके पुष्प पौष्टिक तथा वातु परिवर्त्तक हैं।

दक्षिण में मैसूर, त्रावनकोर की ओर धान के खेतों में इसका एक भेद स्फि अमेरन्थाइडिस (S Amaranthoides) पाया जाता है। इसके काण्ड कुछ अधिक मोटे, शाखायें ८ से १२ इंच लम्बी, पत्र २ से ४ इंच लम्बे तथा तथा मुंडक १/२ से १ इंच व्यास के होते हैं। मालूम होता है यह महामुण्डी का एक भेद है।

इनके अतिरिक्त एक पीली छोटी घुंडी वाली मुंडी प्रायः जलाशयों के समीप होती है। किन्तु इसका औषधि-व्यवहार नहीं किया जाता।

नाम—

सं—मुण्डी, श्रावणी, मुंडिका, तपोधना।
हिं.—गोरखमुंडी, मुंडी, घुंडी, मुरली।
म —गोरखमुंडी, बोंडथरा, वरसवोंडी।
गु —गुंडी, गोरखमुंड, वाटियो कल्हार।
बं—मुडमुडिया, छागल, मुईकदंब नादी मुलमुडी।
ले.—स्फिरेन्थस इण्डिकस, स्फि हिर्टस (S Hirtus) स्फि मोलिस (S Mollis, Moll)

[1] बूटी पचामृत गिलोय के प्रकरण में देखिए।

गोरखमुण्डी (मुण्डी)
SPHAERANTHUS INDICUS LINN.
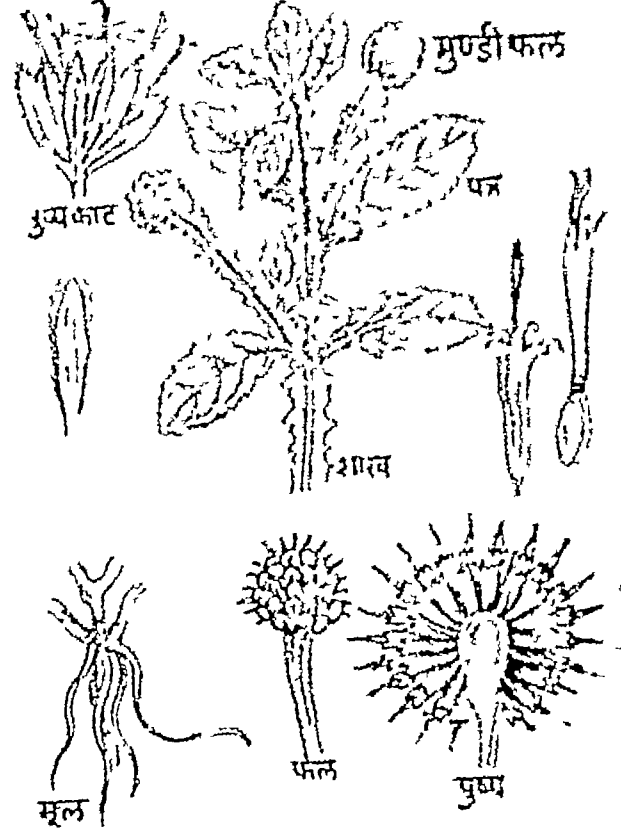
रासायनिक संघटन—

इसमें एक तिक्त क्षारतत्व स्फिरेंथिन (Sphaeranthine) नामक, तथा एक रक्ताभ पीतवर्ण सुगंधित तैल पाया जाता है।

प्रयोज्य अंग—फल (पुष्प-बोंडी), पत्र, मूल एवं पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

दोनों प्रकार की मुंडी—लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्णवीर्य एवं त्रिदोष शामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मेध्य, नाड़ी-बल्य, वेदनास्थापन, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, वृष्य, मूत्रल, स्वेदजनन, रसायन है तथा शोथ, कृमि, कुष्ठ, विसर्प, ज्वर, उन्माद, पांडु, मस्तिष्क दौर्बल्य, अपस्मार, वातव्याधि, शिरःशूल, अग्निमांद्य, यकृत्प्लीहावृद्धि, कामला, अर्श, हृद्दौर्बल्य, नेत्ररोग, श्लीपद, गंडमाला, अपची, जीर्णकास, श्वास,

मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, योनिशूल, अश्मरी, वमन, फिरंगरोग, वातरक्त, विस्फोटिकादि रक्तविकार नाशक है।

मूत्रसस्थान के रोगो मे इस बूटी से अच्छा लाभ मिलता है, मूत्रोत्पत्ति [निर्विकार] होकर वृक्क से मूत्र द्वार पर्यन्त के मूत्रमार्ग का शोधन एव सुधार होता है। वार बार मूत्रोत्सर्ग नही होता। अधिक दिनो तक [४-६ माह तक] लेते रहने से रक्तप्रसादन होकर फोडे फुन्सिया, कास, गण्डमाला आदि अजीर्ण रोग एव शारीरिक अशक्ति दूर होती, देह का रग सुधरता है। इस बूटी का ठीक ठीक कार्य शरीर मे हो रहा है, इसकी पहिचान यह है कि इसके सेवन करने वालो के स्वेद व मूत्र मे इसकी मधुर सुगन्ध की प्रतीति होती है, कारण इसका सूक्ष्म तैलांश त्वचा व वृक्को द्वारा बाहर निकलता रहता है।
—डा० देसाई

पूयमेह [सुजाक] मे पेशाव करते समय भयकर पीडा एव रक्तवर्ण का मूत्र मार्ग हो तो इसका रस पीने तथा मूत्र मार्ग मे इसकी पिचकारी लगाते रहने से मूत्र खुल कर होता, मूत्र सस्थान की दाह, क्षत, एव पीडा दूर होती है। इसी प्रकार इसके रस के पान व पिचकारी [डूश] लगाने से स्त्रियो की मूत्रनाली का दाह, योनिशूल, योनिकन्डू, जरायु पीडा आदि विकारो में अत्यन्त लाभ होता है। इसके रस को लगाते रहने से खुजली, दाह आदि चर्मरोगो की शीघ्र शान्ति होती है।

अनेक रोगो पर अनुपान भेद से इसका सेवन इस प्रकार किया जाता है—नपु सकता पर इसके चूर्ण को जायफल के साथ, वीर्य पुष्टि के लिये मिश्री के साथ, तिजारी, भगन्दर, श्वास व रक्तपित्त पर बासी पानी के साथ, बलवृद्धि के लिये गोघृत के साथ, मृतवत्सा पर बकरी के दही, जलोदर पर रेंडी तैल, नित्य ज्वर पर गाय के तक्र के साथ तथा साधारण ज्वर मे कालीमिर्च से, दाह पर जीरे से, पित्तभ्रम, प्रमेह व बुद्धिमाद्य पर गोदुग्ध से, अपस्मार (मृगी) पर नीबू रस से, अर्श पर कपूर से, उदर पीडा मे गोमूत्र से, अतिसार मे घृत से, स्त्री के गर्भधारणार्थ इसके साथ जायफल का समभाग चूर्ण मिला बकरी के दूध से, कम्पवात पर इसके और लौंग चूर्ण को एकत्र जल मे सेवन कराते हैं।

इस बूटी का सेवन—चैत्र-वैशाख मे मधु से, ज्येष्ठ-आषाढ मे मिश्री से, श्रावण-भादो मे गोघृत से, आश्विन-कार्तिक मे गोदुग्ध से, अगहन-पूष में तक्र से और माघ-फागुन मे काजी के साथ करते रहने से स्तम्भन शक्ति, कामशक्ति एव बलवीर्य की विशेष वृद्धि होती है।

उदर वात, वातज शूल एव रक्तविकारो पर—इसके स्वरस को कुछ गरम कर शक्कर मिला दिन मे दो बार सेवन कराते हैं। पाददारी पर इसके रस मे घृत सिद्ध कर लगाते हैं। चाकू, छुरी आदि से हुये जख्म पर इसके स्वरस को लगाते रहने से शीघ्र लाभ होता है। कठमाला पर इसके हिम का सेवन ४० दिन करावें। गण्डमाला, अपची और कामला पर इसके पत्ते व फलो का स्वरस दिन मे २ ब र २-४ माह तक सेवन करते रहने से लाभ होता है। गण्डमाला, अपची पर इसकी पुल्टिस तथा फूटे व्रणो पर इसके घृत का लेप करते हैं। सूर्यावर्त्त, आधाशीशी आदि वातप्रकोपजन्य सिर पीडा पर—इसका स्वरस कुछ गरम हलुवा, जलेबी आदि मधुर स्निग्ध पदार्थ खाते हैं। रक्तशुद्धि एव नेत्रदृष्टि के सुधार के लिये प्रतिवर्ष चैत्र मास मे इस बूटी का सेवन जल के साथ ७ या १४ दिन करें तथा उन दिनो मे नमक सेवन न करें। वातरक्त, कुष्ठ तथा पारदजन्य विकारो पर इसके साथ गिलोय समभाग महीन चूर्ण कर प्रात साय ४-४ माशे की मात्रा मे थोडा मधु मिला चाट कर ऊपर से शीतल जल पीवे, कुछ दिन नियमपूर्वक सेवन करने से अवश्य लाभ होता है। कास श्वास पर इसके रस के साथ कटेरी रस समभाग मिला थोडा शहद डालकर अथवा इसके तथा अडूसा के पत्रो का क्वाथ शहद मिला सेवन करते रहने से लाभ होता है। अथवा इसके रस १ पाव के साथ समभाग अडूसा पत्र रस, शक्कर ४० तोले व जल २ सेर एकत्र मिला पकावें। १ सेर शेष रहने पर मात्रा २-२ तोले प्रात साय सेवन करें। स्मरणशक्ति तथा बुद्धिवर्धनार्थ इसके चूर्ण के साथ ब्राह्मी व शखपुष्पी चूर्ण का मिश्रण २-४ माशे तक अथवा इन तीनो का रस एकत्र मिला २ तोले की मात्रा मे नित्य प्रात सेवन करें।

नोट—मु डी सेवी का पथ्य—हल्का, शीघ्रपाची आहार करें। शीतल, ताजा जल पीवें। नमक वहुत कम तथा

अम्ल एवं वातकारी पदार्थों से परहेज रक्खें।

इसके फल या पुष्प पुरुषार्थ के लिये तथा बालकों के विकारों पर और पत्र स्त्री रोगों के लिये विशेष लाभकारी होते हैं।

फल के प्रयोग—

१. आमवात, सन्धिवात पर—फल के साथ समभाग सोठ चूर्ण एकत्र पीस उष्णोदक से दोनो समय २-८ माशे सेवन करें तथा फलो को महीन पीस कर पीडा स्थान पर गरम कर लेप करें। इससे जीर्ण गठिया रोग दूर होता तथा हृदय सबल होता है। ध्यान रहे अधिक मधुर पदार्थों का, वर्षा की शीतल वायु का, दूध के साथ केले का तथा अति गरम पेय का सेवन अहितकारी है।

२ वातरक्त पर—चूर्ण को प्रात साय घृत व मधु से चटाकर ऊपर से गिलोय क्वाथ पिलावें तथा फलो को पीसकर लेप करे।

३ मसूरिका (चेचक) एव रक्तज रोगो पर—इसके ४ फलो के साथ ४ कालीमिर्च जल के साथ पीस छान कर प्रात प्रतिदिन पीने से चेचक, मसूरिका, खुजली, शीतपित्त आदि रोग नही होते। यदि मसूरिका हो गई हो तो इसे रक्त चन्दन के साथ थोडे जल मे मिला उबाल छान कर दिन मे ३ बार पिलाते रहने से विशेष लाभ होता है तथा रोगी निर्बल नही होता। रक्तज विकारो पर मु डी अर्क विशिष्ट योग मे देखें।

४ मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्र मे रक्तस्राव हो तो फल चूर्ण २ तोले तथा गोखरू छोटा, शोरा कलमी, इलायची छोटी के दाने, पाषाणभेद चूर्ण १-१ तोले तथा मिश्री ५ तोले सबको एकत्र खरल कर मात्रा ६ माशे चावल के धोवन १० तोले मे मिला दिन मे दो बार सेवन करे। भयकर मूत्रकृच्छ्र तथा रक्तस्राव मे शीघ्र लाभ होता है। मूत्रावरोध पर मु डी अर्क प्रयोग विशिष्ट योग मे देखें।

५ आन्त्रवृद्धि पर—इसके फलो के समभाग दोनो मूसली, शतावरी व भागरा लेकर चूर्ण कर ३ से ६ माशे की मात्रा मे सेवन कराते हैं। लाभ किसी किसी को हो जाता है।

६ स्वर माधुर्य के लिये—फलो के चूर्ण के साथ सोठ चूर्ण मिला शहद के साथ १॥ माशे की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार चटाते है।

७ अपस्मार पर—इसके फल २ नग के साथ १ माशे वच लेकर जल से पीस छान कर प्रात साय पिलावें तथा रोगी के गले मे इसके कच्चे फलो को तागे मे पिरो कर माला बनाकर धारण करावे। इस प्रकार कुछ दिनो तक करते रहने से बहुत कुछ लाभ होता है।

८ नेत्राभिष्यन्द प्रतिकारार्थ—इसकी १ घुन्डी बगैर चबाये निगल जाने से कहते हैं कि १ वर्ष तक आख नही आती अथवा चैत्र मास मे इसकी ५-७ घुन्डिया चबाकर पानी से निगल जाने से भी नेत्राभिष्यन्द आदि नेत्रविकार नही होने पाते।

९ वातरक्त आदि अन्य विकारो पर—इसके चूर्ण मे कुटकी चूर्ण मिला मधु व घृत से वातरक्त मे चटाते हैं। श्वेत कुष्ठ मे इसके चूर्ण १ भाग मे आधा भाग समुद्रशोष चूर्ण मिला २ माशे से ९ माशे तक की मात्रा मे जल के साथ देते हैं। अर्श पर इसके फल या मूल के चूर्ण को दिन मे २ बार गौ के तक्र के साथ सेवन कराते हैं। कम्पवात पर इसके चूर्ण को लौंग चूर्ण के साथ मिला शहद से चटावें। गडमाला पर चूर्ण को ३॥ तोले तक रात्रि मे जल मे भिगो प्रात मल छानकर ३-४ माह तक सेवन कराते हैं। मुख दुर्गन्धि पर चूर्ण को काजी मे मिला थोडा थोडा पिलावें। इसके शुष्क फलो का चूर्ण घर मे प्रात साय आग पर जलाते रहने से कीटाणुजन्य दोषो की निवृत्ति होती है।

पत्र—

१० पत्तो का शाक—वात, कृशता, मुख एव शारीरिक दुर्गन्ध, भोजन के बाद होने वाली वमन नाशक तथा वीर्योत्पादक, क्षुधा एव पित्तवर्धक है। शोथ रोग पर इसका अलोना शाक खिलाते हैं तथा नमक और जल से परहेज। ग्रन्थियो की शोथ पर पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

११ त्वचा के रोगो पर—पत्तो का स्वरस शरीर या त्वचा पर मलने से अथवा पत्तो को जल मे पीस कर लेप करते रहने से अनेक चर्मरोग, उपदश के व्रण, पुराने घाव एव पारदजन्य विकारो की शान्ति होती है। नारू पर भी इसका लेप लगाया जाता है। उठते हुए व्रणों के

शमनार्थ पत्तो के समभाग करीर के कोपल व कालीमिर्च इन तीनो को गोमूत्र मे पीस कर लेप करते हैं।

१२ अर्श पर—इसके पत्तो का स्वरस और एरड (रेंडी) पत्र स्वरस २॥-२॥ तोले एकत्र मिला पिलाते तथा इसके पत्तो की लुगदी अर्शांकुरो (मस्सो) पर बाधते हैं या इसके पचाग की धूनी देते हैं।

१३ दृष्टिमाद्य—नेत्र दृष्टि के कम हो जाने पर पत्तो को सेंधानमक व घृत के साथ आग पर जोश देकर खिलाते हैं तथा इसके पुष्पो का या पत्तियो का स्वरस नेत्रो मे लगाते रहते हैं।

१४ रक्तपित्त तथा स्वरभग पर—पत्र रस के साथ अड़ूसा पत्र रस मिला सेवन से रक्तपित्त मे लाभ होता है।

स्वरभग हो तो पत्तो को खाने के पान के बीड़े मे रख कर खाते हैं। तोता, मैना आदि पालतू पक्षियों को पत्तियो के चूर्ण को आटे मे मिला छोटी छोटी गोलिया बना खिलाते रहने से उनका कठ खुल जाता है, वह अच्छा बोलने लगते हैं।

मूल—

इसकी जड सकोचक, पौष्टिक तथा व्रण, अर्श, अतिसार आदि नाशक है। आमातिसार मे—इसके साथ सौंफ समभाग एकत्र पीस तथा दोनो को समभाग मिश्री मिला जल से सेवन कराते हैं। कृमिरोग मे इसका क्वाथ थोडा मिश्रण कर गरम जल से पिलाते हैं। उदर पीडा मे इसका क्वाथ पिलाते हैं। गुल्म मे इसे पीस कर १ तोले तक तक्र के साथ देते हैं। मेदरोग में इसके चूर्ण मे समभाग कुटकी चूर्ण मिला गरम जल से देते रहते हैं, इससे कृमिरोग मे भी लाभ होता है। स्वरभग मे इसे मुख मे रख धीरे धीरे चबाते हैं।

१५ नपुसकता पर—ताजी जड को पानी मे पीस कल्क कर कलईदार पीतल की कढ़ाई मे यह कल्क, कल्क से चौगुना काली तिल का तैल व तैल से चौगुना पानी मिला धीमी आच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसकी १०-३० बूदें पान मे लगा दिन मे २-३ बार खावें तथा इस तैल की इन्द्रिय पर धीरे धीरे मालिश कर ऊपर से पान बाध दिया करे। इससे काफी लाभ होता है।

१६ अर्श पर—जड की छाल का चूर्ण ३-६ माशे तक तक्र के साथ सेवन कराते तथा इसकी लुगदी को अर्शांकुरो पर बाधते है। इस लुगदी को कठमाला एव शोथयुक्त ग्रन्थि पर भी बांधते रहने मे लाभ होता है।

१७ बाल सफेद होना या पलित रोग एव अशक्ति पर—फूलने के पूर्व ही इसके पौधे की जड या पचांग को तथा काले भागरे को भी छायाशुष्क कर दोनो के समभाग चूर्ण को २ से ८ माशे तक मधु व घृत से ४०-८० दिन सेवन कराते है। पथ्य मे केवल दूध और चावल लें।

१८ विषनाशिनी वटी—इसकी जड के साथ हल्दी व जदवार (निर्विषी) समभाग जल मे पीस किसी विष की सभावना हो तो १-२ गोली नित्य शीतल जल मे ले लिया करें। प्लेग, कालेरा आदि विषैले रोगो मे भी इनसे अच्छा लाभ होता देखा गया है। —अ वू दर्पण

१९ नेत्र विकारो पर—इसकी जड को छायाशुष्क चूर्ण कर समभाग शक्कर मिला ५-७ माशे तक गोदुग्ध से सेवन कराते हैं।

२० गडमाला पर—जड को इसीके पंचाग के रस के साथ पीस कर लेप करते तथा २ से ४ तोले तक इसका रस पिलाते हैं।

२१ त्रिदोष गुल्म पर—जड को पानी मे पीसकर तक्र मिश्रण कर पिलाते हैं (जड की मात्रा १ तोले)।

पंचांग[१]—

इसका पचाग स्निग्ध, पौष्टिक तथा अर्श, वातरक्त, ज्वर, नेत्र पीडा, दुर्गन्ध आदि नाशक है।

२२ वातरक्त तथा कुष्ठ पर—इसका चूर्ण ६ माशे से १ तोले तक की मात्रा मे घृत १ तोले व मधु ५ माशे मिला सेवन करें। इस प्रकार दिन मे २ बार देकर ऊपर से गिलोय क्वाथ पिलावें। यदि मलवद्धता हो तो इसकी मात्रा मे थोडा कुटकी चूर्ण मिला लें।—चक्रदत्त

२३. मस्तिष्क एव शारीरिक बल रक्षार्थ—इसकी छायाशुष्क चूर्ण के साथ गेहू का आटा, घृत व शक्कर मिला हलवा बना नित्य प्रकृत्यनुकूल खाया करने से

---

[१] औषधि कार्यार्थ पौधों में बोंडी या पुष्प आने से पूर्व ही शुभ मुहूर्त में लाकर छायाशुष्क कर सुरक्षित रखना चाहिये।

[मस्तिष्क व शारीरिक शक्ति यथास्थित रहकर वलि पलित या केशो का झडना आदि वृद्धावस्था की शिकायतें दूर होती है।

उक्त चूर्ण मे समभाग मिश्री मिश्रण कर सेवन करते रहने से नेत्रदृष्टि तीक्ष्ण होती, दात मजबूत होते एव केश नही पकने पाते।

उक्त महीन चूर्ण मे दोगुना शहद मिला चीनीमिट्टी की भरणी मे भर कर मुख बन्द कर गेहू के ढेर मे ४० दिन दवा रक्खें। फिर मात्रा ६ माशे से १ तोले तक गरम दूध से प्रात साय सेवन करते रहने से शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है।

२४. योनिशूल पर—ताजे पचाङ्ग को १ तोले तक लेकर जल से पीस छान कर पिलाने से भयकर शूल दूर होता है, प्रदर मे भी लाभ होता है। स्थायी योनिशूल या प्रदर रोग मे प्रात साय कुछ दिन सेवन कराऐं।

२५ कृमिरोग पर—इसका चूर्ण १ माशे जल से प्रात साय सेवन कराते हैं, उदर के सर्व प्रकार के कृमि नष्ट होते हैं। वाह्य कृमियो के नाशार्थ इस चूर्ण का धूप दिया जाता है। अर्श की वेदना पर भी गुदामार्ग मे पचांग का धू आ दिया जाता है।

२६ देह दुर्गन्ध पर—इसके चूर्ण को काजी या तक्र के साथ नित्य प्रात पीते है। अथवा इसका अर्क दिन में ३ वार पीते हैं। एक मास मे रक्त प्रसादन होकर दुर्गन्ध दूर हो रसायन जैसे गुण की प्राप्ति होती है।

२७ नेत्र पीडा पर—ताजे पचाग को ताम्र बर्तन मे रख नीम के डडे से खूब रगडते हैं जव वह काला हो जाता है उसमे रूई को अच्छी तरह भिगो कर सुखा लेते हैं। समय पर इस रूई को जल मे भिगो नेत्रो पर रखने से विशेष लाभ होता है। —अ० बू० दर्पण

२८ ज्वरनाशक भस्म—२ सेर पचाग रस मे १ पाव (२० तोले) सगजराहत को घोटकर टिकडी बना मु डी (इसकी घु डी) की लुगदी मे रख कपडमिट्टी कर २० सेर कडो की आच मे फू क दें। ठडी होने पर अन्दर की भस्म को खरल कर रखलें। मात्रा ३ रत्ती तक यह भस्म तुलसी रस व शहद (या शक्कर) के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। —व. च.

विशिष्ट योग—

(१) मु डी अर्क—इसके फलो को शाम को सध्या समय जल मे भिगोकर प्रात भवके द्वारा अर्क खीच लें। मात्रा ५ तोला तक दिन मे २-३ बार सेवन कराते रहने से रक्तज विकार, चेचक आदि तथा यकृत हृदय की कमजोरी, नेत्र रोग आदि दूर होते हैं। आरभ मे २ तोले की मात्रा कुछ दिन लेकर धीरे मात्रा बढावें। सेवन काल मे अम्ल, उष्ण पदार्थ, अधिक परिश्रम, मैथुन आदि से वचना चाहिये।

यदि इसके साथ समभाग गावजवा मिलाकर अर्क खीचा जाय तो और भी गुणकारी होता है। अथवा—

इसके फल २॥ पाव के साथ वायविडग, इद्रजव, ग्वारपाठा, धनिया, सोयावीज, हल्दी, गिलोय, लाल-चन्दन, सौफ ५-५ तोला, सरपुंखा १० तोला तथा अजवायन, मोथा व खस ३-३ तोला इन सबको कूट कर बडे घडे मे १२ सेर पानी मे २४ घटे तक भिगोकर ५ बोतल अर्क खीच लें। पहली वोतल का अर्क अलग रखें यह शीघ्र गुणकारी है। शेष चार वोतलो का अर्क मिलाकर रखलें। मात्रा ३ तोला तक, आवश्यकतानुसार अधिक भी दे सकते है। यह रक्तरोग, कास, श्वास, उदर-शूल, अतिसार, शिरोरोग, रक्ताल्पता, ज्वर, अर्श, अरुचि, योनिशूल, अम्लपित्त, वमन, गले की जलन, कृमि, आध्मान मे विशेष लाभकारी है। चेचक की अवस्था मे जो जल पिलाया जाय उसमे इसे मिला दिया जाय तो सब उपद्रव शात हो जाते हैं।

फिरग रोग, कुष्ठ, वातरक्त आदि से फोडे फुसी, खुजली आदि होने पर उक्त प्रथम बताया हुआ अर्क जिसमे केवल मु डी और गावजवा है, उसका सेवन १-२ मास करने पर परम लाभ होता है। किन्तु नमक का सेवन बिलकुल बन्द करना होगा।

वृद्धावस्था मे अनेक कारणो से पौरुष ग्र थी के बढ जाने से मूत्र साफ नही होता, थोड थोडा होता रहता है। ऐसी दशा मे यह अर्क दिन मे ३ वार ५-५ तोले की मात्रा मे पीते रहने से वह ग्र थि सिकुड कर मूत्र विकार दूर हो जाता है।

(२) मुण्डयासव(रक्तदोपहारक)—इसका पचाङ्ग ४ सेर, उसका आधा सेर लेकर जौकुट कर १५ सेर जल में पकावें। ६ सेर शेप रहने पर छान कर शुद्ध चिकने मटके मे भर ठडा हो जाने पर उसमें शहद ५ सेर, धाय पुष्प चूर्ण १ सेर, मिश्री २॥ सेर तथा सौंफ व काली-मिर्च चूर्ण ५-५ तोला मिला मुखमुद्रा कर २१ दिन वाद छानकर वोतलो में रैक्टिफाइड स्प्रिट २-२ तोला (इस स्प्रिट के अभाव में देशी शराव ५-५ तोले) मिलाकर दृढ़ काग लगाकर रक्खें। ४ दिन वाद काम में लावें। मात्रा—१ से २॥ तोले तक।

यह फिरग, उपदश एवं पारदजन्य विकारो को नष्ट कर रक्त को शुद्ध करता है।

(३) मुण्डीपाक—इसके पौधे, जिनमें घु डी न आयी हो रविवार के दिन प्रात नहा धोकर साफ कपडे पहन सूर्योदय के पूर्व ही किसी लकडी से खोद कर स्वच्छ कर छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर लें। इसमें से १ पाव चूर्ण लेकर उसमें घृतपक्व मावा (घृत में भूना हुआ खोया) २० तोला, घृत पक्व गेहूँ का आटा २० तोला, अकरकरा, नागकेशर, ब्राह्मी, सखाहुली, वहुफली व काली मिर्च का महीन चूर्ण २-२ तोला मिलावें। फिर १ सेर मिश्री की चाशनी में सवको मिला पाक जमादें।

१ तोला से ५ तोला प्रात धारोष्ण गोदुग्ध से सेवन से वुद्धिमाद्य दूर होता एव शरीर में वलवीर्य की वृद्धि होती है। कम से कम २० दिन इसका सेवन करना चाहिये। यह तथा अन्य पाको का सग्रह देखिये धन्वन्तरि कार्यालय से प्रकाशित हमारे वृहत्पाक सग्रह में।

(४) माजून गोरख मु डी—इसके फल ७ तोला तथा वादाम तैल मे भुनी हुई पीली हरड, वडी हरड व कावुली-हरड १-१ तोला और आवला, धनिया की मगज, शहातरा व मुलैहठी १-१ तोला इन सवका चूर्ण ४२ तोला मिश्री की चाशनी मे मिला दें। (यह चाशनी कुछ ढीली रखनी चाहिये, कड़ी चाशनी होने पर वह पाक कहलावेगा)।

यह माजून २ तोला की मात्रा मे प्रात साय गो दुग्ध से लेवें। सव प्रकार के नेत्र विकारो मे विशेष लाभकारी है। जिनकी आखें वार-वार आया करती है उनके लिये यह अत्यत लाभदायक है। (व च)

(५) मुंड्यादि घृत—मुडी, गिलोय, छोटी वडी कटेरी, रास्ना व मजीठ ५-५ तोला जौकुट कर ३ सेर पानी मे पकावें। ६० तोला शेष रहने पर छानकर उसमे गोदुग्ध, गाय का दही, मक्खन (घृत) और पानी ६०-६० तोला मिला मद आग पर पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर छान रक्खें। इसका सेवन ७ दिन तक १-१ तोला की मात्रा मे लेवें। इसे वात विकारो में स्नेहन के लिये पिलाना, मालिश करना, भोजन मे खिलाना तथा वस्ति मे प्रयुक्त करें। (हा स)

घृत के अन्य प्रयोग शास्त्रो मे देखिये।

व्रणो पर लगाने के लिये मुण्डी घृत—मु डी का रस २० तोला, गोघृत १० तोला तथा सिन्दूर, राल, कत्था, नीम के फूल व घर का धुआसा १-१ तोले सवको एकत्र मिला पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर वस्त्र मे छानकर रखलें। इसे मलहम जैसा लगाने से कुष्ठ, उपदश, नाड़ी-व्रण एवं सव प्रकार के दुष्ट घाव ठीक होते हैं।

(६) मु डी तैल न १—इसके ताजे पचाङ्ग को जल के छीटे देकर कूटकर ५ सेर तक रस निचोड लें। उसमे १। सेर तिल तैल मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान वोतल मे भर रक्खें।

६ माशे से २ तोले की मात्रा मे ४१ दिन प्रात साय खाली पेट सेवन करने से तथा सेवन काल मे मैथुन एव कुपथ्य से वचे रहने से अपूर्व वल प्राप्त होता है, एव इतना वेग आता है कि बचना कठिन हो जाता है। (वृ द)

मुण्डी तैल न २—मु डी का पचाग और छोटी पीपर समभाग दोनो को जल के साथ पीसकर कल्क करें। कलईदार पीतल की कढाई मे कल्क से चौगुना काले तिल का तैल, तैल से चौगुना पानी मिला मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेप रहने पर छान लें। इस तैल मे रुई को भिगोकर स्तनो पर रखने से तथा इस तैल की नस्य देने से ढीले पडे हुए स्तन सुदृढ, पुष्ट एव कडे होते हैं। इसे 'कुचकठोर तैल' कहा गया है। (व से)

(७) मुंडी शर्वत—एक पाव मुंडी को कुचलकर

१॥ सेर जल में १२ घटे भिगोकर पकावें। आध सेर जल शेष रहने पर छान लें तथा १ सेर मिश्री हलकी चाशनी आने पर उतार कर रक्खें। यह क्षुधावर्धक, मस्तिष्क को बलकारी व प्रतिश्यायनाशक है। (वृ द)

(८) मु डी चोआ—मु डी को अर्ध कचडाकर इतना जल (बहुत थोडे जल) मे भिगोवें जितने मे गोला सा बन जाय, फिर इसमे चमेली तैल या अन्य कोई सुगधित तैल मिलाकर हाथो से इतना मलें जिसमे वह स्निग्ध हो जावे। फिर पाताल यत्र द्वारा इसका चोआ उतार लें। इसे ४ रत्ती की मात्रा से पान के साथ शीतऋतु मे खाने से यह शरीर को गर्म रखता तथा कफज रोगो को व निर्बलता को दूर करता है। (वृ द)

(९) मु डी कल्प—शुक्लपक्ष की पचमी या पूर्णिमा तिथि को रेवती, रोहिणी, पुष्य या श्रवण नक्षत्र मे रविवार के दिन द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रीय या वैश्य) को चाहिए कि गध, पुष्पादि से पूजाकर जडसहित मु डी का पौधा उखाड छायाशुष्क कर महीन चूर्ण बना लें। मात्राक्रम से बढाते हुए १ तोला तक गोदुग्ध से या घृत और मधु से ७ दिन सेवन से शरीर दृढ होता है तथा १ वर्ष तक सेवन करने से शारीरिक सब रोग दूर होते है, नेत्रज्योति बढती, मुख मण्डल तेजस्वी, वीर्य सबल एव वृद्धावस्था की निर्बलता दूर होती है।

'ॐ नमो भगवते अमृतोद् भावाय, अमृत कुरते स्वाहा।" इस मत्र को पढकर उक्त चूर्ण का सेवन दूध या मधु, घृत, छाछ, काजी या जल के साथ(प्रकृत्यनुसार) ६ माह सेवन कर लेने से मनुष्य दीर्घायुषी होता है। (औषधि कल्पलता)

नोट—मात्रा–स्वरस ६ माशा से २ तोला तक, क्वाथ ५ से १० तोला तक, चूर्ण ४ रत्ती से २ माशा तक, अर्क ५ तोला तक।

गोबिल (Vitis Latifolia)

द्राक्षा कुल (Vitaceae) की इसकी लता दाख की लता जैसी ही पतली, लम्बी, बीच बीच मे सधियों से युक्त, कुछ बेंगनी रग की होती है। पत्र— द्राक्ष पत्र जैसे, पत्रो के सामने की ओर से तन्तु निकलते हैं, जिन पर सुन्दर लाल रग के फूलो के गुच्छे आते हैं। फल—कुछ गोलाकर, काले रग के करौंदे जैसे लगते हैं। इसकी लता, पत्र, पुष्प, फलादि सब द्राक्ष लता जैसे ही होते हैं, किन्तु ये खाने के काम मे नही आते, कुछ कडुवे कसैले से होते है। इसे 'ज गली दाख' भी कहते हैं।

यह लता भारत के उत्तर-पश्चिम के ज गलो मे तथा दक्षिण में पूर्व एव पश्चिम किनारों के वन प्रान्तो में विशेष पाई जाती है।

नाम—

हि व—गोबिल, पानी बेल, मुसल, सुरीया।

गु.–जगलीद्राख। म.—गोलिंदा।

ले —व्हिटिस लेटिफोलिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह मूत्रल और धातुपारिवर्तक (Alterative) है। इसकी जड सकोचक एव ग्राही है।

इसके कोमल पत्तो का रस दत पीडा पर लगाते हैं तथा दूषित दीर्घकालस्थायी व्रणो पर कृमि आदि निवारणार्थ स्वच्छ करने के लिये भी इस रस का उपयोग करते हैं। धातुपरिवर्तनार्थ इसका उदर-सेवन भी थोडी थोडी मात्रा में कराया जाता है। पत्रो को पीसकर नारू पर बाधते हैं। तथा इसकी जड को पानी में पीस कर विषैले कीटकादि के दश स्थान पर लगाते हैं।

ग्वारपाठा (Aloe Vera)

गुड्च्यादि वर्ग एव रसोन कुल (Liliaceae) की यह सर्व प्रसिद्ध बहुवर्षायु, मासल क्षुप १-२ फुट ऊ चा होता है। पत्र—मासल, भालाकार, १-२ फुट लम्बे, ३-४ इ च चौडे, स्थूल कटकितधारयुक्त, घृत जैसे पिच्छिल, कुछ

पीले द्रव्य से पूर्ण होते है। पुष्प-पुराने क्षुप के मध्य भाग से पुष्पदण्ड निकलता है, जिस पर रक्ताभपीत रग के पुष्प या १।-१। इच लम्बी फलिया आती हैं। प्राय शीतकाल के अन्त मे पुष्प व फलिया आती हैं जिसे गदल कहते हैं।

भेद—

(१) स्थान एव देश भेद से इसकी कई जातिया हैं। इनमें से प्रसिद्ध ३ जातियो में से दो जातिया जो भारत मे विशेष पाई जाती हैं, उनमे से एक तो एलो वेरा (Aloe vera or A Barbados) है। यह प्राय मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो मे तथा थोडा थोडा सर्वत्र ही पाया जाता है। इसके पत्ते फीके हरितवर्ण के या कही कही आवार की ओर नालारुण आभायुक्त हरितवर्ण के होते हैं, किनारे के काटे कम दृढ होते हैं। मद्रास से रामेश्वर तक समुद्र किनारे होने वाले क्षुप छोटे-छोटे, पत्ते ६-७ इंच से १ फुट तक लम्बे, इनके किनारे सामान्य दतुर होते हैं। इसे लेटिन मे एलो इडिका (Aloe Indica) कहते हैं। इसे छोटा-ग्वारपाठा हिन्दी मे कहते हैं बगाँल तथा सीमाप्रात की ओर एक लाल ग्वारपाठा होता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिए।

दूसरा भारत मे समुद्रतट पर होने वाला जाफराबादी ग्वारपाठा (Aloe Litoratis) है। इसके पत्ते तलवार के आकार के कृष्णाभ हरितवर्ण के तथा श्वेत बिन्दुयुक्त होते हैं। इसके १४-१६ इच लम्बे पुष्पदण्ड पर पुष्प का बाह्य कोष पीतवर्ण का मध्य भाग फीके वर्ण का तथा निम्न भाग मे नारगी वर्ण का एव अग्रभाग मे हरित वर्ण का होता है, अन्दर का पराग कोश एकदम रक्त वर्ण का होता है। इसीका एक प्रकार और होता है, जिसके पत्ते अत्यधिक चौडे एव पुष्पदण्ड भी अधिक लम्बा होता है। ये क्षुप काठियावाड एव खबात की खाडियो मे विपुलता से होते हैं। इसे एलोय एबिसिनिका (A Abyssinica) भी कहते हैं। जाफराबादी एलुवा या मुसब्बर इन्ही से प्राप्त होता है।

तीसरा अफ्रीकी प्रजाति (A Ferox) का जो ग्वारपाठा होता है वह भारत मे नही पाया जाता। वह अपेक्षाकृत सबसे ऊचा (६-१८ फुट तक), विनाल (Sessile) मोटी, मासल पत्तियो के पुज से युक्त होता है। इसमे श्वेताभ पुष्पो से युक्त पुष्पदण्ड निकलता है, श्वेतपुष्प बाद मे कभी कभी रक्त या पीले हो जाते हैं। पत्ते लगभग ६ से १२ इच तक लम्बे होते हैं। ब्रिटिश फार्माकोपिया का एलोय सोकोट्रीन (A Socotrine) नामक एलुवा (मुसब्बर) इसीसे बनाया जाता है। यह जजीबार एव लाल सागर के बन्दरगाहो से चमडे के थैलो मे भरकर इधर आता है।

२ कुमारी-सार (एलुवा,[1] मुसब्बर को म०—एलियो एव कालाबोल, गु०—एलियो, अ०—एलोज Aloes कहते हैं)। —इसके मुख्यत ४ भेद हैं—

A सोकोट्रीन (Socotrine aloe) मुसब्बर—ग्वारपाठा के क्षुप के नीचे भूमि मे गोल गोल छिद्र चारो ओर कर दिये जाते हैं। अथवा छिद्र न करते हुए क्षुप के निम्न स्तल भाग मे जड को सटाकर चारो ओर बकरे या बन्दर के चमडो की थैलिया लगा दी जाती हैं। फिर परिपक्व पुष्ट पत्र दल के निम्न भाग मे चाकू से आडा चीरा दे दिया जाता है। पत्रदल से झिर झिर कर रस उक्त छिद्रो में या थैलियो मे ही भर अरब, भारत आदि देशो मे विक्रियार्थ भेज दिया जाता है। लगभग १ माह के बाद थैलो के अन्दर ही रस का जलीयाश शुष्क हो वह गाढा होता तथा फिर १५ दिन बाद घनत्व को प्राप्त होता है। इस मुसब्बर मे चमडे के टुकडे अधिक मिले होते है। भारत मे बम्बई मे इसे चर्म थैलियो से अलग कर बक्सो मे भर-भर कर अन्यत्र भेजते हैं। उत्तम सोकोट्रीन मुसब्बर सुनहरे रग का ऊपर से कुछ कडा, कोमल एव एक विचित्र सुगन्धयुक्त होता है। इसका चूर्ण कुछ नारगी रग का दिखाई देता है।

B. जाफराबादी मुसब्बर—इसके लिये मोटे पत्तो को कूट पीस कर निकाल कर उसे सूर्यताप या हल्की आच पर रख गाढ़ा कर लिया जाता है। यह कुछ चिकना व अपारदर्शक बनता है। यदि रस को तीव्र अग्नि पर शीघ्र गाढ़ा कर देते है तो वह कुछ पारदर्शक बनता है।

---

[1] एलुवा (Prunus Cerasus) के विषय में इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में देखिये। यहां कुमारीसारोद्भव एलुवा का विवरण दिया जा रहा है।

यह एक प्रकार की विशिष्ट गन्धयुक्त, स्वाद मे कडुवा व हृल्लासकारक होता है। इसके टुकडे पीताभ कत्थई रग के व चूर्ण हल्का पीले रग का होता है। नाइट्रिक एसिड मे यह रक्तवर्ण का हो जाता है।

C अरेबियन मुसब्बर—यह अरब देश से आता है। इसके लिये मोटे पत्तो को पीसकर पैरो तले खूब कुचल कर निकले हुए रस को चमडे के थैलो मे भर धूप मे रखते है तथा विक्रियार्थ बाहर भेजते हैं। इसके टुकडे पीले रग के चिकने तीक्ष्ण गन्धयुक्त होते हैं। नाइट्रिक एसिड (सोरे के तेजाब) मे यह भी रक्तवर्ण का होता है।[1]

D मैसूरी-मुसब्बर—मद्रास आदि दक्षिणी समुद्र तट पर होने वाले क्षुपो से यह निर्माण किया जाता है। यह औषधि कार्य मे बहुत कम लिया जाता है। शिल्प कार्यो मे विशेष व्यवहृत होता है।

३ कडुवा और मीठा ग्वारपाठा—वैसे तो सब ग्वारपाठा कडुवे ही होते हैं। किसी मे अधिक कडुवाहट होती है तथा किसी मे साधारण कम होती है, इसे ही मीठा ग्वारपाठा मान लिया जाता है। दोनो के क्षुपो की ऊचाई आकृति समान होती है। मीठे के पत्ते अपेक्षाकृत कम चौडे, कम मोटे और कुछ छोटे हल्के हरे रग के होते है। कडुवे का रग अधिक हरा होता है जिसमे धूमिलता की झाई भी मारती है। अति मीठा जल मिलते रहने से कडुवी जाति का रस भी कुछ मीठा बन जाता है। कडुवे को कितने ही बार धोने पर भी अपनी कटुता नही छोडता, किन्तु मीठा थोडे ही परिश्रम से साफ होकर खाने योग्य बन जाता है। इसका उपयोग अचार, शाक आदि बनाने मे किया जाता है। दोनो के पुष्प दण्डो का भी अचार आदि बनाया जाता है। कडुवे जाति का पुष्प दड कडुवा नही होता है। अचार आदि की विधि आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

४ ग्वारपाठे का उपयोग चरक-सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थो मे नही मिलता। शायद सर्वप्रथम इसका उपयोग शार्ङ्गधर जी ने प्लीहारोग पर किया है। पश्चात् के भावप्रकाश आदि ग्रन्थो मे इसका वर्णन एव प्रयोग आदि पाये जाते हैं। सम्प्रति घरेलू चिकित्सा रूप मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है।

[1] बाजारू मुसब्बर म कत्था, पत्थर, लोहे के कण आदि की मिलावट प्राय होती हैं। यदि शोरे के तेजाब में इसका चूर्ण डालने पर रक्ताभ बादामी बोल बन जाय व फेन सा निकले तो उसे असली एलुवा जाने।

नाम—

सं०—कुमारी (इसके क्षुप के ऊपरी पत्तों के शुष्क होते ही अन्दर से नये पत्ते फूटते रहते हैं, इस प्रकार यह सर्वकाल हरीभरी एवं ताजी रहने से), गृहकन्या, घृत कुमारिका (गूदा घृत जैसा होने से)

हि०—ग्वारपाठा, घीकुआंर, ढेकवार, कवार।

म०—कोरफड, कोरकांटा। व०—घृतकुमारी।

गु०—कुंवार, कवार पाठु।

अं०—इण्डियन एलो (Indian Aloe)

ले०—एलो बेरा, एलो इण्डिका (A Indica), एलो बार्बाडेन्सिस (A Barbadensis)

रासायनिक संघठन—

इसमे एलोइन (Aloin) या बार्बेलोइन (Barba-

loin) नामक स्फटकीय ग्लुकोसाइड, एलो एमोडिन (Aloe emodin), राल, एक उडनशील तैल, कुछ गेलिक एसिड (Gallic acid) पाया जाता है ।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र का गूदा, रस, सार (मुसब्बर) और मूल ।

गुण धर्म और प्रयोग —

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, तिक्त, मधुर, विपाक मे मधुर या कटु, शीतवीर्य, प्रभाव मे भेदन तथा त्रिदोष-हर, अल्प मात्रा में दीपन, पाचन, भेदन (बडी मात्रा मे विरेचन), रसायन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, चक्षुष्य, दाहहर, शोथहर, मूत्रल, वेदनास्थापन, व्रण-रोपण, वृष्य, आर्त्तवजनन, गर्भस्रावकर (यह अपनी उष्णता से गर्भाशयगत रक्तसवहन क्रिया को वढाता एव गर्भाशय की पेशियो को उत्तेजित कर उनका सकोचन करता है), त्वग्दोषहर, वल्य, वृहण एव अग्निमाद्य, गुल्म, उदरशूल, प्लीहा-यकृद्वृद्धि, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, ग्रन्थि, विस्फोटक आदि नाशक है ।

आभ्यन्तर पाचन सस्थान मे इसकी सामान्य क्रिया प्रथम क्षुद्रान्त्र पर होने से पित्त का प्रवाह वढ़ जाता है । अत सामान्य मात्रा मे इसके प्रयोग से पचन क्रिया एव यकृत् क्रिया मे सुधार होकर आहार रस ठीक बनता, स्त बवे हुए, मुलायम एव गहरे रग के होते हैं। किन्तु समे जो अलोइन या वार्वेलाइन (Aloin or Barba-ion) नामक स्फटकीय ग्लूकोसाइड है । उसे आन्त्र मे वियोजित होकर परिचालन गति को उत्तेजित करने के लिये लगभग १०-१२ घन्टे लगते हैं। इसकी क्रिया मे शीघ्रता हो, इस उद्देश्य से यदि इसकी अधिक मात्रा दी जाती है तो उसमे शीघ्रता तो नही आती, समय उतना ही लगता है, प्रत्युत् दस्त के साथ अत्यधिक प्रवाहण, (मरोड) गुदद्वार मे दाह, रक्तस्राव आदि उपद्रव उपस्थित हो जाते है । इन उपद्रवों से बचने के लिये इसके साथ क्षार या वातहर द्रव्यों का मिश्रण किया जाता है ।

ध्यान रहे इसका अधिक प्रयोग करते रहने से गुद मे रक्ताधिक्य होकर अर्श होने की आशका एव सम्भावना होती है । —द्र० गु० वि० के आधार से

गर्भाशय पर इसकी क्रिया उत्तम परिणामकारक होती है । गर्भाशय मे शूल, अनियमित मासिकस्राव, कष्ट के साथ वहुत थोडा स्राव या अतिस्राव इत्यादि विकारो पर इसका उदर सेवन तथा स्थानिक लेपादि मे अच्छा लाभ पहुँचाता है । पित्त प्रकोप से यदि अधिक रज स्राव होता हो तो यह पित्तशमन स्राव को कम करता है । नष्टार्त्तव या कष्टार्त्तव पीडित रुग्णा को अपचन एवं जीर्ण मलावरोध हो, उदर बढा हुआ हो, मुखमण्डल निस्तेज हो ऐसी दशा मे इसका या इसके सार (एलुवा) के समान दूसरी हितावह औषधि नही है । कन्यालोहादि वटी (विशिष्ट योग मे आगे देखें) ऐसी अवस्था मे उत्तम है। मासिक धर्म आने के १५ दिन बाद प्रारम्भ करें । मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक दिन मे दो वार जल के साथ देवें । इस प्रकार ४-६ मास तक सेवन कराने पर अति दृढ हुआ रोग भी निवृत्त हो जाता हैं । मासिकधर्म विकृति से सिरदर्द, दृष्टिमाद्य, पाडुता, कमर पीडा, अरुचि, वेचैनी, निर्वलता आदि लक्षण हो तो वे भी दूर हो जाते हैं एवं मलावरोध के कारण मासिक धर्म मे अति कष्ट होता हो उसमे भी लाभ होता है । ऐसी रुग्णाओ को कुमारी घृत तथा इसका अचार भी अति हितावह है।

इसके अतिरिक्त युवा स्त्रियो के हलीमक (पाडु विशेष, जिसमे देह का रग हरा सा हो जाता है) सहित कष्टार्त्तव मे भी एलुवा और कसीस प्रधान कन्यालोहादि वटी का उत्तम उपयोग होता है । डाक्टरी मे एलुवा, हीराबोल, कसीस व खुरासानी अजवायन का सत्व मिश्रित गोलिया दी जाती है । —गाव में औ रत्न

आर्त्तवजननार्थ—रज काल से ७ दिन पूर्व से ही इसका सेवन प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

गूदा तथा रस के मुख्य-मुख्य प्रयोग—

इसके पत्तो का ताजा गूदा या स्वरस नेत्राभिष्यन्द, विद्रधि, अर्श एवं अग्निदग्ध व्रण पर हल्दी के साथ पीस कर लगाते हैं, दाह कम हो जाता है । शरीर में रुधिर भ्रमण के वेग को एव अतिगर्मी को कम करने के लिये छोटे ग्वारपाठा का गूदा शीत जल में धोकर उस पर मिश्री चूर्ण वुरक कर खिलाते हैं । नेत्र पीडा पर—गूदे पर

थोडी फुलाई हुई फिटकडी बुरक कर बाधते हैं। प्लीहा वृद्धि पर—इसके ७॥ तोले गूदे में ११। माशे तक नमक मिला जल मे पकाते हैं। जब जल खौलने लगता है तब उसे छानकर २॥ तोले मिश्री मिला प्रात पिलाने से रेचन होकर प्लीहा कम होती है। —अ चि सा

शक्ति के लिए गूदा नियमित रूप से सेवन कर उस पर नीम गिलोय का स्वरस पीते रहने से प्रौढावस्था या वृद्धावस्था की अशक्ति नही होने पाती, शरीर सशक्त बना रहता है। —व च

(१) व्रण, विद्रधि पर—गूदा गरम कर बाधते और बदलते रहने से अपक्व व्रण या विद्रधि बैठ जाती है। यदि वह पकने पर हो तो शीघ्र पक कर फूट जाता है तथा फूट जाने पर गूदे की हल्दी मिला बाधने से उसका शोधन होकर शीघ्र अच्छा हो जाता है। यदि व्रण को पकाना हो तो इसे सर्ज्जखार व हल्दी मिलाकर बाधे।

(२) शोथ पर—मामूली दोषज शोथ हो तो गूदे के साथ आमा हल्दी व श्वेत जीरा पीसकर गरम कर लेप करें। अथवा—

इसके पत्ते को एक ओर छीलकर उस पर थोडा आमा हल्दी चूर्ण बुरक कर कुछ गरम कर बद आदि ग्रथिशोथो पर बाधते रहने से लाभ होता है।

यदि चोट लगने या कुचल जाने से शोथ हो तो एलुवा, अफीम व हल्दी चूर्ण एकत्र मिला थोडा गरमकर लेप करें।

(३) नेत्राभिष्यन्द पर ताजा गूदा ५ तोले को शुद्ध जल १ पाव मे डाल कर उसमे १ या २ रत्ती अफीम, भुनी लाल फिटकडी १ माशा तथा रसौत ४ माशा, धीमी आच पर पकावे। १० तोले तक जल शेष रहने पर उतार कर स्वच्छ वस्त्र से छान लें। छानने पर जो इसके गूदे की लुगदी वस्त्र पर है, उसकी पोटली बना उसी छने हुए जल मे डुबो डुबो कर गुनगुना नेत्रो पर फेरते रहे। दवा नेत्र के अन्दर जाने से कोई हानि नही प्रत्युत् लाभ होता है। इस प्रकार २४ घण्टे में ४ बार आध-आध घण्टे तक नेत्र पर सेक देने से दो दिन मे भयंकर दुखती हुई आख में शाति प्राप्त होती है, रोग निवृत्त हो जाता है।

गूदे में हल्दी चूर्ण मिला गरम कर पैर के तलुवों पर बाधते रहने से भी लाभ होता है।

(४) कास पर—विशेषत बालकों की खासी के लिये इसके गूदे में—आधा कच्चा भुना हुआ सुहागा तथा काली मिर्च समभाग महीन चूर्ण कर आवश्यकतानुसार मिलाकर खूब खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बनालें।

मात्रा—१ से २ रत्ती, शिशु को मा के दूध के साथ घिसकर पिलावें। शीघ्र लाभ होता है।

कासान्तक चूर्ण—गूदे के छोटे छोटे टुकडे धूप मे शुष्क कर तथा छोटी कटेरी पचाग छायाशुष्क १।-१। सेर एकत्र मिला दोनो का चूर्ण एक मटकी में आधा भर ऊपर काला नमक ५० तोला बुरक दे, फिर शेष चूर्ण ऊपर भर कर ढक्कन ढककर कपडमिट्टी कर गजपुट मे फूंक दें। फिर भस्म को पीसकर शीशी मे भरलें। मात्रा—२,३ रत्ती। दिन मे ५-७ बार मुख मे डाल रस निगलते रहे। इससे कफ सरलता से निकल जाता है। अग्निदीपक, मलावरोधनाशक है। तम्बाखू के व्यसनी के कास श्वास पर यह उत्तम प्रयोग है। —र त सा

(५) श्वास पर—गूदा १ पाव मे सैधानमक का महीन चूर्ण ३ तोला मिलाकर मृत्पात्र मे भर कपड-मिट्टी कर ४-५ सेर कण्डो की आच मे निर्वातस्थान मे फूक दें। ठडी होजाने पर अन्दर से काली रग की भस्म को निकाल पीसकर रखें। प्रात साय १-२ माशा तक मुनक्का या बताशा मे रखकर सेवन करावें। कफज श्वास कास एव जीर्ण कास भी दूर होती है। (ख गु सु)

(६) उदर विकार पर—गूदा ४ सेर के साथ कलमी सोरा १ सेर मिला मृत्पात्र मे मुख-मुद्रा कर धीमी आच पर रख दे। ४-६ घटे बाद ठडा होने पर अन्दर की दवा को निकाल पीस कर रखले। मात्रा—१ माशा खिला कर रोगी को बाई करवट सुलादें, उदरशूल, प्लीहा, हैजा आदि पर लाभदायक है।

अथवा—गूदा २ भाग, नौसादर १ भाग और तुलसी पत्र आधा भाग एकत्र खरल कर धूप मे रखदें। कुछ शुष्क हो जाने पर २ से ८ रत्ती तक की गोलिया बना लें। नित्य १-२ गोली गरम पानी से लेवे। आमाशय दुर्बलता, क्षुधामाद्य, अपचन दूर होता है। (ख गु सु)

(७) प्रमेह पर—गूदा २ तोला, घृत ६ माशे मे भून कर उसमे थोडा सेंधा नमक व कालीमिरच मिला खिलावें। अथवा—

गूदा ४० तोले को गोघृत ४० तोले मे भूने। गूदा लाल हो जाने पर उस घृत मे १ पाव गेहूँ का निशास्ता भून लें। फिर यह भुना गूदा निशास्ता और आध सेर खाड मिला खूब रगड-रगड कर २-२ तोला के मोदक बनावें। प्रात निराहार १-२ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पीवें। १४ दिन मे जीर्ण प्रमेह भी दूर होता है।
(ख गु सु)

(८) वात गुल्म आदि अन्यान्य-विकारों पर—वात गुल्म पर—गूदा व गोघृत ६-६ माशा, हरड चूर्ण १ माशा तथा सेंधानमक १ माशा एकत्र मिला सेवन कराते हैं।

कटि पीडा पर—गूदा २ तोला मे मधु और सोठ चूर्ण मिला नित्य एक वार सेवन कराते हैं।

मधुमेह मे—गूदे को सत गिलोय के साथ देते है।

प्लीहा पर—गूदे पर सुहागा बुरकाकर खिलाते हैं।

अनियमित मासिकधर्म पर—गूदे पर पलाश-क्षार बुरक कर खिलाते है। जीर्ण ज्वर, शारीरिक ऊष्मा एव अशुद्ध रासायनिक औषधि सेवनजन्य कुत्सित विकारो को दूर करने के लिये इसके पत्ते को भूभल मे भूनकर अन्दर का गूदा निकाल ४ मासा से १ तोला तक की मात्रा में जीरा चूर्ण ५ रत्ती व मिर्च चूर्ण २ रत्ती मिला सेवन कराते हैं। अथवा—उक्त गूदे मे सेंधानमक, काला नमक ½-½ माशा, किंचित् हल्दी चूर्ण, मिर्च चूर्ण व थोडी भुनी हीग का चूर्ण मिला प्रात निराहार इसे खाकर यदि चाय, काफी आदि पीना हो तो आध घटे वाद पीवे। इस प्रकार ७-२१ दिन तक इसके सेवन से पूर्ण लाभ होता है।

रक्तार्श पर—गूदे पर थोडा गेरू महीन पीस कर बुरक कर अर्श स्थान पर बाधने से जलन, पीड़ा दूर होती है।

(९) अपरस (शरीर मे रस की न्यूनता एव रक्त मे पित्त प्रवाह की विशेषता से हाथ की हथेलियो तथा पग की पगतलियो पर चिटकन, जलन, खुजली आदि एव नाखून मोटे पड जाते हैं) पर—इसका गूदा १ तोला थोडा सेंधा नमक मिला प्रात साय सेवन करें। साथ ही गूदे के लुआब मे कच्ची फिटकरी मिलाकर मर्दन करे। लगभग १ मास तक इस उपचार के करने से पूर्ण लाभ होता है। रसीले, चटपटे एव गर्म पदार्थों का सेवन न करें। [भा गृ चि.]

(१०) जिह्वास्तभ (पित्त प्रकोप से जीभ का रस शुष्क हो जाने एवं वात के शैथिल्य से जीभ जकड सी जाती है) पर—गूदे के साथ सेंधा नमक मिला पकावे, फिर मसल कर कपडे मे रख रस निचोड कर कुछ गरम कर दिन मे २-४ वार गण्डूष करावे। गण्डूष या कुल्लो के वाद कपूर, मिर्च, अकरकरा व सेंधानमक पीस कर जीभ पर मलना चाहिये।

(११) मूत्र दाह पर—गूदा १ सेर, कलमी सोरा २० तोला तथा यवक्षार ५ तोला तीनो को साफ मृत्पात्र मे भर मुख मुद्रा कर धूप मे रख दे। कुछ समय बाद पात्र के ऊपर चारो ओर श्वेत क्षार सा जम जावेगा तथा अन्दर भी जलांश शुष्क होकर क्षार जमा हुआ मिलेगा। दोनो को लेकर पीस कर शीशी मे भर रक्खें। ३ मासा तक नारियल के पानी या साधारण जल के साथ सेवन से पेशाब की जलन दूर हो जाती है।
[जनायुर्वेद]

[सर्वविवात नाशक एव बलवीर्य वर्धनार्थ विशिष्ट योगो मे—बाटी का प्रयोग देखें।

रस के प्रयोग—

ताजारस विरेचक, शीतल एव ज्वर आदि नाशक है। इसकी अच्छी दलदार पत्तियो को भूभल मे भूनकर तथा मसल कूटकर रस निकाला जाता है। इस दशा मे थोडा गुड मिला छानकर बालक के पैदा होते ही उसे थोडा थोडा एक दो दिन पिलाने से उदर साफ होकर गर्भ के विकार दूर हो जाते हैं। ताजे रस को नेत्रा-भिष्यन्द, विद्रधि, अर्श एव अग्निदग्धव्रण पर थोडी हल्दी मिला लेप करने से दाह कम होकर शाति प्राप्त होती है। रस को थोडी हल्दी चूर्ण व सेंधा नमक मिला कोष्ठबद्धता, मदाग्नि एव तज्जन्य कास, मासिकधर्म की रुकावट, पाडु रोग, गुल्म आदि विकारो पर सेवन कराते हैं, छोटे बच्चो तथा स्त्रियो के लिये यह प्रयोग

विशेष उपयोगी है।

कामला मे—इस रस के पिलाते रहने से पित्त-नलिका का अवरोध दूर होकर लाभ होता है, नेत्रो का पीलापन एव मलावरोध दूर होता है। इस रस का रोगी को नस्य कराने से नाक मे से पीला स्राव होकर लाभ होता है। रक्त मे मिला हुआ पित्त दूर हो जाता है। [भा. प्र]

(१२) गुल्म पर—रस पिलाते रहने या इसका शाक या अचार खिलाते रहने से १-२ मास मे उदर या आत्र की गाठ गल जाती है। किन्तु शक्ति से अधिक मात्रा दीर्घकाल तक देने से आत्र शोथ, मरोड, मल में रक्त जाना आदि कष्टो की सभावना है। [गा औ र]

(१३) ज्वर मे—इसके सेवन से मल मूत्र साफ होकर लाभ होता है। कई बार कुनाईन सेवन से वृक्क दूपित होकर मूत्रावरोध होता है, उस दशा मे भी रस का सेवन लाभकारी है।

वि योगो मे कुमारी-स्फटिका योग देखे।

(१४) अग्निदग्ध व्रण पर—शीघ्र ही इसके रस को वस्त्र मे भिगोकर रखने से दाह शात होकर फफोला नही उठने पाता।

(१५) बालको के जुखाम और कास पर—यह रस मधु मिलाकर देते हैं।

(१६) बालक के डिब्बा रोग पर—रस में थोडा एलुवा और बबूल गोद मिला घोट पेट पर लेप करें।

(१७) कास पर—रस मे अडूसा का रस, मधु तथा छोटी पीपल और लौंग का चूर्ण मिला चटाते हैं।

(१८) उपदश के व्रणो. पर—रस में जीरा को पीस लेप करने से पीडा, दाह एव पाक की शांति होती है।

(१९) सिर पीडा पर—इसके रस या गूदे में थोडा दारुहल्दी का चूर्ण मिला गरम कर पीडा स्थल पर बाधने से कफज एव वातज शिर शूल शीघ्र दूर होता है।

(२०) नेत्र विकारो पर—इसके १ तोला रस में १ रत्ती फिटकडी मिला काच की शीशी में १२ घटे बाद छान कर दूसरी शीशी मे भर रक्खें। नित्य २-३ बूद नेत्रो मे डाला करे। शोथ, कुकरे, लालिमा, धुंध आदि विकार नष्ट होते हैं। समाप्त होने पर फिर ताजा बना लें।

अथवा—एक पाव रस में काला सुरमा १ तोला डाल कर पकावें। रस समाप्त हो जाने पर उतार लें। तथा सुरमे को महीन पीस कर रखले। सलाई से नित्य प्रात. साय आखो में आजने से प्राय समस्त नेत्र विकार दूर होते हैं। [ख. गु सु]

(२१) उदर रोगो पर—बोतलो मे १ पाव रस और १२ तोले सेंधानमक महीन पीस कर डाल दें, धूप मे रख दें। तीसरे दिन उसमे १ पाव अदरख का रस तथा नौसादर, भुना हुआ सुहागा १-१ तोले चूर्ण कर मिला दें और खूब हिला दें। मात्रा ३ माशे तक पीने से उदरशूल, कोष्ठबद्धता आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं। —ख० गु० सु०

तत्काल निकाला हुआ कुमारी का स्वरस २ तोले मे आधे नीबू का रस व मधु १ तोला मे मिला प्रात सेवन करने से सर्व प्रकार के उदर रोग दूर होते है।

आगे विशिष्ट योगो मे 'कुमारी-यवानी' का योग देखिये।

मूल या कन्द—

(२२) वीर्यविकार पर—इसके ताजे क्षुप की जडों के ऊपरी छिलको को निकाल डालें तथा अन्दर के गूदे के टुकडे कर छायाशुष्क कर महीन चूर्ण बना लें। मात्रा ३ माशा प्रतिदिन प्रात धारोष्ण दूध के साथ सेवन करते रहने से वीर्य की क्षीणता, स्वप्नदोप, शीघ्र-स्खलन, नपुसकता आदि विकार दूर होते हैं। लाल मिर्च, तैल, खटाई, गुड आदि से परहेज रक्खें। घृत, दूध तथा पौष्टिक वस्तु का सेवन करें। —धन्वन्तरि वर्ष ३० अ. ७

(२३) विषम ज्वर पर—मूल १ तोले पीसकर सुखोष्ण जल मे मिला छानकर पिलाने से वमन होकर जीर्ण विषम ज्वर मे लाभ होता है। जीर्ण ज्वर, क्षय, कासादि नाशक 'कुमारी पाक' देखिये।

(२४) स्तनशोथ पर—जड को कुचल कर थोडे जल मे महीन पीस हल्दी मिला गरम कर दिन मे २-३ बार इसकी मोटी लुगदी बाधा करें तथा रुग्णा को १-२ रत्ती कपूर दूध मे मिला पिलावें। यदि किसी चोट आदि के कारण स्तन ग्रन्थि हो जाय तो इसकी जड या पत्ते के गूदे मे हल्दी मिला पुल्टिस बनाकर बाधने से गाठ बिखर जाती है।

(२५) क्षतान्तर्गत् कृमिनाशार्थ—जड को गोमूत्र मे पीसकर दिन मे २-३ बार लगावें।

कामला पर—कंद के रस में घृत मिला नस्य देते हैं।

कुमारी सार (एलुवा या मुसब्बर)—

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदन, आर्त्तवजनन एव कृमिघ्न है। अल्प मात्रा मे दीपन, पाचन, यकृत्-वलवर्धक है। इसका प्रभाव बृहदान्त्र मे भी विशेष होता है जिससे गर्भाशय, गुदा एवं जननेन्द्रियो को अधिक उत्तेजना प्राप्त होती है। स्त्रियो मे दुग्ध व रेचनी शक्ति की वृद्धि होती है। सद्योजात शिशु को मधु के साथ घिसकर इसे थोडा थोडा (चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक) चटाने से गर्भ मल शीघ्र ही बाहर निकल जाता है। वृद्धो की दुर्बलता एव कोष्ठवद्धता पर इसका सेवन लाभकारी है। अर्श रोगी के आमयुक्त रक्तस्राव मे भी इससे लाभ होता है। अधिक मात्रा (२-३ रत्ती) में यह मरोड के साथ १०-१२ घन्टो मे विरेचनकारी तथा आर्त्तवस्रावकारी होता है। बच्चो के नाभि प्रदेश पर इसे रेंडी तैल के साथ मिला धीरे धीरे मर्दन करने से उसका कोठा साफ हो जाता है। पानी के साथ इसका प्रलेप चर्मविकारनाशक है।

अन्य अग्निदीपक औषधियो के साथ इसका सेवन जीर्ण अग्निमाद्य, कोष्ठवद्धता, गुल्म, कृमिशूल, आध्मान एवं वातज उपद्रवो को दूर करता है। किन्तु ध्यान रहे यह उष्ण एव भेदक होने से इसे गर्भिणी स्त्री को नही देना चाहिये। वैसे तो यह नष्टार्त्तव, अनार्त्तव, मासिक धर्म की अनियमितता, हिस्टीरिया आदि स्त्री रोगो के लिये उत्तम लाभदायक है। विशिष्ट योगो मे देखिये 'कन्यालोहादि वटी'।

ग्वारपाठा के फूल या फलियां—

मधुर, गुरु, वात, पित्त और कृमिनाशक हैं। इन पुष्पो को या फलियों को पोस्त के डोडो के साथ पानी में घोट पीसकर २-२ रत्ती की गोलिया बना नित्य १-१ गोली पानी से देते हैं। इससे ऋतुस्राव नियमित होता है।

ग्वारपाठे का क्षार—

इसके क्षुपो को काट काट कर कुचल कर कडी धूप मे शुष्क होने के लिये रखते है। जब वे कुछ शुष्क हो जाते हैं तब उन्हे जलाकर क्षार निर्माण विधि से क्षार बनाते हैं। यह क्षार बहुत अल्प मात्रा मे निकलता है। इसे तरल कर इजेक्शन ट्यूब मे भर इसका इंजेक्शन दिया जाता है। यह शीघ्र रक्तशोधक, आर्त्तवनियामक होते हैं।

नोट—मात्रा—पत्र स्वरस १-२ तोले, एलुवा १-२ रत्ती, निम्न दशा में इसका सेवन हानिकारक होता है—

जिसकी आन्त्र में उग्रता हो, आन्त्रशोथ हो, जिसे पहले पेचिश हो चुकी हो, जीर्ण अर्शरोगी जिसके मस्से फूले हुए हों, शरीर अत्यन्त निर्बल हो, जो स्त्री गर्भवती हो या दुग्ध पिलाती हो, छोटे बच्चों वाली हो।

इसका या एलुवा प्रधान औषधियों का सेवन दीर्घकाल तक नहीं करना चाहिये अन्यथा पेचिश होगी तथा अर्श रोगी का अर्श और भी कष्टदायक हो जावेगा।

इसके हानिनिवारणार्थ—कतीरा और गुलाब पुष्पों का सेवन कराते है।

विशिष्ट योग—

(१) कुमार्यासव—ग्वारपाठे का रस १३ सेर तथा हरड १। सेर लेकर प्रथम हरड को १३ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ कर छान लें। फिर इसमें उक्त रस तथा गुड ५ सेर मिला अमृतबान मे भर शहद ३। सेर, धाय के फूल ६४ तोले, लौंग, जायफल, शीतल मिर्च, जटामासी, चव्य, चित्रक, जावित्री, काकडासिंगी, बहेडे की छाल व पुष्कर मूल ४-४ तोला जौकुट कर मिला दें। मुख मुद्रा कर २० दिन बन्द रक्खें। पक्व होने पर परीक्षण कर छान लें। मात्रा १। से २॥ तोले तक सम-भाग जल मिला भोजन के बाद लिया करें। यह आसव मासिक धर्म विकृति, गुल्म, रक्त गुल्म, प्लीहावृद्धि, कास, श्वास, उदर रोग, अर्श, मलावरोध, उदर वात शूल एव अग्निमाद्य को दूर कर पाचनशक्ति को बढ़ाता है। यह बालक, युवा, वृद्ध तथा स्त्रियो के लिये उपकारक है।

—गावो मे औ र

यकृत विकारनाशक एक सरल आसव—ग्वारपाठे का रस २ भाग तथा मधु १ भाग दोनो चीनी मिट्टी के पात्र मे मुख मुद्राकर ७ दिन धूप मे रक्खें। फिर छानकर १ से २ तोले की मात्रा मे सेवन करने से यकृत विकार दूर होकर वह सबल होता है, मल वात की ठीक ठीक प्रवृत्ति होती है। बडी मात्रा मे विरेचक है। अथवा—

इसका रस व मधु २-२ सेर पात्र मे भर मुख मुद्राकर रक्खें। १ मास बाद मोटे वस्त्र मे अच्छी तरह ३-४ बार छान कर बोतलो मे भर कार्क खूब मजबूत लगा दें (कार्को पर चपडा या मोम लगादें)। अब यह जैसे जैसे पुराना होगा तैसे तैसे इसका रग बदलेगा, साथ ही साथ इसमे तेजी एव विशेष लाभप्रद होगा। जब यह सुर्खी माइल स्याह हो जाय तब कार्य मे लावें। मात्रा ६ माशा से २ तोले तक। ज्वर पर एक ही मात्रा मे ज्वर कम होता है, दस्त साफ होता है। यह रक्त वृद्धि व रक्तशुद्धि कर शक्ति बढाता है, जीर्णज्वर नाशक, कष्टार्त्तवनाशक है। मासिक धर्म कष्ट से होता हो तो प्रथम दालचीनी चूर्ण ३ माशा मधु से चाटकर ऊपर से इसे बलानुसार पिलावें।

—वैद्य श्रीरामस्वरूप जी, उखलाना (अलीगढ)

कुमार्यासव तथा अरिष्ट के २१ प्रयोग हमारे वृहद् आसवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

(२) कुमारी पाक (अम्लपित्तनाशक, धातुशुद्धि कारक)—कुमारी का गूदा १ सेर को ४ सेर दूध मे पकावें। खोया सा हो जाने पर उसे आध सेर घृत मे भून इलायची, लौंग, चीनिया गोद, सोठ, समुद्र शोष के बीज, छुहारा, जायफल, वशलोचन, सालममिश्री, अकरकरा, अजवायन व खुरासानी अजवायन १-१ तोले चूर्ण कर मिलावें। बादाम गिरी १ तोला तथा ३ माशे कस्तूरी खूब महीन कर मिला दें। फिर २ सेर खाड की चाशनी मे १ तोला केशर अच्छी तरह खरलकर तथा उक्त सब मिश्रण मिला पाक जमा दें। १ तोला तक सेवन से अम्लपित्त विकार दूर हो धातुशुद्धि एव पुष्टता प्राप्त होती है। घृतकुमारी पाक के उतमोत्तम प्रयोग हमारे 'बृहत्पाक-सग्रह' मे देखिये।

(३) कुमारी घृत—कुमारी का रस २ सेर, गोघृत ८ सेर (गोघृत के अभाव मे भैंस का घृत लेवें), जल ३२ सेर तथा सोठ, मिर्च पीपल तीनो समभाग कुमारी रस मे पिसा हुआ कल्क ४० तोला सबको एकत्र मिला मदाग्नि पर घृत सिद्ध करलें। मात्रा—६ माशे से १ तोला तक भोजन के प्रथम ग्रास मे प्रात साय सेवन से रक्तशोधन, उदरशोधन, त्वचारोग, कफ, कृमि, प्लीहा-वृद्धि, मधुमेह, अग्निमाद्य, मासिकधर्म विकृति, खुजली दाद, व्यूची, कुष्ठ, वातरक्त, जीर्णज्वर, अर्श, कास, श्वास, अपस्मार आदि रोगो मे लाभ होता है। (गा औ र.)

अथवा—कुमारी का कल्क १ पाव, घृत १ सेर तथा कुमारी रस ४ सेर लेकर घृत सिद्ध कर ले। मात्रा—१ से २ तोला प्रात साय सेवन से वात एव कफ के विकार तथा उदर के रोग नष्ट होते हैं।

नोट—ध्यान रहे कुमारी के विशिष्ट प्रयोग, विशेषत घृत, पाक, मोदक, चूर्ण आदि वैसे सब ऋतुओं में सेवनीय है, तथापि शीतऋतु और वर्षा मे अधिक लाभकारी हैं।

(४) उक्त घृत के योग से कुमारी मोदक इस प्रकार बनालें—हाथ का पिसा हुआ गेंहूँ का आटा आध सेर को उक्त घृत १॥ पाव मे आग पर भून ले। फिर उसमे सोठ ५ तोला, तगर, इलायची (बडा) के दाने, चिरोजी, बादाम, किसमिस, पिस्ता २-२ तोला महीन कतर कर मिलाकर २-२ तोला के मोदक बनालें। १ या २ मोदक प्रात साय दूध से लेवे। यह पौष्टिक रसायन तथा वात रोग हर है।

उक्त कुमारी मोदक को कुमारी घृत के अभाव मे इस प्रकार बना लेना और भी उत्तम है—हाथ की चक्की मे पिसा हुआ मोटा छना गेहूँ का आटा १ सेर लेकर पानी के स्थान मे कुमारी रस मे मांड ले, माडते समय ही पाव भर घृत आटे मे मिलाले। फिर इसकी छोटी छोटी बाटिया बना घृतमे अच्छी तरह सेक कर उतार ले। कुछ ठडी होने पर छान कर चूर्ण बना समान भाग गोघृत तथा घृत मे भुनी ५ तोला, सोठ का चूर्ण तथा तगर, इलायची आदि उक्त द्रव्यो को ४-४ तोला मिला मोदक बनालो। ये अतिस्वादिष्ट मोदक प्रात सेवन करें ये मोदक बल वीर्य वर्धक, तृप्तिदायक, पाचन, शक्तिबर्धक एवं उदर रोग नाशक है।

केवल बाटिया बनानी हो तो इस प्रकार बना ले—मोटे आटे को कुमारी रस मे माडकर माडते समय उसमे कालीमिर्च चूर्ण और घृत अन्दाज से मिला बाटिया बना निर्धूम कडो की आग मे अच्छी प्रकार सेंक ले। इसे किंचित शक्कर मिला चूरमा बनाकर खावें या साग,

दाल से या वेंगन के भरते से सेवन करें। ये बलवर्धक, तर्पक एव अत्यत वातनाशक हैं।

मटरी—इस विधि से बनावें—मोटे आटे को कुमारी-स्वरस में माडते हुए उसमे अजवायन, सधानमक, भुनी हीग, मिर्च और सोठ का चूर्ण यथावश्यक मिला चकले पर मटरी बेल कर उसे सूजे से गोद गोद कर गोघृत मे सेक ले। ये अतिस्वादिष्ट, तर्पक, दस्त साफ-लाने वाली पाचन तथा रोगी को पथ्य रूप मे किसी भी दशा मे दी जा सकती है। (धन्वन्तरि वर्ष २८ अङ्क ५)

(५) गठिया (सधिवात) नाशक बाटी और माजून—ग्वारपाठे की एक अच्छी मोटी फाक लेकर ऊपर का छिलका व काटे साफ कर गूदे को थाली मे रख चाकू से बारीक करले। उस पर गेहूँ का आटा थोडा थोडा डालते जाय, और गू दते जाय, जब आटा बाटी बनने योग्य कडा हो जाय तब उसकी बाटी बना कडो की आग मे सेक ले। जब दाडिम की तरह बाटी फट जाय तब समझ लें कि बाटी पक कर तैयार होगई। फिर घृत ५-७ तोला और गुड या शक्कर के साथ बाटी का चूर्मा बनाकर ७ दिन तक खावें। इसके सेवन से चाहे जैसी गठिया हो अवश्य नष्ट होती है। प्रात उक्त बाटी का चूरमा ही ले, अन्य भोजन न करें। साय इच्छानुसार भोजन करे। तैल, दही, छाछ आदि वायुकारक चीजे नही ले। (स्वर्गीय श्री प गोवर्धन शर्मा छागाणी)

नोट—उक्त प्रकार से दो छटांक आटे की दो व टिया बनाकर किसी पात्र में शुद्ध घृत भरकर उसमें उन्हे फोड़ कर डुबादें। न्यूर खर हो जाने पर उन्हे निकाल कर थोड़े शक्कर के साथ या वैसे ही अच्छी तरह चबा कर खावें। ३ दिन, ७ दिन या अधिक दिन तक भी इन्हें केवल प्रात ही सेवन करें। इनके सेवन काल में गुड, तैल, खटाई, लालमिरच तथा स्त्री सग से बचे रहे। बाटिया प्रतिदिन ताजी बनाकर सेवन करें। यदि दो बाटिया न पचा सकें तो केवल १ छटाक आटे की एक ही बाटी बना कुछ दिन लें फिर बढा सकते है।

ये बाटियाँ बलवीर्यवर्धक, ज्वर के बाद की निर्बलता एव पाडु रोग मे अच्छा गुण करती है। स्त्री पुरुष, बालक सबको लाभकारी हैं।

(६) माजून-ग्वारपाठा—(गठिया नाशक)—इसका गूदा १ सेर लेकर कलईदार कढाई मे मंद आच पर १ सेर घृत मे अच्छी तरह भून ले, यहा तक की गूदा शुष्क होकर लाल हो जाय। फिर गूदे को निकाल अलग रख ले। फिर गेहूँ का आटा १ सेर घृत में भून ले तथा उसमे उक्त गूदे को मिलाकर खूब मले, और उसमे २ सेर खाड मिलाकर उतार लें।

इसे प्रात साय २ तोले से १० या २० तोले तक धीरे धीरे बढाते हुए सेवन करें। शीघ्र गठियावात मे लाभ होता है।

उक्त माजन मे गोले की तथा बादाम की गिरी, छुहारा, मुनक्का, किसमिश, पिस्ता ५-५ तोला, इलायची छोटी २ तोला, चादी के वर्क १०० नग, स्वर्णपत्र २५ अर्क गुलाब मे पीसकर मिलादें। नित्य यथोचित मात्रा में सेवन करे। गुड, तैल, लाल मिर्च, मैथुन आदि से बचते रहे। (ख गु सु)

(७) कुमारी तैल—ग्वारपाठे का रस ६४ तोला, धतूरे का स्वरस ६४ तोला, भागरे का रस १२८ तोला, दूध २५६ तोला, तिल तैल ६४ तोला। कल्क द्रव्य—मुलैठी, खस, मजीठ, नागर मोथा, नखी[1], कपूर, भागरा, कूठ, इलायची, जीवन्ती (डोडीशाक), पद्माक, काला भागरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजपात, वायविडग, सोया, असगध, रेडी मूल, अशोक छाल, गोला की गिरी १-१ तोला। यथाविधि तैल सिद्धकर छानकर उत्तम धूपित पात्र मे सुरक्षित रखें। ३ दिन बाद काम मे लावें। इसकी मालिश करने व सिर मे मलने से अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालु, नासा, अक्षिपात, शोष, मूर्च्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता एव कर्ण वेदना दूर होती है। (भा प्र)

(८) कन्यालोहादि वटी—एलुवा १०तोला, कसीस ७॥ तोला, दालचीनी, इलायची (छोटी) बीज, सौंठ ५-५ तोला, तथा गुलकन्द २० तोला इन सबको मिला

---

[1] नख या नखी—यह एक समुद्री प्राणी के मुख का नख सदृश आवरण है। यह गहरे भूरे रङ्ग का तथा अनेक पर्त्तों का बना होता है। यह है तो दुर्गन्धित, किन्तु तैल के साथ पकाने पर तैल को सुगन्धित कर देता है। यह समुद्र-वर्ती प्रदेशों में पाया जाता है। (द्र गु वि)

खूब खरलकर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले । १ से ३ गोली तक दिन मे २ वार जल के साथ दें । यह प्रयोग अतिसौम्य है, स्त्रियो के अतिरजस्राव, रजावरोध, कष्टार्त्तव, नष्टार्त्तव, अनियमित रजस्राव आदि विकारो को दूर करता है । मासिकधर्म आने पर १० दिन औषधि वन्द रख पुन प्रारभ करें । कई युवतियो को मासिकधर्म आने के प्रारम्भकाल से ही उदर मे पीडा होती है । रजस्राव शुद्ध नही होता, सिर पीडा, व्याकुलता, अरुचि, अग्निमाद्य, मलावरोध आदि लक्षण होते है । ऐसी दशा मे ४-६ मास तक इसका सेवन कराने पर रजस्राव नियमित होने लगता है । छोटी या वडी आयु वाली सब स्त्रियो को इसका सेवन कराया जाता है ।

ध्यान रहे यदि रुग्ण को पाडुता आगई हो, रक्त की न्यूनता हो तो प्रथम रक्तवर्धक औषधि देवे, फिर मासिक की शुद्धि न हो तो इसका प्रयोग करें ।

इसके सेवन काल मे—द्विदल धान्य, मिठाई एव गरिष्ट पदार्थों का सेवन नही करना चाहिये या कम करे । (र सि प्र सग्रह)

(८) हब्बातकार—उत्तम एलुवा ४ तोला ८ माशा, सुहागा भुना हुआ ७ माशा, खुरासानी अजवायन ८॥ माशे और कालीमिर्च ३॥ तोले सबको कूटपीसकर ग्वारपाठा के रस मे घोटकर चना जैसी गोलिया बना ले । २ गोली जल मे सोते समय लेवे । यह दीपन, पाचन, क्षुधाजनक है ।कब्ज तथा आध्मान, आमाशय के भारीपन को दूर करता है । —यू० सि० स०

(९) कुमारी-यवानी (अजवायन)—ग्वारपाठे का रस ३ सेर, अजवायन १॥ सेर और सेंधानमक १ पाव चूर्ण कर चीना मिट्टी के पात्र मे तीनो एकत्र मिला छायाशुष्क करें, दिन मे कई वार हिला दिया करें । अच्छी तरह सूख जाने पर चूर्ण कर रख ले । अथवा—

अजवायन को इसके रस की तथा नीवू रस की ७-७ भावनायें देकर शुष्क कर चूर्ण कर ले । मात्रा ३ से ६ माशे तक देने से अजीर्ण, आध्मान, मन्दाग्नि, उदरशूल, क्षुधाभाव एव उदर के सव विकार दूर होते है ।

(१०) अर्क पाचक—ग्वारपाठे के अच्छे मोटे दलदार पत्तो को बीच मे लम्बाई मे २-२ टुकडे चीर लें । उन पर पृथक पृथक एक पर नौसादर चूर्ण और एक पर मिश्री चूर्ण बुरक कर २-२ टुकडों को परस्पर मिला कर ऊपर से तागा लपेट कर नीचे चीना मिट्टी की तश्तरी रख पत्तो को धूप मे लटका दें । जब सब अर्क टपक कर तश्तरियो मे आ जाय तब शीशी मे भर लें । मात्रा १ से ३ माशे तक वताशा में या थोडे गरम जल से देवें । यह आहार को शीघ्र पचा देता है ।

(११) अचार ग्वारपाठा—इसके गूदे को छोटे छोटे टुकडे ५ सेर में *आध सेर नमक मिला चीना मिट्टी की* भरनी मे भर कर मुख वन्द कर २ दिन धूप मे रक्खें । बीच बीच मे खूब हिला दिया करें । फिर उसमे धनिया, हल्दी, सोठ, श्वेत जीरा, स्याह जीरा चूर्ण कर १०-१० तोला, कालीमिर्च १२ तोले, हीग भुनी ५ तोले, छोटी पीपल ७॥ तोले, अजवायन २० तोले, दालचीनी, लौंग, सुहागा, अकरकरा, इलायची सबका महीन चूर्ण ५-५ तोले, फिर छोटी हरड और राई १५-१५ तोले पीसकर मिला कर एक दिन धूप मे रक्खें । यह ६ माशा से २ तोले तक सेवन से समस्त उदररोग, वात कफविकार दूर होते हैं । अथवा—

इसके गूदे के टुकडे १ सेर, हरड, बहेडा, पीपल, सोठ, कालीमिर्च, अजवायन २-२ तोले, नमक साभर, नमक सेवा और देशी समुद्र नमक १॥-१॥ तोले चूर्ण कर सबको चीना मिट्टी के पात्र मे मुख मुद्रा कर १ माह के वाद सेवन करें । यह अचार कफज रोगो को दूर करता है तथा भोजन को शीघ्र पचाता है ।

कुमारी लवण—पत्तो का गूदा निकाल लेने के वाद जो छिलका शेष रहता है, उसमे समभाग नमक मिला मटकी मे भर मुख मुद्रा कर उपलो के ढेर मे रख जला दें । कोयले जैसा हो जाने पर महीन पीस शीशी मे भर रखें । ३ से ६ माशा तक तक्र या जल से सेवन करने से प्लीहा, यकृत् वृद्धि, आध्मान, शूल, गुल्म, अजीर्ण आदि मे लाभ करता है ।

(१२) ग्वारपाठा की रोटी और शाक—इसके गूदे को थोडा नमक और हल्दी चूर्ण लगा कर पानी से २-३ वार धो डालें । फिर गेहू के आटे के साथ मिलाकर थोडा नमक और अजवायन पीसकर मिला दे तथा पानी

से गूद कर रोटी बनाकर सेंक लें। घृत से चुपड कर कुछ दिन (१५ दिन से १ माह तक) ऐसी रोटियां मेथी, बथुआ, मूली या पालक की शाक के साथ या वैसे ही खाने से मन्दाग्नि, पेट मे गैस का बनना, अपानवात की विकृति, प्लीहा या यकृत् की वृद्धि मे लाभ होता है।

उक्त गूदे मे मसाला डालकर घी से छौंक कर कुछ देर पकाने के बाद उत्तम शाक बन जाता है। इसे सादी रोटी के साथ खाने से भी उक्त विकारो की शान्ति हो जाती है।

(१३) हलुवा ग्वारपाठा—कढाई मे ५ तोले तक घृत डालकर उसमे ५ तोले गेहू का आटा मिला खूब सेंकने के बाद पानी के स्थान पर इसका गूदा २० तोले तक डाल दें, थोड़ा पानी भी डाल दे। जब पककर गाढा हो जाय तब गुड या शक्कर १० तोला या १५ तोला मिलाकर १५ मिनट और पकालें। यह हलुवा भी उक्त विकारो को दूर करता है।

—स्वास्थ्य वर्ष ६, अङ्क ६

ग्वारपाठा लाल [Aloe Rupescens]

इसके पौधे बगाल और सीमान्त प्रदेश मे होते हैं। नारङ्गी तथा रक्त वर्ण के फूल लगते हैं। पत्तो के नीचे का हिस्सा बैंगनी रग का होता है।

गुणधर्म और प्रयोग—

यह कड़ुवा, पाचक, किंचित उष्ण तथा उदरशूल, मन्दाग्नि, यकृत् व प्लीहा रोगो मे लाभदायक है।

इसके गूदे का हलुवा बनाकर खाने से अर्श मे लाभ होता है। इसे स्प्रिट मे गलाकर लेप करने से बाल काले पड जाते हैं। गुलाब के इत्र में मिलाकर इसे नेत्रो मे लगाने से नेत्र विकार दूर होते हैं। कब्जी पर इसे निसोत के साथ देते हैं। बच्चों के आन्त्रकृमि नाशार्थ यह एक उत्तम वस्तु है। इसके ताजे गूदे में हल्दी मिला कर गरम करके बाधने से चोट की सूजन दूर होती है। इसके रस को गाढा कर हल्दी मिला गरम कर बच्चो के पेट पर लेप करने से शूल व फेफडे सम्बन्धी रोग मिटते हैं। इसके रस से बनाये हुये एलुवा मे थोड़ा शुद्ध गन्धक मिला गोली बनाकर देने से अर्श की पीडा दूर होती है। सुजाक पर इसके गाढे किये हुये रस मे शक्कर मिलाकर देते हैं। गठिया की पीडा पर इसके कोमल गूदे को खाने से लाभ होता है। इसके गूदे पर रसौत और हल्दी बुरक कर गरम कर बाधने से बदगाठ बिखर जाती है। इसके एक ओर का छिलका दूर कर आग पर रख कर उस पर थोडी अफीम और हल्दी बुरक कर गरम होने पर रस निकाल कर पीने से चौथिया ज्वर छूट जाता है।

—व० च०

घनसर (Croton Oblongifolius)

एरण्डादि कुल (Euphorbiacea) के जैपाल या जमालगोटा की ही जाति विशेष, इसके वृक्ष मध्यम आकार के, छाल चिकनी खाकी रग की, पत्र—शाखाओ पर दलबद्ध, आम्रपत्र जैसे, किंतु किनारे कुछ कटे हुए से, ५ से १० इच लम्बे, उग्रगध युक्त होते हैं। पुष्प—हरिताभ पीत वर्ण के मजरी में आते हैं। मजरी पकने पर रोमश हो जाती है। फल—गोलाकार छोटे छोटे त्रिकोणयुक्त होते हैं, जिनमें जैपाल जैसे ही किंतु कुछ छोटे बीज होते हैं।

ये वृक्ष भारत मे बगाल, बिहार, दक्षिण कोकण मे बहुत पाये जाते हैं। अवध की तराई मे भी कुछ होते हैं एव बर्मा और सीलोन मे भी विशेषता से होते हैं।

इसके पत्र, छाल, बीज और मूल औषधि मे लेवें।

नाम—

सं०—भूतंकुशम, नागदन्ती।
हि०—घनसर, हकुम, चुका। गु०—घनसर।
म०—घणसरी, गांनसुरी। बं०—बरागाछ।
ले०—क्रोटन आबलागिफोलियस।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसकी छाल और मूल धातुपरिवर्तक, मृदुरेचक एव

घनसर

CROTON OBLONGIFOLIUS ROXB.
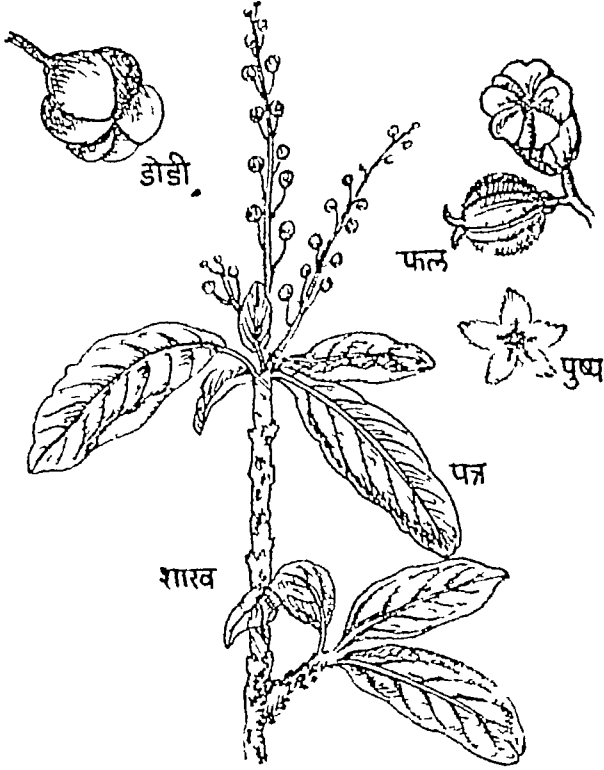
बीज विरेचक है। छाल का फाट या क्वाथ जीर्ण यकृत-वृद्धि तथा परिवर्त्तित ज्वर पर देते हैं। इसमे शोथहर धर्म की विशेपता है। यह सर्व प्रकार की अन्दर या बाहर की सूजन को दूर करता है। निर्गुण्डी और कटकरंज को बीज के साथ प्रयोग करने से विशेप उत्तम लाभ होता है। नूतन ज्वर जो पित्त प्रकोप से हो एव जिसमें कुछ शोथ हो, उसमे यकृत के उत्तेजनार्थ एव शोथ निवारणार्थ नौसादर के साथ देने से उत्तम लाभ होता है। मोच, रगड एव सन्धिवात के शोथ पर इसका प्रलेप करते हैं। यह सर्पदश पर भी लाभकारी मानी जाती है।

मात्रा—छाल का फाट या पत्रो का क्वाथ (१ भाग मे २० भाग जल) की मात्रा २ तोले तक। चूर्ण १॥ माशे से ३ माशे तक, यथोचित अनुपान के साथ इसकी अधिक मात्रा देने पर भी अधिक दस्तों के अतिरिक्त कोई विशेप हानि नही होती। यह जंपाल जंसा मारक नही है।

धामुर [Panicum Antidotale]

यव कुल (Gramineae) की यह घास, वरू के जैसी २-४ हाथ तक ऊंची, तने पर थोडी थोडी दूर पर ग्रंथि युक्त होती है। पत्र—पत्र लम्बे व सकरे, एव पुष्प मजरी बहुत पतली, इसे जानवर खाते हैं तो उन्हें नशा आता है।

यह गगा के उत्तरी मैदानो एव पजाब, कच्छ आदि प्रान्तो के मैदानो मे बहुत होती है।

नाम—

हि०--घामुर, घमरूर, धामोर, घिरि, मगरूर।

गु०--घमघास, दनघास। ले०--पेनिकम एन्टिडोटेल।

गुण धर्म और प्रयोग—

चेचक मे इसकी धूनी देने से रोगी को शाति प्राप्त होती है। इसका धुआ कृमिनाशक एव सक्रामक रोगो को दूर करता है। कंठगत शोथ एव व्रण मे इसका धूम्रपान करते हैं। जानवरो के नेत्रस्राव मे इसके तने को छील कर पानी मे घिसकर नेत्रो मे लगाते हैं। इससे फूली भी कट जाती है। व्रणो पर इसके धुंवे से लाभ होता है।

घिया तोरई (Luffa Aegyptiacea)

शाकवर्ग एव कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की तरोई की ही एक जाति विशेप इसकी पराश्रयी लता होती है। तरोई, कडवी तरोई और इसके लता पत्रादि एक समान ही होते हैं। पत्र—४-५ इंच के व्यास मे गोलाकार पचकोणाकार, पुष्प पीत वर्ण के, फल १ फुट से कुछ कम लम्बे, गोलाकार श्वेताभ हरितवर्ण के चिकने होते हैं, खर्रा तरोई जैसे खर्रे इस पर नही होते। यह प्राय सर्वत्र खेत, खडहर आदि मे भी बोई जाती हैं।

इसमे भी दो प्रकार है–एक बडी और दूसरी झुमकेदार। बडी के वृन्त मे केवल एक ही पुष्प एवं एक ही लम्बा फल आता है, तथा झुमकेदार मे अधिक पुष्प एवं अधिक फल झुमको मे कुछ कम लम्बे लगते है। बडी के फल की शाक अधिक स्वादिष्ट होती है। इसकी पकोडी बनाई जाती है।

नाम—

सं.–महाकोशातकी, हस्तिघोषा।
हि.–घियातरोई, नेनुआ, गलका तोरई, घेवरा।
म.—घोसाळें, घरोशी गिलकें, घड-घोसडी।
गु.—गल्का, तुरिया, गोसली, घीसोड़ा।
बं.—हस्तिघोषा, धुन्दुल।
अं.–स्मूथ लूफा (Smooth loofa)
ले.–लुफा इजिप्टियासी, लुफा पेंटेन्ड्रा (L Pentendra), लु. सिलिंड्रिका (L Cylindrica), लु. पटोल (L. Patola) लु. रिस्केडा (L Riscada)

गुण धर्म और प्रयोग–

बडी घियातरोई–शीतल, मधुर, वातकर, दीपक, कफकर, पित्तप्रकोपक तथा श्वास, कास, ज्वर, कृमि आदि नाशक है।

झुमकेदार—शीतल, हृद्य, विपाक मे कटु, तिक्त, तथा पित्त, विष, कास, ज्वर एवं वातशामक है।

उक्त दोनो–मृदुरेचक, रक्तपित्तनाशक, व्रण पूरक एवं कुछ पौष्टिक हैं। इनके बीज वामक एवं विरेचक है।

(१) बालको की छाती मे वेदना हो तो फलो को भूनकर रस निकाल कर १ माशा तक पिलाते हैं।

(२) शोथ पर–पत्र रस को गोमूत्र मे मिला गरम कर लेप करते हैं।

(३) बद गाठ पर–पत्र रस मे गुड, सिंदूर और थोडा चूना मिला गरम कर लेप करने से गाठ बैठ जाती है। अथवा–इसके फूलो की पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

(४) व्रण, उपदंश के व्रण चट्टे, आदि पर–इसका मरहम इस प्रकार बनाकर काम मे लावे–

इसके कोमल पत्तो को कूट पीस कर स्वरस लगभग १ सेर तक निकाल उसमे गोघृत (या बकरी या भेड के दूध का घृत) जितना जूना मिले उतना उत्तम आध सेर मिला कलईदार कढाई मे मंद आग पर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर उसमे शुद्ध मोम ५ तोला मिलावे। मोम अच्छी तरह घृत मे मिल जाने पर एक परात मे शीतल जल मे उसे छानते हुये छोड देवे। १-२ घंटे बाद जल पर जो जमा हुआ घृत मिले उसे निकाल कर मोटा वस्त्र चौघडी कर उस पर उसे डाल कर उस पर वैसा ही दूसरा वस्त्र रख हलके हाथो से धीरे धीरे दबावे, जिससे जलांश सब निकल जावेगा। फिर इस मरहम को डिब्बे मे भर रक्खें। इसे उक्त व्रणो पर लगाने से शीघ्र ही वे सुधर जाते हैं। (व गुणादर्श)

नोट—यह अधिक खाने से आध्मानकारक एवं शीत प्रकृति वालों के लिये अहितकर होती है। हानि निवारणार्थ इसमे गरम मसाला अधिक मिलाना चाहिये।

घुइयां (Colocasia Antiquorum)

शाकवर्ग एवं सूरण कुल (Araceae) के इस क्षुप के पत्र कमल पत्र जैसे गोल, किन्तु कुछ छोटे, जमीन पर फैले हुये तथा ऊपर को उठे हुये, जिनके डण्ठल १-३ फुट तक लम्बे होते हैं। इसके कन्द गोल होते हैं जिनमे लम्बे लम्बे गोल ५-७ कन्द सटे हुये होते हैं।•

भारत के उष्ण प्रदेशो मे यह बहुत बोया जाता है। श्वेत तथा कृष्ण भेद से इसके दो प्रकार हैं। श्वेत के पत्ते, डण्ठल आदि किंचित् श्वेताभ हरित वर्ण के तथा कृष्ण के पत्रादि गहरे बैंगनी रंग के होते हैं। इन दोनो के कंद, पत्र और डण्ठलो की शाक बनाई जाती है। किन्तु श्वेत घुइया के पत्र और डण्ठलो की ही शाक विशेषत बनाई जाती है। इसे दक्षिण मे धोपा कहते हैं, उधर कन्दो की शाक विशेष पसन्द नही की जाती। दक्षिण मे यह श्वेत प्रकार ही होता है। उत्तर भारत मे यह श्वेत प्रकार क्वचित् ही कही देखा जाता है। उत्तर

• इसके क्षुप में पुष्प हमने तो नहीं देखा है, किन्तु कुछ महानुभाव कहते है कि इसमे पुष्पों का गुच्छा नारंगी रंग का लम्बा और गोल आता है।

भारत मे कृष्ण प्रकार ही अधिक होता है, जिसके कन्द ही प्राय शाक के काम मे लाये जाते है। यह रतालू का ही एक भेद है। यह रतालू से लम्बी और पतली होती है। कन्दो की शाक चिकनी होती है, तैल मे तली हुई अत्यन्त रुचिकर होती है।

जगलो मे कही कही यह स्वय ही पैदा होती है। यह जगली घुइया कहाती है।

नाम—

सं०—आलुकी, आशुकचु।
हि०—घुइया, अरवी, अरुई, कारदा, कंद्रा, कचालु।
म०—अलू। गु०—अलवी। बं०—कच्चु, कोचू।
ले०—कोलोकेसिया एन्टिकोरम, अरम कोलोकेसिया (Arum Colocasia)

इसके पत्तो और डण्ठलो मे चूने के आक्सलेट (Oxalate of lime) की और कन्दो मे स्टार्च की अधिकता पाई जाती है।

गुण धर्म और प्रयोग—

स्निग्ध, गुरु, वल्य, स्तन्य, हृद्‌गत् कफनाशक, विष्टम्भकारक एव रक्तपित्तहर है।

श्वेत घुइया के पत्र डण्ठल—उत्तेजक, रक्तस्रावनिवारक हैं। रक्तवाहिनियो मे चोट लग जाने से या किसी भी कारण रक्तस्राव हो तो इसके कोमल पत्तो का एव डण्ठलो का रस लगाते और पिलाते हैं। इस रस को जख्म पर दाहयुक्त ग्रन्थियो पर लगाने से वे शीघ्र ही सुधर जाते है।

काली घुइया के पत्र या डण्ठलो का रस त्वचा पर लगाने से दाह होता है एव त्वचा लाल पड जाती है। इस रस को कर्ण पीडा पर कान मे डालते हैं, वस्तुत श्वेत के पत्र वृन्तो का रस ही कान मे डालना उचित होता है।

ग्रन्थिशोथ पर—काली घुइयां के पत्र एवं डण्डियों का रस नमक मिला कर लेप करने से सूजन बिखर जाती है। गज पर—काली घुइया के कन्द का रस शिर पर मर्दन करते रहने से केशों का गिरना बन्द होता है तथा नूतन केश आते हैं। बर्र, ततैया आदि के दंश पर—रस लगाते हैं। रक्तार्श पर—काली घुइया का रस पिलाते हैं। वातगुल्म पर—डण्ठल सहित पत्तो को वाष्प पर उबाल कर रस निचोड कर उसमें घृत मिला ३ दिन तक पिलाते हैं। पित्तप्रकोप पर—श्वेत घुइयां का पत्र रस जीरा चूर्ण मिला पिलाते हैं।

जगली घुइया—इसे मराठी में तेरी (अलू) कहते हैं।

उदर या आन्त्र के कृमि पर—इसके कन्द को जला कर राख में थोड़ा पानी मिला व छानकर पिलाते हैं। फोड़ा फूटने के लिये डण्ठल की राख मे तैल मिलाकर लेप करते हैं।

भगन्दर (Fistula) पर—श्री जा० शं० नाबाघ ने आरोग्य मन्दिर (वर्ष २१ अङ्क २) मे अपना अनुभव प्रकाशित किया है कि वे स्वय इस रोग से कई वर्षो से पीडित थे। उन्होंने एक मास तक अपने आहार मे इसका विशेष उपयोग किया था। इसके पत्तो की भुजिया बनाकर तथा डण्ठलो की शाक भात और रोटियो के साथ खाते थे। घृत का सेवन अधिक करते तथा दूध, चाय, काफी आदि पेय पदार्थ भी यथेच्छ लिया करते थे। डण्ठलो की ऊपरी छाल को नहीं निकालते थे। इसकी शाक मे लहसन, मसाला आदि डाला करते थे। इसमे खटाई के लिये इमली के पत्तो को पीस कर या कोकम-अमसूल डाला करते थे। इस प्रकार प्रात सायं भोजन मे व्यवहार से वे बिलकुल रोगमुक्त हो गये।

घोगर (Garuga Pinnata)

गुग्गुलु कुल (Burseraceae) के इस ३०-४० फुट ऊचे वृक्ष की जड के पास का काण्ड भाग प्राय चौडे तख्ते जैसा होता है। छाल—लगभग १ इच मोटी, नरम, वाह्य भाग धूसर वर्ण का एव भीतर लाल, पत्र—बसन्त के अन्त मे ६-१० तक जोडे मे नूतन पत्र कोमल, रोमश फूटते तथा धीरे धीरे १ फुट तक लम्बे बरछी जैसे बढते, किनारे दन्तुर, पुष्प—पीतवर्ण के ५ पखुडियों से युक्त, वाह्य आवरण दन्तुर, कोमल रोमश, पुष्प वृन्त हरितवर्ण का रोमयुक्त, पु केसर एक समान लम्बे १० की सख्या मे होते हैं।

फल—काले, दलदार, देखने मे प्राय बहेडा फल जैसे, किन्तु नरम होते हैं, इसके भीतर कई कोष्ठ होते तथा प्रत्येक कोष्ठ में १-२ बीज होते हैं। पुष्प–वसन्त के अन्त मे तथा फल शीतकाल मे आते है। फल–स्वाद मे खट्टा है। इसका गोद पीला, पारदर्शक होता है।

ये वृक्ष बगाल, छोटा- नागपुर, चटगाव, कर्नाटक, बर्मा तथा भारत के कई प्रदेशो में पाये जाते हैं।

नोट—यह एक प्रकार का कोशाम्र मालूम देता है।

नाम–

हिन्दी—घोगर, खरपत, कांकड, केकर, तितमेर।

गु०–कांकेड, कुसिंब, करंठी। म०–कुसार, कुसिबा, कुरक। वं०–जूम, नीलभादि।

ले०–गरुगा पिन्नाटा।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह ग्राही, शीतल और दीपन है। इसके पत्र व फल श्लेष्मनिःसारक एव श्वास, कासहर माने जाते हैं। छाल स्तम्भक है।

श्वास पर—इसके पत्र रस के साथ अडूसा पत्र रस तथा निर्गुण्डी पत्र रस एकत्र मिला मधु से चटाते हैं। आखो के तिमिर रोग मे इसके डण्ठलो का या छाल का रस आखो के अन्दर डालते हैं।

इसके फलो का मुरब्बा, अचार तथा शाक बनाई जाती है, यह अचार एव शाक शान्तिदायक तथा क्षुधा-वर्धक है।

घोगर (झूम)

GARUGA PINNATA ROXB.
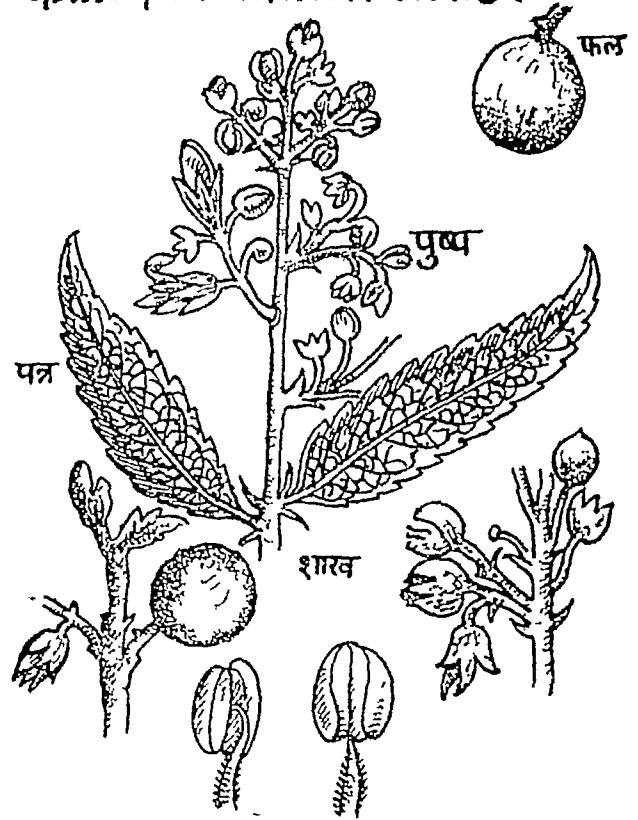
—माननीय लेखकों से—

लघु-विशेपांक—'पायरिया अंक'

इस वर्ष का लघु विशेपाक—"पायरिया अङ्क" के लिये अपनी अनुभवपूर्ण रचना मई के अन्त तक अवश्य भेजने की कृपा करे।

पुरस्कार प्राप्त कीजिये—

निम्न ४ विपयो पर, प्रत्येक पर तीन पुरस्कार देने की योजना प्रचारित की जा रही है। सभी विद्वान् एव अनुभवी व्यक्तियो से साग्रह एव सविनय निवेदन है कि वे इन विपयो पर अपने लेख अवश्य भेजें—

१—श्वासरोग और उसकी चिकित्सा—

निदान सक्षिप्त लिखें। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, यूनानी, होम्योपैथिक एव प्राकृतिक चिकित्सा—जिसका भी आपने सफल अनुभव किया हो विस्तार से लिखें।

२—मिट्टी-पानी द्वारा विभिन्न रोगो की चिकित्सा

२—वनस्पति घृत एव स्वास्थ्य—

विभिन्न वैज्ञानिको की खोज एव उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्यो का हवाला देते हुये लेख लिखें।

४—आयुर्वेद के तीन उपस्तम्भ—निद्रा, ब्रह्मचर्य एव आहार।

पुरस्कार—

प्रथम ४० ०० रु०, द्वितीय २५ ०० रु० और तृतीय १५ ०० रु०।

लेख प्राप्त होने की अन्तिम तिथी—३० जून १९६३।

आकार—अधिकतम धन्वन्तरि के १० पृष्ठ।

सभी लेखको से निवेदन है कि वे अपना लेख कागज की एक ओर सुवाच्य अक्षरो मे लिखने की कृपा करें। लेख का शीर्षक एव स्थान स्थान पर उपशीर्षक कुछ मोटे अक्षरो मे दिया करें। एक ओर थोडा मार्जिन छोडकर दो लाइनो के बीच मे कुछ स्थान देते हुये लिखें जिससे कि उनको पढने, सुधारने एव छपाने मे असुविधा न हो। अनेक महत्वपूर्ण लेख अव्यवस्थित ढग से लिखे होने के कारण प्रकाशित होने से रह जाते हैं।

खोजपूर्ण एव उपयोगी लेखो पर उचित पारिश्रमिक हम देंगे। जो विद्वान पारिश्रमिक प्राप्त करते हुए लेख प्रकाशित कराना चाहे उनसे निवेदन है कि वे अपना लेख भेजते समय 'सपारिश्रमिक प्रकाशनार्थ' शब्द लेख के प्रारम्भिक पृष्ठ पर ऊपर लिख दिया करें।

यह अपने प्रण को दोहराने का समय है

आइये, आज हम हमलावर को मुहतोड जवाब देने के लिए अपने प्रण को दोहराएं। चौकसी
और दृढ निश्चय में किसी तरह की ढिलाई न आने दें क्योकि यह आपका अपना युद्ध है।
यह फौरन काम करने का वक्त है। राष्ट्र सेवी सगठनो के स्वयसेवको की सूची में
अपना नाम लिखवायें। कोई भी चीज ज़ाया न करे और फजूलखर्ची बिल्कुल बद कर दे।
खाने की चीजें और कपडा बहुत आवश्यक वस्तुए हैं। इन्हे व्यर्थ नष्ट न करे। समय
बडा कीमती है। इसे व्यतीत घटो में न नापें बल्कि यह सोच कर नापे कि आपने क्या क्या
काम कर लिया है। अपनी जिम्मेदारी निभायें। हर मामले में और हर समय अनुशासन
से काम करे।

चौकस रहें

राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें

DA62/F5

एक वैज्ञानिक बात...
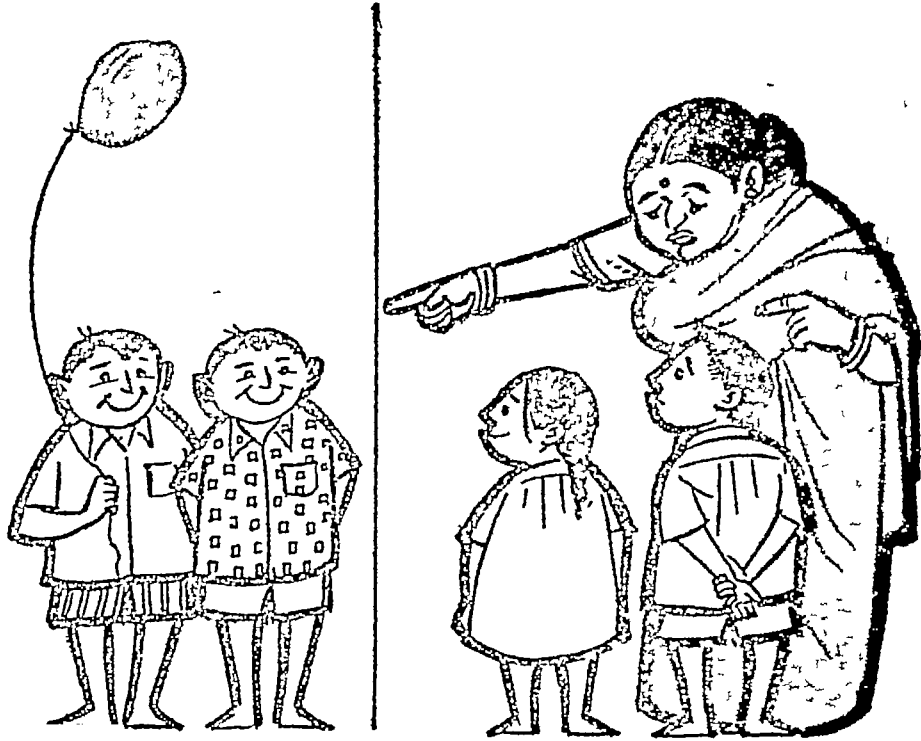
मनोवैज्ञानिको का कहना है कि हमें अपने बच्चो की दूसरो के बच्चो से तुलना नही करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिको के अनुसार इससे बच्चो के स्वाभाविक विकास मे बाधा पहुचती है। यही बात मेट्रिक बाटो के सम्बन्ध मे है। नन्हे मुन्नो (और मेट्रिक बाटों) के गुणो को परखिये और उन्हे ज्यो का त्यों अपनाइये।

मेट्रिक तोल का जोड-तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

डी ए ६२/५४७

वनौषधि-विशेषांक (द्वितीय भाग)

की

सन्दर्भ सूची

(अकारादि क्रमानुसार)

संकेत–सं.–संस्कृत । हि.–हिन्दी । म.–मराठी । गु.–गुजराती । अ.–अरबी ।
पं.–पंजाबी । फा.–फारसी । यू.–यूनानी ।

नोट–विस्तार भय से कई वनौषधियों के अन्य भाषा के नाम तथा कई रोग प्रयोगों की सूची नहीं दी जा सकी है ।

का

य, र, ल, व

श—ष—स—ह

वनौषधि विशेषांक

में आये हुए संकेताक्षरों की सूची इस प्रकार है—

अं०—अंग्रेजी ।
आ० वि० को०—आयुर्वेदीय विश्वकोष ।
ग० नि०—गदनिग्रह ।
गा० औ० र०—गांवों में औषधिरत्न ।
गु०—गुजराथी ।
च० द०—चक्रदत्त ।
च० सं०—चरक सहिता ।
बं०—बंगला ।
वं० से०—वंगसेन ।
वृ० नि० र०—वृहन्निघण्टु रत्नाकर ।
भा० ज० बू०—भारतीय जडीबूटी ।
भा० प्र०—भावप्रकाश ।
भा० भै० र०—भारत भैषज्य रत्नाकर ।
भा० व०—भारतीय वनौषधि (बगला)
भै० र०—भैषज्य रत्नावली ।
म०—मराठी ।
य० चि० सा०—यूनानी चिकित्सा सागर ।
यू० द्र० वि०—यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान ।
यू० सि० यो० स०—यूनानी सिद्धयोग सग्रह ।
यो० र०—योग रत्नाकर ।
र० तं० सा०—रसतन्त्रसार ।
ले०—लेटिन ।
व० चं०—वनौषधि चन्द्रोदय ।
व० गु०—वनौषधि गुणादर्श ।
वा० भ०—वाग्भट्ट ।
वृ० मा०—वृन्द माधव ।
सु० स०—सुश्रुत सहिता ।
हि०—हिन्दी ।

INDEX
LATIN AND ENGLISH NAMES

A-B

C

D

E F G

H

I

J K L

M

N

O P

Q R S

धन्वन्तरि कार्यालय

बिजयगढ़ (अलीगढ़)

का

सूचीपत्र

हम गत ६५ वर्षो से शास्त्रोक्त विधि से अत्युत्तम द्रव्यो द्वारा पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदीय औषधियो का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सको को उचित मूल्य पर सप्लाई कर रहे है । आपसे साग्रह निवेदन है कि आप भी हमारी औषधियो का व्यवहार करें ।

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए

माप-जोख की निकटतम परिवर्तन तालिका

नवीन तोल	पुरानी तोल	नवीन तोल	पुरानी तोल	नवीन माप	पुराना माप
९३३ ग्राम	८० तोला	२९ ग्राम	२॥ तोला	१४ मिलीलिटर	½ औंस
४६७ ग्राम	४० तोला	११ ६६ ग्राम	१ तोला	२८ ,,	१ औंस
२३३ ग्राम	२० तोला	५ ८६ ग्राम	६ माशा	५७ ,,	२ औंस
११७ ग्राम	१० तोला	२ ९२ ग्राम	३ माशा	११४ ,,	४ औंस
५८ ग्राम	५ तोला	१ ४६ ग्राम	१॥ माशा	२२७ ,,	८ औंस [१पाव]
		१ ग्राम	१ माशा	४५५ ,,	१६ औंस [१ पौंड]
				६२६ ,,	२२औंस [१ बोतल]

नोट—इस बार सूचीपत्र में नवीन तोल-माप दिये हैं । पुराने सूचीपत्र के पुराने तोल-माप के समान ही नवीन तोल-माप दिये गये हैं।

—कतिपय सूखी औषधियां—जैसे मनोरम चूर्ण आदि का मूल्य औंस का दिया गया है। उतने औंस की शीशी में जितनी औषधि आ सकती है उसमें रखी जाती है।

—नियम—

१—कमीशन

अ. १०.०० से कम मूल्य की दवा मंगाने पर कोई कमीशन नहीं दिया जायगा ।

आ. २५.०० तक की दवा मगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

इ. २५.०० से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा ।

ई. १००.०० से अधिक मूल्य की दवा मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा तथा मालगाड़ी का किराया कार्यालय देगा ।

उ. ५०.०० से अधिक नैट-मूल्य (कमीशन कम करके) के रस-रसायन मूल्यवान् औषधियां मंगाने पर पोस्ट व्यय कार्यालय देगा ।

२—आर्डर देते समय

अ. आदेशपत्र में औषधियों का नाम, उसका नम्बर, तोल पैकिङ्ग की तोल तथा मूल्य सभी बातें स्पष्ट लिखें । नीचे मूल्य का जोड लगावें तथा उपयुक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखें । यदि आप एजेंट है तो एजेंसी नम्बर भी लिखें ।

आ. हर पत्र में अपना पूरा पता तथा पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें ।

इ. पार्सल पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारीगाड़ी से भेजी जाय या मालगाडी से यह विवरण अवश्य लिखना चाहिये ।

ई. आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५.०० एडवांस मनियार्डर से अवश्य भेजें तथा आदेश पत्र में मनियार्डर का नम्बर व तारीख दें ।

३—दवा भेजते समय पैकिंग करने मे पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्रायः टूट-फूट नहीं होती । किन्तु अगर किसी कारण कोई टूट-फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नहीं है ।

४—पार्सल मंगाकर वी. पी. लौटाना अनुचित है । एक बार वी. पी. वापस आने पर कार्यालय पुनः उस ग्राहक को वी. पी. न भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा । यदि बिल में कोई भूल है तो वी. पी. छुड़ाकर पत्र डालकर उसका सुधार करलें ।

५—हमारे यहां उधार का लेना देना कतई नहीं है । बीजक का रुपया पेशगी या वी. पी. से लिया जाता है ।

६—हमारे यहां ८० तोले का सेर, ४० सेर का एक मन माना जाता है । द्रव (पतली) औषधि २ औंस की शीशी में एक छटांक मानी जाती है । नये तथा पुराने माप तोलों का समन्वयात्मक विवरण सूची के प्रथम पृष्ठ पर ही दिया है ।

७—उत्तर प्रदेश से बाहर के ग्राहकों को अन्तर्प्रान्तीय बिक्री कर ७ प्रतिशत देना होगा । सी-फार्म आर्डर के साथ (बाद में नहीं) मिलने पर यह टैक्स नहीं लगाया जायगा ।

८—ग्राहकों को पार्सल का बारदाना, पैकिंग व्यय, पोस्ट-व्यय, स्टेशन पहुंचाई इत्यादि सभी खर्च पृथक देने होते हैं ।

९—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी विभाग का कोई भी झगड़ा अलीगढ़ की अदालत में तय होगा ।

१०—नियमों मे अथवा औषधियों के भावों में किसी भी समय सूचना दिये बिना परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है ।

अन्तर्प्रान्तीय बिक्रीकर

उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो के ग्राहको को अन्तर्प्रान्तीय बिक्रीकर ७ प्रतिशत होगा । यदि इससे आप छुटकारा पाना चाहे तो अपने क्षेत्र के बिक्रीकर कार्यालय मे अपने फर्म की रजिष्ट्री करावें और वहा से सी-फार्म की कापी प्राप्त करलें । आर्डर देते समय उस कापी से एक फार्म भर कर आर्डर के साथ भेज दिया करें । आर्डर के साथ (बाद मे नही) सी फार्म मिलने पर हम सैलटैक्स नही लेगे । सी फार्म आर्डर के साथ न मिलने पर ७ प्रतिशत सेलटैक्स अवश्य लगाया जायगा ।

६५ वर्ष पुराना विश्वस्त व विशाल कारखाना

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

का

सूचीपत्र

कूपीपक्व रसायन

	११ ६६ ग्राम (१ तोला)	२ ६२ ग्राम (३ माशा)	१ ग्राम (१ माशा)
सिद्ध मकरध्वज नं० १	५१ ००	१२ ८०	४ ५०
,, ,, न० २	३४ ००	८ ५५	२ ६०
,, ,, न० ३	२५ ००	६ २५	२ २५
,, ,, न० ४	३० ००	७ ५५	२ ५५
,, ,, न० ५	२१ ००	५ ३०	१ ८०
,, ,, न० ६	१५ ००	३ ८०	१ ३०
सिद्ध चन्द्रोदय न० १	८५ ००	२१ ३०	७ १५
अनुपान मकरध्वज	७ ००	१ ८०	० ७०
रस सिन्दूर न० १	१३ ००	३ ५०	१ २५
रस सिन्दूर न० २	१० ५०	२ ६५	० ६०
रस सिन्दूर न० ३	८ ००	२ ०५	० ७५
मल्ल चन्द्रोदय	५१ ००	१२ ८०	४ ५०
मल्ल सिन्दूर	६ ००	२ ३०	० ८०
ताल सिन्दूर	६ ००	२ ३०	० ८०
ताम्र सिन्दूर	६ ००	२ ३०	० ८०
शिला सिन्दूर	६ ००	२ ३०	० ८०
स्वर्णवग भस्म	३ ५०	० ६०	० ४०
मृत सजीवनी रस	४ ५०	१ २०	० ४५
रस कर्पूर	१० ५०	२ ६५	० ६०
रस माणिक्य	३ ५०	० ६०	० ४०
समीरपन्नग रस न० १	३० ००	७ ५५	२.५५
समीरपन्नग रस न० २	६ ००	२ ३०	० ८०
पचसूत रस	६ ००	२ ३०	० ८०
स्वर्णभूपति रस	३० ००	७ ५५	२ ५५
व्याधिहरण रस	१५ ००	३.८०	१.३०

भस्में

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)	२ ६२ ग्राम (३ माशा)
अभ्रक भस्म न १	×	४४ ००	११ ००
		१ ग्राम (१ माशा)	३ ७०
अभ्रक भस्म न २	×	३ ५०	० ६०
अभ्रक भस्म न ३	×	१ ७५	०.४५
अकीक भस्म	×	३ ५०	० ६०
कपर्द भस्म	२ ००	० ४५	० २०
कान्तलौह भस्म	१० ००	२ ०५	० ५५
कुक्कुटाण्डत्वक भस्म	४ ००	० ८५	० २५
गौदन्तीहरताल भस्म	२ ००	० ४५	० २०
जहरमोहरा भस्म	१३ ५०	२ ७५	० [illegible]
तवकीहरताल भस्म	×	६ ००	२ ३०
ताम्र भस्म न० १	×	७ ००	१ ८०
ताम्र भस्म न० २	१७ २५	३ ५०	० ६०
ताम्र भस्म न० ३	१०.००	२ ०५	० ५५
नाग भस्म न० १	१५ ००	३ ०५	० ८०
नाग भस्म न० २	६ ००	१ ४५	० ४०
प्रवाल भस्म न० १	३० ००	६ ०५	१ ५५
प्रबाल भस्म न० २	१० ००	२ ०५	० ५५
प्रबाल भस्म न० ३	१० ००	२ ०५	०.५५
प्रवाल भस्म न० ४	६ ००	१ ८५	० ५०
प्रवाल भस्म [चन्द्रपुटी]	६ ००	१ ८५	० ५०
वङ्ग भस्म न० १	११ ००	२ २५	० ६०
बङ्ग भस्म न० २	५ ७५	१ २०	०.३५
वैक्रान्त भस्म	×	७ २५	२ ००
मल्ल भस्म	×	६ ००	१.५५
मृगशृङ्ग भस्म	२ ७५	० ६०	० २०
माणिक्य भस्म	×	१५ ००	३ ८०

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)	२ ९२ ग्राम (३ माशा)
माण्डूर भस्म न० १	३ ७५	० ७५	० २५
माण्डूर भस्म नं० २	२ ७५	० ६०	० २०
मुक्ता भस्म न० १	×	×	३० ००
मुक्ता भस्म नं० २	×	×	२४ ००
यशद भस्म	८ ५०	१ ७५	० ४५
रौप्य भस्म न० १	×	१२ ००	३ ०५
रौप्य भस्म न० २	×	९ ००	२ ३०
लोह भस्म न० १	४०.००	८ ००	२ ०५
लोह भस्म न० २	८ ००	१ ७०	० ४५
लोह भस्म न० ३	४ ५०	१ ००	० ३०
स्वर्ण भस्म	×	×	५० ००
स्वर्णमाक्षिक भस्म	११ ००	२ २५	० ६०
शख भस्म	१ ७५	० ४०	० १५
शकर लोह भस्म	×	४ ५०	१ २०
शुक्ति (मोतीसीप) भस्म	२ २५	० ५०	० १६
सगजराहत भस्म	३.७५	०.८०	० २५
त्रिवङ्ग भस्म	२२ ५०	४.५०	१ २०

पिष्टी

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)	२ ९२ ग्राम (३ माशा)
प्रवाल पिष्टी	९.००	२ ००	० ५५
मुक्ता पिष्टी न १	×	१०० ००	२५ ०५
मुक्तापिष्टी न. २	×	८० ००	२० ०५
अकीक पिष्टी	१० ००	२ ३०	० ६५
जहरमोहरा पिष्टी	१०.००	२ ३०	० ६५
कहरवा पिष्टी	४६ ००	१०.००	२ ७५
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	३ २५	०.७०	० २०
माणिक्य पिष्टी	२८ ००	६ ००	१.५५
वैक्रान्त पिष्टी	२८ ००	६ ००	१ ५५

पर्पटी

	११.६६ ग्राम (१ तोला)	१ ग्राम (१ माशा)
ताम्र पर्पटी न १	८.००	०.७०
ताम्र पर्पटी न २	४ ००	० ४०
पचामृत पर्पटी न० १	८ ००	०.७०
पचामृत पर्पटी न० २	४.००	०.४०
विजय पर्पटी (स्वर्ण मुक्तावटित)	३५ ००	३ ००
बोल पर्पटी न० १	८ ००	० ७०
बोल पर्पटी न २	४ ००	० ४०
रस पर्पटी नं० १	७.००	० ६५
रस पर्पटी न० २	३ ५०	०.३५
लोह पर्पटी न १	८ ००	०.७०
लोह पर्पटी न० २	४ ००	० ४०
श्वेत पर्पटी	० ४४	० १५
स्वर्ण पर्पटी नं० १	३५ ००	३ ००
स्वर्ण पर्पटी न० २	२१.००	२ ००

शोधित द्रव्य

	११७ ग्राम (१०तोला)	११.६६ ग्राम (१ तोला)
कज्जली नं १	२० ००	२.१०
शुद्ध गन्धक आमलासार	४ ००	० ५०
शुद्ध वच्छनाग	६ ००	०.६५
शुद्ध विषबीज (वस्त्रपूत)	७ ००	०.७५
शुद्ध जयपाल	७.००	०.७५
शुद्ध ताल (हरताल)	१२.००	१.२५
शुद्ध भल्लातक	५ ००	० ५५
शुद्ध शिला (मसिल)	१२ ००	१ २५
शुद्ध हिंगुल (हसपदी)	२० ००	२ १०
शुद्ध पारद हिंगुलोत्य	३४.००	३.५०
शुद्ध पारद विशेष	×	७.००
पारद सस्कारित	×	२१.००
शुद्ध ताम्र चूर्ण	१ किलोग्राम	१६ ००
शुद्ध लोह (फौलाद) चूर्ण	,,	७.००
शुद्ध धान्याभ्रक (शु वज्राभ्रक)	,,	६.००
शुद्ध माण्डूर	,,	२ ००

बहुमूल्य रस रसायन गुटिका

	११ ६६ ग्राम (१ तोला)	१ ग्राम (१ मासा)
आमवातेश्वर रस	१६.००	१ ५०
वृ० कस्तूरी भैरव रस (भैष०)	२४ ००	२ ०५
कस्तूरी भैरव रस	२० ००	१ ७५
कस्तूरी भूषण रस	२१.००	१.८०
वृ० कामचूडामणि रस (भैष०)	१५ ००	१ ३०
कामदुघा रस (मौक्तिक युक्त)	१२ ००	१ ०५
कामिनीविद्रावण रस	१४.००	१.२५
कुमार कल्याण रस	४५ ००	३ ८०
कृष्ण चतुर्मुख रस	१८ ००	१ ६०
चतुर्मुख चिन्तामणि रस	२४ ००	२ ०५
जयमगल रस (स्वर्णयुक्त)	३६ ००	३ ०५
प्रवाल पचामृत रस	१४ ००	१ २५
पुटपक्व विषमज्वरान्तक लोह	१८ ००	१ ६०
वृ० पूर्णचन्द्र रस	२४.००	२ ०५
वसन्त कुसुमाकर रस	३४ ००	३ ००
वृ० वातचिन्तामणि रस	३५ ००	३ ००
ब्राह्मीवटी (स्वर्ण मुक्ता युक्त)	४० ००	३ ५०
मृगाक पोटली रस	९६ ००	८ ०५
मधुमेहान्तक रस	१० गोली	३ ००
मधुरान्तक वटी	१२ ००	१ ०५
महाराज नृपति वल्लभ रस	१० ००	०.९०
महालक्ष्मी बिलास रस	१२ ००	१ ०५
महाराज वग भस्म	१२ ००	१ ०५
योगेन्द्र रस	४८ ००	४ ०५
रसराज रस	३२ ००	२ ७५
राजमृगाक रस	३४ ००	३ ००
वृ० लोकनाथ रस	५ ००	० ५०
श्वास चिन्तामणि रस	२०.००	१ ७५
स्वर्ण वसन्त मालती न० १	३४ ००	३ ००
स्वर्ण वसन्त मालती न २	२१ ००	१ ८०
सर्वांग सुन्दर रस	२८ ००	२ ४०
सग्रहणी कपाट रस न १	४०.००	३ ५०
सूतशेखर रस न १ [स्वर्ण युक्त]	१७.००	१ ५०

	११.६६ ग्राम (१ तोला)	१ ग्राम (१ मासा)
हिरण्यगर्भ पोटली रस	३६ ००	३ ०५
हेमगर्भ रस	४०.००	३ ५०

रस रसायन गुटिका

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)
अग्निकुमार रस	३ २५	० ७०
अजीर्ण कण्टक रस	३ ७५	० ८०
अर्शान्तक वटी	७ ००	१.४५
अग्नितुण्डी वटी	३ ७५	०.८०
आनन्द भैरव रस (लाल)	५.००	१ ०५
आनन्दोदय रस	९ ००	१ ८०
आदित्य रस	६ २५	१ ३०
आमलकी रसायन	५.५०	१ १५
आरोग्यवर्द्धिनी वटी	४ २५	०.९०
इच्छाभेदी रस	४ २५	० ९०
इच्छाभेदी वटी	५ ००	१ ०५
उपदश कुठार रस	३ ७५	० ८०
एकागवीर रस	२४.००	५ ००
एलादि वटी	२ २५	० ५०
एलुआदि वटी	२ २५	० ५०
कर्पूर रस	२८.००	५ ७०
कनक सुन्दर रस	३ ७५	० ८०
कफ कुठार रस	६ ५०	१ ३५
कफकेतु रस	४ २५	० ९०
कामधेनु रस	१२ ००	२ ५०
कामदुघा रस न २	१० ००	२ १०
काकायन गुटिका	२ २५	० ५०
कीटमर्द रस	२ ७५	० ६०
क्रव्यादि रस	२०.००	४ ५०
कृमिकुठार रस	५ ५०	१ १५
खैरसार वटी	२ २५	०.५०
गङ्गाधर रस	१० ००	२.०५
गधक वटी	२.२५	० ५०
गधक रसायन	९ ००	१ ८५

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)
गर्भविनोद रस	४ २५	० ९०
गर्भपाल रस	१०.००	२ ०५
गर्भ चिंतामणि रस	१७ ००	३ ५०
गुल्मकुठार रस	६ ५०	१ ३५
गुल्मकालानल रस	६ ५०	१ ३५
गुड पिप्पली	२ ७५	० ६०
गुडमार वटी	२ २५	० ५०
ग्रहणी गजेन्द्र रस	१४ ००	३.००
ग्रहणीकपाट रस न २	७ ००	१,५०
ग्रहणीकपाट रस [लाल]	१४ ००	३ ००
घोडा चोली रस	३ ७५	० ८०
चन्द्रप्रभा वटी	४ २५	० ७५
चन्द्रोदय वर्त्ति	३ ५०	०.७५
चन्द्रकला रस	६ ००	१ २५
चन्द्रांशु रस	५ ५०	१.१५
चन्द्रामृत रस	५ ००	१ ०५
चित्रकादि वटी	२ ००	० ४५
ज्वाकु श रस (महा)	४ २५	० ९०
जय वटी	८ ००	१ ७५
जलोदरारि वटी	४ ५०	१ ००
जातीफल रस	७ ००	१ ५०
तक्र वटी	५ ५०	१ १५
दुर्जलजेता रस	४.२५	० ९०
दुग्ध वटी न० १	२८.००	६ ००
दुग्धवटी न० २	४ २५	० ९०
नव ज्वर हर वटी	३ ५०	०.७५
नष्ट पुष्पान्तक रस	१७ ००	३ ५०
नृपतिवल्लभ रस	७ ००	१ ५०
नाराच रस	४ २५	० ९०
नित्यानन्द रस	५ ५०	१ १५
प्रताप लकेश्वर रस	४ २५	०.९०
प्रदरारि रस	४ २५	०.९०
प्रदरातक रस	८ ००	१ ७०
प्लीहारि रस	४ २५	०.९०

	५८ ग्राम (५ तोला)	११.६६ ग्राम (१ तोला)
प्राणेश्वर रस	१४.००	३.००
प्राणदा गुटिका	३.२५	०.७०
पचामृत रस न १ (नासारोग)	३ २५	० ७०
पचामृत रस न २ (शोथ रोग)	४ ५०	१.००
पाशुपति रस	५ ००	१ ०५
पीपल ६४ पहरा	१७ ००	३ ५०
वृ शखवटी	४ २५	०.९०
वृद्धिवाधिका वटी	११ ००	२.२५
वृ० नायकादि रस	२ ७५	०.६०
वहुमूत्रातक रस	२० ००	४.१०
वहुशाल गुड	२.७५	०.६०
वालामृत रस [वटी]	२२ ००	४.५०
ब्राह्मी वटी न २	१०.००	२ ०५
वात गजाकु श रस	८ ७५	१ ८०
विषमुष्टिका वटी	४.२५	०.९०
वेताल रस	१४.००	३ ००
व्योपादि वटी	२ २५	० ५०
महामृत्युजय रस [कृष्ण]	५ ५०	१ १५
महामृत्युजय रस [लाल]	५ ५०	१.१५
मकरध्वज वटी ५०० गोली	३२ ००	
महागधक रस	५ ५०	१.१५
मरिच्यादि वटी	२.५०	०.५०
महाशूलहर रस	७.००	१ ५०
महावातविध्वस रस	१५.००	३.०५
मार्कण्डेय रस	४.२५	०.९०
मूत्रकृच्छ्रातक रस	१७ ००	३.५०
मेहमुद्गर रस	५ ००	१ १०
रजप्रवर्तक वटी	७.००	१.५०
रक्तपित्तातक रस	५.५०	१.१५
रस पिप्पली	१५ ००	३.०५
राम वाण रस	४ २५	०.९०
लवगादि वटी	४ २५	०.९०
लशुनादि वटी	२ ५०	०.५५
लघु मालिती वसन्त	१५.००	३.०५
लक्ष्मी विलास रस [नारदीय]	८ ५०	१.७५

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)
लक्ष्मी नारायण रस	१५ ००	३ ०५
लाई (रस) चूर्ण	४ २५	० ९०
लीलावती गुटिका	३ ७५	० ८०
लीला विलास रस	७ ००	१ ५०
लोकनाथ रस	८ ००	१ ७०
श्वासकुठार रस	४ २५	० ९०
शखवटी	२ २५	० ५०
शशमनी वटी	६ ००	१ २५
शिरोवज्र रस	५ ००	१ १०
शिलाजीत वटी	५ ००	१ १०
शीतभजी रस (वटी)	१० ००	२.०५
शूलवज्रिणी वटी	४ २५	० ९०
समीर गजकेशरी	२४ ००	४ ९०
श्रङ्गाराभ्रक रस	५ ५०	१ १५
स्मृतिसागर रस	१८ ००	३ ६५
सन्निपातभैरव रस	७ ००	१ ५०
सजीवनी वटी	३ ००	० ६५
सर्पगधा वटी	६.५०	१ ४०
समीरगजकेशरी	२५ ००	५.०५
सिद्ध प्राणेश्वर रस	५ ५०	१ १५
सूतशेखर रस	१५ ००	३ ०५
सूरण मोदक बृहद	२ २५	० ५०
सौभाग्य वटी	४ २५	० ९०
हिंग्वादि वटी	२ २५	० ५०
हृदयार्णव रस	१४ ००	२ ९०
त्रिपुर भैरव रस	५ ५०	१ १५
त्रिभुवन कीर्ति रस	५ ५०	१ १५
त्रिविक्रम रस	१५ ००	३ ०५

लौह मांडूर

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)
अम्लपित्तान्तक लौह	७ ००	१ ५०
चन्दनादि लौह [ज्वर]	७ ००	१ ५०
चन्दनादि लौह [प्रमेह]	८ ७५	१ ८०

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोला)
ताप्यादि लौह	१७ ५०	३.५५
धात्री लौह	६ ००	१ २५
नवायश लौह	४ ००	१.८५
प्रदरारि लौह	७ ५०	१ ६०
प्रदरान्तक लौह	९ ००	१ ९०
पुनर्नवादि माडूर	४ ००	१ ८५
विडङ्गादि लौह	५ ००	० ५५
विषमज्वरान्तक लौह	७ ५०	१ ६०
यकृतहर लौह	६ ५०	१ ३५
शोथोदरारि लौह	९ ००	१ ९५
सर्वज्वरहर लौह	६ ५०	१.३५
सप्तामृत लौह	६ ५०	१ ३५
त्र्यूषणादि लौह	६ ००	१.२५

गुग्गुल

	५८ ग्राम (५ तोला)	११ ६६ ग्राम (१ तोना)
अमृतादि गुग्गुल	२.२५	० ५०
काचनार गुग्गुल	२ ००	० ४५
किशोर गुग्गुल	२ ००	० ४५
गोक्षुरादि गुग्गुल	२ ००	० ४५
पुनर्नवादि गुग्गुल	२ ००	० ४५
वृ योगराज गुग्गुल	६ ७५	१ ४०
योगराज गुग्गुल	२.००	०.४५
रसाभ्र गुग्गुल	६ ००	१ २५
रास्नादि गुग्गुल	२.००	० ४५
सिंहनाद गुग्गुल	२ २५	० ५०
त्र्योदशाग गुग्गुल	२ २५	०.५०
त्रिफलादि गुग्गुल	२ ००	० ४५

क्वाथ

	९३३ ग्राम [१ सेर]	११७ ग्राम [१० तोला]
दशमूल क्वाथ	१.६०	०.२५
२ तोले की १०० पुडिया		५ ५०
दार्व्यादि क्वाथ	४ ००	० ५५

	६३३ ग्राम [१ सेर]	११७ ग्राम [१० तोला]
देवदार्व्यादि क्वाथ	३ ७५	० ५०
द्राक्षादि क्वाथ	२.५०	० ३५
वलादि क्वाथ	२ ००	० ३०
महामजिष्ठादि क्वाथ	४ ००	० ५५
मपारास्नादि क्वाथ	४ ००	० ५५
त्रिफलादि क्वाथ	२ ७५	० ४०

चूर्ण

	६३३ ग्राम (१ सेर)	५८ ग्राम (५ तोला)
अग्निमुख चूर्ण	१२ ००	० ६०
अविपत्तिकर चूर्ण	१२ ००	० ६०
अजीर्णपानक चूर्ण	१४ ००	१ ००
अग्निवल्लभक्षार	२० ००	१ ४०
उदर भास्कर चूर्ण	१४.००	१ ००
एलादि चूर्ण	१७ ००	१ २०
कपित्थाष्टक चूर्ण	१२ ००	० ६०
कामदेव चूर्ण	१४ ००	१ ००
गगाधर चूर्ण	१२ ००	० ६०
चन्दनादि चूर्ण	१२ ००	० ६०
ज्वर भैरव चूर्ण	१२ ००	० ६०
जातीफलादि चूर्ण	२० ००	१ ४०
तालीसादि चूर्ण	१७ ००	१.२०
दशन सस्कार चूर्ण	१४ ००	१ ००
धातुस्रावहर चूर्ण	२०.००	१ ४०
नारायण चूर्ण	१२ ००	० ६०
निम्बादि चूर्ण	१२ ००	०.६०
प्रदरातक चूर्ण	१२ ००	०.६०
पचसकार चूर्ण	६ ००	० ७०
प्रदरारि चूर्ण	१२ ००	० ६०
पुष्पानुग चूर्ण	१२.००	० ६०
यवानी खाण्डव चूर्ण	१२ ००	० ६०
लवगादि चूर्ण	२० ००	१ ४०
लवणभास्कर चूर्ण	६ ००	० ७०
स्वप्नप्रमेहहर चूर्ण	२० ००	१ ४०

	६३३ ग्राम (१ सेर)	५८ ग्राम (५ तोला)
सारस्वत चूर्ण	१२ ००	० ६०
सामुद्रादि चूर्ण	१२ ५०	०.६५
शृग्यादि चूर्ण	१४ ००	१ ००
सितोपलादि चूर्ण	२८ ००	२ ००
महासुदर्शन चूर्ण	१० ००	०.७५
हिग्वाष्टक चूर्ण	१५ ००	१ १०
त्रिफलादि चूर्ण	७ ००	० ५५

आसव अरिष्ट

	६२६ मि. लि [१ बोतल]	४५५ मि लि [१ पौण्ड]	२२७ मि. लि [८ औंस]
अमृतारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
अर्जुनारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
अरविन्दासव [केशर युक्त]—			
	८ ००	७ ००	३ ६०
		४ औंस	१ ८५
अरविन्दासव	३ २०	२ ७०	१ ४०
अशोकारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
अभयारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
अश्वगधारिष्ट	३ ००	२ ५५	१ ४०
उशीरासव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
कनकासव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
कुमारी आसव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
कुटजारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
खदिरारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
चन्दनासव	२ ४०	२ १५	१ १५
दशमूलारिष्ट न १	५ ५०	४ ६०	२ ५०
दशमूलारिष्ट न २	३ ००	२ ५५	१ ४०
दाक्षासव	३ ००	२ ५५	१ ४०
द्राक्षारिष्ट	३.१०	२ ६०	१ ४५
देवदार्व्यादिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
पत्रागासव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
पिपल्यासव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
पुनर्नवासव	२ ४०	२ १५	१ १५
वल्लभारिष्ट	४ १०	३ ७५	१.६५

	२२६ मि लि. (१ बोतल)	४५५ मि लि. (१ पौण्ड)	२२७ मि.लि (८ औंस)
बवूलारिष्ट	२ ४०	२ १५	१ १५
वासारिष्ट	२ ८०	२ ५०	१ ३०
बालरोगान्तकारिष्ट	३.१०	२ ६०	१ ४५
विडंगासव	२ ८०	२ ५०	१ ३०
रक्त शोधिकारिष्ट	३.१०	२.६०	१ ४५
रोहितकारिष्ट	२ ४०	२ १५	१ १५
लोहासव	२ ४०	२.१५	१ १५
सारस्वतारिष्ट न० १	×	×	६ ५०
सारस्वताष्टि न २	३ ५०	३ १५	१ ६५
सारिवाद्यासव	३ १०	२ ६०	१ ४५

अर्क

अर्क उसवा	२ ८०	२ ५०	१ ३०
दशमूल अर्क	२ ५०	२ २५	१ २०
द्राक्षादि अर्क	२ ८०	२ ५०	१ ३०
महामजिष्ठादि अर्क	२ ५०	२ २५	१ २०
रास्नादि अर्क	२ ५०	२ २५	१ २०
सुदर्शन अर्क	२ ८०	२ ५०	१ ३०
अर्क सौंफ	२.५०	२ २५	१ २०
र्क अजवायन	२ ५०	२ २५	१.२०
अर्क पोदीना	२ ८०	२ ५०	१ ३०

तैल

	४५५मि लि (१ पौंड)	११४मि लि (४ औंस)	५७मि लि (२ औंस)
आवला तैल	६ ००	१ ५५	० ८०
इरमेदादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
कर्पूरादि तैल	१२ ००	३ ५५	१ ६०
कट्फलादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
कन्दर्प सुन्दर तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
काशीशादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
किरातादि तैल	८ ००	२ १०	१ ०५
कुमारी तैल	८ २५	२ १५	१.१०
ग्रहणी मिहिर तैल	८.२५	२ १५	१ १०
गुडूच्यादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
महाचन्दनादि तैल	८ ५०	२ २०	१ १५
चन्दनवलालाक्षादि तैल	९ ००	२ ३०	१.२०

	४५५मि मि (१ पौंड)	११७मि मि (४ औंस)	५८मि लि. (२ औंस)
जात्यादि तैल	९ ००	२ ३०	१ २०
दशमूल तैल	९ ००	२ ३०	१.२०
दार्व्यादि तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
महानारायण तैल	९ ००	२ ३०	१ २०
पिप्पल्यादि तैल	९ ००	२ ३०	१ २०
पिंड तैल	११ ००	२ ८०	१ ५०
पुनर्नवादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
ब्राह्मी तैल	८ २५	२ १५	१ १०
बिल्व तैल	११ ००	२ ८०	१ ५०
विषगर्भ तैल	८ २५	२ १५	१ १०
भृंगराज तैल	९ ००	२ ३०	१ २०
महाविषगर्भ तैल	९ ००	२ ३०	१ २०
बैरोजा का तैल	११ ००	२ ८०	१ ५०
महामरिच्यादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
महामाष तैल	८ २५	२ १५	१ १०
मौंम का तैल	१६ ००	४ ०५	२ १०
राल का तैल	१५ ००	३ ८०	१ ९५
लाक्षादि तैल	९.००	२ ३०	१ २०
शुष्कमूलादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
षट्बिन्दु तैल	८ २५	२ १५	१ १०
हिमसागर तैल	९ ००	२ ३०	१.२०
क्षार तैल	१५ ००	३ ८०	१ ९५

घृत

	४५५ मि. लि (१ पौंड)	११४ मि. लि (४ औंस)	५७ मि लि (२ औंस)
अर्जुन घृत	१० ००	२ ६०	१.३५
अशोक घृत	१०.००	२ ६०	१ ३५
अग्नि घृत	१०.००	२ ६०	१ ३५
कदली घृत	११ ००	२ ८०	१ ५०
कामदेव घृत	१२ ००	३ ०	१ ६०
दूर्वादि घृत	९ ००	२ ३०	१ २०
धात्री घृत	९.००	२ ३०	१ २०
पचतिक्त घृत	९.००	२ ३०	१ २०
फल घृत	१०.००	२ ६०	१ ३५
ब्राह्मी घृत	११ ००	२.८०	१.५०

	४५५मि. लि (१ पौंड)	११४मि लि. (४ औंस)	५७मि लि (२ औंस)
महा विन्दु घृत	११ ००	२ ८०	१ ५०
महात्रिफलादि घृत	११.००	२ ८०	१ ५०
शृंगीगुड घृत	८ २५	२ १५	१.१०
सारस्वत घृत	९ ००	२ ३०	१ २०

क्षार सत्व द्राव

	११७ ग्राम (१ तोला)	११ ६६ ग्राम (१० तोला)
वज्र क्षार	३ ००	० ३५
अपामार्ग क्षार	३ ००	० ३५
इमली क्षार	३ ००	० ३५
वासा क्षार	४ ००	० ४५
कटेरी क्षार	४ ००	० ४५
कदली क्षार	३ ५०	० ४०
तिल क्षार	४ ००	० ४५
मूली क्षार	४ ००	०.४५
ढाक क्षार	३ ००	० ३५
आक क्षार	३ ००	० ३५
केतकी क्षार	३ ००	० ३५
चना (चणक) क्षार	४ ००	० ४५
यव क्षार	×	० २५
गिलोय सत्व	४ ००	० ४५
भीमसेनी कपूर	×	५ ४०
नाडी क्षार	४ ००	० ४५
नेत्र विन्दु २२७ मि लि (८ औंस)		११ ००
" १४ मि लि (½ औंस)		१ ०५
शखद्राव ११४ मि लि (४ औंस)		८.५०
" २८ मिलि (½ औंस)		० ८०

अवलेह पाक

	९३३ ग्राम (१ सेर)	२३३ ग्राम (१ पाव)
च्यवनप्राश अवलेह	६ ००	१ ६०
	४६७ ग्राम [½ सेर]	३ १०
कुटजावलेह	८ ००	२ १५
कण्टकारी अवलेह	८ ००	२ १५

	९३३ ग्राम (१ सेर)	२३३ ग्राम (१ पाव)
कुशावलेह	८ ००	२ १५
वासावलेह	८ ००	२ १५
ब्राह्म रसायन	१० ५०	२ ७५
आर्द्रक खण्ड	८.००	२ १५
विषमुष्टिकावलेह	५८ ग्राम [५ तोला]	६ ७५
मधुकाद्यावलेह	१७५ ग्राम [१५ तोला]	३.५०
कन्दर्प सुन्दर पाक	१० ००	१ ५०
बादाम पाक	१४ ००	२ ००
मूसली पाक	१४ ००	२ ००
सुपारी पाक	१०.००	१ ५०
सौभाग्य शुण्ठी पाक	१० ००	१ ५०

मलहम

	२३३ ग्राम [२० तोला]	११७ ग्राम [१० तोला]
जात्यादि मलहम	४ ५०	२.४०
पारदादि मलहम	५ ००	२ ६०
निम्बादि मलहम	६.००	३ १०
दंशाग लेप	४ ५०	२ ४०
अग्निदग्ध व्रणहर मलहम	४ ००	२ १०

बहु मूल्य द्रव्य

	११.६६ ग्राम [१ तोला]
कस्तूरी न० १ [सर्वोत्तम]	१०० ००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	६० ००
केशर काश्मीरी मौंगरा	१८ ००
केशर चूरा	८.००
अम्बर	३६ ००
गौलोचन	४० ००
चादी के वर्क	६ ००
स्वर्ण वर्क	बाजार भाव

नोट—यह भाव नैट हैं। इन भावों पर किसी को भी किसी प्रकार का। कमीशनादि नहीं दिया जायगा। इन भावों में घट बढ़ होना भी सम्भव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेण्ट दवायें

हमारी ये पेटेण्ट औषधियां ६५ वर्ष से भारत भर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैद्यराजों और धर्मार्थ औषधालयों द्वारा व्यवहार की जा रही हैं अतः इनकी उत्तमता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।

मकरध्वज वटी

(अर्थात् निराशबन्धु)

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आशुलाभप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज नं. १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों को भी इसमें डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस रक्त आदि सप्त धातुओं को क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करती और शरीर में नव जीवन व नव-स्फूर्ति भर देती हैं। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणों को जानते हैं वे इसके प्रभाव में सन्देह नहीं कर सकते। वीर्यविकार के साथ होने वाली खांसी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं। क्षुधा बढ़ती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेक औषधियां सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषों को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है। इसीलिये इसका दूसरा नाम 'निराश-बन्धु' है।

४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। यह रोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी आ जाने के फलस्वरूप होती है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती है और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियों की) ३.०० छोटी शीशी (२१ गोलियों की) १.६०, १२ शीशी (४१ गोलियों वाली) का २५.०० नैट।

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिये सर्वोत्तम मीठी घुटी)

हमने बड़े परिश्रम से आयुर्वेद में वर्णित और बालकों की रक्षा करने वाली दिव्य औषधियों से घुटी तैयार की है। इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नहीं होते किन्तु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालकों को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिये तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ-खांसी, पसली चलना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य एक शीशी आध औंस (१४ मि. लि.) ३१ न. पै., ४ औंस (११४ मि. लि.) की शीशी सुन्दर कार्ड बक्स में २.००, २ औंस (५७ मि. लि.) की शीशी सुन्दर बक्स में १.१०

कुमार रक्षक तैल—इसको बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे धीरे रोजाना मालिश करें। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांसपेशियां सुदृढ़ हो जायंगी, हड्डियों को ताकत पहुँचेगी। यह तैल इसी अभिप्राय से सर्वोत्तम निर्माण किया गया है। मूल्य—१ शीशी ४ औंस (११४ मि. लि.) २.००, छोटी शीशी २ औंस (५७ मि. लि.) १.१०

ज्वरारि—कुनीनरहित विशुद्ध आयुर्वेदिक ज्वर जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रवों को नष्ट करती है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १.२५, २० मात्रा की बड़ी शीशी २.००, ५० मात्रा की पूरी बोतल ४.००

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि है। वासा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—२० मात्रा की शीशी १.२५, ५ मात्रा की शीशी ५० न. पै., १ पौंड (४५५ मि. लि.) ४.२५

कामिनीगर्भरक्षक—बार बार गर्भस्राव हो जाना, बच्चों का छोटी आयु में ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियों से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीड़ित हैं। यदि कामिनी गर्भरक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम् माह तक सेवन करावें तो न गर्भपात होगा और न गर्भस्राव। बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। मूल्य—२ औंस (५७ मि. लि.) की १ शीशी २.००

शिरोविरेचनीय सुरमा—जिनको बार बार जुकाम हो जाता है या पुराना शिर दर्द हो, जुकाम रुकने से

उत्पन्न सिर में दर्द, इस सुरमा को सलाई से हल्का हल्का नेत्रों में आजें। थोड़ी देर में आंख व नाक से पानी निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होंगे। पुराने सिर दर्द में पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र रस भी साथ में सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य—१ माशे (१ ग्राम) की शीशी ५० न. पै.

वातारि वटी—वातरोगनाशक सफल और सस्ती दवा है। २-१ गोली प्रात साय गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वात व्याधियां नष्ट होती हैं। मूल्य—१ शीशी (५० गोली) २.००

करंजादि वटी—'करंज' मलेरिया के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके संयोग से बनी ये गोलियां प्राकृतिक ज्वर (मलेरिया) के लिये उत्तम प्रामाणित हुई हैं। १ शीशी (५० गोली) १.००

कासहर वटी—हर प्रकार की खांसी के लिये सस्ती व उत्तम गोलियां हैं। दिन में ५-७ बार अथवा जिस समय खांसी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुंह डाल रस चूसें, गला व श्वास नली साफ होती है। कफ बन्द हो जाता है। मूल्य—१ शीशी १ तोला (११.६६ ग्राम) ४० न पै.

निम्बादि मलहम—नीम रक्तशोधक व चर्म रोग नाशक है। इसी के प्रयोग से बनी यह मलहम फोड़ा-फुंसी व घावों के लिये अत्युत्तम है। निम्ब क्वाथ से घाव या फोड़ों को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते हैं। नासूर तक को भरने की इसमें शक्ति है। मूल्य—१ शीशी आध औंस ४० न. पैं, २० तोले (२३४ ग्राम) का एक पैक ६ ००

वल्लभ रसायन—किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो तो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मूल्य—१ शीशी २ औंस १.५०

रक्तवल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव बन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को बन्द करने के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औंस (१४ मि लि) १.५०

सरलभेदी वटी—कब्ज रोग आजकल इतना फैला है कि प्रत्येक घर में छोटे बच्चों, जवानों, बूढ़ों सभी को शिकायत बनी रहती है कि दस्त साफ नहीं होता, जिसके कारण भूख नहीं लगती, तबियत भी उदास रहती है। कब्ज रहते रहते फिर अनेक रोग आदमी को आ घेरते हैं, वास्तव में रोगों का घर पेट नित्य साफ न होना ही है। जिस मनुष्य को नित्य प्रात दस्त साफ हो जाता हो उसे कोई रोग नहीं हो पाता। हमने यह दवा उन लोगों के लिये बनाई है जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई [illegible] साफ दस्त नहीं [illegible] हो। इसको रात्रि में सेवन करने से [illegible] प्रातः दस्त साफ होता है [illegible] साफ हो जाती है, [illegible] करता है. मूल्य १ शीशी (३१ गोली) १.२५ रु.

गोपाल चूर्ण—जिसकी प्रकृति पित्त की हो उन्हें इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो वह इसको ३ से ६ माशे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ [illegible] देने से सुबह दस्त हो जाता है। १ शीशी (३ औंस) ७५ न. पै.

मृदुविरेचन चूर्ण—यह [illegible] विरेचक है। जिन्हें मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियों से न गया हो भोजनोपरांत तीन तीन माशे गुनगुने पानी से फंकावें। यदि पेट में गुड़गुड़ाहट मालूम पड़े तो थोड़ी सौंफ चबा लें। इससे १५ दिन के सेवन से मलावरोध नष्ट हो जाता है। मूल्य १ शीशी ७५ न. पै.

आमनिस्सारक वटी—प्रातःकाल गुनगुने जल के साथ तीन गोली तक सेवन कराने से दस्त के द्वारा आंव निकलने लगती है। आंव निकालने के लिये यह एक ही वस्तु है। यदि पेट में दर्द ऐंठा करे तब चिन्ता नहीं करें। क्योंकि आंव निकलते समय प्रायः ऐसा होता है। मूल्य १ शीशी (१ तोला—११.६६ ग्राम) १.०० रु.

मुंह के छालों की दवा—गर्मी, मलावरोध अथवा किसी भी कारण से मुंह में छाले हो जाय, इसको छालों पर बुरक कर मुंह नीचे करदें। लार गिरने लगेगी, दिन-रात में छाले नष्ट हो जायेंगे। मू. १ शीशी (पाव औंस) ७५

कर्णामृत तैल—कान में सांय-सांय का शब्द होना दर्द होना, कान से मवाद बहना आदि कर्ण रोगों के लिये उत्तम तैल है। कान को पिचकारी से स्वच्छ करने के बाद इस तैल की २-३ बूंद कान में दिन में तीन चार डालें। १ शीशी आध औंस (१४ मि. लि.) ७५ न. पै.

बालापस्मारहर वटी—बालक बेहोश हो जाता है, हाथ-पैर ऐंठ जाते हैं, मुख से लार(झाग) देने लगता है, दांती बन्द हो जाती है। बालक की ऐसी हालत में यह दवा अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शीशी (३१ गोली) २.५०

मधुमेहान्तक रस—मधुमेह की यह प्रभावशाली उत्तम महौषधि है, बहुमूत्र व सोमरोग में भी लाभप्रद है। वैद्यों एवं मधुमेह रोगियों से अनुरोध है कि वे इसका व्यवहार अवश्य करें। मूल्य १० गोली २.२५

पायरिया मंजन—आजकल पायरिया रोग बहुत प्रचलित है। इस मंजन के नित्य व्यवहार करने से दांत चमकीले होते हैं और दांतों से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि दूर होते हैं। १ शीशी १.००

नयनामृतसुरमा- नेत्र रोगों के लिए उपयोगी सुरमा है। चांदी या काच की सलाई से दिन में एक बार लगाने

से धुंधला दीखना, पानी निकलना, खुजली नष्ट होते हैं। मूल्य ३ माशे (२.९२ ग्राम) की १ शीशी ७५ न पै

अग्निसंदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला, मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के वाद ३-३ माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि वढेगी। १ शीशी (२ औंस) ७५न. पै.

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण। एक वार चख लेनेपर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों में लाजवाव है। एक शीशी (२ औंस) ० ७५, छोटी शीशी (१ औंस) ०.४५

अग्निवल्लभ क्षार—सम्पूर्ण चिकित्सासार यहीं है कि जठराग्नि की रक्षा की जाय, चाहे सैकडों दोष-कुपित क्यों न हों, हजारों रोग शरीर में क्यों न भरे पडे हों परंतु उनकी चिन्ता न करके एक जठराग्नि की रक्षा करता हुआ मनुष्य अपने की रक्षा करे। जब जठराग्नि द्वारा आहार पच जाता है तब ही रस-रक्तादि शारीरिक धातु वनकर शरीर को वलवान वनाते हैं। लेकिन आज जिधर देखिये उधर यही शिकायत सुनने में आती है कि हमारी अग्नि कमजोर है, खाना हजम नहीं होता, दस्त साफ नहीं उतरता, भूख नहीं लगती इत्यादि। अग्निवल्लभक्षार के सेवन से अग्नि प्रज्वलित होती है, खाया हुआ खाना हजम होता है भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारों का आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तवियत मचलाना, अपान वायु का विगडना इत्यादि सामयिक शिकायतें दूर होती हैं। परदेश में रहकर सेवन करने वालों को जल दोष नहीं सताता। गृहस्थों के लिये संग्रह करने योग्य महौषधि है क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत देखो चट अग्निवल्लभ क्षार सेवन करने से उसी समय तवियत साफ हो जाती है। १ शीशी (२ औंस) का मूल्य १ २५

ग्रहणी रिपु—हमने इसे वडे परिश्रम से वनाया है। यह ग्रहणी रोग के लिये अव्यर्थ है। हजारों रोगियों पर परीक्षा कर हमने इसे वैद्यों के सामने रक्खा है। एक वार परीक्षा कर देखिये। पुराने दस्तों के लिये चुनी हुई एक ही औषधि है। पाचन शक्ति को वढ़ाने के लिये इसके समान दूसरी औषधि नहीं है। १ शीशी आध औंस ३.५०

खाज रिपु—खाज वहुत ही परेशान करने वाला तथा घृणित रोग है। गीली तथा सूखी दोनों प्रकार की खाज के लिये यह अक्सीर प्रमाणित हुआ है। मूल्य १ शीशी १ ००, छोटी शीशी ५६ न. पै.

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजला कर दवा की मालिश करें। स्नान करने के वाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पौंछ लिया करें। १ शीशी ७५ न. पै.

स्वादिष्ट चटनी—अति स्वादिष्ट और पाचक चटनी है। यह सडे गले द्रव्यों से निर्मित वाजारू सस्ते गीले चूर्ण के समान नहीं। सर्वोत्तम और शीघ्र प्रभावकारी द्रव्यों निर्मित है। एक बार परीक्षा करने पर ही इसके गुणों से आप परिचित हो सकेंगे। मूल्य १ शीशी (१ औंस) १.००

नेत्रबिन्दु—दुखती आंखों के लिये अत्युपयोगी प्रसिद्ध महौषधि मूल्य आध औंस(१४ मि लि.)८७ न.पै., ¼ औंस (७ मि.लि) ०.५०

स्तम्भन वटी—३२ गोली की १ शीशी २.००

स्वप्न-प्रमेह हर वटी—३० गोली की १ शीशी २.५०

स्वप्न-प्रमेहहर चूर्ण—२ औंस की शीशी २.५०

रज प्रवर्तक वटी—३० गोली की १ शीशी १ ५०

हमारे सफल सैट

प्रदर हर सैट—१. स्त्री सुधा—स्त्रियों के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध लाभकारी औषधि मूल्य १ वोतल ४.५०, १ शीशी २ ०० । २. मधुकाद्यावलेह- स्त्रीसुधा के साथ इसे भी व्यवहार करने से शीघ्र लाभ होता है। १ शीशी ३.५०

हिस्टेरियाहर सैट—१५ दिन की तीन दवाओं का मूल्य ६.००

निर्बलताहर सैट—मकरध्वज वटी, तैल व पोटली तीनों दवायें २० दिन व्यवहार करने योग्य मूल्य ८.००

धन्वन्तरि तैल—मुरदार नसों पर मालिश के लिये १ शीशी ३.००

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिये १ डिब्बा मूल्य ३.००

श्वेतकुष्ठहर सैट—इसमें श्वेतकुष्ठ हर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधिया हैं। इन तीनों औषधियों के विधिवत् अधिक दिन सेवन करने से श्वेत कुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। मूल्य १५ दिन को तीनों औषधियों का ७.००

रक्तदोपहर सैट—इसमें धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसा परेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ—ये तीन औषधिया है। इनके सेवन से सभी प्रकार के रक्त विकार जनित विकार तथा चर्मरोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य १५ दिन की तीनों दवाओं का ८.००, पोस्ट व्यय ४.००

अर्शान्तक सैट—इसमें वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधियां हैं। इनके प्रयोग से दोनों प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २—१ दिन में वन्द हो जाता है। मूल्य १५ दिन की तीनों दवाओं का ५.००

वातरोगहर सैट—इसमें वातरोगहर तैल रस एवं अवलेह—ये तीन औषधिया हैं। इन तीनों औषधियों के व्यवहार से जोड़ों का दर्द, सूजन, अङ्ग विशेष की पीड़ा, पक्षाघात आदि समस्त वात-व्याधियों में लाभ होता है। १५ दिन सेवन योग्य तीनों औषधियों का मूल्य १०.०० रु०

असली एवं पूर्ण विश्वस्त

निम्न वस्तुएँ बाजारो मे अधिकाश नकली तथा निम्न कोटि की मिलती है। ये वस्तुयें ऐसी है जिनकी आवश्यकता प्रत्येक वैद्य एव औषधि निर्माता को होती है। नकली उपादानो से निर्मित औषधि लाभ क्या कर सकेगी यह आप भी भलीभाति जानते हैं। अतएव अपने ग्राहको से आग्रह करते हैं कि इन वस्तुओ को आप पूर्ण विश्वस्त होने का विश्वास रखते हुए हमसे मगाइयेगा और अपनी औषधियो के गुणो से रोगियो को लाभ पहुँचाइयेगा।

पूर्ण विश्वस्त

सर्वोत्तम शिलाजीत नं० १

सूर्यतापी

शिलाजीत पत्थर मगाकर हम अपनी देखरेख मे अत्युत्तम शिलाजीत निर्माण करते हैं। किसी भी प्रकार की शका न करते हुए आवश्यकतानुसार शिलाजीत हमारे यहा से मगाइयेगा।

मूल्य १ सेर (९३३ ग्राम) ५०.००,
५ तोला (५८ ग्राम) ३ २५

शहद

अत्युत्तम एव विशुद्ध शहद जगलो से सग्रह कराया जाता है। किसी भी प्रकार की मिलावट नही होगी। पैंकिंग भी पिल्फर-फ्रूफ कार्क द्वारा सुन्दर आकर्षक किया जाता है।

मूल्य— १ पौड [४६७ ग्राम] २ ४४
१० तोला [११७ ग्राम] ० ७५
५ तोला [५८ ग्राम] ० ४७

गिलोय सत्व

जङ्गलो मे आदमी भेजकर बहुत बडी तादाद मे गिलोय सत्व तैयार कराते हैं। पूर्ण विश्वस्त गिलोय सत्व हमसे मगाइये।

मूल्य— १ सेर (९३३ ग्राम) २० ००
१ तोला (११ ६६ ग्राम) ० ३१

कस्तूरी-केशर आदि

पूर्ण विश्वस्त एव उचित मूल्य पर निम्न द्रव्य हमसे मगाकर व्यवहार करें।

कस्तूरी न १ सर्वोत्तम	१ तोला [११ ६६ ग्राम]	१० ००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	,,	६०.१०
केशर काश्मीरी	,,	१८.००
केशर चूरा [औषधि निर्माण मे व्यवहार करने योग्य उत्तम]	,,	८ ००
अम्बर अत्युत्तम	,,	३६.००
गोलोचन असली	,,	४० ००
कल्बुलहज्र	,,	१ ५०
कहरवा	,,	५ ५०
खर्पर [खपरिया]	,,	२ ००
माणिक्य [याकूत]	,,	२ ००
नीलम खड	,	३ ००
जहर मोहरा खटाई	,,	१ ००
वैक्रान्त खड	,,	२.००
पुखराज खड	,,	३.००
पिरोजा खड	,	२.००
अकीक दाना	५ तोला [५८ ग्राम]	२ ००
अकीक खड	,,	१ ००

सर्पगंधा

उन्माद एव अन्य मस्तिष्क विकृतियो के लिये यह जडी बूटी सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है एव इसकी प्रसिद्धि के कारण इसकी माग अधिक होने के कारण नकली जडी भी बाजार में चल रही हैं। सर्वोत्तम असली सर्पगधा हमने सग्रह की है।

मूल्य १ सेर [९३३ ग्राम] १४.००

इन द्रव्यों के भाव कमीशनादि कम करके लिखे गये हैं, अतएव सूची के प्रारम्भ में लिखे नियमानुसार इन भावों पर कमीशन नही दिया जायगा।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

शारीरिक चित्र

ये चित्र अनेक रंगों में आफसैट प्रेस से बहुत ही आकर्षक तैयार कराये गये हैं। इन चित्रों का साइज एक समान २० इञ्च चौड़ाई तथा ३० इञ्च लम्बाई है। ऊपर नीचे लकड़ी लगी है, कपड़े पर मढे हैं तथा चिकित्सालय में टांगने पर उसकी शोभा बढ़ाने वाले हैं। सभी विवरण हिन्दी में लिखा है।

नं. १–अस्थिपञ्जर—इस चित्र मे सिर से लेकर पैर तक की सभी अस्थियो को बडे सुन्दर ढग से दर्शाया गया है। हाथ, अगुलियो, पैर, रीढ, छाती की सभी अस्थिया स्पष्ट समझ सकते हैं। मूल्य ५ ०० रु०

नं. २–रक्त परिभ्रमण—इस चित्र मे शुद्ध-अशुद्ध रक्त की धमनी एव शिरायें अपने प्राकृतिक रगो मे दर्शाई हैं। भ्रूण में रक्तपरिभ्रमण का प्रथक् चित्रण किया गया है। एक हाथ और एक पैर मे शिराये दर्शाई गई हैं तथा दूसरे मे धमनिया। मूल्य ५ ०० रु०

नं. ३–वातनाड़ी संस्थान—इस चित्र मे सम्पूर्ण वात नाडी मण्डल (Nervous-System) का सुन्दर व स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऊर्ध्वर्ग-वातनाडी तथा सुषुम्ना और मस्तिष्क सम्बन्ध का चित्रण प्रथक् किया है। चित्र अपने ढग का निराला है। मूल्य ५.०० रु०

नं. ४–नेत्र रचना एवं दृष्टि विकृति—इसमे प्रथक्-प्रथक् ६ चित्र हैं। १ दक्षिण चक्षु–इसमे चक्षु के वाह्य अवयव दर्शाये गये हैं। २ पटलो और कोष्ठो को दिखाने के लिये चक्षु का क्षितिज काट। ३ चक्षु से सम्वन्धित नाडी। ४ नेत्र चालिनी पेशिया। ५ दृष्टिभेद (दर्शन सामर्थ्य)। ६ साधारण स्वस्थ नेत्र एव दृष्टि विकृति। इन चित्रो से नेत्र विषयक सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट समझ मे आयेगा। मूल्य ५ ०० रु०

चारो चित्र एक साथ मगाने पर मूल्य केवल १६ ०० रु०

नोट—सादा विना कपड़ा लकड़ी लगे चित्र शीशा में मढ़ने के लिये १ चित्र ४ ००, चारों चित्र मंगाने पर १२.००

वैद्यों के लिये आवश्यक

रोगी रजिस्टर—हर वैद्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने रोगियो का विवरण नियमित रूप से लिखे। यह चिकित्सक की अपनी सुविधा तथा कानूनी दृष्टि दोनो प्रकार से आवश्यक है। २००, ४०० तथा ६०० पृष्ठो के ग्लेज कागज के सजिल्द 'रोगी रजिष्टर' हमने तैयार किये है जिनमे आवश्यक कालम दिये हैं। मूल्य २०० पृष्ठो का ३ ५०, ४०० पृष्ठो का ६ ५० रु०, ६०० पृष्ठो का ९ ५० रु०

रोगी प्रमाणपत्र पुस्तिका—रोगियो को अवकाश प्राप्ति के लिये प्रमाणपत्र देने के फार्म ग्लेज कागज पर दो रगो मे तैयार किये हैं। हिन्दी मे ५० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १ ०० रु०, अग्रेजी अथवा हिन्दी मे बढ़िया कागज पर धन्वन्तरि साइज मे दो रगो मे छपे ४० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १ २५ रु०

स्वस्थ प्रमाणपत्र पुस्तिका—सरकारी कर्मचारा वीमार होने के कारण अवकाश लेते है। स्वस्थ होने पर कार्य पर पहुँचने पर उन्हे "वे स्वस्थ" हैं, इस विषय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना होता है। वैद्य इस पुस्तिका को मगाकर स्वस्थ-प्रमाणपत्र आसानी से दे सकेंगे। हिन्दी मे ५० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका १ ०० रु०, अग्रेजी अथवा हिन्दी मे वढिया कागज पर धन्वन्तरि साइज मे छपे ४० प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १ २५ रु०

रोगी व्यवस्थापत्र—रोग के लक्षण, तारीख, औषधि आदि इन फार्मों पर लिखकर रोगी को दे दीजिए। वे रोगी रोजाना या जब औषधि लेने आयेगे आपको यह फार्म दिखा देंगे। इनसे उनका पहिला पूरा हाल आपके सामने आ जायगा। साइज २० × ३० = ३२ पेजी। मूल्य ० ३७ प्रति सैंकडा।

आघात प्रमाणपत्र—चोट लग जाने पर चिकित्सक को प्रमाणपत्र देना होता है। इस फार्म पर आप यह प्रमाणपत्र सुगमता से दे सकेंगे। फुलस्केप साइज के २४ प्रमाणपत्रो की पुस्तिका का मूल्य १ ०० रु०

तापमान चार्ट–(टेम्परेचर चार्ट)—इससे रोगियो का तापमान अकित करने मे वडी सुविधा रहती है। इस चार्ट पर दिन मे चार समय का तापमान १२ दिन तक अकित किया जा सकेगा। अन्य निदान विषयक आकडे भी लिखे जा सकते हैं। मूल्य २५ चार्टों का १ ०० रु० मात्र।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

✻ आयुर्वेदिक पुस्तकें ✻

घृ० पाक संग्रह—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। श्री त्रिवेदी जी की सकलन योग्यता से जो पाठक परिचित हैं वे इस पुस्तक की उपयोगिता भली प्रकार समझ सकते हैं। इस पुस्तक मे ४०० से अधिक पाको का सग्रह प्रकाशित है। हर पाक की निर्माण विधि, मात्रा, सेवन विधि, गुण आदि दिये हैं। प्रयोग कहा से प्राप्त किया गया है यह भी सप्रमाण दिया है। रोगी रोग मुक्ति के पश्चात् रोगजन्य निर्वलता निवारणार्थ कोई ऐसी वस्तु पाने का अभिलाषी होता है जो औषधि होते हुये भी रुचिकर हो तथा निर्बलता एव रोग निवारण कर सके। ऐसे समय मे चिकित्सको को उस रोग मे उपयोगी पाक-निर्माण कर उसे देना चाहिये। प्राय सभी रोगो पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक मे आपको मिलेंगे। गृहस्थ स्वय पाक निर्माण कर स्वादिष्ट भोजन के साथ रोग निवारण कर सकते हैं। पुस्तक हर प्रकार से उपयोगी है। मूल्य—सजिल्द का ३ ५०

सूर्यरश्मि-चिकित्सा (नवीन संस्करण)—सूर्य-रश्मि चिकित्सा को अंग्रेजी मे क्रोमोपैथी (Chromopathy) कहते हैं। अग्रेज इस चिकित्सा के आविष्कर्त्ता अमेरिका के डाक्टरो को मानते हैं। पर वास्तव मे यह चिकित्सा अति प्राचीन और हमारे शास्त्रो मे यहा तक कि वेदो मे भी इसका उल्लेख मिलता है। इस चिकित्सा में सूर्य की किरणो से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है। पुस्तक वडे परिश्रम से लिखी गई है। इसको पढकर पाठक देखेंगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है। उसकी किरणें हमारे शरीर को कितनी लाभदायक हैं और इसके द्वारा रोग किस प्रकार वात की वात मे दूर किये जा सकते हैं। पुस्तक अपने विषय की पहली ही है। अनेक रगीन चित्र हैं। मूल्य ० ७५।

उपदश विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—लेखक—श्री कविराज प० वालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक मे उपदश (गरमी चादी) रोग के वैज्ञानिक कारण निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं—उपदश परिचय, प्राच्य पाश्चात्य का साम्यवाद, सक्रमण निदान, सिफलिस के भेद, उपदश प्राथमिक कील, लिंगार्श, औपसर्गिक सकल रोग, उपदशज विकृतिया, मस्तिष्क विकार, फिरग चिकित्सा मे पारद प्रयोग पथ्यापथ्य आदि उपदश सम्बन्धी सभी विषय इसमे वर्णित हैं। कोई भी आवश्यक विषय छूटने नही पाया है। मूल्य १ ००

प्रयोग पुष्पावली -सक्षिप्त रूपेण अनेको सामान्य एव आश्चर्यजनक वस्तुयें निर्माण करने की विधिया इस पुस्तक मे प्रकाशित हैं। आरम्भ मे प्रकाशित सफल प्रयोग सग्रह के १-१ प्रयोग से पाठक इस पुस्तक का मूल्य वसूल समझें। ये प्रयोग वहुत समय से परीक्षित हैं और सफल प्रमाणित हो चुके हैं। अनेक उद्योग धधो का सकेत इसमे मिलेगा जिससे पाठक वहुत लाभ उठा सकते हैं। समष्टि रूप मे पुस्तक वेकार मनुष्यो को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है। गृहस्थियों के लिये नवीन और उपयोगी बातो का भडार है जिससे वे अपने दैनिक कार्यों मे पर्याप्त लाभ उठा सकते है। पहिले दो सस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है। पृष्ठ सख्या ११२ मूल्य १ २५

रसायन सहिता (भाषा टीका सहित)—आयुर्वेद साहित्य के अनमोल रत्न अपनी अलौकिक प्रतिभा के साथ साथ अन्धकार से ढके हुए हैं। अमूल्य पुस्तकें यत्र-तत्र पडी हुई हैं जिनके प्रकाशन की आवश्यकता है। यह पुस्तक भी एक ऐसा ही रत्न है। अनुभवी और विचारशील लेखक महोदय ने हिमालय पर्यटन के परिश्रम से इसकी खोज की है। उन्ही के प्रशसनीय प्रयत्न से वैद्य समुदाय की सेवा मे उपस्थित कर सके हैं। इसके अनेक अव्यर्थ प्रयोग, सत्व प्रस्तुत विधि, उपधातु का शोधन मारण प्रभृति अनेक विषय दिये गये हैं। मूल्य १ ००

कुचिमार तन्त्र (भाषा टीका)—श्रीमद् कुचिमार मुनि प्रणीत पुस्तक पुरानी और अत्यन्त गोपनीय है। इसमे इन्द्रिय वृद्धि, स्थूलीकरण, कामोद्दीपन लेप, वाजी-

करण, द्रावण, स्तम्भन, सङ्कोचन व केशपात, गर्भाधान सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भलीभांति बताये गये हैं। इस नवीन संस्करण मे प्रमेह, नपुंसकता, मधुमेह आदि रोगो पर स्वानुभूत प्रयोगो का एक छोटा सा संग्रह भी दिया है। मूल्य ० ५०

दशमूल (सचित्र)—लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी विशेषज्ञ। दशमूल किसे कहते हैं? किन किन औषधियो की आकृति कैसी है? यह विरले ही जानते हैं। इस पुस्तक मे दशमूल की दशो औषधियो का सचित्र वर्णन है। साथ ही उनके पर्याय नाम गुण और प्रयोग भी बतलाये गये हैं तथा दशमूल पंचमूल से बनने वाले अनेक योगो की विधिया भी दी गई हैं। चित्र इतने स्पष्ट है कि देखते ही झट पहिचान सकते हैं। मूल्य ० ५०

✓दंत-विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—वह भिषग् रत्न स्वर्गीय श्री गोपीनाथ जी गुप्त की सारपूर्ण रचना है। इसमे दांतो की रचना, आन्तरिक दशा रक्षा के उपाय, अनेक दन्तरोगो के भेद, वर्णन और सरल चमत्कारिक उपचार दिये गये हैं। चार चित्र युक्त मूल्य ० ३७

✓न्यूमोनिया प्रकाश (द्वितीय संस्करण)—आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पंडित देवकरण जी बाजपेयी की यह वही उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि पदक मिला था और जो निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनिया की शास्त्रीय व्युत्पत्ति, कारण निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बातें एक ही पुस्तक मे भलीभांति वर्णित हैं। मूल्य ० ३७

प्राकृतिक ज्वर—लेखक—स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। मलेरिया (फसली बुखार) का पूर्ण विवेचन है। आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसा होता है। उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदीय प्रयोग, क्विनाइन से हानिया आदि विषयो पर पूर्ण प्रकाश डाला है। पुस्तक स्वानुभव के आधार पर लिखी होने के कारण महत्वपूर्ण है। मूल्य ० २५

वैद्यराज जी की जीवनी—स्वर्गीय लाला राधावल्लभजी की जीवनी बडी ओजस्वी भाषा मे लिखी है। इसके पढने से आलसी पुरुष भी उद्योगी और परिश्रमी बनने की इच्छा करता है। मूल्य ० १९

वेदों मे वैद्यक ज्ञान—लेखक-स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमे आयुर्वेदीय विषयो का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है, शब्दार्थ सहित दिये है। मूल्य ० १९

कूपीपक्व रसायन—लेखक-वैद्य देवीशरण जी गर्ग प्रधान सम्पादक धन्वन्तरि। धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनों के गुण, मात्रा, अनुपान सेवन विधि आदि विस्तृत रूप से वर्णित हैं। मूल्य प्रचारार्थ केवल ० ८६

✓चंद्रोदय मकरध्वज (तृतीय संस्करण)—लेखक-स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक मे पारद शुद्धि, गंधक शुद्ध, पारद के संस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, भ्राष्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न भिन्न रोगो मे अनुभव सभी बातें स्वानुभव के आधार पर वर्णित हैं। मूल्य ० २५

भस्म पर्पटी—लेखक—देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक धन्वन्तरि-इसमे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाली भस्मो और पर्पटियो का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग के लक्षणानुसार औषधियो को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया जा सकता है यह आप इस पुस्तक से जान सकेंगे। मूल्य ६ न० पै०

रस रसायन गुटिका गूगल—धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एवं अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक मे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्मित रस-रसायन गुटिका गूगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहार विधि बडे ही उपयोगी ढङ्ग से लिखी हैं। चिकित्सको के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी बन गई है क्योकि लेखक ने अपने २० वर्ष के चिकित्सानुभव को निचोड इसमे रख दिया है। मूल्य २५ न० पै० मात्र।

✓रक्त (Blood)—इसमे धन्वन्तरि कार्यालय के संस्थापक श्री वैद्यराज राधवल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एवं रक्त सम्बन्धित सभी मोटी मोटी बातें आयुर्वेद एवं एलोपैथी उभय-पद्धतियो से सरल हिन्दी भाषा मे समझाकर लिखी हैं। नवीन संस्करण मू० २५ न० पै०

✓इन्फ्लुएन्जा (फ्लु)-लेखक—श्री पं कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इसमे इन्फ्लुएन्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल चिकित्सा विधि वर्णित है। फ्लु और इसके सभी उपद्रवो की आयुर्वेदीय चिकित्सा है। मूल्य ५० न० पै०

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

❀ आयुर्वेदीय ग्रन्थ रत्न ❀

अष्टांगहृदय (सम्पूर्ण)—विद्योतनी भाषा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एव विस्तृत भूमिका सहित। टीकाकार श्री अत्रिदेव मूल्य १५ ००, कृष्णलाल भारतीय २०.००।

अष्टांग-संग्रह (सूत्रस्थान)-हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छागाणी। मू० ८ ००

काश्यप संहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य, विद्योतनी भाषा टीका विस्तृत सस्कृत हिन्दी उपोद्घात सहित। ग्रन्थ का मुख्य विषय 'कौमारभृत्य' अष्टाङ्गायुर्वेद का अपरिहार्य अङ्ग है। यह विषय पूर्ण विस्तृत और प्रमाणिक रूप से इस पुस्तक मे वर्णित है। मूल्य १६ ००

कौमारभृत्य (नव्य बालरोग सहित)—बाल रोगो पर प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के आधार पर श्री प० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी A M S द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ। मूल्य ८ ००

गंगयति निदान— लेखक जैन यति गंगाराम जी अनुवादकर्त्ता आयुर्वेदाचार्य श्री नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री। मूल्य ६ ००

चरक संहिता (सम्पूर्ण)—श्री जयदेव विद्यालकार द्वारा सरल सुविस्तृत भाषा टीका युक्त, दो जिल्दो मे, (पृष्ठ संस्करण) मूल्य ३० ००

चरक संहिता—हिन्दीव्याख्या 'विमर्श' परिशिष्ट सहित दो भागों मे। अत्युपोगी नवीन विस्तृत टीका। मू० ३६ ००

चरक संहिता (सम्पूर्ण)—तीन भागो मे टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्ता। मूल्य २४ ००

चक्रदत्त—भावार्थ सदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विषद टिप्पणी सहित। परिशिष्ट मे पचलक्षणी निदान, डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मूल्य १० ००

द्रव्य गुण विज्ञान-(पूर्वार्ध)-छात्रोपयोगी सस्करण। लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य। द्रव्य, गुण, रसवीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म का विज्ञानात्मक विवेचन। मूल्य ४ ५०, प्रियव्रत शर्मा लिखित प्रथम भाग ५ ५०, द्वितीय तृतीय भाग १२ ५०

भावप्रकाश (सम्पूर्ण)—भाषा टीका सहित। दो जिल्दों में शारीरीक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतो का समन्वयात्मक वर्णन, निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा प्रकरण मे प्रत्येक रोग पर प्राच्य पाश्चत्य मतो का (समन्वयात्मक) विशेष टिप्पणी से सुशोभित है। मूल्य २६ ००, श्री लालचन्द्र कृत २० ००, कान्तिनारायण मिश्र २० ००

भावप्रकाश निघण्टु—भाषा टीका एव वृहद परिशिष्ट सहित। लेखक-प० गगासहाय मू ६ ०० हरीतक्यादि वर्ग लेखक विश्वनाथ द्विवेदी ७ ००

माधवनिदान (भाषा टीका युक्त)—पूर्वार्द्ध-मधुकोषसस्कृत टीका विद्योतनी भाषा टीका तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणीयुक्त यह माधव निदान बडा उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १४ ००

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोष सस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद। वक्तव्य एव टिप्पणीयुक्त यह ग्रन्थ विद्यार्थियो तथा चिकित्सको के लिये अवश्य पठनीय है। प० पूर्णानन्द शास्त्रीकृत टीका पृष्ठ १०१८, दो भागो मे मूल्य १२ ०० माधव निदान परिशिष्ट (परीक्षा-प्रश्नोत्तरी) विद्यार्थियो के लिये अत्युपयोगी मू० ६ ००

माधव नदान—सर्वाङ्ग सुन्दरी भाषा टीका ४ ५०

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशकर शास्त्री, मधुकोष, सस्कृत व्याख्या तथा मनोरमा हिन्दी टाका सहित। पृष्ठ सख्या ४१२ सूल्य ६ ००

✓ रसायनसार—श्री प० श्यामसुन्दराचार्य के बीसियो वर्षो के परिश्रम से प्राप्त प्रत्यक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रन्थ। मूल्य ८ ००

रसेन्द्रसार सग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भाषा टीका परिशिष्ट मे नवीन रोगो पर रसो का प्रभाव,

मानपरिभाषा, मूषा तथा पुट प्रकरण, अनुपान विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि। मूल्य ६ ००

✓रसेन्द्रसार संग्रह (तीन भागों में)—आयुर्वेद बृहस्पति प० घनानन्द जी पन्त द्वारा संस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यो, विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है। पृष्ठ सख्या ११५० । मूल्य ११ ००

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भाषा टीका एवं परिशिष्ट सहित मू० १० ००

✓रसतरंगिणी—चतुर्थ सस्करण—भाषाटीका सहित रस निर्माण धातु उपधातुओ का शोधन मारणयुक्त यह अनुपम ग्रंथ है। मू० १० ००

✓रसराज महोदधि (पांच भाग)--वस्तुत यह आयुर्वेदीय रसो का सागर ही है। प्राचीन ग्रन्थ है तथा सरल भाषा मे लिखा, उपयोगी रस ग्रन्थ है। नवीन सजिल्द सस्करण। मू० १० ००

योगरत्नाकर—कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थो मे यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सक के लिए ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयो को सग्रह किया गया है माधवोक्त क्रम से सभी रोगो का निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य १८ ००

सौश्रुती—लेखक रमानाथ द्विवेदी। अष्टाङ्ग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्यपाश्चात्य समन्वय से युक्त। मू ८ ५०

शाङ्गधर संहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एवं विविध परिशिष्ट सहित मू० ६ ००

सुश्रुत संहिता (सम्पूर्ण)—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यार्थियो के लिये पठनीय है। पक्के कपडे की जिल्द मूल्य १५ ००, कवि अम्बिकादत्त कृत सम्पूर्ण २४ ००

सुश्रुत सहिता-सूत्र स्थान—टीकाकार श्रीयुत्त घाणेकर। अब तक की सभी टीकाओ मे उत्कृष्ट टीका मू०६ ००, शारीर स्थान मू० ८ ००, डा जे डी शर्मा (शारीर स्थान) ५ ००

हारीत संहिता—ऋषि प्रणीत प्राचीन सहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद। पृष्ठ ५१२ मूल्य ८.५०

हरिहर सहिता—वैद्यराज हरिनाथ साख्याचार्य नवीन औषधियो का भी समावेश है। सरल भाषा टीका सहित मू० ८ ००

वैद्य सहचर—लेखक प० विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य। चतुर्थ सस्करण। इसे वैद्यो का सहचर ही समझे। इसमे लेखक ने अपने जीवन का सपूर्ण चिकित्सानुभव रख दिया है। मू० ३.००

चिकित्सा रत्न—रामरतन गंगेले-एक चिकित्सक के लिये सब प्रकार की सक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मू० ५ ७५

चिकित्सा तत्व प्रदीप—एक चिकित्सक के लिये अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। प्रथम भाग ६ ००, द्वितीय भाग ८ ००

वनौषधि चन्द्रोदय (१० भाग)—प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भडारी कृत। मूल्य ४०.००, प्रत्येक भाग ५ ००

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी ससार मे अपूर्व और पहला ग्रन्थ बिना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो सस्कृत जरा भी नहीं जानते वे भी इस ग्रन्थ को बिना गुरु के पढ कर वैद्य बन सकते हैं। जिन्हे शक हो वे केवल चौथा भाग मंगा कर दिल का वहम मिटालें।

चिकित्सा चन्द्रोदय		१ ला भाग	४ ५०
,,	,,	२ रा भाग	७ ५०
,,	,,	३ रा भाग	६ ००
,,	,,	४ था भाग	८.००
,,	,,	५ वा भाग	८ ००
,,	,,	६ ठा भाग	५ ००
,,	,,	७ वां भाग	१३ ००
			५२ ००

नोट—एक साथ ७ भाग खरीदने वाले को किताब रेल पार्सल से मंगानी चाहिये। एक पूरा सैट लेने वालों को ४७ ०० रु० देने पडते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा—गृहस्थो के घर की यह रामायण है। हर घर मे इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है। तन्दुरुस्ती नही तो दुनिया मे रहा ही क्या ? मूल्य ५ ००

आयुर्वेद प्रकाश—श्री गुलराज शर्मा मिश्र—यह ग्रन्थ माधवोपाध्याय द्वारा रचित रसशास्त्र का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसको श्री मिश्र जी ने व्याख्या कर और भी

अधिक उपयोगी बना दिया है। टीका मे अनेक विषयो का स्पष्टीकरण किया गया है मू० १२ ५०

काय चिकित्सा (प्रथम भाग) श्री रामरक्ष पाठक पाठक जी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढा है वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक मे आयुर्वेदीय सिद्धान्तो का विशद रूप मे विवेचन किया गया है। पुस्तक विद्यार्थियो एव अध्यापको सभी के लिए अत्युपयोगी है। लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साइज छपाई सुन्दर, कपडे की जिल्द मू० १२ ५०

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—ले० हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ नवीन मतानुसार शवच्छेदन (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिये अनेक चित्र साथ दिये गये है। मूल्य १५.००

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A M S—विकृति विज्ञान (Pathology) विषय का हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। अनेक चित्र साथ मे दिये गये हैं। प्रत्येक रोग का विकास किस प्रकार होता है एवं उस समय शरीर के किस अङ्ग मे क्या क्या परिवर्तन होते हैं स्पष्ट रूप से समझाया गया है। अन्त मे हिन्दी एव इङ्गलिश शब्दो की विशाल सूची दी गई है। विद्यार्थियो के लिये उपादेय है। मूल्य २२ ००

ऐलोपैथिक पेटेंट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जाने वाली पेटेन्ट औषधिया दी हैं तथा प्रत्येक पेटेन्ट औषधि किस किस रोग पर प्रयुक्त हो सकती है यह भी दिया गया है। मूल्य २ ०४

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक प० विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B A, आयुर्वेदाचार्य। प्राच्य एव पाश्चात्य दोनो का समन्वय करते हुये नेत्र चिकित्सा पर हिन्दी मे विशाल ग्रन्थ। मूल्य १० ००

शल्य प्रदीपिका—लेखक डा० मुकन्दस्वरूप वर्मा। शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी मे लिखी हुई है। प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है। अनेक चित्र दिये हैं। मू० १२ ५०

बालरोग चिकित्सा—लेखक डा० रमानाथ द्विवेदी एम ए, ए एम एस। प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुये विशद वर्णन युक्त मूल्य ५ ००

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा। यह पुस्तक हिन्दी मे अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मू० ७.५०

धात्री विज्ञान—डा० शिवदयाल गुप्त A M S प्रारम्भ मे नारी जननेन्द्रिय रचना एव क्रिया शारीर, गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु परिचर्या एव बाल्यकालीन रोगो का सक्षेप मे वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र दिये हैं। मू० २ ५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा० लक्ष्मीशङ्कर गुरू। प्रसूति विषयक हिन्दी मे उत्तम एव सक्षिप्त पुस्तक। सम्बन्धित चित्र हैं। मू० २ ००

जन्म निरोध—लेखक ए ए खा M Sc। पुस्तक मे जन्म निरोध के लिये अनेक प्रकार की भौतिक, रासानिक, यान्त्रिक एव शस्त्रकर्मीय विधिया दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू० ६ ००

सामान्य शल्य विज्ञान (सचित्र)—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त A M S। शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रो द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, विद्यार्थियो एव चिकित्सको के लिये अत्यन्त उपादेय है। मू० १२ ००

आदर्श एलोपैथी मेटेरिया मैडिका—एलोपैथी विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि के प्रकृति, गुणधर्म, उपयोग, मात्रा, रोग निदान के अनुसार वर्णित हैं। मू ११ ००

हिंदी माडर्न मैडीकल ट्रीटमेट—(आधुनिक चिकित्सा) लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम एल गुजराल M B, M R C P (लन्दन) द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रमाणिक ग्रन्थ है। चिकित्सको के लिये अत्युपयोगी है। मू० २० ००

पेटेंट प्रेस्क्राइबर या पेटेंट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेन्ट औषधियो का तथा इञ्जेक्शनो का विवरण सुन्दर ढग से दिया है। मू० ७ ००

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—(दो भाग) श्री डा आगानन्द पचरत्न M B B S आयुर्वेदाचार्य। यह चिकित्सा विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमे १६ अध्यायो मे रोगो का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एव आयुर्वेदिक चिकित्सा बडी खूबी के साथ दी हैं। इसकी वर्णन शैली तुलनात्मक दृष्टि से ही महत्व की नही वरन् सफल चिकित्सा दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सको को उपादेय है। कपडे की सुन्दर जिल्द मू० प्रथम भाग १० ००, द्वितीय भाग १० ००

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य प० रामकुमार द्विवेदी। हिन्दी मे प्राच्य-पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड पुस्तक है। मू० १० ००

✓वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की द्वितीय कृति। इसमे २००० से अधिक पेटेन्ट तथा साधारण औषधियो के वर्णन के अतिरिक्त सैकडो नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातें दी हैं। मू० १२ ००

✓एलोपैथिक गाइड—लेखक डा० रामनाथ वर्मा एलोपैथी की ज्ञातव्य बातें सरल हिन्दी मे बताने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक, छठा संस्करण मू० १२ ००

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। इसमे एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगो का विशाल सग्रह है। पृष्ठ ७४१, मू० १३ ००

एलोपैथिक चिकित्सा (चौथा संस्करण)—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमे प्राय सभी रोगो का वर्णन, लक्षण निदान आदि सक्षेप मे वर्णन करके उन रोगो की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानो को मथकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये है। ८२५ पृष्ठो के विशालकाय सजिल्द ग्रन्थ का मू० १२ ००

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब मे रखकर चिकित्सार्थ जा सकते हैं जो आपका हर समय साथी का काम देती है। मू० ३ ००

एलोपैथिक पेटेंट मेडीशन—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की तथा किन किन द्रव्यो से निर्मित हुई है किस रोग मे प्रयुक्त होती है, लिखा गया है। दूसरे अध्याय मे रोगानुसार औषधियो का चुनाव किया है। मू० ४ २५

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका (पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान) लेखक—कविराज रामगुलीलसिह शास्त्री A M S। यह पुस्तक अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सको तथा विद्यार्थियो के लिये विशेष उपयोगी ढग से प्रस्तुत किया है। मू० प्रथम भाग सजिल्द १२ ००, द्वितीय भाग ३० ००

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—लेखक डाक्टर शिवदयाल जी गुप्ता ए एम एम। इस पुस्तक मे अब तक की सम्पूर्ण औषधिया जो एलोपैथी मे समाविष्ट हो चुकी हैं, सभी दी हैं। सफल सुबोध भाषा, वैज्ञानिक क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियो के सम्बन्ध मे आधुनिकतम सूचना, भिन्न भिन्न औषधियो से सम्बन्धित तथा चिकित्सा मे प्रयुक्त योगों का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी मे सबसे महान् और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमे १३०० पृष्ठ हैं का मू० १२ ००

एलोपैथिक सफल औषधियां—एलोपैथी की नवीनतम अत्यन्त प्रसिद्ध खास खास औषधियो का गुणधर्म विवेचन जो आजकल बाजार मे वरदान सिद्ध हो रही है। सभी सल्फाग्रुप आदि औषधियो के वर्णन सहित। मूल्य ३ ५०

नेत्र रोग विज्ञान—कृष्णगोपाल धर्मार्थ औषधालय द्वारा प्रकाशित अपने विषय की हिन्दी मे सर्वश्रेष्ठ पुस्तक सैंकडो चित्रो सहित मूल्य १५ ००

सचित्र नेत्र विज्ञान—लेखक डा शिवदयाल गुप्त, पृष्ठ संख्या ५६४, चित्र सख्या १३ मूल्य ८ ००

मल मूत्र रक्तादि परीक्षा—लेखक डा शिवदयाल गुप्त, अपने विषय की सर्वाङ्ग पूर्ण सचित्र और वैद्यो के बडे काम की पुस्तक है। मूल्य ३ ००

मिक्चर (छठा संस्करण)—प्रथम २६ पृष्ठों मे मिक्चर बनाने के नियम, औषधियो की तोल नाप, व्यवस्थापत्रो मे लिखे जाने वाले सकेतो की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बातें दी हैं। बाद मे उपयोगी इन्जेक्शनो का भी सकेत किया है। अन्त मे देशी दवाओ के अग्रेजी नाप दिये हैं। २१७ पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सको के लिए अत्युपयोगी है। मूल्य २ ५०

एनीमा और कैथीटर	० ३७
एनीमा टीचर	० २५
कम्पाउन्डरी शिक्षा	२ ५०

कपिङ्ग ग्लास मैन्युअल	० १९
मलेरिया (एलोपैथिक)	२ २५
कैथीटर गाइड	० २५
तापमान (थर्मामीटर)	० २५
थर्मामीटर मास्टर	० २५
स्टेथिस्कोप तथा नाडी परीक्षा	०·७५
स्टेथिस्कोप शिक्षक	१ ००
स्टेथिस्कोप	१ ००
एलोपैथिक मिक्चर	२ ००
एलोपैथिक सार सग्रह	७.००
एनाटोमी (शरीर ज्ञान सग्रह)	५ ००
मलेरिया कालाजार	१ ७५
मैडीसन (चिकित्सा ज्ञान सग्रह)	५ ००

इञ्जेक्शन विषयक पुस्तकें

इञ्जेक्शन—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा—अपने विषय की हिन्दी मे सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोडे समय मे ही ६ सस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसके आरम्भ मे सिरिंज के प्रकार, इ जेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि, रंगीन एव सादे चित्रो सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद मे प्रत्येक इञ्जेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने मे क्या सावधानी बर्तनी चाहिये आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई हैं। अन्त मे अकारादि क्रम से समस्त इ जेक्शनो की सूची तथा पृष्ठ सख्या दी गई है। चिकित्सको के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मूल्य १० ००

सचित्र इंजेक्शन—डा० शिवनाथ खन्ना—प्रस्तुत पुस्तक इ जेक्शन अर्थात् सूचीवेधन नामक विषय पर विस्तारपूर्वक, सरल, जनप्रचलित भाषा मे समझाकर लिखी गई है। चार खण्ड हैं जिसमे प्रथम खण्ड मे इ जेक्शन की विधिया तथा इ जेक्शन के भेद, द्वितीय खण्ड मे विभिन्न इ जेक्शनो के गुण कर्मादि, तृतीय खण्ड मे प्रधान रोगो मे लक्षण तथा उनमे दिये जाने वाले इ जेक्शन और चतुर्थ खण्ड मे अन्य आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक है। मू १० ००

इंजेक्शन तन्त्र प्रदीप—लेखक डा० गणपति सिंह वर्मा। सभी इ जेक्शनो का वर्णन है तथा उनके भेद और लगाने की विधि सरलतया दी है। मू० ५ ००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा रमेश चन्द्र वर्मा डी आई० एम० एस०। यह पुस्तक भी एलोपैथी इ जेक्शनो की उपयोगी विस्तृत सामिग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन, विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्के कपडे की जिल्द मूल्य ७ ५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका मे आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर मे सागर भर दिया है। मूल्य १ ५०

होमियो इ जेक्शन चिकित्सा—आरम्भ मे इ जेक्शनो के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात् होमियोपैथिक औषधियो के गुणादि का वर्णन किया है। मूल्य १ ७५

आयुर्वेदिक इ जेक्शन चिकित्सा—ले डा श्यामसुन्दर शर्मा। पुस्तक दो खडो मे विभाजित है। प्रथम खड मे इ जेक्शन लगाने की विधि आदि का सामान्य वर्णन किया गया है। मूल्य २ ५०

इंजेक्शन गाइड—लेखिका सुनीति रानी। प्रस्तुत पुस्तक मे इस विषय को सक्षेप मे समझाया गया है। आरम्भ मे इ जेक्शन विषयक साधारण जानकारी देने के पश्चात् हरेक रोग पर किन इ जेक्शनो का व्यवहार किया जाता है यह भलीप्रकार दिया गया है। सजिल्द मू ५ ००

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इ जेक्शन)—ले वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक में आयुर्वेदिक द्रव्यो एव जडी बूटियो के इञ्जेक्शनो का विस्तृत वर्णन किया है। स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मूल्य ५ ००

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश [चारो भाग]—इसमे घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राही के लिये उर्दू, सस्कृत व डाक्टरी आदि अनेको ग्रन्थो का सार भाग सग्रह किया गया है। पृष्ठ सख्या २२८ मू. ३ ५०

यूनानी चिकित्सा सार—इसमे यूनानी मत से सब रोगो का निदान व चिकित्सादि दी गई है। वैद्यराज दलजीतसिंह जी ने यह ग्रथ वैद्यो के लिये हिन्दी भाषा मे लिखा है जिसमे यूनानी चिकित्स पद्धति का सभी

कुछ दे दिया गया है। यह ग्रन्थ अनेक अरबी फारसी ग्रथ का साररूप है छपाई सुन्दर है। मू ४ ५०

यूनानी चिकित्सा विधि—इसके लेखक श्री मसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिन्सीपल यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली हैं। इसमे दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमो के अनुभूत प्रयोगो का निचोड है जिसके कारण यूनानी हकीमो की चिकित्सा दिल्ली मे खूब चमकी और आज तक नाम है। कपडे की पक्की जिल्द मूल्य ५ ००

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखा हुआ हिन्दी भाषा मे यूनानी का विशाल ग्रथ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढङ्ग पर लिखा गया है। इसमे पुराने व आधुनिक सभी हकीमो के १००० अनुभूत प्रयोग हैं, औषधियो के नाम हिन्दी मे अनुवाद करके दिये गये हैं। जिनके नाम नही मिले हैं ऐसी २५० औषधियो का वर्णन परिशिष्ट मे दिया है। ५१६ पृष्ठ पक्की सुन्दर कपडे की जिल्द मू १० ००

यूनानी चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा विज्ञान का हिन्दी मे अनुपम ग्रन्थ। इस पुस्तक के दो भाग किए गये हैं। प्रस्तुत भाग मे यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धातो का विशद विवेचन है। इसमे रोग के लक्षण निदान भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधिया हैं। ६६६ पृष्ठो के इस ग्रन्थ का मूल्य ८ ४०

यूनानी सिद्ध योग सग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगो का सग्रह है। सभी योग सफल परीक्षित और सहज मे बनने वाले हैं, हरक वैद्य के काम की चीज है। इसके सम्पादक हैं वैद्यराज दलजीतसिंह जी आयुर्वेद बृहस्पति। मू २ ५०

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत (कुल्लियात)—श्री बाबू दलजीतसिंह जी व उनके भाई रामसुशीलसिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ मे इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियो मे कितना सादृश्य तथा कितना असादृश्य है। इसका निर्माण दोनो का समन्वय हो सकता है इस आधार पर किया गया है। मूल्य १.२५

मखजनउल मुफरदात—(निघण्टु विज्ञान)—लेखक प० जगन्नाथप्रसाद शर्मा। मू० २ ००

करावादीन सिफाई—यूनानी प्रयोग सग्रह—लेखक प० जगन्नाथशर्मा। मू० २ ००

करावादीन कादरी—लेखक जगन्नाथप्रसाद हैउमुर्रिस चार भाग मू० ८ ००

यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान—हकीम डा० दलजीत सिंह पूर्वार्ध मे द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध मे ५३० यूनानी द्रव्यो के पर्याय, उत्पत्ति-स्थान, वर्णन, रासायनिक सगठन, प्रकृति और गुण का पूर्ण विवेचन दिया है। मूल्य २२ ००

यूनानी शब्द कोष—यूनानी दवाओ के हिन्दी पर्याय इसमे मिलेंगे। इससे दवा लेने में बडी सहूलियत होगी। मूल्य ० ३७

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—डा० गणपति सिंह वर्मा द्वारा १५ वर्ष के परिश्रम से प्राप्त अनुभूत प्रयोगो का सग्रह है। प्राय सभी रोगो पर आपको सरल सफल प्रयोग इस पुस्तक मे मिलेगे। पृष्ठ ४४५ मू० ६ २५

अनुभूति—इसमे आयुर्वेदिक सफल प्रयोग तथा लेखक के स्वानुभवपूर्ण १८६ प्रयोगो का अति उपयोगी सग्रह है। मू० २ ००

गुप्तयोग रत्नावली—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी द्वारा लिखित–इसने भिन्न भिन्न रोगो पर अनुभूत योगो का वर्णन है। मू० २ ५०

गुप्त सिद्ध प्रयोगाक (प्रथम भाग)—द्वितीय सस्करण–यह वह विशेषांक है जिसके प्रकाशन ने धन्वन्तरि की ग्राहक सख्या उसी वर्ष दूनी हो गयी थी। इसमे २१६ वैद्यो के ५०० अनुभवी प्रयोग हैं। इसमे हर छोटे बडे रोगो पर २-४ प्रयोग आपको अवश्य मिलेंगे। मू० ६ ००

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (द्वितीय भाग)—यह धन्वन्तरि का छोटा विशेपाक है अनेक सिद्धहस्त अनुभवी वैद्यो के २५० प्रयोगो का उत्तम सग्रह है। मू० २.००

गुप्तसिद्ध प्रयोगाक (चतुर्थ भाग)—सन् ५८ का धन्वन्तरि का विशेपाक है। १३२८ प्रयोगो का सग्रह है। उत्तम ग्लेज कागज पर जिल्द बधा हुआ। ८ ५०

पैसे पैसे के चुटकले—सस्ते तथा सफल प्रयोगो का

संग्रह मू० २ ००

राजकीय औषधि योग संग्रह—उत्तर प्रदेश के सरकारी आयुर्वेदिक औषधालयो मे व्यवहार आने वाली ४०० से ऊपर औषधियो के प्रयोग, निर्माण विधि आदि श्री रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा लिखित उपयोगी ग्रन्थ। पुस्तक विद्यार्थियों तथा विद्वानो सभी के लिए पठनीय है। मू० ८ ००

सिद्ध मृत्युन्जय योग—इस पुस्तक मे ५३ सफल प्रयोगो का वर्णन है। प्रयोग, मात्रा, सेवन विधि, गुण आदि देकर यह स्पष्ट लिख दिया है कि प्रयोग किस प्रकार प्राप्त हुआ तथा कहा सफलता के साथ व्यवहृत हुआ है। मू० १ ००

औषध स्वावलम्बन–कवि विद्यानारायण शास्त्री। तुलसी, पान आर्द्रक आदि सुगमता मे प्राप्य औषधियो का प्रारम्भ मे संक्षिप्त वर्णन देते हुए बाद मे यह समझाया गया है कि वह औषधि किन-किन रोगो पर किस प्रकार कार्य कर सकती है। मू. २ ००

सिद्ध प्रयोग (दो भाग) प०–विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। इस पुस्तक मे अनेक सिद्ध योगो का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया है। मू० प्रथम भाग १.००, द्वितीय भाग ० ५०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत संस्कृत मे प्रयोगो का संग्रह है। सरल हिन्दी टीका की गई है। टीकाकार प० किशोरीदत्तशास्त्री मू० ० ७५, प० कालीचरण पाडेय एम ए. कृत १ २५, केशवदास जी १ ००

वैद्य बाबा का बस्ता–जैसाकि नाम से ही प्रगट है, श्री बसरीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगो का संग्रह है। पुस्तक का आकार डायरी के समान है इसमे पुस्तक की उपादेयता और बढ गई है। सजिल्द १ २५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग मे आने वाले १३१ चूर्णों का संग्रह विभिन्न ग्रन्थो से किया गया है। उसके बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान एवं गुणो का वर्णन किया है मू० १ २५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह–क्वाथ चिकित्सा आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एव आशुफलप्रद चिकित्सा है। इस पुस्तक मे १६९ क्वाथो का संग्रह प्रकशित किया गया है। मू० १ २५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—३२३ बूटियो (गुटिकाओ) का उपयोगी संग्रह। मू० २.००

अनुभूत योग चिन्तामणि—डा० गणपतिसिंह वर्मा राजवैद्य। वर्गानुसार रोगो का वर्णन कर तत्पश्चात् उपयोगी नुस्खे दिये गये हैं जो कि सस्ते सुलभ एव आशुफलप्रद हैं अल्प काल मे पाच संस्करण हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मू० प्रथम भाग ४ २५, द्वितीय भाग ४.००

सिद्ध भैषज्य संग्रह—चूर्ण, वटी, तैल, अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियो का विवेचन किया गया है। अन्त मे ज्वर अतिसार आदि रोगो पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियों की सूची विस्तृत रूप से दी गई है। सजिल्द मू० ८ ००

देहाती अनुभूत योग संग्रह—(दो भाग) अनुवादक अमोलकचन्द्र शुक्ल–देहाती वस्तुओ से उत्तमोत्तम प्रयोगो को बनाने की विधिया वर्णन की गई है। दोनो भागो को मिलाकर लगभग ९५० प्रयोग दिये है। सजिल्द मूल्य प्रथम भाग ६ ००, द्वितीय भाग ७ ००

डाक्टरी नुस्खे–डा० राधावल्लभ पाठक-अनेक अचूक डाक्टरी नुसखो का संग्रह इस छोटी सी पुस्तक मे किया गया है। सजिल्द मूल्य ५ ००

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बसरीलाल साहणी-प्रथम भाग मे २०८ प्रयोगो तथा द्वितीय भाग मे ४३३ प्रयोगो का संग्रह है। इस पुस्तक मे अति सरल प्रयोग वर्णित है। पुस्तक हर चिकित्सक के लिये अवश्य पठनीय बडे काम की बन गई है। सभी को अवश्य मगाना चाहिये। मू० प्रथम भाग २ ५०, द्वितीय भाग ३ ५०

अनुभूत योग—दो भाग मे लगभग १५० प्रयोगो की निर्माणविधि, मात्रा, अनुपान एव उनके गुणो का विस्तृत विवेचन किया है। मू० प्रत्येक भाग का १ ००

सिद्ध योग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगो का संग्रह हर चिकित्सक के लिए उपयोगी पुस्तक है। इसके सभी प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्य लाभदायक हैं। मू० २ ७५

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—संशोधित अष्टम संस्करण। इस ग्रथ मे रस रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप-सेक, मलहम अर्जनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियो के सहस्त्रश अनुभूत एव शास्त्रीय प्रयोग तथा विस्तृत गुणधर्म विवेचन है। प्रथम भाग ९ ००, सजिल्द ११ ००, द्वितीय भाग ६ ००, सजिल्द ७ ५०

होमियो वायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमे इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २९१ सूत्र हैं। इस पुस्तक में इन्ही पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या की है। व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रो का मन्तव्य भलीभाति समझ सकते हैं। विना इस पुस्तक के होम्योपैथी को जानना दुराशा मात्र है ३८८ पृष्ठ सजिल्द मूल्य ४ ००

इन्जेक्शन चिकित्सा होमियो—लेखक डा सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमे होम्योपैथी इन्जेक्शनो का वर्णन साथ ही होमियोपैथी औषधियो से इन्जेक्शन वनाना आदि भली-भाति बताया है। १ ७५

ज्वर चिकित्सा—नाम से ही विदित है। इस पुस्तक पर उत्तर प्रदेशीय सरकार से लेखक पुरुस्कार प्राप्त कर चुके हैं। इसमे सभी प्रकार के ज्वरो की एलोपैथिक आयु-र्वेदिक एव यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू २ ००

पशु चिकित्सा होमियो—यह आयुर्वेदिक तथा होम्यो-पैथिक दोनो से समन्वित पशु चिकित्सा पर बहुत उप-योगी साहित्य है। सभी पशुओ के रोगो पर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है मू० २ १२

प्रिन्स मेटेरिया मैडिका (कम्परेटिव)—डा सुरेशप्रसाद शर्मा-प्रिंस होम्योपैथिक कालेज के प्रिंसिपल द्वारा प्रणीत यह होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका है। औरो से इसमे बहुत कुछ विशेषता हैं। थेराप्युटिक ही नही इसमे फार्माकोपिया भी सम्मिलित की गई है। प्रत्येक प्रमुख औषधियो के मूल द्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशय, प्रमुख एव साधारण लक्षणो आदि सभी विषयो का वर्णन किया गया है। चिकित्सको तथा प्रारम्भिक विद्या-र्थियो के लिये यह बहुत ही उपादेय है। साधारण हिन्दी ज्ञाता भी इसको समझ सकते हैं। १३७२ पृष्ठो वाले इस विशाल ग्रन्थ का मू केवल ६ ००

भैषज्यसार—होम्योपैथी का पाकेट गुटिका इसमे सभी रोगो मे दवाओ के प्रयोग व मात्राऐं दी हैं। मू २ ००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मैडिसन—डा सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक मे उन औषधियो को लिया है जो भारतीय औषधियो से तैयार होती हैं। साथ ही वाद मे कुछ होम्योपैथिक पेटेन्ट औषधियो को यह किसी रोग मे दी जाती है, दिया है। मू० १ ५०

रिलेशन शिप—इस छोटी सी पुस्तक मे डा० श्याम सुन्दर शर्मा ने औषधियो का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाया है। नित्य व्यवहारिक औषधियो का सहायक अनुसर-णीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियों का सग्रह किया गया है। मू० २ ००

सरल होमियो चिकित्सा—इसमे सभी स्त्री-पुरुष के स्वास्थ्य नियमो को वताया है तथा उनमे विपरीत होने वाले सभी रोगो की होम्योपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनो ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गये है। मू० ४ ५०

रोग निदान चिकित्सा—इस छोटी पुस्तक मे १०० पृष्ठो मे रोगी की परीक्षा विधि तथा ५० पृष्ठो में होम्यो-पैथी एव आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मू० २ ००

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित। स्त्री-जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियो को होने वाले अन्य सभी रोगो का निदान व चिकित्सा दी है। मू० ४ ५०

होमियोपैथिक मेटेरिया मैडिका—जिन्हे मोटे मोटे ग्रन्थ पढने का समय नही है उनके लिये यह मेटेरिया मेडिका बहुत उपयुक्त है। सभी आवश्यक नियमो का वर्णन है। गागर मे सागर वाली कहावत चरितार्थ है। सजिल्द ४०० पृष्ठ मू० ३ ७५

होमियो मेटेरिया मैडिका—डा० श्योसहाय भार्गव द्वारा रचित। लेखक ने वर्णन करने मे व्यर्थ के शब्दो को बढाया नही है। सभी आवश्यक विषय हैं कोई छूटने नही पाया है। किसी मेटेरिया मैडिका से कम महत्व की नही है। ५६१ पृष्ठो की सजिल्द पुस्तक मू० ५ ००

होमियो चिकित्सा विज्ञान (Practic of medici-nes)—ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा। होमियोपैथी पर लिखी गई चिकित्सा पुस्तको मे यह पुस्तक सर्वोपरि हैं। प्रत्येक रोग का खण्ड खण्ड रूप मे परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। डाक्टर तथा साधारण ग्रहस्थो सभी को उपयोगी है। सजिल्द मू० ३.५०

कालरा या हैजा—इस भयङ्कर महाव्याधि पर सुन्दर सामिग्री प्रस्तुत है। प्रत्येक अवस्था पर औषधियो का

सुन्दर विवेचन है। मू० २.००

वायोकैमिक चिकित्सा—वायोकैमिक चिकित्सा सिद्धान्त के सम्बन्ध मे आवश्यक बातें तथा बारहों औषधियो के वृहद मुख्य लक्षण और किन किन रोगो मे उनका व्यवहार होता है, सरल ढग से समझाया गया है। पृष्ठ ४३६ मू० ४ ००

वायोकैमिक रहस्य—(नवम् सस्करण) वायोकैमिक गया है, इस विषय पर पुस्तक सभी आवश्यक अङ्गो की जानकारी देती है तथा बारहो दवाओ का भिन्न भिन्न रोगो पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द मू० ३ ००, कैलाशभूषण लिखित १.५०

वायोकैमिक मिक्चर—वारहो क्षारो का विभिन्न रोगो मे मिक्श्चर रूप व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मू० ० ७५

होमियो पारिवारिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेश प्रसाद शर्मा। प्रत्येक रोग के लक्षण एव उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ में दिया गया है। पृष्ठ लगभग १६००। मू० ६ ००

घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१ ००
निमोनिया चिकित्सा	डा० वी एन टडन	० ७५
,, ,,	डा० सुरेशप्रसाद	० ७५
होमियो थाइसिस चिकित्सा	,,	० ७५
होमियोपैथिक नुस्खे	डा० श्यामसुन्दर	१ २५
होमियो टाइफायड चिकित्सा	डा० सुरेशप्रसाद	० ७५
होमियो पाकेट गाइड	,, ,,	१ ००
ग्रह चिकित्सा	,, ,,	२ २५
,,	डा० वी एन टडन	१ ५०
भैषज्य रहस्य	,, ,,	४ ००
सरल होमियो पारिवारिक चिकित्सा	डा० श्योसहाय भार्गव	५ ००
होमियो फार्मेकोपिया	डा० वी एन टण्डन	२ ००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

रोगों की सरल चिकित्सा—(तीसरा परिवर्धित सस्करण)-लेखक श्री विट्ठलदास मोदी। १०,००० से अधिक रोगियों पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है, अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतिया बिक चुकी हैं। पृष्ट सख्या ३५०, बढिया पक्की जिल्द मू० ४ ००

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चो के पालन पोषण की विधि के साथ साथ उसके रोगी होने पर उन्हे रोगमुक्त करने की विधि इस पुस्तक मे विस्तार से दी गई है। मू० केवल ३ ००

रोगों की नई चिकित्सा—लेखक लूईकूने। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिन्दुस्थान मे प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक 'न्यू साइन्स आफ हीलिग' के साथ ही आई। कूने का इस पुस्तक का ही 'रोगी की नई चिकित्सा' भावात्मक अनुवाद है। पृष्ठ २६०, बढिया छपाई, दुरङ्गा कवर मू० २ ००

प्राकृतिक जीवन की ओर—मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगो को दूर करने तथा स्वास्थ्य बढिया बनाने की विधि सिखाने वाली जर्मन पुस्तिका का अनुभव मू० २ ५०

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढायेगी, चिन्ताओ से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिसके कारण मनुष्य बनता है। मू० १ २५

स्वास्थ्य कैसे पाया?—इस पुस्तक मे स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और लोगो को रोगो से मुक्ति पाने की आत्मकथाये पढकर स्वस्थ रहने का सही तरीका जानें। मू० १ ५०

उपवास के लाभ—उपवास की महिमा, उपवास करने की विधि और रोगो के निवारण मे उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मू० १ ५०

उठो!—इस पुस्तक को पढ़ें और दुख, परेशानी और मुसीबतो से छुटकारा पाकर जीवन को सरल बनाएँ। मू० १ ००

आदर्श आहार—भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है बताने वाला एक ज्ञानकोष। मू० १ ००

सर्दी-जुकाम-खांसी—इन रोगो के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि और उनसे बचने का रास्ता बतलाने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मू० ० ७५

योगासन—लेखक आत्मानन्द। योगासन हिन्दुस्तान के ऋषियो द्वारा सस्कृत प्राचीनतम प्रणाली है। योगासन की विधिया और योगासन। इस सचित्र 'योगासन' द्वारा सीखिये और योगासनो द्वारा रोग निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मू केवल २ ००

दुग्ध कल्प—दूध शरीर को निर्मल तो करता ही है रग-रग, नस-नस को धोकर शरीर को पुष्ट बना देता है और रोग इसके कल्प से चले जाते हैं। इसकी विधि इस पुस्तक मे पढ़ें। मू० १ ००

दूध चिकित्सा—दूध मे क्या गुण है। इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है। दूध से बनी विभिन्न वस्तुओ का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि वर्णन इस पुस्तक मे पढिये। मू० ४ ००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां (चतुर्थ संस्करण)—शाक तरकारिया जो हम रोजाना खाते हैं इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से क्या सम्बन्ध है, कौन कौन सी शाक तरकारिया कब और कैसे खानी चाहिये आदि सभी बातें इस छोटी सी पुस्तक में दी है। मू० २ ००

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा सस्करण)—लेखक केदारनाथ गुप्त एम० ए०। इसमें जल चिकित्सा के सारे सिद्धान्तो का बड़ी सरल भाषा मे प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगो की चिकित्सा कैसे करनी चाहिए। यह इस पुस्तक मे पढिये। मू २ ००

दैनन्दिनी रोगों प्राकृतिक चिकित्सा—लेखक कुलरजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे ज्वर, प्रतिश्याय, अतिसार, प्रवाहिका, फोडा, फुन्सी, घाव, सिर दर्द, हैजा, चेचक रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू, ४ ०० मात्र।

पुराने रोगी की गृह चिकित्सा—लेखक डा० कुलरजन मुखर्जी। इस पुस्तक में अजीर्ण, सग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुसकता, अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। ४ ००

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओ के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं। तथा इसका नाम मात्र व्यय मे किस प्रकार उपचार किया जाय। बच्चो को निरोग रखने के उपाय एव विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक मे दिये हैं। मू २.००

दैनन्दिनी प्राकृतिक चिकित्सा—इस पुस्तक मे नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुखरोग, कण्ठरोग, श्वास कास, अजीर्ण, विसूचिका, प्रवाहिका, अतिसार, सग्रहणी, वृक्क-शूल, मूत्राशयरोग, दाद, दिनाय, नपुसकता आदि रोगो मे उपयोगी प्रयोग दिये गये हैं। मूल्य सजिल्द ५.००

आरोग्य साधन—महात्मा गांधी द्वारा गुजराती भाषा में लिखित पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। आरोग्य का सच्चा अर्थ बताने वाली ऐसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिले। इसमें अटपटांग बातें नहीं हैं बल्कि महात्मा जी के बीसों वर्ष के अनुभव शामिल हैं। मू. केवल ०.८७

आकृति निदान—आकृति निदान का मूल रूप जर्मनी भाषा की एक पुस्तक है जिसका कि अनुवाद किया गया है। अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। अन्त में ५२ फोटो चित्रो द्वारा विभिन्न आकृतियों का ज्ञान कराया गया है। बादीपन का इलाज बहुत विस्तृत रूप से दिया गया है। सजिल्द मू० २ ५०

जल चिकित्सा—श्री रामचन्द्र चट्टोपाध्याय बी. एल०। अनुवादक प० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। प्रथम भाग मे मिट्टी, जल, उत्ताप (आग या धूप), वायु आकाश की सहायता से मामूली बुखार से लेकर दुस्साध्य क्षय कास, कैंसर, न्यूमोनिया, डिप्थीरिया टाइफाइड इत्यादि बीमारियो की आश्चर्यप्रद फल देने वाली दवा और बिना चीरफाड के ही स्वाभाविक चिकित्सा दी है। दूसरे भाग मे सब तरह के घावों का बिना नस्तर या दवा के इलाज दिया गया है। तृतीय भाग मे सब तरह के स्त्री रोगो का इलाज दिया गया है। मू० प्रथम भाग २ २५ द्वितीय भाग १ ७५, तृतीय भाग १ ५०

स्वास्थ्य साधन	श्री रामदास गौड सजिल्द	४.००
दमा-श्वासखासीका इलाज	डा युगलकिशोर चौधरी	० ५०
नवीन चिकित्सा पद्धति	,, ,,	१ २५
सूर्योदय	,, ,,	१ ००
व्यायाम काया कल्प	,, ,,	२.००
चिकित्सा सागर	,, ,,	० ७५
मैं नीरोग हूँ या रोगी	,, ,,	० ६२
कपड़ा और तन्दुरुस्ती	,, ,,	० ५६
घरेलू कुदरती इलाज	केदारनाथ गुप्त	१ ००
जल जिकित्सा (पानी का इलाज)	डा० युगल किशोर चौधरी	१ ००

यदि आपके स्थान पर हमारी एजेन्सी नही है तो आज ही पत्र डालकर एजेन्सी नियमादि विवरण मगावें और एजेन्सी लेकर थोडी लागत से अच्छा लाभ देने वाला कार्य प्रारम्भ करें। धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ की औषधिया विधिवत् निर्मित, पूर्ण प्रभावशाली होती हैं, मूल्य भी उचित होने के कारण उनका शीघ्र प्रचार होता है। अतएव आप थोडे परिश्रम से ही इसकी एजेन्सी मे अवश्य सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

- एजेन्सी के उदार एव व्यवहारिक नियम
- पूर्ण प्रभावशाली औषधिया
- सुन्दर पैकिङ्ग
- साइनबोर्ड, कलैंडर आदि प्रचार सामिग्री
- सरल तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार

इन सभी कारणो से आपकी एजेन्सी कभी हानिप्रद नही हो सकती है। हमारे वे ग्राहक जो स्वय एजेन्सी किसी कारण न ले सकें, अन्य स्थानीय औषधि व्यवसाइयो को हमारी एजेन्सी लेने के लिये उत्साहित करें।

पत्र डालकर आज ही नियम मगावे।

—पता—

धन्वन्तरि कार्यालय [एजेंसी विभाग]

विजयगढ़ (अलीगढ़)

उपयोगी पठनीय पुस्तकें

१ सर्पविष विज्ञान—सर्पविष चिकित्सा पर लिखी हुई यह पुस्तक सैकडो आयुर्वेद- यूनानी तथा डाक्टरी पुस्तको का सुसार सग्रह तथा अब तक के अपने अनुभवो का निचोड है। इसको पढकर पाठक सर्पविष चिकित्सा का अभिज्ञ हो सकता है और विज्ञ हो तो चिकित्सा भी कर सकता है। इस पुस्तक की अनेक वैद्यक एव मासिक साप्ताहिक दैनिक पत्रो एव आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वानो ने मुक्तकठ से प्रशसा की है। उनके मत से इस विषय मे आज तक प्रकाशित पुस्तको मे यह सर्व श्रेष्ठ है। मूल्य १ २५

२ आयुर्वेदीय विश्व-कोष—कुल ६ खण्डो मे से प्रकाशित ४ खण्डो मे से केवल द्वितीय खण्ड प्राप्य है। चतुर्थ खड हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित होकर शीघ्र आपके हाथों पहुचने वाला है। इसके वाद ही वे शेष अन्य सभी खण्ड भी प्रकाशित करेगे। मू १६ ००

३. यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धांत (कुल्लियात)—इस पुस्तक मे यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धात इस प्रकार समन्वय के साथ समझाये गये हैं जिससे वैद्य अच्छी तरह समझ सकें और तुलनात्मक दृष्टि से उसे हृदयङ्गम कर सके। पुस्तक युक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा नियोजित आयुर्वेद-यूनानी पुनस्सगठन समिति के अनुरोध पर लिखे हुए लेख का सशोधित परिवर्धित रूप है। यूनानी वैद्यक से परिचय प्राप्ति की इच्छा रखने वाले वैद्यमहानुभावो के लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा, यह आशा है। मूल्य १ २५

४. यूनानी द्रव्य गुण-विज्ञान—प्रस्तुत ग्रन्थ किसी एक अरवी, फारसी या उर्दू ग्रन्थ का अनुवाद नही है, अपितु इस विषय के अनेक ग्रन्थो का साराश रूप है जो लेखक के गहन अध्ययन-परिशील एव अन्वेषण का परिणाम है। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध मे महाभूत दोष, द्रव्य गुण-कर्म सिद्धान्त, परिभाषा, भैषज्य कल्पना इत्यादि तात्त्विक विषयो का तथा उत्तरार्ध मे विविध यूनानी औषधि द्रव्यो का, विविध भाषा के नाम, उत्पत्तिस्थान गुणधर्म, मात्रा, उपयोग इत्यादि की दृष्टि से सविस्तार विवरण दिया है। पूर्वार्ध मे स्थान-स्थान पर यूनानी सिद्धान्तो का आयुर्वेदिक सिद्धान्तो के साथ तुलनात्मक परिचय दिया है। महाभूतादि के सम्बन्ध मे यूनानी सिद्धान्त आयुर्वेद के सिद्धान्तो के साथ बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं तथा अधिक सख्य आयुर्वेद की औषधिया यूनानी मे व्यवहृत होती हैं। अध्ययन-अध्यापन-कर्माभ्यास की दृष्टि से यह ग्रन्थ यूनानी के विद्यार्थियो और (वैद्यो) हकीमो के समान आयुर्वेद के विद्यार्थियो और वैद्यो के लिये भी परमोपयोगी है। भाषा, लेखन शैली और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इस ग्रथ का अन्तरङ्ग जितना आकर्षक हुआ है, उतना ही इसका बाह्याङ्ग छपाई और बधाई की दृष्टि से सुन्दर हुआ है। हिन्दी मे अपने विषय का यह प्रथम ग्रन्थ नही है। यूनानी द्रव्यगुण के परिचय के लिये हिन्दी मे तो क्या स्वय उर्दू फारसी मे कोई दूसरा ग्रथ नही हैं। पृष्ठ सख्या लगभग १०००कागज ग्लेज, आकार क्राउन १६ पेजी, छपाई-सफाई सुन्दर निर्णयसागरी, पक्की कपड़े की जिल्द, मूल्य २२)

५. यूनानी चिकित्सा-विज्ञान (पूर्वार्ध)—इस खण्ड मे यूनानी रोग निदान तथा चिकित्सा के सामान्य आधारभूत सिद्धान्तो का, आयुर्वेद कही-कही पाश्चात्य वैद्यक (डाक्टरी) के साथ तुलनात्मक विशद विवरण सरल एव सुबोध हिन्दी मे किया गया है। पृष्ठ सख्या लगभग ८००, कागज ग्लेज एव पुष्ट, छपाई और बाइडिङ्ग सुन्दर, मूल्य ८ ५० मात्र।

६ यूनानी सिद्ध योगसंग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगो का उत्तम सग्रह है। मूल्य २ ५०

७. वात्स्यायन कामसूत्र (हिन्दी)—यह कामशास्त्र पर वात्स्यायन मुनिप्रणीत प्रामाणिक प्राचीन सस्कृत ग्रन्थ तथा इस पर लिखी गई सस्कृत टीकाओ का सरल हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक सचित्र है। अनेक वैद्यो और पत्रकारो ने इसकी मुक्तकठ से प्रशसा की है। अभी तक इस पर हिन्दी मे इतनी प्रामाणिक एव सर्वाङ्गपूर्ण टीका प्रसिद्ध नही हुई है। इसकी एक एक प्रति प्रत्येक गृह मे अवश्य होनी चाहिये। टीकाकार—आयुर्वेदाचार्य डा० श्री रामसुशीलसिंह शास्त्री एम ए, ए एम एस। मू. ५ ५०

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) उ. प्र.

चिकित्सोपयोगी उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा मे औषधि प्रयोग के साथ साथ आधुनिकतम यन्त्र शस्त्रो का प्रयोग आवश्यकतानुसार करे। इन आधुनिक यन्त्र शस्त्रो के प्रयोग से आपको तो अपनी चिकित्सा मे सफलता मिलती ही है साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पडता है। हमने अपने स्टोर्स मे नवीन नवीन यन्त्र शस्त्रो का विक्रियार्थ विशाल सग्रह किया है। चिकित्सको को चाहिये कि वे आवश्यकतानुसार इन वस्तुओ को मगा कर रखें तथा अपने चिकित्सा कार्य मे सफलता एव यश प्राप्त करें।

डाइग्नोस्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक, कान तथा गले को अन्दर से देखते हैं। इसमें एक टार्च होती है जिसमें दो सैल डाले जाते हैं। उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीबी तीनों में से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमें प्रकाश की व्यवस्था होने से बहुत सुविधा रहती है, साथ ही रोगी पर प्रभाव भी पड़ता है। इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है। पूरे सैट का मूल्य केवल ३२,००

कान मे से दाना निकालने का यत्र—कान में यदि कोई अनाज का दाना आदि पड़ गया है तो उसे किसी साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करें नहीं तो वह और आगे सरक जायगा। यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खींचकर लाता है। मूल्य २ ००

नासिका प्रेक्षण यन्त्र—नाक में सूजन है, फुन्सी है या किसी और कारण से कष्ट है तो उसे ठीक प्रकार से देखा नहीं जा सकता। यह यन्त्र नाक मे डालकर चौड़ा दिया जाता है जिससे नाक चौड़ जाती है और फिर आप नाक के अंदर के सभी अवयव स्पष्टत देख सकते हैं। मू ५.००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहां पर पट्टी बांधने में असुविधा हो तो आप इसका उपयोग करें। यह उसी स्थान पर काट कर चिपका दी जाती है। मूल्य (१ इञ्च×५ गज) २ ००

तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way canula)—किसी रोगी के द्रव पदार्थ अधिक मात्रा मे चढ़ाना है तथा आपके पास सिरिंज उससे छोटी हैं तो आप इसका प्रयोग करें। अथवा जो चिकित्सक बड़ी सिरिंज द्वारा ठीक प्रकार से इन्जेक्शन नहीं लगा पाते वे इसका प्रयोग करें। प्रत्येक इन्जेक्शन लगाने वाले के लिये आवश्यक यन्त्र है। मूल्य केवल ७.७५

आमाशय मे दूध चढ़ाने की नली—जब रोगी की अवस्था इस प्रकार की हो कि वह मुह द्वारा अपना आहार ग्रहण न कर सके तथा बेहोशी, पक्षाघात, किसी दौरे आदि में तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य कोई पोष्य द्रव पदार्थ आमाशय में पहुँचा सकते हैं। मू० ३ ००

आमाशय प्रक्षालनी नलिका (Stomach wash-tube)—यह प्रत्येक चिकित्सक के लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। किसी विष के खा लेने पर तुरन्त ही आमाशय प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जो कि इसी नलिका की सहायता से ही किया जा सकता है। मूल्य ७ ००

नमक का पानी चढाने का यन्त्र (Saline appara-

tus) —हैजा में नमक का पानी चढ़ाना चिकित्सक के लिये अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता से चढ़ाया जाता है। मूल्य १२.५०

जलोदर में उदर से पानी निकालने का यन्त्र— जलोदर रोग में उदर गह्वर से पानी निकालने के लिये इस यन्त्र का प्रयोग होता है। जलोदर में पेट से पानी निकाल देने से रोगी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है तथा उस पर प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। मूल्य ३.७५

गुदापरीक्षण यन्त्र (Proctoscope)—गुदा की अन्दर से परीक्षा करने के लिये यह एक आवश्यक यन्त्र है। अर्श अथवा अन्य गुद रोगों के शल्य कर्म, क्षार कर्म, अग्निकर्म में इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे गुदा के अन्दर की स्थिति देखी जाती है। मूल्य १२.००

गर्भाशय प्रक्षालन यन्त्र—यह रबर तथा प्लास्टिक का बना होता है। योनि की रुकावटों तथा गन्दगी को साफ करने के लिये यह यन्त्र उपयोगी है। यदि रक्त प्रदर और श्वेत प्रदर काफी चिकित्सा कराने के पश्चात भी ठीक न होते हों तो उपयुक्त औषधियों के क्वाथ द्वारा गर्भाशय प्रक्षालन कराने से आशातीत लाभ होता है। सततिनिरोध (Birth control) के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग करना भी आसान है तथा कोई भी व्यक्ति इसका प्रयोग कर सकता है। मूल्य १२.००

शर्करा मापक यन्त्र—मधुमेह रोग में चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे मूत्र में जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो। बिना प्रतिशत मात्रा ज्ञात हुए अनुमान द्वारा Insuline का प्रयोग कभी कभी रोगी को घातक सिद्ध होता है। रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहा है या नहीं यह भी आप इसी यन्त्र द्वारा निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं। मूल्य ५.००

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगों में रोगी का रक्त-चाप (Blood pressure) जानना आवश्यक है। शल्य कर्म के पश्चात् तो इसका प्रयोग रोगी की स्थिति ज्ञात रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के आधुनिक यन्त्रों का प्रभाव बहुत अच्छा होता है तथा इससे चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा में सुविधा भी रहती है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य मगाकर रखना चाहिए। मूल्य केवल ६८.००

आंत उतरने पर कमर मे बांधने की पेटी (Truss)— आंत्र वृद्धि (Hernia) रोग में इस पेटी को कमर मे बांधे रहना आवश्यक है। आंत ऊपर चढाने के बाद यह पेटी बांध दी जाती है तथा रोगी इसको हर समय पहने रहता है। बढ़िया चमड़े से बनी मूल्य १५.००

आपेक्षिक घनत्व मापक यन्त्र (Urinometer)— मूत्र अथवा किसी अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है। इसको मूत्र में डाल देते हैं तथा यह मूत्र में तैरता रहता है। स्थिर होने पर जिस नम्बर पर रुकता है वही मूत्र का आपेक्षिक घनत्व समझना चाहिये। मूल्य १.५०, बड़ा (१००० से २००० तक नम्बर वाला) मूल्य २.००

योनि परीक्षक यन्त्र (Vaginal speculum)— इससे योनि को विस्तृत करके निरीक्षण किया जाता है। योनि में कोई व्रण इत्यादि हो तो उस पर दवा भी इसी यन्त्र की सहायता से लगाई जाती है। मूल्य ८.००

घाव में डालने की सलाई (Probe)—आयुर्वेद में यह एषणी शलाका के नाम से प्रसिद्ध है। घाव की गहराई, उसकी दिशा जानने तथा किसी नाड़ी व्रण में अन्दर गाज भरने के लिये इसका चिकित्सक के पास में होना अत्यन्त आवश्यक है। मूल्य ०.३७

आंख धोने का ग्लास—किसी वस्तु का कण या उड़ता हुआ कोई छोटा सा कीड़ा आंख में पड़ जाने पर निकालना कठिन हो जाता है और वह बड़ा कष्ट देता है। इस ग्लास में पानी भरकर आंख में लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मूल्य १.००

गले व जबान देखने की जीबी (Tongue depressure)—गला देखने के लिये जब रोगी मुंह खोलता है तब जीभ (जिह्वा) का उठाव गले को ढक लेता है और गले में क्या बाधा है चिकित्सक नहीं देख पाता है। इस यन्त्र से जीभ दबाकर गला तथा अन्दर की जीभ स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण १.७५, फोल्डिङ्ग १.७५

स्तनो से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन में पकाव या फोड़ा हो जाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनों में भरा हुआ दूध बड़ा परेशान करता है। इस यन्त्र द्वारा यह आसानी से निकाला जा सकता है। मूल्य २.२५

डूश—इससे फोड़ा आदि धोने में बड़ी सुविधा रहती है। इससे एनीमा लगाया जाता है। मूल्य रबड़ की नली व टोंटनी आदि से पूर्ण २ पिंट का ५.००, ४ पिंट का ७.५०

कान धोने की पिचकारी—धातु की १ औंस की ५.००, २ औंस की ६.००, ४ औंस की ७.५०

कान देखने का आला—कान में फुन्सी है, सूजन है या किसी अनाज का दाना पड़ गया है और वह फूल कर कष्ट दे रहा है यह देखना कठिन हो जाता है। इस यन्त्र

(आले) से कान के अन्दर का दृश्य साफ दीख पड़ता है। मूल्य १२ ००

इंजेक्शन सिरिंज (कम्पलीट)–सम्पूर्ण कांच की २ सी सी की २ ७५, ५ सी.सी. की ४.००, १० सी सी की ६.००, २० c.c की ८ ००, रेकार्ड सिरिंज २ c c. की ५ ५०, ५ c. c. की ८.००

इन्जेक्शन की सुई (नीडिल) १ नग ०.५०

थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र) जापानी २ ५०

एनीमा सिरिंज (वस्ति यन्त्र)—इस यन्त्र से पानी या औषधि द्रव्य गुदा में आसानी से चढ़ाया जा सकता है। मूल्य रबड़ का जर्मनी ११.००, भारतीय ५.००

रबड़ के दस्ताने—चीड़ फाड़ करते समय संक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिये चिकित्सक इन दस्तानों को हाथ में पहनते हैं। मूल्य १ जोड़ी ३.५०

गरम पानी की थैली—ज्वर, पीड़ा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानों पर इस थैली में गर्म पानी भर कर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ५.००

बरफ की थैली—तेज बुखार, प्रलापावस्था, सिर की पीड़ा या अन्य व्याधियों में चिकित्सक सिर पर वर्फ रखवाते हैं। इस थैली में वर्फ भर कर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इसकी ठंडक पहुंचती है किंतु उससे वह भीगता नहीं है। मूल्य २ ५०

दवा नापने का ग्लास (Measuring glass)—कम्पाउण्डर अनुमान से दवा देकर कभी कभी बड़ा अनर्थ कर डालते हैं। अतएव हर चिकित्सक को इन ग्लासों को अवश्य मगाकर रखना चाहिये। गलती कभी न होगी तथा सुविधा भी रहेगी। मूल्य २ ड्राम का (बूंद नापने के काम में आता है) ० ६६, १ औंस का ० ८७, २ औंस का १.००, ४ औंस का १ २५

स्टेथिस्कोप (वक्ष परीक्ष यन्त्र)—चिकित्सक ठेपन (अंगुली ताडन) से वक्ष परीक्षा करते हैं। किंतु वह अधिक अभ्यास से समझ में आ सकती है, इस यन्त्र से सुविधा रहती है। साथ ही आजकल के जमाने में चिकित्सक का सम्मान भी इसी में है कि वे इस प्रकार के यन्त्रों को व्यवहार में लाते हुए रोगियों पर अपनी धाक जमायें। मूल्य भारतीय ८ ००, चीन का बना (तीन चैस्ट पीस वाला) २२.००, जापान का सर्वोत्तम केवल २४ ००

केवल चैस्ट पीस (भारतीय) ४.५०

स्टेथस्किोप की प्लास्टिक की नली–एक स्टेथिस्कोप के लिये २ ००

खरल चीनी का गोल—ये खरल दवा मिलाने के लिये उपयोगी हैं। मूल्य २ इंच १ ७५, २॥ इंच का २ ००, ३ इंच का २ ००, ४ इंच का ३ ०० तथा ५ इंची ४ ००

सुजाक की पिचकारी—सुजाक में जो मवाद निकलता है वह मूत्र नली में अन्दर चिपक कर व्रण पैदाकर देता है। जब तक वह अन्दर से साफ नहीं होता, रोग का नष्ट होना कठिन हो जाता है। इस पिचकारी से अन्दर दवा पहुंचा कर आसानी से सफाई कर सकते हैं मूल्य पुरुष के लिये ० ५०, जनानी ० ७५

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)–मूत्र रुकने से रोगी को महान कष्ट होता है। कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है। इस नली की सहायता से मूत्र आसानी से निकाला जा सकता है। मूल्य रबड का ० ७५, धातु का स्त्रियों के लिए १ २५, पुरुषों के लिए धातु का २ ७५

मोतीझला देखने का शीशा–मोतीझला (Typhoid) के दाने बहुत सूक्ष्म होने के कारण देखने में नहीं आते। इस शीशा के द्वारा वे दाने बडे बडे दीख पडते हैं। तथा आप आसानी से पहचान सकते हैं। हर चिकित्सक को अपने पास १ शीशा अवश्य रखना चाहिए। मूल्य छोटा शीशा २ ००, बीच का २.७५, बढ़िया बडा ३ ००, धातु का हैंडिल सर्वोत्तम छोटा ४ २५, बडा ५ ५०

स्प्रिट लैम्प—थोडी दवा गरम करनी हो अथवा सूखी दवा से इन्जेक्शन के लिए दवा तैयार करनी हो तब इस लैम्प की सहायता लेनी पडती है। मू० काच की २ ००, धातु की २ औंस की ३ ५०, ४ औंस की ४ ००

आंख में दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन ० ६०

काटे (Scales)–अंग्रेजी बैलेंस की तरह के कीमती दवाओं को सही व आसानी से तोलने के लिए व्यवहार में लाने चाहिए। निकिल पौलिश, लकड़ी के बक्स के अन्दर रखे हैं। मूल्य बाटो सहित ८.००

सिरिंज केस निकिल के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए–१ केस २ c c की सिरिंज के लिए २ ००, ५ c c के लिए ३ ००, १० c. c के लिये ४ ७५

ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक की)—गुदा में ग्लेसरीन चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी। मूल्य १ औंस २ ५०, ४ औंस ४ ००

दात निकालने का जमूडा (Tooth forecpsuniversal)—इससे दांत मजबती से पकड़ कर उखाड़ा जा सकता है। मूल्य ६ ००

मलहम मिलाने की छुरी–स्पेचुला (Spetula) लकडी का हैंडिल १ २५, धातु का हैंडिल १ ७५

मलहम मिलाने की प्लेट–साइज ४×४ इञ्च १ ००, ६×६ इञ्च १.२५, ८×८ इञ्च ३ ००

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किए क्लिप सहित मूल्य केवल १ ५०

सन्तति निरोध (Birth control)—के लिए-चैक पैसरी (Check passary) जापानी ० ८७ (एक दर्जन ८.५०), डाइफ्राम पैसरी २ ५० (एक दर्जन २५.००), फ्रैंच लैदर पुरुषों के लिए) साधारण ० ५० (एक दर्जन ५ ००), बढ़िया ० ७५ (एक दर्जन ७ ५०), क्रोकोडायल फ्रैंच लैदर सर्वोत्तम १.०० (एक दर्जन १०.००)

नोट—उपर्युक्त कोई भी सामान एक दर्जन से कम मंगाने पर एक नग की जो कीमत लिखी है वही लगाई जायगी। डाइफ्राम (डच) पैसरी ६ नग मंगाने पर १२.५० लगाये जांयगे।

रिंग पैसरी (रबड़ की) १ पैसरी का मू. ०.७५, हौज पैसरी (Hodge passery) ०.८७

चीमटी चाकू—चीमटी ५ इञ्ची १ ००, ४ इञ्ची ० ८७, दांतों मे दवा लगाने की चीमटी २.००, चाकू सीधा ५इञ्ची १ २५, फोल्डिङ्ग २ ००

कैंची—५ इंची साधारण २ ००, कैंची मुड़ी हुई ५ इंची २ २५, कैंची एक ओर को मुडी हुई ४ इंची २ ५०, ५ इंची ३ ००, कैंची सीधी ४ इंची बढ़िया २.००

किडनी ट्रे (Kidney tray)—कान धोने के समय कान के नीचे लगाने के लिए ६ इंची २.२५, ८ इंची २ ७५ १० इंची की ३ २५, नाइलौन की सुन्दर व हल्की न टूटने वाली ८ इंची ३ २५

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—स्टेथिस्कोप की रबड़ नमी आदि से गल जाती है। हमने बढ़िया चमड़े के स्टेस्किोप रखने बहुत सुन्दर बेग बनवाए हैं। इसमे एक ओर आप स्टेथिस्कोप रख सकते हैं तथा दूसरी ओर और एक जेब में अन्य आवश्यक सामान। अपने नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ मे लटकाया जा सकता है। ५ ५०

नपुंसकता निवारण यन्त्र—यह यन्त्र अति उपयोगी एव निरापद है। किसी प्रकार की हानि न करते हुए मुर्दार नसों में नवीन रक्त का संचार करता और शीघ्र मनुष्य को पुंसत्व प्रदान करता है। एक यन्त्र अनेक रोगियों पर प्रयोग कर सकते हैं। चिकित्सकों को चाहिए कि वे इस यन्त्र को अपने चिकित्सालय में अवश्य मगायें तथा अपने रोगियों को औषधि सेवन कराने के साथ साथ इसका प्रयोग भी करावें। मूल्य केवल १४.००

आपरेशन कराने का चाकू—इसमें हैन्डिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है। मूल्य १ ब्लेड सहित ३ ००, ६ ब्लेडों सहित ४.७५

मसूढे चीरने का चाकू—कीमत सीधा १.३७, फोल्डिङ्ग २.२५

टूर्नीकेट—नस का इन्जेक्शन लगाने के लिए आवश्यक—कीमत ० ७५

हीमोग्लोबिन स्केल बुक (Haemoglobin scale book)—बिना किसी यन्त्र की सहायता के हीमोग्लोबिन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करें। मूल्य—२.००

पैन टार्च—यह टार्च जेब मे पेन की तरह लगाई जाती है। इसमें बहुत पतले दो सैल पड़ते हैं। चिकित्सकों के लिये गले नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह टार्च मोटे पैन के बराबर बड़ी होती है। मूल्य दो सैल सहित केवल ६.००

इसी टार्च पर गले व जबान देखने, कान तथा नाक देखने की ठोस नली फिट हो जाती हैं जिनमे इन अङ्गों को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढ़े एक बक्स में रखे पर सैट का मूल्य केवल २४ ००

तोलने की मशीन—हमारे यहा स्टाक में तौलने की बढ़िया जर्मनी मशीनें आ गई हैं। इनसे आप पौंड तथा किलोग्राम में दोनों प्रकार से वजन ज्ञात कर सकते हैं। रोगी को मशीन पर खड़ा कीजिये और वजन ज्ञात हो जायगा। इनसे आप २८० पौंड तक का वजन ज्ञात कर सकते हैं। मू. केवल ६५ ०० (यह रेल से ही भेजी जा सकेगी अत: आर्डर के साथ रेलवे स्टेशन अवश्य लिखें)।
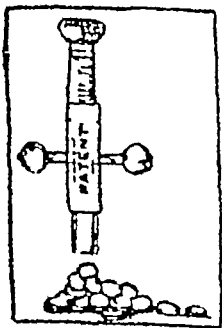
टिकियां बनाने की मशीन

निकिल पोलिश की हुई बहुत उत्तम, टिकाऊ और सुन्दर मशीन निर्माण कराई हैं। इससे ३ साइज की टिकिया (२ रत्ती, ४ रत्ती, ६ रत्ती की) बनाई जा सकती है। सामान्य व्यक्ति भी बड़ी आसानी से टिकिया बना सकता है। बड़ी माग है। आप भी एक मशीन मगा लीजियेगा।

मूल्य ११.००, पोस्ट एव पैकिंग व्यय प्रथक्।

मंगाने का पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

शारीरिक-चित्रावली

प्रयत्न—बहुरङ्गी

बहुत प्रयत्न से इसका परिमिट प्राप्त करके इसको इंग्लैंड से मंगाये है।

यह अभी हम थोड़ी तादाद में ही प्राप्त कर सके हैं। इसकी मांग सदैव से बनी रही है। हमारा विश्वास है कि जो भी इसे देखेगा वह मुग्ध हो जायगा। इसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से है।

इसमें प्रथम एक सुन्दरी स्त्री का २० इंच लम्बा पूर्ण चित्र है। इसका ग्रीवा से कटि तक भाग ऐसा कटा हुआ है कि ऊपर को पलट जाता है और छाती तथा पेट के अन्दर के सब अङ्ग दीखते हैं तथा उनके ऊपर की मांस-पेशियां अलग दीखती हैं।

अब यह चित्र बांईं ओर को पलट जाता है और इसके पृष्ठ पर एडी से चोटी तक की समस्त रक्त वाहिनियां धमनियां, शिरायें और केशिका जाल तथा हृदय और गुर्दे चित्रित हैं, देखते ही समझ मे आजाता है कि रक्त कैसे घूमता है।

इसके नीचे जो चित्र निकला वह समस्त शरीर की बडी बड़ी स्नायुयें और कण्डरायें दिखाता है, मानों शरीर पर से त्वचा उतार दी गई हो। इसका ग्रीवा से कमर तक का भाग फिर वैसे ही पलट कर अन्दर पेट की मांसपेशिया और पसलियों के बीच की सब पेशियां दिखाता है।

इसके नीचे का भाग तो अत्यन्त अद्भुत है। इसमें अपने अपने ठीक स्थान पर ठीक ठीक ही आकार प्रकार में हृदय, दोनों फुफ्फुस, आमाशय, यकृत, छोटी आंत, मूत्राशय, तथा गर्भाशय, गुर्दे, प्लीहा, पित्ताशय, अग्न्याशय, आदि समस्त अङ्गों के उसी रंग के चित्र लगाये हुए हैं, और वे इस प्रकार कि हर एक अपने अपने स्थान पर ठीक ठीक उलट-पलट जाता है, और हर एक चित्र बीच में से दो पर्त होकर अंग के अन्दर की दशा भी दिखलाता है। अर्थात् २-४ शव चीरने फाड़ने पर अङ्गों की जो दशा विदित होती है, वही इस चित्र जाल के भली भाति उलट-पलट कर देखने से प्रत्यक्ष की भाति समझ में आजाती हैं। हर एक आंतरिक अवयव का चित्र उसी रंग का उसी रूप और आकृति का छाप कर उसी स्थान पर लगाया गया है जहा जैसे वह शरीर के अन्दर का भाग है। इन अङ्गों के साथ में अन्नवाही और रक्त वाहिनी प्रणालिया भी यथास्थान चित्रित हैं।

यह सब चित्र जाल फिर बांईं ओर पलट जाता है और इसकी पीठ पर शरीर की समस्त मांस-पेशियों का ज्यों का त्यों चित्र अङ्कित है। नीचे जो चित्र निकला उस पर सम्मुख की ओर से दिखाई देने वाला अस्थिकङ्काल (Skeleton) देखिये और उसी की पीठ पर पीठ की ओर से दीखने वाली (अर्थात् पीछे की) हड्डियो का सम्पूर्ण ढांचा यथा स्थान और उसी रूप रग से चित्रित है।

अब यह चित्र भी दाहिनी ओर पलट जाता है और नीचे जो निकला है वह है समस्त शरीर का नाडी—जाल हमारे शरीर की ज्ञानेन्द्रियों से मस्तिष्क को ज्ञान पहुचाने वाली, वहां से कर्मेन्द्रियों का आज्ञा लाने वाली, शरीर के आंतरिक अङ्गों के समस्त कार्य कराने वाली नाडियों का भारी जाल, सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला नाड़ियां तथा उनके क्षेत्र और केन्द्र ये सब अपने अपने असली रूप में नेत्रों के सम्मुख आजाते हैं। इस प्रकार मानव शरीर के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग का अन्दर-बाहर का दृश्य दिखाने वाले ये प्रत्यक्ष, चित्र फिर एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार तह हो जाते हैं कि सब मिलकर एक ही मोटा चित्र बन जाता है।

इन सबके अतिरिक्त एक छोटा चित्र बांईं ओर और लगाया गया है जिसमें अगल बगल की ओर से दीखने वाली पेशियों और अस्थियों का चित्र है। और उसके भी पलटने पर नीचे शव को बीचों बीच से दो खड चीरने पर जो दृश्य दीखता है वही चित्रित है। गर्भाशय में पडा बच्चा किस प्रकार रहता है और गर्भ-प्रसव कैसे होता है यह भी इसमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

इस शारीरिक ज्ञान के लिये कई वैद्यजन स्वय शवच्छेदन करते थे और अनेकों इससे ग्लानि करते हुए इस अति आवश्यक ज्ञान से वञ्चित ही रहते थे। चिकित्सा के लिये शरीर की पूरी रचना जानना कितना आवश्यक और लाभदायक है यह आप जानते ही हैं। परन्तु उसका कोई सुगम उपाय न था और जैसा यह चित्र बना है। यह काम कोई आसान न था। हमने भी वर्षों इसका प्रयत्न किया था भारत के कई बडे बडे चिकिसकों, प्रकाशकों और प्रेसों से इसे तैयार कराने की चेष्टा की परन्तु जब असफल रहे विवश होकर और खास प्रबध करके इङ्गलैंड के मैसर्स ज्यौर्ज फिलिप एंड सस नामक फर्म से प्रचुर धन व्यय करके ये चित्र तैयार कराये गए। जिनमें उपर्युक्त बडे बड़े २० इ च लम्बे अनेकों पूर्ण रङ्गीन आदर्श चित्रों के साथ ही हिन्दी भाषा में प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग का परिचय और वर्णन भी है जिससे आप स्वय ही शारीरिक शास्त्र का ज्ञान भी भली भाति प्राप्त कर लेंगे। २० इ च लम्बा साइज सचित्र सुन्दर सजिल्द।

मूल्य—पन्द्रह रुपया मात्र पोस्ट व्यय १ रु० पृथक

मंगाने का पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)

पत्थर के खरल

×

अब तक हम कसौटी पत्थर के खरलो का प्रचार करते रहे हैं, लेकिन अपने प्रतिनिधि को पत्थरो की खदानो पर जहां इन खरलो का निर्माण होता है, भेजने और छान-बीन करने से पता लगा कि कसौटी पत्थर से मोतिया पत्थर अधिक कड़ा तथा उत्तम रहता है। मूल्य मे अधिक अन्तर नही होता। ऐसी दशा मे हमने मोतिया पत्थर के खरलो को भी बिक्रियार्थ हमने यहा रखने का विचार किया है। मोतिया पत्थर के खरल अवश्य ही कडे तथा दवा घोटने के लिये सर्वथा उपयोगी हैं, किसी प्रकार की शङ्का न करते हुये इनका आर्डर दीजियेगा।

मोतिया पत्थर से अधिक कडा तथा कम घिसने वाला पत्थर तामडा होता है उनको भी हमने बिक्रियार्थ संग्रह किया है। विविध पिष्टी घोटने के लिये इनका उपयोग किया जाना चाहिये।

तामडा पत्थर से भी अधिक उत्तम व न घिसने वाला हसराज पत्थर सर्वोत्तम है। इस पत्थर के खरल मूल्यवान हैं तथा छोटे साइज के ही स्टाक मे रखते हैं, बडे साइज के खरल आर्डर मिलने पर १॥-२ माह मे तैयार कराकर सप्लाई किये जा सकते हैं।

—मूल्य तथा साइज का विवरण—

	हसराज	तामड़ा	मोतिया	कसौटी
३ इन्ची	×	×	×	१ ००
४ इन्ची	१२ ००	८.००	×	१ २५
५ इन्ची	१४ ००	९ ००	×	२ २५
६ इन्ची	१९ ००	११ ५०	४ ००	३ २५
७ इन्ची	२३ ००	१४ ००	५ ००	४ ५०
८ इन्ची	२९ ००	१७ ००	६ ५०	६ २५
९ इन्ची	३३ ००	२० ००	८ ५०	७ ७५
१० इन्ची	३८ ००	२४ ००	११.००	१० ००
११ इन्ची	४४ ००	२८ ००	१५ ००	१४ ००
१२ इन्ची	५० ००	३२ ००	१९ ००	१८.००
१३ इन्ची	५६ ००	३६ ००	२४ ५०	२४ ००
१४ इन्ची	६४ ००	४२ ००	२८ ५०	२८ ००
१५ इन्ची	७६ ००	४९ ००	३५ ५०	३५ ००

हसराज पत्थर के खरल १२ इन्ची तक के बनाकर तैयार रखे जाते हैं। बडे खरल का आर्डर आने पर तैयार किया जाता है। १५ इन्ची से बडे किसी पत्थर के खरल के मू० पत्र डालकर मालूम कर लें।

खरलो का आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें तथा चौथाई रकम मनियार्डर से पेशगी भेजें।

मंगाने का पता—दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ [अलीगढ़]

धन्वन्तरि के विशेषांक

धन्वन्तरि के विशेषांक कि... कोटि के होते हैं यह आप अपने हाथ विशेषांक से भली प्रकार समझ सकते हैं। अपनी विशालता, उपयोगिता के कारण इन विशेषांकों की माग बहुत रहती है तथा वे शीघ्र ही समाप्त जाते हैं। कई विशेषांको का पुनर्मुद्रण हमारी इस बात का प्रमाण है। इस समय धन्वन्तरि के लगभग ७० विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से बहुत कम विशेषांक शेष हैं। जो शेष रहे हैं उनका भी शीघ्र समाप्त हो जाना अनिवार्य है। जो विशेषांक इस समय शेष हैं उनका विवरण विशेषांक के अन्त मे लगी सूची में दिया गया है। यदि आप इस उपयोगी एव सस्ते साहित्य को प्राप्त करना चाहते है तो समाप्त होने से पहले ही मंगा लीजिएगा। समाप्त हो जाने पर यह अलभ्य साहित्य पुन. प्रकाशित कर सकेंगे इसकी हमको कोई आशा नही।

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूजपेपर्स (सेंट्रल) रूल्स, १९५६ के नियम ८ के अन्तर्गत 'धन्वन्तरि' नामक मासिक पत्र का विवरण

१. प्रकाशन का स्थान	—	विजयगढ जिला अलीगढ
२ प्रकाशन का काल	—	मासिक
३ मुद्रक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता		विजयगढ़ (अलीगढ)
४ प्रकाशक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एव पता	—	उपरोक्त
५ सम्पादक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग
राष्ट्रीयता एव पता	—	उपरोक्त
६ पत्र के मालिक का नाम	—	वैद्य देवीशरण गर्ग विजयगढ़ (अलीगढ़) ज्वालाप्रसाद अग्रवाल विजयगढ़ (अलीगढ)

मैं वैद्य देवीशरण गर्ग यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिया गया विवरण जहा तक मैं जानता हू तथा मेरा विश्वास है, सत्य है।

१-३-६३ ह० वैद्य देवीशरण गर्ग (प्रकाशक)